

"ओम राम"

॥ श्री सद्गुरुचरणकमलेभ्यो नमः ॥

विश्ववन्द्य श्रीसद्गुरु कबीर साहब कृत

बीजक

(बीजकसारबोधिनी [illegible])

टीकाकार

विद्वच्चक्रचूडामणि [illegible]

स्वामी श्रीहनुमानदासजी साहब षट्शास्त्री

प्रकाशक

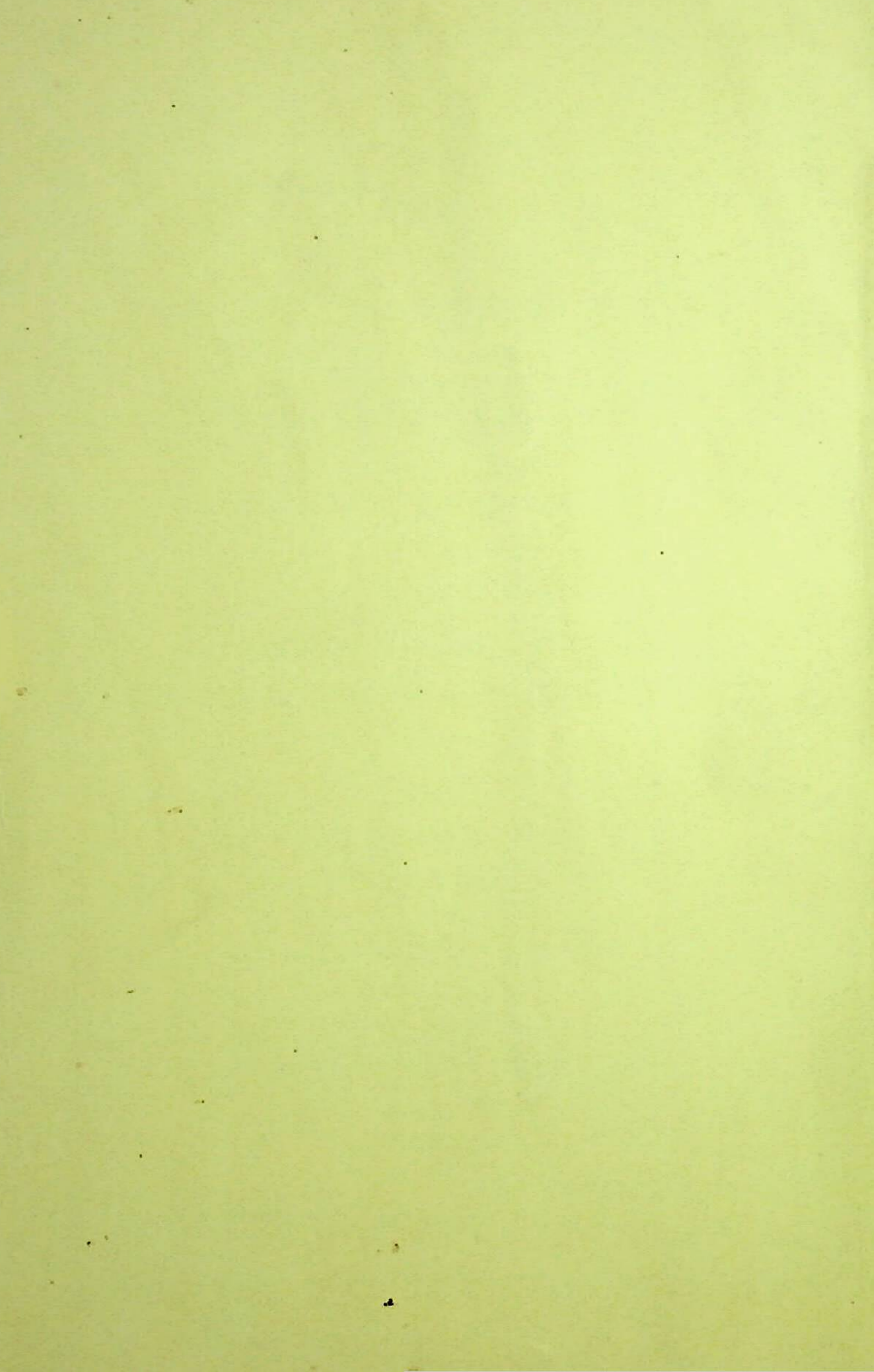
श्री सद्गुरु कबीर हनुमत् साहित्य प्रचारक ट्रस्ट,
मु. परेवा (पूर्वी चंपारण, बिहार)

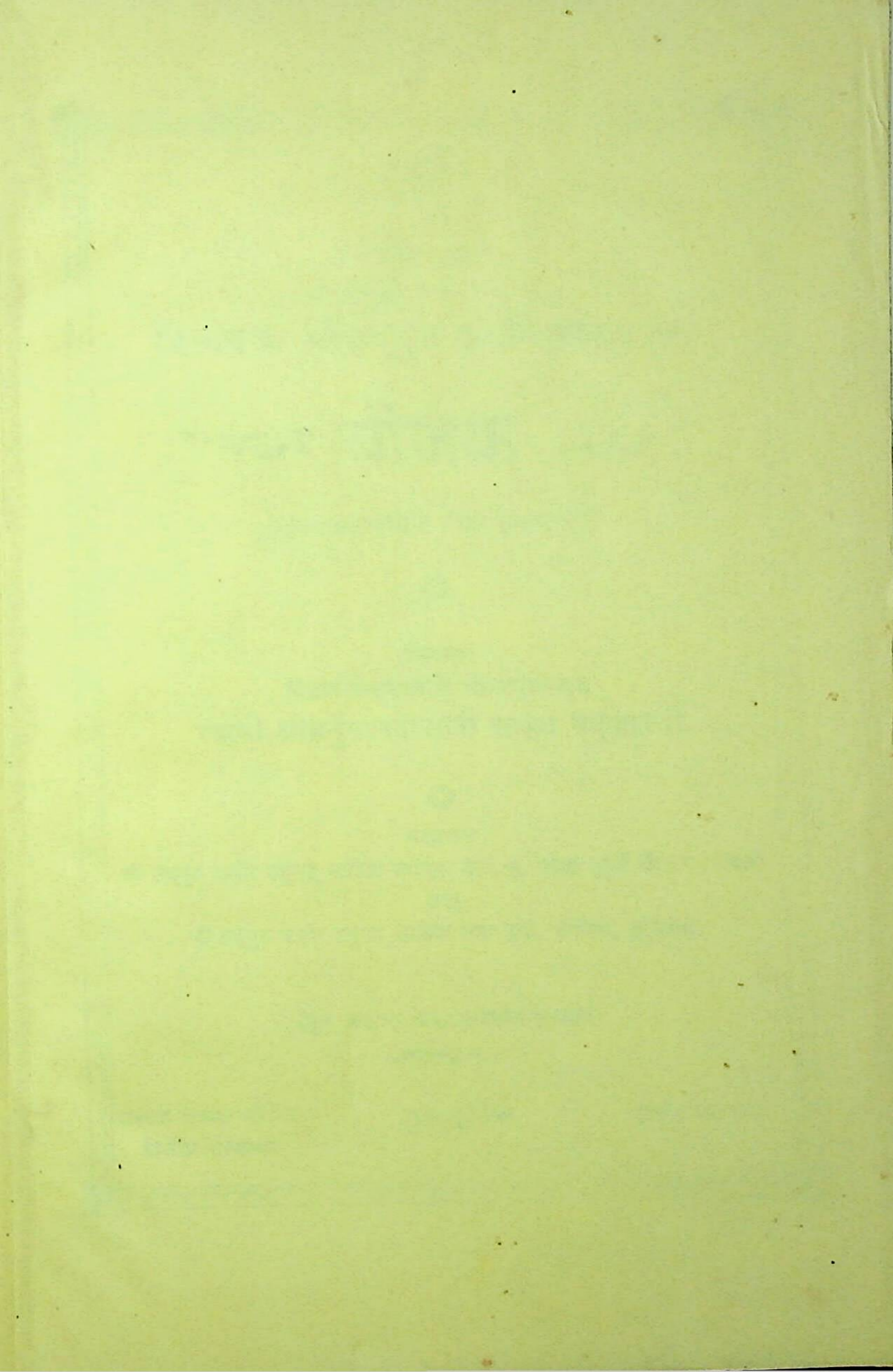
तथा

श्री सद्गुरु कबीर हनुमत् साहित्य सभा ट्रस्ट,
बड़ोदरा, (गुजरात)

सहस्त्र संख्या परिमित

द्वितीय संस्करण गुरु पूर्णिमा मूल्य : रू. ४०)-







''ओम राम''

॥ श्री सद्‌गुरुचरणकमलेभ्यो नमः ॥

विश्ववन्द्य श्रीसद्‌गुरु कबीर साहब कृत

बीजक

(बीजकसारबोधिनी टीका-समलङ्कृत)



टीकाकार

विद्वच्चक्रचूड़ामणि श्रीमत्पूज्यपाद

स्वामी श्रीहनुमानदासजी साहब षट्शास्त्री



प्रकाशक

श्री सद्‌गुरु कबीर हनुमत् साहित्य प्रचारक ट्रस्ट, मु. परेवा (पूर्वी चंपारण, बिहार)

तथा

श्री सद्‌गुरु कबीर हनुमत् साहित्य सभा ट्रस्ट, बड़ोदरा, (गुजरात)



सहस्त्र संख्या परिमित | गुरु पूर्णिमा | मूल्य : रू. ४०)-

द्वितीय संस्करण

पुस्तक मिलने का पता-

- **प.पू. श्री १०८ महन्त श्री रामदासजी साहेब**
  श्री कबीर आश्रम (मठ)
  मु. पो चकना,
  जि. मुजफ्फरपूर (बिहार)
- **प.पू. श्री १०८ संत श्री बालेश्वरदासजी साहेब**
  वेदान्त अचार्य सुवर्ण पदक प्राप्त
  के- ६७/६६ ए, महेश कालोनी, इश्वरगंङ्गी,
  वाराणसी
- **श्री चन्द्रकान्त मणिलाल मेहता,** सेवा निवृत न्यायाधीश,
  'साहेब निलयम'
  रावपुरा, कोठी कचहरी के निकट,
  गोकुल होटल के समीप, बड़ोदरा (गुजरात)
  फोनः ४३५२१५
- **प.पू. श्री १०८ महंत श्री श्रीनंदनदासजी साहेब**
  श्री कबीर आश्रम (मठ),
  ग्राम-परेका, पो. कपूर पकड़ी,
  जि. पूर्वी चंपारण (बिहार)

सहयोगी राशी रु. ४०/-

मुद्रक :-
खण्डेलवाल आफसेट प्रिण्टर्स,
महमूरगंज, वाराणसी - २२१०१०
दूरभाष : ३६०२६६, ३२६११२

* ॐ राम *

* श्री सद्गुरु कबीर साहब का जीवन वृत्त *

छप्पय

कबीर कानि राखी नहीं बर्णाश्रम षटदरसनी ॥
भक्ति विमुख जो धर्म सो अधरम करि गायो ।
योग जग्य ब्रतदान भजन बिनु तुच्छ दिखायो ॥
हिन्दू तुरुक प्रमान "रमैनी, शबदी, साखी" ।
पक्षपात नहिं बचन, सबही के हित की भाखी ॥
आरूढ दसा ह्वै जगत पर, मुख देखी नाहिन भनी ।
कबीर कानि राखी नहीं बर्णाश्रम षटदरसनी ॥

श्री १०८ स्वामी श्रीनाभाजी कृत—
भक्तमाल ।

❀ ओम् राम ❀

श्री तत्त्वाजीवा के प्रति श्री सद्गुरु कबीर साहब की दीक्षा

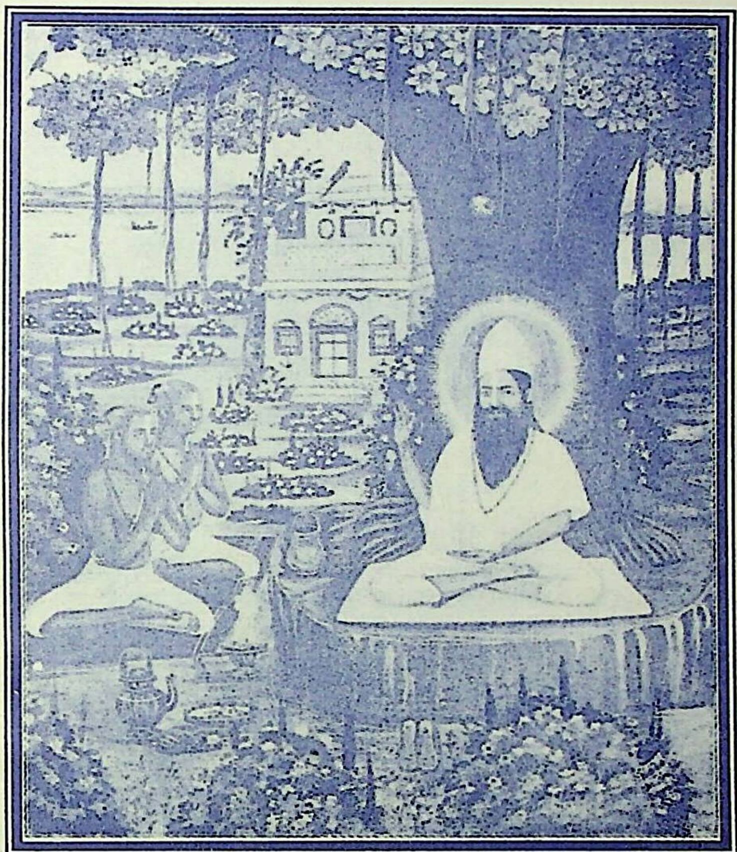
सद्गुरु दीक्षा दिया सुहावन । सात्त्विक वेष मन्त्र अति पावन ॥
सब विधि तिलक किया सुखकारी । नाम दिया अति शुद्ध विचारी ॥
शिर इक ऊर्ध्व तिलक करि ऐसा । मानहु शुद्ध ब्रह्म शिर वैसा ॥
शिर अम तिलक किया गुरु राया । तत्त्वा तत्त्व स्वरूप मिलाया ॥
उर विशाल तुलसी की माला । जिहि जपि जन काटत भवजाला ॥
तुलसी हरि प्रिय सब जग जाना । हरिप्रिय प्रिय सब सन्त सुजाना ॥
तुलसी माल विद्यामय जानी । सन्त सुमति तहँ तजहिं गलानी ॥
विद्या परा लक्ष्मि सुख सागर । ब्रह्माणी सो उमा उजागर ॥
सन्त करहिं ताकी शुभ सेवा । पावहिं मुक्ति विमुक्ति अछेवा ॥
ताका हेतु मन्त्र गुरु दीन्हा । भेद भगाय अभय तिहि कीन्हा ॥

राम मन्त्र ओंकार युत, सत्य दिया निज नाम ।
सात्त्विक यज्ञ कराय कर, किया सहज अभिराम ॥

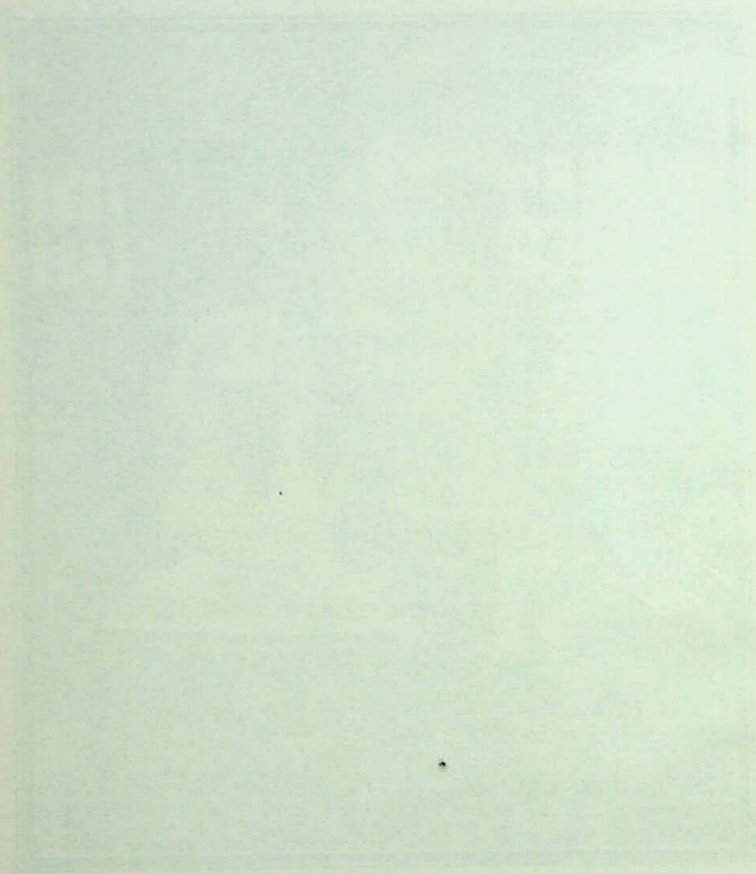
टीकाकार कृत—

अध्यात्मतत्त्व सम्वाद

विश्ववन्द्य श्री सद्‌गुरु कबीर साहब



वेदादितत्त्वमखिलं निजभाषया यः,
सम्यग्घ्युवाच वचनाऽविषयं स्वरूपम्।
तं सर्ववन्द्यचरणं शरणं कबीरं,
नित्यं नमामि नमतां भवमुक्तिहेतुम्॥



|| ॐ राम ||

|| विश्ववन्द्य श्रीसद्गुरु कबीरसाहब कृत ||

* बीजक ग्रन्थ *

भूमिका

सर्वस्यैव सदैवेष्टमनिष्टं नैव कस्यचित् ।
अखण्डं सच्चिदानन्दं स्वच्छन्दं राममाश्रये ॥१॥
अनन्तमेकमद्वैतं संशुद्धं परमव्ययम् ।
ब्रह्म वेदान्तसंवेद्यं चावेद्यं यत्तदस्म्यहम् ॥२॥

सबका ही सदा ही इष्ट (पूज्य, ध्येय, वाञ्छित, ज्ञेय) किसी का भी कभी अनिष्ट नहीं, अखण्ड सच्चिदानन्द स्वतन्त्र राम का आश्रयण करता हूँ ॥१॥

देश कालादिकृत अन्त (नाश, अभाव, भेद) से रहित होने से अनन्त एक अद्वैत अत्यन्त शुद्ध (निर्गुण) सर्वोत्तम निर्विकार, वेदान्त के श्रवणादि से सम्यक् जानने योग्य और अवेद्य (इन्द्रियादि का अविषय, अदृश्य, स्वयं प्रकाश) जो ब्रह्म है, सो मैं हूँ (सर्वात्मा ही ब्रह्म है) ॥२॥

दृष्टि भेद से सत्य मिथ्यादिरूप से परम प्रसिद्ध इस संसार में सब प्राणी नित्य (सत्य) सुख को सदा अनुभव करना चाहते हैं, और सत्य सुखानुभव (सच्चिदानन्द स्वरूप) ब्रह्म है, सो सबकी आत्मा है। यह वेदान्त सन्त मत में प्रसिद्ध है और दुःख का अनुभव करना कोई नहीं चाहता है, सो दुःख अज्ञान काम लोभ जन्म मरणादि रूप संसार है। यद्यपि कोई अविवेकी अपने शत्रु आदि के दुःखों का अनुभव करना चाहता है। तथापि वह अपने सुख के लिये ही अन्य के दुःखों का अनुभव करना चाहता है। अतः दुःख की इच्छा में भी सुख की इच्छा निहित छिपी रहती है। तहाँ अज्ञात या अन्य के सुख को कोई नहीं चाहता है। किन्तु ज्ञात स्वसुख को सब चाहते हैं। पुत्र मित्रादि में आत्मीयता के कारण ही पुत्र मित्रादि के सुखों को भी सब चाहते हैं। जिस सत्पुरुष धर्मज्ञ विवेकी ज्ञानी की सम्पूर्ण विश्व के साथ आत्मीयता हो जाती है, सो सम्पूर्ण विश्व को सुखरूप देखना चाहता है। और अन्ततः विश्व को सत्य सुखस्वरूप समझता है और अपने दुःखोंके समान सबके दुःखों को भ्रमादि मूलक मिथ्या समझता है। अतः भ्रमादि की निवृत्ति के ही लिये उपायों को करता कराता है, रागद्वेषादि नहीं करता है, और सुख को सत्यात्मा समझता है। अतएव साधारण सुखके विवेकी भी नित्य सुख चाहता है, अनित्य नहीं। विभु सुख चाहता है एक देशी नहीं। स्वतन्त्र सुख चाहता है, परतन्त्र नहीं। श्रुति भी कहती है कि, "नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखम्। १।" (छा० ७।२३)

अल्प (परिछिन्न, एक देशी, अनित्य, परतन्त्र) वस्तु में सुख नहीं है किन्तु ब्रह्म ही सुख स्वरूप है यद्यपि कोई दर्शनकार आत्मा या ब्रह्म को सुखस्वरूप नहीं मानते हैं तथा दुःखाभाव में सुख शब्द के प्रयोग को समझते हैं, मोक्षकाल में भी दुःखाभाव ही मानते हैं। तथापि श्रुतिशास्त्र लोकानुभव से नित्य ब्रह्मस्वरूप और उसका अभिव्यञ्जक सात्विक अन्तःकरण की वृत्तिस्वरूप सुख के अत्यन्त प्रसिद्ध होने से दुःखाभाव मात्र को सुख कहना ठीक नहीं है। अनुकूल प्रतीति के विषय, सुख और सुख साधन होते हैं और प्रतिकूल प्रतीति के विषय, दुःख तथा दुःखसाधन होते हैं। कहीं भ्रम अज्ञान मोह से विपरीत प्रतीति की विषयता भी होती है, जैसे परम हित सुख स्वरूप सर्वात्मा ईश्वर गुरु पिता आदि को ही कोई अविवेकी दुःखद दुःखस्वरूप अहितादि मानकर नास्तिक हो जाता है, सो अज्ञान मोहादि का प्रभाव है वस्तुतः ईश्वर (ब्रह्म) आनन्द स्वरूप है। अतएव श्रुति कहती है कि,

"आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।" (तैत्तिरीय० ३।६)

आनन्दस्वरूप से ही माया शक्ति द्वारा ये सब भूत उत्पन्न होते हैं।

"सत्यं ज्ञानमनन्त ब्रह्म । १ ।" (तैत्तिरीय० २।१)

सच्चित् अनन्त स्वरूप ब्रह्म है। और अप्रकाशित (अज्ञात) की सत्ता में कोई प्रमाण नहीं है। अज्ञात सुख कोई चाहता नहीं है, किन्तु वेद शास्त्र गुरु आदि द्वारा सामान्य रूप से ज्ञात (अनुभूत) को ही सब विशेष रूप से ज्ञात (अनुभूत) करना चाहते हैं और उस विशेषरूप ज्ञान अनुभव को प्राप्त करने ही के लिये कबीर साहब भी कहते हैं कि; "जाहीते सब कुछ भया, ताही काह न हेर।"

तहाँ दुःख को खोजने के लिये तो कोई हितेच्छुक गुरु कह नहीं कहते हैं। अतः सर्व कारण भी ब्रह्म आनन्द स्वरूप है, सो सत्य स्वतन्त्र सुख स्वरूप ब्रह्म ही निज (नित्य) सर्वात्मा है। अतएव वह निरतिशय (सर्वोत्तम) प्रेम का विषय होता है। वित्त पुत्र देहेन्द्रियादि से प्रियत्व विशिष्टात्मा में भी प्रसिद्ध है। और पंचदशी में कहा गया है कि,

"मा न भूवं हि भूयासमिति प्रेमाऽऽत्मनीक्ष्यते।"

मैं नहीं रहूँ ऐसी अवस्था कभी नहीं हो, किन्तु मैं सदा रहूँ। इस प्रकार प्रेममूलक आत्मसत्ता की इच्छा होती है यद्यपि ऐसी इच्छा को योग दर्शन में अभिनिवेश (मरण का भय) रूप अविद्या कही गई है। तथापि सर्वथा अविवेक पूर्वक देह में आत्मदृष्टि से जो ऐसी इच्छा होती है, सो मरण से भयरूप अभिनिवेश कहा जाता है। और साधारण विवेक द्वारादेह से भिन्न आत्मदृष्टि पूर्वक जो ऐसी इच्छा होती है सो आत्मप्रेम मूलक प्रेमात्मक ही होती है। क्योंकि साधारण विवेकी भी आत्मा के जन्ममरण मानने पर भी सर्वथा आत्मा के नाशरूप मरण से भयभीत नहीं हो सकता है। वह कृतनाश, अकृताभ्यागम दोष से आत्मा को नित्य समझता है। तथापि एक रस सुखमय दृष्टि से ऐसी इच्छा करता है कि मैं दुःख भय स्थिति को नहीं प्राप्त होऊँ,

"जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च"

यह कथन साधारण विवेकी की दृष्टि से ही है, सर्वथा अविवेकी की दृष्टि से तो मृत देहादि के फिर जन्मादि हो नहीं सकते हैं। वह देह में आत्मबुद्धि से सर्वथा नाश

रूप मरण को समझकर उससे डरता हैं और विवेकी आत्मा को नाश रहित समझ कर उसमें प्रेम करता है और दुःख में किसी को प्रेम होता नही हैं, सुख में होता है। अतः आत्मा सुख स्वरूप है और सुख स्वरूप होने से ही सब वेद दर्शनादि उसके सर्वथा प्रत्यक्ष ज्ञान के लिये उपदेश देते हैं दुःख वा निष्फल वस्तु के ज्ञान के लिये कोई शास्त्रादि उपदेश नहीं दे सकते हैं। हेय दुःख के त्याग के लिये दुःख का उपदेश दिया जा सकता है। परन्तु सर्वस्वरूप होने से आत्मा हेय उपादेय से विलक्षण हैं। सच्चिदानन्द ब्रह्म (विभु) स्वरूप हैं। तथापि अज्ञात होने से उसकी प्राप्ति की इच्छा सबको होती है और उस नित्य स्वयंप्रकाश सुखस्वरूप में दुःख का लेश भी नहीं है। जैसे सूर्य में अन्धकार का लेश भी नहीं रहता है।

तथापि व्यावहारिक जीव को अज्ञान मोहादि से उस नित्यानन्द स्वरूप में भी दुःखादि की प्रतीति होती है उस नित्य के जन्मादि भासते हैं। उस विपरीत ज्ञान की निवृत्ति पूर्वक सत्यज्ञान की प्राप्ति कराने ही के लिये सब मुमुक्षु शास्त्र और सन्तवाक्य प्रवृत्त हुए हैं और होते हैं। क्योंकि अज्ञान अविवेक मोह कामादि मूलक दुःख संसार बन्धन की निवृत्ति, विवेक विज्ञान विरागादि से ही हो सकती है। तथा सत्य सुख शान्ति मोक्ष की प्राप्ति भी विवेक विज्ञानादि से ही होती है, लिखा है कि—

"ज्ञानेन सर्वदुःखानां विनाश उपजायते।
ज्ञानवानुदितानन्दो न क्वचित्परिमज्जति ॥१॥१। (योग वासिष्ठ)

सूर्य से अन्धकार के नाश के समान ज्ञान से सब दुःखों का मूल सहित शीघ्र विनाश होता है। और प्रगट आनन्द वाला ज्ञानी कहीं आसक्त मुग्ध नहीं होता है। अतः—

"जीवन्मुक्तो गतासङ्गः सम्राडात्मेव तिष्ठति।"

जीवन्मुक्त सङ्गरहित होकर सम्राट के आत्मा के तुल्य सर्वेच्छा रहित विराजता है।

क्योंकि— "अनजाने को स्वर्ग नरक है, हरि जाने को नाहीं।" (शब्द १४)

तथा— "तौं लगि तारा जग मगे, जौं लगि उगै न सूर।
तौं लगि जीव कर्म वशी, जौं लगि ज्ञान न पूर ॥" (साखी २१३)

और— "यह मन तो शीतल भया, जब उपजा ब्रह्म ज्ञान।
जिहि वैसन्दर जग जरे, सो पुनि उदक समान ॥" (साखी ३४२)

सर्व तापयुक्त भी यह मन तब शीतल (शान्तियुक्त सुखी) हुआ और होता हैं कि जब सर्वात्मस्वरूप ब्रह्म का ज्ञान हुआ और होता है। क्योंकि जिस कामादि रागद्वेषादि रूप वैसन्दर (अग्नि) से जग (संसार-संसारी का मन) जलता है (ताप युक्त होता है) सो कामादि रूप अग्नि पुनि (पुनः ज्ञान होने पर) उदक तुल्य शान्त निवृत्त हो जाते हैं। अतः जिस सुख शान्ति को सब खोजते हैं, सो किसी लोकादि में मिलने वाला नहीं है किन्तु सर्वात्मा हरि ब्रह्म के ज्ञान से सर्वत्र मिलने वाला है। अतः कहा गया है कि—

जो खोजो सो उहँवा नाहीं। सो तो आहिं अमर पद माहीं।
कहहिं कबिर पद बूझै सोई। मुख हृदय जाके एके होई ॥" (शब्द ९४)

जिस अविनाशी स्वतन्त्र दुःख सम्बन्ध रहित सुख स्वरूप को खोजते हो सो उहँवा (किसी परोक्ष लोकादि में) नहीं हैं, किन्तु वह सुख अमर (अविनाशी) विभु

निज पद (स्वरूप) में ही अति निकट है। अतः उसे अन्यत्र खोजना ठीक नहीं है, न अन्य वस्तु के समान खोजने से वह मिलने वाला है, किन्तु उसे समझने के लिये यत्न करना चाहिये। और उसे समझने के लिये सबसे प्रथम दुश्चरित्र, हिंसा, चोरी, व्यभिचार मिथ्या क्रूर भाषण, कुसङ्ग, कुभक्ष्य, कपटादि के त्याग पूर्वक सच्चरित्र सत्कर्म, दया, दान, दम, ब्रह्मचर्य, सत्य हित मित भाषण, सत्सङ्ग, हितमित सात्त्विक भोजन सरलता आदि का प्रतिपालन सहित विवेकादि पूर्वक श्रवण विचारादि कर्तव्य होते हैं। क्योंकि उस सर्वात्म-स्वरूप पद (स्थान, वस्तु) को वही समझ (बूझ) सकता है कि जिसके मुख और हृदय एक होते हैं। हृदयादि की शुद्धता के कारण जो कपट युक्त कोई व्यवहार नहीं करता है, न कभी मिथ्या भाषण करता है, किन्तु एक सत्य में निष्ठा प्रेमादि वाला रहता है क्योंकि—

"मुख कछु और, हृदय कछु आना।
स्वप्नेहु काहु, मोहि नहिं जाना॥" (रमैनी ६७)

मुख और हृदय में भिन्नता को रखने वाला कपटी मुझे (सद्गुरु, सत्यात्मा) को स्वप्न में भी नहीं पहचानता है।

क्योंकि—"मनस्यन्यद् वचस्यन्यत्कर्मण्यन्यद्दुरात्मनाम्।
मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्॥११

और— "सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।१।
(मुण्डक० ३।१।५)

सत्य, तप, सम्यक् विवेक और नित्य ब्रह्मचर्य से यह सर्वात्मा अपरोक्ष प्राप्त (अनुभूत) किया जा सकता है। और—

"एकोवशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्॥१॥
नित्योऽनित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम्॥२॥
(कठ० अ० ३।५।१२-१३)

वह सब प्राणी का सत्य अन्तरात्मा एक है। कि जो माया अविद्या अन्तःकरणादि रूप उपाधियों से प्रतिविम्ब आभासादि के समान अपने एक स्वरूप को बहुत प्रकार का करता है। जो धीर विवेकी उस एक स्वरूप को अपनी बुद्धि में साक्षीस्वरूप से सदा वर्तमान समझते हैं। उनको शाश्वत (नित्य) सुख प्राप्त (अनुभूत) होता है, अन्य को नहीं॥१॥

जो अनित्य देहादि का नित्य आत्मा है, चेतन बुद्धि ब्रह्मा आदि का चेतन (नित्य प्रकाशक) है। और एक होते भी बहुत जीवों के कामों को कर्मादि के अनुसार निज सत्ता प्रकाश माया शक्ति से जो सदा सिद्ध धारण करने वाला है। उस सर्वात्मा को जो अपनी बुद्धि में वर्तमान समझते हैं, उनको नित्य शान्ति मिलती है, अन्य को नहीं॥२॥

इत्यादि शास्त्र उपदेश के अनुसार सत्यादि साधनों द्वारा नित्य सुख शान्ति को प्राप्त (अनुभूत) करलेने वाले ज्ञानी ज्ञानामृत ब्रह्मानन्द से तृप्त होने के कारण प्रारब्धानुसार शारीरिक व्यवहार परोपकारादि करते हुए भी दुश्चरित्र में प्रवृत्त नहीं होते हैं। क्योंकि

दुश्चरित्रों के जनक प्रबल पापों के रहते अशुद्धान्तःकरण में ज्ञान ही नहीं होता है। अतः शुद्धान्तःकरण में ज्ञानोदय के बाद काम वासना मोहादि के अभाव से वासना कामादि मूलक प्रवृत्ति नहीं होती है। किन्तु प्रारब्ध के अवश्य भोक्तव्य होने से तदनुकूल निजेच्छा परेच्छा, अनिच्छा से भी ज्ञानी की प्रवृत्ति होती है। यह शास्त्र सन्त का सिद्धान्त है। श्री कबीर साहब का वचन है कि—

"एक हि ते अनन्त, अनन्त एक हो आया।
परिचय भया जु एकते, (अनन्तो) एकहि माँह समया ॥ साखी १३२

मायी एक ब्रह्म (विभु) निजात्मा से अनन्तानन्त भेद युक्त संसार हुआ है। तहाँ जिसको एक शुद्ध सत्यात्मा से परिचय भया (जो एक नित्य मुक्तस्वरूप आत्मा को समझा) उसके लिये सब संसार एक सत्यस्वरूप में समा गया, सब संसार में मिथ्यात्व बुद्धि पूर्वक सर्वत्र सत्यात्म बुद्धि हो गई और वह जन्मादि संसार बन्धन से मुक्त हो गया, अतः मोक्ष के लिये ही कहा गया है कि—

"चित्त चंचलता छोड़ि दे, माया से मन फेर।
जाही ते सब कुछ भया, ताही काह न हेर ॥ (साखी ३३३)

मायिक वस्तुओं से मन को फेर (रोक) कर चित्त की चंचलता को त्यागो। फिर जिस सर्वात्मा ब्रह्म की माया शक्ति से सब संसार व्यवहार हुआ है। जिसके अज्ञान मोहादि से व्यावहारिक जीवों के सब कुछ (जन्म जरा मरणादि) दुःख हुआ है, उसको क्यों नहीं हेरते (खोजते, देखते, समझते) हो, उसे अवश्य समझो क्योंकि यह निश्चित बात है कि जिसके अज्ञान से जो होता है सो उसके ज्ञान से ही निवृत्त होता है, अन्य से नहीं। इस प्रकार जिसके ज्ञान से जन्मादि संसार की निवृत्ति परमानन्द की प्राप्तिरूप मुक्ति हरिगुरु भक्त ज्ञानाधिकारी को मिलती है उसी सत्यात्मा को बीजक के आदि में जीवों का एक सत्य ज्योति स्वरूप कहा गया है। फिर उसी को अविगति एक ओंकार और हरि रामादि शब्दों से कहा गया है और उसकी नारी (माया) से जन्य संसार को मोह द्वारा दुःख जनक स्वप्न तुल्य मिथ्या समझाया गया है कि जिसके ज्ञान द्वारा मोक्ष की सिद्धि होती है। शब्दप्रकरण के आदि में उसी सर्व जीवों के सत्यात्मा को राम शब्द से कहा गया है फिर उसको जन्मादि रहित यन्त्री आदि रूप से वर्णन करके अन्त में उसकी मायामूलक सब व्यवहार ऋद्धि सिद्धि आदि को मिथ्या (झूठ) कहा गया है। और तदर्थक योगादि को भी तुच्छ दर्शाया गया है, ज्ञानार्थक योगादि को नहीं।

और साखी प्रकरण के आदि में उसी सर्वात्मा को पाँच तत्त्व पाँच कोशों से पृथक विविक्त साक्षीस्वरूप से समझाने के लिये छठी चिति (ज्ञान) स्वरूप कहा गया है और उसके ज्ञान के साधनरूप से विवेक वैराग्यादि का उपदेश दिया गया है। अन्त में संसार को मिथ्या दर्शाया गया है कि जिससे ज्ञान द्वारा ही मोक्ष समझा जा सके। रमैनी शब्द और साखी ये तीन प्रकरण बीजक में प्रधान (मुख्य) हैं। अन्य प्रकरण इन तीनों के अन्तर्गत हैं।

"कबीर कानि राखी नहीं, वर्णाश्रम षटदर्शनी ॥
भक्ति विमुख जो धर्म, सो अधरम करि गायो।
योग यज्ञ व्रत दान, भजन बिनु तुच्छ दिखायो ॥

हिन्दू तुरुक प्रमाण, रमैनी शबदी साखी।
पक्षपात नहिं वचन, सवहि के हित की भाखी॥
आरुढ़ दशा ह्वे जगत पर, (में) मुख देखी नाहिं न भनी।
कबीर कानि राखी नहीं, वर्णाश्रम पट् दर्शनी॥
(महात्मा श्री १०८ नाभाजी रचित भक्त माल छप्पय ७४)

इस छप्पय में तीनों प्रधान प्रकरणों के निर्देश द्वारा बीजक ग्रन्थ ही का कबीर साहब की वाणी रूप से निर्देश किया गया है। और अङ्ग की साखी भी कबीर साहब की वाणी बहुत प्रसिद्ध है। उसका अनुकरण अनुसरण बहुत सन्तो ने किया है। यद्यपि उसमें कुछ क्षेपक का संमिश्रण हो गया है, तथापि बीजक में संमिश्रण नहीं हुआ है। किन्तु पाठ भेद, क्रम (आनुपूर्वी) भेद बीजक में हो गये हैं। साढ़े छः (६५०) सौ वचन बीजक के माने गये हैं। बीजक और साखी ग्रन्थ से अन्य भी कबीर साहब के बहुत शब्द प्रख्यात हैं, कि जिनका बीजक से मेल है। अतः बीजक साखी ग्रन्थ और शब्द समूह ये तीनों कबीर साहब के तीन प्रस्थान (उपदेश, स्थिति गति के श्रेष्ठ स्थान) हैं और वस्तुतः कबीर साहब ने पाखण्डमय वर्णाश्रमादि की कानि (मर्यादा) को नहीं रखी है, उसका निषेध किया है। धार्मिक सुखद मर्यादाओं का निषेध नहीं किया है, क्योंकि योगारूढ दशा में रहने से उन्हें किसी से रागद्वेष पक्षपातादि तो थे नहीं, सबकी हित की बात ही कहनी थी, मुख देखी नहीं। सब विषय और कर्मों में आसक्ति संकल्पादि से रहित निष्काम आत्मनिष्ठ को गीता में योगारूढ तथा योगयुक्त कहा गया है। वह किसी की अहित बात क्यों कहेगा।

"ब्राह्मण ह्वे के ब्रह्म न जानै। घर महँ जगत प्रतिग्रह आनै"

इत्यादि वाक्यों से वेदादि के ज्ञानादि से रहित प्रतिग्रह परायण ब्राह्मण को हीन कहा है। तथा शौचाचारादि रहित सर्वभक्षी को तुच्छ कहा है, सो धर्म शास्त्रादि में अत्यन्त प्रसिद्ध है। अनधिकारी के प्रति दान से दाता ग्रहीता द्रव्य तीनों का नाश वर्णित है। इसी प्रकार अन्यत्र भी समझना चाहिये। और सत्यात्मा के ज्ञानादि के लिये वेदादि (उपनिषदादि) को कबीर साहब ने परम प्रमाण माना है। कहा है कि—

"जाको मुनिवर तप करै, वेद थकै गुण गाय।
सोई देउँ सिखापना, कहिं न कोई पतियाय॥" १। (साखी १३१)

जिसको प्राप्तादि करने के लिये श्रेष्ठ मुनि तप (शमदमादि) करते हैं और जिस अनन्त गुण महिमा वाले के गुणों को गाकर वेद थकता है, उसी की शिक्षा उपदेश मैं देता हूँ। परन्तु इस समय वैदिक ज्ञानाधिकारियों का प्रायः अभाव है। अतः कही हुई शिक्षा में कोई विश्वास नहीं करता है, न समझता है और,

"वेदहुँ केर कहल नहिं करई। जरतहिं रहै सुस्त नहिं परई॥"

वेद ऐसे परम प्रमाण के कहे हुए (धर्म आत्मानुभव राम भजन तप जपादि) को नहीं करते हैं, अतः जीव जरते रहते हैं, शान्ति नहीं पाते हैं, इत्यादि। विशेष विस्तार रूप वेदादि द्वापर में हो गये हैं, सो वायु पुराणादि में वर्णित हैं। उन्हें नहीं मानने पर भी सत्यात्म तत्त्वादि के बोधक वेदादि को नहीं मानने वाले कोई भी सत्पुरुष नहीं हो सकते हैं किन्तु—"त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन॥१॥

इत्यादि भगवद्गीता आदि के अनुसार त्रिगुणमय प्रपंच विषयक काम लोभादि का निवारण सत्पुरुष अवश्य करते हैं। तथा हिंसा असत्यादि का निवारण पूर्वक सत्य शौच सन्तोषादि युक्त भक्ति ज्ञान के बिना कल्याण शान्ति सुख को सत्पुरुष कभी नहीं मानते हैं, अतः कहते हैं कि—

"पानी में मीन पियासी, मोहि सुनि सुनि आवै हाँसी ॥
आतम ज्ञान बिना नर भटके, कोइ मथुरा कोइ काशी।
पिण्डदान देवै पितरन को, भक्ति बिना सब नाशी ॥
मृग के तन में है कस्तूरी, सुँघत फिरत सब घासी।
घट में वस्तु मर्म नहिं जानै, भूलत फिरै उदासी ॥
जाको ध्यान धरत विधि हरिहर, मुनिजन सहस अठासी।
सो तेरे घट माहिं विराजै, परम पुरुष अविनाशी ॥
है हजूर तिहि दूर बतावै, दूर की आश निराशी।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, घटहि मिलै अविनाशी ॥ १ ॥"

सकण्टक मांस लोभी मीन तुल्य विषयों के लोभयुक्त मनुष्यों की बुद्धि पानी तुल्य ताप नाशक तथा ज्ञात होने पर परम शान्तिप्रद परब्रह्म सर्वात्मा में भी पियासी (आशा-तृष्णादियुक्त) सदा रहती है, सो सुन सुनकर मुझे (आशा आदि रहित सन्तों को) हाँसी आती है (आश्चर्य होता है) और विषयी कामी कोई मनुष्य सच्ची भक्ति ज्ञान के बिना ही सुख शान्ति के लिये मथुरा में भटकते हैं, तो कोई काशी आदि में ज्ञान भक्ति के बिना ही मोक्ष के लिये भटकते हैं, और कोई गया आदि में पितरों की मुक्ति के लिये पितरों के प्रति पिण्ड का दान देते हैं। परन्तु प्रेम भक्ति के बिना सब कर्म नष्ट (तुच्छफल-प्रद तथा व्यर्थ) होते हैं। जैसे कि श्रद्धा के विना सब कर्म को गीता में असत कहा गया है। और भक्ति के बिना ज्ञान के अभाव से ही ऐसी दशा होती है कि जैसे मृग के तन (देह नाभि) में कस्तूरी के रहते, वह सब घासों को सूंघता फिरता है। तैसे घट में पूर्ण सच्चिदानन्द निजात्मा के मर्म को नहीं जानने से उदासीन होकर मनुष्य भूलते (भटकते) फिरते हैं। अतः उपदेश है कि सुख शान्ति आदि के लिये जिसके ध्यान को ब्रह्मा आदिक भी धरते (करते) हैं, सो अविनाशी सच्चिदानन्दस्वरूप परमपुरुष विभु होते भी तेरे घट में विशेष रूप से प्रकाश रहा है और वह हजूर (निकट उपस्थित) है। परन्तु अज्ञान से उसे लोग दूर बताते हैं। यदि दूर की आशा को निराशी (त्याग) कर, हे सन्तो भाई! श्रवणादि करो, तो वह अविनाशी घट ही में मिल जाय ॥ १ ॥

आशा को त्यागे बिना जो दशा होती है उसका वर्णन करते हैं कि—

"धुविया जल बिच मरत पियासा ॥
जल में ठाढ़ पिवै नहिं मूरख, अच्छा जल है खासा।
अपने घट का मर्म न जानै, कर धुवियन की आशा ॥
छिन में धुविया रोवै धोवै, छिन में होय उदासा।
आपै बरै कर्म की रस्सी, आपन गल की फाँसा ॥
सच्चा साबुन लेहिं न मूरख, है सन्तन के पासा।
दाग पुराना छूटत नाहीं, धोवत बारह मासा ॥

एक रत्ती को जोर लगावै, छोड़ि दिया भरि मासा।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो!, आछत अन्न उपासा॥''

धुबिया (पापजन्य मालिन्य दुःख भयादि को धोने की इच्छावाले भी जीव) पूर्णानन्द स्वरूप ब्रह्मजल के बीच (मध्य) में सदा वर्तमान रहते भी तृष्णादि रूप प्यास से सदा जन्मते मरते हैं। आनन्द जल में रहते भी मूर्खता से उस जल को पीते (समझते) भी नहीं हैं। और वह जल बहुत अच्छा (सुन्दर शुद्ध) है। तथा खास निज स्वरूप है। अतः वह अपने घट के भीतर में भी वर्तमान है। परन्तु ये मूर्ख अपने घट के मर्म (भेद) को नहीं जानते हैं और अन्य धोबियों (कामियों) की आशा करते हैं। और कभी क्षण में दुःख के आने पर रोते हैं और दुःखों के भोगों द्वारा कुछ पापादि को धोते हैं तथा शुभ कर्मों द्वारा धोते हैं। फिर कभी सुखों के आने पर धोने से उदास हो जाते हैं। और आप ही उन कर्मों की (कर्मरूप) रस्सी को बरते (रचते) हैं, कि जो निषिद्ध काम्य कर्मादि अपने गले की फाँसी तुल्य होते हैं। उक्त पापादि को धोने के लिये निष्कामकर्म सत्यकर्म, स्वधर्म, भक्ति, ज्ञान, वैराग्यादि सच्चे साबुनों को वह मूर्ख नहीं लेता है, कि जो साबुन सदा ज्ञानी भक्त सन्तों के पास में वर्तमान रहता है। अतः उस साबुन के बिना पुराने सञ्चितकर्म, वासना, कामादिरूप दाग (मल) छूटते नहीं हैं। अतः यह धुबिया बारह मास (सदा) धोते ही (दुःखों को भोगते ही) रहता है। और सुख भोग के लिये, एक रत्ति (विषय कनकादि) के लिये जोर लगाता है। इनका उपार्जन कष्ट सह कर भी करता है और भरि मासा (आठ रत्ति) रूप विवेक, वैराग्य, शम, दम, श्रद्धा, समाधान, उपरति, तितिक्षा (भक्ति सेवा) इत्यादि पूर्णानन्द के हेतुओं को मूर्खता से छोड़ दिया है। अतः कबीर साहब कहते हैं कि हे सन्तो! भाई! तुम पूर्णानन्द के लिये श्रवणादि करो। नहीं तो तुम्हें भी पूर्णानन्दस्वरूप अन्न के अछते (रहते) उपवास करना होगा (कष्ट भोगना पड़ेगा)॥ २॥ क्योंकि—

तेरी पानी बिच प्यास न गई॥
बाहर आके क्या सुख पाया, अन्दर न लहर लई।
ऐसे सुख सागर के पाये, आश न पूरण भई॥
रे मन मूरख मीन अनारी, किन दुर्मति दई।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो! रहु आनन्द मई॥ ३॥

अन्य प्राणी को अविद्यामय केवल प्रेय विषयादि कर्माधीन स्वभावतः प्राप्त होते हैं। मनुष्य को विद्यामय श्रेयः सन्तोषादि सन्तसंग विचारादि द्वारा प्राप्त होते हैं। तहाँ सन्तसंग विचार ज्ञान ध्यानादि के अभाव से ब्रह्मानन्द की प्राप्ति के योग्य पावन मनुष्य तनु आदि रूप पानी में आकर भी यदि प्यास (आशा तृष्णादि) नहीं गई, तो बाहर के प्रेयः (विषयों) में आकर तुम ने क्या सुख पाया। बाहर में आने ही से अन्दर के ब्रह्मानन्द समुद्र का लहर नहीं ले सका। रे मूर्ख मनवाला अनारी मीन तुल्य मनुष्य! किन लोगों ने तुम्हें ऐसी दुर्मति दी कि जिससे अगाध आनन्द समुद्र को त्याग कर तुम बाहर के विषयों में आये हो और आते हो, सो समझो। और कबीर साहब कहते हैं कि हे सन्तो भाई! अब भी समझकर आनन्दमय श्रेयः स्वरूप ब्रह्म में स्थिर रहो॥ ३॥

आनन्दमय परब्रह्म की निज स्वरूप से प्राप्ति (अनुभूति) के लिये साधन का उपदेश है कि—

तो को पीव मिलेगें, घूंघट के पट खोल रे।
घट घट में वह साईं रमता, कटुक वचन मत बोल रे॥
धन योवन का गर्व न कीजै, झूठा पँच रँग चोल रे।
शून्य सहर में दियना बारि ले, आज्ञा (आशा) से मत डोल रे॥
योग युगुत से रंग महल में, पिय पायो अनमोल रे।
कहैं कबीर आनन्द भयो है, बाजत अनहद ढोल रे॥ ४॥

घूँघट (अविद्या) रूप पट के आवरण को खोलो (हटाओ) तो तेरे हृदय में प्रियतम परमात्मा की प्राप्ति होगी (वह स्वयं तुझे मिलेगा) वह सर्वात्मा स्वामी सब घटों में वर्तमान है। किसी से क्रूर वचन मत बोलो। धन और जवानी का गर्व नहीं करो, यह झूठा क्षणभंगुर मायामय पाँच तत्त्व का चोला (शरीर) बना है। अतः देहादि के अभिमानादि से रहित होकर हृदय रूप शून्य (विवेकादि रहित) शहर में विवेकादिरूप दीप बारो (जलाओ) और सद्गुरु की आज्ञा पर डटे रहो। आशा तृष्णादिवश कहीं भटको नहीं। इस ज्ञान योग की युक्ति से जिन लोगों ने हृदय रूप रंग महल (प्रेमस्थान) में प्रियतम अनमोल परमात्मा की प्राप्ति की उनको जीवन्मुक्ति का आनन्द प्रगट हो गया और कबीर साहब कहते हैं कि परम स्वराज्य का अनहद ढोल बजने लगा॥ ४॥

इस प्रकार के शब्दों से बीजक के ही रहस्यमय उपदेशों का वर्णन किया गया है। बीजक में कबीर साहब अपने को (कहहिं कबीर) इस प्रकार निर्देश (सम्बोधित) करते हैं। "कबीरा" शब्द से जीव को ही सम्बोधित करते हैं। परन्तु अन्यत्र यह नियम नहीं है। और बीजक में रागद्वेष काम लोभादि के त्यागपूर्वक समतायुक्त आत्मज्ञान से अनासक्तिरूप जीवन्मुक्ति के लिये मुख्योपदेश दिया गया है कि "राजा समरे तुरिया चढ़ी" (रमैनी ९) राजा (ज्ञानी) तुरिया अवस्था में चढ़ (प्राप्त हो) कर स्मरण सम्भाल करे और करता है।

और इस अवस्था से प्रथम अवस्था के लिये ईश्वर के नामादि द्वारा ईश्वर की भक्ति बताई गई है कि "पन्थी समरे नाम ले बढ़ी" पन्थी (पथिक) उपासक भक्त नाम लेकर बढ़े और बढ़ता है। स्मरण ध्यानादिपूर्वक वृद्धि को प्राप्त करे और करता है। इस उपासनावस्था से भी प्रथमावस्था वाले के लिए भक्ति युक्त सत्कर्म (सात्त्विक यज्ञ अध्ययन दानादि) का उपदेश दिया है कि "अर्थ विहूनी समरी नारी" अर्थ विहूनी (निष्काम) नारी (सत शास्त्र गुरु आदि के वशवर्ती) स्त्री तुल्य मनुष्य भी (कर्मादि के लौकिक फल की इच्छाओं से रहित होकर सदुपदेशादि के अधीन रह कर कर्म करने वाला भक्त भी) ईश्वर का सच्चा स्मरण करता है और वह अपना सँभार सुधार करता है, कर्म करता हुआ भी निष्काम मनुष्य ज्ञान पाकर मुक्त होता है, क्योंकि कामी ही कर्म से बँधता है, अन्य नहीं, अतः काम रहित सत्कर्म योगरूप होकर मोक्ष का हेतु होता है। सो मुमुक्षु के लिये प्रथम कर्त्तव्य है।

"कामो बन्धनमेवैषां किमन्यल्लोकबन्धनम्।
कामबन्धनमुक्तो हि नेह भूयोऽभिजायते ॥१॥
विमुञ्चति यदा कामान् सर्वांश्च हृदि संस्थितान्।
तदाऽमृतत्वमाप्नोति पुरुषो नाऽत्र संशयः ॥२॥"

(इतिहास समुच्चय अ० १२)

"अकामो धीरोऽमृतः स्वयं भूः" इत्यादि वेद वाक्य हैं।

साखी ग्रन्थ में भी ज्ञान भक्ति और कर्म का वर्णन है। अतः सर्व साधारण के लिये बीजक में भी निष्काम सत्कर्म भक्ति परोपकारादि को सत् शास्त्र साखी ग्रन्थ के अनुसार ही समझना चाहिये। ज्ञान भक्ति सत्कर्म विराग अहिंसादि बीजक के प्रतिपाद्य विषय हैं। साखी है कि—

"घट बढ़ काहु न देखिये, ब्रह्म सकल भरपूर।
जिन जाना तिहि निकट है, दूर कहै तिहि दूर ॥१॥
विषय त्याग वैराग्य है, समता कहिये ज्ञान।
सुखदायी सब जीव सो, यही भक्ति परमान ॥२॥
विषय त्याग वैराग्य रत, समता हिये समाय।
मित्र शत्रु एको नहीं, मन में राम समाय ॥३॥
राम नाम निज औषधी, सतगुरु दई बताय।
औषधि खाय रु पथ रहै, ताके वेदन जाय ॥४॥
नाम अनन्त जु ब्रह्म का, तिनका वार न पार।
मन माने सो लीजिये, कहैं कबीर विचार ॥५॥
राजा राना राव रंक, बड़ो जो सुमिरै राम।
कहै कबीर सब सो बड़ा, जो सुमिरै निष्काम ॥६॥
सहकामी सुमिरण करै, पावै उत्तम धाम।
निष्कामी सुमिरण करै, पावै अविचल राम ॥७॥
जप तप संयम साधना, सब कछु सुमिरण माँहिं।
कबीर जानै भक्त जन, सुमिरण सम कछु नाहिं ॥८॥
और कर्म सब कर्म है, भक्ति कर्म निष्कर्म।
कहै कबीर पुकारि के, भक्ति करो तजि भर्म ॥९॥"
यह बीजक की भूमिका, ज्ञान भूमि पथ आय।
करि विचार जिज्ञासु जन, लहु बीजक मति गाय ॥१०॥

काशी
वसन्त पञ्चमी　　　　　　　　　　　　　　　　　　टीकाकार
२०२१

॥ ॐ राम ॥

श्रीसद्गुरुचरणकमलेभ्यो नमः

फतुहा स्थान के गुरुपरम्परा।



श्रीयुत विश्वक्सेन मुनि, विश्व विजय के हेत।
सद्विवेक सेना सहित, रहे सदा दृढ़ चेत ॥ १ ॥
श्रीमुनिवर्य महान मति, मनन समाधि सुयुक्त।
शरण गये सत शिष्य को, करते नित्य विमुक्त ॥ २ ॥
श्रीसुपुनीत महान मुनि, पावन परम सुजान।
श्रीशठकोपहुँ शठन को, कोपि करत मतिमान ॥ ३ ॥
बोपदेव मुनि ज्ञाननिधि, विपत बारि सुख देहिं।
श्रीमङ्गल मुनि बोध दै, विघ्न ताप हरि लेहिं ॥ ४ ॥
श्रीसंयुत श्रीनाथ मुनि, शोभा सदन उदार।
श्रीयुत पुण्डरीकाक्ष जु, सद्विवेकि गत मार ॥ ५ ॥
श्रीयुत राममिश्र मुनी, ध्यानी सुजन सुजान।
राम मिला जग देखि के, रहते गत अभिमान ॥ ६ ॥
श्रील पराङ्कुश भय रहित, हरत मोह मद मान।
श्री यामुन मुनि यतन से, देत शिष्य को ज्ञान ॥ ७ ॥
श्री रामानुज राम ही, लीन्ह मनुज अवतार।
श्रीयुत देवाचार्य जी, देवन का सरदार ॥ ८ ॥
श्रीयुत हरियानन्द जी, परानन्द की खान।
श्रील राघवानन्द जी, योगी परम सुजान ॥ ९ ॥
श्रीगुरु रामानन्द जी, परम पुनीत उदार।
भक्ति लाइ शुभ जगत में, भै सब जगदाधार ॥ १० ॥
श्रील कबीर उदार अति, ज्ञानी समता आदि।
कामादिक अरि दलन करि, सुमति लखाइ अनादि ॥ ११ ॥
श्री तत्त्वा जीवा भये, परम विवेकी सन्त।
भक्ति ज्ञान में एक रस, किया भेद भय अन्त ॥ १२ ॥
श्री सत्त्वा जीवा भये, सत्य निरत मतिमान।
सत्य ब्रह्म इक जानि के, रहे विगत अभिमान ॥ १३ ॥
श्री पूरुषोत्तम जीवा, पुरुषोत्तम भगवान।
श्रीयुत कुन्ता दास जी, कुशल विमल विज्ञान ॥ १४ ॥
श्रीयुत सुखानन्द जी, सुखराशी विज्ञानि।
श्री सम्बोध दास जी, बोधराशि सत ध्यानि ॥ १५ ॥

श्रीयुत देवादास जी, परम देव सुख रूप।
श्री विश्वरूप दास जी, परम सन्त मति भूप॥ १६॥
श्रील यशरूप दास जी, परम यशस्वी ज्ञानि।
श्री विक्रोधादास जी, विगत क्रोध सत ध्यानि॥ १७॥
श्रील ज्ञानमुकुन्द जी, अति विरक्त मतिमान।
श्रीयुत सरूपदास जी, दे जग जीवन ज्ञान॥ १८॥
श्रीयुत निर्मल दास जी, कर निर्मल सब काहु।
श्रीयुत कोमल दास जी, दे जग जीवन लाहु॥ १९॥
श्रीयुत गणेश दास जी, विघ्नहारि भगवान।
श्री गुरुदयाल दास जी, अति विरक्त मतिमान॥ २०॥
श्रीघनस्याम दास जी, श्रीकर परम सुखारि।
श्रीयक्त भरत दास जी, सकल लोक सुखकारि॥ २१॥
श्रीयुत मोहन दास जी, सकल सुगति भण्डार।
श्रीयुत रघुवर दास जी, रघुवर सम सरदार॥ २२॥
श्रीयुत दयाल दास जी, विदित दया आगार।
श्रीयुत ज्ञानी दास जी, दीनन करत उधार॥ २३॥
श्रीयुत केशव दास जी, केशव सम श्रीमान।
शान्त चित्त अति सन्त हित, सदा विगत अभिमान॥ २४॥
श्री हरिनन्दन दास जी, नीति निपुण गुणवान।
हित करते जन दीन का, गुरुजन से गलतान॥ २५॥
श्रीयुत गरीब दास जी, धैर्य धाम गुणवन्त।
निज बल राखत टेक निज, जन नहिं पावत अन्त॥ २६॥

१-श्री विश्वक्सेन मुनिः	१५-श्री राघवानन्दः	२९-श्री स्वरूप दास
२-श्री मुनिवर्य मुनिः	१६-श्री रामानन्दः	३०-श्री निर्मल दासः
३-श्री सुपुनीत मुनिः	१७-श्री कबीर साहब	३१-श्री कोमल दासः
४-श्री शठकोप मुनिः	१८-श्री तत्त्वा मुनिः	३२-श्री गणेश दासः
५-श्री बोपदेव मुनिः	१९-श्री सत्त्वाजीवा	३३-श्री गुरुदयाल दासः
६-श्री मङ्गल मुनिः	२०-श्री पुरुषोत्तमजीवा	३४-श्री घनस्याम दासः
७-श्री नाथ मुनिः	२१-श्री कुन्ता दासः	३५-श्री भरत दासः
८-श्री पुण्डरीकाक्ष मुनिः	२२-श्री सुखानन्दः	३६-श्री मोहन दासः
९-श्रीराममिश्र मुनिः	२३-श्री सम्बोध दासः	३७-श्री रघुवर दासः
१०-श्री पराङ्कुश मुनिः	२४-श्री देवा दासः	३८-श्री दयाल दासः
११-श्री यामुन मुनिः	२५-श्री विश्वरूप दासः	३९-श्री ज्ञानी दासः
१२-श्री रामानुजाचार्यः	२६-श्री यशरूप दासः	४०-श्री केशव दासः
१३-श्री देवाचार्यः	२७-श्री विक्रोध दासः	४१-श्री हरिनन्दन दासः
१४-श्री हरियानन्दः	२८-श्री ज्ञानमुकुन्द दासः	४२-श्री गरीब दासः

आरती श्रीयुत बीजक ज्ञानकी

ओम् करो आरति स्तुति सुवन्दना,
बीजक विमल वेद प्राण की
आतम परमातम जहँ दरसत,
विमल बोध वारिक जहँ परशत
हर्षत मन मति जन सुजान की....... आरती श्रीयुत १

अज्ञानज सब द्वन्द्वहुँ विनशत,
श्रवण किये शुभ शान्ती परशत
मिटत भ्रान्ति भव कर्म काल की...... आरती श्रीयुत २

अन्तर ज्योति ब्रह्म परकाशत,
निराधार सोई रामहि भासत
रहत न आश न त्रास नाश की........आरती श्रीयुत ३

मनन किये मन मोद बढत अति,
सुगुरु ध्याय मति तुरिय चढन सति
लखत न ऊँच-नीच गति भव की.......आरती श्रीयुत ४

समता सबमें रहत सदाही,
विषमतादि भय दूर पराही
बीजक ध्यान काल कलि मल की...... आरती श्रीयुत ५

बीजक ध्यान सुगुरु का ध्याना,
सुगुरु ध्यान स ब्रह्मकर ध्याना
हरत ताप तृष्णा तन मनकी.......... आरती श्रीयुत ६

बीजक वेद तत्त्व इक जानै,
सुगुरु ब्रह्म नहिं भिन्न पिछानै
भक्ति लहै सो परम धरमकी......... आरती श्रीयुत ७

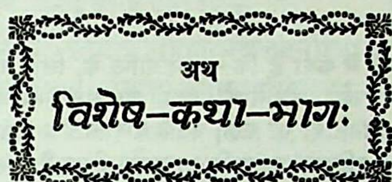
परम धर्म योगज शुभ ज्ञाना,
जाते राग द्वेष मद हाना
अचल शान्ति सुख मिलै ब्रह्म की...... आरती श्रीयुत ८

प्रकरण-सूची





श्रीसद्गुरुचरणकमलेभ्यो नमः



मङ्गलाचरणम् ।

नैदाघे किरणे वारि यथा यस्मिन्निदं जगत् ।
तं वन्दे परमात्मानं सच्चिदानन्दविग्रहम् ॥ १ ॥
यस्य स्मरणमात्रेण यान्ति विघ्नाः सदा लयम् ।
तं वन्दे बुद्धिदं नित्यं यशोराशिं गुरुं स्वकम् ॥ २ ॥
यानाश्रित्य सुमन्दोऽपि द्वन्द्वमुक्तो भवत्यलम् ।
तान् सर्वान् भद्रकान् वन्दे शान्तये चित्तवारिधेः ॥ ३ ॥
चित्तवारिधिशान्त्यर्थं यत् किञ्चित्प्रवदाम्यहम् ।
तुष्यतु तेन सर्वात्मा परमात्मा सदोन्मुखः ॥ ४ ॥

(रमैनी ८ के अन्तर्गत)

(१)

'तत्त्वमसि' इस उपदेश का वर्णन छान्दोग्य उपनिषद् अ० ६ में है । कथा है कि—अरुण के पुत्र का पुत्र श्वेतकेतु थे, पिता की आज्ञा से बारह वर्ष की अवस्था में गुरुकुल में जाकर बारह वर्ष में सब वेदों को पढ़ कर पिता के पास में आये; परन्तु आत्मज्ञान के बिना अभिमानी रहे, सो देखकर, ज्ञानी पिता (उद्दालक) जी ने पूछा कि, क्यों अभिमानी हो क्या वह उपदेश अपने गुरु से तुमने पूछा है कि, जिस एक के सुनने से अश्रुत भी श्रुत होता है, इत्यादि । पुत्र ने कहा कि यह उपदेश कैसा है । पिता ने कहा कि, जैसे एक मृत्पिण्ड के ज्ञान से सब उसके कार्य ज्ञात होते हैं, क्योंकि विकार वाणीमात्र है । मिट्टी के सब विकारों कार्यों में मिट्टी ही सत्य है । इससे मिट्टी के ज्ञान से ही उनका ज्ञान हो जाता है, इत्यादि । फिर पुत्र ने कहा कि, यह उपदेश हमारे गुरु नहीं जानते हैं, जानते तो अवश्य कहते, अब आपही कहें । इसके बाद "सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्" इस वचन से एक सत्यात्मा को बता कर, सृष्टि का संक्षेप से वर्णन पूर्वक, पिता ने कहा है कि, वही सत्य सबका मूल कारण है, इससे वही सत्य है, उसी के ज्ञान से सबका ज्ञान होता है; परन्तु भूमि से बाद में उसके कारण को समझो । फिर भूमि के कारण के कारण (हेतु) को समझो, इस प्रकार परम्परा से सबके मूल कारण को समझो, और उस परम सूक्ष्म

कारणरूप ही यह सब जगत है, क्योंकि वही सत्य है, वही सबकी आत्मा है। "तत्त्वमसि श्वेतकेतो" हे श्वेतकेतो! तुम भी वही सत्यात्मा हो अर्थात् तेरी आत्मा भी वही सत्य है, इत्यादि। इसी अर्थ को फिर भी पूछने पर कैक बार समझाया है ॥१॥

(२)

छान्दोग्य के अ० ७ में कथा है कि—ज्ञान प्राप्ति के लिये नारदजी सनत्कुमार जी के पास में गये हैं। और उपदेश सुनाने को कहा, तब सनत्कुमारजी ने कहा कि, आत्म-विषयक जो कुछ आप जानते हो सो कहो, उसके बाद आपके अज्ञात विषय को मैं कहूँगा। तब नारदजी ने सब वेद इतिहास पुराणादि का वर्णन किया है कि, इन सब विद्याओं को मैं जानता हूँ, परन्तु मन्त्रादिरूप वाक्यों को ही जानता हूँ, आत्मा को नहीं जानता हूँ, क्योंकि आप ऐसे महापुरुषों से सुना हूँ कि, आत्मज्ञानी शोक रहित हो जाता है। और मैं अज्ञानी होने से शोचता हूँ, तापयुक्त हूँ, आप मुझे शोक से पार कीजिये। तब सनत्कुमारजी ने वेदादि को नाम (शब्द) रूप बताकर, क्रमशः सूक्ष्म पदार्थों को बताते हुए अन्त में ब्रह्म को सुखस्वरूप भेद रहित बताया है। सर्वत्र व्यापक आत्मा कहा है, उससे अन्य को विनश्वर तुच्छ कहा है, इत्यादि ॥२॥

(३)

नारदीय पु० अ० ३३ में कथा है कि—नारदजी ने सनकजी से पूछा है कि, किस कर्म से योगियों के योग की सिद्धि होती है। तब सनकजी ने उत्तर दिया कि, तत्त्व के चिन्तन करनेवालों ने उत्तम मोक्ष की प्राप्ति ज्ञान से कहा है। और वह ज्ञान भक्तिजन्य होता है। और सुकर्मवालों को भक्ति प्राप्त होती है। हजारों जन्मों में दान यज्ञादि विविध कर्म जिसने किया है, उसीको हरि में भक्ति होती है। भक्तिके लेशमात्र से भी अक्षय परम धर्म होता है। उत्तम श्रद्धा से सब पाप नष्ट होता है। सब पापों के नष्ट होने पर बुद्धि निर्मल होती है, वही बुद्धि विद्वानों से ज्ञान शब्द से कही जाती है, ज्ञान मोक्षप्रद कहा गया है। और वह ज्ञान योगी को होता है। क्रियायोग बिना ज्ञान नहीं होता है। इससे मन वचन कर्म से परपीड़ा रहित होकर, विभु विष्णु की पूजा भक्ति सहित करें। और अहिंसा, सत्य, अक्रोध, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अनीर्ष्या दया, ज्ञानयोग, और कर्मयोग दोनों के साधक हैं। सबके आत्मा विष्णु हैं, ऐसा समझ करके ही योगाभ्यास करे। अपने समान सब प्राणी को माननेवालेही विष्णु के प्रभाव को जानते हैं। यदि क्रोधादि से दुष्ट मनवाला देवपूजा करता है, तो उससे विष्णु प्रसन्न नहीं होते, हैं जिससे वह धर्मपति कहाते हैं। कामादि से दुष्ट मनवाला दम्भी यदि पूजा करता है, तो वह व्यर्थ है। तिससे शमदमादि साधनों में तत्पर होकर, सर्वात्मा विष्णु की पूजा करे, मन वचन कर्म से सबके हित में रत रहे, सोई क्रियायोग (कर्मयोग) कहा जाता है, इत्यादि ॥३॥

(४)

योगवासिष्ठ प्रकरण २ सर्ग एक में कथा है कि—शुकदेव जी अपने से ही परम तत्त्व को समझे थे। परन्तु अपने विचार में विश्वास नहीं होने से, व्यास जी से पूछा कि, यह संसाराडम्बर कैसे उत्पन्न हुआ है, कैसे नष्ट होता है इत्यादि। तब व्यास जी ने यथार्थ अमलतत्त्व का उपदेश दिया और संसार को कल्पित (मिथ्या) बताया, तब स्वयं ज्ञात

इस उपदेश में भी शुकदेवजी को पूर्ण विश्वास नहीं हुआ। तब व्यास जी पुत्र के अभिप्राय को समझ कर बोले कि, मैं वेद्य वस्तु को तत्त्वतः नहीं जानता हूँ, राजा जनक तत्त्वतः जानते हैं, उनके पास जा। तब सुमेरु पर्वत पर से शुकदेव जी जनकपुर पहुँचे। तब उनके वैराग्यादि की परीक्षा करके, जनक जी ने पूछा कि—

'निःशेषितजगत्कार्यप्राप्ताऽखिलमनोरथः।
किमीप्सितं तवेत्याशु कृतस्वागतमाहतम् ॥'

आपने सब जगत् के कार्य को समाप्त किया है, सब मनोरथ प्राप्त किया है, आपको जो ईप्सित है, सो शीघ्र कहो; स्वागत करके ऐसा जनक जी ने कहा, शुकदेव जी बोले कि—

'संसाराडम्बरमिदं कथमभ्युत्थितं गुरो।
कथं प्रशममायाति यथावत्कथयाऽऽशु मे ॥'

इस प्रश्न का जो उत्तर व्यास जी ने दिया था, सोई उत्तर जनक जी ने भी दिया। तब शुकदेव जी बोले कि, इस तत्त्व को मैं स्वयं विवेक से समझा था, पिताजी भी यही कहा, आप भी यही कहते हो, शास्त्र भी यही कहता है कि,

'यथाऽयं स्वविकल्पोत्थः स्वविकल्पपरिक्षयात्।
क्षीयते दग्धसारोऽयं निःसार इति निश्चयः ॥'

जनक जी बोले कि,

'अविच्छिन्नचिदात्मैकः पुमानस्तीह नेतरत्।
स्वसंकल्पवशाद्बद्धो निःसंकल्पश्च मुच्यते ॥
व्यासादधिक एवाहं व्यासशिष्योऽसि तत्सुतः।
भोगेच्छातानवेनेह मत्तोप्यत्यधिको भवान् ॥' इत्यादि ॥४॥

(५)

देवी भागवत स्कन्ध १ अ० १० अ० १४ आदि में कथा है कि—कलविंक पक्षी के पुत्र स्नेहजन्य आनन्द को देखकर, पुत्र के लिये सौ वर्ष तप करने के बाद, अग्नि के लिये अरणि मन्थन व्यास जी करते थे और उसी समय घृताची नामक अप्सरा आई, उसे देखकर व्यास जी कामातुर हुए। इन्हें काम से मोहित जानकर अप्सरा शुकी रूप होकर वहाँ से चल गई, तो भी काम को नहीं रोक सके। उस अरणि (लकड़ी) में ही वीर्य गिरा, उससे शुकदेवजी का जन्म हुआ, और बृहस्पति से शास्त्रों का अध्ययन किये। जनक जी के कहने से विवाह भी किये, परन्तु फिर योग में स्थिर होकर पिता को भी त्याग दिये। तब पुत्र के वियोग से अत्यन्त शोकातुर व्यासजी को देखकर छाया शुकदेव बनाकर नारदजी ने व्यास जी को शान्त किया, इत्यादि।

यही कथा म० भारत शान्तिपर्व अ० ३२३ और ३२४ में कुछ भेद से है। कथा है कि—मेरुपर्वत के शृङ्ग पर पार्वती सहित शिव जी विचरते थे, और वहाँ ही व्यास जी उत्तम

पुत्र के लिये तप करते थे। वे शिवजी की आराधना करते थे, तब प्रसन्न होकर शिव जी बोले कि, अकाश वायु तेजादि के समान तेरा पुत्र होगा। बर पाने पर अरणि मन्थनादि की कथा पूर्व समान ही है। शुकदेव जी के जन्म होने पर, उन्हें महा तेजस्वी देखकर, गंगा पानी से तर्पण किया और देव ऋषि लोक भी यथायोग्य स्तुति सत्कारादि किये। अ० ३२५ में है कि, मोक्ष के विचार से शुकदेव जी व्यासजी के पास गये तब व्यासजी ने उन्हें राजा जनक के यहाँ भेज दिया। वहाँ ज्ञान की प्राप्ति करके शुकदेव जी फिर उत्तराखण्ड को ही पधारे। और अ० ३२६ इत्यादि में है कि, नारदजी के उपदेश से योगाभ्यासादि किये, इत्यादि। नारदीय पु० पूर्व सं० अ० ५८ में भी यह कथा है ॥ ५ ॥

(६)

याज्ञवल्क्य और जनक का संवाद बृहदारण्यकोपनिषद् अ० ४ में है। प्रथम अ० ३ में कथा है कि—राजा जनक बहुत दक्षिणावाला 'अश्वमेध' (राजसूय) यज्ञ को यजन किये, उसमें कुरु पंजाब के बहुत ब्राह्मण एकत्रित हुए। राजा को जानने की इच्छा हुई कि, इनमें कौन अतिशय विद्वान् हैं। इसे समझने के लिये गौओं के एक सिंग में पाँच पाद सुवर्ण ढलाकर हजार गौ उनके सामने गोष्ठ में रखवाये, और प्रणामपूर्वक बोले, कि आप सब भगवानरूप ब्राह्मण हैं; परन्तु जो आपमें अतिशय ब्रह्मनिष्ठ हैं सो इन गौओं का ग्रहण करें। कोई जब उसके लिये नहीं प्रवृत्त हुआ, तब याज्ञवल्क्य जी ने शिष्य को कहा कि, इन गौओं को ले चलो। फिर अन्य ब्राह्मण सब अपना अपमान समझ कर बहुत विवाद प्रश्न किये, परन्तु सब याज्ञवल्क्य जी से पराजित हुए, और यथायोग्य उत्तर पाये।

यह कथा वायु पु० अ० ६० में भी है। याज्ञवल्क्य जी ने सबका उत्तर दिया हैं, और याज्ञवल्क्य जी के प्रश्न का उत्तर कोई नहीं दे सका है। गार्गी ने प्रश्न करके याज्ञवल्क्य जी के महत्त्व को समझ कर ब्राह्मणों को समझाया कि कोई इनसे विवाद नहीं करो, तौ भी शाकल्य ने बहुत प्रश्न किये, मुनि ने उत्तर दिया, और मुनि का एक प्रश्न का भी शाकल्य उत्तर नहीं दे सका, जिससे उसका शिर फट गया; क्योंकि ऐसा ही नियम करके मुनि ने प्रश्न किया था, यदि इसका उत्तर नहीं दोगे तो शिर फटेगा। 'स एष नेति नेत्यात्मा' इत्यादि मुनि का कथन है। अन्त में 'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म' यह सबको समझाया है। इसके बाद चतुर्थ अध्याय में कथा है कि—याज्ञवल्क्य जी स्वयं राजा के यहाँ गये हैं और उनके प्रश्न के अनुसार समझा कर अन्त में स्वयं प्रकाश असङ्ग आत्मा का वर्णन किया है। शरीरी जीव के कर्मादि के अनुसार गति बताकर, निष्काम ज्ञानी की मुक्ति का वर्णन किया है। भेद रहित आत्मा मन से समझने योग्य है। आत्मा में भेद माननेवाला बार २ मृत्यु पाता है। भेद रहित आत्मा को समझने के लिये शमदमादि साधन हैं, इत्यादि उपदेश देकर कहा है कि, यह आत्मा ही अजर अमर अमृत अभय ब्रह्म हैं, जो इस प्रकार जानता है, सो अभय ब्रह्म ही होता है। महाभारत शान्तिपर्व अ० ३१० से ३१८ तक याज्ञवल्क्य जनक का संवाद है कि, जिसमें सांख्ययोग की रीति से तत्त्वादि का वर्णन है। और अ० ३१८।७६ का श्लोक है कि,

'स निमज्जति कालस्य यदैकत्वं न बुध्यते ।
उन्मज्जति हि कालस्य समत्वेनाभिसंवृतः ॥'

कालस्य (कालेन) काल से वह डूबता है कि जब एकता को नहीं समझता है । और वह काल से उबरता है कि जो समता से युक्त रहता है, इत्यादि ॥६॥

(७)

दत्तात्रेय जी की कथा मार्कण्डेय पुराण अ० १६ आदि में है कि—प्रतिष्ठानपुर में कोई कौशिक नामा ब्राह्मण था । सो पूर्व जन्म के पाप से कुष्ठ रोगवाला था, क्रोधी था । परन्तु उसकी स्त्री पतिव्रता थी, सब प्रकार से सेवा आज्ञा पालन करती थी । उस कामी ब्राह्मण ने एक दिन किसी वेश्या को देखा और रात्रि के समय वहाँ जा नहीं सकता था, तब स्त्री से कहा कि, मुझे वेश्या के पास पहुँचावो, कम से कम मैं उसे देखूँगा, वह मुझे देखेगी । यह सुन कर पतिव्रता पति को कान्धे पर लेकर चली, और माण्डव्य नामक ऋषि चोर न होते भी चोरपन की शंका से राजा द्वारा शूली पर चढ़ाये गये थे । सो उसी रास्ते में जीवनयुक्त कष्ट में थे । रात्रि के समय अन्धकार होने से उस पतिव्रता के पति का पैर उनके देह में लग गया । तब माण्डव्य शाप दिये कि, जिसका पैर लगा है, सो सूर्य को देखते ही मर जायगा । पतिव्रता बोली कि, सूर्योदय ही नहीं होगा कि, जिससे मेरा पति मरेगा । फिर सूर्योदय नहीं होने से सदा रात्रि रहने लगी, यज्ञादि कर्म बन्द हो गये, तब देव सब चिन्ता युक्त हुए । तब प्रजापति ने कहा कि, एक तेज दूसरा तेज ही से शान्त होता है, इससे अत्रिमुनि की स्त्री पतिव्रता अनसूया से ही फिर सूर्योदय होगा । इस बात को सुनकर देव सब अनसूया से प्रार्थना किये, तब अनसूया उसे समझाया कि, दिन होने बिना देवताओं में घबड़ाहट है, सूर्योदय होने दो, मैं तेरा पति को जीवित कर दूँगी । उसने स्वीकार किया, तो अनसूया की स्तुति से सूर्योदय हुआ और उसका पति मर कर फिर जीवित हुआ । इसके बाद ब्रह्मा आदि त्रिदेव अनसूया के पास आकर वर माँगने के लिये कहे तो अनसूया ने कहा कि, आप तीनों मेरा पुत्र होवें, यही मेरी इच्छा है । फिर ब्रह्मा चन्द्रमा हुए, विष्णु दत्तात्रेय हुए, शिव दुर्वासा हुए । यही चन्द्रमा गुरुपत्नी से बुध को उत्पन्न किया, और दत्तात्रेय जनसंघ को छोड़ कर, जल में रह कर तप करने लगे । परन्तु उनके साधु स्वभाव से ब्राह्मणों के बालक वहाँ भी साथ नहीं छोड़ते थे, तब मायामयी एक स्त्री को साथ में लिये जल से निकले, तो भी साथ नहीं छोड़ने पर कल्पित मदिरा पीने लगे तब सब साथ छोड़ दिए, इत्यादि । और दत्तात्रेय की ही उपासना से सहस्रार्जुन सिद्धि पाया था । तथा मन्दालसा के चौथा पुत्र अलर्क इनके उपदेश से ज्ञानयोग पाया था, इत्यादि । इस कुष्ठी और पतिव्रता की कथा, ब्रह्म पु० खं० १। अ० ५३ में अन्य रूप से है । वहाँ अनसूया का वहाँ जाने की कथा नहीं है, किन्तु ब्रह्मा आदिक ही उसे समझाये थे और कुष्ठी के मरने पर दिव्यरूप से उसे जीवित किये थे, इत्यादि ॥

भविष्य पुराण, पर्व ३ अ० १७ में कथा है कि—अनसूया सहित अत्रिऋषि तप करते थे, तब ब्रह्मा आदि तीनों देव ऋषि से वर मागने के लिये कहने गये । ऋषि कुछ नहीं बोले, तब उनकी स्त्री के पास जाकर तीनों देव कुछ कुचेष्टा करते हुए, रति के लिये

कहे और बलात्कार करना चाहे। तब ऋषिपत्नी ने शाप किया कि, तुम तीनों मेरा पुत्र होगे और तपोबल से तीनों को पुत्र बनाया।

'महादेवस्य वै लिङ्गं ब्रह्मणोऽस्य महच्छिरः।
चरणौ वासुदेवस्य पूजनीया नरैः सदा॥
भविष्यति सुरश्रेष्ठा उपहासोऽयमुत्तमः।'

यह अनसूया देवी की उक्ति है। यहाँ भाव है कि, सात्विक विष्णु का अवतार महापतिव्रता का पुत्र दत्तात्रेय महाविरक्त ज्ञानी थे, इससे (दत्तात्रेय वही रस स्वादा) उक्ति उचित ही है। और माण्डव्य ऋषि की कथा स्कन्द पु० खं० ५-३ अ० १९८ में है कि—किसी राजा के द्रव्य चोरा के चोर सब माण्डव्य ऋषि के आश्रम में छिपे थे, राजपुरुष सब आकर ऋषि से पूछा, तब ऋषि कुछ उत्तर नहीं दिये, इससे चोर सहित ऋषि को पकड़ कर ले गये। फिर ऋषि को भी राजा शूली पर चढ़ा दिया; परन्तु योग तप के प्रभाव से शीघ्र प्राणत्याग नहीं हुआ, तब राजा शूली पर से उतारा, और क्षमा मांगा, बाद में ऋषि का शरीर छूटा, इत्यादि।

(८)

वसिष्ठ और राम मिलकर जो कथा गाये, उसका बीजमात्र योगवासिष्ठ में इस प्रकार है कि—श्रीरामचन्द्र जी विद्यागृह (गुरुकुल) में सब विद्याओं का अध्ययन करके घर आये और वहाँ आकर तीर्थयात्रा के लिये श्री दशरथ जी से आज्ञा मांग कर, शुभ दिन में भाइयों के सहित यात्रा किये, और सब दिशाओं में बार बार विचरे और सब पृथिवी को देखकर घर आये। सुखपूर्वक घर में रहने लगे। बाद भरत जी मामा के पास रहने लगे और लक्ष्मण शत्रुघ्न सहित रामजी घर रहने लगे। और विराग की भावना से चिन्तित दुःखी कृश हो गये। उस समय सोलह वर्ष से कम ही उमर थी, चिन्ता दुःख के मारे शारीरिक व्यवहार, नित्य कर्मादि से भी उपराम के समान हो गये कि, जिससे उनके माता पिता सब चिन्तित हुए और पूछने पर भी दुःख का कारण नहीं बताते थे। तब दशरथ जी ने श्रीवसिष्ठ जी से पूछा कि, राम के दुःख का क्या कारण है? वसिष्ठ जी ने सोच विचार कर कहा कि, हे राजन्! इसमें भारी कारण है, अल्प कारण से सन्त लोग हर्ष विषादादि के वश नहीं होते हैं; परन्तु आप को दुःख की कोई बात नहीं है। इस वचन को सुनकर दशरथ जी चुप होकर दुःख सहित समय बीताने लगे और सुख समय की प्रतीक्षा करने लगे। इसी समय में यज्ञ में उपद्रव करनेवाले राक्षसों से विघ्नयुक्त महर्षि विश्वामित्र जी यज्ञरक्षा के लिये राजा के पास आये कि, राक्षसों से यज्ञ की रक्षा किया जाय। श्री दशरथ जी ने श्री विश्वामित्र जी को पूजा आदि करके पूछा कि, श्रीमान् किस कार्य के लिये आये हैं, सो आप कहें, मैं अवश्य करूंगा, आप महामान्य महर्षि हैं, इत्यादि। तब विश्वामित्रजी हर्षयुक्त होकर बोले कि, आपका यह वचन उचित ही है। और कार्य मेरा यह है कि, सिद्धि के लिये मैं यज्ञ करता हूँ, उसमें राक्षस विघ्न करते हैं। और यह कर्म ऐसा है कि, इसमें शाप देना उचित नहीं है। आपकी सहायता से यह यज्ञ पूर्ण हो सकता है और आपका बड़ा पुत्र राम राक्षसों का नाश करनेवाला है, उन्हें ही मुझे आप दो। हमसे रक्षित होकर वही राक्षसों का नाश करेंगे। और मैं भी उनका बहुत कल्याण करूंगा कि, जिससे वे तीनों लोक में पूज्य होंगे, इत्यादि।

राजा दशरथ इस बात को सुन कर, एक मुहूर्त निश्चेष्ट दुःखी होकर बोले कि—बालक राम अभी युद्ध योग्य नहीं हैं, अन्य मन्त्री योद्धा हैं, उन्हें ले जाइये। इनके सहित मैं इन्द्र से भारी योद्धाओं के साथ युद्ध करूंगा! और बालक राम अभी क्या करेंगे। और दूसरी बात है कि, इस समय राम स्वयं कृश दुःखी हैं। राक्षसों के साथ युद्ध करना बड़े बलियों के लिये भी कठिन है, इससे मैं राम को नहीं दूंगा, इत्यादि इस बात को सुन कर श्री विश्वामित्र क्रुद्ध हुए, जिससे हलचल हो गया। सो देखकर श्री वसिष्ठजी ने विश्वामित्रजी के प्रभावादि को श्रीदशरथजी के प्रति समझाकर, उन्हें देने में लाभ समझाया, तब उनसे राम लक्ष्मण दोनों भाई बुलाये गये। प्रतिहार बोलाने गया, थोड़ी देर में आकर, रामजी के बिषाद को सुनाया। फिर विश्वामित्रजी बोले, कि यदि ऐसी बात है तो रघुनन्दन को आप सब यहाँ शीघ्र लाओ। यह रघुपति का मोह आपत्ति रागादि से नहीं है। यहाँ आने पर हम सब क्षणभर में मोह को दूर कर देंगे कि जिससे मोह रहित सुखी होकर अपना व्यवहार करेंगे। तब दशरथजी ने दूत को भेजा, तबतक रामजी स्वयं भाइयों के सहित घर से चल चुके थे। आकर पिता और मुनियों को प्रणाम करके, भूमि में बिछाये हुए कपड़े पर बैठ गये। तब श्री दशरथजी बोले, कि तुम विवेकी हो दुःखी नहीं होवो; तुम्हारे समान लोक वृद्ध विप्र गुरु से कथित पवित्रस्थान को पाते हैं, इत्यादि। श्री वसिष्ठजी बोले, कि तुम शीर हो, कठिन विषय-शत्रुओं को जीते हो! अज्ञ तुल्य मोहसागर में क्यों डूबे हो? विश्वामित्र जी बोले, कि चिराकुल नेत्र की चञ्चलता को त्याग कर कहो कि, किन हेतुओं से किन विषयों में कैसे तुम मोहित हो, इत्यादि। कहने से तुम अपना अभिमत इष्ट शीघ्र पावोगे। इस उचितार्थयुक्त वचन को सुन कर, रामचन्द्रजी ने दुःख को त्याग दिया और आश्वासन पाकर बोले कि हे भगवन्! आपके पूछने पर मैं अज्ञ भी इस समय सब कहूँगा। सत्पुरुष के वचन का उलंघन कौन करेगा। ऐसा कह कर रामचन्द्रजी ने संसार के दुःख लक्ष्मी जीवनादि के दोषों का वर्णन किया। और पूछा कि, कौन वह स्थिति का स्थान है, कि जहाँ शोक नहीं है, जीवन्मुक्त कैसे रहते हैं, इत्यादि। तब विश्वामित्रजी ने कहा कि, तुम स्वयं सूक्ष्मबुद्धि से सब बात जानते हो, केवल परिमार्जन मात्र की जरूरत है, इत्यादि। और फिर कहा कि, रघुवंशी के कुलगुरु श्रीवसिष्ठजी इनके चित्त की विश्रान्ति के लिये युक्त कहें, इत्यादि। तब वसिष्ठजी महाराज विचारादि के लिये उपदेश देकर एकात्मा का उपदेश अनेक युक्तियों से दिया। और कहा कि, सांख्यवादी के मत में जो पुरुष है, योगवादी के मत में जो ईश्वर है; इसी प्रकार जो तत्तन्मत में काल शिवादि हैं, सो सब आत्मज्ञानी के आत्मा हैं॥ ८॥

(९).

श्री कृष्णजी उद्धवजी को जो समझाया है, सो कथा श्रीमद्भागवत स्कन्ध ११ अ० २७-२८ में है। उद्धव के पूछने से अध्याय २७ में क्रियायोग का वर्णन किया है, कि जिसमें वैदिक तान्त्रिक मन्त्रों द्वारा द्विजों के कर्तव्यरूप पूजा का कथन किया है। और मूर्ति देव प्रतिष्ठा आदि के फल बताया है। अ० २८ में कहा है कि प्रकृति और पुरुष के साथ विश्व को एकस्वरूप देखता हुआ दूसरे के स्वभाव कर्म की प्रशंसा निन्दा नहीं करे; क्योंकि जो दूसरे के कर्म स्वभाव की प्रशंसा निन्दा करता है सो असत्य में अभिनिवेश से अपने स्वार्थ से गिर जाता है। निद्रा से प्राप्त तैजस में जैसे शरीरस्थ पुरुष मिथ्या स्वप्न

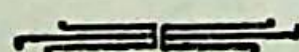
देखता है नष्ट चेतनतावाला मूर्छित प्राणी माया वा मृत्यु को प्राप्त होता है। तैसे ही नाना अर्थ को सत्य देखने वाला संसार स्वप्न को माया मरण को प्राप्त होता है। अवस्तु (मिथ्या) द्वैत का कितना कौन वस्तु भद्र (शुभ) है और कितना कौन अभद्र है; क्योंकि जो वचन से कहा जाता है, मन से ध्यात है, सो मिथ्या है। और छाया के व्यापारादि तुल्य भ्रमरूप असत् है, तो भी संसार में कार्य करनेवाला है। ऐसे ही देहादि असत् होते भी मरण मोक्ष पर्यन्त भय देते हैं। वस्तुतः आत्मा ही माया द्वारा विश्वरूप से प्रगट होता है, प्रभु होकर प्रगट करता है, रक्षित होता है, रक्षा करता है; वही विश्वात्मा हरा जाता है, ईश्वर होकर हरता है। तिससे आत्मस्वरूप सृज्यादि से भिन्न अन्य कोई पदार्थ निरूपित (सिद्ध) नहीं हो सकता। अध्यात्मादि पदार्थों की प्रतीति भी आत्मा में मिथ्या ही है। इसे मायाकृत समझो। मुझसे वर्णित इस ज्ञान विज्ञान की निपुणता को जाननेवाले, किसीकी निन्दा स्तुति नहीं करते हैं। किन्तु लोक में सूर्य के समान असङ्ग होकर विचरते हैं। इसलिये प्रत्यक्ष अनुमानागमादि से, अपने विवेक से आदि अन्तवाली सब वस्तु को असत् जान कर, यहाँ असङ्ग होकर विचरे।

फिर उद्धवजी ने पूछा है कि, स्वयंप्रकाश द्रष्टा आत्मा को वा अनात्म दृश्य देह को जन्म दुःखादि संसार नहीं है, फिर किसको है, जो दीखता है। अव्यय निर्गुण स्वयंप्रकाश अनावृत्त आत्मा है सो अग्नि तुल्य है कि, जबतक देहेन्द्रिय प्राण के साथ अध्यासिद्ध संबन्ध आत्मा को है तबतक अविवेकी को मिथ्या संसार भी सफल है, सो स्वप्न समान है। सत्य अर्थ के नहीं रहते भी विषयों के ध्यान करनेवालों का संसार नहीं निवृत्त होता है, कि जैसे स्वप्न में अर्थ विना भी अनर्थ की प्राप्ति होती है। जागने से स्वप्न की निवृत्ति के समान आत्मज्ञान से सब अनर्थों की निवृत्ति होती है, इत्यादि ॥ ९ ॥

(१०)

राजा जनक का विदेह कहाने की कथा, विष्णुधर्मोत्तर पुराण खण्ड १ अ० ११७ में है कि–निमि नामक राजा के पहले वसिष्ठजी पुरोहित थे। राजा के निरन्तर याग से उपराम होकर विश्राम करना चाहते थे। और राजा यज्ञ कराने को कहा तब ऋषि ने विश्राम लेनेको कहा। फिर राजा बोला कि, पारलौकिक कर्म में समय की प्रतीक्षा उचित नहीं है, इससे यदि आप नहीं यज्ञ करा सकते हैं, तो अन्य पुरोहित बनाकर, उनके द्वारा यज्ञ करूंगा। इस बात को सुनकर वसिष्ठजी ने शाप दिया कि, श्रान्त मुझको छोड़कर अन्य पुरोहित करना चाहते हो, इससे तुम विदेह होगे (मरोगे)। फिर निमि भी शाप दिया कि, धर्मकार्य में विघ्न करते हो और दूसरा पुरोहित भी नहीं चाहते हो, इससे तुम भी विदेह होगे। फिर विदेह होकर दोनों ब्रह्माजी के पास गये। तब ब्रह्माजी ने निमि को सब जीवों के नेत्रों में वास दिया। और वसिष्ठजी फिर मित्रावरुण के पुत्र हुए, इत्यादि।

देवी भागवत स्कन्ध ६ अ० १५ में भी यह कथा है कि—वसिष्ठजी के शाप से निमि राजा विदेह हुए, और इससे उनके वंशज विदेह कहाये, इत्यादि। तो भी जनकजी में ज्ञान के प्रभाव से देहाभिमान के अभाव से उनमें विशेष विदेहता का वर्णन किया है। और उनके ज्ञान का प्रभाव शास्त्र तथा लोक में भी प्रसिद्ध है, इत्यादि ॥१०॥



(रमैनी १३ के अन्तर्गत)

(१)

'मुये गये की' कथा कठ उपनिषद् में है कि—प्राणी के यह आत्मा मारने से नहीं मरता है, न जन्मता मरता है, यह अज नित्य है, तो भी उपाधि से भिन्न के समान होकर छाया और आतप के समान विलक्षण हुआ है। शरीररूप रथ के स्वामी हैं, जिसमें बुद्धि सारथी है, मन लगाम है, इन्द्रिय घोड़े हैं, विषय सड़क है। अज्ञानी के इन्द्रियाँ वश में नहीं रहती हैं, इससे मरने पर संसार में कर्मादि के अनुसार प्राप्ति होती है। विज्ञानी इन्द्रियों को वश में करके संसार मार्ग के अन्त तक पहुँचता है, इत्यादि ॥१॥

(रमैनी १४ के अन्तर्गत)

(१)

वामन अवतार की कथा विष्णु धर्मोत्तर पुराण खं० १ अ० २१ में है कि—प्रथम स्वायंभुव मन्वन्तर में विश्वभुग् देवेन्द्र हुए। उनके दायाद बन्धु घोर असुर सब हुए। और उन असुरों के राजा वाष्कलिनामा असुर हुआ, सो इन्द्र के राज्य को बलात्कार से हर लिया। तब इन्द्र ब्रह्मा जी के शरण में गये। ब्रह्मा जी इन्द्र सहित विष्णु भगवान् के शरण में गये और सब वृत्तान्त सुनाये। तब भगवान् बोले, कि मैं इन्द्र के राज्य को लौटाऊँगा, आप अपने लोक में जाइये। मैं वामनरूप से वाष्कलि के पास जाऊँगा। तब वह मुझे देखकर विस्मित होगा। उसी समय इन्द्र भी जाकर उससे याचना करें, कि हे वाष्कले! मेरा तीनों लोक तुम बल से हर लिये हो, तहाँ इस अति लघु वामन के पैर से तीन पग भूमि मुझे अग्निस्थापन के लिये शीघ्र दो। इस प्रकार इन्द्र के कहने पर वह अवश्य तीन पग भूमि देगा। ऐसा कहने पर ब्रह्माजी अपने घर गये। भगवान् वामन रूप से वाष्कलि के पास गये। वह भगवान् को देखकर आश्चर्य में था ही कि, इन्द्र भी पहुँचे। वाष्कलि ने इन्द्र का सत्कार किया, आगमन का कारण पूछा, तब इन्द्र बोले, कि दूसरे की भूमि में नहीं रहना चाहता हूँ, इससे अग्निस्थापन के लिये इस वामन के पद से तीन पाद भूमि मुझे दो। वाष्कलि ने कहा, कि अच्छा, इसके तीन पाद में आप सुख से रहो। फिर भगवान् ने बढ़कर तीनों लोक का ग्रहण किया, इत्यादि।

यही कथा पद्मपुराण में कुछ भेद से है। यहाँ सं० १ अ० ३ में अदिति के गर्भ से भगवान् के प्रादुर्भाव का वर्णन है। और मत्स्यपुराण अ० २४४ इत्यादि में भी यह कथा है। वहाँ भी अदिति के गर्भ से प्रगट होने का वर्णन है, और विरोचन के पुत्र बलि से इन्द्र के राज्य को लौटाया है, इसीसे कबीर साहब भी कहते हैं कि,

'वामनरूप छल्यो बलिराजा'

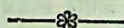
और श्रीमद्भागवत अष्टम स्कन्ध अ० १८ में भी वामन भगवान् का जन्म अदिति देवमाता से ही लिखा है। असुरों से अपने पुत्रों का राज्य हरण होने पर अदिति दुःखी हुई और अपने पति से दुःख की बात सुनाई, तब उन्होंने एक व्रत बताया कि, जिससे विष्णु भगवान् अदिति को दर्शन दिये और उसके गर्भ से अवतार लेकर बलि के यज्ञ में

गये। और स्वयं अ० १९ में तीन पाद भूमि माँगा है। फिर बलि ने और माँगने के लिये कहा है, तब भगवान् ब्राह्मण के धर्म संतोषादि का वर्णन किये हैं, तब बलि देने के लिये वचन दे चुका। उसके बाद उसके गुरु कहने लगे कि, ये देव के पक्षपाती विष्णु हैं, दो पग में ही सब लोक ले लेंगे, तीसरे पग के लिये क्या गति है। तुम्हें महादुःख होगा, नहीं दो। शोच विचार कर बलि ने कहा कि, झूठ से बड़ा कोई पाप नहीं है अतः सब दुःख का सहना स्वीकार है परन्तु न नहीं कह सकते हैं। इसके बाद गुरु शाप दिये, तो भी बलि ने दान दिया। और भगवान् दो पैर से सब संसार ले लिये, एक पैर से उसका देह लिये, सुतल लोक में प्रसन्नतापूर्वक भेज दिये। इन्द्र को स्वर्ग में स्थिर किये, इत्यादि।

विष्णु धर्मोत्तर पुराण खं० १ अ० ५५ में वामन अवतार की कथा है कि—नरसिंह भगवान् जब हिरण्यकशिपु को मार दिये, तब प्रह्लाद के पौत्र विरोचन के पुत्र बलि उग्र-तप करके सुरासुर से अजेयता का बर ब्रह्मा जी से पाकर, दैत्यों का राजा होने पर इन्द्र को पराजित करके स्वर्ग का राज्य करने लगा। तब इन्द्र कश्यप के शरण में गये, कश्यप इन्द्र सहित ब्रह्मा जी के शरण में गये ब्रह्मा के कहने से भगवान् विष्णु के शरण में गये, तब भगवान् ने कहा कि मैं देवरूप होकर बलि को ठगूँगा। फिर कश्यप द्वारा अदिति के वामनरूप पुत्र भगवान् हुए। उसके बाद बलि राजा पालिग्राम में अश्वमेध यज्ञ करने लगा। तब बृहस्पति जी अपने बाँयें काँधे पर रखकर उन्हें यज्ञ में ले गये। ब्रह्मपुराण की रीति से आप गये और भगवान् यज्ञ की स्तुति किये। धर्मात्मा बलि सुन्दर स्वरूप भगवान् को यज्ञस्थान में ले गया। वहाँ जाकर भगवान् ने तीन पाद भूमि माँगा फिर बलि ने गुरु के रोकने पर भी प्रदान किया, तब बढ़ कर तीनों लोक का गहण किये और दानवों को मार डाले, बलि को पाताल में रहने को हुकुम दिये, इत्यादि ॥१॥

(२)

हंसाऽवतार की कथा विष्णुधर्मोत्तर पुराण खण्ड २ अ० २२६ में है कि—कृतयुग (सत्ययुग) में प्रजा ज्ञाननिष्ठ थी, समर्थ प्रभुत्व युक्त थी। फिर कृतयुग के अन्त में परिग्रह में प्रवृत्त हुई, जिससे लोभ द्वेषादि की उत्पत्ति होने पर विवेक ज्ञान लुप्त हो गया। तिससे धर्म का नाश हुआ, धर्म का नाश होने से लोक भी नष्ट हुआ फिर नष्ट होता हुआ लोक को देखकर भगवान् हंस रूप होकर भूमि में विचरने लगे। और किसी देश में ऋषियों को भीं ज्ञान बिना मोहयुक्त चिन्तायुक्त देखकर, उसने कुशल पूछा। ऋषि लोग बोले कि, ज्ञानके बिना कुशल कैसे हो। हंस भगवान् बोले कि, मैं ज्ञान दूँगा। ऋषि लोक बोले कि, ज्ञान के नाश से सब संसार का नाश न हो जाय, इसलिये ज्ञान देकर सबकी रक्षा करें। और अपने स्वरूप का भी परिचय दें कि, आप कौन हैं। तब भगवान् अपना परिचय देकर ज्ञान दिया। फिर ऋषिलोक शिष्यों को ज्ञान दिये, इत्यादि ॥२॥



(रमैनी २७ के अन्तर्गत)

ब्रह्मा विष्णु का ईश्वरत्व के लिये विवाद और शिवलिङ्ग की प्रगटता की कथा अनेक प्रकार की है। भविष्य पुराण खं० १ अ० १५३ में कथा है कि—कल्प के आदि में सृष्टि पालन करते हुए ब्रह्मा विष्णु शिव तीनों को अभिमान हुआ कि, मैं ही महान् हूँ।

"विवादस्तु महानासीत्कजाम्बुनगौकसाम् ।
अहं कर्ता विकर्ताऽहं पालकोऽहं महाप्रभुः ॥"

कमलज (ब्रह्मा), अम्बु (जल) ओक (स्थान) वाला विष्णु, नग (पर्वत) स्थान वाला शिव को आपस में महान विवाद हुआ कि, मैं ही कर्ता आदि हूँ, इतने में मोह अज्ञान रूप तम का प्रवेश हुआ तब ब्रह्मा आदि व्याकुल हुए। फिर दर्प नष्ट होने पर, सूर्य स्वरूप ज्ञान प्रकाश प्रगट हुआ। उसका अन्त खोजने के लिये ब्रह्मा ऊपर गये, शिव नीचे गये, विष्णु चारो तरफ गये। पता नहीं लगने पर उस तेजःस्वरूप को प्रणाम करके स्तुति करने लगे। इत्यादि ॥ १ ॥

लिङ्गपुराण अ० १७ में ब्रह्मा जी का कथन है कि,

"हिरण्यगर्भो रजसा तमसा शंकरः स्वयम् ।
सत्त्वेन सर्वगो विष्णुः सर्वात्मत्वे महेश्वरः ॥"

और ब्रह्मा जी ने कहा है कि, इस कमलेक्षण विष्णु को सोया हुआ देख कर हाथ से मार कर मैंने पूछा कि, तुम कौन हो, तब जाग कर मुझे देखकर विष्णु बोले कि, वत्स पितामह, तेरा स्वागत है, तब मैंने कहा कि, जगत् कर्ता मुझको तुम पुत्र शिष्य के समान वत्स क्यों कहते हो ! तब विष्णु बोले कि, मैं जगत् के कर्ता धर्ता हूँ, तुम मेरे अंग से उत्पन्न हुए हो, परन्तु मुझे भूल गये हो, इत्यादि इसके बाद दोनों का युद्ध होने लगा, तब दोनों के सामने प्रकाशमय लिङ्ग प्रकट हुआ, उसके तेज से विष्णु मोहित हो गये और हमसे बोले कि, इसकी परीक्षा करें, मैं नीचे जाता हूँ, आप ऊपर जावो। वराह हंस रूप से ऐसा ही किया गया। नहीं पता लगाने से चिन्ताग्रस्त दोनों को समझाने के लिये, ओंकार और वेद प्रगट हुए, कि जिससे विष्णु और ब्रह्मा परमेश्वर को समझ सके। और स्तुति करने लगे, इत्यादि ॥

अ० १९ में है कि, शिव जी प्रसन्न और प्रगट होकर बोले हैं कि,

"त्रिधा भिन्नो ह्यहं विष्णो ब्रह्मविष्णुभवाख्यया ।
सर्गरक्षालयगुणैर्निष्कलः परमेश्वरः ॥" इत्यादि

अ० २० में ब्रह्मकल्प की कथा है कि—भगवान् विष्णु शेष पर सोये थे वहाँ दैव योग से ब्रह्मा आये और विष्णु से बोले कि, इस समुद्र में सोने वाला आप कौन हो। विष्णु अपने को जगत्-कर्ता बता कर, ब्रह्मा से पूछे कि-आप कौन हो। ब्रह्मा बोले कि, जैसे आप कर्ता हो वैसे ही मैं भी कर्ता हूँ। मेरे अन्दर सब संसार है देखो। फिर विष्णु ब्रह्मा के मुख द्वारा पैठकर, सब जगत् को देख कर बाहर निकल आये। और ब्रह्मा को अपने मुख में पैठने के लिये कहे। जब ब्रह्मा विष्णु के मुख द्वारा पैठे, तब विष्णु सब द्वारों को बन्द करके सो गये। फिर ब्रह्मा सूक्ष्मरूप होकर, विष्णु के नाभि कमल नाल से निकले। फिर दोनों को विवाद होने लगा। तब शिवजी आये, इत्यादि।

कूर्म पुराण अ० २५-२६ में कथा है कि—उपमन्यु के बताने से कृष्ण भगवान् पुत्र के लिये शिव जी की उपासना-तप किये; फिर प्रगट होकर शिव पार्वती वर दिये। उसके

बाद भगवान् कृष्ण शिव जी के साथ कैलास गये, और वहाँ कुछ दिन ठहरे; फिर नारद जी के द्वारा पता लगने पर गरुड़ जी द्वारिका में लाये। तब भगवान् के दर्शन के लिये ऋषि लोक आये। वहाँ शिवलिङ्ग की पूजा करते हुए कृष्ण जी को देख कर, मार्कण्डेय ऋषि ने उसने पूछा कि, लिङ्ग क्या है? तब भगवान् ने कहा कि, पहले एकार्णव काल में मैं महाविष्णुरूप से सोया था, इतने में चतुर्मुख ब्रह्मा को भी देखा, दोनों में ईश्वरता के विषय में विवाद होने पर एक लिङ्ग प्रगट हुआ और आकाश वाणी हुई कि, विष्णु नीचे जायँ, ब्रह्मा ऊपर जायँ। जो इसका पता लगा लेगा सो ईश्वर होगा, वैसा ही करने पर दोनों को पता नहीं लगा। फिर शिव जी अपने जटिल वेष से प्रगट हुए और पालन सृष्टि के लिये आशीर्वाद दिये। स्वयं ब्रह्मा जी का पुत्र होने के लिये वर दिये, इत्यादि ॥

शिवपुराण सं० १ अ० ६ इत्यादि में भी ब्रह्मा विष्णु का विवाद युद्ध का वर्णन है। भयानक युद्ध से घबड़ा कर देव सब शिवजी के शरण में गये हैं। तब शिव जी ने गणेशादि को युद्धस्थान में भेजा; परन्तु ये लोक कुछ कर नहीं सके। इन तीनों के अस्त्र से अग्नि उत्पन्न हुई, तब उस अग्नि को भी दबानेवाला ज्योतिर्मय शिव दोनों के मध्य प्रगट हुए। उसे देख कर दोनों विचार किये कि, इसके आदि अन्त को समझना चाहिये, इत्यादि। अन्त नहीं पाने पर सत्य बोलने से विष्णु पूज्य हुए। और झूठ बोलने से ब्रह्मा अपूज्य हो गये, इत्यादि। उसके बाद सकुटुम्ब लिङ्गरूप शिव की पूजा ब्रह्मा विष्णु किये। प्रसन्न होकर शिवजी ने उस दिन का शिवरात्रि नाम धरा और अपने को व्यापक ब्रह्म आत्मा रूप उन दोनों को समझाया, तथा ओंकार का उपदेश दोनों को दिया। वायुपुराण में भी अ० ५५ में लिङ्गरूपता की कथा है। और अ० २४ में भी अन्य रूप से यह कथा है ॥१॥

(२)

पार्वती जी से शिवजी मोहित हुए सो बात स्कन्ध पुराण खण्ड ३।२ अ० २० में है कि—

"कीलितो देवदेवेशः शंकरश्च त्रिलोचनः।
गिरिजया महाभाग पातितो भूमिमण्डले ॥" इत्यादि ॥

देवी भागवत स्कन्ध ४ अ० १९ में विष्णु भगवान् स्वयं ब्रह्मा जी से मायाजन्य अपने मोह का वर्णन किये हैं कि—

"वयं मायाऽऽवृताः कामं न स्मरामो जगद्गुरुम्।
परमं पुरुषं शान्तं सच्चिदानन्दमव्ययम् ॥
अहं विष्णुरहं ब्रह्मा शिवोऽहमिति मोहिताः।
न जानीमो वयं धातः परं वस्तुसनातनम् ॥
परतन्त्रोऽस्म्यहं नूनं पद्मयोने निशामय।
तथा त्वमपि रुद्रश्च सर्वे चान्ये सुरोत्तमाः॥
मायया मोहिता मन्दाः प्रवदन्ति मनीषिणः।
करोति स्वेच्छया विष्णुरवताराननेकशः ॥

मन्दोऽपि दुःखगहने गर्भवासेऽतिसंकटे ।
न करोति मतिं विद्वान् कथं कुर्यात् स चक्रभृत् ॥" (स्क० ५।१।४७)

स्क० ५।१५।६ में माया की उक्ति है कि—

"नाहं पतिंवरा नारी वर्तते मे पतिः प्रभुः ।
सर्वकर्ता सर्वसाक्षी ह्यकर्ता निःस्पृहः स्थिरः ॥
निर्गुणो निर्ममोऽनन्तो निरालम्बो निराश्रयः ।
सर्वज्ञः सर्वगः साक्षी पूर्णः पूर्णाशयः शिवः ॥"

और स्क० ५ अ० ३३ में ब्रह्मा आदि में माया की अधिनता का और लिङ्गप्रादुर्भावादि का वर्णन है। इससे कहा गया है कि—'तीन लोक मोहिन सब झारी' ॥ २ ॥

(रमैनी ४५ के अन्तर्गत)

विष्णुधर्मोत्तर पु० खं० १ अ० ५३। हिरण्याक्ष के बध की कथा है। लिंग पु० अ० ९४ में भी अन्यरूप से है। और पद्मपु० उत्तरखं० अ०२४७ में भी यह कथा है। तथा म० भा० शां० अ० २०९ में कुछ भेदयुक्त है कि—अदिति और दिति दोनों कश्यपजी की स्त्री थीं। अदिति ने इन्द्रादि देवों को उत्पन्न किया और दिति ने हिरण्याक्ष हिरण्यकशिपु दो भयंकर पुत्र को पैदा किया। फिर ब्रह्माजी ने देवों के राजा इन्द्र को बनाया और दानवों के राजा हिरण्याक्ष को बनाया। इन्द्र को स्वर्ग दिया और हिरण्याक्ष को पाताल दिया। बाद में पक्ष रहने के कारण पर्वत सब पृथिवी को छोड़कर आकाश में ही भावी वश उड़ने लगे कि जिससे भूमि हिलने लगी और पाताल जल से भरगया। फिर हिरण्याक्ष युद्ध करके स्वर्ग को दखल किया। तब देव सब विष्णु भगवान् के शरण में गये। देवासुर से अजेयता का वर हिरण्याक्ष को मिला था। इससे भगवान् को वराह रूप होकर दैत्यसभा में जाना पड़ा और वहाँ जाकर सब दैत्यों को चक्र से मारना पड़ा, जिससे हिरण्याक्ष का मरण हुआ ॥

और श्रीमद्भागवत स्कन्ध ३ अ० १२ आदि में कथा है कि—ब्रह्मा जी मनु को उत्पन्न करके सृष्टि करने के लिये आज्ञा दिये तो आज्ञा को स्वीकार करके भी मनु ने कहा कि, सब प्राणी का आधार पृथिवी महाजल में डूबी है, इसे ऊपर करने के लिये यत्न किया जाय तो सृष्टि हो सकती है। इस बात को सुन कर और भूमि को जल में निमग्न देखकर ब्रह्मा जी शोचने लगे कि, क्या करना चाहिये और ध्यान किये कि जिसके हृदय से मैं हुआ हूँ, वह ईश्वर इस कार्य को सिद्धकरे। इस प्रकार ध्यान करते हुए ब्रह्मा जी के नासिका से अंगुष्ठाग्र मात्र का एक बराह निकला और वह उनके देखते २ में हस्ती के समान हो गया। ब्रह्मा और सब ऋषि आश्चर्ययुक्त हुए कि यह क्या है? फिर भगवान् को समझ कर सब स्तुति किये, और भगवान् जल में पैठे। वहाँ से पृथिवी को लाते समय हिरण्याक्ष गदा से युद्ध के लिये तैयार हुआ तो उसको मार डारे, इत्यादि ॥

लिंगपु० अ० ९४ में कथा है कि—अंधकासुर के पिता हिरण्याक्ष ने देवताओं को जीत कर इस पृथिवी को रसातल में जाकर इसे बन्दी किया था, तब उस दैत्य से पीड़ित ब्रह्मादि देव भगवान् विष्णु के पास जाकर समाचार सुनाये। तब भगवान् दैत्यों के सहित हिरण्याक्ष को मार कर वराह रूप से भूमि लाये, इत्यादि ॥

रावण को श्रीरामचन्द्र मारे सो अति प्रसिद्ध कथा है। कंस को श्री कृष्ण जी ने मारा है ॥ १ ॥

रमैनी ४७ के अन्तर्गत

जरासन्ध की कथा महाभारत सभापर्व अ० १७ आदि में है कि-राजा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ का विचार होता था, उसमें जरासन्ध से विरोध का भय था; उसके नाश से ही निर्विघ्न यज्ञ हो सकता था। इसी प्रसङ्ग में भगवान् कृष्ण से युधिष्ठिर प्रश्न किये, कि जरासंध कैसा और कौन है। भगवान् बोले कि, बृहद्रथ बड़ा प्रतापी राजा थे, काशीराज की दो लड़की के साथ विवाह किये और दोनों में तुल्य बर्ताव का नियम किये, परन्तु बहुत यज्ञादि करने पर भी पुत्र नहीं हुआ। एक दिन कान्तिवान् गौतम के पुत्र चण्डकौशिक मुनि वहाँ आये। पत्निसहित राजा सेवा करके मुनि को प्रसन्न किया। मुनि राजा से वर माँगने के लिये कहे, तब राजा पुत्र बिना दुःख बताया। राजा की बात सुन कर मुनि आम के वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ हुए। फिर उनके गोद में एक रस से पुष्ट आम गिरा, उस आम को अभिमन्त्रित करके मुनि राजा को आम दिये और कहे कि, तेरा मनोरथ सिद्ध होगा। राजा दोनों रानी के लिये आम दिया, फिर काट कर दोनों आधा २ आम खाई, गर्भवती हुई, फिर एक २ आँख नाक हाथ पैर वाला दोनों के पुत्र दो खण्ड रूप सप्राण हुए। दोनों रानी देख कर भयभीत हुई। और दासी द्वारा राजभवन से बाहर दोनों खण्ड को वस्त्र से ढाँक कर, धरवा दिया। उसी समय जरा नामक राक्षसी मांस की इच्छा से आई और दोनों खण्डों को जोड़ दिया, तब जुट कर लड़का बन गया, और रोने लगा, फिर लोक पहुँचे। और जरा भी राजा के प्रति लड़का का समर्पण किया, इसी से वह जरासन्ध कहाता है और प्रतापी हुआ है और माता-पिता के मरने पर सब राजाओं को पराजित किया है, इत्यादि ॥

परस्पर विचार करके, भीम अर्जुन को साथ लेकर भगवान् जरासन्ध के नगर के पास गये। फिर संन्यासी का रूप धर के तीनों राजा के पास पहुँचे, राजा देख कर सत्कार किया, फिर रहने के लिये जगह देकर, अर्द्ध रात्रि में इन लोकों के पास पहुँचा। और स्वरूप देख कर कहा कि, आप सब कौन हैं, किस प्रयोजन से आये हैं, संन्यासी तो नहीं मालूम होते हैं, इत्यादि। वे दोनों भाई तो मौन ही रहे, परन्तु भगवान् बहुत कुछ कह सुन कर परिचय दिये और अपना प्रयोजन युद्ध बताये। राजनीति के अनुसार राजा द्वन्द्व युद्ध को स्वीकार किया। कार्तिक के परिवा से त्रयोदशी तक बराबर युद्ध हुआ। चतुर्दशी को राजा कुछ श्रान्त हुआ, फिर भगवान् के समझाने से, जरासन्ध के देह को जोड़ा हुआ जान कर एक २ हाथ से एक २ पैर को धर कर भीम ने बीच से फाड़ डाला। फिर बन्धे हुए सब राजाओं को भगवान् छोड़ाये और राजा युधिष्ठिर के यज्ञ में सहायता करने के लिये कह कर राजपुत्र को गद्दी देकर चले आये, इत्यादि ॥१॥

सभापर्व मेंही अ० ३६ से अ० ४५ तक[1] शिशुपाल वध की कथा है कि—राजा युधिष्ठिर के यज्ञ में सब राजा निमन्त्रित हुए और आये, भगवान् कृष्ण भी आये। बाद में विचार हुआ कि आये हुए सभी का अर्घादि द्वारा सत्कार होना चाहिये; क्योंकि आचार्य ऋत्विक् सम्बन्धी स्नातकादि जो एक वर्ष पर अपने घर आते हैं, उन्हें अर्घ दिया जाता है। इस कारण से इन एक २ राजाओं के लिये अर्घ लाना चाहिये। इस प्रकार भीष्म जी के कहने पर युधिष्ठिर बोले कि, हे पितामह! प्रधान अर्घ आप किसके लिये फरमाते हैं। भीष्म जी बोले कि, हरएक प्रकार से भगवान् कृष्ण प्रधान हैं, इनके लिये मुख्य अर्घ चाहिये। फिर सहदेव ने भगवान् के लिए उत्तम अर्घ लाए भगवान्, कृष्ण भी अर्घ पूजा को स्वीकार किये। परन्तु शिशुपाल उस पूजा को नहीं सह सका इससे भीष्म तथा युधिष्ठिर को डाँट फटकार कर भगवान् कृष्ण को भी फटकारा, कि कृष्ण न वृद्ध हैं, न आचार्य हैं, न ऋत्विगादि हैं। वृद्ध उनके पिता, द्रोणाचार्यादि के रहते, कृष्ण की पूजा उचित नहीं है, इससे आज्ञा देनेवाला भीष्म अनुचित किया है और युधिष्ठिर भी अनुचित किया है तथा कृष्ण भी अनुचित किया है कि, इतने वृद्ध आचार्य गुरु राजा आदि के रहते, स्वयं उत्तम पूजा का स्वीकार किया है, इत्यादि। इससे इन सब राजाओं का अपमान हुआ है। ऐसा करना था तो सबको क्यों बोलाये, इत्यादि कह कर शिशुपाल उठकर चला। तब युधिष्ठिर उसके पीछे दौड़े, शान्ति से बोले कि, भीष्म धर्मज्ञ हैं, आप व्यर्थ कटुभाषणादि नहीं करें। सब राजा भगवान् की पूजा को स्वीकार करके बैठे हैं। आप भी क्षमा करें, इत्यादि। भीष्म जी बोले कि, इसके आगे नम्रता सान्त्वना की जरूरत नहीं है, कि जो कृष्ण की पूजा को नहीं सह सकता। क्षत्रियों में वही पूज्य होता है कि, जो विजयी हो। भगवान् कृष्ण विजयी ज्ञानी आदि सब कुछ हैं। इससे सर्व पूज्य हैं, इत्यादि। सहदेव बोले कि, महापराक्रमी कृष्णजी की पूजा को जो नहीं सह सकते, उन बलियों के मस्तकों पर मैं पैर धरता हूँ और वे ही वध्य होंगे, इत्यादि। फिर कोई नहीं बोला। और साधु साधु आकाशवाणी हुई, इत्यादि। फिर सहदेव ने सब पूज्यों को पूजा। बाद में कुछ लोक शिशुपाल के पक्षपाती होकर, यज्ञ में विघ्न करने का विचार करने लगे। क्षुब्ध राजाओं को देख कर युधिष्ठिर ने भीष्म जी से पूछा कि, यज्ञ का अविघ्न और प्रजा के हित के लिये उपाय बताइये। भीष्म जी बोले कि, भय नहीं करो अभय मार्ग का स्वीकार हम लोकों ने पहले ही किया है। भगवान् शिशुपाल के तेज को हरना चाहते हैं और सर्व समर्थ हैं इत्यादि। इस बात को सुन कर, फिर भी शिशुपाल ने भीष्मादि का बहुत अपमान किया, निन्दा किया। तब उसके क्रूर रूक्ष वचनों को सुनकर क्रुद्ध भीम युद्ध के लिये उठना चाहते थे, तब भीष्म जी ने पकड़ लिया और भीम के प्रति बोले कि, जब चेदिराजकुल में यह जन्म लिया था, तब चार भुजा तीन नेत्र वाला था और जन्मते ही गदहा के शब्द के तुल्य शब्द किया था, चिल्लाया था, जिससे बन्धु सहित इसके माता पिता भयभीत होकर इसे त्यागने का विचार करने लगे और सब चिन्तायुक्त हुए, तब आकाशवाणी हुई कि, हे राजन्! इसका पालन करो, इससे डरो नहीं, यह बड़ा बलि

---

१ विष्णु पु० अंश ४।१४। में है कि, वसुदेव जी के पृथा श्रुतदेवा श्रुतकीर्ति श्रुतश्रवा राजाऽधिदेवी नाम की बहिनें थीं, उनमें श्रुतश्रवा का चेदिराज दमघोष से विवाह हुआ, जिससे शिशुपाल का जन्म हुआ, जो पहले हिरण्यकशिपु और रावण हो चुका था।

होगा, अभी इसकी मृत्यु का समय नहीं है, परन्तु शस्त्र से इसे मारनेवाला जन्म ले चुका है। इस बाते को सुनकर पुत्रस्नेहयुक्त इसकी माता बोली कि, जो देव वा ईश्वर, इस अव्यक्त वाणी को मेरे पुत्र के विषय में कहा है, उससे मैं कर जोर कर पूछती हूँ कि, इसका मृत्यु कौन है, यथार्थ रूप से यह भी बता दो। मैं सुनना चाहती हूँ। तब फिर आकाशवाणी हुई कि, जिसके गोद में जाने से इसके दो भुजा भूमि में गिर जायंगे और ललाट का नेत्र लुप्त होगा, सोई इसके मृत्युरूप होगा। इन सब समाचारों को सुन कर, सब राजा आये, गोद में लिये तो कुछ नहीं हुआ, फिर द्वारका से कृष्ण राम आये, तब कृष्ण भगवान् के गोद में रखते ही दो बाहु गिर गये, एक नेत्र लुप्त हो गया। फिर इसकी माता भयभीत होकर, भगवान् से वर माँगी कि, मेरा पुत्र के अपराध को क्षमा करना। भगवान् ने सौ अपराध क्षमा का वर दिया, इत्यादि ॥

इस बात को सुनकर शिशुपाल बोला कि, हे भीष्म! यदि तुम्हें बन्दी की तरह स्तुति ही करना है, तो कृष्ण की स्तुति को छोड़कर इन बड़े २ राजाओं की स्तुति करो, या द्रोणादि की स्तुति करो, इत्यादि। तब भीष्म जी बोले कि, इन राजाओं की इच्छा से मैं जीता हूँ, परन्तु इन्हें मै तृणतुल्य नहीं समझता हूँ। इस बात को सुनकर राजा सब क्रुद्ध हुए, कुछ वादविवाद हुआ, तब भीष्म बोले कि, जिनकी हम लोगों ने पूजा की है, सो कृष्ण वर्तमान हैं, जिन्हें शीघ्र मरना है, सो कृष्ण को ही युद्ध के लिये पुकारे, इत्यादि। इस बात को सुनकर शिशुपाल युद्ध की इच्छा से भगवान् से बोला कि, हे कृष्ण! तुम्हें युद्ध की इच्छा से पुकारता हूँ, पाण्डवों के सहित तेरा नाश करूँगा। क्योंकि अपूज्य को इन्होंने पूजा है, इत्यादि। फिर भगवान् राजा सबसे कहे कि, यह मेरा अतिशय शत्रु है, इत्यादि। और इसके बहुत अपराध सहे हैं, अब नहीं सह सकते। फिर भगवान् का वचन सुनकर राजा सब उसकी निन्दा करने लगे, और शिशुपाल हँसने लगा, कुछ कुशब्द बोलने लगा, फिर भगवान् ने चक्र का स्मरण किया और इसका सौ अपराध क्षमा किया, अब नहीं कर सकते, ऐसा राजाओं से कहकर शिर काट लिया, फिर यज्ञ कराया, इत्यादि ॥ २ ॥

सहसा—अर्जुन की कथा हरिवंश ग्रन्थ १।३३ में कथा है कि—कृतवीर्य नामका राजा के कार्तवीर्य अर्जुन नाम वाला पुत्र हुआ। वह दस हजार वर्ष अत्रिजी के पुत्र दत्त मुनि की आराधना और परम दुष्कर तप किया। तब दत्त जी उसको चार वर दिये। पहला युद्धादि के समय हजार बाहु होना। दूसरा अधर्ममेंप्रवृत्त होने पर, महात्माओं के द्वारा निवारण होना। तीसरा उग्र युद्ध से भूमि को जीत कर, अपने धर्म से सबका अनुरञ्जन करना। और चौथा संग्राम में बहुत शत्रुओं को मारने पर किसी महान पुरुष से वध होना वह अर्जुन ८५ हजार वर्ष तक चक्रवर्ती राजा हुआ। पाँच ही वाण में बल (फौज) सहित रावण को मुग्ध करके बाँध लिया, फिर पुलस्त्यजी के कहने से छोड़ दिया। और चित्रभानु (अग्नि) देव की याचना से उनकी तृषा भूख की निवृत्ति के लिये; वह सब राज्य अग्निदेव को दे दिया, फिर अग्निदेव सब जगत् को जलाता हुआ वरुण के आपव वसिष्ठ नामक पुत्र के आश्रम को जला दिया। इससे उनके शाप से परशुराम जी द्वारा मारा गया, इत्यादि ॥

स्कन्ध पु० खण्ड ६ अ० ६६ में कथा है कि—ऋचीक ऋषि के पुत्र यमदग्नि थे। उनके छोटा पुत्र परशुरामजी थे। एक दिन परशुराम जी सब भाई कन्द मूल के लिये

जंगल में ले गये थे। इतने में सहस्रार्जुन राजा ऋषि के आश्रम में आया, ऋषि को प्रणाम किया, परस्पर कुशल प्रश्नादि होने पर, राजा जाने के लिये आज्ञा माँगा। मुनि ने कहा कि देवार्चन के समय आप अतिथि आये हो, जो कुछ मैं देता हूँ सो आप अपने हाथ से भोजन करो। राजा ने कहा कि, मेरे साथ में सेना है। ऋषि ने कहा कि, मैं सबको भोजन दूँगा। तब परशुराम जी भगवान् की उपासना से जो गौ पाये थे उस कामधेनु के बल से ऋषि ने सबको भोजन कराया।

पद्मपुराण उत्तरखण्ड अ० २४१ में कथा है कि—ऋषि ही इन्द्र की उपासना से कामधेनु गौ और राम पुत्र पाये थे। फिर कामधेनु की महिमा को देख कर, राजा को उसे लेने की इच्छा हुई। ऋषि से माँगने लगा, बेचने को कहा, तब ऋषी स्वीकार नहीं किये। फिर ऋषि को मार डाला और उनकी स्त्री को भी २७ बार मारा और गौ को ले चला, परन्तु गौ नहीं जा सकी, इससे छोड़ गया। बाद में परशुराम जी आये और सब समाचार सुन कर और माता के ऊपर २७ प्रहार देखकर २७ बार निःक्षत्रिय करने का प्रण किया तथा सहस्रार्जुन से युद्ध करके उसका नाश किया।

महाभारत शान्ति प० अ० ४६ में, और स्कन्द पु० खण्ड ६।६५ में कथा है कि—भृगुऋषि के पुत्र ऋचीक बड़े यशस्वी तपस्वी थे, सो कभी तीर्थयात्रा के प्रसंग से गाधिराजा के स्थान भोजकट गये और वहाँ राजा की कन्या को देख कर राजा से कहा कि, यह कन्या मुझे दो, राजा शाप के भय से और उनकी दशा देखकर भी कहा कि, सात सौ श्याम कर्ण घोड़ा जो देगा, उसे यह कन्या दी जायगी, ऐसा नियम है। यह सुनकर वह ऋषि कानकुब्ज देश में गंगा किनारे जाकर जप करने लगे, उसी से सात सौ घोड़े की प्राप्ति हुई, वह लेकर राजा को दिया, फिर राजा कन्या दे दिया। फिर विवाह के बाद काम रहित वह मुनि अपनी स्त्री के पास में जाकर कहा कि मैं तो तप के लिये जाऊँगा, तुम्हारी क्या इच्छा है सो कहो। फिर वह अपनी माता से सलाह लेकर, अपने लिय और अपनी माता के लिये पुत्र माँगा तब ऋषि अपनी स्त्री के लिये ब्राह्म तेजमय चरु (हविः) विशेष तैयार किये और शाशु के लिये क्षात्र तेजमय चरु बनाये। और अपनी स्त्री के हाथ में दोनों चरु समझा कर दिये; परन्तु जब वह अपनी माता के पास दोनों चरु ले गई, तब उसकी माता ने समझा कि, ऋषी अपनी स्त्री के लिये कुछ अच्छा ही चरु बनाया होगा, इससे अपनी पुत्री का चरु आप खा गई और अपना चरु अपनी पुत्री को दिया, फिर गर्भ होने पर ऋषि अपनी स्त्री के देह में क्षात्र तेज को देखकर, समझ गये कि, यह चरु हेरफेर किया है, तब बोले कि, तुम्हारा पुत्र बहुत क्रूर होगा, सो सुन कर उसने बहुत प्रार्थना किया कि, आप ऐसे महापुरुष का पुत्र क्रूर नहीं होना चाहिये, तब ऋषि बोले कि, पुत्र नहीं तो पौत्र अवश्य क्रूर होगा इससे यमदग्नि शान्त हुए और उनके पुत्र परशुराम क्रूर हुए, इससे क्षत्रियों का नाश किया। और ब्राह्म तेज से उत्पन्न विश्वामित्र प्रथम शान्त हुए; परन्तु शिकार आदि राजधर्म में प्रवृत्त होने से पीछे बहुत क्रूर हो गये और वसिष्ठ जी की कामधेनु के लिये बहुत उपद्रव किये फिर तपस्वी हुए, इत्यादि।

और पद्मपुराण उत्तर खण्ड अ० २४२ में कथा आई है कि—इक्ष्वाकुवंश के क्षत्रियों को परशुराम जी नहीं मारते थे; क्योंकि ये उनके मातामह कुल के थे; परन्तु रामचन्द्र जी के बल प्रताप को सुनकर युद्ध के लिये आये थे, इत्यादि ॥ ३ ॥

(४)

रावण के बीतने की कथा देवी भागवत स्क० ६।१५। और ब्रह्मवैवर्त पु० प्रकृति खण्ड अ० १३ में है कि—भगवान से नारद जी ने पूछा कि, तुलसी नारायण की प्रिया कैसे हुई, इत्यादि। तब नारायण भगवान् ने उत्तर दिया कि, दक्ष सावर्णि मनु के वंश में वृषध्वज राजा हुए, सो केवल शिवपरायण हुए, शिव जी का भी उसमें बहुत स्नेह हुआ; परन्तु वह राजा अन्य देव की पूजा को छोड़ दिया, इससे सूर्य शाप दे दिये कि, तुम श्रीरहित होवो, तब शिव जी सूर्य को मारने के लिए त्रिशूल लेकर दौड़े, सूर्य भागे, ब्रह्माजी के यहाँ गए, ब्रह्मा भी भागे, फिर दोनों विष्णु भगवान् के यहाँ गए, शिवजी भी वहाँ पहुँचे; परन्तु भगवान् की महिमा से शान्त हुए। भगवान् के पूछने पर शिवजी बोले कि, सूर्य मेरे भक्त को शाप दिए हैं, उसकी क्या गति होगी। भगवान् बोले कि, वैकुण्ठ की आधि घड़ी में दैव युग से इक्कीश युग बीत गए, वृषध्वज और उसके पुत्र भी मर गए। उसके पौत्र धर्मध्वज कुशध्वज हैं, अभी भक्ति तप परायण हैं। (अ० १६-१४) वे दोनों लक्ष्मी की आराधना से धनी हुए, कुशध्वज की स्त्री मालावती की पुत्री वेदवती हुई, वह भगवान् की प्राप्ति के लिए तप करती थी, वहाँ ही रावण पहुँचा और अत्याचार करना चाहा, तब उसने शाप दिया कि, मेरे ही निमित्त से तेरा नाश होगा और अपना शरीर छोड़ दिया, वही सीता हुई। रामजी के वनवास होने पर, अग्निदेव ने रामजी से कहा कि, यह सीताहरण का समय आया है, इस सीता को मेरे यहाँ न्यास (धरोहर) रखो और छाया सीता को अपने पास रखो, ऐसा ही किया गया। रावण छाया सीता को हरा, जिससे उसका नाश हुआ। अग्निपरीक्षा के समय सच्ची सीता फिर रामजी के पास में आई और छाया सीता तप करने गई, फिर वही द्रौपदी हुई।

अ० १७-१५ में है कि-धर्मध्वज की माधवी नामक स्त्री से तुलसी नामक पुत्री हुई, वह भी तपस्विनी हुई॥ अ० १८-१६ इत्यादि में है कि, उस तुलसी का शंखचूड़ नामक दानवेन्द्र से विवाह हुआ। वह दानवेन्द्र सब देव को युद्ध में पराजित किया, तब देव सब विष्णु भगवान् के शरण में गये, भगवान् ने विश्वास दिलाया और कहा कि, मैं युक्ति से उसका नाश करूँगा उसके पास में एक कवच है, उसके रहते उसका नाश नहीं हो सकता, तथा उसकी स्त्री पतिव्रता है, उसके पतिव्रत नष्ट होने विना भी उसका नाश नहीं हो सकता; ऐसा कह कर शिवजी को उसके साथ लड़ने के लिए आज्ञा दिए और सबको भी आज्ञा दिए। बहुत युद्ध हुआ; परन्तु वह नहीं मरा, तब भगवान ब्राह्मण रूप होकर उसके कवच माँग लाए, और शंखचूड़ का रूप बना कर वह कवच पहन कर तुलसी के पास गए, उससे युद्ध में अपना विजय बता कर उसका धर्म को नष्ट किए। तब शंखचूड़ मारा गया, उसकी हड्डी से शंख पैदा हुआ। रतिविलास से प्रथम तुलसी ने भगवान् से पूछा कि, युद्ध में कैसे बिजय पाए? तब भगवान् बोले कि, सब दानव तो मारे गए, परन्तु ब्रह्मा जी अन्त में मेल करा दिए। फिर रतिविलास के समय तुलसी समझ गई कि, यह मेरा पति नहीं है, इससे शाप देने के लिये तैयार हुई, तब शाप के भय से भगवान् अपना स्वरूप प्रगट किये, तो भी शोकवश शाप दिया कि, तुम्हारा हृदय पत्थर के समान है, दूसरे के दुःख को नहीं समझते हो, इससे तुम [1]पत्थर होवो, फिर भगवान् उसे समझाये कि, तेरा यह देह पवित्र

१ यही शालिग्राम हुए। जिसका जिकिर रमैनी ७५ में आया है।

गण्डकी नदी होगी, और केश पवित्र पुष्प तुलसी होंगे, इत्यादि। तुलसी शंखचूड़ की कथा शिव पु० संहिता २ खं० ५ अ० २७ से ४१ तक में है, सो शिव माहात्म्य विशेष रूप है। तुलसी को शिवजी ने जाकर समझाया है, इत्यादि॥ यहाँ तुलसी की कथा प्रसङ्ग से हैं। रावण के बीतने में वेदवती सीता ही कारण है॥ और यद्यपि पूर्व रीति से सीता ही द्रौपदी हुई थी, परन्तु स्कन्द पुराण खं० ४ पूर्वार्ध अ० ४६ में लिखा है कि,

'उमापि च जगद्धात्री द्रुपदस्य महीभुजः।
यजतो वह्निकुण्डाच्च प्रादुश्चक्रेऽतिसुन्दरी॥
पञ्चापि पाण्डुतनयाः साक्षाद्रुद्रवपुर्धराः।
अवतेरुरिह स्वर्गाद् दुष्टसंहारकारकाः॥'

अर्थात् द्रौपदी उमारूप थी और युधिष्ठिरादि रुद्ररूप थे, तथा विष्णुरूप कृष्ण इनके सहायक थे। शत्रु से दुःख प्राप्त होने पर जंगल में द्रौपदी ने सूर्य की आराधना किया, तब सूर्य भगवान बटुली, करछी, ढापना दिये और कहे कि, जितने को भोजन कराना चाहोगी, उतने को इससे भोजन करा सकोगी। परन्तु जब तुम भोजन कर लेगी, तब यह बटुली खाली हो जायगी, इत्यादि। और बनपर्व के आरम्भ में महाभारत की कथा है कि, युधिष्ठिर जब वन में चले हैं, तब बहुत ब्राह्मण भी साथ लगे। फिर धौम्य ऋषि से युधिष्ठिर ने पूछा कि, इनकी रक्षा के लिये क्या करें, पास में धन तो है नहीं; तब ऋषि सूर्यदेव की उपासना बताये कि, इसी से रक्षा साधन की प्राप्ति होगी। फिर युधिष्ठिर के उपासना स्तुति करने पर सूर्य प्रगट हुए और ताँबे की बटुली दिये और कहे कि, जब तक द्रौपदी नहीं खायेगी तबतक इसका अन्न अक्षय होगा, बारहवें वर्ष में तुम्हें राज्य मिलेगा, इत्यादि कहकर लुप्त हो गये॥ ४॥

(५)

महाभारत आदि पर्व अ० १८ में कथा है कि—पाण्डु राजा महाबन में विचरते समय मैथुन युक्त मृगयूथप को देखकर पाँच बाण से मृग और मृगी को मारा, परन्तु उस मृगरूप में किंदम नामक मुनि थे, इससे मनुष्य की वाणी द्वारा बहुत बात करके राजा को शाप दिये कि, मैथुन रूप अनुचित काल में मुझे मारे हो, इससे तुम भी कामासक्त होते ही मरोगे। इस बात को सुनकर राजा बहुत पश्चात्ताप किया और भूषणादि उतार कर संन्यासी होने का विचार करने लगा। तब कुन्ती उसकी स्त्री बोली कि, यदि आप त्यागोगे, तो मैं भी अभी प्राण त्याग करूँगी। और आप अन्य आश्रम में भी रह कर तप कर सकते हैं, कि जिसमें हम सब भी रह सकते हैं, तब पांडु मान गये और उत्तरखण्ड में जाकर बहुत काल तक तप किये। फिर यह विचार हुआ कि पुत्र बिना सुगति नहीं होती है, किसी प्रकार पुत्र होना चाहिये। फिर अपने मन की बात कुन्ती से सुनाये, तब बहुत कुछ कह सुन कर कुन्ती बोली कि, मैं बचपन में दुर्वासा ऋषि की सेवा से मन्त्र प्राप्त किया है, कि जिससे आह्वान करने पर जिस देव को चाहें सो देव आ सकते हैं। आप जिस देव को कहें उस देव का आह्वान करें फिर राजा क्रम से धर्म, वायु, इन्द्रदेव का आह्वान के लिये कहा कि, जिससे युधिष्ठिर भीम अर्जुन हुए। बाद में दूसरी स्त्री माद्रि के

कहने से राजा ने कुन्ती को मन्त्र बताने को कहा, फिर माद्री मन्त्र पाकर अश्विनी कुमार का आह्वान किया कि, जिससे नकुल सहदेव हुए। ये ही पांडुपुत्र पाण्डव कहाये, इन्हीं के पूर्वोक्त प्रभावादि के आशय से कहा गया है कि,

'दुर्योधन अभिमान हि गयऊ। पाण्डव केर भेद नहिं पयऊ ॥' ५

(६)

दुर्योधन के विषय में महाभारत आदि पर्व अ० ११५ में कथा है कि—पाण्डु के बड़ा भाई धृतराष्ट्र की स्त्री गाधारी ने भूख श्रम से पीड़ित व्यासजी की सेवा करके उन्हें प्रसन्न किया, तब व्यास जी प्रसन्न होकर बर देने लगे, तब गान्धारी ने अपने पति के समान सौ पुत्र माँ गे। फिर गर्भ होने पर दो वर्ष तक गर्भ का धारण किया। और दुःखयुक्त हुई, बाद में कुन्ती के पुत्र का जन्म सुन कर और अपना उदर की स्थिरता को देखकर, चुपके से अपना पेट पीटने लगी, जिससे मांस का पिण्ड लोहपिण्ड के समान पैदा हुआ। उसको बिगने का विचार कर रही थी। इतने में व्यास जी आये और गांधारी से बोले कि, तुम क्यां करना चाहती है। वह अपनी बात कह सुनाई, व्यासजी बोले कि, मेरी बात झूठ नहीं हो सकती है। इस पिण्ड को जल से सींचो, सींचने से सौ पुत्र होंगे। फिर घृत से पूर्ण कुण्डों में गुप्त स्थानों में रखो, क्रम से सौ भाई पैदा होंगे फिर सीचने से अङ्गुष्ट पर्व मात्रों के प्रथम विभक्त हुए, इत्यादि। कुण्ड में रखने पर सबसे पहले दुर्योधन का जन्म हुआ और महान् अशकुन हुआ। तब गणक कुल का कल्याण के लिये उसे त्यागने को कहा, परन्तु पुत्रमोह से धृतराष्ट्र त्याग नहीं सके, इत्यादि ॥ ६ ॥

(रमैनी ५५ के अन्तर्गत)

(१)

रामजी, लक्ष्मणजी सीताजी के जाने की कथा अध्यात्मरामायण उत्तरकाण्ड सर्ग ७ आदि में है कि—बाल्मीकि ऋषि लवकुश सहित जानकीजी को रामजी के पास ले गये, और कहे कि, जानकी पतिव्रता है, ये दोनों आपके पुत्र हैं, इत्यादि। लोगों के विश्वास के लिये शपथ करते समय जानकीजी ने कहा कि, जिस प्रकार मैं राम से अन्य को मन से भी नहीं स्मरण करती हूँ, तो तैसे ही भूमिदेवी मुझे विवर (मार्ग) देने योग्य है। ऐसा सीताजी के कहने पर, दिव्य पुरुषों और भूमिदेवी सहित एक सिंहासन प्रगट हुआ। भूमि देवी जानकी जी का स्वागत कहकर आसन पर उन्हें बैठाई और उनका भूमि में प्रवेश हो गया, इत्यादि।

सर्ग आठ ८ में कथा है कि—उसके बाद कुछ दिन बीतने पर ऋषि वेषधारी काल रामजी के दर्शन के लिये आया। और लक्ष्मण जी से कहा कि, अतिबल महर्षि का मैं दूत हूँ, राम को देखना चाहता हूँ। उस महर्षि मुख्य की बात बहुत देर तक राम से कहना है। फिर लक्ष्मण जी ने शीघ्र जाकर रामजी से उसके आगमन की बात कही। तब रामजी ने लक्ष्मण से कहा कि, मुनि को शीघ्र लावो। फिर लक्ष्मणजी मुनिवेष वाला काल को

रामजी के पास ले गये। मनि मधुर वचन से रामजी को कहा कि, आपकी वृद्धि हो। फिर उस मुनि की विधिपूर्वक पूजा रामजी ने किया, कुशल पूछा, इत्यादि। फिर रामजी ने कहा कि, जिस कार्य से यहाँ आये हो सो कहो। तब मुनि बोले कि, यह वचन, दो ही के रहते कहने का है। और अन्य को सुनने के नहीं है, जो इसे सुने देखेगा वह आपका वध्य होगा। तब रामजी इस बात को स्वीकार किया और लक्ष्मणजी को कहा कि तुम द्वार पर रहो, यहाँ कोई आने नहीं पावे, जो आवेगा वह मुझसे मारा जायगा, इत्यादि। फिर रामजी और काल की बात होने लगी। इतने में दुर्वासाजी आये और लक्ष्मण से बोले कि, राम को शीघ्र देखावो, मुझे भारी काम है। लक्ष्मणजी बोले कि, कौन काम है कहिये, मैं करूँगा; रामजी किसी काम में व्यग्र हैं, एक मुहूर्त प्रतीक्षा कीजिये। मुनि क्रुद्ध होकर बोले कि, हे लक्ष्मण! यदि राम को शीघ्र नहीं देखावोगे, तो देश सहित वंश को भस्म करूँगा। सो सुनकर लक्ष्मणजी ने समझा कि, सबका नाश से एक मेरा नाश कारणवश श्रेष्ठ है, ऐसा निश्चय करके दुर्वासाजी का समाचार रामजी से लक्ष्मणजी ने कहा। फिर रामजी ने काल को विदा किया। शीघ्र दुर्वासाजीका दर्शन किया, प्रणाम कर के प्रयोजन पूछा। मुनि ने चिरकालिक उपवास व्रत की समाप्ति के लिये भोजन मांगा। रामजी ने भोजन कराया, भोजन करके मुनि अपने आश्रमपर गये। बाद में पहली बात को स्मरण करके रामजी दुःखी हुए। तब लक्ष्मणजी बोले कि, मेरी चिन्ता नहीं कीजिये, मेरा वध कीजिये; आपकी प्रतीज्ञा के भंग से मुझे भी नरक होगा, इत्यादि। ऐसा लक्ष्मणजी के कहने पर रामजी ने मन्त्रियों से भी पूछा; मन्त्रियों ने कहा कि, लक्ष्मण को आप त्यागो; परन्तु प्रतिज्ञा नहीं त्यागो, अन्यथा धर्म निष्फल होगा, धर्म के निष्फल होने से सबका नाश होगा इत्यादि। इसके बाद रामजी ने लक्ष्मण का त्याग किया और कहा कि, सत्पुरुषों का त्याग वा वध तुल्य है। इसके बाद लक्ष्मण जी रामजी को प्रणाम करके सरयू किनारे गये और वहाँ से स्वर्ग गये, इत्यादि। फिर नवम अध्याय में प्रजा सहित रामजी की स्वर्गयात्रा का वर्णन है।

वाल्मीकि रामायण उत्तर काण्ड अ० ९७ में भी इसी प्रकार सीताजी के भूमि में प्रवेश का वर्णन है। और सर्ग १०३ इत्यादि में काल के आगमनादि और लक्ष्मणजी के स्वर्ग गमन की कथा है। फिर आगे सब भाइयों के पुत्रों के राज्याभिषेकादि की और रामजी के स्वर्गारोह की कथा है ॥ १ ॥

कुरुवंशी होने से दुर्योधनादि को ही कौरव कहा गया है। एक भीम के द्वारा वे सब भाई अठारह दिन के युद्ध में मारे गये हैं, सो कथा महाभारत की है ॥

भोजप्रबन्ध की टीका में भोज की कथा है कि—राजा भोज के पिता भोज के बचपन में ही मर गये थे और मुञ्ज नाम के उनके चाचे के हाथ में उन्हें सौंप गये थे। किसी ज्योतिषी से उनका सौभाग्य सुन कर ईर्ष्या से उनका चाचा, एक मन्त्री को उन्हें मारने को कहा; परन्तु मन्त्री दयावश उन्हें न मार कर, राजा को समझाया कि, उन्हें मार दिया बाद में मुञ्ज ने पूछा कि, मरते समय उसने क्या कहा, तब भोज के खून से भोज का लिखा हुआ यह श्लोक मन्त्री ने देखाया कि,

'मान्धातेति महीपतिः कृतयुगेऽलङ्कारभूतो गतः,
सेतुर्येन महोदधौ विरचितः क्वाऽसौ दशास्यान्तकः।

अन्ये चापि युधिष्ठिरप्रभृतयो याता दिवं भूपते !,
नैकेनापि समं गता वसुमती मन्ये त्वया यास्यति ॥'

इस को पढ़कर मुञ्ज विकल हुआ, तब उसी समय एक योगी आया। उसने कहा कि, मन्त्रबल से मैं मृतक को भी जीवित कर सकता हूँ। और कुछ होमादि का साधन लेकर गया और वह भोज को साथ में ले आया, फिर मुञ्ज भोज को राज्य देकर, प्रायश्चित के लिये तप करने गया और भोज राजा धारानगरी में रह कर अच्छी तरह राज्य किया, इत्यादि।

और पाण्डु को पूर्व वर्णित मुनि का शाप था कि, कामासक्त होते ही मरोगे, इससे कभी माद्री के साथ वन में विचरते थे, वहाँ ही कामासक्त होते ही मर गये॥

हरिश्चन्द्र की कथा मारकण्डेय पु० अ० ७ में है कि—सतयुग में हरिश्चन्द्र राजर्षि हुए। एक दिन किसी मृग पर धावा करते थे, इतने में किसी स्त्री का शब्द सुन पड़ा कि मेरी रक्षा करो। मृग को छोड़ कर राजा बोला कि, भय नहीं करो, मेरे राज्य में कौन अन्यायी है और वहाँ जिस विद्या को शिवादि भी नहीं सिद्ध किये थे, उस विद्या को विश्वामित्र सिद्ध करते थे, इससे उस विद्या ही का वह शब्द था, कि जिससे सिद्धि में विघ्न हो, वह विघ्न ही राजा में भी प्रवेश किया, इससे राजा और कुछ भी बोला, तब विश्वामित्र क्रुद्ध हुए और विद्या सिद्धि नष्ट हुई, फिर विश्वामित्र राजा को डांटने लगे, तब राजा ने कहा कि, भयभीत की रक्षा राजा का धर्म है, इससे मैं बोला, इत्यादि। तब ऋषि बोले कि, यदि तुम दाता राजा है, तो जो मांगता हूँ सो दो। राजा ने कहा कि, हाँ दूँगा, तब प्रथम राजसूय यज्ञ की दक्षिणा मांग कर, फिर राजा रानी पुत्र के शरीर मात्र को छोड़ कर सब कुछ मांग लिये और बोले कि मेरे राज्य से निकल जावो और राजसूय की दक्षिणा दो, इत्यादि। तब राजा काशी में जाकर, तीनों शरीर को बेंच कर दक्षिणा दिया और पुत्र के मरने पर दोनों प्राणी चिता में जलने के लिए तैयार हुए, तब देव ऋषि सब प्रसन्न होकर बचाये और राजा के विपत्ति को सुनकर, वसिष्ठ जी विश्वामित्र को शाप दिये कि, जिससे विश्वामित्र बक हो गये, और विश्वामित्र के शाप से वसिष्ठ जी आडी नाम के पक्षी हुए, और पक्षी होकर भी दोनों युद्ध उपद्रव करते रहे, तब ब्रह्मा जी फिर पूर्वरूप बनाये और समझाये तब मेल हुआ, इत्यादि।

देवी भागवत स्क० ६ अ० १०–१३ में कथा है कि—पुत्र रहित हरिश्चन्द्र ने वरुण के प्रति नरमेध यज्ञ की प्रतिज्ञा करके पुत्र का लाभ किया था, फिर पुत्र के मोह से उसके बचपन में यज्ञ नहीं किया, फिर होश होने पर, मरण के भय से पुत्र के जंगल में भाग जाने पर, वरुण के शाप से रोगग्रस्त होने पर, कीना हुआ शुनःशेप द्वारा हरिश्चन्द्र यज्ञ करने लगे, तब दुःखी शुनःशेप को देख कर, विश्वामित्र जी ने छोड़ देने को कहा; परन्तु राजा नहीं छोड़ा, फिर मन्त्रोपदेश देकर वरुण से ही छोड़वाया और उसी क्रोध से हरिश्चन्द्र के राज्य को छल करके हर लिया। और इसी कारण से वसिष्ठ जी से भी वैर हुआ।

स्कन्ध ७ अ० १६ से २७ तक में कथा है कि—पूर्वोक्त रीति से वचन नहीं मानने के कारण हरिश्चन्द्र पर विश्वामित्र क्रुध थे ही, फिर भी राजा की प्रशंसा वसिष्ठ जी से सुनकर उसे सत्य से गिराने के लिये बहुत यत्न किये; परन्तु राजा सत्य से नहीं गिरा तब फिर सब प्रसन्न हो गये, इत्यादि।

ब्रह्मपु० गौतमी महात्म्य खं० अ० ३४ में कथा है कि—राजा हरिश्चन्द्र के पास में नारद और पर्वत ऋषि गये, राजा उनसे पुत्र का फल पूछा; उन्होंने कहा कि, पुत्र बिना गति नहीं होती, है पिता यदि उत्पन्न जीवित पुत्र का मुख देख लेता है, तो मनुष्य लोक और अन्तरिक्ष लोक के सब भोगों को प्राप्त करता है। राजा ने कहा कि, मुझे कैसे पुत्र होगा, तब मुनि बोले कि यदि वरुण प्रसन्न होवें तो श्रेष्ठ पुत्र दे सकते हैं। राजा वरुण को तुष्ट किया, प्रगट होने पर उनसे पुत्र माँगा, तब वरुण बोले कि, पुत्र तब दूँगा कि यदि उसी पुत्र से तुम मेरा यज्ञ करो। राजा स्वीकार किया, पुत्र हुआ; परन्तु टालमटोल करके पुत्र को युवराज बना दिया। फिर वरुण के कहने से यज्ञ करने के लिये तैयार हुआ, तब पुत्र ही जंगल में भाग गया। वरुण क्रुद्ध होकर, जलोदर के लिये शाप दिये। तब राजा का पुत्र ही अजिगर्त ब्राह्मण के मध्यम पुत्र को कीन लाया, और राजा को यज्ञ करने के लिये दिया, तब राजा के मन में हुआ कि, पूज्य ब्राह्मण द्वारा कैसे यज्ञ किया जाय। फिर आकाशवाणी हुई कि इस ब्राह्मण द्वारा यज्ञ करो, इसके वध के बिना ही तेरा यज्ञ पूर्ण होगा, फिर वैसा ही हुआ।

इन यज्ञ दानादिकों से ही हरिश्चन्द्र की अन्तरिक्ष में पुरी छाई रही। श्रीमद्भागवत स्क० ९।७ में भी हरिश्चन्द्र की कथा है।



(रमैनी ७५ के अन्तर्गत)

दशरथकुल (घर) आदि में अवतार लेकर आने की कथा, ब्रह्म पुराण उत्तर खण्ड अ० २४२ में इस प्रकार की है कि—प्रथम स्वायंभुव मनु द्वादशाक्षर मन्त्र को जपता हुआ भगवान् विष्णु की पूजा हजार वर्ष किये, तब भगवान् प्रगट होकर वर मांगने के लिये कहा, तब मनु ने तीन जन्म में भगवान् को अपने पुत्र होने के लिये वर मांगे, जिससे दशरथ और वसुदेवरूप मनु हुए और राम कृष्णरूप विष्णुदेव हुए, अब कलि के अन्त में शम्भल ग्राममें मनु ब्राह्मण होंगे, तब उनकी मुक्ति होगी उस ब्राह्मणसे कल्कि भगवान् होंगे।

रावण से पीड़ित देवताओं की प्रार्थना से दशरथ जी के यज्ञ हविष द्वारा कौसिल्या में प्रगट होकर, विश्वामित्र का यज्ञ की रक्षा करके सीता को विवाह कर, परशुराम को जीत कर, बारह वर्ष अयोध्या में रहकर, पिता के वचन से राम जी ने चौदह वर्ष वनबास किया जयन्त काक वन में जानकी जी को देख कर मोहित होकर स्तन में चोंच मारा, तब रामजी ने कुशमय अस्त्र छोड़ा कि जिससे कहीं नहीं शरण मिलने पर, राम के ही शरण में आने पर बचा और सूर्पणखा के नाक कान को राम जी अपने ही काट लिये, क्योंकि वह सीता को खाने के लिये दौड़ी थी। बाद में खरदूषणादि को मारने पर सीता का हरण हुआ, तब रावण से क्षत गृध्र का संस्कार करके मतंग ऋषि के आश्रम में गये, फिर शवरी के यहाँ गये, उसके फल पूजा आदि का स्वीकार करके कवन्ध को मार कर, गोदावरी के पास गये और उससे सीता के विषय में पूछा कि, जानती हो तो कहो, परन्तु वह कुछ नहीं बोली, तब रक्त जलवा का शाप दिये। फिर उसका विनय और ऋषियों की स्तुति से

कहे कि, शबरी के स्नान करने से यह शाप से मुक्त होगी, फिर वैसा ही हुआ। बाद में सुग्रीव से मित्रता आदि होने पर समुद्र किनारे गये और बाणों से समुद्र को सूखा दिये। फिर समुद्र पूजा स्तुति आदि किया, तब वरुणास्त्र से समुद्र को भर दिये। और समुद्र के वचन से सेतु बना कर लंका गये, रावण को मारा, इत्यादि।

कबीर साहब कहते हैं कि यह सब मायामय लीला है। निर्गुन सर्वात्मा राम के साथ लगो कि, जिससे जन्म मरण छूटे।

वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड अ० १५ में कथा है कि—राजा दशरथ जब पुत्रेष्टि यज्ञ का आरम्भ किये, तब सब देव महर्षि भाव का प्रतिग्रह के लिये वहाँ आये और ब्रह्मा जी से बोले कि, आपके वर का प्रभाव से रावण हम सबको पीड़ित करता है, तीनों लोक को उद्विग्न करता है, इत्यादि। उसका नाश के लिये उपाय करने के आप योग्य हैं। सो सुनकर ब्रह्मा जी बोले कि, उसका नाश का यह उपाय है कि, वर माँगने के समय देवासुरादि से अवध्यता का वर उसने माँगा है। परन्तु अनादर से मनुष्यों का नाम नहीं लिया है, इससे वह मनुष्य से मरेगा। इस बात को सुन कर देवादि सब आनन्दित हुए, और उसी समय विष्णु देव भी आ गये, ब्रह्मा जी से मिलकर स्थिर हुए, तब देव सब स्तुति करके बोले, कि हे विष्णो! सब लोक के हित की इच्छा से हम सब आप से कहते हैं कि दशरथ जी की स्त्रियों में आप चार रूप से पुत्र होयँ और मनुष्य रूप होकर दुष्ट रावण को युद्ध में मारे, हम सब आपके शरण में हैं इत्यादि। फिर विष्णु भगवान् ने राजा दशरथ को पिता स्वीकार किया और देवादि से कहा कि, आप लोक भय त्यागें, मैं रावण को मारूँगा, इत्यादि।

अ० १६ में इष्टि से पायस की प्राप्ति और पायस के खाने से कौसिल्या आदि के गर्भ का वर्णन है। अ० १८ में रामादि के जन्म का वर्णन है। इत्यादि और रामायण की रीति से सूर्पणखा के नाक आदि लक्ष्मण जी ने काटा है। तथा सूखाने से पहले ही समुद्र प्रगट हुआ है, इत्यादि ॥१॥

विष्णु देव का देवकी के गर्भ में आने की कथा भागवत स्क० १० के आरम्भ से ही है कि—पृथिवी दृप्त (दर्पयुक्त) नृपरूप असुरों के सैकड़ों हजार फौजों के भार से दबकर, रोती हुई गौरूप से ब्रह्मा जी के शरण में गई और अपना दुःख सुनाई, तब ब्रह्मा जी अन्य देव और शिवजी सहित समुद्र किनारे जाकर, पुरुषसूक्त से विष्णु भगवान् की स्तुति किये। फिर समाधि में आकाशवाणी सुन कर, ब्रह्मा जी ने देव सबसे सुनाये कि, जो वाणी मैं सुना हूँ सो आप सब सुनिये और वैसा ही शीघ्र कीजिये। भगवान् पहले ही भूमि के दुःख को जान गये हैं। और आप लोक भी अंशों से यदुकुल में जन्मिये, इत्यादि। फिर कथा है कि, यदुवंशी क्षत्रियों की राजधानी मथुरा थी। वहाँ कभी उग्रसेन की पुत्री देवकी के साथ विवाह करके चलने के लिये वसुदेव जी रथ पर चढ़े। और उग्रसेन का पुत्र कंस बहन का प्रिय करने की इच्छा से घोड़ों के बागडोर को रथ हाँकने के लिये पकड़ा। फिर आकाश वाणी हुई कि, जिसको तुम रथ द्वारा पहुँचाते हो, इसी का अष्टम गर्भ तेरी मृत्युरूप होगा। सो सुनकर, कंस देवकी को मारने के लिये तैयार हुआ, तब बहुत कुछ कह सुनकर, वसुदेव जी ने उसे समझाया कि, इसके पुत्र से आपको भय है, इसलिये

इसके पुत्रों को मैं आप को समर्पण करूँगा। तब कंस ने उसे छोड़ दिया। फिर देवकी का पहला पुत्र हुआ तो वसुदेव जी कंस के पास ले गये, परन्तु कंस ने कहा कि, अष्टम से भय है तो इसको क्यों मारें, ऐसा कह कर लौटा दिया। इसके बाद नारद आकर कंस को समझाये कि, नन्दादि गोप और उनकी स्त्रियाँ तथा वृष्णि वसुदेवादि और इनकी स्त्रियाँ, बन्धु आदि प्रायः देव सब हैं और सब असुरों को मारने के लिये यत्न कर रहे हैं। सो सुन कर कंस यदुवंशियों को देव समझ कर और देवकी के गर्भज को विष्णु जानकर, देवकी वसुदेव को बाँध दिया और देवकी के पुत्रों को विष्णु की शंका से मारने लगा। माता पिता आदि को भी बाँध दिया, अपने राज्य करने लगा। उसके बाद सप्तम गर्भ हुआ सो विष्णु की माया द्वारा देवकी के गर्भ से खैंच कर, वसुदेव जी की ही स्त्री रोहिणी जो गोकुल में कंस के भय से रहती थी, उसके उदर में किया गया। उससे बलराम जी हुए और विष्णुदेव की मायारूप नन्दजी की पुत्री हुई। और अष्टम गर्भ से विष्णु भगवान् कृष्ण रूप हुए। इनके जन्म के बाद अर्धरात्रि में ही वसुदेव जी इन्हें नन्दजी के यहाँ रख आये और उनकी पुत्री को ले आये। जिसे सबेरा होने पर देख कर कंस अकाशवाणी को झूठ समझा, इत्यादि। और कृष्णभगवान् को गोद खेलाने का सौभाग्य यशोदा को मिला, देवकी को नहीं मिला ॥२॥

हिरण्यकशिपुका बध की कथा विष्णुधर्मोत्तर पुराण खण्ड १ अ० ५४ में है कि—हिरण्याक्ष के मारे जाने पर, हिरण्यकशिपु घोर तप जपादि किया, तब प्रसन्न होकर देवादि सहित ब्रह्माजी ने आकर वर माँगने के लिये कहा, तब उसने वर माँगा, कि देवासुरादि शस्त्रास्त्रादि से भी मेरा मरण नहीं हो। ब्रह्माजी एवमस्तु कह कर अपने लोक में गये, तब देव सब ब्रह्माजी के पास गये और कहने लगे कि, इस वर से यह असुर अवश्य देववध करेगा; इससे इसका बध के उपाय बताइये। तब ब्रह्मा जी बोले कि तप का फल इसको अवश्य मिलेगा, फिर भगवान् इसका नाश करेंगे। इसके बाद वह असुर उपद्रव करने लगा, देवलोक में भी अपना आधिपत्य किया। तब देवलोक भगवान् के शरण में प्राप्त हुए। फिर भगवान् नृसिंहरूप होकर, उसकी सभा में गये और दानवों को नष्ट किये, उसे पछाड़ कर मारा, इत्यादि। लिंगपु० अ० ६५ में भी यह कथा है। पद्मपु० ख० १ अ० ४७ में है। उत्तर खं० २३८ में है। शिवपु० सं० २ खं० ५ अ० ४३ में रूपान्तर से है।

विष्णुपुराण अंश १ अ० १७ में कथा है कि—कश्यपजी की स्त्री दिति के पुत्र हिरण्यकशिपु था। वह इन्द्रादि को जीत कर राज्य करता था। उसके पुत्र प्रहलाद थे, सो गुरुकुल में पढ़ते थे। एक दिन पिता के पास में गये। उनसे पिता पूछा कि, जो अबतक पढ़े हो, उसका सार स्वरूप कुछ कहो। उन्होंने कहा कि, सबका सार विष्णु है, सोई मेरे मन में स्थिर है, उसी अनादि अनन्त को मैं प्रणाम करता हूँ, इत्यादि। इस बात को सुनकर हिरण्यकशिपु अध्यापकों पर रंज हुआ कि, आप लोगों ने इसको क्या उलटा पढ़ाया है। उन लोगों ने कहा कि, इसका यह स्वाभाविक समझ है, हमारा पढ़ाया हुआ नहीं है। फिर पिता प्रह्लाद से पूछा कि, यह उपदेश तुम्हें कौन दिया है। प्रह्लाद ने कहां कि, सबका उपदेशक विष्णु है, उसके बिना कौन किसको उपदेश देता है। इसके बाद प्रह्लाद को मारने के लिये बहुत यत्न किया गया। परन्तु बचते गये। और अन्त में नृसिंहभगवान् ने प्रगट होकर हिरण्यकशिपु को मारा।

भागवत स्कन्ध ७ में आरम्भ में ही प्रश्न हुआ है कि, सम सबके प्रिय भगवान् ने इन्द्र के लिये असुरों को कैसे मारा। तब शुकदेवजी ने कहा है कि, निर्गुण अज अव्यक्त भी भगवान् अपनी मायाके गुण में पैठ कर बाध्य बाधकता को प्राप्त हुए हैं। और अविवेक से कल्पित यह संसार है, इत्यादि। इसके बाद जय विजय के शापादि की कथा है, वही हिरण्याक्ष हिरण्यकशिपु हुए हैं। वराहावतार, नृसिंहावतार द्वारा मारे गये हैं। तिसकी कथा विस्तार युक्त है॥ ३॥

(३)

गोवर्धन पर्वत का कर से धारण की कथा भागवत स्क० १० पूर्वार्ध अ० २४-२५ में है कि—एक समय इन्द्रयाग के लिये यत्न करते हुए गोपों को देख कर कृष्ण भगवान् ने अजान के समान पूछा कि, यह आप लोग क्या करते हो, इसका क्या फल है, इत्यादि। तब नन्दजी बोले कि, पर्जन्यरूप भगवान् इन्द्र हैं, मेघ उन्हीं की मूर्ति हैं; सो प्राणी के जीवनरूप जल वर्षाते हैं। इससे उस इन्द्र को हम सब और अन्य लोक भी उनसे सिद्ध द्रव्यों द्वारा क्रतुओं (यज्ञों) से पूजते हैं, इत्यादि। सो सुनकर, इन्द्र के क्रोध को पैदा करते हुए, कृष्णजी ने नन्दजी से कहा कि, कर्म से ही जन्मादि सब होता है, ईश्वर भी कर्ता ही को फल देता है, अकर्ता को नहीं देता। फिर कर्मानुसारी प्राणी को इन्द्र से क्या जरूरत है, इत्यादि। और हम सबको देश ग्राम तो कुछ है नहीं, वनवासी हैं इससे जो इन्द्र का यज्ञ के लिये साधन है, उससे गौ ब्राह्मण पर्वत की ही पूजा किया जाय, यही हमें अच्छा प्रतीत होता है, इत्यादि। इस बात को हरि प्रेरणा से नन्दादि सब मान गये, इन्द्रयज्ञ को छोड़ दिये और कृष्णजी के कथनानुसार किये। तब इन्द्र क्रुद्ध होकर अकाल में भी बहुत वृष्टि के लिये मेघों को हुकुम दिये और कहे कि इन गोपों की सम्पत्ति को नष्ट करो तो अति वृष्टि होने लगी, तिससे पीड़ित गोपादि को देखकर, सात दिन तक कृष्ण भगवान् गोवर्धन पर्वत को हाथ पर धरे रहे और गौ गोपादि उसके नीचे आराम से ही रहे, सो देखकर इन्द्र अभिमान रहित हुए और मेघों का निवारण किये, इत्यादि॥ ४॥

मत्स्य होकर जल में विचरने की कथा मत्स्य पुराण अ० १ में है कि—प्रथम राजा मनु ने पुत्र को राज देकर तप किया। और मलयाचल के पास में शमादि सहित उत्तम योग प्राप्त किया। तब ब्रह्मा वर देने आये। तब मनु ने वर माँगा कि, प्रलय काल की प्राप्ति होने पर, स्थावर जंगम प्राणी की रक्षा में मैं समर्थ होऊं, यही वर मुझे दिया जाय। ब्रह्मा जी 'एवमस्तु' कह कर अन्तर्हित हो गये। फिर कभी अपने आश्रम में राजा पितृ तर्पण करते थे, तब हाथ में जल सहित सफरी मछली गिरी। दयावश उसकी रक्षा के लिये उसे जलपूर्ण घड़ा में रख दिये। दिन रात में वह सोलह अंगुल बढ़ गई। और राजा से बोली कि, दया करके मेरी रक्षा करो। फिर बड़ा कुण्डा में रखा। तब रात्रि भर में तीन हाथ बढ़ कर बोली कि, रक्षा करो। फिर राजा कूप में रखा। तब वहाँ नहीं समासकी, तब तालाब में रखा, वहाँ भी बहुत बढ़ने पर गंगा में रखा, गंगा में भी अतिवृद्धि देखकर समुद्र में रखा, और समुद्र में भी उसकी अतिवृद्धि देखकर, भयभीत होकर राजा बोला कि, आप कौन हो, क्या आप भगवान् वासुदेव हो, दूसरा कोई इस प्रकार का मत्स्य कैसे हो सकता है। मत्स्यरूप तुम जगन्नाथ ही हो, इससे तुम्हे नमस्कार करता हूँ। मत्स्यरूप होकर मुझे दुःखी क्यों करते हो। ऐसा कहने पर साधु २ कहकर मत्स्यरूप भगवान् बोले कि, तुम मुझे

पहचाने हो, कुछ दिन में पृथिवी जल में डूब जायेगी। तब देव समुदाय से निर्मित यह नौका यहाँ आयेगी और मैं भी आऊँगा। उस समय सब प्राणी का बीज-समुदाय की रक्षा के लिये, सब प्राणी को इस पर रख कर रक्षा करना। युगान्त वायु से जब नौका व्याप्त होगी, तब मेरे शृंग में नौका को बांधना। फिर प्रलयान्त में प्रजापति सर्वज्ञ मन्वन्तर के स्वामी देव पूज्य होंगे। अ० २ मनु के पूछने पर प्रलयादि का वर्णन करके भगवान् लुप्त हो गये। फिर प्रलय होने पर मत्स्यरूप भगवान् मनु के पास में प्रगट हुए। और रस्सीरूप से शेष प्रगट हुए, इत्यादि।

श्रीमद्भागवत स्कन्ध ८ अ० २४ में कथा है कि—राजा परीक्षित ने पूछा है कि, भगवान् हीन मत्स्य स्वरूप का धारण जिस लिये किये सो कहिये। तब शुकदेवजी ने कहा है कि, गो विप्र देव साधु धर्म की रक्षा के लिये भगवान् सब प्रकार के शरीर धरते हैं। और निर्गुण होने से बुद्धि के गुणों से लिप्त नहीं होते। और प्रथम ब्रह्मा के सो जाने से नैमित्तिक प्रलय हुआ, जिससे भूरादि लोक समुद्र में डूब गये। और निद्रा युक्त ब्रह्मा के मुख से निकले हुए वेदों को पास में स्थिर हयग्रीव असुर ने हर लिया। सो जानकर भगवान् ने असुर रूप का धारण किया। और सत्यव्रत नामवाला कोई राजर्षि भक्त था। सो तप किया था, जो इस कल्प में सूर्य का पुत्र और मनु है। एक समय कृतमला नदी में तर्पण करते हुए सत्यव्रत के अंजलि में एक सफरी आ गई, तो वह नदी के जल में ही छोड़ दिया। तब वह सफरी बोली, जाति घातक मच्छलियों से भयभीत मुझको नदी के जल में कैसे त्यागते हो। तब राजा कलश में धर कर आश्रम में लाया; फिर वह मछली बढ़ने लगी, राजा बड़ा जलाशय में रखता गया, अन्त में समुद्र में धरने गया तब मत्स्य बोला कि, यहाँ तो बली मकरादि खा ही जायेंगे। इस प्रकार मोहित होकर राजा ने पूछा कि, आप कौन हो, आप तो भगवान् मालूम होते हो, आपको नमस्कार है। आप जिस कार्य के लिये यह रूप धरे हो सो जानना चाहता हूँ इत्यादि। तब भगवान् बोले कि, आज से सातवें दिन भूर्भुवरादि लोकत्रय प्रलय समुद्र में डूबेगा, उस समय हम से प्रेरित कोई नौका आयेगी, तुम ऋषियों के सहित सब के छोटे बड़े बीजों को लेकर, उस नौका पर चढ़कर, ऋषियों के तेज से अव्याकुल होकर एकार्णव में विचरोगे। बली वायु से काँपती हुई नाव को वासुकी से उपस्थित मेरे शृंग में तुम बाँधना। जब तक ब्रह्मा की रात्रि रहेगी तब तक ऋषियों के साथ तुम को इस समुद्र में तैराते हुए मैं विचरूंगा और मेरी महिमा रूप परब्रह्म को भी तुम पूछ कर मेरी कृपा से हृदय में प्रकाशित समझोगे, इत्यादि। फिर वैसा ही हुआ। और हयग्रीव को मार कर वेदों को लेकर फिर जागने पर ब्रह्माजी को दिया, इत्यादि॥

पद्मपु० उत्तर खं० ६ अ० २३ में कथा है कि—कश्यपजी से दिति अदिति द्वारा दैत्य देव की उत्पति होने पर, मकर नामक महाबली असुर ब्रह्मलोक में जाकर और ब्रह्मा को मोहित करके सब वेद हर लाया। तब सब देव की प्रार्थना से भगवान् विष्णु मत्स्यरूप से उसे मार कर वेद लाये॥ ५॥

(६)

कच्छप अवतार की कथा श्रीमद्भागवत स्कन्ध ८ अ० ५-६ में है कि—जब युद्ध में असुरों से मारे गये देव सब गिरने लगे और मरने लगे, तथा दुर्वासा के शाप से इन्द्र

सहित सब लोकश्री (लक्ष्मी) रहित हो गये। फिर यज्ञादि क्रिया नष्ट हो गई। तब यह देखकर, इन्द्र वरुणादि देव विचार कर भी कर्तव्य का निश्चय नहीं कर सके, तब सब देवगण मेरु के शिखर पर ब्रह्मसभा में गये। और प्रणाम पूर्वक ब्रह्माजी को अपनी दशा सुनाये। फिर ब्रह्माजी ने इन्द्रादि को सत्त्व प्रभा रहित देखकर और लोकों को अमंगलप्राय देखकर असुरों को उससे विलक्षण देखकर फिर समाहित मन से पर पुरुष का स्मरण करता हुआ, देव सबसे कहा कि, जिसके अवतार अंश कला से हम सब रचे गये हैं, उसीके शरण में हम सब चलें। ऐसा कहकर देव सहित ब्रह्मा तम से परे साक्षात् भगवान् के स्थान में गये और देव वाणी से स्तुति किये। तब भगवान् विष्णु प्रकट हुए। फिर स्तुति नमस्कार करके ब्रह्माजी ने कहा कि, जिस कार्य के लिये हम सब आये हैं, उसे आप सिद्ध करो, हमारा कल्याण करो। फिर भगवान् ने कहा कि, अभी जावो, आप सब असुरों से सन्धि (मेल) करो और अमृत की उत्पत्ति में शीघ्र यत्न करो, कि जिसके पीने से मृत्युग्रस्त प्राणी भी अमर होंगे। क्षीर समुद्र में तृणलता औषधि डार कर मन्दर को मन्थान और वासुकि को नेत्र (रस्सी) बना कर, मेरी सहायता से समुद्र को मथो, दैत्य क्लेश भागी होंगे और आप सब फल ग्राहक होंगे, इत्यादि। ऐसा कहकर भगवान् अन्तर्हित हो गये। फिर भगवान् को प्रणाम करके ब्रह्मा और शिवजी अपने २ स्थान में गये और अन्य देव सब बलि के पास गये और भगवान् की बताई हुई बात उससे कहे। असुर सब उस बात को मान गये। समुद्र मथने के व्यापार में लगे। मन्दरगिरि को उखाड़ कर ले चले। रास्ते में गिर गया, तब भगवान् पहुँचाये। अ० ७ में है कि— मथते समय गणेश कृत विघ्न से पर्वत नीचे धँस गया। तब सबको विषादयुक्त देखकर, महान् कच्छप होकर भगवान् ने पर्वत को ऊपर किया और पृष्ठ पर धारण किया, इत्यादि।

पद्मपु० खं० १ अ० ४ में कथा है कि—पृथिवी पर विचरते हुए दुर्वासाऋषि एक विद्याधरी के हाथ में अतिसुगन्ध माला देखकर, जटा में बाँधने के लिये, वह माला उससे माँग लिये। कुछ दिन उसे लिये विचरते रहे। फिर ऐरावत पर चढ़ कर जाते हुए इन्द्र को वह माला प्रेम से दिया। इन्द्र लेकर उस माला को हाथी के शिर पर डार दिये, हाथी भूमि में डार दिया। तब क्रुद्ध होकर ऋषि शाप दिया कि तेरा ऐश्वर्य नष्ट होगा, इत्यादि। जिससे सब रत्नादि नष्ट हो गये, इत्यादि।

पद्मपु० उत्तर खं० ६ अ० २३१ में है कि—दुर्वासाजी कभी मेरु पर्वत पर गये। फिर इन्द्र को देखने की इच्छा से चले। तब हाथी पर जाते हुए इन्द्र को देखकर, पारिजात की माला इन्द्र को दिये। इन्द्र उसे हाथी के शिर पर रख दिये, हाथी उसे भूमि में बीग दिया। इससे दुर्वासा क्रुद्ध होकर, त्रैलोक्य की सम्पत्ति के नाश के लिये शाप दिया। इससे इन्द्र की लक्ष्मी आदि नष्ट हो गई; तब समुद्र का मथन के विचार हुआ। तब कूर्मरूप होकर भगवान् ने मन्दर का धारण किया, इत्यादि।

स्कन्ध पु० खं० २-४ अ० ८ में भी कथा है कि—दुर्वासा के शाप से इन्द्रादि देव ऐश्वर्य रहित हो गये, तब समुद्र के मथने पर ऐरावतादि रत्न उत्पन्न हुए, और हरितकी आदि दिव्य औषधियाँ लक्ष्मी तुलसी उत्पन्न हुई, इत्यादि ॥६॥

(७)

द्वारावती (द्वारिका) में शरीर छोड़ने की कथा महाभारत मौसल पर्व में है कि, यादव कुमार सब साम्ब को स्त्रीरूप बना कर ऋषियों के पास ले गये और पूछे कि, यह बभ्रु की स्त्री पुत्र की इच्छावाली है, कौन सन्तान पैदा करेगी। ऋषि लोक क्रुद्ध होकर बोले कि, यह घोर लोहा का मूसल को पैदा करेगा और सो तुम सबका नाशक होगा, फिर ऋषि सब भगवान् के पास आये, भगवान् वृत्तान्त सुन कर सब को सुनाये, एक दिन के बाद साम्ब ने मूसल पैदा किया, राजा उसे चूर्ण कराकर समुद्र में बिगवाया और नियम किया गया कि, आज से मद्यपान कोई नहीं करे। परन्तु वहाँ काल प्रवेश किया, उत्पात अशकुन होने लगे, जिस ग्रहदशा में महाभारत हुआ था, छत्तीस वर्ष पर उसी दशा को भगवान् ने देखा, फिर सब को तीर्थयात्रा के लिये आज्ञा दिया, तब प्रभास क्षेत्र में जाकर सब बसे, परन्तु वहाँ सब माँस मद्यादि खाने पीने लगे, फिर किसी दिन सभा में ही वादविवाद होते २ आपस में युद्ध हो गया। प्रथम अस्त्र शस्त्र से लड़े, अस्त्र शस्त्र नष्ट होने पर, उस लोहचूर्ण से जो तृण हुआ था, उसी से मारने लगे और वह तृण वज्र तुल्य मृत्यु का हेतु हुआ। फिर दारुक आया, भगवान् बभ्रु को स्त्रियां की रक्षा में नियुक्त किये। परन्तु बाद में उसे भी मरा हुआ देख कर और बलरामजी को वहाँ छोड़ कर और दारुक को अर्जुन के पास भेज कर, आप द्वारका गये। पिता से सब समाचार सुनाये और अर्जुन के साथ जाने के लिये कह कर, फिर वहाँ गये तब तक बलराम जी भी शरीर त्याग दिये थे। फिर आप भी जरा भिल्ल के बाण लगने पर देह त्यागे, इत्यादि ॥ ७ ॥

जगन्नाथपुरी में जगन्नाथ का पिण्ड गाड़ने की कथा ब्रह्मपुराण अ० ४३ में है कि एक बार श्रीलक्ष्मीजी ने भगवान् से प्रश्न किया कि, योग यज्ञादि तो कल्याण के कठिन साधन हैं ही, कोई सुगम स्थान तीर्थ बताइये कि, जहाँ जाने से सहज में कल्याण हो। तब भगवान् बोले कि—सुखसाध्य सुफल दाता तीर्थ रूप पुरुषोत्तमपुरी है, परन्तु उसका भेद कोई नहीं जानता है, ब्रह्मा भी सब संसार को प्रगट करके मेरे ध्यान में लगे, तो मैं प्रगट होकर उनसे पूछा कि, किस कार्य के लिये ध्यान कर रहे हो, फिर उन्हों ने कहा कि, योगादि की अपेक्षा सुगम साधन तीर्थस्थान बताइये, तो उनको भी मैंने यही पुरुषोत्तम स्थान बताया। यह स्थान दक्षिण समुद्र के किनारे है, वहाँ एक अक्षय बट भी है, तथा देव निर्मित एक मूर्ति है, अक्षय बट की छाया में ही जाने से मनुष्य ब्रह्महत्या पाप से मुक्त होता है, और मूर्ति के दर्शन से मेरे लोक में जाता है, मुक्त होता है; परन्तु इस प्रकार अनायास ही मेरे भवन में लोकों को जाता हुआ देखकर, यमराज मेरे (भगवान् के) पास में आये और स्तुति करने लगे, तब पूछने पर उन्हों ने कहा कि, इस पुण्य स्थान में जो इन्द्रनील मणिमयी श्रेष्ठ सर्व कर्म फलप्रदा प्रतिमा है, प्रेमभाव से उसे देख करके ही श्वेत नामक आपके भवन में सब चले जाते हैं, इससे मैं अब अपना व्यापार नहीं कर सकता हूँ। इस लिये कृपा करके उस प्रतिमा को हर लीजिये। इस बात को सुनकर, यम से मैंने कहा कि, उस प्रतिमा को मैं बालू से गुप्त कर दूंगा। फिर बालू से उसे ढाँप कर, यम को यमपुरी में भेज दया, इत्यादि। इसी पुरुषोत्तम स्थान में अवन्तिकापुरी के राजा इन्द्रद्युम्न ने पवित्र स्थान जान कर, अश्वमेध यज्ञ किया और भगवान् का दर्शन पाया, तथा कृष्ण बलभद्र सुभद्रा की मूर्तियों की स्थापना किया इत्यादि। नारदीय पु० उ० खं०

अ० ५२ इत्यादि में भी यह कथा है। उस मूर्ति को गाडने की दृष्टि से वा कृष्णजी की शरीर दृष्टि से कहा गया है कि—'लै जगन्नाथ पिण्ड नहिं गाड़ा'। ब्रह्मपु० अ० ६७ में ब्रह्माजी का कथन है कि, आदि कल्प में अव्यक्त जन्मवाला मैंने विश्वकर्मा से कहा कि, भगवान् वासुदेव की एक पत्थर की मूर्ति बनाओ कि, जिसका दर्शन करके राक्षसादि से भयभीत मनुष्यादि और इन्द्र पर्यन्त देव भी स्वर्ग में निर्भय होकर बसें। फिर उस प्रतिमा का निर्माण होने पर इन्द्र उसे अपने लोक में ले गये। और उसी की पूजा के बल से वृत्रादि असुरों को नष्ट किये। फिर त्रेता में रावण हुआ। वह तप के बल से इन्द्र को भी जीत कर, उस प्रतिमा को ले आया और विभीषण की प्रार्थना से पूजने के लिये, विभीषण को दे दिया। फिर रावण को मार कर रामजी उस प्रतिमा को लाये और निजलोक की यात्रा के समय समुद्रेश को दे गये। वही प्रतिमा कृष्णावतार के समय समुद्रेश के द्वारा समुद्र के किनारे पुरुषोत्तमपुरी में की गई। और अ० ७२।२६ का श्लोक है कि,

'उज्जहारात्मनः केशौ सितकृष्णौ द्विजोत्तमाः।'

क्षीरशायी भगवान् ने बलराम और कृष्णावतार के लिये श्वेत कृष्ण दो बाल उखारे। जिससे उनके दो बाल तुल्य ये दोनों हुए। इससे कबीर साहब पूर्ण तत्त्व के साथ लगने को कहते हैं ॥ ८ ॥

स्कन्दपु० खं० ६ अध्याय २५१ में कथा है कि—तारकासुर के उपद्रव से देव सब पार्वतीजी की रति में विघ्न किये, तब क्रुद्ध होकर शाप दिया कि—

'मर्त्यलोकं च संप्राप्य प्रतिमासु च सर्वशः।
सर्वे देवाश्च वरदा लोकानां प्रभविष्यथ ॥ १ ॥
यस्माद्विष्णो महेशानस्त्वयाऽपि न निषेधितः।
तस्मात्त्वमपि पाषाणो भविष्यसि न संशयः ॥ २ ॥
हरोऽप्यश्मममयं रूपं प्राप्य लोकविगर्हितम्।
लिङ्गाकारं विप्रशापान्महद् दुःखमवाप्स्यति ॥ ३ ॥
निम्नगा गण्डकी नाम ब्रह्मणो दयिता सुता।
पाषाणसारसंभूता पुण्यदात्री महाजला।
तस्याः सुविमले नीरे तव वासो भविष्यति ॥ ४ ॥

(रमैनी ८१ के अन्तर्गत)

(१)

ब्रह्माजी का धिया (पुत्री) के साथ नशाने की कथा ऐतरेय ब्रा० १३।९ में है कि—प्रजापति ने अपनी पुत्री को भार्या रूप से ध्यान किया कि, जिसका दिव नाम था, या उष नाम था। रजोदर्शनयुक्त मृगीरूप उसके प्रति मृगरूप होकर प्रजापति प्राप्त हुए, इत्यादि।

और स्कन्दपु० खं० ३–१ अ० ४० में कथा है कि—वाक् नामक अपनी पुत्री से भोग की इच्छा ब्रह्मा ने की, तो वह लज्जा से हरिणी हुई। फिर ब्रह्मा हरिण रूप होकर धावा किये, तब शिवजी व्याधरूप होकर, ब्रह्मा के शिरों को पिनाक से काट दिये। फिर सावित्री गायत्री की प्रार्थना से जीवित किये।

शिवपु० सं० २ खं० २ में कथा है कि—ब्रह्माजी की मानसपुत्री संध्या नाम वाली हुई। उसे देखकर ब्रह्मा मोहित हुए। तब उनके पुत्रों के सामने ही शिवजी ने उन्हें बहुत फटकारा। फिर ब्रह्माजी ने स्वयं तप किया और दक्ष से तप करवाया कि जिससे ऐसी स्त्री हो, कि जो शिव को मोहित करे। फिर दक्ष से सती उत्पन्न हुई और उससे शिवजी के विवाह के समय ब्रह्मा भी मोहित हुए और पश्चाताप करने लगे कि, जो दूसरे का अहित चाहता है, उसको अपना भी अहित होता ही है, इत्यादि। और वर्णन है कि, सती के विवाह के समय सती के मुख को देखकर तथा पार्वती के विवाह के समय पार्वती के पैर को देखकर, ब्रह्मा को धातुपात हुआ। और दोनों समय रुद्र मारने के लिये तैयार हुए, तब देव ऋषि सब बचाये। सती के विवाह के समय जो धातुपात हुआ, उससे मेघों की सृष्टि हुई। पार्वती के विवाह के समय ब्रह्मा जी के वीर्य से बालखिल्या ऋषि सब उत्पन्न हुए। और तंत्रवार्तिक में लिखा है कि, विधिनिषेधादि मनुष्य के लिये है, देव प्रजापति के लिये नहीं, इससे कोई दोष नहीं। और प्रजापालन करने से प्रजापति सूर्य का नाम है सो अरुणोदय वेला में उषा (प्रभात) को प्राप्त होते हैं, इत्यादि काल्पनिक अर्थ में तात्पर्य है, इत्यादि ॥ १ ॥

(२)

ब्रह्मपु० खं० गौतमी माहात्म्य अ० १६ में ब्रह्मा जी का कहना है कि, मैं सब कन्याओं में भी अति सुन्दर कन्या रच कर, गौतम जी के पास में पालने के लिये रख दिया और कह दिया कि, इसे पालो। परन्तु जब युवती हो जाय तब मेरे पास लाना। उसे पोस कर निर्विकार वह मुनि मेरे पास लाए, उसे देख कर, सब देव ऋषि को उसे पाने की इच्छा हो गई। तब मैंने कहा कि, सम्पूर्ण पृथिवी की प्रदक्षिणा करके जो प्रथम आवेगा, उसी से इसका विवाह होगा। सब देवादि भूमि की प्रदक्षिणा करने गये और गौतम जी अर्द्ध प्रसूता गौ तथा शिवलिङ्ग की प्रदक्षिणा करके ब्रह्माजी के पास गये और ब्रह्माजी भी पृथिवी की प्रदक्षिणा मान कर विवाह कर दिये। देव सब धीरे २ आये। और अपने २ लोक में गये। परन्तु इन्द्र काम से मोहित होकर ऋषि के आश्रम में ब्राह्मण के वेष से रहने लगे। एक दिन सबेर (प्रभात) के संध्या आदि करके गौतम ऋषि शिष्यों के सहित आश्रम से बाहर गये। और इन्द्र ऋषि का रूप धर कर, अहल्या के साथ रति में प्रवृत्त हो गये। इतने में ऋषि भी बाहर से लौट कर आये, तो अहल्या को नहीं देखा और गृह के रक्षक सब कहने लगे कि आश्चर्य है कि, ऋषि अनेक रूप से रहते हैं, भीतर भी हैं और बाहर से भी आ रहे हैं, इत्यादि। सो सुन कर ऋषि भीतर चले, तब इन्द्र विड़ाल होकर घूमने लगे। डरती हुई अनजान अहल्या भी आई, तब शुष्क नदी होने के लिए अहल्या को शाप दिये। फिर प्रार्थना करने पर बोले कि, गौतमी नदी के संगम होने पर अपने रूप को पावोगी और इन्द्र को सहस्र भग का शाप दिये। फिर बोले कि, गौतमी में स्नान करके सहस्राक्ष होवोगे ॥ ब्रह्म पु० खं० १ अ० ५६ में यही कथा रूपान्तर

से है। प्रायः इस प्रकार की परिमित कथायें तत्तन्माहात्म्य के प्रसङ्ग से बहुत रूप हो गई हैं। वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड सर्ग ४८ में कथा है कि—गौतमजी स्नान करने गये थे, इतने में उनका रूप धरके सहस्राक्ष इन्द्र आये और अहल्या समझ गई, परन्तु दुष्ट भाव से व्यभिचार किया और भाग जाने के लिये कही, परन्तु तब तक ऋषि आ गये और अफल (वृषण रहित) होने के लिये इन्द्र को शाप दिये और प्राणियों से अदृश्य होकर भस्मशायिनी निराहार रहने का शाप[1] अहल्या को दिये और हजार वर्ष के बाद वहाँ रामचन्द्र के जाने से शाप से मुक्ति के लिये कहे और वैसा ही हुआ, इत्यादि। और अध्यात्मरामायण बालकाण्ड सर्ग ५ में है कि, गौतम के ब्रह्मचर्य से संतुष्ट ब्रह्मा गौतम को लोकसुन्दरी कन्या अहल्या दिये और कभी गौतम के बाहर जाने पर, इन्द्र गौतम के वेष से घर में जाकर व्यभिचार किये और मुनिवेष से ही बाहर निकलते समय मुनि उन्हें देखकर, सहस भग के लिये शाप दिये और अहल्या को तप भजन करती हुई अदृश्य रूप से शिला में निराहार रहने का शाप दिये और अनेक हजार वर्ष के बाद जब राम लक्ष्मण सहित इस आश्रम में आयेंगे, तेरा आश्रम रूप शिला पर चढेंगे, तब तुम पाप से मुक्त होगी, राम की परिक्रमा स्तुति नमस्कार से शाप से मुक्त होगी, इत्यादि ॥२॥

(३)

चन्द्रमा की कथा मत्स्यपु० अ० २३ में है कि—ब्रह्मा जी अत्रि ऋषि को सृष्टि करने के लिये आज्ञा दिये, तब तीन देव की उपासना आदि रूप तप ऋषि ने किया, जिससे सोम (चन्द्रमा) उत्पन्न हुए। फिर ऋषि देवादि सोम को अपना स्वामी बनाये, दक्ष कन्या प्रदान किये, फिर सोम राजसूय यज्ञ किये। यज्ञ की समाप्ति होने पर, सोम के रूप से मोहित होकर, लक्ष्मी, सिनीवाली, द्युति, तुष्टि, प्रभा, कुहू, कीर्ति, धृति, आदि देवियाँ अपने २ पतियों को छोड़ कर, स्वयं सोम को सेवने लगीं और सोम भी उनमें आसक्त हुए और उनके पति लोक भी कुछ कर नहीं सके। उस के बाद देवगुरु की पत्नी तारा को किसी बाग में देख कर, सोम उसे पकड़ लिया, तारा भी उस में अनुरक्त हो गई। देव गुरु भी कुछ कर न सके, दीनतापूर्वक माँगे, तो भी सोम नहीं दिया, तब शिवजी क्रुद्ध होकर युद्ध करने लगे, फिर ब्रह्मा जी के समझाने से युद्ध उपरत हुआ और वृहस्पति को तारा मिली॥ पद्मपु० खं० १ अ० १२ में भी सोम की यह कथा है ॥ विष्णुपुराण अंश ४।६ में कथा है, कि—ब्रह्मा के पुत्र अत्रि और अत्रि के पुत्र सोम (चन्द्रमा) हुए। ब्रह्माजी उन्हें सब औषधि द्विज नक्षत्रों के राज्याभिषेक करके राजा बनाये। फिर सोम ने राजसूय यज्ञ किया। जिससे प्रतिष्ठा के बढ़ जाने से उनमें मद का प्रवेश हो गया और मद से देवगुरु वृहस्पति की स्त्री तारा को हर लिये और वृहस्पति ब्रह्माजी की प्रेरणा द्वारा सब देव ऋषि के कहने पर भी नहीं दिये। फिर वृहस्पति के द्वेषी शुक्राचार्य चन्द्रमा के पक्ष में हो गये और सब दैत्य दानव भी चन्द्रमा के पक्ष में हुए। और अंगिरा के शिष्य रुद्र वृहस्पति के पक्ष में हुए तथा सब देव भी वृहस्पति के पक्ष में हुए। इस प्रकार तारा के लिये महान्

---

१ तंत्रवार्तिक में अहल्यायां मैत्रेयामिन्द्रो जारः) यहाँ प्रतापी होने से सूर्य को इन्द्र कहा गया है, और अहनि (दिन) में लीन होने से रात्रि को अहल्या कहा है, उसे नष्ट करने से सूर्य जार हैं, व्यभिचार से नहीं, इत्यादि विचार है।

युद्ध हुआ, जिससे सब संसार भयभीत होकर ब्रह्मा जी के शरण में गया, तब ब्रह्मा जी युद्ध को रोक कर, तारा को बृहस्पति के प्रति दिलाये। बृहस्पति ने उसे गर्भवती देख कर, गर्भ को त्यागने के लिये कहा। फिर उसने इषीकास्तम्ब में गर्भ को त्यागा, गर्भ (बालक) को सुन्दर देख कर, सोम बृहस्पति दोनों को लेने की इच्छा हुई, परन्तु पूछने से सोम का वीर्यज ठहरा, इससे सोमपुत्र बुध कहाये। देवी भागवत स्क० १।११ में कथा है कि—तारा चन्द्रमा को यजमान जानकर, उनके घर में गई और वहाँ दोनों कामासक्त हो गये, और बृहस्पति के कहने से चन्द्रमा नहीं दिये, तब युद्ध होने पर भृगु ऋषि के कहने से दिये, इत्यादि ॥ ३ ॥

(४)

महाभारत आदिपर्व अ० ६७ में कथा है कि—वसुदेव जी के पिता शूरसेन थे, उनकी पृथा नाम की अपनी पुत्री थी, उसे अपनी फुआ (पिता की बहन) का पुत्र कुन्तिभोज के प्रति अर्पण किये; क्योंकि कुन्तिभोज अपत्य रहित थे और शूरसेन प्रथम से करार (प्रतिज्ञा) किये थे कि, प्रथम जो अपत्य होगा, सो मैं आपको दूँगा, पृथा ही फिर कुन्ती कहाने लगी। और वहाँ दुर्वासा ऋषि को बड़ी सेवा भक्ति उसने किया, तब ऋषि प्रसन्न होकर बहुत मन्त्रादि कुन्ती को बताये। फिर एकान्त में मन्त्र की परीक्षा के लिये कुन्ती ने मन्त्रपूर्वक सूर्य देव का आह्वान किया, तब (हरि) सूर्यदेव मनुष्य शरीर से आये और मोह से रति के लिये प्रवृत्त हुए, जिससे कर्ण की उत्पत्ति कुन्ती की कुमार अवस्था में ही हुई। देवी भागवत स्क० २।६ में भी है कि, कुन्ती शूरसेन की पुत्री थी, कुन्तिभोज उसे दत्तक लेकर, अपनी पुत्री माने थे और कुन्तीभोज के ही घर में कुन्ती ने दुर्वासा की सेवा से मन्त्र प्राप्त किया था, इत्यादि ॥ ४ ॥

(शब्द ३ के अन्तर्गत)

(१)

यह कथा प्रथम आ गई है कि, तुलसी का पति शंखचूड़ था, उसके मरने पर उसकी हड्डी से शंख हुआ, वही शंखासुर था। और भागवत स्कन्ध १० पूर्वार्ध अ० ३४ में भी कुबेर के अनुचर शंखचूड़ के बध की भी कथा है कि, वह गोपियों को ले भागा था, फिर उसे मुष्टिका से ही मारकर भगवान् उसके शिर में रत्न था, सो ले लिये ॥ १ ॥

(२)

स्तम्भ फोर कर बाहर होने की, नख से उदर विदारने की कथा, श्रीमद् भागवत स्क० ७ अ० ८ में है कि—प्रह्लाद असुर के लड़कों को भी भगवद्-भक्ति का उपदेश दिये, सो सुन कर उनके पिता उन्हें मारने के लिये निश्चय किया और बहुत फटकारा और कहा कि, क्रुद्ध होने पर हमसे ईश्वर सहित तीनों लोक काँपता है और तुम किसके बल से मेरी आज्ञा का उलंघन किया है, इत्यादि। तब प्रह्लाद बोले कि, वह भगवान् मेरा ही बल नहीं है, किन्तु आपका भी बल वही हैं और सब बलियों का बल है। स्थावर

जंगम पर अवर ब्रह्मादि सब उसके वश में हैं, भगवान् ही सृष्टि आदि करते हैं, आसुर-भाव आप छोड़ो तो कोई आपके शत्रु नहीं है, इत्यादि। इन बातों को सुनकर, हिरण्यकशिपु क्रुद्ध होकर बोला कि, अब तुम अवश्य मरने की इच्छावाला हो, इसीसे अधिक विरुद्ध कथा करते हो, इत्यादि। और तुमने जो हमसे भिन्न जगदीश्वर कहा है, सो कहाँ है, यदि सर्वत्र है, तो इस स्तम्भ में क्यों नहीं दिखता है, अब मैं तेरा शिर काटूँगा, जिसे तुम अपना रक्षक मानता है, देखें कि वह तुम्हारी रक्षा करता है, इत्यादि कह कर, तलवार लेकर, आसन पर से उठा और अपनी मुष्टि से स्तम्भ में मारा, उसी समय उस स्तम्भ में भयानक शब्द हुआ जिससे सब डर गये और प्रथम कुछ नहीं दिखा, फिर अद्भुत स्वरूप नृसिंह दिख पड़े। जिससे वह असुर आश्चर्य में पड़ गया, अपनी मृत्यु की शंका करने लगा, गदा लेकर युद्ध के लिये तैयार हुआ, एक बार भगवान् के हाथ में जाकर भी निकल गया। फिर नृसिंह जी की गर्जना से उसकी आँखें ढप गईं, तब भगवान् पकड़ कर, अस्त्रादि से अवध्यता का वर के कारण से द्वार के ऊपर अपने जंघे पर गिरा कर नखों से उदर फार दिये, इत्यादि॥ २॥

(३)

कंस बध की कथा श्रीमद्भागवत स्क० १० पूर्वार्ध अ० ४४ में है कि—चाणूर मुष्टिकादि मल्लों के नष्ट होने पर कंस ने क्रुद्ध होकर कहा कि दुर्वृत्त वसुदेव के पुत्रों को यहाँ से निकालो, गोपों के धन को हर लो, दुर्बुद्धि नन्द को बाँधो और वसुदेव को शीघ्र मारो, इत्यादि। सो सुन कर क्रुद्ध कृष्णदेव, उछल कर अति शीघ्रता से कंस के ऊँचे मचान पर चढ़ गये फिर उन्हें प्रवेश करते हुए देख कर, अपना मृत्यु समझ कर, कंस ढाल तलवार, आसन पर से उठ कर लिया। फिर तरवार लेकर घूमता हुआ कंस को कृष्णजी ने बल से पकड़ लिया। और केशों में पकड़ कर, मंच पर से नीचे गिराया और आप उसके ऊपर गिरे। इतने में उसका प्राण छूट गया, इत्यादि॥ ३॥



(शब्द ३० के अन्तर्गत)

वाल्मीक ऋषि की कथा स्कन्दपु० खं० ५ अ० २४ में है कि—भृगुवंश में सुमति नामक ब्राह्मण था, कौशिकी उसकी स्त्री थी, अग्निशर्मा उसका पुत्र था। कभी अकाल पड़ने पर वह सुमति स्त्री, पुत्र सहित दक्षिण दिशा में गया। और अहीर चोरों के साथ जंगल में रहने लगा। इससे अग्निशर्मा को चोरों के साथ संगति हो गई। उस मार्ग से आनेवालों को वह पापी अग्निशर्मा मारने लगा। किसी समय तीर्थयात्रा के प्रसंग से सप्तर्षि भी उसी मार्ग से आये। उन्हें मारने की इच्छापूर्वक अग्निशर्मा ने कहा कि, वस्त्र छाता आदि धर दो और तुम सब मारे जावोगे। अत्रि ऋषि बोले कि, हम सब तीर्थयात्रा में जा रहे हैं, हम सबको दुःख देनारूप पाप तेरे मन में क्यों भावता है। अग्निशर्मा बोला कि, मेरे माता पिता पुत्र हैं, उनके पालन का भाव मेरे मन में रहता है। ऋषि बोले कि, जाकर पिता आदि से पूछो कि, तुम सब के लिये मैं पाप करता हूँ, सो किस २ को लगेगा। अग्निशर्मा को कुछ होश हुआ। जाकर पूछा। सब कह दिये कि, पाप तुम को

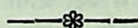
होगा, मैं क्या जानता हूँ। यह सुनकर ऋषियों के शरण में आया। ध्यान और रामनाम महामन्त्र ऋषि बताये। वह ऐसा ध्यानस्थ हुआ कि, उसके ऊपर बल्मीक (दीमक) हो गया। इससे बाल्मीक कहाया।

और स्कन्दपु० खं० ६ अ० १२४ में कथा है कि—चमत्कारपुर में माण्डव्य वंश के लोहजंग नामक ब्राह्मण था। उसकी स्त्री पतिव्रता थी, माता पिता जीवित थे। एक समय अकाल पड़ने पर, आनर्त देश में गया। वहाँ भी भोजन वस्त्र की प्राप्ति नहीं होने पर, माता आदि की रक्षा के लिये, चोरी डकैती करने लगा। फिर अच्छा समय होने पर भी लोहजंग का वही काम जारी रहा। उसी समय तीर्थयात्रा में जाते हुए सप्तर्षि उसे मिल गये, उन्हें वह मारने दौड़ा। फिर उसके यज्ञोपवीत को देखकर ऋषि सब बोले कि तुम ब्राह्मण होकर यह कुकर्म क्यों करते हो। उसने कहा कि, कुटुम्ब का पोषण के लिये यह कर्म करता हूँ। ऋषियों ने कहा कि, जाकर सबसे पूछो कि, इस पाप के वे सब भागी हैं कि नहीं। इस बात को सुनकर वह भयभीत हुआ और जाकर सब से पूछा, तो पाप के भागीपन को सब नहीं स्वीकार किया। फिर वह पश्चात्ताप करता हुआ ऋषियों के पास में आया और अपना कल्याण के लिये प्रार्थना किया। तब हँसी के स्वभाववाला पुलह मुनिने उससे कहा कि, 'झाटघोट' यह मन्त्र सब सिद्धि को देनेवाला है, इसीको सदा जपो। फिर मुनि सब वहाँ से चले गये। वह उसको जपते २ देहादि को भूल गया। उसके देह पर वल्मीक हो गया, इससे बाल्मीक कहाया, महासिद्ध ज्ञानी हुआ, इत्यादि।

स्कन्दपु० खं० ७ अ० २७८ में है कि—शमीमुख नामा ब्राह्मण के वैशाख नामा पुत्र था। गुरु सेवा से अन्य कोई शुभ कर्म नहीं करता था। माता पिता के वृद्ध होने पर, चोरी आदि से पालने लगा। कभी सप्तर्षि मिल गये, तो उन्हें भी मारना चाहा, तब वे बोले कि, जिसका पोषण के लिये पाप करते हो, उससे पूछो कि, वह पाप के साझी हिस्सेदार हैं कि नहीं। पूछने पर, पिता आदि बोले कि,

'एकः पापानि कुरुते फलं भुंक्ते महाजनः।
भोक्तारो विप्रमुच्यन्ते कर्ता दोषेण लिप्यते ॥' इत्यादि।

सो सुनकर, वैशाख ऋषियों के पास में गया, विनय करने पर (झाटघोट) मन्त्र सुनाये, उसीको जप कर वह बाल्मीक ऋषि हुआ, इत्यादि।



(शब्द ३७ के अन्तर्गत)

(१)

पीपाजी की कथा भक्तमाल में है कि—पीपाजी प्रथम राजा थे और दुर्गा के भक्त थे। फिर संसार से उपराम होकर, दुर्गाजी से भगवद्भक्ति का उपाय पूछा। तब दुर्गाजी ने कहा कि, तुम रामानन्दजी का शिष्य होवो, तब भगवद्भक्ति मिलेगी। फिर राजा काशी में रामानन्दस्वामी के यहाँ शिष्य होने के लिये गया, तब कुछ परीक्षा करके स्वामीजी ने शिष्य बना दिये और साधुसेवा के लिये आज्ञा देकर घर लौटा दिये। तब राजा घर

जाकर साधुसेवा करने लगा। फिर एक वर्ष के बाद स्वामी रामानन्दजी उनके मकान पर (घर) शिष्यों सहित गये। तब पीपाजी भी विरक्त साधु हो गये। परन्तु बारह रानी में से छोटी रानी सीता उनका साथ नहीं छोड़ी, वह भी विरक्ता हो गई और दोनों परम उदार चरित्र किये; तथा भक्ति बल से परम सिद्धि पाये, इत्यादि ॥ १ ॥

(२)

कविचक्रवर्ती जयदेवजी की कथा भक्तमाल में है कि—जयदेवजी रामकृष्ण गीत-गोविन्द के कर्ता परम भक्त हुए हैं। उनको कभी मार्ग में ठग मिल गया। उस समय उनके पास में कुछ द्रव्य था। ठगों ने पूछा कि, तुम कहाँ जाते हो, जयदेवजी ने कहा कि, जहाँ तुम जावोगे, वहाँ ही मैं भी जाता हूँ और उन ठगों को ठग जानकर भी जो कुछ द्रव्य था, सो उन्हें दे दिया, कि पाप का जड़रूप धन को त्यागना ही उचित है। ठगों ने समझा कि यह कपटी है, हमें द्रव्य देकर, फिर नगर में जाकर हमें पकड़वा देगा। इससे इसे मार डालना चाहिये। फिर कुछ विचार कर जयदेवजी के हाथ पाँव काट कर, निर्जल कूप में उन्हें डाल दिया। प्रारब्ध का फल समझ कर जयदेवजी प्रसन्न ही रहे। फिर दैवयोग से वहाँ एक राजा आया। उन्हें कूप से निकाल कर, सज्जन भक्त समझ कर, अपने घर ले गया। और सेवा करने लगा। फिर राजा को सन्तसेवी जानकर, वे ठग सब भी सन्त का वेष बना कर वहाँ आये। जयदेवजी उन्हें पहचान गये, तो भी उनकी पूर्ण सेवा के लिये राजा को आज्ञा दिये। परन्तु ठग भी जयदेवजी को पहचान लिये। इससे भय के मारे शीघ्र विदाई माँगने लगे। तब जयदेवजी ने पूर्ण द्रव्य दिलवा कर, विदा करवाये। और सिपाही को कहे कि इनके घर तक इन्हें पहुँचावो, ये मेरे भाई हैं, इत्यादि। फिर पहुँचाने वाला सिपाही रास्ते में उनसे पूछा कि, जयदेवजी से आप सब को कौन सम्बन्ध है कि, जिससे इतना सत्कार करवाया है। ठगों ने कहा कि, हम सब एक राजा के पास नौकर थे। एक अपराध में राजा ने इन्हें मारने का हुकुम हमें दिया, हमने इनके हाथ पैर काट कर छोड़ दिया। इसीसे सत्कार करवाये हैं। इतना कहते ही ठग सब भूमि में धँस गये। सो सुन कर जयदेवजी हाथ पैर पटकने लगे, फिर ईश कृपा से पूर्व तुल्य हाथ पैर युक्त हो गये, इत्यादि ॥ २ ॥

(३)

नामदेवजी की कथा भक्तमाल में है कि—छिपा वामदेव भक्तजी के नाती (दौहित्र) नामदेव भक्त हुए हैं। जिनके विषय में कहा जाता है कि,

'नामदेवजी के छाजन छाया। मन्दिर फिराया गाय जिलाया ॥'

नामदेवजी के घर में अचानक ही अग्नि लग गई, तब अग्नि से बची हुई वस्तु को भी नामदेवजी ने स्वयं अग्नि में डाल दिया कि, 'हे भगवत् स्वरूप अग्निदेव! यह भी मैं आपको भेंट करता हूँ, इसको स्वीकार कीजिये, इस आपके घर में अन्य तो आही नहीं सकता है।' फिर इस भावना से प्रसन्न होकर भगवान् स्वयं उनके घर छाये। और उत्सव के समय नामदेवजी भगवद् मन्दिर में गये। तहाँ विचारा कि जूता को बाहर छोड़ने से उसमें मन लगा रहेगा, इससे उसे कमर में बाँध लिया। सो जान कर, अन्य लोकों ने उन्हें धक्का देखकर निकाल दिया। फिर नाम देवजी ने प्रसन्नता पूर्वक मन्दिर के पीछे जाकर भजन करने लगे, तो जड़ से मन्दिर फिर गया। नामदेवजी के सन्मुख हो

गया। और नाना के कहीं जाने पर, नामदेवजी भगवान् को भोग लगाये, परन्तु भगवान् प्रकट होकर दूध नहीं पिये, तो नामदेवजी भी भोजन नहीं किये, तीसरे दिन भी भगवान् के दूध नहीं पीने पर नामदेवजी चाकू से अपना गला काटना चाहा। तब प्रेमवश भगवान् प्रगट हुए और दूध पीये। और उनके नाना के आने पर, यह वृत्तान्त सर्वत्र फैल गया सो सुनकर यवन बादशाह परीक्षा के लिये मरी हुई गौ को जिलाने के लिये कहा, तो वह भी भगवत्-कृपा से जीवित हो गई, इत्यादि ॥ ३ ॥

(शब्द ४० के अन्तर्गत)

(१)

कपि (हनुमान्) जी की कथा ब्रह्मपु० गौतमी मा० अ० १४ में है कि ब्रह्मगिरि के पास में अञ्जन नामक पर्वत है, किसी मुनि के शाप से भ्रष्ट अप्सरा अंजनी नामक वानरी होकर वहाँ रहती थी, उसके पति का नाम केसरी था, सो कभी दक्षिण समुद्र की तरफ चला गया और उसके बाद अंजन पर्वत पर अगस्त्य मुनि आये और अंजनी की पूजा से प्रसन्न होकर, वर माँगने के लिये कहे, तब अंजनी ने लोकोपकारक बली पुत्र मांगा, फिर उसके बाद वायुदेव आये और कामवश होकर, उससे रमण किये, जिससे हनुमानजी की उत्पत्ति हुई। और वायुदेव के कहने से, अंजनी गौतमी में स्नान किया, उससे शाप से मुक्त हो गई।

भविष्य पु० पर्व ३। अ० १३ में है कि शिव जी मानसरोवर के उत्तर पर्वत पर गये और वहाँ ही अंजनी रहती थी, तथा उसके पति केसरी रहता था, केशरी के मुख में किसी प्रकार रुद्र के घोर तेज प्रवेश किया और वायुदेव भी केसरी के देह में प्रवेश किये, उसके बाद वह केसरी कामातुर होकर अंजनी से रति किया, जिससे हनुमान जी की उत्पत्ति हुई। फिर कुरूप देख कर माता त्याग दिया. तब हनुमान जी ने उछल कर सूर्य को पकड़ा, फिर रावण युद्ध किया, कि जिससे सूर्य को छोड़ कर रावण से ही लड़ने लगे, तब रावण डर कर भगा, इत्यादि।

शिव पु० संहिता ३। अ० २० में है कि—मोहिनीरूप का दर्शन से जो शिव जी का वीर्य गिरा था, उसी को सप्तर्षि लोक पत्ते में रख दिये थे, उसी को अंजनी में उसके कान द्वारा स्थापित किये कि जिससे रुद्रावतार हनुमान हुये, इत्यादि ॥ १ ॥

(२)

ब्रह्मवैवर्त पु० ब्रह्मखं० अ० ८ में नारद जी की कथा है कि—ब्रह्मा जी ने सनकादि आदि की उत्पत्ति करके, उनसे सृष्टि करने के लिये कहा, तो वे लोक सृष्टि नहीं करके तप परायण हो गये। उसके बाद अन्य ऋषियों की और नारद जी की सृष्टि करके, सृष्टि करने के लिये कहा तो, नारद जी ने कहा कि, पहले मेरे पूर्वजों को लाइये और मैं इस सृष्टि में नहीं लगूँगा, इत्यादि। तब ब्रह्मा जी ने ज्ञान का लोप (अभाव) होने का, कामी गन्धर्व होने का और दासी पुत्र होने का शाप दिया, फिर नारद जी ने तीन कल्प तक अपूज्यता का शाप दिया, इत्यादि। अ० २३ में है कि शाप से मुक्त होने पर फिर भी नारद

जी ब्रह्मा जी के पुत्र हुए, तब फिर भी ब्रह्माजी विवाहके लिये कहे, परन्तु किसी प्रकार विनयादिसे छुटकारा पाये और तपके लिये पधारे ॥ २ ॥

(३)

लिङ्ग पु० अ० ९८ में है कि, सहस्रनामादि द्वारा शिव की पूजा करने से विष्णु भगवान् को चक्र मिला था ॥ और उत्तरार्द्ध अ० ४ में,

'अन्यभक्तसहस्रेभ्यो विष्णुभक्तो विशिष्यते ।
विष्णुभक्तसहस्रेभ्यो रुद्रभक्तो विशिष्यते ॥
रुद्रभक्तात्परतरो नास्ति लोके न संशयः ।' श्लोक २०

इसी की पुष्टि के लिये, उत्तरार्द्ध अ० ५ में है कि, त्रिशंकु की स्त्री पद्मावती मन वचन शरीर से सदा विष्णु भगवान के भजन करती थी। कभी द्वादशी के उपवास पूर्वक पति के साथ विष्णु भगवान के मन्दिर में सोई थी, स्वप्न में भगवान् बोले कि, क्या चाहती है, तब पद्मावती बोली कि, वैष्णव पुत्र चाहती हूँ। इत्यादि फिर भगवान् तथास्तु कह कर फल दिये, जागने पर फल देख कर, पति से वृत्तान्त सुना कर, फल खा गई, कि जिससे अम्बरीष की उत्पत्ति हुई, पिता के मरने पर अम्बरीष मन्त्रियों पर राज्यभार को छोड़ कर तप किये, हृदय में भगवान् की धारणा परायण हुए। तब भगवान् इन्द्ररूप होकर वर देने आये। अम्बरीष बोले कि, मैं आपकी आराधना नहीं करता हूँ, न आप से कुछ चाहता ही हूँ, तब भगवान् अपना स्वरूप को धारण किये, तब राजा स्तुति करने लगा, फिर भगवान् वर माँगने के लिये कहे, तब वर माँगा कि जैसे आप भव (शिव) के भक्त तत्परायण हैं, वैसा ही मैं आपका भक्त होऊँ, इत्यादि। फिर तथास्तु, ऐसा कह कर और सब दुःख से रक्षा के लिये शिव से प्राप्त चक्र राजा को देकर गुप्त हो गये। फिर राज्य करता हुआ राजा की श्रीमती नाम की पुत्री हुई। कुछ दिन के बाद नारद पर्वत दोनों ऋषि राजा के यहाँ आये, राजपुत्री को देख कर दोनों एकान्त में राजा से उसके लिये प्रार्थना किये, राजा दोनों को प्रणाम करके कहा कि, यह कन्या दोनों में से जिसको वरेगी, उसको मैं दूँगा। तथास्तु, इस प्रकार कह कर, कल्ह आने का वचन देकर दोनों गये और विष्णु लोक में भगवान् विष्णु के पास पहुँचे। एकान्त में नारद जी भगवान् से बोले कि, आपका भक्त अम्बरीष की कन्या से मैं और पर्वत दोनों विवाह के लिये कहा, तब राजा बोला है कि, कन्या जिसको वरेगी उसके साथ मैं विवाह कर दूँगा, इससे आप मेरी हित करें और पर्वत के मुख को बानर के समान कर दें। यदि मेरी भलाई चाहें। तथास्तु ऐसा कह कर, भगवान् नारद को विदा किये, अपने को कृतकृत्य मान कर मुनि अयोध्या चले। बाद में पर्वत भी एकान्त में सब समाचार सुना कर, भगवान् से बोले कि, नारद के मुख को गोलांगूल के समान कर दें। तब उनसे भी तथास्तु कह कर बिदा किये, फिर दोनों अयोध्या पहुँचे तब राजा दोनों को देख कर नगरी की सजावट विवाह के समान करके सभा में कन्या को बुलाया और कहा कि, इन दोनों महात्माओं में से जिसे चाहती हो, उसे वरो। कन्या दोनों के मुख को विकृत देख कर काँपने लगी। पूछने पर बोली कि, ये नारद पर्वत मुनि नहीं है, उन दोनों को मैं देखती ही नहीं हूँ; किन्तु इन दोनों के बीच में एक षोडश वर्ष के सुन्दर पुरुष को देखती हूँ, इत्यादि। नारद पर्वत उस मध्यगत पुरुष के

लक्षण कन्या से पूछे तो वह बताई। बाद में दोनों चिन्ताग्रस्त हुए, शोचने लगे कि, यह किसकी माया है, इत्यादि। कन्या उस मध्यगत पुरुष को वरी और तुरन्त अदृश्य हो गई। भगवान् के यहाँ पहुँच गई। फिर दोनों मुनि भगवान् के यहाँ चले, सो जान कर भगवान् श्रीमती को लुप्त कर दिये, दोनों ऋषि जाकर बोले कि, हमारा आपने क्या प्रिय किया, हमें मोहित करके आप ही कन्या ले आये। भगवान् अंगुलियों से कान बन्द करके बोले कि, आप यह क्या बोल रहे हैं, इत्यादि। फिर मुनि बोले कि, वानरादि के मुख आप क्यों किये ? भगवान् बोले कि, आप दोनों के कथनानुसार दोनों का हित ही किया। मुनि बोले कि, वह कन्या कौन ले गया। भगवान् बोले कि मायावी अनेकों महापुरुष हैं, कोई ले गया होगा, इत्यादि। तब मुनि बोले कि, आपका दोष नहीं है, किन्तु अम्बरीष की ही माया है। ऐसा कह कर, राजा के पास में चले और जाकर बोले कि, तुम हमें बोला कर अन्य किसी को कन्या दिये हो, इससे अपने को यथार्थ रूप से नहीं जानोंगे, तम तेरा अभिभव करेगा, इत्यादि। तब राजा के प्रति तमोराशि प्रगट हुआ, इतने में तम के प्रति विष्णुदेव का चक्र धावा किया, तब तम और चक्र मुनियों के पीछे लगा, फिर मुनि लोकों में भ्रमते हुए, त्राहि २ करके भगवान् के शरण में प्राप्त हुए। भगवान् ने चक्र और तम का निवारण किया और भगवान् बोले कि, ऋषि का वचन अन्यथा नहीं हो सकता, इससे जब अम्बरीष के वंश में मैं राम होऊंगा, तब यह तम मुझे प्राप्त होगा, इत्यादि। इसके वाद शोकयुक्त दोनों मुनि चले गये। जन्म भर ब्रह्मचर्य का नियम किये और रामाऽवतार में विष्णु अपने को भूल गये। नारद पर्वत कुछ दिन में विष्णु की माया को समझ कर, उसकी निन्दा करके रुद्रभक्त हो गए, इत्यादि ॥ ३ ॥

(४)

शिवपुराण सं० ३ अ० १९ में कथा है कि—ब्रह्माजी के पुत्र अत्रिजी ब्रह्माजी की आज्ञा से ही तप करते थे। एक परमात्मा से पुत्र के लिये प्रार्थना करते थे। तप के तेज वढ़ने पर, सब देव सहित ब्रह्मा विष्णु भगवान् के पास गये, फिर सब शिव के पास गये, उनसे सब समाचार सुनाने पर, तीनों देव अत्रि जी के पास गये। अत्रि ऋषि ने तीनों को नमस्कार किया और सत्कार करके बोले कि, मैंने तो एक ईश्वर का ध्यान किया था, आप तीनों कैसे आये। त्रिदेव बोले कि, आपका ध्यान के अनुसार ही आये हैं, हम तीनों तुल्य हैं, तीनों के अंश से आप के पुत्र होंगे। रुद्र के अंश से दुर्वासा हुए, सो अम्बरीष की परीक्षा के लिये एकादशी की पारणा समय द्वादशी के दिन थोड़ा पहले पहुँचे और भोजन के लिए निमन्त्रण पाकर, स्नान करने गये, वहाँ देर कर दिये, तब तक राजा जल पी लिया, इससे आने पर ऋषि क्रुद्ध हुए, तब चक्र चलना चाहा, इतने में आकाशवाणी हुई कि, दुर्वासा को साक्षात् शिवरूप समझो और चक्र को शान्त करो, ये परीक्षा के लिए आये हैं, इस ऋषि के शरण में प्राप्त हो, नहीं तो प्रलय होगा। फिर राजा चक्र की स्तुति किया, चक्र शान्त हुआ, इत्यादि। यही दुर्वासा रामचन्द्रजी की परीक्षा के लिए कालागमन के समय गए थे। और इनके स्नानसमय में कभी लंगोटी दह गई थी, तब द्रौपदी अपने कपड़े में से फाड़ कर परदा के लिए दी थी कि, जिससे वस्त्रापहरण के समय वस्त्र का ढेर लगा, इत्यादि।

श्रीमद् भागवत स्क० ९ अ० ४–५ में भी नाभाग पुत्र अम्बरीष की कथा है, सो दूसरे प्रकार से है। वहाँ है कि—एकादशी उपवास के बाद राजा पारणा के लिए तैयार था, तब दुर्वासा आये और आवश्यक क्रिया के लिये निमन्त्रित होने पर गये, परन्तु जप ध्यान में देर हो गया, तो राजा अन्य विद्वानों से पूछ कर जल से पारणा किया। आने पर ऋषि इस बात को जानकर क्रोधपूर्वक जटा से कृत्या (मारक देव) को उत्पन्न किये। फिर चक्र उस कृत्या को नष्ट करके ऋषि के पीछे लगा। ब्रह्माजी शिवजी के यहाँ ऋषि गये, कोई रक्षक नहीं हुए, भगवान् विष्णु के यहाँ गये, वे भी अपने को भक्ताधीन बताये, रक्षा नहीं किये, और अम्बरीष के यहाँ भेजे, फिर अम्बरीष के पाद पकड़ने से ऋषि का प्राण बचा, इत्यादि ॥ ४ ॥

(५)

विष्णु पु० अं० ३ अ० ५ में है कि—याज्ञवल्क्य ऋषि ब्रह्मरात के पुत्र थे और व्यास जी के शिष्य वैशंपायन के शिष्य थे। एक समय ऋषि सब महामेरु पर सभा किये, और नियम किये कि, इस सभा में जो ऋषि नहीं आवेगा, उसको सात रात में ब्रह्महत्या की प्राप्ति होगी। वहाँ वैशंपायन जी नहीं जा सके और अपने भगिने को पैर से थोड़ा मारा, वह छूते ही दैवयोग से मर गया, तब वैशंपायन जी ने सब शिष्यों को कहा कि, इस ब्रह्म हत्या की निवृत्ति के लिये तुम सब व्रत करो। तब याज्ञवल्क्य जी ने कहा कि, इन अल्प-तेजवाले ब्राह्मणों को कष्ट देने से क्या फल है, मैं ही इस व्रत को करूंगा। तब गुरुने कहा कि, इन ब्रह्मणों के अपमान करनेवाला, इन्हें अल्पतेजा कहने वाला, तेरे ऐसा शिष्य से हमें काम नहीं है, जो हम से पढे हो, सो हमें फेर दो। याज्ञवल्क्य जी ने कहा कि, मैंने तो भक्ति से कहा था; परन्तु आपकी ऐसी ही इच्छा है, तो अपनी विद्या लीजिये, ऐसा कह कर रुधिर युक्त मन्त्रों को त्यागा, अन्य शिष्य तित्तिर बनकर उस विद्या का ग्रहण किये, सो तैत्तिरीय श्रुति हुई। फिर तप करके याज्ञवल्क्य जी ने सूर्य से यजुर्वेद पढ़ा, सूर्य अश्वरूप होकर पढ़ाये, इससे उसका बाजी शाखा नाम पड़ा ॥ ३ ॥

(४)

विष्णु पु० अंश २ अ० १३ में जड़ भरत की कथा है कि—राजा भरत राज्य छोड़ कर, सालग्राम नामक तीर्थ में विरक्तरूप से रहते थे और अहिंसादि धर्म मनोनिरोध में पूर्ण स्थिति वाला भक्तियुक्त थे। योग जप तप कर्म में पूर्ण स्थिति पाए थे। एक दिन नदी में स्नान करने गए, स्नान करके संध्या आदि कर चुके, इतने में पूर्ण गर्भवती एक मृगी वहाँ जल पीने आई, उसके जल पी लेने पर, सिंह का भयानक शब्द हुआ कि, जससे डर कर वह मृगी पानी में कूद पड़ी, और उसका गर्भ (बच्चा) नदी में गिर गया, आप वह नदी के पार होकर भय और व्यथा से मर गई। उसे मरी हुई देख कर राजा उसके बच्चा को आश्रम में लाकर पोषने लगे और उसमें स्नेह से आसक्त हो गये। इससे मर कर मृग हुए, परन्तु तपोबल से स्मृति बनी रही, इससे जातिस्मर मृग हुए, मृगत्व का हेतु कर्म को भोग कर, जातिस्मर ब्राह्मण हुए। बहुत अच्छा कुल में जन्म हुआ, आत्मदर्शी ज्ञानी योगी जन्म से ही हुए, इससे सङ्ग के भय से जड़ (अज्ञ) तुल्य रहने लगे, पिता के पढ़ाने आदि पर भी पढ़ना आदि पसन्द नहीं किये। पिता के मरने पर जो कोई काम करावे

सो काम कर देते थे और जड उन्मत्त के समान रहने लगे। उन्हें वैसा देख कर सौवीर राजा के क्षत्ता (सारथी) उन्हें देवी का बलिदान देना चाहा, तो देवी उस क्षत्ता को ही नष्ट कर दिया। फिर वह राजा उपदेश लेने के लिए कपिलजी के आश्रम में जानेके लिए तैयारी किया, तब सिपाही लोग उस महात्मा को भी मोटा देख मर वेगार में पकड़ लिया और पालकी ढोने में लगा दिया। पापक्षय की इच्छा से वे भी कहारों के साथ पालकी ढोने लगे, परन्तु उस काम से नहीं परिचित होने के कारण तथा भूमि देख कर चलने से पालकी टेंढी हो जाने पर, राजा ने कहा कि—संभार कर चलो, मोटे तो हो क्या इतना परिश्रम भी नहीं सह सकते हो। फिर ब्राह्मण ने कहा, ये स्थूलता आदि देह के धर्म हैं, मुझमें स्थूलता आदि नहीं हैं, इत्यादि। फिर राजा चकित होकर, पालकी से उतर गया और पाँव पड़ के उनसे ही उपदेश लिया। नारदीयपु० पूर्व ख० अ० ४८ में और श्रीमद् भागवत स्क० ५ अ० ७ इत्यादि में भी यह कथा विस्तार से है। भागवत में चक्रनदी (गंडकी) के पास पुलहाश्रम के उपवन में भरतराजा का निवास लिखा है ॥४॥

(५)

विष्णु पु० अंश १ अ० ११ में ध्रुव की कथा है कि—स्वायंभुव मनु के उत्तानपाद पुत्र थे उत्तानपाद को प्यारी सुरुचि नामक स्त्री से उत्तम नामक पुत्र हुआ और सुनीति नामक स्त्री से ध्रुव नामक पुत्र हुआ। कभी राजा उत्तम को गोद में खेला रहा था, उसी समय अपमानित सुनीति के पुत्र ध्रुव भी राजा के गोद में जाने के लिये यत्न करने लगे। सुरुचि के सामने राजा ने उनका आदर नहीं किया और सुरुचि बोली कि, तुम व्यर्थ यत्न करते हो, तुम दूसरी स्त्री के गर्भज हो, मेरा गर्भज पुत्र तुम होता तो राजासन मिलता, इत्यादि। सो सुन कर क्रुद्ध होकर ध्रुव माता के पास गये। पूछने पर माता से सब बात कहे, फिर क्रोध की शान्ति के लिये माता बहुत समझाया; परन्तु नहीं माने और प्रण किये कि मैं वह यत्न करूँगा कि, जिससे सब जगत से पूज्य स्थान को प्राप्त करूँगा, ऐसा कह कर घर से निकल पड़े। फिर बाहर जङ्गल में उन्हें सप्तर्षि मिले, (लिंगपु० अ० ६२) के अनुसार विश्वामित्र मिले, (श्रीमद्भागवत स्क० ४ अ० ८–६) के अनुसार नारद जी मिले और ऋषियों को ध्रुव प्रणाम किए, ऋषियों ने कहा कि, इस चार पाँच वर्ष की अवस्था में तुम्हें वैराग्य का क्या कारण है, तब उन्होंने अपनी कथा कह सुनाई। ऋषि लोक चकित हुए और भगवान् की भक्ति उपासना का उपदेश दिए, मन्त्र बताये कि, जिससे साधन करके ध्रुव राज्यसिद्धि आदि पाये, इत्यादि ॥५॥

(६)

शिवपु० सं० २ खं० २ अ० २४ आदि में शिवजी की स्त्री सती की कथा है कि—एक समय सती सहित शिवजी भूमि पर विचरते थे। तब दण्डकारण्य में सीता के विरह-युक्त रामचन्द्रजी को देखे और दूर ही से लक्ष्मणजी सहित रामजी को प्रणाम करके, जय२ कह कर चल दिये। सो लीला देखकर मोहयुक्त सती बोली कि आप स्वयं परब्रह्म सबका सेव्य प्रणम्य वेदान्तवेद्य हो। विरह व्याकुल ये दोनों कौन हैं कि जिनको प्रणाम करके आनन्द में मग्न हो रहे हो, स्वामी को सेवक के प्रति प्रणाम करना उचित नहीं है। शिवजी बोले कि, बरदान के प्रभाव से (मैं विष्णु को वर दिया हूँ कि तुम हमसे पूज्य अजेय होंगे, इस वर के प्रताप से) मैं आदर से प्रणाम किया हूँ। और ये रघुवंश में

उत्पन्न दशरथ पुत्र राम लक्ष्मण हैं। लघुभ्राता शेष का अवतार लक्ष्मण हैं। बड़ा भाई राम पूर्णांश विष्णु हैं; भूमि भार हरण के लिये अवतार लिये हैं, इत्यादि॥ इन सब बातों को सुनकर भी सती के मन में विश्वास नहीं हुआ। तब शिवजी बोले कि, तुम राम की परीक्षा करके देख लो, तबतक मैं बट तर बैठता हूँ। जिस प्रकार विश्वास हो सो करो। शिवाज्ञा पाकर सती चली और सीता का वेष बनाई कि, विष्णु होंगे तो मुझे समझेंगे, अन्यथा सीता ही समझेंगे और राम के आगे गई। तब शिव २ जपते हुए रामजी विहँस कर सती को प्रणाम किये और बोले कि, शिवजी कहाँ हैं, तुम अकेली वन में कैसे आई। यह रूप क्यों बनाई है, सो कहो। सती इस बात को सुनकर चकित हुई; शिवजी की बात को सत्य समझ कर लज्जित हुई। फिर अपना रूप धर कर, रामजी से बोली, कि गण सहित विचरते हुए शिवजी आपको दूर से प्रणाम करके बट तर बैठे हैं। और वे आपको विष्णु बताये, तो मेरे मन में विश्वास नहीं हुआ। इससे उनकी आज्ञा से मैंने आपकी परीक्षा की है और अब आपको विष्णु समझती हूँ। तो भी मैं पूछती हूँ कि, आप शिवके प्रणम्य कैसे हुए। तब रामजी बोले कि, एक समय शिवजी ने अपने लोक में विश्वकर्मा को बोलाकर, अपनी गोशाला में एक महान् भवन बनवाये, सिंहासन बनवाये, फिर ब्रह्मा इन्द्रादि सब देवदेवी ऋषि आदि को बोलवाकर, राज्याभिषेक सामग्री को मँगवा कर, विष्णु को राज्याभिषेक किये। अपना सब ऐश्वर्य दिये और भक्तवत्सल शिव बोले कि, आजसे यह विष्णु मेरी आज्ञा से लोकेश और मेरा वन्दनीय हो गये, इत्यादि। तथा सब के कर्ता धर्ता सब से अजेय और हम से भी अजेय होंगे, इत्यादि। और उन्हीं की आज्ञा से मैं चार रूप से अवतार लिया हूँ। तथा विष्णु गोप वेष से रहते हैं, अब तेरा दर्शन हुआ कल्याण होगा। इन वचनों को सुनकर सती को शान्ति हुई, परन्तु अपनी सीता रूपता को समझ कर शोक भी हुआ। चिन्तायुक्त सती शिवजी के पास जाकर प्रणाम किया, परीक्षा का प्रकार पूछने पर नहीं कहा। शिवजी ध्यान से समझ कर, सती में स्त्रीभाव का त्याग किया। इसके बाद आकाशवाणी हुई कि, हे शिव! तुम धन्य हो, तुम विना ऐसा कौन कर सकता है, इत्यादि।

इसके बाद कथा है कि—प्रयाग में किसी यज्ञ में शिवजी सती के पिता दक्ष को प्रणाम नहीं किये थे, इससे दक्ष उन पर रुष्ट थे। इस कारण से दक्ष अपने यज्ञ में अन्य देवों को बोलाये, परन्तु शिवजी और सती को नहीं बोलाये। तो भी चन्द्रमा से पिता के यज्ञ का समाचार सुनकर, शिवजी की आज्ञा लेकर, पिता के यज्ञ में गई। और शिव के अपमान से प्राण का त्याग किया, इत्यादि।

(शब्द ५९ के अन्तर्गत)

पार्वती के पुत्र गणेशजी के विषय में अनेक प्रकार की कथा है। ब्रह्म वैवर्तपु० गणेश खं० की कथा है कि—पार्वती के साथ विवाह होने पर, शिवजी रतिपरायण हो गये। उनकी यह दशा देखकर सब देव चिन्ताग्रस्त हुए और ब्रह्माजी सहित विष्णु भगवान् के पास गये। ब्रह्माजी भगवान् से समाचार सुनाये। भगवान् बोले कि, कोई चिन्ता की बात नहीं है। परन्तु सब देव मिलकर, ऐसा यत्न करो कि जिससे शिव का वीर्य भूमि में

गिरे, यदि पार्वती के योनि में वीर्य गिरेगा, तो उससे उत्पन्न पुत्र सुर असुर सबका नाशक होगा। इस बातको सुनकर, देव सब शिवजी के दरवाजे पर जाकर, पृथक् २ पुकारने लगे कि, शिवजी क्या कर रहे हैं, इत्यादि। सो सुनकर शिवजी को उठने की इच्छा हुई, परन्तु पार्वती के भय से उठ नहीं सके। फिर भी देवताओं के भय को समझ कर उठे, तब डर लज्जा सहित शिव का वीर्य भूमि में गिरा, उसको भूमि नहीं सह सकी, तब अग्नि में दे दिया। अग्नि शर का जंगल में दिया। वहाँ वह वीर्य बालक रूप हो गया उससे कृतिका को प्राप्त हुआ। यही बालक स्वामी कार्तिकेय कहाया। शिवजी शीघ्र बाहर आये और देव सब से कहा कि आप सब भागो। बाद में पार्वती आई तो किसी को नहीं देखने से क्रोध को रोक रखो। और शिव पार्वती कार्तिकेय को नहीं देखे, इससे पार्वती पुत्र के लिये व्याकुल हुई, तब शिवजी पुत्र के लिये व्रत का उपदेश दिये। व्रत की समाप्ति होने पर, फिर रतिपरायण हुए, तो स्वयं विष्णु भगवान् वृद्ध ब्राह्मण होकर पुकारा कि, मैं भूखा हूँ, कुछ खाने को दो। फिर महादेव और पार्वती उठकर चले। और महादेवजी के बिन्दु आसन पर ही गिरा, उससे विष्णु के अंश रूप गणेश हुए। कुछ बात करके ब्राह्मण लुप्त हो गया। फिर पार्वती पुत्र की चिन्तायुक्त हुई। तब आकाशवाणी हुई कि, पार्वती शान्त होवो, घर में जाकर देखो बालक है, सो भगवान् स्वरूप ही है। पार्वतीजी ने उस पुत्र को घर में देखा, और शिवजी को भी देखाया। फिर उस पुत्र के उत्सव में देव सब आये, शनि भी आये। ऋतुकाल के भंग करने से शनि को अपनी स्त्री का हो शाप था कि, जिसे तुम देखोगे, वह नष्ट हो जायगा। इससे शनि नीचे शिर करके पार्वती के पास गये; तो पार्वती के पूछने पर शिर नीचे करने का कारण पार्वती को सुनाये। परन्तु पार्वती को नहीं विश्वास हुआ, इससे बोली कि, मेरे पुत्र को देखो। फिर गले के पास में शनि के देखते ही गणेश का गला कट गया। तबहाहाकार मचा। फिर विष्णु भगवान् ने हस्ती के शिर को जोड़ कर, अपनीशक्ति से जीवित किये, इत्यादि।

इसके बाद शिव वीर्य को अमोघ जानकर कार्तिकेय का खोज किया। तब देव सब कृतिका के घर से उन्हें लाये। एक समय दुर्वासा जी हरि का प्रसाद रूप माला इन्द्र को दिये थे, जिसके धारण का सर्वपूज्यता फल होना था। इन्द्र प्रमादवश उस माला को अपने हस्ती के गला में डार दिया था। उसी हस्ती का गला गणेश के गले में लगा। और कार्तवीर्य अर्जुन यमदग्नि ऋषि के आश्रम में गया, तब कामधेनु के बल से ऋषि उसका पूर्ण सत्कार किये। फिर अर्जुन को कामधेनु की इच्छा हो गई और मुनि नहीं दिये। इससे वह मुनि को मार दिया। फिर मुनि के पुत्र परशुरामजी शिवजी से वर पाकर, उसे मार कर शिवजी के दर्शन के लिये गये और उस समय शिवजी पार्वती के साथ एकान्त में थे। इससे गणेशजी ने थोड़ा ठहरने के लिये कहा। फिर कुछ बात होने पर परशुराम जी ने परशु से एक दाँत तोड़दिये, इत्यादि।

स्कन्दपु० खं० ६ अ० १४२ में कथा है कि—एक समय सब मनुष्य तप ध्यान ज्ञानादि के प्रभाव से स्वर्ग में जाने लगे। तब इन्द्र शिवजी से प्रार्थना किये कि, सब मनुष्य मेरे स्थान को घेर रहे हैं, आप कोई उपाय करो कि, जिससे ऐसा नहीं होवै। तब शिजवी पार्वती जी के तरफ देखने लगे। फिर पार्वती ने अपने देह के मैल से चतुर्भुज गणेश को उत्पन्न किया और सब गणों के स्वामी बनाया, तथा हुकुम दिया कि,

तुम सब शुभ कार्यों में विघ्न करना। स्वर्ग मोक्ष परायण हों, उनके कार्यों में भी विघ्न करना। फिर गणेश विघ्न करने लगे; इसीसे सब कार्य में उनकी पूजा प्रथम की जाती है। महाभारत शान्तिपर्व अ० ४६ में भी यह कथा है।

स्कन्दपु० खं० १–२ अ० २७ में कथा है कि—देवताओं की स्तुति से दयायुक्त पार्वतीजी ने शरीर के उद्वर्तन के मल से हस्ती के मुखवाला मनुष्य को बनाया। फिर शिवजी पार्वती से बोले कि, यह तेरा पुत्र मेरे समान होगा और भक्ति पूजा आदि रहित के कार्यों में यह विघ्न करेगा, इत्यादि।

स्कन्दपु० खं० २–७ अ० ८ में कथा है कि—दक्ष ने यज्ञ की दीक्षा लेकर, शिवजीको बोलाने के लिये कैलास गया, तो भृत्यादि के प्रति स्वामी के उत्थान को निषेध समझ कर, शिवजी ने उत्थानादि नहीं किया। इस तत्त्व को समझने विना दक्ष रुष्ट होकर चले आये। फिर शिवजी के रोकने पर भी सती उस यज्ञ में गई और यज्ञ में शिवजी के भागादि को नहीं देखकर प्राण का त्याग किया, इत्यादि। और तारकासुर को ब्रह्माजी वर दिये कि, शिवजी के पुत्र से अन्य कोई तुम्हें नहीं मार सकेगा। उसने समझा कि, सती के मरण से स्त्री-पुत्र रहित शिव हैं। परन्तु फिर पार्वती द्वारा पुत्र होने से उसका नाश हुआ। और पार्वती के अतिरतिपरायण होने से गर्भस्राव होते जाता था। तब देव सब अग्निदेव को भेजकर रति में विघ्न किये कि, जिससे पुत्र हो, इत्यादि।

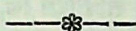
लिङ्गपु० अ० १०४ में कथा है कि—दैत्यादि भी यज्ञादि करके देवलोक में जाने लगे तब देव सब शिवजी की स्तुति किये। १०५ फिर स्तुति प्रणाम करके स्थिर देव सबको देखकर, शिवजी ने उन्हें आशीर्वाद दिया। तब निर्भय होकर ब्रह्माजी बोले कि, शुभ कर्मादि में असुरों से निर्विघ्नता के लिये प्रथम आपकी प्रार्थना की गई थी। इस समय देवापकारी के यज्ञादि में विघ्न के लिये आपसे प्रार्थना है। इस बात को सुनकर शिवजी आप ही अपना एक दूसरा गणेशरूप शरीर बना लिये। वही गणेश महेश्वर के पुत्र कहाये, इत्यादि।

भविष्यपु० पर्व १ अ० २२ में कथा है कि—स्वामी कार्तिकेय स्त्री पुरुष का लक्षण रूप एक ग्रन्थ बनाते थे। उसमें गणेश ने विघ्न किया, तब कार्तिकेय ने एक दाँत उखाड़ लिया और मारने के लिये भी तैयार हुए। तब शिवजी ने आकर रोका और क्रोध का कारण पूछा। तब कार्तिकेय बोले कि, पुरुष का लक्षण लिखा हूँ। स्त्री का लक्षण लिखने में इन्होंने विघ्न किया है, यही क्रोध का कारण है। शिवजी बोले कि, मेरा लक्षण कहो। उन्होंने कहा कि, आप कपालपाणि होंगे, सो अविचार का फल होगा। यह सुनकर शिवजी ने उस ग्रन्थ को समुद्र में फेंक दिया। उसके बाद किसी देवसमाज में, ब्रह्मा और रुद्र को विवाद हुआ कि, मैं बड़ा हूँ, फिर शिवजी ने कहा कि, मैं तेरी उत्पत्ति को जानता हूँ, मुझे कोई नहीं जानता। तब ब्रह्मा के पञ्चम शिर ने हँस कर कहा कि, मैं तुमको जानता हूँ। तब रुद्र ने नख से उस शिर को काट डारा और वह कपाल शिवजी के हाथ में ही स्थिर हो गया। फिर दोनों पुरुषों को उत्पन्न किये, युद्ध होने लगा। आकाशवाणी से युद्ध की निवृत्ति होने पर दोनों का मेल हुआ। फिर ब्रह्मा समुद्र से उस लक्षणरूप ग्रन्थ को बनाने के लिये कहे, समुद्र बनाया, सो सामुद्रिक विद्या हुई, इत्यादि।

भविष्यपु० पर्व० ३ अ० १२ में कथा है कि-प्रलय के बाद अनन्त सृष्टि देखकर महालक्ष्मी विस्मित हुई। और भगवान् से बोली कि, इसकी गणना हम से कैसे हो सकती है; तो सो सुनकर भगवान् स्वयं दो स्वरूप हो गये। एक चतुर्भुज गणेश हो गये, सोई सब सृष्टि की गणना के ईश्वर गणेश ईश्वर भत्र नाम से विख्यात हुए और दूसरा जो निरञ्जन ;चतुर्भुज रहे सो योगियों के ध्येय परमात्मा रहे। एक बार ब्रह्मा से उत्पन्न होकर शिवजी ने गणेशजी की पूजा की, गणेश के प्रसन्न होने पर वर मांगा कि, मेरा पुत्र होवो। तब गणेश पार्वती के देह से उत्पन्न हुए, इत्यादि।

स्कन्दपु० खं० १ अ० १० में कथा है कि हस्ती पर चढे हुए गणेशजी को शिवजी नहीं जानते थे कि, यह पार्वती का पुत्र है। इससे बहुत दिन तक युद्ध करने पर भी अजेय समझ कर हाथी सहित गणेश को त्रिशूल से मार डालने पर, पार्वतीजी के कहने से जीवित किये और हाथी के मुख जोड़ दिये कि, जिससे गजानन हुए।

शिवपु० संहिता २ खं० ४ में कथा है कि-एक समय पार्वती से उनकी सखियों ने कहा कि, शिवजी के आज्ञाकारी गण बहुत हैं, हम सबके कोई नहीं है, इससे कोइ उपाय करना चाहिये। तब पार्वतीजी ने अपने देह के मैल से सुन्दर बालक बना कर दरवाजे पर रखा और हुकुम दिया कि, मकान के भीतर किसी को नहीं आने दो। इसके बाद शिवजी गये, तो उन्हें डंटा से मार कर हटा दिया। फिर सब देव उससे युद्ध किये, कोई पार नहीं पाये, तब शिवजी बहुत छलबल पूर्वक त्रिशूल से शिर काट दिये। फिर पार्वतीजी को पता लगा, तो प्रलय करने के लिये तैयार हुई। बहुत विनयादि करने पर बोली कि, यदि मेरा पुत्र जीवित हो जाय तब मैं मान सकती हूँ। तब शिवजी ने गणों को हुकुम दिया कि, उत्तर तरफ जाओ। जो प्राणी पहले मिले, उसका शिर ले आवो। गणों को दैवयोग से एक हस्ती मिला, उसी के गला काट लाये, उसे जोड़ कर देव सब जीवित किये, इत्यादि ॥ १ ॥



(शब्द १०२ के अन्तर्गत)

(१)

नारदमुनि के वदन छिपाने की कथा प्रथम भी आई है। और शिवपु० सं० २-१ अ० २ आदि में कथा है कि-एक समय नारदजी के मन में तप करने की इच्छा हुई, तब गंगाजी के किनारे, हिमाचल के ऊपर जहां महादिव्य आश्रम था, महागुफा थी वहां गये, और 'अहं ब्रह्मास्मि' इस प्रकार अपरोक्ष अनुभव जिससे हो उस समाधि का अनुष्ठान करने लगे। आसन लगाकर मौन होकर तपनिष्ट हुए। उन्हें इस प्रकार देखकर इन्द्र कांप उठे कि, यह मुनि मेरा राज्य चाहता है। फिर तप में विघ्न करने के लिये इन्द्र ने काम का स्मरण किया। काम शीघ्र उपस्थित हुआ, तब इन्द्र ने उसकी प्रशंसा करके समाचार सुनाया। तप में विघ्न करने के लिये आज्ञा दिया। तब अभिमान सहाय सहित काम जाकर सब उपाय किया, परन्तु ईश्वरानुग्रह स्थान के प्रभाव से मुनि के मन में विकार नहीं हुआ; क्योंकि उस स्थान में प्रथम शिवजी ने भी तप किया था और उस स्थान को वर

दिया था कि, इस स्थान में कामका प्रभाव नहीं चलेगा, इत्यादि। इससे हतोत्साह होकर काम इन्द्र के पास में गया। मुनि के प्रभाव को सुनकर इन्द्र चकित हुए। नारदजी भी वहाँ बहुत दिनों तक तप करके तप को पूर्ण समझ कर तप से उपराम हुए। शिव की माया से मोहित होकर काम के विजय के अभिमानी हुए और अपनी महिमा सुनाने कैलास गये, शिवजी को प्रणाम करके गर्व सहित महिमा सुनाये। भक्तवत्सल शिव जी ने कहा कि, ऐसा कहीं नहीं बोलना, विशेष कर विष्णु देव के आगे इसकी चर्चा नहीं करना, पूछने पर भी यह बात कहने लायक नहीं है, इत्यादि। परन्तु शिव माया से मोहित मुनि इस उपदेश को नहीं मान कर ब्रह्म लोक में गये, ब्रह्माजी को नमस्कार करके अपनी कथा सुनाये, उन्होंने भी मना किया, परन्तु नहीं मान कर मुनि विष्णु लोक में गये। विष्णु भगवान् इन्हें देख कर, आगे आकर मिले। आगमन के कारण पूछे, मुनि सगर्व अपनी महिमा कहे। भगवान् भी इनकी प्रसंशा किये, शिव और शिव की माया को प्रणाम करके बोले कि, नैष्ठिक ब्रह्मचारी आप हैं, आपको कामविकार कैसे हो सकता है, इत्यादि। नारद हँस कर बोले कि, आपकी कृपा है तो काम का प्रभाव क्या है। और वहाँ से विदा हुए। मुनि के जाने पर भगवानने अपनी माया से उनके मार्ग में ही सौ योजन का विस्तार युक्त एक नगर रचे। उसमें शीलनिधि नाम का राजा और उसकी कन्या रचे। उसका स्वयंबर के सामान रचें। मुनि उस नगर को देख कर, उस राजा के पास गये। राजा इनका सत्कार करके कन्या का शुभाशुभ पूछा। नारद लक्ष्मीरूप उस कन्या को देख कर काम से मोहित हो गये और सर्वेश्वर इसका पति होगा, इस प्रकार राजा से कह कर, विष्णु भगवान् के पास सौन्दर्य के लिये गये, भगवान् सब सौंदर्य दियें, परन्तु मुख वानर का दिये, लौट कर मुनि उस नगर में आये, तब वहाँ ब्राह्मणरूप से दो रुद्रगण रक्षा के लिये रहते थे, सो मुनि के साथ लगे और व्यंग रूप में सत्य बात कह दिये, परन्तु मोह वशात मुनि समझ नहीं सके, बाद में श्रीमती कन्या भी जयमाला लेकर आई, सो इनके रूप को देख कर क्रुद्ध हुई और लौट गई, किसी राजा को भी नहीं वरी, बाद में भगवान् राजा रूप से आये, उन्हें वह वरी। फिर नारद जी शाप दिये कि, जिस रूप से कन्या को स्वीकार किये हो, सोई रूप धरना होगा, स्त्री के वियोगवश दुःख सहोगे। वानर सहायक होंगे. इत्यादि। रुद्रगण को राक्षस होने का शाप दिए मोह मिटने पर पश्चात्ताप किए और गणों को कहे कि, शिव के ही अपर शरीर से मृत्यु पाकर शाप से मुक्त होगे, इत्यादि ॥ १ ॥

स्कन्द पु० अवन्तिका मा० खं० ५अ० २ आदि में कथा है कि ब्रह्मा की स्तुति से प्रसन्न होकर शिव जी वर मांगने के लिये कहा, तब ब्रह्मा ने वर माँगा कि, मेरा पुत्र होवो तब शिव जी ने कहा कि, अच्छी बात है, परन्तु इस अनुचित वर के कारण मैं तेरा पञ्चम शिर कारण वश काटूंगा, उसके बाद ब्रह्मा हवन करते थे, उसी समय एक रक्तबिन्दु उनके ललाट से गिरा, उससे पंचवदन रुद्र प्रगट हुआ, सो ब्रह्मा के पञ्चम शिर काटा, इत्यादि।

स्कन्द पु० खं० ७ अ० २४८ में कथा है कि, सृष्टि करते समय एक अद्भूत रूपवाली स्त्री उत्पन्न हुई, उसे देख कर ब्रह्मा जी मोहित हुए और रति के लिये उससे प्रार्थना करने लगे, इतने में ही उनके पञ्चम गर्दभ रूप शिर उसी पाप से गिर गया, इत्यादि ॥२॥

(वसन्त ३ के अन्तर्गत)

(१)

राजा वेन की कथा विष्णु पु० अंश १ अ० १३ में है कि—वेन अपने मातामह के संग से दुष्ट चित्तवाला होकर, यज्ञादि सत्कर्मों को बन्द कर दिया। ऋषियों के समझाने पर भी नहीं माना, तब ऋषि सब अभिमन्त्रित कुश से उसे मार दिये। फिर राजा के विना प्रजा में उपद्रव देखकर, वेन के वामा उरु (जंघा) को मथे, उससे पापमय निषाद के प्रगट होने पर वेन के दहिना हाथ को मथे कि जिससे भगवदंशरूप पृथु हुए और धर्म से पृथिवी तथा प्रजा का पालन किये, इत्यादि। पद्मपु० खं० २ अ० २८ आदि में पृथु की कथा है।

हरिवंश १।५ में कथा है कि—वेन को शापादि से मार कर, ऋषियों ने प्रथम उसके वामभुजा को मथा, उससे ह्रस्व कृष्ण वर्ण के पापमय निषादादि प्रगट हुए। फिर दहिना भुजा के मथने पर, पवित्र पृथु राजा उत्पन्न हुए, कि जिनकी पुत्री पृथिवी कहाई। वेन और पृथु की कथा श्रीमद्भागवत स्क० ४ अ० १४ आदि में विस्तार से है। तहाँ उरु मथने से निषाद की उत्पत्ति का वर्णन है और दोनों बाहु के मथने से पृथु और उनकी स्त्री अर्चि हुई है॥ १॥

——:&:——

(चांचर २ के अन्तर्गत)

(१)

नारद के मुख मांडने की कथा देवी भागवत स्क० ६ अ० २६ आदि में है कि—सृंजय नामवाला राजा की पुत्री दमयन्ती थी। नारद पर्वत ऋषि राजा के यहाँ चातुर्मास में निवास किये। नारदजी के गान सुनकर दमयन्ती मोहित हुई और नारद भी मोहित हुए। सो देखकर पर्वत ने नारद को बानर मुखता के शाप दिये। नारद उन्हें स्वर्गाऽगमन के शाप दिये। फिर नारद के विवाह होने पर, दोनों परस्पर शापानुग्रह किये।

महाभारत शान्तिपर्व अ० ३० में कथा है कि—नारद पर्वत मामा भगिना थे। दोनों पृथिवी पर विचरते समय संकल्प नियम किये, कि शुभ वा अशुभ जो मन का भाव हो सो छिपाना नहीं। बाद में सृंजय राजा के यहाँ रहने लगे। राजा अपनी पुत्री को सेवा में नियुक्त किया। नारद को काम व्याप्त हुआ। परन्तु लाज के मारे पर्वत से नहीं कहे। पर्वत तपोबल और व्यवहार से समझे, तब नारद को शाप दिया, कि तुम नियम का भंग किये हो। इससे यह कुमारी तेरी स्त्री होगी। और विवाह के बाद आपके वानर का स्वरूप होगा। फिर नारद पर्वत को शाप दिये कि, तुम स्वर्ग नहीं जा सकोगे। फिर पर्वत इस लोक में विचरने लगे, नारद कन्या पाये। विवाह के बाद उनकी स्त्री उन्हें बानररूप देखने लगी। परन्तु उनमें प्रीतिवाली रही। फिर कभी पर्वत नारद को देखे, तब प्रणाम करके बोले कि, कृपा करके शापानुग्रह करें। नारद बोले कि, प्रथम तुम शाप दिये हो. तब मैं दिया हूँ। और तुम पुत्रतुल्य हो, तुम्हें शाप देना उचित नहीं था। बाद दोनों मुनि परस्पर के शापानुग्रह किये। तब नारद की स्त्री उन्हें दिव्यरूपवाला पुरुषान्तर समझ कर भगी। फिर पर्वत के समझाने से समझी। बाद में पर्वत स्वर्ग गये; नारद घर गये, इत्यादि॥ १॥

(कथाओं से प्रतीत होता है कि, नारद पर्वत एक २ व्यक्ति सतयुग से द्वापरान्त तक नहीं थे; किन्तु नाम एक २ था, व्यक्ति अनेक रही। चरित्रों में भेद रहा। इसी प्रकार ब्रह्मा विष्णु महेश व्यास शुकादि के विषय में भी प्रतीति होती है। या एक २ व्यक्ति होते भी कवि कल्पित अनेक हो सकते हैं, अथवा उपाधियाँ हो सकती हैं। इससे चरित्र भेदादि में संदेह को जगह नहीं है। और व्यक्ति भेद से ही सद्गुरु कबीर साहब ने जिस नामवाला को कहीं सिद्ध महात्मा मुक्त कहा है, उसी नामवाला को कहीं संसारी बद्ध भी कहा है, इत्यादि)।

———:ꕥ:———

(२)

सभापर्व अ० ४३।१

'न्यस्तमात्रस्य तस्याङ्के भुजावभ्यधिकावुभौ।
पेततुस्तच्च नयनं न्यमज्जत ललाटजम्॥'

इस महाभारत के अनुसार, यद्यपि कृष्ण भगवान् के गोद में आने ही से शिशुपाल के अधिक भुजा गिर गये थे। तथापि कबीर साहब उसे मायाशक्तिसे उखाड़ना ही मानते हैं।

इसीसे स्कन्दपु० खं० ५-२ अ० ५ में कथा है कि—कुण्डिनपुर निवासी भीष्मक राजा को आकाशवाणी हुई कि, तुम अपनी पुत्री रुक्मिणी को चतुर्भुज पुरुष के प्रति देना, उसके बाद शिशुपाल के पिता उसके पास गया, राजा ने पूछा कि, कौन चतुर्भुज है कि, जिसको आकाशवाणी के अनुसार पुत्री दिया जाय, उसने कहा कि, मेरा ही पुत्र चतुर्भुज प्रसिद्ध है। फिर राजा उसके साथ विवाह के लिये निश्चय करके सर्वत्र निमन्त्रण दिया, उसमें भगवान् भी गये और रुक्मिणी को हर कर ले चले, उसका भाई युद्ध के लिये तैयार हुआ, तो अपना चतुर्भुज रूपदिखाये, फिर वह प्रणाम करके लौट गया, इत्यादि॥ २॥

———

(कहरा १२ के अन्तर्गत)

(१)

शृंगी ऋषि की कथा महाभारत बनपर्व अ० ११० में है कि—विभाण्डक नामवाला काश्यप ऋषि महाह्रद में तप करते थे, उर्वशी अप्सरा को देखकर जल में ही उनका वीर्यपात हो गया, कोई मृगी पानी पीने आई, सो वीर्य सहित पानी पी गई, फिर उस अमोघ वीर्य से ऋष्यशृंग हुए। वह मृगी प्रथम देवकन्या थी, उसे ब्रह्मा का शाप था कि मृगी होकर मुनि को पैदा करके शापमुक्त होगी, उस मुनि के शिर में सिंग भी था, इसीसे ऋष्यशृंग कहे जातेथे। वह मुनि पिता से अन्य मनुष्य को कभी देखे ही नहीं थे। इससे नित्य ब्रह्मचारी थे। इसी समय में दशरथ जी के मित्र अंगदेश के राजा लोमपाद के राज्य में अनावृष्टि हो गई, पुरोहित के साथ विरोध होने से ब्राह्मण सब उस समय राजा को त्याग दिये थे। पूछने पर एक मुनि राजा को उपदेश दिया कि, ब्राह्मण क्रुद्ध हैं, इसके लिये कुछ प्रायश्चित

करो और बनवासी ऋष्यशृंग को स्त्रियों द्वारा मँगावो, यदि तेरे राज्य में वह आयेंगे तो अवश्य वृष्टि होगी। अ० ११२–११३ फिर राजा वेश्याओं को धन देकर भेजा, वेश्या सब नौका पर फल मिष्टान्नादि लेकर गई और मुनि के पिता की अनुपस्थिति काल में लोभाय कर मुनि को ले आई, उन के आते ही वृष्टि हुई, राजा शान्ता नामक लडकी से उन का विवाह कर दिया और उन के पिता की शान्ति के लिये, उन के मार्ग में लोकों द्वारा सत्कारादि का बन्दोवस्त किया कि, जिससे वे भी आकर शान्ति पूर्वक लौट गये और पुत्र से कह गये कि, पुत्र हो जाने पर, राजा का हित करके फिर वन में आना, इत्यादि।

वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड सर्ग १० में भी यह कथा कुछ भेद सहित है। मुनि के शाप के भय से मन्त्री आदि ऋष्यशृंग को नहीं ला सके थे, तब राजा वेश्या द्वारा मँगवाया था ॥ १ ॥

(२)

ब्रह्मा जी के शिर फोरने की कथा कूर्मपु० उ० अ० ३१ में है कि-एक बार ऋषियों ने ब्रह्मा से पूछा कि, परतत्त्व क्या है, तब माया से मोहित होने के कारण अपने को ही परतत्त्व बताये। फिर नारायणांश त्रिलोचन शिव प्रगट होकर बोले कि, तुम क्या आज उलटा कह रहे हो। मेरी शक्ति से आप सब कुछ करते हो, इत्यादि। विवाद होने पर सब वेद भी शिव को ही परतत्त्व बताया, परन्तु ब्रह्मा नहीं समझे और कहने लगे कि, सदा स्त्री के साथ रहनेवाला शिव परतत्त्व कैसे हो सकते हैं; इतने में अमूर्त प्रणव स्वरूप शिव प्रगट होकर ब्रह्मा को समझाये कि, देवी आगन्तुक है, भगवान् अपने स्वरूप में सदा रहते हैं, इत्यादि। तो भी नहीं मानने पर भैरव रुद्र प्रगट होकर ब्रह्मा के पञ्चम शिर काट लिये, इत्यादि।

ब्रह्मपु० गौतमी मा० अ० ४३ में कथा है कि–देवताओं से हार कर दैत्य सब भागे जाते थे, तब ब्रह्मा के पञ्चम गर्दभ का शिर बोला कि, तुम सब कहाँ भागे जाते हो, जो देव सब आते हैं, उन्हें मैं क्षण मात्र में खा जाऊंगा, इस बात को सुन कर देव सब विष्णु-भगवान् से बोले कि, ब्रह्मा के इस नीच शिर को चक्र से काट दीजिये, विष्णुभगवान् ने कहा कि, इसे चक्र से काटने पर कटा हुआ भी यह चराचर को खा जायगा। शिव जी इसे काट कर धारण कर सकते हैं, फिर शिवजी ने उसे काट कर भूमि में धरना चाहे, तब भूमि बोली कि, इस पापमय शिर को मेरे ऊपर रखोगे, तो मैं रसातल चली जाऊंगी। इससे शिवजी को हाथ में ही रखना पड़ा, इत्यादि।

(साखी १८७ के अन्तर्गत)

विन्ध्य के चलते (बढ़ने) से धरती बेहाल हुई थी। सो कथा देवीभागवत स्क० ११।२ इत्यादि में है कि– पर्वतों के मान्य विन्ध्यपर्वत के घर दैवयोग से नारदजी गये। तब विन्ध्य ने अतिथि सत्कार करके आगमन का कारण पूछा। नारदजी बोले कि, मैं सुमेरु और लोकपालों के पास से आ रहा हूँ। फिर शोकयुक्त होकर, श्वाँस लेने लगे। सो देखकर विन्ध्य ने पूछा कि, श्वांस लेने का क्या कारण है। मुनि बोले कि, हिमाचल शिवजी का श्वसुर होने से पूज्य है, कैलास शिवजी का स्थान ही है, निषध गन्धमादनादि भी अपने २ स्थान में श्रेष्ठ ही हैं; परन्तु सुमेरु को अभिमान है कि, ग्रह नक्षत्र सहित सूर्य मेरी प्रदक्षिणा करते हैं, इस कारण से मैं ही बड़ा हूँ। मेरे समान कोई नहीं है। उसी अभिमानी के अभिमान को स्मरण करके उच्छ्वास आता है; परन्तु मुझे इससे क्या

मतलब (फल) है। मैं अपना घर जाता हूँ। ऐसा कह कर नारदजी ब्रह्मलोक चले गए। और विन्ध्य चिन्ता से व्याकुल हुआ कि, कि मैं सुमेरु को किस प्रकार जीतूँ। फिर उसके मन में आया कि, बढ़कर सूर्य के मार्ग को मैं रोक दूँ, कि जिससे अभिमान का जड़ कट जाय और वैसा ही किया। फिर सूर्य के मार्ग रुकने से, सब लोकों में कोलाहल होने पर, देव सब शिवजी के पास गए, फिर वहाँ से विष्णुलोक में गए। तब विष्णु भगवान् के उपदेश से काशी में अगस्त्य मुनि के पास गए। तब अगस्त्य मुनि विन्ध्य के पास गए, वह नम्र होकर प्रणाम किया और मुनि उसे लाँघ कर दक्षिण गये और कह गये कि, जब तक मैं नहीं लौटता हूँ तब तक ऐसा ही रहो। स्कन्दपु० काशीखण्ड के आदि में ही यह कथा रूपान्तर से है।

पद्मपु० खं० १ अ० १९ में कथा है कि—मेरु की प्रदक्षिणा करते हुए सूर्य को देखकर, विन्ध्य ने सूर्य से कहा कि, जैसे आप मेरु की प्रदक्षिणा करते हो, ऐसे मेरी भी करो। सूर्य बोले कि, मैं अपनी इच्छा से मेरु की प्रदक्षिणा नहीं करता हूँ; किन्तु ऐसा मेरा मार्ग ही बना है, इत्यादि। तब विन्ध्य मार्ग रोकने के लिए उठा, फिर देवताओं की प्रार्थना से अगस्त्यजी वारण किए, इत्यादि। (यह कथा अगस्त्य तारा की दक्षिण स्थिति, विन्ध्य की पूर्व समुद्र से पश्चिम समुद्र तक लम्बाई, ब्राह्मण की महिमा को लेकर प्रसिद्ध हुई है) ॥१॥

'वेद हुँ केर कहल नहिं करई। जरत हिं रहै सुस्त नहिं परई ॥' रमैनी ६१

'वेद कहै सो नहीं करै, समुझै और कि और।
चौरासी के धार में, कबहुँ न पावै ठौर ॥' परिशिष्ट साखी ६५

वेद कहते हैं कि--

'संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥'

ऋग्० १०।१९१।२।अथर्व० ६।६४।१

'समानो व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहा सति ॥'

ऋ० १०।१९१।४ अथर्व० ६।६४।३

'यूयं धर्मेण संगताः संयुक्ता भवत। सत्यं हितं वदत। युष्माकं मनांसि संजानताम्—एकं समानमर्थमवगच्छन्तु, न विरुद्धम्। यथा पूर्वे देवाः संजानानाः सम्यक् पश्यन्तः स्वं भागमुपासते, नान्यस्य तथा कुरुत ॥'

युष्माकमाकूतिः—संकल्पः— भावः, समाना-सरला-एकविधा भवतु। हृदयानि-अन्तःकरणानि-समाना-तुल्यानि भवन्तु।

मनः—मननं विचारः समानमस्तु। यथा सति-सज्जने, एतानि सुसहानि (सुलभानि) भवन्ति तथा युष्माकं भवन्तु ॥'

आप सब सम्यक् मिलकर चलें, बोलें मन को अच्छी तरह समझें, प्रथम के देव विद्वानादि जैसे अपना २ भाग ही लेते थे, तैसे करें। आप सबके भावादि सरल निष्कपट तुल्य हों, जैसे सज्जनों में होते हैं।

'तपसा ये अनाधृष्यास्तपसा ये स्वर्ययुः ।
तपो ये चक्रिरे महस्तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥' ऋ० १०।१५४।२

तप के प्रभाव से जो विषयादि से अनाधृष्य (अपराजित) हैं। और स्वर (स्वर्ग सुख) पाये हैं और जो महत् तप किए हैं वा करते हैं, तिनको ही प्राप्त हो, उनका ही संग करो।

'न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः । कठ० १।१।२७

धन से तृप्त करने योग्य मनुष्य नहीं है।

'अमृतत्वस्य तु नाशाऽस्ति वित्तेन ।' बृहदा० २।४।२

धन से तो अमृतत्व (मोक्ष) की आशा नहीं है।

'तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोको न येषु जिह्ममनृतं न माया चेति ।' प्रश्न० १।१५

तिनको वह निर्गुण ब्रह्मस्वरूप प्राप्त होता है कि, जिनमें कपट झूठ माया नहीं है।

'सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् ।' मुण्डक० ३।५

यह आत्मा सदा सत्य तप सम्यक् ज्ञान ब्रह्मचर्य से पाने लायक है।

'स वेदैतत् परमं ब्रह्म धाम यत्र विश्वं निहितं भाति शुभ्रम् ।
उपासते पुरुषं ये ह्यकामास्ते शुक्रमेतदतिवर्तन्ति धीराः ॥' मुण्डक ३।२।१

वह आत्मज्ञानी इस ब्रह्म स्वरूप परम धाम को जानता है, कि जिसमें संसार निहित (स्थापित, स्थिर) भासता है, तो भी जो शुभ्र (शुद्ध) है। जो धीर उस ज्ञानी पुरुष की उपासना भक्ति करते हैं, सो इस शुक्र (वीर्य-रेतः) को नहीं पाते हैं, शरीर रहित मुक्त होते हैं, इत्यादि।

'य ईं चकार न सो अस्य वेद, य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात् ।
स मातु र्योना परिवीतो, बहुप्रजा निर्ऋतिमाविवेश ॥'

जो मनुष्य ईं (गर्भ) किया, विषयोपभोग से गर्भ के कारण हुआ, सो इस गर्भ के दुःखादि को नहीं जानता है। जो इस गर्भ को देखा सो तिससे हिरुक् (दूर) हो रहा, वह गर्भ माता की योनि में परिवीत (आवृत) रहता है। इससे बहुत प्रजा वाला निर्ऋति (यमलोक) में गया।

'बहुप्रजाः कृच्छ्रमापद्यते, इति परिव्राजकाः ।' निघण्टु० १।१२।८

'न विजानामि यदि वेदमस्मि निरायः संनद्धो मनसा चरामि ।
यदा माऽऽगन् प्रथमजा ऋतस्यादिद् वाचो अश्नुवे भागमस्याः॥'

यदि वेदं (यद्यपीदं) यह विश्व मैं ही हूँ, तो भी तैसा नहीं जानता हूँ। जिससे निराय (मूढ़ चित्त) हूँ, अविद्यादि से संनद्ध (बद्ध) होकर, वा मन से बद्ध होकर मन के साथ चलता हूँ। जब ऋतु (ब्रह्म) की प्रथमजा (प्रथमा अनुभूति) माऽऽगन् (मुझे मिलेगी) आदित (तभी) इस वेदवाणी का भाग (आनन्द) को पाऊँगा। अन्तर्मुखवृत्ति से ही आनन्द होता है, अन्यथा नहीं ॥ ऋ० १।१६४।३७ अथर्व० ९।१०।१५

'अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभितो अमर्त्यो मर्त्येन सयोनिः ।
ता शश्वन्ता विषूचिना वियन्ता न्यन्यं चिक्युर्न चिक्युरन्यम् ॥'

ऋ० १।१६४।३८ अथर्व० ९।१०।१६

अमर्त्य (आत्मा) मर्त्य (देह) के साथ सयोनि (समान स्थान वाला, परिच्छिन्न) होकर और स्वधा (भोग देह माया) से गृभित (गृहीत) होकर, अपाङ् (नीचे) और प्राङ् (ऊपर) एति (आता है) और ता (तौ) वे दोनों (देह और आत्मा) शश्वन्तौ अपृथक् होते भी विषूचौ (विरुद्ध स्वभाववाले) हैं । और वियन्तौ–विरुद्ध गति प्राप्तिवाले हैं । तो भी मनुष्य अन्य (देह) को निचिक्युः (जानते हैं), आत्मा को नहीं जानते, इत्यादि ।

'एक एवाग्निर्बहुधा समिद्धः, एकः सूर्यो विश्वमनुप्रभूतः ।
एकैवोषाः सर्वमिदं विभाति, एकं वा इदं विबभूव सर्वम् ॥,

ऋग्० ८।५८।२

जैसे एक ही अग्नि बहुधा दीप्त होती है, एक सूर्य (ईश्वर वा देव) जगत् गोलकादि में अनुप्रविष्ट होकर बहुधा प्रादुर्भूत होता है, एक ही उषा (प्रभातदीप्ति) इस सब जगत् को प्रकाशती है, तैसे ही एक ब्रह्म इस सब रूप हुआ है और सबको प्रकाशता है, इत्यादि ।

'स्वयोनिषु यथा ज्योतिरेकं नाना प्रतीयते ।
योनीनां गुणवैषम्यात्तथाऽऽत्मा प्रकृतौ स्थितः ॥' श्रीमद्भा० ३।२८।४३

'पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते ! प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः ।
अतप्ततनु र्न तदामो अश्नुते, शृतास इद्वहन्तस्तत्समासते ॥'

ऋ० ९।८३।१॥ साम० ५६५।८७५

हे ब्रह्मणस्पते ! (वेद विद्यादि पालक) प्रभो ! तेरा वितत (व्यापक) पवित्रस्वरूप है, इससे प्रभु होकर सबका गात्र (देह) को सर्वतः व्याप्त होते हो । परन्तु तप से अतप्त देह वाला आम (अपक्व) मनुष्य उसको नहीं पाता है, किन्तु शृतास (पक्व) ही साधनों को पावता हुआ उस स्वरूप को पाता हैं ।

'यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति ।
यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥'

ऋ० ५।४५।१४

जो मोहादि को त्यागा जागा, उसी को ऋक् चाहते हैं, साम मिलते हैं और उसी को यह सोम (विद्यायुक्त ईश्वर) कहते हैं कि, मैं तेरा सख्य (मित्रताभाव) में न्योक (नियत स्थानवाला अचल) हूँ, इत्यादि ॥

'स वरुणः सायमग्नि र्भवति स मित्रो भवति प्रातरुद्यन् ।
स सविता भूत्वाऽन्तरिक्षे याति स इन्द्रो भूत्वा तपति मध्यतो दिवम् ॥'

अथर्व० १३।३।१३

स्मरणादि से वरुण (पाप तापादि वारक) वह परमेश्वर सर्वात्मा ही सायंकाल में दीप्त प्रकाश युक्त अग्नि होता है, प्रातःकाल में उदय होता हुआ मित्र नेत्रानुग्राहक होता

है। वही सविता (जगत् स्रष्टा) होकर अन्तरिक्ष में जाता है और इन्द्र होकर मध्य आकाश में तपता है।

'न भोजा मम्रुर्न न्यर्थमीयुर्न रिष्यति न व्यथन्ते ह भोजाः ।
इदं यद् विश्वं भुवनं स्वश्चैतत् सर्वं दक्षिणेभ्यो ददाति ॥'

ऋ० १०।१०७।८

भोजयिता न मरे न व्यर्थ (निकृष्ट गति) पाये न नष्ट होता है, न वे भोजयिता व्यथित होते हैं। और यह जो विश्वभुवन स्वर्ग है, यह सब उनको दक्षिणा ही देती (प्राप्त कराती) है।

'अध्वर इति यज्ञ नाम ध्वरति हिंसा कर्मा तत्प्रतिषेधः ।' निरुक्त १।८

अध्वर यह यज्ञ का नाम है, तहाँ ध्वरति पद गत ध्वृ धातु हिंसा अर्थ में है, उसका निषेध रूप ही अध्वर (यज्ञ) है, इत्यादि ।

'स्वस्तिपन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव ।
पुनर्ददताऽघ्नता जानता संगमेमहि ॥' ऋ० ५।५१।१५

सूर्य चन्द्रमा के समान दीप्त शान्त होकर कल्याणपथ का अनुसरण करेंगे और दानशील अहिंसकनिष्कपटविद्वान् के साथ पुनः २ संगत होंगे, मिलेंगे, कृपण हिंसकादि से नहीं मिलेंगे, न मिलना चाहिये ।

'व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाऽऽप्नोति दक्षिणाम् ।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥' शुक्लय० १९।३०

यमनियमादि महाव्रत से ज्ञानयोगादि की योग्यता रूप दीक्षा पाता है, उस दीक्षा से श्री उदारता विद्यादि रूप दक्षिणा पाता है। और दक्षिणा (दक्षिणया) से श्रद्धा श्रत् (सत्य) को धारण करने वाली निर्मल बुद्धि (विश्वास) पाता है, उससे सत्य ब्रह्म प्राप्त होता है।

'यस्मान्न जातः परो अन्यो अस्ति, य आविवेश भुवनानि विश्वा ।
प्रजापतिः प्रजया संरराणः, त्रीणि ज्योतींषि सचते स षोडशी ॥'

शुक्लय० ८।३६

जिस सत्यात्मा ईश्वर से जात (उत्पन्न) वा अन्य (अजात) कोई पर (भिन्न सत्तावाला वा उत्तम) नहीं है। वा जात प्रपञ्च जिससे पर (उत्तम) अन्य (भिन्न) नहीं हैं।

'एकं वा इदं विबभूव ।' ऋ० ६।४।२६

'पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भव्यम् ।' ऋ० १०।९०।२

'आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किञ्चनास ।' ऋ० १९।१२९।१२

वायु आदि रहित स्वधा (माया) सहित वह एक ही था, उससे अन्य पर कुछ नहीं था। जो परमात्मा सब भुवन (लोक शरीरादि) में पैठा, वही षोडशी (षोडश कला उपहित) प्रजापति, प्रजा (उत्पन्न मूर्ति) से संरराणः (सम्यक रमता हुआ) अग्नि सूर्य चन्द्ररूप तीन ज्योतियों को सेवता प्रकाशता सिद्ध करता है।

'कः स्विदेकाकी चरति, क उ स्विज्जायते पुनः ।
किं स्विद्धिमस्य भेषजं, किं वाऽऽवपनं महत् ॥'
'सूर्य एकाकी चरति, चन्द्रमा जायते पुनः ।
अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत् ॥' शुक्लय० २३।९-१०

सूर्य (आत्मा) ही एकाकी चरति (रहता जानता है)। पुनः (फिर) उससे चन्द्रमा उत्पन्न होता है। हिम (अज्ञान मोह) का ज्ञानाग्नि भेषज (नाशक) है। भूमि (मनुष्य देह) महत् आवपन (मोक्षफल के बीज साधनों के वपनस्थान) है। तथा मर्त्यलोक कर्मबीज प्ररोह का स्थान है, इत्यादि ।

'दृते दृंह मा मित्रस्य मा चक्षुषा, सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् ।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥'
शुक्लय० ३६।१८

'द्यौः शान्तिः ।' शु० ३६।१७ इत्यादि में वर्णित शान्ति मुझे मिले ! और हे शान्ति ! विदृत (विदीर्ण भिन्न भावयुक्त) होने पर भी मुझे ऐसा तुम दृंह (दृढ अभिन्न करो) कि जिससे सब प्राणी मुझे मित्र की दृष्टि से देखें और सब प्राणी को मैं मित्र की दृष्टि से देखूँ । ऐसा होने पर मित्र की दृष्टि से ही हम देखेंगे, इत्यादि ।

प्रलय सृष्टि आदि का सामान्यरूप से वर्णन हो सकता है, विशेष रूप से नहीं । इसीसे ऋग्वेद का मन्त्र कहता है कि—

'क अद्धा वेद क इह प्रवोचत् कुत आजाता कुत इयँ विसृष्टिः ।
अर्वाग् देवा अस्य विसर्जनेनाथ को वेद यत आबभूव ॥'

अद्धा (सत्य) रूप से कौन जानता है, वा कौन यहाँ विशेष रूप से कह सकता है, कि यह सृष्टि किस निमित्त उपादान कारण से हुई है । सर्वज्ञ माने गये देव भी इसकी विसर्जन (सृष्टि) से अर्वाग् (पश्चात्) सिद्ध हुए हैं । अथ (अतः) इससे जिससे हुआ है उसको कौन जान सकता है ॥ ऐसा होने पर भी सत् चिद् आनन्द अनन्त अप्रमेय आत्म-स्वरूप से मोक्ष हेतु ज्ञान का भी वेदादि में वर्णन है; क्योंकि जिस ज्ञान से प्रबल राग द्वेष मोहादि का अभाव होता है; सोई ज्ञान शान्ति सुख मोक्ष का हेतु है । ईश्वर माया आदि का विशेष ज्ञान शान्ति आदि का हेतु नहीं हैं । और इन्हें अनिर्वाच्यादि समझ कर शान्त हो जाय तो कोई हानि नहीं है, पिता के जन्मादि वा निज जन्मादि को विशेष रूप से पुत्र नहीं जाने, तो कोई हानि नहीं है । किन्तु पिता के साथ अपने सम्बन्ध कर्तव्य, अपना स्वरूप को नहीं जाने तो हानि है, यही बात ईश्वर के साथ जीवों की है और स्वरूप को जानना अति दुर्लभ है । श्रुति कहती है कि—

'शृण्वन्तो बहवो यं न विद्युः ।' कठ० १।२।७
'कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षत् ।' कठ० २।४।१

ऋग्वेद अ० २ का मन्त्र है कि—

'अनच्छये तुरगातु जीवमेजद् ध्रुवं मध्य आपस्त्यानाम् ।
जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येनासयोनिः ॥

तुरगातु (शीघ्रगामी) अनत् (श्वांसवाला) एजत् (कम्पादिकर्ता) यह जीव (जीवनयुक्त देह) में शये (शयन करता है रहता है), और समाधि आदि काल में पस्त्यानां (गृहों के) मध्य (बीच में) ध्रुवं (निश्चल) आ (तिष्ठति)। और मृतस्य (मृत शरीर के सम्बन्धी भी) जीव, मर्त्येन (मृत देह के) साथ, असयोनिः (असधर्मा) अमर्त्य (अमरणधर्मा, नित्य) ही रहता है। और स्वधाभि (कर्मानुसार प्राप्त अन्नों से) चरति (वर्तता है)। इससे जीव देह का विवेक बताया गया है। अथवा अनत्, एजत्, तुरगातु शरीरं, ध्रुवं जीवमहं शये। अर्थात् जीव सहित शरीर के श्वांस कम्प गतियुक्त होने पर भी मैं सर्वात्मा अन्तर्यामी स्वरूप से, जीव के देहरूप घरों में आशये (अच्छी तरह शयन करता हूँ, रहता हूँ)। यह सद्‌गुरुरूप परमात्मा की उक्ति है॥ और अमर्त्य (नित्य) जीव (प्राणी) मर्त्य (प्राण रहित) वस्तु की स्वधाभिः (भोज्यादि से) मर्त्य देहादि के असयोनिः (असधर्मा विवेकी) होकर विचरता है, सुखी होता है। और प्राणी की हिंसा द्वारा स्वधादि की प्राप्ति से अविवेकी दुःखी होता है, इत्यादि॥

इन वेदवचनों के अनुसार कर्मादि नहीं करने से और नहीं समझने से जीव दुखी, स्थिरता रहित होता है। भर्तृहरि कहते हैं कि,

'तृषा शुष्यत्यास्ये पिबति सलिलं शीतमधुरं,
क्षुधार्तः शाल्यन्नं कवलयति सूपादिसहितम्।
प्रदीप्ते कामाग्नौ सुदृढतरमालिङ्गति वधूं,
प्रतीकारं व्याधेः सुखमिति विपर्यस्यति जनः॥'

पिपासा से मुख के सूखने पर शीत मधुर जल पीता है, भूख से दुःखी होकर दालादि सहित भात खाता है, कामाग्नि के प्रदीप्त होने पर स्त्री का गाढ़ आलिङ्गन करता है। इस प्रकार व्याधि का प्रतीकार (निवारण) को ही सुख समझकर मनुष्य भ्रान्त होता है। सच्चिदानन्द को नहीं समझता है॥

'दधि मधुरं मधु मधुरं द्राक्षा मधुरा सुधापि मधुरैव।
सर्वं यस्मान्मधुरं तं मधुरतरं को न जानाति॥ १॥
द्रविणं दयितं सुतोऽपि दयितः शरीरं दयितं युवतिर्दयितैव।
सर्वं यस्माद्दयितं तं दयिततरं को न जानाति॥ २॥
अधरं रुचिरं नयनं रुचिरं दन्ता रुचिरा नासाऽपि रुचिरैव।
सर्वं यस्माद्रुचिरं तं रुचिरतरं को न जानाति॥ ३॥ कविः

'नावेदविन्मनुते तं बृहन्तम्।' तै० ब्रा० ३।१२।९।७

'त एतदधिगच्छन्ति विष्णोर्यत्परमं पदम्।
अहं ममेति दौर्जन्यं न येषां देहगेहजम्॥' श्रीमद्भा० १२।६।३३

'अहो मायाबलं विष्णोः स्नेहबद्धमिदं जगत्।
कस्य के पतिपुत्राद्या मोह एव हि कारणम्॥', श्रीमद्भा० ८।१८

'आत्मानुभूतौ तां मायां जुहुयात्सत्यदृङ् मुनिः।
ततो निरीहो विरमेत्स्वानुभूत्यात्मनि स्थितः ॥' श्रीमद्भा० ७।१४।४४

अज्ञानादि से ही दधि आदि में स्वतन्त्र मधुरता, धनादि में प्रियता, अधरादि में रुचिरता भासती है। अतिमधुर अतिप्रिय अतिसुन्दर आत्मपरमात्मतत्त्व ज्ञान विराग समाधि सुखादि को कोई नहीं जानता है। और वेदादिरूप सदुपदेश के अज्ञानी उस विभु आत्मा को नहीं समझता है। और जिसको देह गेहादि से जन्य अहं ममादिरूप दुर्जनता नहीं रहती है, वही वेदवेत्ता होकर, जो विष्णु (ब्रह्मात्मा) का परमपद (स्वरूप) है, उसको प्रत्यक्ष जानता है॥ परन्तु विष्णु की माया का बल आश्चर्यरूप है, कि जिससे यह जगत् स्नेह (राग-ममता) से बँधा है, कौन किसके पति पुत्रादि हैं। इस ममता में मोह (माया) ही कारण है॥ सत्य दृष्टिवाला मुनि उस माया को आत्मानुभव में हवन करे, तब आत्मानुभव से आत्मा में स्थिर इच्छादि रहित होकर, सब क्रियादि से उपराम होय, इत्यादि ॥

हनूमान गुरुभक्ति से, वेदतत्त्व को जानि।
सुखमय जग विचरै सदा, तजै भेदमय ग्लानि ॥ १ ॥
सुकरम से कुकरम हनै, ज्ञान भक्ति तम[1] हानि।
करि विचरै वा थिर रहै, बनै न कहुँ अभिमानि ॥ २ ॥
यही मोच्छ औ सुख सदा, बिनु इच्छा स्थिति जोय।
मोह द्रोह जामें नहीं, सदा प्रगट हरि सोय ॥ ३ ॥



कः शत्रुर्वद खेददानकुशलो दुर्वासनानां चयः।
किं मित्रं सततोपकाररसिकस्तत्त्वावबोधः सखे ॥ १ ॥ (जगन्नाथ कविः)

१ ज्ञानभक्ति से अज्ञान अभिमानादिरूप तम की हानि (नाश) करके विचरे वा समाधिस्थ होय, इत्यादि ॥

२ दुखः देने में चतुर दुष्ट वासनाओं का समूह है और सदा उपकार में रसिक (प्रेमी) तत्त्वज्ञान है, इत्यादि ॥



❁ ओम् राम ❁

अथ

❁ श्रीसद्गुरु कबीर साहब कृत बीजक ❁

बीजक सारबोधिनी टीका सहित

टीकाकार कृत मङ्गलाचरण

तथा

विषय-प्रवेश

गतागतं यस्य न भाति किञ्चिद्गतागतं यो जगतश्चकास्ति ।
बुद्धेश्च सर्वस्य न यो विकारं प्रकाशते तं विमलं स्मरामि ॥१॥

वन्दौं वन्दनीय पदमूला । जाते नशत अमङ्गल कूला ॥
अर्थ धर्म शुभकामहुं जाते । जन विवेकि सुख मोक्षहुं पाते ॥
सर्व हेतु सब दोष विमुक्ता । भजत जाहि योगीजन युक्ता ॥
जीव चराचर जाके अंशा । देव निकर मुनिजन शुभ वंशा ॥
उतपतिपालन जाते होई । प्रलयमाहिं जहँ रह सब कोई ॥
मायामय होवत संसारा । जिमि रवि किरण माहिं जलधारा ॥
लिपत न रहत असङ्ग सदाहीं । जीवस्वरूप सत्य सो आहीं ॥
चिदानन्दघनब्रह्मस्वरूपम् । सुमिरत ताहि मिटत दुखरूपम् ॥

प्राणेन्द्रिय मन देह सब, भूत भौति संसार ।
प्रकटत सत्य स्वरूपसे, यथा स्वप्न गतसार ॥ १ ॥

सब कर परम प्रकाशक देवा । हरत मोहतम जो तिहि सेवा ॥
परम प्रकाश दिवाकर सोई । विधि हरि हर जाते बहु होई ॥
जाकी शक्ति सकल जगदम्बा । सुमिरत हरत कुमोह कदम्बा ॥
धारत भव विमोहमय होई । है विद्यामय बन्ध विगोई ॥
गमनागमन रहित विभुदेवा । शक्ति करत गमनादिक सेवा ॥
निर्गुण ब्रह्म राम शिव जोई । सगुण ईश विधि हरि रह सोई ॥

सर्वातम जो अचल अखण्डा । मायि रचत सो भव वहु खण्डा ॥
ईश्वर अकथ शक्ति युत एका । मायिक तनु सो धरत अनेका ॥
माया निज आश्रय नहिं मोहै । करि विचित्र रचना अति सोहै ॥
ईश्वर की रचना अति गाढ़ी । जीव दृष्टि तहँ होत न ठाढ़ी ॥
विषय काम वश फिरत भुलाना । निज स्वरूप सत एक न जाना ॥
सर्व शक्ति सर्वज्ञ सुजाना । ईशहुँ लखत न जीव अजाना ॥
ताते पड़त मोह के फन्दा । भोगत भोग शोकप्रद गन्दा ॥
होत अविद्या आश्रय मोहक । मनहु दुष्ट तिय स्वामिक द्रोहक ॥
अविद्या हि जीवत्व निदाना । ताते जीव लहत दुख नाना ॥
निज परमार्थ रूप नहिं जानै । ईशभक्ति गुरुभक्ति न मानै ॥
श्रद्धा नहिं सुपन्थ में होई । शम दमादि शुभ पन्थ न जोई ॥
भ्रमत काम वायु के प्रेरे । सो विमोह थल रूप घनेरे ॥

मायापति प्रभु मायि को, भजै नित्य निष्काम ।
करै कर्म शुभ सत्त्व युत, तब पावै विश्राम ॥ २ ॥

माया रूप असत संसारा । ताका सत इक राम अधारा ॥
दूर निकट नहिं विगत विकारा । व्यापक विगत विभेद अपारा ॥
बन्ध मोक्ष सुख दुख से न्यारा । सुख स्वरूप सबका भरतारा ॥
बन्ध मोक्ष भागी जे प्राणी । राम अंश सम गुणवश गामी ॥
प्राणेन्द्रिय मन बुद्धि समेता । सूक्ष्म देह मय जीव सचेता ॥
पाय सत्त्वगुण सुख विलसाहीं । ज्ञान सुगुण रुचि मन हरषाहीं ॥
पाय रजोगुण लोभ सुयुक्ता । कर्म करहिं सुशमादि वियुक्ता ॥
भ्रमहिं सदा कुकाम के प्रेरे । पावहिं दुख शोकादि घनेरे ॥
पाय तमो गुण अन्ध समाना । लखहिं न ऊँच नीच थल नाना ॥
मोह क्रोधबश होहिं सदा हीं । निद्राऽऽलस प्रमाद बश जाहीं ॥
अज्ञानहुँ तम रूप महाना । जन्म मरण भय भरम निदाना ॥
गुण कृत स्वर्ग नरक दुख माना । सत्त्व सुगुणकृत स्वर्ग महाना ॥
मध्यम गति हि रजोगुण साधक । अधम कुगति दै तमगुण बाधक ॥
सत्त्व सुगुण प्रकाश सुख रूपा । किय गुमान सो दुखद अनूपा ॥
सुखासक्ति ज्ञानक अभिमाना । किये देत सत्त्वहुं दुख नाना ॥
रागद्वेष अभिमानज होई । द्रोह मोह तहँ आवत दोई ॥

जो सत्त्वज ज्ञानादिसे, राम सत्य पहिचानि ।
तजै अविद्या जाल गुण, सो न लहै कहुँ हानि ॥ ३ ॥

उदासीन समता युत जोई । ता कहँ गुण कृत बन्ध न होई ॥
राग न रोष न मोह न द्रोहा । ज्ञानि सन्त कहँ क्षोभ न जोहा ॥
तजि के मान भजे भवहारी । ज्ञानि सुसन्त सुजन हितकारी ॥
निज आतम सम सब को जानै । आतम सुख दुख सब सम मानै ॥
निज स्वरूप का करै विवेका । सत्य सुखद समुझै हरि एका ॥
हरिहि ब्रह्म शिव जगदाधारा । राम अनन्त अनीह अपारा ॥
नाम अनेक एक है सोई । आवागमन रहित विभु जोई ॥
ताते रहै अनन्य सदा ही । ताको मोह द्रोह कहुँ नाहीं ॥
तत्त्वमसी आदिक शुभ वचना । सद्गुरु वाक्य महा शुभ रचना ॥
मनहु सोय को देत जगाई । तब जन स्वयं लखत सचुपाई ॥

जो पद काहुक वाच्य नाँहि, महावाक्य का लक्ष्य ।
ताको लखतहि जीव यह, होत ब्रह्म प्रत्यक्ष ॥ ४ ॥

देह गेह तामस जग सारा । जड़ स्वरूप मायिक विस्तारा ॥
कर्ता ताका ईश कहावै । माया से सब जगत् बनावै ॥
मायी सो सर्वज्ञ महाना । सर्व शक्ति युत ब्रह्म न आना ॥
सर्व आतमा रामजु देवा । सो सत जीव अलिप्त अछेवा ॥
गही अविद्या देहहुँ नाना । ह्वे अल्पज्ञ जीव अज्ञाना ॥
जन्म मरण ताहू के नाहीं । देह धर्म मानत निज माहीं ॥
इमि अनादि संसार कहावै । जन्मत मरत दुसह दुख पावै ॥

जन्मादिक संसार यह, यद्यपि बन्ध अनादि ।
तदपि अविद्या जनित को, नाशत ज्ञानहि सादि ॥ ५ ॥

प्रतिभासिक व्यवहारिक दोई । जीव स्वरूप मोहमय होई ॥
स्वप्न माहिं जो होत विचित्रम् । सो प्रतिभासिक मोहज चित्रम् ॥
वासनादि कर्महुँ तहँ हेतू । होत तहाँ सो भोगक खेतू ॥
अविद्या हि तहँ मूल महाना । निद्रा दोष सहित विधि नाना ॥
साक्षी तहँ की त्रिपुटी प्रकाशै । भोक्ता भोग्य भोग को भासै ॥
जाग्रत वा सुषुप्ति के आये । स्वप्न सृष्टि सब जात विलाये ॥
जाग्रत सृष्टिहुँ मायिक होई । मायापति महेश रच सोई ॥

तहँ भोक्ता व्यवहारिक जीवा। मायापति परकाशक पीवा॥
भोग रहित द्रष्टा सो होवै। जानि भजै ते सब दुख खोवै॥
जानि भजन कर्ता जो होई। ब्रह्मनिष्ठ मुनि कहियत सोई॥
भजन सुज्ञानाभ्यास कहावै। चिन्तन सुमिरण ताको गावै॥
तत्परत्व तत्कथा न आना। ब्रह्माभ्यास सुभक्ति सुज्ञाना॥

व्यवहारिक जो जीव सो, करि अभ्यास सुजान।
पाय परम वैराग्य दम, शमयुत होत महान॥ ६॥

चिदाभास युत अन्तःकरणा। इन्द्रिय सकल प्राण जहँ वरणा॥
व्यवहारिक सो जीव कहावै। चिदाभास जाको मुनि गावै॥
वस्तुतस्तू अविद्या युक्ता। अन्तः करणादिक जे उक्ता॥
सूक्ष्म देह सो बन्ध स्वरूपा। व्यवहारिक सो जीव कुरूपा॥
सबका साक्षीरूप महाना। सत्य सुजीवरूप नहिं आना॥
अन्तःकरण व्यष्टि अज्ञाना। लहि उपाधि कूटस्थ कहाना॥
जीव साक्षि पुनि कहते ताही। ब्रह्माभिन्न सुशुद्ध सदाही॥
सो हरि ब्रह्म आतमा जानै। सुखस्वरूप ताको नित मानै॥
तजै भेद देहक अभिमाना। सो पावै सुखसिन्धु स्वज्ञाना॥

व्यवहारिक जग जीव सब, सुषुप्ति प्रलय के माँहि।
चिदानन्द में सोवता, प्राण पाहरू नाँहि॥ ७॥

सत्य आतमा प्राणक प्राणा। ब्रह्म सच्चिदानन्द न आना॥
सङ्ग रहित सब दोष विहीना। निष्कल निष्क्रिय शान्त सुक्षीना॥
यह परमार्थरूप सब काहीं। जहवाँ द्वन्द्व लेश मल नाहीं॥
सो अनन्य सत्रूप कहावै। ताकी भक्ति अनन्य जु पावै॥
सो अनन्य बुध तासे होई। योगनिन्द में नित रह सोई॥
सो स्वरूप तुरिया कहलावै। लोक चौथ ताहि कोइ गावै॥
अविगति अविनाशी सो साँचा। तहाँ जाइ मन सहित न वाचा॥
क्षर अक्षर से सो अति न्यारा। सो अक्षर पुनि अगम अपारा॥
ताके ज्ञान विना भव नाना। जन्म मरण भय द्वन्द्व महाना॥

एक ब्रह्म के ज्ञान से, ज्ञात तत्त्व सब होय।
तब भय कारण द्वन्द्व नहि, द्रोहादिक नहि कोय॥ ८॥

अज्ञानहि से भय भ्रम नाना। जन्म मरण नित रैनि विहाना ॥
गमनागमन नरक सुख स्वर्गा। दुख शोकादि लहै संसर्गा ॥
ब्रह्म जानि सब भय तरि जावै। जन्म मरण दुख द्वन्द्व नशावै ॥
व्यवहारिक निज रूप विहाई। मुक्त होत परमारथ पाई ॥
जाग्रत माहि जीव व्यवहारी। विश्वनामि सब विश्वहि धारी ॥
फिरत सदा माया के प्रेरे। हर्ष शोक भय लहत घनेरे ॥
ईश अधीन लहै भय भाना। गर्भ नरक कर्मज दुख नाना ॥
द्रोहादिक दैहिक दुख मूला। परुष असत्य वाचनिक शूला ॥
मोहकुकामादिज भय नाना। सहत जीव जग बिनु निज ज्ञाना ॥
सब लोकन में शोक सदा ही। निज स्वरूप जब लग लख नाहीं ॥
स्वप्न माहिं रचि जगत् विचित्रम्। लहत तहाँ निज शत्रु सुमित्रम् ॥
तहँ तैजस नामा कहलावै। तेज रूप मन तहँ भरमावै ॥
मन हि रचै सो स्वप्न असारा। वासनादि का मन आधारा ॥

कर्मवासना सहित मन, अज्ञानज संसार।
रचता निद्रा दोष युत, प्रतिभासिकहि असार ॥ ९ ॥

मायिक व्यवहारिक संसारा। ईश रचित अति अगम अपारा ॥
तामसि माया का विस्तारा। पाँच भूत भौतिक संसारा ॥
कर्मज भोग हेतु सो सारा। जाग्रत स्वप्नहुँ केर पसारा ॥
भोग हेतु कर्मक चय पाये। जीव जात निजरूप समाये ॥
सत जो निज परमारथ रूपा। तहाँ जात जहँ छाँह न धूपा ॥
सुखी होत तहँ द्वन्द्व विहाई। प्राज्ञ नाम ताका श्रुति गाई ॥
सत सम्पन्न कही पुनि ताही। रहत न तहँ मन भय ममताही ॥
किन्तु रहत तहँ बीज अपारा। बीजरूप से सब संसारा ॥
भावी भोग हेतु कर्मादी। रहत अविद्या मोह अनादी ॥
ताते पुनि स्वप्नादिक पाई। रचत जीव जग निज दुखदाई ॥

तीन अवस्था मोहमय, तामें दुख मय बन्ध।
हेतु रहत अज्ञानमद, लहत दुखद सम्बन्ध ॥ १० ॥

भ्रमत जीव त्रयलोकन माहीं। जब लो नाहिं तुरिय पद पाहीं ॥
जाग्रत स्वप्न सुषुप्तिहुँ तीनो। व्यवहारिक स्वरूप तहँ हीनो ॥

उत्तम तुरियारूप महाना । तहाँ गये सब बन्ध नशाना ॥
मात्रा त्रय ओंकारक माँही । अ, उ, मकार जग विदित सदाही ॥
जाग्रत आदि अवस्था धारी । जीवक वाचक क्रम ते सारी ॥
तुरिया का वाचक नहिं कोई । कहिय अमात्र याहि ते सोई ॥
सब व्यवहार अतीत महाना । शिव अद्वैत सन्त कोइ जाना ॥
गत प्रपंच सर्वोत्तम देवा । लखतहि ताहि होत भव छेवा ॥

नामरूप गुण हीन जो, सर्वातम सत देव ।
सतगुरु शिव परसाद ते, ताका जानिय भेव ॥ ११ ॥

होत भेव ज्ञानों का कारण । गुरु श्रुति सन्त वचन भयटारण ॥
हेतु होत सब मङ्गल काहू । ताते लहिय मुक्ति फल लाहू ॥
बासनादि भव हेतु नशाई । लहिय मुक्ति गुरु पद ते भाई ॥
गुरु गम वेद विचार विहीना । लखै न सत परमारथ क्षीना ॥
लहै न सत मारग सो प्राणी । पड़ि कुपन्थ पावत अति हानी ॥
हिंसा पर अपकार कुभोगा । करि कुसंग सत लहै न योगा ॥
योग परम सत ज्ञान विहीना । मरत मनुष्य होत अति दीना ॥
शोचनीय सो सब विधि प्राणी । जो न धर्म लहि भै अभिमानी ॥
देहादिक अभिमान कुभोगा । जब लग रह तब लग सब रोगा ॥

वासनादि मय तन्तु से, भूत मालिका पोय ।
चलत जीव सो लहत भव, ता बिनु भव नहि होय ॥ १२ ॥
योग युक्ति करि वित्ति से, तन्तुन देत विनाशि ।
सो निज शुद्ध स्वरूप लहि, लहत मुक्ति सुख राशि ॥ १३ ॥
जन्म मरण दुख द्वन्द्व लखि, लहि विराग मतिमान ।
गमनागमन विहीन अज, लखत राम सुख खान ॥ १४ ॥
रामहि जीव स्वरूप सत, व्यापक परम पुनीत ।
सद्गुरु ताके ज्ञान हित, भाषा भनि सब हीत ॥ १५ ॥
चिदानन्द घन ब्रह्म का, सद्गुरु का धरि ध्यान ।
भाषा भणित कि भणिति लघु, भाषा सुनिय सुजान ॥ १६ ॥



❀ ओम् राम ❀

❀ श्रीसद्गुरु कबीर साहब कृत बीजक ❀

अथ प्रथमं रमैनी प्रकरणम्

सम्बन्ध—अज्ञान से बन्धन दुःख और ज्ञान से मोक्ष सुख होता है, यह सर्व सम्मत सिद्धान्त है। तहाँ जीव के पारमार्थिक, व्यावहारिक और प्रातिभासिक तीन स्वरूप हैं। उनमें पारमार्थिक स्वरूप के अज्ञान से काम कुप्रवृत्ति आदि द्वारा बन्धन दुःख होता है। और विवेक वैराग्यादि पूर्वक उस पारमार्थिक स्वरूप के ज्ञान से कामादि की निवृत्ति पूर्वक शान्ति मुक्ति तृप्ति की प्राप्ति होती है। अतः उस पारमार्थिक स्वरूप के ज्ञान के लिए सद्गुरु कबीर साहब ने उपनिषत् स्वरूप बीजक नामक ग्रन्थ की रचना की है। जिसका यह प्रथम प्रकरण है।

अथ सृष्टि प्रकरण १

स्वरूप निर्देश मङ्गल

रमैनीं १

जीव रूप एक अन्तर बासा। अन्तर जोती कीन्ह प्रकाशा॥

सब जीवों का पारमार्थिक स्वरूप सत्य आत्मा एक है। सब भूत भौतिक संसार के अन्तर (भीतर) में वास (स्थिति) वाला है। तथा सब शरीर के भीतर में विशेष रूप से बसने वाला है। और संसार शरीर से बाहर भी सामान्य-रूप से बसने वाला है और सब के भीतर में जोती (ज्योति=ज्ञान) रूप से रह कर सबका प्रकाश किया है और करता है। बुद्धि आदि उपाधियों के भेद से आभास प्रतिबिम्ब तुल्य व्यावहारिक जीव के स्वरूप में भेद है, सत्यात्मा में नहीं। सो ६४ शब्द और १० कहरा आदि में स्पष्ट वर्णित है।

इच्छा रूप नारी अवतरी। तासु नाम गायत्री धरी॥
तिहि नारि के पुत्र तिनि भाऊ। ब्रह्मा विष्णु महेश्वर नाऊँ॥

उस ज्योति स्वरूप में माया के सम्बन्ध से सिद्ध मायी ईश्वर की इच्छा रूप नारी ने सृष्टि के आदि काल में अवतार लिया (प्रकट हुई)। देवी भागवत के अनुसार उसका गायत्री नाम धरा गया। और उसी नारी के पुत्र ब्रह्मा, विष्णु, महेश नाम वाले तीन भाई इस भूमि पर हुए।

तब ब्रह्मा पूछल महतारी । के तव पुरुष तु केकर नारी ॥
हम तुम तुम हम और न कोई । तुमहि पुरुष हमहि तोरजोई ॥

तब (जन्म लेने पर) प्रवृत्ति के स्वभाव वाले राजस ब्रह्मा ने, अनादि स्त्री पुरुष के संस्कारों की अभिव्यक्ति से माता से पूछा कि तेरा पुरुष कौन है, और तूँ किसकी नारी (स्त्री) है ।

तब प्रथम माता आत्मदृष्टि से बोली कि, हम तेरा स्वरूप हैं और तुम मेरा स्वरूप हो, हम तुम में भेद नहीं है । क्योंकि "योऽसौ साऽहमहं योऽसौ भेदोऽस्ति मतिविभ्रमात्" जो वह परमात्मा है, सो मैं हूं और मैं हूं सो परमात्मा है, भेद तो बुद्धिगत भ्रम से है । अतः सत्यात्मा सब का एक है और सत्यात्मा से अन्य कोई सत्य नहीं है । और तुम ही उस सत्यात्मा पुरुष स्वरूप हो, तेरे स्वरूप से वह भिन्न नहीं हैं । और मैं भी तेरा स्वरूप होता हुआ भी इच्छा (माया) रूप से तेरी जोई (योनि) उत्पत्ति का कारण हूँ । तेरे व्यावहारिक स्वरूप का हेतु हूं । और अन्य पति के बिना चेतन देव की सत्ता प्रकाश से ही भोगादि को सिद्ध करने वाली स्त्री हूँ । और तेरे लिये सरस्वती आदि को सिद्ध करने वाली हूँ । "गृहाणेमां विधे ! शक्तिं सुरूपां चारुहासिनीम्" देवी (भा० स्क० ३ अ० ३) इत्यादि वहाँ द्रष्टव्य है । इसी एक चेतनात्मा और माया को आगे कहा गया है कि (एके पुरुष एक है नारी, ताकर करहु विचारा । शब्द ९) ॥

बाप पूत की एके नारी, एके माय विआय ।
ऐसा पूत सपूत न देखा, बापहिं चीन्है धाय ॥ १ ॥

ईश्वर रूप बाप (पिता) और जीव रूप पुत्र की माया रूप एक ही नारी है । अर्थात् एक ही प्रकृति शुद्ध सत्त्व की प्रधानता से माया कही जाती है । सो ईश्वर की शक्ति उपाधि है । और मलिनसत्त्व की प्रधानता से अविद्या (अज्ञान) कही जाती है, सो जीव की उपाधि है । अतः ईश्वर उस माया में कर्म बीज को धरता है । और जीव उस माया रचित संसार में अविद्या द्वारा भोग पाता है । और वही एक माया अविद्या माता होकर सब पुत्रों (देहियों) को बिआती (पैदा उत्पन्न करती है) तहाँ ऐसे सुपुत (लायक पुत्र नहीं दीख पड़ते हैं कि जो शुद्ध पिता के ध्यान करके, उसको प्रत्यक्ष समझें, अर्थात् ऐसे बहुत कम लोग होते हैं । साखी का हरि पद छन्द है ॥ १ ॥

सम्बन्ध—प्रथम रमैनी से केवल जीव के सत्यस्वरूप से इच्छा द्वारा ब्रह्मा आदि की उत्पत्ति की प्रतीति होती है। तहाँ माया रूप शक्ति के बिना उत्पत्ति आदि के असम्भव से माया युक्त आत्मा से उत्पत्ति का वर्णन करते हुए पूर्वोक्त अर्थ का विशेष रूप से वर्णन करते हैं कि—

रमैनी २

अन्तर जोति शब्द एक नारी। हरि ब्रह्मा ताके त्रिपुरारी॥

सब के अन्तर (भीतर) में वर्तमान परम सूक्ष्म ज्योति स्वरूप आत्मा एक है। और ओंकारादि शब्दरूपता को धारन करने वाली नारी (प्रकृति = माया) भी एक है। और ताके (इन दोनों के) पुत्र रूप हरि ब्रह्मा और त्रिपुरारी (शिवजी) हुए।

ते तिरिये भग लिङ्ग अनन्ता। तेउ न जानल आदिउ अन्ता॥

फिर माया आदि सहित उन हरि आदि तिरिये (तीनों) से अनन्त भग लिङ्ग वाले स्त्री पुरुष हुए। परन्तु गुरु तथा विचारादि के बिना, सब के आदि तथा अन्त स्वरूप आत्मा को वे लोग भी नहीं जान सके।

तथा उन हरि आदिक तीनों में "ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः। ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना" इन समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री ज्ञान और वैराग्य रूप भग इङ्गना (नाम) वाले पदार्थों के लिङ्ग (चिन्ह=लक्षण) अनन्त रहे, परन्तु वे भी गुरु आदि के बिना सब के आदि अन्त को नहीं जान सके। अतः गुरु आदि प्राप्तव्य हैं।

वाखरि एक विधाते कीन्हा। चौदह ठहर पाठ सो लीन्हा॥
हरि हर ब्रह्मा महतो नाऊँ। तिन पुनि तीन बसावल गाऊँ॥

माता रूप गुरु के उपदेश तथा विचारादि द्वारा, प्रथम ब्रह्मा विष्णु और महेश ने सब के आदि अन्त स्वरूप सर्वात्मा परब्रह्म को समझा। फिर अन्य जिज्ञासुओं को समझाने के लिये विधाता (ब्रह्मा) ने एक वाखरी (बखार= धर्म ज्ञान शब्द अर्थ का कोष रूप खजाना) रूप वैखरी वाणी रूप वेदों की रचना की (वेदों को प्रकट किया)।

फिर चौदह ठहर (स्थानों=भुवनों) में उसी का पाठ लोगों ने लिया। वेदों का अध्ययन किया। क्योंकि हरि, हर और ब्रह्मा महतो (महान्) नाम

वाले अधिकारी (नेता) पुरुष हुए हैं। अतः उनके उपदेश व्यवहारादि को लोगों ने प्रमाण रूप माना। फिर उन लोगों ने तीन लोक रूप तीन ग्राम को बसाया तथा ब्रह्मलोक, वैकुण्ठ, कैलास को बसाया।

तिन पुनि रचल खण्ड ब्रह्मण्डा। छौ दर्शन छयानवे पाखण्डा॥
पेटहिं काहु न वेद पढ़ाया। सुनत कराय तुरुक नहिं आया॥
नारी मोचित गर्भ प्रसूती। स्वाँग धरे बहुते करतूती॥

फिर तिन (उन) ब्रह्मा आदिकों ने भूमि में नव खण्ड को और ब्रह्माण्ड को रचा (विविध रचना विभाग युक्त किया) और उस रचना में ही छः दर्शन और उनके भेद रूप छयानवे पाखण्ड (वेष धारी = लिङ्गी) हुए। अर्थात् १२ योगी १८ जङ्गम २४ सेवड़ा १० संन्यासी १४ दरदेश (शेख) और १८ ब्राह्मण हुए।

तहाँ माता के पेट (गर्भ स्थान) से ही वेद पढ़ कर कोई हिन्दु या सुन्नत कराय कर कोई तुरुक नहीं आया। अतः जन्म मात्र से न ब्राह्मणादि बन कर आया, न तुरुक बनकर आया।

किन्तु प्रसूती (प्रसव = जन्म) काल में माता रूप नारी (स्त्री) से मोचित (त्यागा=जन्माया गया) जो गर्भ (बच्चा=लड़का) सोई फिर बहुत करतूत (कल्पित) स्वांग (वेष) को धरता है। सत्य धर्मादि रहित वह मिथ्या भेद वेष ही पाखण्ड कहा जाता है।

आगे ५१ रमैनी में कहा गया है कि सच्ची धारणा धर्मवाला किसी साधारण वेष से रहता है, सादा स्वभाव से रहता है। वदन (देह) में स्वांग बनाने के स्वभाव वाला नहीं होता है इत्यादि।

तहिया हम तुम एके लोहू। एके प्राण वियापै मोहू॥
एके जनी जना संसारा। कौन ज्ञान से भयऊ न्यारा॥

तहिया (उस जन्म काल में) हम तुम सब मनुष्य एक से (तुल्य) लोहू (रुधिर) एक से प्राणादिवाले रहते हैं। तथा रुधिरादि युक्त शरीर के तुल्य अभिमानी रहते हैं। और एक सा मोह सब को घेरे रहता है।

और संसार के सब जनी (स्त्री) और जना (पुरुष) जन्म काल में एक से रहते हैं। अथवा एक माया रूप जनी (स्त्री) ने सब संसार को जना (जन्माया) है, तो जन्म काल में ही सब कौन (किस) ज्ञान से न्यारा (भिन्न भिन्न) हो गया।

अर्थात् जन्म अज्ञान मोह काल में ज्ञान से न्यारा नहीं हुआ। किन्तु अज्ञान मूलक पाखण्ड से न्यारा न्यारा हो गया। (भेद बढ़ गया)।

और "आत्मबोधेन ये पूर्णाः पुरुषास्त उदाहृताः" इत्यादि वचनों के अनुसार आत्म ज्ञान से पूर्ण जितेन्द्रिय का पुरुष नाम है, किन्तु ज्ञान के विना विपरीत व्यवहार होता है। कि—

भौ बालक भग द्वारे आया। भग भोगी के पुरुष कहाया ॥
अविगति की गति काहु न जानी। एक जीभ कित कहौं बखांनी ॥

यह जीवात्मा देही रूप से भग द्वारा संसार में आकर प्रथम निपट अज्ञ वालक हुआ। फिर ज्ञान ध्यानादि योग्य अवस्था को पाकर भी विवेकादि के विना भगभोग में आसक्त हो करके ही अपनी स्त्री का पुरुष (स्वामी=पति) कहाने लगा।

अतः योग्य ब्रह्मचर्यादि से रहित होने के कारण, भोगासक्त काहु (किसी) ने अविगति (अग्राह्य=अदृश्य) उक्त ज्योति स्वरूप आत्मा की गति (मर्म= महिमा) नहीं जानी। ऐसे मनुष्य आत्मा का अनुभव नहीं कर सके। और वह आत्मा की महिमा अनन्त है। और अज्ञ जीव भी अनन्त हैं। अतः एक जीभ से कहाँ तक व्याख्यान करके कहा जाय, ये अनन्त रूप से ही ज्ञातव्य हैं।

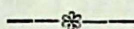
जो मुख होय जीभ दश लाखा। तो कोइ आय महन्तो भाखा ॥

क्योंकि यदि किसी के मुख और जीभ दश लाख हों, तो भी कोई (कुछ) ही महन्त (महिमा) उस महापुरुष की भाखा (भाषण) में आ सकती है, सम्पूर्ण नहीं। इसी से आगे ७८ शब्द में कहा गया है कि (जाकी गति ब्रह्मा नहिं जानी, शिव सनकादिक हारे। ताकी गति नल कैसे पैहैं, कहहिं कबीर पुकारे ॥)

साखी—कहहिं कबीर पुकारि के, ई बैली व्यवहार।
राम नाम जाने बिना, बूड़ मुआ संसार ॥ २ ॥

कबीर साहब पुकार के कहते हैं, कि यह भग-भोगादि में आसक्ति, मिथ्या पुरुषत्वादि के अभिमानादि, बैल तुल्य जड़ मनुष्यों के व्यवहार होते हैं। कि जिस से सर्वात्मा राम नाम वाले परम पुरुष को जाने विना ये संसारी जीव संसार सागर में बूड़ (डूब) कर मुये और मरते हैं ॥ २ ॥

जगत ज्योति श्रीराम भजि, नर उतरहिं भव पार।
हनूमान ताते कहा, सत गुरु राम विचार ॥ १ ॥
सर्व साम्य सब हितकरन, त्यागि कुटिलता काम।
राम ज्ञान हिंसा तजन, राम भजन सुख धाम ॥ २ ॥
ज्ञान अभय वैराग्य हित, सतगुरु शब्द सुसार।
हनूमान ताते सदा, गुरु पद हिय में धार ॥ ३ ॥ २ ॥



सम्बन्ध–इस उक्त दुर्मृत्यु से बचने के लिये आगे उपदेश है कि--

रमैनी ॥ ३ ॥

प्रथम अरम्भ कौन को भाऊ। दूसर प्रगट कीन्ह सो ठाऊँ ॥
प्रगटे ब्रह्म विष्णु शिव शक्ती। प्रथमहिं भक्ति कीन्ह जिव उक्ती ॥
प्रगटे पौन पानि औ छाया। बहु विस्तार के प्रगटी माया ॥

प्रथम आरम्भ भौ कौन का, यह मन करिय विचार।
अथवा कहाँ ते प्रगट भयो, सो लखि सत उरधार ॥ ४ ॥

उक्त ज्योतिः स्वरूप सत्यात्माराम के ज्ञान के लिये प्रथम यह विचार करना चाहिये कि सृष्टि के प्रथम (आदि) काल में किसका आरम्भ (असत का जन्म) हुआ और दूसरा विचार करना चाहिये कि इन कार्यों से भिन्न इन्हें जन्म देने वाला कारण रूप दूसरा आधार ठाम (ठिकाना) कौन है।

और उक्त विचारों से समझना चाहिये कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव और शक्ति ये सब प्रगट हुए हैं। अतः ये जन्मने वाले हैं। ये ही जगत के आधार अधिष्ठान स्वरूप नहीं हैं। अत एव ये सब अपने में जीव भाव की उक्ति (कल्पना) करके भक्ति किये हैं। अपने में जीवता की उक्ति पूर्वक तप आदि किये हैं।

इन से भी प्रथम पौन (पवन = वायु तत्त्व) और उसके अभिमानी देव प्रगट हुए। तथा अभिमानी देव सहित पानी (जल) और छाया (कान्ति = तेज) प्रगट हुए। और बहुत विस्तार स्वरूप आकाश रूप से माया स्वयं प्रगट हुई।

प्रगटे अण्ड पिण्ड ब्रह्मण्डा। पृथिवी प्रगट कीन्ह नव खण्डा ॥
प्रगटे सिद्ध साधक संन्यासी। ये सब लागि रहे अविनाशी ॥
प्रगटे सुरनर मुनि सब झारी। ताहि खोज परे सब हारी ॥

ब्रह्माण्ड प्रगट हुआ और उस में अण्डज पिण्डजादि प्राणी प्रगट हुए। पृथिवी प्रगट हुई, उसमें नव खण्ड (विभाग) किये गये (नव भारतादि खण्ड हुए)।

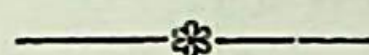
सिद्ध साधक और संन्यासी प्रगट हुए। और ये सब अविनाशी आत्मदेव में लग कर स्थिति काल में स्थिर हुए। अर्थात् अविनाशी अधिष्ठान के आश्रित स्थिति पाये। और सुर नर मुनि सब के सब प्रगट हुए और प्रगट होकर सब जिस अविनाशी के आश्रित रहे, उसको दूर तटस्थ मान कर उस की खोज में हार परे (हैरान हुए)।

साखी—जीव शीव सब प्रगटे, वह ठाकुर सब दास।
कबिर और जानै नहीं, राम नाम की आश ॥ ३ ॥

अण्डजादि जीव और ब्रह्मा आदि तटस्थ शिव (स्वामी ईश्वर) सब प्रगट हुए। परन्तु वह एक अविनाशी राम सच्चा ठाकुर (स्वामी) है। और अन्य सब उसी सर्वाधार के दास हैं।

इसी से कबीर (काम विजेता ज्ञानी गुरु) और (अन्य) को जगदीश सेव्यादि नहीं जानते हैं। किन्तु एक सर्बात्मा राम निज परमार्थ स्वरूप की ही आशा (अवलम्ब ध्यान) रखते हैं। इसी स्वरूप का (निराधार आधार ले जानी। राम नाम ले उचरी वानी ॥ रम०७४) इत्यादि वचनों में वर्णन है।

इति सृष्टि प्रकरण १



अथ रमणादि प्रकरण २

रमैनी ४

प्रथम चरण गुरु कीन्ह विचारा। कर्ता गावै सिर–
कर्महिं कै कै जग बौराया। शक्ति भक्ति ने

संसार के प्रथम चरण (पहला भाग =
धार ठाकुर के ज्ञानी) ब्रह्मा आदिकों ने,
के कर्ता आदि का विचार किया। कि—

"किं स्वीदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत्स्वित् कथाऽऽसीत् ।
यतो भूमिं जनयन् विश्वकर्मा विद्यामौर्णोन्महिना विचक्षा ॥"
(ऋग् म० १ अ० ६ सू० ८१ । यजुः अ० १७।१८)

जिस से आरम्भ किया जाय सो उपादान कारण क्या था ? किसका किस प्रकार आरम्भ हुआ । यह कुछ सत्य नहीं था कि जिससे विश्वद्रष्टा विश्वकर्मा भूमि को रचता हुआ द्यौः (स्वर्ग) को वि और्णोत् बनाया, सो सत्य अधिष्ठान अपनी महिमा से युक्त क्या था ? इत्यादि ।

फिर इस विचार से समझा कि स्वयं कर्ता स्वरूप जीव किसी अन्य तटस्थ सिरजनहार (कर्ता) को गाता है । अर्थात् "विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखः । स इह प्रविष्ट आनखाग्रेभ्यः ।" (वृ० अ० १।४।७) वह कर्ता ही सब तरफ नेत्रादि वाला बना है । और वह इस शरीर में आभासादि रूप से नखाग्र पर्यन्त प्रविष्ट है, अतः सर्वात्मा है, सोई माया शक्ति द्वारा सर्व कर्ता है । और अज्ञ जीव अन्य को गाता है ।

और वह कर्ता भक्ति ज्ञान से प्राप्त (ज्ञात) करने योग्य है । और ज्ञान के विवेकादि साधन हैं । विवेकादि के निष्काम सतकर्मोपासना साधन हैं । परन्तु यह अविवेकी जग (संसारी जीव) सकाम शुभाशुभ कर्म ही करके बौराया है ।

तटस्थ कर्ता ब्रह्मा विष्णु आदि और उनकी विभूति आदि की इच्छा से कर्म कर करके मोहित हुआ है । अतः माया ने शक्ति की भक्ति (प्रेम) रूप रस्सी को लेकर इन जीवों को वाममार्गादि में बाँध दिया है, उन कुमार्गों में ममता अभिमानादि कराय दिया है ।

अदबुद रूप जाति की वानी । उपजी प्रीति रमैनी ठानी ॥
गुनि अनगुनि अर्थ नहिं आया । बहुतक जने चीन्हि नहिं पाया ॥
जो चीन्है तिहि निर्मल अङ्गा । अनचीन्हे नर भये पतङ्गा ॥

उस शक्ति तथा माया के अदबुद (आश्चर्यमय) अनिर्वचनीय सदसत् से विलक्षण स्वरूप है । और उसकी जाति (उत्पत्ति) की आकृति रूप वाणी (शब्दादि विषय) हैं । तथा वाणी मात्र जाति वाली माया है । और आश्चर्य रूप होने से क्या उस में वाणी जाती है, अर्थात् सत्यासत्यादि कुछ कहने में नहीं आती है । माया से बन्धे हुए अज्ञों की शब्दादि विषय स्वरूप माया में

ही प्रीति उत्पन्न हुई। अतः उसी में रमैनी (रमन क्रीड़ा करना) जीवों ने ठानी (शुरू निश्चय किया)।

कि जिससे गुनी (सगुण) और अनगुनी (निर्गुण) अर्थ (ईश्वर शुद्ध ब्रह्म) समझ में नहीं आया। न मोक्ष रूप अर्थ (फल) प्राप्त हुआ। अथवा माया में रमने वाले बड़े-बड़े गुणियों ने गुनी (विचार किया) परन्तु उनको सत्य अर्थ नहीं प्राप्त हुआ। और बहुतक जने (बहुत लोग) तो माया को भी नहीं समझ पाये, न सगुण निर्गुण राम को समझ सके। कोई विरल निष्काम जिज्ञासु समझा।

और जो कोई विवेकादि पूर्वक सर्वात्मा राम को समझा, उसका अङ्ग (स्वरूप) निर्मल (अविद्यादि मल से रहित) हो गया और होता है। और अनचीन्ह (अज्ञ) मनुष्य विषय राग द्वेषादि रूप अग्नि में पड़ने वाले पतङ्ग हुए और होते हैं।

साखी—चीन्ह चीन्ह क्या गावहू, बानी परी न चीन्ह।
आदि अन्त उत्पति प्रलय, आपुहि कै कै लीन्ह॥ ४ ॥

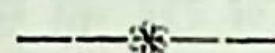
चीन्हे समझे के बिना पतङ्ग तुल्य नाश होता है। अतः प्रथम चरण के गुरुओं का उपदेश है, कि उस आतमा राम और माया को विवेक पूर्वक चीन्हो (अवश्य समझो) केवल वाणी मात्र को गाते (कहते) क्या हो। माया में रमने वालों को तो वाणी भी नहीं समझ पड़ी है, कि जिस वाणी ने सब के आदि अन्त स्वरूप आत्मा और उत्पत्ति प्रलय को स्वयं आप ही कह दिया है।

और वाणी आदि को समझे बिना, तुमने सर्वात्मा राम से अन्य सब के आदि अन्त स्वरूप कारण को और अपने उत्पत्ति प्रलय को (जन्म मरणादि को) अपने अज्ञान से तुम आप ही बार बार कर लिए हो, और करते हो। अतः जन्मादि से रहित होने के लिए, अवश्य सगुण निर्गुणादि को समझो, यह उपदेश है ॥४॥

सृष्टेः कथनमार्गेण तटस्थलक्षणं त्विदम्।
शशिनो वृक्षशाखेव कथितं येन तं नुमः ॥१॥

प्रथम रमैनी से करी, निर्गुण सत उपदेश।
अन्तर्यामी ईश का, दूसर से सन्देश ॥६॥

उपादान निमित्त जोइ, ताका कहा स्वरूप।
तीसर से अरु चौथ से, भव में रमण निरूप ॥७॥
रमत अनन्त अनादि से, जो चह तहँ विश्राम।
ताको ईश्वर गुरु कृपा, से मिलता सुखधाम ॥८॥
गायत्री ब्रह्मादि की, कही कथा से येह।
जातें समुझि विवेकि जन, सद्गति लहै विदेह ॥९॥४॥



अज्ञानी जीव कब से जन्मादि दुःखभागी हुए, ऐसी जिज्ञासा होने पर काहा गया है। कि—

रमैनी ५

कहँ ले कहौं युगन की बाता। भूला ब्रह्म न चीन्हें बाटा ॥
हरि हर ब्रह्मा के मन भाई। बिबि अच्चर लै युक्ति बनाई ॥

नाम रूप गुण रहित जो, निज स्वरूप विख्यात।
ताहि कथन हित गुरु अबे, कहते उपोदघात ॥ १० ॥

अनन्त युगों की बात कहाँ तक कही जाय, ये जीव अनादि काल से संसारी हैं। क्योंकि इनका ब्रह्म (विभु) स्वरूप अनादि से भूला हुआ (अज्ञान से आवृत] है। तथा ब्रह्म (ब्रह्मा) भी प्रथम निज स्वरूप को भूले रहे। और विवेकादि रूप वाट (सन्मार्ग) को भी स्वयं नहीं चीन्ह (जान) पाये थे।

फिर गायत्री माता के उपदेश और विचारादि से हरि, हर और ब्रह्मा के मन में सत-मार्ग और सत्यात्माराम भाई (भासित=ज्ञात हुआ)। तब अन्य के प्रति उपदेश के लिये उन्होंने अकार उकार रूप दो अक्षर लेकर युक्ति (सन्धि) द्वारा उपदेश की युक्ति बनाई। अथवा—

"ओंकारश्चाथ शब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा। कण्ठं भित्त्वा विनिर्यातौ तस्मान्माङ्गलिकाभौवु"
इस नारदीय पुराण के अनुसार दो दो अक्षर की युक्ति (उपदेश के उपाय) रूप ओम् और अथ दो शब्द रूप बनाई कि जो दोनों शब्द मङ्गल के हेतु हैं।

बिबि अक्षर का कीन्ह बँधाना। अनहद शब्द जोति परमाना ॥
अच्चर पढ़ि गुनि राह चलाई। सनक सनन्दन के मन भाई ॥

फिर उन दो अक्षरों का बन्धान (संकेत=नियम) कर दिया कि ये शब्द अनहद (विभु) ज्योति स्वरूप के बोध के लिये परम प्रमाण रूप हैं। विभु ज्योति मात्र के बोधक हैं। अत एव माङ्गलिक हैं।

और उन अक्षरों को पढ़ गुण कर उन लोगों ने कर्म उपासना ज्ञान मार्गों को चलाया (सिद्ध किया) और गुरु शिष्य भावको स्थिर किया। फिर ब्रह्माजी के उपदेश से सनक सनन्दनादि के मन में सन्मार्ग सहित सत्यात्मा भासित (प्रतीत = ज्ञात) हुआ।

वेद कितेब कीन्ह विस्तारा। फैलि गेल मन अगम अपारा॥
चहुं युग भक्तन बाँधल बाटी। समुझि न परल मोटरी फाटी॥

फिर लोगों ने उस ओंकार द्वारा वेद और किताब (ग्रन्थों) का विस्तार किया। जिस से मन भी उस अगम अपार शब्द समुद्र में अगम अपार रूप से फैल गया।

फिर उस फैले हुए मन को समेटने (वश में करने) के लिये चारों युग के भक्तों ने बाटी (मार्ग और मार्गखर्च) को बाँधा। आत्मज्ञानादि के लिये योग तप दानादि को सिद्ध किया। तो भी बहुत लोगों को सतमार्ग सत्यात्मा समझ नहीं पड़ा। क्योंकि मोटरी फाट गई, बात बहुत विस्तृत रूप से फैल गई। अनेक भेदभाव युक्त श्रुति स्मृति आदि की सिद्धि हो गई।

भय भय पृथिवी दहुं दिश धावै। स्थिर न होय न औषध पावै॥
होय भिस्त जो चित न डोलावै। खसम छोड़ि दोजख को धावै॥

उक्त रीति से निर्भय आत्मा के नहीं समझ पड़ने के कारण बार बार भयभीत होकर, पृथिवी आदि में दशो दिशाओं में दुःखादि से रहित मुक्तादि होने के लिये लोग दौड़ते हैं। बहुत वेग से जाते हैं और हरि सद्गुरु स्वामी के शरण में, अपने हृदय में स्थिर नहीं होते हैं। इसी से भव रोग के नाशक ज्ञान ध्यानादि रूप औषधि को नहीं पाते हैं।

यह जीव यदि विवेक पूर्वक सद्गुरु के शरण उपदेश हृदय में स्थिर होय और उनके उपदेश एक ओंकारार्थ राम से चित्त (मन) को नहीं डोलावे, तो इस को अवश्य भिस्त (बिहिस्त) स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त होय। परन्तु यह तो सच्चे खसम (स्वामी=आकाश तुल्य असङ्ग विभु आत्माराम) को छोड़कर, राम

के विचार ध्यानादि नहीं करके, विवेकादिक के बिना स्वयं दोजख (नरक) में जाता है। नरक रूप विषयादि का ध्यान करता है। उसी में दौड़ कर जाता है।

पूरब दिशा हँस गति होई। है समीप संधि बूझै कोई॥
भक्ता भक्तिन कीन्ह शिँगारा। बूड़ि गेल सब माँझहि धारा॥

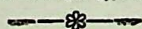
और हंस (विवेकी) जीव की पूर्व दिशा में गति होती है। अर्थात् शरीर के पूर्वभाग हृदय में विवेकी मन को स्थिर करता है। तहाँ भी हृदय कमल के पूर्व-दल पर मन को स्थिर करता है कि जहाँ भक्ति पूर्वक धर्म की बुद्धि होती है। और वहाँ संसार के पूर्व (कारण) स्वरूप सर्वात्माराम की गति (प्राप्ति=अनुभूति) होती है। और वह पूर्व का स्थान और पूर्व की कारण रूप वस्तु अत्यन्त समीप में है। परन्तु उसके भेद मर्म-रूप सन्धि को कोई कोई समझते हैं। शब्द जाल आदि के मारे बहुत लोग बाहर भटकते हैं। सद्गुरु आदि के बिना समझ नहीं पाते हैं। क्योंकि प्रायः भक्त और भक्तिन कहाने वाले वेष मात्र से शरीर के शृङ्गार किये और करते हैं। और धर्म विवेकादि की प्राप्ति नहीं करते हैं। अतः ऐसे लोग जीवन काल में भवार्णव के पार नहीं हुए। किन्तु स्वर्ग पाताल के मध्यवर्ती मानव देहादि के अभिमानादि करके सब मध्यधारा (प्रवाह) में डूब गये।

साखी—बिनु गुरुज्ञान द्वन्द्व भई, खसम कही मिलि बात।
युग युग सोइ कहवैया, काहु न मानी बात ॥५॥

सद्गुरु और सद्गुरुमूलक ज्ञान के बिना जब संसार में राग द्वेषादि रूप द्वन्द्व हुआ, तब खसम (रक्षक असङ्ग स्वामी) स्वरूप गुरुओं ने मिल कर सत्य बात कही। तथा खसम की बात गुरुओं ने कही कि वह सर्वात्मा है, दूर तटस्थ नहीं है। और सब युगों में सद्गुरु सोई बात कहने वाले हैं। परन्तु कोई अविवेकी उनकी बात को नहीं माना, न मानता है। अतः सत्सङ्गादि द्वारा प्रथम विवेकादि सम्पादनीय है।

अथवा विवेक विज्ञान के बिना द्वन्द्व होने पर भी सब अज्ञ मिलकर मिथ्या तटस्थ खसम की बात करने लगे। वाचारब्ध विकार को सत्य मानने लगे। और उसी को सब युग में कहने वाले हैं, सच्ची बात को किसी ने नहीं मानी। न विकारों को बात मात्र समझा इत्यादि ॥ ४ ॥

इति रमणादि प्रकरण २



अथ मोक्षावस्था प्रकरण ३

रमैनी ६

रूप आकारादि रहित राम (ब्रह्म) को समझे विना जो उसके रूप आकारादि का वर्णन करते हैं। सद्विवेकादि के लिये यत्न नहीं करते हैं, उनके प्रति विवेकादि के लिये कहा गया है कि—

वरणहु कौन रूप औ रेखा। दूसर कौन आहिं जो देखा ॥
औ ॐकार आदि नहिं वेदा। ताकर कहहु कौन कुल भेदा ॥

नाम रूप पर सत्य में, स्थिर समाधि के हेत।
वर्णाकार निषेध करि, उपदेशन गुरु देत ॥ ११ ॥

सर्वात्माराम (ब्रह्म) में किस रूप और रेख (आकार) का वर्णन करते हो। वह तो "अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्" (कठ० १।३।१५) इत्यादि श्रुतियों के अनुसार शब्द स्पर्श रूपादि से रहित वस्तुतः निर्गुण स्वरूप है। और उस से अन्य दूसरा द्रष्टा कौन है ? जो उसको देखा। वह तो "नान्यदतोऽस्ति द्रष्टृ।" (बृ० ३।८।११)। "अगृह्यो न हि गृह्यते।" (बृ० ४।२।४) इत्यादि के अनुसार अन्य द्रष्टा ग्रहीता से रहित स्वयं प्रकाश है। अतः वह घटादि के समान सावयव दृश्य स्थूल नहीं है। सर्वात्म स्वयंप्रकाश ज्योतिःस्वरूप से ही ब्रह्म जानने योग्य है।

और "वेदः प्रणव एवाग्रे।" (भागवत स्क० ११।१७।११)। प्रथम प्रणव (ओंकार) स्वरूप ही वेद था, इत्यादि शास्त्र के अनुसार ओंकार जिसका आदि (मूल कारण) है, सो वेद भी जिसको अन्य वस्तु के समान नहीं कह सकता है। और (यतो वाचो निवर्तन्ते) इत्यादि श्रुति के अनुसार जो किसी शब्द का वाच्य नहीं है, किन्तु कथञ्चित् लक्षणा से जाना जाता है, उस आत्मा के कुल जाति आदि के भेदों को क्या कहते हो। सब भेद और गुण क्रियादि से रहित नित्यमुक्त सर्वात्मा राम जानने योग्य है।

नहिं तारागण नहिं रविचन्दा। नहिं कछु होत पिता के बिन्दा ॥
नहिं जल नहिं थल नहिं थिर पवना। को धरु नाम हुकुम को वरना ॥
नहिं कछु होत दिवस औ राती। ताकर कहहु कौन कुल जाती ॥

स्वयं प्रकाश होने ही से ब्रह्मात्मा में तारागण सूर्य चन्द्रादि के प्रकाशों की अपेक्षा नहीं होती है। श्रुति है कि "न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।" (कठ० २।५।१५। श्वेत० ६।१४) उस ब्रह्मात्मा में सूर्य चन्द्र तारा और विद्युत प्रकाश नहीं कर सकते हैं। तो यह अग्नि कैसे प्रकाश कर सकती है।

और "न चास्य कश्चिज्जनिता।" (श्वेता० ६।६।) इसका कोई पिता नहीं है। अतः पिता के बिन्दा (बिन्दु) आदि किसी कारण का इसमें सम्बन्ध नहीं होता है। तथा पिता के बिन्दा (लब्धा) होकर कछु (कुछ) मनुष्यादिरूप वह नहीं होता है। क्योंकि "अशरीरं शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम्। महान्तं विभु-मात्मानं मत्वा धीरो न शोचति॥" (कठ० १।२।२२) सब शरीरों में व्यापक रहते भी शरीर रहित, अस्थिर में स्थिर जिस महान् विभु आत्मा को जान कर धीर (ज्ञानी) शोक रहित होते हैं, सोई ब्रह्म और राम कहा जाता है।

अतः वह जल भूमि थिर (आकाश) और वायु इन सब के सम्बन्धादि से रहित है। अर्थात् जल से भींजना, भूमि से अवरोध होना, आकाश से अवकाश पाना आदि रूप कोई विकार वा फल आत्मा में नहीं होता है। तो फिर उसका नाम कौन धर सकता है। और किस के हुकुम (आज्ञा) से उस के नामादि का वर्णन कौन कर सकता है। वा उस को कौन हुकुम दे सकता है।

अर्थात् आत्मा जैसे रूप आकार से रहित है, तैसे नाम आदि से भी रहित है। गुण क्रिया जाति सम्बन्धादि से नाम सिद्ध होते हैं, और ब्रह्मात्मा गुणादि रहित है। उसको अनात्मा से भिन्नत्व की अपेक्षा से आत्मा, अल्प की अपेक्षा से ब्रह्मादि कहा जाता है। परन्तु जैसे (दशमेऽह्नि पिता नाम कुर्यात्) इत्यादि शास्त्र की आज्ञा रूप हुकुम आदि से शरीर के नाम धरे जाते हैं, तैसे ब्रह्मात्मा राम का नाम नहीं धरा जा सकता है। क्योंकि नाम करण में दशम दिन का कथन किया गया है। और कुल जाति आदि के अनुसार सौम्य, बलवत् आदि नाम धरने का शास्त्र में विधान है।

और नित्य ब्रह्मात्मा में दिन रात्रि आदि किसी काल का सम्बन्ध नहीं होता है, तो उसका कुल और जाति कौन है, सो कहो। अर्थात् जो सबका आत्मा है उस के कोई नियत जाति आदि नहीं होने से, नियत नाम भी नहीं है। तो भी ध्यानादि से ज्ञेय ध्येय है। श्रवणादि द्वारा प्रत्यक्ष करने योग्य है। क्योंकि—

साखी—सहज शून्य मन सुमिरते, प्रगट भई एक जोत।
बलिहारी ता पुरुष की, निरालम्ब जो होत ॥६॥

सहज (रागद्वेपादि रहित) चित्त की धारणा आदि के द्वारा, विषयादि के स्मरणादि से शून्य (रहित) मन के द्वारा ब्रह्मात्मा राम के स्मरण (चिन्तन) करने पर, जिनके हृदय में एक सर्वात्मस्वरूप ज्योति प्रगट (अनुभूत) भई (हुई) हो। और जिनकी निरालम्ब (नामरूप रहित) में स्थिति से, जो निरालम्बही समाधिकाल में होते हों। कबीर साहब कहते हैं कि मैं उन महापुरुषों की बलिहारी (धन्यवाद) करता हूँ। यही समाधि मुमुक्षु के लिये कर्तव्य है।

देह धर्म अरु देह त्रय, से विविक्त निज रूप।
करि सुविचार विवेक नित, लखत विवेकी भूप ॥१२॥
निराधार आधार सो, सब का अलख अनूप।
ताहि लखत जो होत सो, निराधार अजरूप ॥१३॥
सदा अदृश्य अग्राह्य जो, गोत्र वरण जहँ नाँहि।
पाणि पाद श्रवणादि नँहि, धीर लखत निज ताहि ॥१४॥६



रमैनी ७

तहिया होत पवन नहिं पानी। तहिया सृष्टि कौन उतपानी ॥
तहिया होते कलि नहिं फूला। तहिय होत गर्भ नहिं मूला ॥

यह समाधि क्यों कर्त्तव्य है, ऐसी जिज्ञासा होने पर कहा गया है कि तहिया (ज्ञान पूर्वक उस निरालम्बावस्था के होने पर) उस ज्ञानी के जन्मादि संसार के लिये कारण रूप पवन पानी आदि पाँच भूत, तथा प्राण इन्द्रियादि नहीं होते हैं। अतः उस अवस्था के होने पर फिर शरीर रूप सृष्टि को कौन उतपानी (उत्पन्न करे)।

क्योंकि उस अवस्था के होने पर वासना अदृष्ट (धर्माधर्म) आदि रूप कलि (मुकुल) नहीं रहते हैं, न उत्पन्न होते हैं। न फिर कर्म जन्मादि रूप फूल होते हैं, क्योंकि फिर उस ज्ञानी को गर्भवास नहीं होता है। न कामाभिमानादि रूप गर्भ उसके अन्दर में रहते हैं। और सब जन्मादि के मूल कारण रूप अविद्या संशय भ्रम नहीं रहते हैं। भाव है कि "तदन्तरप्रतिपत्तौ रंहति

सम्परिष्वक्तः प्रश्ननिरूपणाभ्याम् ।" (ब्रह्मसूत्र अ. ३।१।१।) इत्यादि शास्त्र के अनुसार, शरीरान्तर की प्राप्तिकाल में अज्ञ जीव सूक्ष्म पाँचभूत और कर्म वासना आदि के सहित गमन करते हैं। और शरीरान्तर की प्राप्ति करते हैं। और ज्ञानी के कर्म वासनादि ज्ञान से नष्ट हो जाते हैं। अतः पाँच भूतादि से भी प्रारब्धान्त में वियोग हो जाता है और ज्ञानी ब्रह्मात्मा में लीन होता है।

तहिया होत विद्या नहिं वेदा। तहिया होत शब्द नहिं स्वादा ॥
तहिया होत पिण्ड नहिं वासू। नहिं धर धरनी गमन अकाशू ॥
तहिया होते गुरु नहिं चेला। गम्य अगम्य न पन्थ दुहेला ॥

और संसार के मूल अविद्या आदि के अभाव से उस अवस्था में किसी विद्या औ वेदादि की आवश्यकता नहीं होती है। न शब्दादि विषय और उनके स्वाद लेना (भोग) ही बाकी रहते हैं।

अतः भोग के लिए फिर किसी भी पिण्ड (शरीर) में ज्ञानी का वास (निवास) नहीं होता है। और शरीर में वास नहीं होने से धर (शरीर) द्वारा धरनी (भूमि) और आकाश में गमनादि नहीं होते हैं। शरीर मूलक कोई व्यवहार नहीं होता है।

इसी से उस अवस्था में गुरु शिष्य उपास्योपासकादि भाव नहीं रहते हैं। न गम्य (प्राप्तव्य) स्वर्गादि के पन्थ अगम्य (अप्राप्तव्य) नरक तिर्यक् आदि के दुहेला (कठिन) पन्थ (मार्ग) बाकी गन्तव्य रहते हैं। न उत्तरायण दक्षिणायण दो प्रकार के पन्थ रहते हैं। ज्ञान से सबका बाध हो जाता है। अतः ज्ञानी गमनागमन रहित नित्य मुक्त रामस्वरूप हो जाता है।

साखी—अविगति की गति का कहौं, जाके गाम न ठाम।
गून विहूना पेखना, का कहि लीजै नाम ॥७॥

उक्त राम रूपता से ही कहा गया है कि अविगति (विशेष गति रहित) क्रिया शून्य की गति (प्राप्ति) भी क्या कही जाय, कि जिस रामरूपता रूप मुक्ति का कोई ग्राम और ठाम (स्थान) नहीं है।

अतः सब गुण क्रिया आदि से विहीन (रहित) ही उस नित्य मुक्त राम-स्वरूप, ज्ञानी को पेखना (देखना समझना) चाहिये, नाम क्या कहकर लिया

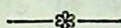
जाय। अर्थात् गुण क्रियादि को कहकर शुक्ल गन्ता आदि नाम लिये जाते हैं। और निर्गुण निष्क्रिय का नाम वस्तुतः नहीं लिया जा सकता है।

"मोक्षस्य न हि वासोऽस्ति न ग्रामान्तरमेव वा।
अज्ञानहृदयग्रन्थिनाशो मोक्ष इति स्मृतः॥"

मोक्ष के वास वा ग्रामान्तरादि नहीं है, किन्तु अज्ञान जन्य हृदय ग्रन्थि काम मोह अविवेकादि का नाश ही मोक्ष है। अतः मोक्ष में गति का वर्णन नहीं हो सकता है।

तन्तु वासना के मिटे, भूत मालिका नाहि।
रहत न बन्धन हेतु कछु, गमनागमन न ताहि॥१५॥७॥

इति मोक्षावस्था वर्णन प्रकरण ३



अथ तत्त्वोपदेश प्रकरण ४

सम्बन्ध—पूर्व वर्णित रीति से ब्रह्मात्माराम के नाम रूप के अभाव सुनने पर, जिज्ञासा हुई कि नाम रूप रहित का उपदेश कैसे हो सकता है, क्योंकि नाम (शब्द) द्वारा ही उपदेशादि हो सकते हैं। अतः आगे उपदेश का वर्णन है कि—

रमैनी ८

तत्त्वमसी इन के उपदेशा। ई उपनिषद् कहै संदेशा॥
ई निश्चय इनके बड़ भारी। याहिकि वर्णन करु अधिकारी॥
परम तत्त्व के निज परमाना। सनकादिक नारद शुक माना॥

इन जिज्ञासुओं के प्रति, इन निरालम्ब स्थिति वाले महात्माओं का (तत्त्वमसि) यह उपदेश होता है। कि तत् (वह गुण नामादि रहित सत्यस्वरूप) त्वम् (तूं ही) असि (हो) अर्थात् तेरा आत्मा ही निर्गुण अविगति नामादि रहित चिदानन्द स्वरूप है। उपनिषद् सब इस संदेश (सम्यक् उपदेश) को कहती हैं।

और इन जिज्ञासुओं के लिये, इन महात्माओं का यही भारी (सर्वोत्तम) निश्चय (अनुभव) है। अतः इसी का वर्णन अधिकारी (मुख्याचार्य=जगन्नेता) लोग करते हैं।

परम तत्त्व (परब्रह्म सत्यात्मा) के ज्ञान के लिये यह तत्त्वमसि महावाक्य निज (खास) प्रमाण है कि जिसको सनकादिक, नारद और शुकदेवादिक महामुनियों ने माना है (प्रमाण स्वरूप स्वीकार किया है)।

याज्ञवल्क्य औ जनक सम्वादा। दत्तात्रेय वही रस स्वादा॥
वही वसिष्ठ राम मिलि गाई। वही कृष्ण उद्धव समुझाई॥
वही बात ले जनक दिढ़ाई। देहे धरे विदेह कहाई॥

याज्ञवल्क्य मुनि और जनकजी के सम्वाद में इसी तत्वमसि की चर्चा है। महात्मा दत्तात्रेयजी ने उसी तत्त्वमसि के रस (आनन्द) का स्वाद लिया।

श्रीरामजी से मिल कर, श्रीवसिष्ठजी ने उसी तत्त्वमसि को गाया। और श्रीकृष्णजी ने उसी तत्त्वमसि के अर्थ को उद्धवजी के प्रति समझाया। और जनकजी ने उसी बात (उपदेश) को याज्ञवल्क्यजी से लेकर, दृढ़ निश्चय अपरोक्ष अनुभव किया, कि जिससे देह के रहते जीवन मुक्त देहाभिमानादि रहित होने के कारण विदेह कहाये।

साखी–कुल अभिमाना खोयके, जियत मुआ नहिं होय।
देखत जो नहिं देखिया, अदृष्ट कहावै सोय॥ ८॥

कुल (सब) अभिमानों को खोय (त्याग=नष्ट) करके जो ज्ञानी जियत (जीवित) भी रहता है, सो कभी मुआ नहीं होता है (मृत्यु युक्त देह का अभिमान नहीं करता है) और अभिमान के अभाव से कभी मृत्यु नहीं पाता है। किन्तु एक सर्वान्तर्ज्योतिः स्वरूप हो जाता है।

जो ज्योतिः स्वरूप साक्षी रूप से सब को देखता (प्रकाशता) है। और जो किसी से कभी इन्द्रियों द्वारा नहीं देखा गया है। वही आत्मा अदृष्ट (अदृश्य) कहाता (कहा जाता) है।

इस प्रकार नामादि रहित का भी उपदेश होता है। और उस उपदेश जन्य ज्ञान से जीवन मुक्ति पूर्वक विदेह मुक्ति होती है। इसी अर्थ का आगे उपदेश है कि (दृश्यमान सो विनशये, अदृश्यहि लखै न कोय। नाहीं कोइ गाहक है, जाहि मिले सुख होय॥ साखी ३४७) नेत्रादि के दृश्य विषय सब विनश्वर हैं। अदृश्य स्वयं प्रकाश आत्मा ही अविनाशी है।

परन्तु उस अदृश्य आत्मा को कोई अविवेकी समझता नहीं है। न उसका कोई ग्राहक (जिज्ञासु) है, कि जिसको वह मिले और उसको सुख हो। अर्थात् सत्यात्मा के जिज्ञासु भी दुर्लभ है।

नाम रूप गुण रहित का, उपदेश हि शुभ होय।
यही सन्त गुरु हरि मता, बिनु गुरु लखै न कोय ॥१६॥
सो हरि तूँ यों कहत हैं, सब महन्त श्रुति सन्त।
त्यागे बिनु अभिमान के, पावत नहिं जन अन्त ॥१७॥
सर्व साक्षि जो लखत सब, ताहि लखत नहिं कोय।
सो तेरा निज आतमा, जानि विगत भय होय ॥१८॥८

सम्बन्ध—उक्त रीति से भक्ति ज्ञानादि के द्वारा अभिमान कामादि से रहितों की मुक्ति होती है और अभिमान कामादि से बन्धन जन्मादि होते हैं। उन बन्धन और मोक्ष दोनों का आगे वर्णन करते हैं कि—

रमैनी ९

बान्ध्यो अष्ट कष्ट नव सूता। यम बाँध्यो अजनी के पूता॥
यम के वाहन बाँध्यो जनी। बाँध्यो सृष्टि कहाँ लौ गनी॥

ज्ञान योग बल भक्ति करि, तजत न जो अभिमान।
कामादिक बाँधत तेहि, यम बाँधत बलवान ॥१९॥
ज्ञान योग बल भक्ति करि, तजिये सब अभिमान।
भजिये निर्गुण राम को, पाइय पद निर्वान ॥२०॥

जीवन्मुक्ति निरभिमानिता की अभाव दशा में अव्यक्त (माया) महत्तत्त्व (समष्टि बुद्धि) अहंकार और पञ्चतन्मात्रा (सूक्ष्म भूत) रूप आठ प्रकृति-जन्य कष्ट स्वरूप देह में जीव बाँधा जाता हैं।

तथा "मनो बुद्धिरहंकारस्तथातन्मात्रपञ्चकम्। इति पुर्यष्टकं प्रोक्तं देहोऽसावातिवाहिकः" मन, बुद्धि, अहंकार और पञ्चतन्मात्रा पुर्यष्टक कहा गया है, सो आतिवाहिक (लोकान्तरादि में प्रापक) देह कहा गया है। उससे जीव बाँधा जाता है। यम-यातना आदि कष्ट सहता है।

इसी प्रकार नव ग्रह (चार अन्तःकरण पाँच ज्ञानेन्द्रिय) रूप सूत (डोरी) से बाँधा जाता है। और ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, कर्ता, करण, कर्म, भोक्ता, भोग, भोग्य रूप नवविध संसार से बाँधा जाता है।

और अजनी (जन्म रहित अनादि अजा) प्रकृति (माया) के पुत्र (उस के वशवर्ती उसके उपासक) जीवों को यम स्वयं बाँधता है। मायिक सिद्धि आदि के इच्छुक जीव यम से बाँधे जाते हैं।

और यम के वाहन रूप तमोगुण कामादिक सब जनी (जन्म वाले) जीवों को बांधा है, वश में किया है। तथा सब सृष्टि ही यम के वाहनों से बँधी है, गिन कर कहाँ तक कहा जाय।

बाँध्यो देव तैंतीस करोरी। समरत लोह बन्ध गो तोरी॥
राजा समरे तुरिया चढ़ी। पन्थी समरे नाम लै बढ़ी॥

यद्यपि अधिक जीवन वाले होने से देव सब अमर कहाते हैं, तथापि यम और यम के वाहन तैंतीस[1] कोटि देव को भी बाँधा है और बाँधता है। देव भी ज्ञान के विना अभिमानादि से मृत्यु के वशवर्ती होते हैं, तथा कामादि के वशवर्ती होते हैं। परन्तु इन देव मनुष्यादि में जो कोई सर्वात्मा राम के स्मरण भक्ति विचारादि किये, सो स्मरते ही अभिमान कामादि रूप अविद्यामय लोहतुल्य दृढ़ बन्धन को तोर (नष्ट) करके संसार बन्धन से पार मुक्त हो गये।

तहाँ राजा (विवेक वैराग्यादि युक्त स्वतन्त्र ज्ञानी) तुरिया (जाग्रदादि तीन अवस्था से परे चतुर्थ) अवस्था में चढ़ (प्राप्त हो) कर स्मरण ध्यान[2] सम्भारादि करते हैं। और पन्थी (पथिक तुल्य उपासक भक्त) अपने उपास्य सेव्य के नाम लेता (जपता) हुआ, और नाम लेकर आगे ज्ञान की अवस्था शुभेच्छा सुविचार में बढ़ कर स्मरण सँभार करता है। मन इन्द्रियों का निरोध पूर्वक विचारादि करता है।

अर्थ विहूनो समरी नारी। परजा समरे पुहुमी झारी॥

अर्थ (द्रव्यादि कर्म फल) की इच्छा से विहूनो (रहित) निष्काम नारी (परवश कर्मी) स्मरती है, स्मरण सँभार करने पाती है।

१—कोटयो द्वादशार्कस्य तथैकादश धूर्जटेः।
कोटयोऽष्टौ वसूनां च द्वे कोटी दस्रयोर्मते॥ १॥

सूर्य के बारह करोर, धूर्जटि [रुद्र] के ग्यारह करोर, वसुदेव के आठ करोर, और अश्विनी कुमार देववैद्य के दो करोर भेद हैं।

२—[योगास्त्रयो मया प्रोक्ताः। भा० स्क० ११।२०।६।] इत्यादि में परम विरक्त त्यागी के लिये ज्ञानयोग, सामान्य वैराग्य श्रद्धादि युक्त के लिये भक्ति योग, वैराग्यादि रहित के लिये कर्मयोग कहा गया है। वही क्रम यहाँ भी है।

और निष्काम होने पर, पुहुमी (भूमि) पर रहनेवाली झारी (सभी) प्रजा स्मरण विचार सँभार कर सकती है। और सुधर जाती है, क्योंकि काम ही सब अनर्थ का हेतु है।

साखी—बन्दि मनावे ते फल पावै, बन्दि दिया सो देइ।
कहहिं कबीर तेइ ऊबरे, निशि दिन नामहि लेइ ॥ ९ ॥

और पूर्व जन्म के काम कर्मादि से बन्दि (बन्धन युक्त परवश दास) जीव मनावेते (इच्छा प्रार्थना करने से) ही सुख दुःखादि सांसारिक तुच्छ फलों को पाता है, क्योंकि राग द्वेषादि-पूर्वक अन्य देव मनुष्यादि के प्रति दिये हुए सुख दुःख आदि को ही, सो (ईश्वर देवादि) इस जीवको देते हैं। अर्थात् अपने सकाम कर्मादि के फल को ही यह जीव, ईश्वर देवादि द्वारा प्राप्त करता है।

अतः जो जीव फलेच्छा अभिमान आदि को त्याग कर निशिदिन (सदा) सत्कर्म पूर्वक ईश्वर के स्मरण पूर्वक नाम ही लेता है, कर्म फलादि नहीं लेता है, सो शुद्धि शान्ति पूर्वक ज्ञान पाकर अवश्य संसार बन्धन से उबरता (मुक्त होता) है ॥९॥

कर्म योग से पाप हनि, भक्ति युक्त जो कोय।
करि उपासना मान हनि, ज्ञानि मुक्त ह्वै सोय ॥ २१ ॥

प्रथम निष्काम सत्कर्म से सद्गति और सकाम से संसार गति कही गई है। यह भेद उपासना भक्ति में नहीं दर्शाया गया है। अतः सो भेद दर्शाने के लिये कहते हैं कि—

रमैनी १०

राही लै पिपरा ही बही। करगी आवत काहु न कही ॥
आई करगी भौ अजगूता। जन्म जन्म यम पहिरे बूता ॥
बूता पहिरि यम करै समाना। तीन लोक महँ करै पयाना ॥

राही (उक्त पन्थी) पिपरा (भक्ति उपासनारूप कर्म के लौकिक फल) को लेकर (उसकी इच्छा करके) ही संसार सागर में बही (बहता है)। निष्काम होने ही पर सद्गति पाता है। और उस इच्छा के करगी (पास=समीप) में आते समय जिस जीव को आज तक किसी गुरु ने भी यह बात नहीं कही, कि इच्छा प्रार्थना (काम क्रोधादिक) ही संसार नरकादि के हेतु हैं। इन्हें त्यागकर अपना श्रेयः कल्याण करो,

तो उस गुरु उपदेश रहित अज्ञ जीव के करगी (पास में अन्तःकरण में) आकर वह कामादिक अजगूत (आश्चर्य स्वरूप) हो गया। क्योंकि वही कामादि, कामी जीवों के जन्म-जन्म (सब जन्मों) में यम के बूत (स्वाँग=वेष) को पहिरता है (यम के आकार=बल का धारण करता है)

और यम के बूत को पहिर कर, तथा यम रूप होकर वह कामादि समान (संसार के साधन को सिद्ध तैयार) करता है। और तीनों लोक में कामी जीव के साथ पयाना (यात्रा) गमन करता है। और वही सर्वत्र सब अनर्थ का हेतु होता है।

बाँध्यो ब्रह्मा विष्णु महेशू। सुर नर मुनि सब बाँधु गणेशू ॥
बाँध्यो पवन पावक थल नीरू। चान्द सूर्य बाँध्यो दुइ बीरू ॥
साँच मन्त्र बाँधिन सब झारी। अमरित वस्तु न जानै नारी ॥

इन कामादिकों ने बड़े-बड़े उपासक ब्रह्मा विष्णु और महेश को बाँधा है। तथा सब देव मनुष्य मुनि और गणेश को बाँधा है।

पवन, अग्नि थल (भूमि) नीर (जल) देवों को बाँधा है। तथा चन्द्र सूर्य स्वरूप दो वीर (बली) देव को बाँधा है। अर्थात् पूर्व जन्म के सकाम तप उपासना के वशवर्ती हो करके ही ब्रह्मा आदिक भी अधिकार को भोग रहे हैं, विदेह मुक्ति नहीं पाये हैं।

और इस काम ने ही सब सत्य मन्त्र (गुप्त विचारादि) को झार (खोज) कर बाँध दिया है। कामियों के हृदयों में प्रकट नहीं होने दिया है। अतः परवश नारी तुल्य कोई कामी भी अमृत वस्तु को साक्षात् नहीं जानता है। सब कामों से रहित होने पर कोई अमृत आत्मा को जानकर अमृत (मुक्त) होता है।

साखी—अमृत वस्तु जानै नहीं, मगन भया सब लोय।
कहहिं कबिर कामो नहीं, जीवहि मरण न होय ॥१०॥

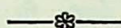
साँच मन्त्र के बँध जाने से कामी जीव अमृत (अविनाशी) वस्तु को नहीं जानते हैं। और अमृत वस्तु के अज्ञान से सब लोग संसार में निमग्न हुए हैं।

कबीर साहब कहते हैं, कि यदि अब भी जीव को काम नहीं उत्पन्न हो, सर्वथा काम का अभाव हो जाय, तो फिर उन जीवों के जन्म मरणादि नहीं हों।

क्योंकि (अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू रसेन तृप्तो न कुतश्चोनः । अथर्व वेद का० १।४।८।४४।) काम रहित धीर (विद्वान्) अमृत (मुक्त) स्वयंभूः(स्वतन्त्र) रस (आनन्द) से तृप्त सब किसी से भी न्यूनता रहित हो जाता है ।

करि उपासना भक्ति तप, कामी लहत न योग ।
पावत भोग न मुक्ति सुख, कहत सयाने लोग ॥ २२ ॥
काम त्यागि सत योग लहि, भक्ति विरति मनलाय ।
ज्ञान पाय सब द्वन्द्व तजि, भव सागर तरि जाय ॥ २३ ॥१०॥

इति तत्वोपदेश प्रकरण ४



अथ मनो मायादि महिमा प्रकरण ५

सम्बन्ध—वैराग्यादि के लिये कामादि द्वारा मायाकृत वञ्चनाओं का आगे वर्णन है कि—

रमैनी ११

आँधरी गुष्टि सृष्टि भई बौरी । तीनि लोक महँ लागु ठगौरी ॥
ब्रह्महिं ठग्यो नाग कहँ जारी । देवन सहित ठग्यो त्रिपुरारी ॥
राज ठगौरी विष्णुहिं परी । चौदह भुवन केर चौधरी ॥

मन माया की गुष्टि से, जो कामीं भयभीत ।
पड़त लोभ के फन्द सो, सकत मोह नहिं जीत ॥ २४ ॥

यद्यपि काम के अभाव से जीवों का कल्याण होता है, तथापि काम का अभाव कैसे हो । यह सृष्टि (सब संसारी) आँधरी (तामसी माया कुबुद्धि जड़वस्तु) की गुष्टि (कथा) में ही बौरी हो रही है (अनात्म कथा से विवेकादि शून्य हुई है) । अतः तीनों लोक में मन माया कृत ठगौरी (वञ्चना) लगी है ।

इस गुष्टि जन्य काम ने ब्रह्मा को ठगा और नागों के पास में जाकर नागों को ठगा । और उन्हें भोग अग्नि आदि में जलाया । अन्य देवों के सहित त्रिपुरारी (शिव) जी को ठगा (मोहित किया) ।

और चौदहो भुवनों के चौधरी (स्वामी) विष्णु भगवान् में राज्य कार्य रूप वञ्चना ही माया से प्राप्त हुई, कि जिससे बार बार अवतार लेना पड़ता है ।

उक्त सब वञ्चना कामवश भय से प्राप्त होती है। अतः उपदेश है कि—

आदि अन्त जाकि जनक न जानी। ताकी डर तुम काहे मानी॥
वे उतङ्ग तुम जाति पतङ्गा। यम घर कियहु जीव को सङ्गा॥
नीम कीट जस नीम पियारा। विष को अमरित कहै गमारा॥

जिस अनादि माया के आदि अन्त को लोक जनक ब्रह्मा जी भी नहीं जान सके, उसका डर (भय) तुम क्यों मानते हो। विमुक्ति के लिये अभय, सत्त्व (अन्तः करण) की सम्यक् शुद्धि, ज्ञान और योग में निष्ठा, दान दमादि रूप दैवी सम्पत्ति का ग्रहण करो।

क्योंकि सन्मार्ग में अभय पूर्वक नहीं प्रवृत्त होने पर, माया से डरने पर वे कामादि तथा इन्द्रियों के विषयादि, उत्तङ्ग (ऊँची) अग्नि की शिखा के तुल्य होते हैं। और तुम पतङ्ग जाति के तुल्य होते हो। और इसीसे तुम संसार सांसारिक विषयों के साथ अपने जीवात्मा (मन) का सङ्ग किये हो (विषयों में मन को लगाये हो)।

और जैसे नीम के कीटों को नीम ही प्रिय प्रतीत होता है, तैसे सदा विषयों से सम्बन्ध वाला गमार (अज्ञ) विषय रूप विष को ही अमृत समझता और कहता है। अतः विषय संग को त्याग कर सत्य अमृत को समझो।

विष अमरित गो एकै सानो। जिन जानी तिन विष कै मानी॥
विष के सङ्ग कौन गुण होई। किञ्चित् लाभ मूल गो खोई॥

क्योंकि जहाँ विष और अमृत (दूध शक्करादि) एकत्र साने (मिलाये) गये हों, तहाँ जो उस मेल को जानने वाले होते हैं, सो उस मिलित वस्तु को विष रूप ही समझते हैं।

क्योंकि विष के साथ मिल जाने पर अमृत का अपना कौन गुण रह सकता है। उसके सब गुण नष्ट हो जाते हैं। किन्तु विष युक्त अमृत के खाने पीने से किञ्चित् (अति अल्प) लाभ (उदर पूर्ति) होता है। फिर मूल (भोग का साधन) देह खोय जाती (नष्ट होती) है।

इसी प्रकार विषयों के सङ्ग से किञ्चित् आत्मानन्द की अभिव्यक्ति होती है, फिर वह आनन्द अत्यन्त आवृत हो जाता है, मोक्ष अलभ्य हो जाता है

और महा अनर्थ की प्राप्ति होती है। अतः दुःख मिश्रित सांसारिक सुख को दुःख ही समझना चाहिये। क्योंकि—

काह भयो नर शुद्ध बिशुद्धा। बिनु परिचय जग बूड़ न बुद्धा॥
मति के हीन कौन गुण कहई। लालच लागी आशा रहई॥

यदि विषय सङ्गादि रहित परमानन्द की प्राप्ति नहीं हुई, तो कुल गोत्र क्रियादि से शुद्ध विशुद्ध होने पर भी मनुष्य को क्या फल मिला, क्योंकि आत्माराम के परिचय (अनुभव) के विना शुद्ध विशुद्ध भी संसार सागर में बूड़ा (डूब) गया। विषय सङ्गादि के त्यागी बुद्ध (ज्ञानी) ही नहीं बूड़ा।

और अविवेकी तो बूड़ते हुए भी अपने को नहीं समझ सका, क्योंकि कुसङ्गादि के कारण जो मति के हीन (भावी स्वहित ज्ञान रहित) हैं, सो शम दमादि रूप, अमानित्व अदम्भित्व आदि रूप कौन गुण की बात भी कह सकते हैं। गुण का आचरण तो उनसे दूर रहता है। गुण की चर्चा भी नहीं करते हैं,

क्योंकि उनके मन में सदा लालच (लोभ) रहता है। और मिथ्या वस्तु की आशा लगी रहती है।

क्योंकि "विषमिश्रं यथैवान्नं मूढस्य सुखदं भवेत्। एवं प्रेय इदं सर्वं मूढस्य सुखदं स्मृतम्।" (आत्म पु. अ. ६।२७१) विष युक्त अन्न जैसे मूढ़ को सुखद प्रतीत होता है, वैसे ही यह प्रेय (अज्ञानमय) सब पदार्थ मूढ को सुखद कहा गया है, श्रेय नहीं। अतः उपदेश है कि—

साखी—मूये हो मरिजाहु गे, मुये की बाजी ढोल।
स्वप्न सनेही जग भया, सहिदानी रहि बोल॥११॥

उक्त काम लोभादि वश अनन्त बार मुये हो, और फिर मरकर कहीं कामादि वश जाओगे। और मरण का ही ढोल बाजा, और बाज रहा है। अतः जागो, और सङ्गादि स्वप्न को त्यागो।

क्योंकि जो संसारी सङ्गादि स्वप्न को नहीं त्याग कर, स्वप्न तुल्य मिथ्या संसार के स्नेही हुए वे लोग—नष्ट ही हो गये, उनकी बोल (नाम मात्र) की सहिदानी (निशानी=चिन्ह) कुछ दिन के लिये रह गई। अतः जन्मादि संसार से रहित अविनाशी स्थिति के लिये मोहनिन्द से जागना चाहिये।

कामी जन को होत नहिं, सार तत्त्व का भान।
काम त्यागि कोइ जानते, सारहि सन्त सुजान॥२५॥११॥

सम्बन्ध—मोह सङ्गादि को त्यागने के लिए शरीर और जन्मादि का आगे वर्णन है कि—

रमैनी १२

माटिक कोट पषाणक ताला। सोई बन सोई रखवाला।

चेतन स्वरूप जीवात्मा राजा है, सूक्ष्म देह उसकी नगरी है, बुद्धि (सत्वांश) उसका गृह है। उसमें व्यक्तरूप से आत्मा रहता है। और मृतिका आदि पाँच स्थूल भूतों के कार्य रूप यह स्थूल देह उसका कोट (किला) है। सो क्षणभङ्गुर है। और चिरस्थायी पाषाण तुल्य मोक्ष प्रयन्त व्यक्ताऽव्यक्तरूप से रहने वाला सूक्ष्म शरीर ही उस कोट का रक्षक फाटक ताला आदि स्वरूप है।

तथा उसके अन्दर वर्तमान काम वासना कर्मादि रक्षक है। और सोई सूक्ष्म शरीर कामादि रूप से भूल भय का स्थान रूप सघन बन है। और स्थूल देह का रखवाला (रक्षक) भी है।

सो बन देखत जीव डराना। ब्राह्मण वैष्णव एकै जाना॥
ज्यों रि किसान किसानी करई। उपजै खेत बीज नहिं परई॥

भ्रम संशयादि युक्त उस बन को देख (समझ) कर जब जीव डरा मरणादि से भयभीत हुआ। तब ब्राह्मण वैष्णवादि शरीरधारी जीवों ने भय से रक्षक किसी एक तटस्थ देव को समझा। सद्‌गुरु संगत्यागादि के बिना सर्वात्मा राम को बहुत लोगों ने नहीं समझा कि जिससे सर्वथा भय का अभाव हो।

फिर अज्ञान कामादि पूर्वक उस देव की भक्ति कर्मादि करने से ऐसी दशा हुई, कि जैसे कोई किसान किसानी (खेती) करे, और खेत में डाँट घास उपजे, परन्तु उसमें बीज (अन्न दाना) नहीं परे (नहीं लगे) वैसे ही तटस्थ देव की भक्ति ज्ञान सकाम कर्म उपासना आदि से स्वर्गादि में देह रूप खेत उत्पन्न होता है। उससे पुत्र पौत्रादि धन राज्यादि खेत उत्पन्न होते हैं, परन्तु आत्मज्ञान मोक्ष शान्तिरूप बीज नहीं लगते हैं।

उक्त रीति से बीज नहीं पड़ने पर सांसारिक क्रीड़ा- खैचतानादि में लगे रहने से भावी ज्ञान मोक्ष की सम्भावना आशा नहीं की जा सकती है। अतः भावी ज्ञानादि के लिये उपदेश है कि—

छाड़ि देहु नर झेलिक झेला। बूड़े दोउ गुरु औ चेला॥
तीसर बूड़े पारथि भाई। जिन बन दाह्यो दावा लाई॥

हे मनुष्यों! अब भी इस संसार झेलिक (झील=अगाध विषय जलाशय) के झेला (क्रीड़ा) क्रिया राग द्वेष खैंचतानादि को छोड़ दो, क्योंकि इसे छोड़ने के बिना गुरु और चेला दोनों संसार में बूड़ गये। और बूड़ते हैं।

और उन दोनों के पारथि (रक्षक) भ्राता तुल्य तीसरे देव सेव्य राजा आदि भी बूड़ गये, कि जिन्होंने स्वार्थ वश संसार वन को दावानल लगा कर जलाया है। अर्थात् जो देव राजा आदि अज्ञ जीव पर क्रोधादि करके उसको पीड़ित करते हैं, सो संसार में स्वयं गोता खाते हैं। अतः परम श्रेयः के लिये देवादि की आशा को त्याग कर वैराग्यादि पूर्वक आत्मानुभव कर्तव्य है।

यद्यपि अर्जुन ने खाण्डव नामक वन को जलाया था और युद्ध स्थान में भगवान् से प्राप्त उपदेश को विषयासक्ति आदि से भूल गया था। तो फिर पूछने पर भगवान् ने अनुगीता से समझाया, ऐसी कथा है।

तथापि यह उस व्यक्ति दृष्टि से वर्णन नहीं है। किन्तु (जैसे विगुचा खेत का, रहा पारथी होय) तृणमय मनुष्य रूप जैसे खेत का रक्षक (पारथी) होता है, तैसे संसार के मिथ्या पारथी बूड़ते हैं।

यह यहाँ तात्पर्य है। हिन्दी में रक्षक को पारथि और पारधि भी कहते हैं। और अर्जुन को पार्थ कहा जाता है पारथी नहीं।

रक्षक माने गये देव में भी बहुत भेद माना गया है। उनमें कोई सुदेव और कोई कुदेव भी होते हैं। भूत प्रेत पिशाचादि कुदेव माने गये हैं। तहाँ जैसे कुत्ता से सियार डरता है, और बली सियार से कुत्ता भी डरता है, तैसे मनुष्य से कुदेव डरते हैं और कुदेव से मनुष्य डरता है। परन्तु किसी के वचनादि से उन्हें पूज्यादि मानकर उनकी स्तुति आदि करता है, तहाँ अनिष्ट की ही अन्त में प्राप्ति होती है। अतः कहते हैं कि—

भूँकि भूँकि कूकुर मरि गयऊ। काज न एक स्यार से भयऊ॥

अज्ञ मनुष्य स्वयं हिंसक कूकुर तुल्य होकर, तथा कूकुर कुल्य की वाणी को सुनकर हिंसक प्रेत पिशाचादि की स्तुति को भूक-भूक कर मर गये, परन्तु सियार तुल्य कुदेव से कभी किसी का सचा एक कार्य भी सिद्ध नहीं हुआ, किन्तु कष्ट ही

हुआ और होता है। सो शब्द में आगे कहा गया है कि (यह भ्रम भूत सकल जग खाया। जिन-जिन पूजा तिन जहड़ाया ॥ १५)

साखी—मूस बिलाई एक संग, कहु कैसे रहि जाय।
अचरज एक देखहु हो, हस्ती सिंहहि खाय ॥१२॥

क्योंकि मूस तुल्य अज्ञ मनुष्य, बिल्ली तुल्य कुदेव मायावी के सङ्ग में एकत्र शान्ति पूर्वक कैसे रह सकते हैं। अतः एक साथ होने पर मनुष्य मनुष्यता, युक्त नहीं रह जाते हैं, किन्तु नष्ट होते हैं।

यद्यपि कुदेवादि हस्ती तुल्य हैं। और मनुष्य उनके प्रति सिंह तुल्य है। तथापि एक आश्चर्य देखो (समझो) कि अविवेक से मनुष्य मूस तुल्य हो गया है। अतः इस सिंह को हस्ती खाता (पीड़ित करता) है। अतः सत्सङ्गादि से विवेक का सम्पादन करना चाहिये।

इति मनोमायादि महिमा प्रकरण ॥ ५ ॥



अथ द्रव्यादि जन्य संसार दशा प्रकरण ॥ ६ ॥

रमैनी १३

नाहिं प्रतीजै यहि संसारा। द्रव्यक चोट कठिन के मारा ॥
सो तो शेष हुँ जाय लुकाई। काहू को परतीति न आई ॥
चले लोग सब मूल जमाई। यम की बादि काटि नहिं जाई ॥

विवेकादि के बिना, इस संसार में वर्तमान अविनाशी सत्यात्मा राम का प्रतीजै (प्रतीति विश्वास निश्चय) किसी को नहीं होता है। क्योंकि अविवेकियों को कनकादि रूप द्रव्य की चोट (चाह इच्छा) कठिन द्रव्य के चोट (मार) तुल्य लगी रहती है। कि जिससे सब बदहोश हुए रहते हैं।

अथवा उपदेश है कि, इस स्वप्न तुल्य संसार की सत्यादि रूप से प्रतीति नहीं करो। न सत्यादि रूपता का विश्वास करो। क्योंकि संसार में सत्यता आदि की प्रतीति और विश्वास से द्रव्यादि की इच्छा कठिन मार तुल्य पीड़ित करती है।

और संसार में सत्यता आदि के विश्वास से, तथा सत्यात्मा सत्योपदेशादि में अविश्वास से महाप्रलय में भी शेष (बाकी) रहनेवाला वह अविनाशी आत्मा, उस अविवेकी से लुकाय (छिप) जाता है। अतएव किसी अविवेकीको उस अविनाशी की प्रतीति (ज्ञान) नहीं आई (नहीं प्राप्त हुई।

अतः वे लोग अपने मूलधन (आत्मा) को गमाय कर चले। और उन लोगों से यम की पाढ़ि (वृद्धि या वरहा कठिक बन्धन) काटी नहीं जाती है। अतः निर्बन्ध मुक्त होने के लिये सत्योपदेशों में विश्वासादि पूर्वक विवेकादि को प्राप्त करना चाहिये। और--

वह विश्वास विवेकादि भी इस मनुष्य जन्म में ही कर्तव्य है, अन्यत्र की आशा करना उचित नहीं है। क्योंकि—

आजु काज है काल्ह अकाजा। चलेउ लादि दिगन्तर राजा॥
सहज विचारे मूल गमाई। लाभ ते हानि होय रिभाई॥

(इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः। केन २।५) इत्यादि शास्त्र के अनुसार आजु (इस मानव देह में) ही आत्म ज्ञानादि द्वारा यदि यम बन्धनादि काटे जायँ, तो सत्यानन्द की प्राप्ति रूप कार्य हो सकता है (मूल धन रक्षित रह सकता है) और आज इस कर्तव्य कार्य के नहीं सिद्ध होने पर काल्ह (आगेजन्मान्तर में) अकाज (महा विनाश कष्ट) होता है। अनर्थ अनिष्ट की प्राप्ति होती है।

क्योंकि यहाँ ज्ञान मोक्षादिरूप कर्तव्य की सिद्धि नहीं होने पर, इस तन धनादि के राजा जीव कर्म वासनादि के दुःसह बोझ (भार) को अपने ऊपर लाद कर किसी दिग् देशान्तर में चलता है और उसके अनुसार सुख दुःख को भोगता है, मुक्त नहीं होता है।

तोभी अज्ञ जीव मूल धन को गमा कर, प्रारब्धानुसार सहज (अनायास स्वभाव से) ही प्राप्त होने वाले द्रव्यादि का बार बार विचार करता है। परन्तु रे भाई! ज्ञान के बिना इस द्रव्यादि के लाभमात्र से भारी हानी होती है।

अर्थात् प्रारब्धानुसार न्यायार्जित धनादि से द्रव्यादि से सुख शान्ति मिल सकती है। परन्तु मनुष्य लोभादिवश न्याय को त्याग देते हैं। अतः अति हानि होती है।

ओछी मती चन्द्र गो अथई । त्रिकुटी सङ्गम स्वामी बसई ॥
तब ही विष्णु कहा समुझाई । मैथुन अष्ट तुम जीतहु जाई ॥

स्त्री द्रव्यादि के सङ्ग चिन्तनादि से ओछी (तुच्छ) मति (बुद्धि) रूप चन्द्रमा, तुच्छ प्रकाश करके, गो (इन्द्रियों) में अथई (अस्त लीन) होता है। अथवा अथईगौ (नष्ट हो गया)। फिर भावी की सुबुद्धि से रहित, देहादि के स्वामी जीव सदा त्रिकुटी संगम (दोनों भ्रू के बीच) में बसने लगा, हृदय में स्थिर होकर सद्विचार कभी नहीं किया।

तब इसकी ऐसी दशा को देख कर विष्णु (सात्त्विक परहित पुरुषोत्तम) ने उन जीवों को समझा कर कहा कि तुम सद्गुरु शरण सत्सङ्गादि में जाकर प्रथम आठ प्रकार के मैथुन (मिथुनी भाव रूप सङ्ग) को जीतो (त्यागो)—

> योऽन्यदुःखानि विज्ञाय साधुवाक्यैः प्रबोधयेत् ।
> स एव विष्णुः सत्त्वस्थो यतः परहितेस्थितः ॥
>
> (नारदीय पु० अ० ७।६८)

> दर्शनं स्पर्शनं केलिः कीर्तनं गुह्यभाषणम् ।
> संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रिया निर्वृतिरेव च ॥ १ ॥
> एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः ।
> विपरीतं ब्रह्मचर्यमनुष्ठेयं मुमुक्षुभिः ॥ २ ॥
>
> (कठरुद्रोपनिषद् ५-६)

तब सनकादिक तत्त्व विचारा । जैसे रंक पाव धन पारा ॥
भौ मर्याद बहुत सुख लागा । यहि लेखे सब संशय भागा ॥

उक्त विष्णु के उपदेश से जिन सनकादिकों (विरक्तों) ने मैथुनों के त्याग पूर्वक तत्त्व (सत्यात्मा) का विचार किया, उन्होंने उस मूल धनको इस प्रकार प्राप्त किया कि जैसे कोई रंक (दरिद्र) कहीं पड़ा हुआ धन अनायास ही पा जाय और परम सुखी हो जाय।

क्योंकि उस मूल धन के पानेवाले विरक्तों की लोक में भी मर्यादा (प्रतीष्ठा आदर) हुई। और बहुत (अनन्त) सुख उन्हें लगा (प्राप्त हुआ) और यही लेखे (इस स्वात्मधन के जानने) से उनके दुःखों के मूल कारण अज्ञान भ्रम और सब संशय भग गये (नष्ट हो गये)।

अथवा विष्णु के उपदेश के बाद जिन सनकादिकों (त्यागाश्रम के वेषधारियों) ने त्याग मात्र को ही तत्त्व समझा, और जैसे रंक कहीं पड़ा हुआ तुच्छ धन को पाकर सुखी हो, तैसे त्याग मात्र से वे लोग सुखी हुए। क्योंकि लोक में मर्यादा हुई, जिससे उनको बहुत सुख लगा (प्रतीत हुआ) और इस प्रतिष्ठा को लेखे (देखते) ही मानो उनका सब संशय भाग गया, फिर विचारादि किस लिये करें।

देखिन उतपति लागु न वारा। एक मरै एक करै विचारा॥
मुये गये की कोई न कहई। झूठी आश लागि जग रहई॥

त्याग पूर्वक विचारादि करने वाले संशयादि से रहित होकर, आत्मज्ञान पूर्वक संसार के उत्पत्ति, प्रलय, गति, आगति, विद्या, अविद्या को भी देख लिये, अतः भगवान् स्वरूप हो गये। और उस देखने में बार (बहुत दिन देर) नहीं लगा। क्योंकि एक सर्वात्मा राम के ज्ञान से ही सब ज्ञात हो गया। एक आत्मा को सत्य समझकर अन्य को मिथ्या समझ लिया।

उन्होंने समझा कि एक आत्मा ही अज्ञ देहाभिमानी होकर मरता है और वही एक आत्मा मरण से रहित होने के लिये विचार करता है। एक आत्मा से भिन्न नाना जीव की सत्ता नहीं है।

अथवा केवल वेषधारी मरकर अपनी उत्पत्ति को देखिन (पाये) इसमें देर नहीं लगा। क्योंकि ये लोग सदा एक शरीर से मरते हैं, और एक दूसरे देह के लिये विचार करते हैं। ज्ञान के विना मुक्ति नहीं पा सकते हैं।

कबीर साहब कहते हैं कि मर कर खाली हाथ गये की बात भी कोई अज्ञ नहीं कहता है, इससे झूठी (मिथ्या) वस्तुओं की आशा संसारी जीव में लगी रहती है। जिस आशा तृष्णादि से जन्म मरणादि होते हैं। अतः मैथुनों के त्याग पूर्वक विचारादि से आत्मानुभव द्वारा आशा आदि निवारणीय हैं।

आशा आदि को त्यागने के लिये साधन का उपदेश है कि—

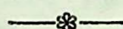
साखी—जरत जरत ते बाँचेहु, काहु करहु गोहार।
विष विषया कहँ खायहु, रात दिवस मिलि झार॥१३॥

हे मनुष्यों! अनन्तो बार गर्भ नरकादि में तापत्रय से जलते जलते इस मानव स्वस्थ शरीर में कुछ बचे हो (शान्ति पाये हो) इस अवस्था में किसी सद्गुरु सन्त का गोहार (पुकार स्तुति) करो।

और उनसे मिलकर, जो प्रथम विषय विष को खा (भोग) चुके हो, उसीकी वासना आदि रूप विषों को रात दिन सदा झारो (नष्ट करो) अभ्यास आदि से वासना कामादि का निवारण करो, अन्य विष नहीं खावो, ऐसा अवसर फिर शीघ्र नहीं मिलेगा।

माटी केरी देह में, मन राखा अरुझाय।
ज्ञान बिना छूटत नहिं, माया नित जहड़ाय ॥२६॥
जन्म मरण नहिं आतम में, नहीं देह के माहिं।
स्थूल सूक्ष्म का योग जनि, मरण वियोग कहाहिं ॥२७॥
सूक्ष्म काय है स्थूल का, रक्षक सब परकार।
तद्गत कामादिक सकल, जीव भुलावन हार ॥२८॥
काम मोह वश जीव करि, कनक कामिनी संग।
पावत सुख स्वप्नहुँ नहीं, धर्म धैर्य धन भंग ॥२९॥
ब्रह्मचर्य जिन धारिया, करिया ब्रह्म विचार।
पाया तिन सुख सदन को, संशय भगा अपार ॥३०॥

इति द्रव्यादि जन्य संसार दशा प्रकरण ॥ ६ ॥



अथ माया से सावधानी = ज्ञानाधिकारी दौर्लभ्य प्रकरण ॥७॥

सम्बन्ध—उक्त विषय और वासना आदि रूप मायामय वस्तुओं को त्यागने के लिए दोष दर्शाया गया है कि—

रमैनी १४

बड़ सो पापी आहिं गुमानी। पाखण्ड रूप छल्यो नल जानी ॥
बामन रूप छल्यो बलि राजा। ब्राह्मण कीन्ह कौन को काजा ॥
ब्राह्मण ही सब कीन्हो चोरी। ब्राह्मण ही कहँ लागल खोरी ॥

सो पूर्वोक्त, आँधरी, विषय वासना, अविद्या आदि रूप वाली माया बड़ (भारी) पापात्मिका और गुमानी (अहङ्कारात्मिका) है। तथा पाखण्ड स्वरूप है। सो मनुष्यों को छल्यो (ठग लिया) है। उसको किसी महात्मा ने जानी है, सो उससे बचे हैं। अथवा मनुष्यरूपता को प्राप्त उस माया को विवेक के

बिना जिन्होंने उसको मनुष्य समझा, उन्हे उसने ठग लिया। क्योंकि वह पाखंड (ठग) स्वरूप ही है।

उस माया ने ही बावन रूप से बलि राजा को ठगा। बावन के समान मायावी ब्राह्मणों (उपदेशकों) ने भी किसका कार्य किया। उल्टा ऐसे ब्राह्मण (उपदेशक) ही सब चोरी किये, उस चोरी के खोरी (दोष) भी ब्राह्मण को ही लगा। अर्थात् "वाच्यर्था नियताः सर्वे वाङ्मूला वाग्विनिः सृताः। तां तु यः स्तेनयेद् वा चं स सर्वस्तेयकृन्नरः।" (मनुः अ. ४।२५६) सब अर्थ फलादि वचन में नियत हैं, वचन मूलक हैं, वचन से निकलते हैं। उस वचन की चोरी करने वाले उपदेशकादि सब चोरी के फल भागी होते हैं। अतः यह सर्वथा त्याज्य है।

ब्राह्मण कीन्हों ग्रन्थ पुराना। कैसहुँ के मोहि मानुष जाना॥
इक से ब्रह्मे पन्थ चलाया। इक से हंस गोपालहिं गाया॥
इक से शम्भू पन्थ चलाया। इक से भूत प्रेत मन लाया॥

मायावी ब्राह्मणों ने भी ग्रन्थ पुराण की रचना की, कि जिससे किसी प्रकार लोग मुझे मायावी (मायात्मक) नहीं समझें, किन्तु हम मानुप जाने जायँ। तथा वे लोग किसी प्रकार मुझे मनुष्यमात्र समझ पाये। ग्रन्थ पुराण कर्ता ब्राह्मणादि सच्चे सन्त भक्त ज्ञानी के स्वरूप को नहीं समझ पाये।

अतः एक सत्यात्मा के ज्ञान के बिना किसी एक ग्रन्थ से ब्रह्मा को तटस्थ ईश्वरादि सिद्ध करके ब्रह्मा के पूजनादि रूप पन्थ को चलाया गया। किसी एक ग्रन्थ से हंसावतार को गाया। किसी से गोपाल को गया। एक ग्रन्थ से शम्भू का शैवमार्ग चलाया। एक ग्रन्थ से मनुष्यों के मन को भूत प्रेतादि में लगाया।

इक से पूजा जैनि विचारा। इक से निहुरि निवाज गुजारा॥
कोउ काहू का हटा न माना। झूठा खसम कबीरन जाना॥
तन मन मारि रहु मोर भक्ता। सत्य कबीर सत्य है वक्ता॥

किसी एक ग्रन्थ से बहु विध पूजा का, तथा जैनियों के मत का विचार किया। एक ग्रन्थ से निवाज गुजारा (सिद्ध किया) और कोई किसी का हटा (निवारण) को नहीं माना। इससे एक सत्य सर्वात्मा स्वामी को नहीं जान

कर झूठा (मिथ्या) अनेक खसमों को कवीरन (कवियों) ने जाना है । तथा उन झूठा खसमों को कवीरों (ज्ञानियों) ने नहीं जाना (माना) है ।

अतः कवीर साहब कहते हैं कि हे गुरुभक्तों उन झूठ खसमादि से अपने तन मन को मारे (रोके) रहो। और जो सत्य कवीर सत्य वक्ता हैं, उनकी बातों को सुनो।

वह सत्य क्या है कि जिसके वक्ता सत्य कवीर हैं, ऐसी जिज्ञासा होने पर कहते हैं कि—

आपुहि देवा आपुहि पाती । आपुहि कुल आपुहि है जाती ॥
सर्वभूत संसार निवासी । आपुहि खसम आपु सुख वासी ॥
कहइत मोहि भेल युग चारी । काके आगे कहौं पुकारी ॥

सत्यात्मा किसी एक व्यक्ति स्वरूप नहीं है—

किन्तु आत्मैव देवताः सर्वाः सर्वमात्मन्यवस्थितम् ।
आत्मा हि जनयत्येषां कर्मयोगं शरीरिणाम् ॥
(मनुः अ० १२।११९)

इदं सर्वं यदयमात्मा । (बृ० ४।५।७) इत्यादि शास्त्र के अनुसार आपुही (आत्माही) सब देव स्वरूप सबका प्रकाशक है ।

और आप ही देव पर चढ़ाई जाने वाली पाती (पत्ति) स्वरूप है। तथा आप ही सब कुल और जाती है ।

अर्थात् सबकी आत्मा एक ही सत्य है । अतएव सब भूत (प्राणी) स्वरूप आत्मा ही है । और सर्व भूत सम्पूर्ण संसार में निवास करने वाला अन्तर्यामी सर्वसाक्षी है । और आप ही खसम (स्वामी=राजा) है । और राज्य में सुख से बसने वाली प्रजा भी आप ही है । साहब कहते हैं कि इस प्रकार कहते हुए मुझे (सद्गुरु के) चार युग बीत गये । परन्तु लोग समझते नहीं हैं, तो किसके आगे पुकार कर कहा जाय ।

साखी—साँचहि कोइ न मानई, झूठा के संग जाय ।
झूठहि झूठा मिलि रहा, अहमक खेहा खाय ॥४॥

सत्य बात सत्य वस्तु सत्य पुरुष को कोई नहीं मानता है । किन्तु सब झूठे के साथ में जाते हैं । और स्वयं झूठा दूसरे झूठों से मिल कर रहता है । अतः यह अहमक (नादान मूर्ख) खेह खाता है, तुच्छ विषय भोगता है (मानो धूलि

फाँकता है) सत्यानन्द को नहीं पाता है। उचित है कि सद्गुरु के शरण में जाकर सत्यानन्द को प्राप्त करे।

नरक गर्भ दुःख अग्नि से, बचा मनुष तन पाय।
ताको अब यह उचित है, सद्गुरु शरणे जाय ॥३१॥
विषय वासना को तहाँ, करै समूल विनाश।
मायामद पाखण्ड तजि, जग से रहै उदास ॥३२॥१४॥

इति माया से सावधानी = ज्ञानाधिकारी दौर्लभ्य प्रकरण ७

अथ भव पन्थ खेद प्रकरण ८

रमैनी १५

उनइ बदरिया परिगौ संझा। अगुआ भूले बन खण्ड मंझा ॥
पिय अन्ते धनि अन्ते रहई। चौपरि कामरि माथे गहई ॥

सत्य वचन विश्वास बिनु, मोह तिमिर बढ़ि जाय।
बढ़त देह अभिमान नित, रोवत हीं दिन जाय ॥३३॥

सत्य वचन में विश्वास के अभाव से और झूठे के सङ्गादि से मनुष्यों के हृदयाकाश में मोह ममता कामादि रूप बदरी (मेघ) उनई (उमड़) आई। और इसी अवस्था में वृद्धावस्था रूप संझा (संध्या) पड़ गई (प्राप्त हो गई) और उस वृद्धा अवस्था में भी अगुआ (अग्रगामी) गुरु और मन जिनके संसार बन के किसी खण्ड (लोकादि) में सत्यादि बुद्धि से भूले (आसक्त) रहे।

उन मनुष्यों का पिय (प्रियतमात्मा) कहीं अन्ते (स्वमहिमा स्वरूप) में रहता है। तथा उनका मान्य तटस्थ स्वामी कहीं अन्य लोक में रहता है। और धनी (धन्या) स्त्री तुल्य ये भक्त उपासक अन्यत्र मनुष्य लोक में रहते हैं। और चौपरि (बाल्य, कुमार, युवा, वृद्धतारूप चार अवस्था वाली) देहरूप कामरी (कम्बल) को ये लोग अपने माथे (शिर) पर गहते हैं। देह में आत्मता के अभिमान किये रहते हैं। अतः सत्यानन्द को नहीं पाते हैं, किन्तु खेह खाते हैं।

साखी—फुलवा भार न ले सके, कहै सखिन सो रोय।
ज्यों ज्यों भींजै कामरी, त्यों त्यों भारी होय ॥ १५ ॥

और अत्यन्त वृद्ध या रोगी होने के कारण जब फूलों के भार भी नहीं ले सकते, तब उस समय अपने सखि (मित्रों) से रो रो कर कहते हैं कि यह काया रूप कामरी ज्यों ज्यों भींजती (थकती) है, त्यों त्यों भारी होती जाती है। इस प्रकार अज्ञ अन्त में कष्ट पाते हैं, शान्ति नहीं ॥१५॥

रमैनी १६

चलत चलत अतिचरण पिराना। हारि परे तहं अति रिसियाना॥
गण गन्धर्व मुनि अन्त न पाया। हरि अलोप जग धन्धे लाया॥

पड़ि कुपन्थ में चलत नित, तेलिक वृष सम जोय।
बद्ध नेत्र कछु लखत नहिं, क्रुद्ध ईश पर होय॥ ३४॥

उक्त कष्ट अशान्ति में यह कारण है कि अज्ञ जीव स्वामी सुखादि को दूर मानकर, उसकी प्राप्ति के लिये सकाम कर्मादि मार्गों में देहादि के अभिमान सहित चलते हैं। तहाँ चलते चलते जब इनके मन बुद्धि रूप चरण (कर्म साधन) अति पीड़ित होते हैं, और प्रिय स्वामी मानकर जिस हरि आदि देव को खोजते हैं सो नहीं मिलता है। तब तहाँ (उस) वन रूप संसार में ही हार परे (हारकर पड़ते हैं)। अतः चलने की शक्ति नहीं रहने पर अत्यन्त रिसियाते (क्रुद्ध होते) हैं। और कहते हैं कि जिस हरि (प्रभु) के अन्त (मर्म) को गणदेव गन्धर्वदेव और मुनि लोग भी नहीं पाये, सो हरि अलोप (गुप्त) रहकर, संसारी जीवों को अनेक धन्धा (कर्म व्यापार) में लगा दिये हैं।

गहीन बन्धन वाणि न सूझा। थाकि परे तहँ कछु नहिं बूझा॥
भूलि परे जिव अधिक डराई। रजनी अन्ध कूप है आई॥

कबीर साहब कहते हैं कि वस्तुतः हरि ने संसारी को धन्धों में नहीं लगाया है। किन्तु संसारियों ने स्वयं अज्ञानादि वश बन्धन रूप धन्धों को गहा (पकड़ा) है। क्योंकि इनको सच्ची वाणी नहीं सूझ पड़ी है। न वाणी मात्र मिथ्या संसार सूझा है। और यदि स्वस्थावस्था में ये सब बातें नहीं सूझ पड़ी, तो थाक पड़ने पर तो तहाँ कुछ नहीं समझ सके।

इस प्रकार जो जीव इस संसार वन में मार्ग को भूलकर पड़े हैं (सत्यादि बुद्धि से आसक्त हैं) सो अधिक डराते (डरते) हैं। और मरण काल तो उनके लिये अन्ध कूप रात्रि ही आई (आती) है।

माया मोह वहाँ भर पूरी । दादुर दामिनि पवन अपूरी ॥
बरषै तपै अखण्डित धारा । रैनि भयावनि कछु न अहारा ॥

क्योंकि मरणादि से भयरूप अभिनिवेश वाले अज्ञों के हृदय में उस मरण काल में माया (ममता) और मोह (आसक्ति) अज्ञानादि अत्यन्त पूर्ण हो जाते हैं । और दादुर (मेढक) आदि के अस्पष्ट शब्द सुन पड़ते हैं । बिजुरी के समान चञ्चल प्रकाश दीखता है, चणिक ज्ञान होता है । और वायु मानो झकोरता है । प्राण वायु अपूर (शक्ति हीन) हो जाता है ।

वर्षा और ताप की अखण्ड धारा प्रतीत होती है । और भयावह रात्रि तुल्य उस अवस्था में क्षुधा अत्यन्त पीड़ित करती है परन्तु कुछ भी आहार नहीं मिलता है । इस प्रकार मरण काल में भी अज्ञ प्राणी अपने अपराध से ही महा कष्ट पाते हैं, अन्य के दोष से नहीं ।

साखी—सबै लोग जहड़ाइया, अन्धा सबे भुलान ।
कहा कोइ नहिं मानये, एकहिं माँह समान ॥१६॥

यदि इस संसार वन के खण्डों में अगुआ भूले, तो आप तो जहड़े ही, अन्य अनुगामी सब लोगों को भी जहड़ाये (पीड़ित किये) क्योंकि उनके अनुगामी अन्ध (अज्ञ) सब भी संसार में सत्यादि बुद्धि से इसीमें भूल भटक गया ।

और इस प्रकार भूल में पड़ा हुआ अविवेकी कोई मनुष्य सद्गुरु सतशास्त्र का कहा हुआ उपदेश को नहीं मानता है । किन्तु एक यम मन्दिर में ही सब समाता (पैठता) है । अथवा एक आत्म स्वरूप में ही सब तुल्य है, यह उपदेश नहीं मानता है अतः राग द्वेषादि करके जहड़ता जहड़ाता है । भाव है कि—

"समोऽहं सर्व भूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहं ॥ (भ० गी० ९।२९)
न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥ (भ० गी० ५।१४)
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः । (भ० गी० ६।५)"
(जस रे कियहु तस पायहु हो रमैया राम । हमर दोष जनि देहु हो रमैयाराम ॥)

इत्यादि वचनों के अनुसार ईश्वर साधारण कारण है, ईश्वर की भक्ति से प्राणी अपने भजन रूप कर्म का ही फल पाता है। ईश्वर को भजनेवाले स्वभाव से

ईश्वर में रहते हैं। ईश्वर भी स्वभाव से उनमें व्यक्त रहता है। लोक (देह) के कर्तृत्व को, घटादि कर्म को, कर्म फल संयोग को भी ईश्वर नहीं रचता है। किन्तु स्वभाव (प्रकृति माया) प्रवृत्त होता है। इससे आपही अपना बन्धु और शत्रु होता है। किन्तु–

"स्वकर्मफलयोगेन प्राप्य दुःखमचेतनः।
निमित्तकारणे वैरं करोति कुमतिःकिल" ॥ १ ॥

अविवेकी कुबुद्धि मनुष्य अपने कर्म फल के सम्बन्ध से दुःख पाकर, दुःख के निमित्त कारण विषयक विरोध (द्वेष) करता है ॥ १ ॥

करि सकाम निज कर्मं नित, भव न तरत नर कोय।
करत कुकर्म अधर्मं जो, ताकी क्या गति होय ॥३५॥
जब लगि होत अकाम नहीं, तब लगि भय सब काहि।
तब लगि मारग अगम है, पार न पावै काहि ॥३६॥
तजि कुकर्मं ताते सदा, काम क्रोध करि दूर।
सत्सङ्गति सुविचार करि, मोह नाशि ह्वे शूर ॥३७॥
मन इन्द्रिय को स्ववश करि, श्रद्धा प्रीति समेत।
भजिये राम श्रवणादि से, पाइये अचल निकेत ॥३८॥
अचल निकेतन राम है, सो सब का निजरूप।
ताहि लहत सब सन्त जन, विरज विवेकीं भूप ॥३९॥१६॥

इति भवपन्थ खेद, प्रकरण ८

अथ अविवेकनिवारणोपदेश प्रकरण ९

रमैनी १७

जस जिव आपु मिलै अस कोई। बहुत धर्म सुख हृदया होई॥
जासो बात राम की कही। प्रीति न काहू सो निर्वही॥

बिनु विवेक लहि कुसंग जन, सहत जगत में त्रास।
करि विवेक भजि राम नित, सुखी होत तजि आश ॥४०॥

सद्गुरु सत शास्त्र की बातों को नहीं मानने में यह कारण है कि, यह जीव जैसे आप अविवेकी, व्यसनी भ्रान्त या कुमार्गी रहता है, वैसा ही यदि इसको कोई मिलता है, तो इसके हृदय में धर्मोदय और सुख भासता है।

अतः ऐसे जिस किसी से सर्वात्मा राम की बात कही गई या कही जाती है, तो उस बात में तथा राम में किसी की प्रीति (प्रेम श्रद्धा) नहीं निर्वही (स्थिर नहीं हुई) न निर्वहती है ।

एके भाव सकल जग देखी । बाहर परु सो होय विवेकी ॥

कबीर साहब कहते हैं कि विवेक के अभाव से राम में प्रीति स्थिर नहीं होती है । यहाँ यदि सब संसार को एके भाव से (एक रूप से) मिथ्या माया-मय देख (समझ) कर सब संसार (शरीरादि) से जो बाहर परे (नित्यात्म चिंतन में लगे) सो विवेकी होता है ।

अथवा सब संसार में एक ही भाव (सत्य=सत्ता) को विचारादि द्वारा समझ कर, संसार से बाहर प्राप्त होता है (सत्यात्मनिष्ठ होता है) सो विवेकी होता है, दुःखों से रहित होता है ।

विषय मोह की फन्द छोड़ाई । तहाँ जाय जहँ काटु कसाई ॥
आहिं कसाई छूरी हाथा । कैसहुं आवै काटै माथा ॥

उक्त रीति से संसार से बाहर विवेकी हुए विना जो वर्तमान विषय (गृह वित्तादि) के मोह रूप फन्द, वा मोह की फन्द (बन्धन) को किसी प्रकार छोड़ाते (त्यागते) हैं सो बन्धन को छोड़-छोड़ाकर भी भावी विषयादि की आशा से तहाँ जाते हैं कि जहाँ इनको कसाई काटता है ।

आशा तृष्णा आदि तथा अज्ञ गुरु कसाई (आहिं) है । क्योंकि इनके हाथ में मानो क्रूरता आदि रूप छूरी रहती है । इससे किसी प्रकार जो इनके पास में जाता है, उसके माथ (शिर) को ये काटते हैं । उसे आत्म-विमुख करके शिरोमुण्डन मात्र कर देते हैं । अधिकारादि की परीक्षा या ज्ञानोपदेश देना नहींजानते हैं ।

मानुष बड़े बड़ा ह्वै आया । एकहि पण्डित सबहिं पढ़ाया ॥
पढ़ना पढ़हु धरहु जनि गोई । नहिं तो निश्चय जाहु बिगोई ॥

वह माथ काटने वाला, मनुष्यों में बड़े से भी बड़ा होकर आया और आता है । और वह एक (अद्वितीय) पण्डित होकर सब ही को अनात्मा की कथा पढ़ाया और पढ़ाता है । अतः मनुष्य विवेकी नहीं होते हैं ।

कबीर साहब कहते हैं कि सब में एक भाव स्वरूप राम की कथा ही पढ़ना (पढ़ने लायक) है, उस कथा को किसी गुरु से पढ़ो । और पढ़ने पर उसे गोय

(छिपा) कर नहीं धरो । किन्तु सत्सङ्गादि द्वारा उसका अभ्यास प्रचार करो। नहीं तो निश्चय समझो कि प्रबल वासनादि वश उस राम को और उसके उपदेश को भी विगोय (भूल) जाओगे ।

साखी—सुमिरन करहु रामके, छाड़हु दुःख की आश ।
तर ऊपर धरि चाँपि हैं, कोल्हू कोटि पिचास ॥१७॥

जो पढ़ना है उस राम कथा को पढ़ कर सदा राम के स्मरण भजन ध्यान विचार करो । और अन्य दुःख रूप वस्तु की आशा को छोड़ दो । नहीं तो वे आशा तृष्णादिक ही तुमको तरे (गर्भ नरकादि) में, और ऊपर (भूमि स्वर्गादि) में सर्वत्र धर कर (पकड़ कर) चाँपेंगे (पीड़ित करेंगे) । जैसे कोल्हू में तिलादि पीचे जाते हैं, वैसे आशा आदि तुझे करोड़ों वार पीचेगें क्योंकि—

"स्निग्धत्वाच्चि लवत्सर्वं चक्रेऽस्मिन् पीड्यते जगत् ।
तिलपीडैरिवाऽऽक्रम्य भोगैरज्ञानसम्भवैः ॥ (म०भा०शा०अ०२११।६)"

तिलपेरकों से तिल के समान अज्ञान जन्य भोगों से इस संसार चक्र में सब जगत् स्ववश कर के पीड़ित किया जाता है । उसमें स्नेह (राग) हेतु है । अतः राग रहित होने पर जीव संसार चक्र से वचता है । इसलिये—

करि सुप्रीति गुरु वचन में, ताते मोह मिटाय ।
आशा तजि भजु राम को, भोग रोग मिट जाय ॥४१॥
करि विचार गुरु बचन का, भजिय राम सुखसार ।
सबके हित उर धार कर, रहिये नित्य सँभार ॥४२॥

रमैनी १८

अद्भुत पन्थ वरणि नहिं जाई । भूले राम भूले दुनिआई ॥
जो चेतहु तो चेतहु भाई । नाहीं तो जिव यम ले जाई ॥

आश मोह अज्ञान से, अद्भुत भये कुपन्थ ।
तामें भूले जीव सब, कहत सन्त सद्ग्रन्थ ॥४३॥

अद्भुत (आश्चर्य रूप) अनन्त पन्थ (कर्मोपासना मार्ग मत सम्प्रदाय) हैं । जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता है । उन पन्थों में पड़ कर मनुष्य राम को भूले हैं । और दुनिआई (संसार के भी सद्व्यवहार) को भूले हुए हैं । तथा संसार के असद् व्यवहार में भूले (फँसे) हैं ।

तहाँ उपदेश है कि—हे भाई ! यदि चेतना हो तो शीघ्र चेतो । (हिंसा असत्यादि असद् व्यवहारों को त्यागकर राम को समझो भजो) नहीं तो हे जीव कुछ ही देर में तुमको यम ले जायगा (फिर यम यातना मिलेगी) क्योंकि (धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः । तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत्) अहिंसा आदि धर्म ही हत (नष्ट त्यक्त) होने पर, हिंसा आदि रूप अधर्म होकर मनुष्य को नष्ट करते हैं और रक्षित रहने पर रक्षा करते हैं । अतः स्वधर्म कभी हन्तव्य नहीं है, ऐसा न हो कि धर्म नष्ट होकर तेरा वध करे । यह भगवान् मनु का उपदेश है ।

शब्द न चीन्हे कथये ज्ञाना । ताते यम दीयो है थाना ॥
संशय सावज बसै शरीरा । ते खायल अनबेधल हीरा ॥

प्रायः मनुष्य सद्‌गुरु सत शास्त्र के सार शब्दों को नहीं चीन्हते हैं । न शब्द के ज्ञान पूर्वक राम को चीन्हते हैं । और अपने मन से कल्पित मिथ्या ज्ञानों का कथन करते हैं । तथा शास्त्र वर्णित ज्ञान मार्गों का भी केवल मुख से कथन करते हैं, हृदय से शब्दादि को नहीं चीन्हते हैं, जिससे निषिद्ध शब्दादि में फँसते हैं । अतः इन्हें स्ववश करने के लिये यम ने थाना दिया है (इनके हृदय में डेरा दिया है) ।

और संशय रूप सावज (मृग) सदा इनके शरीर (हृदय) में बसते हैं । ते (वे) मृग ही अनवेध (अखण्ड अछिद्र) हीरा (अद्वैतानन्द स्वरूप स्वयं प्रकाश राम) को खा गये हैं (भ्रम अज्ञान में छिपा दिये हैं) ।

साखी—संशयसावज शरीर मँह, संगहिं खेल जुआर ।
ऐसा घाई बापुरा, जीवहि मारै झार ॥१८॥

संशय रूप सावज (संशय भ्रम युक्त मन) शरीर के भीतर हृदय में रहता है । और इस जीव के साथ जूआ खेलता है, इस के साथ कपट करता है, धोखा देता है । क्यों कि यह ऐसा । बापुरा (दुष्ट) घाई (घातक=पड़दा की टट्टी) है, कि इस के आश्रित रहकर काल सबों को झार (खोज) कर मारता है । अतः संशय भ्रम प्रमाद से रहित होकर अमृत स्वरूप के स्मरणादि कर्तव्य है । क्यों कि—

"असंशयवतां मुक्तिः संशयाविष्टचेतसाम् ।
न मुक्ति र्जन्मजन्मान्ते तस्माद्विश्वासमाप्नुयात् ॥ (मैत्रेय्युप. २।१६)
यत्तु निःश्रेयसं सम्यक् तच्चैवासंशयात्मकम् । (म. भा. शा. अ. २८७)

संशय रहित ज्ञानी की मुक्ति होती है, संशययुक्त चित्तवाले की अनेक जन्म के

अन्त में भी मुक्ति नहीं हो सकती है। अतः गुरु के वाक्य में निर्णीत एक सत्यात्मा में विश्वास करना चाहिये। क्योंकि जो निःश्रेयस=निश्चित शुभ है, सो असंशय स्वरूपही है ॥१८॥

रमैनी १९

अनहद् अनुभव की करि आशा। ई देखहु विपरीत तमासा॥
इहे तमासा देखहु भाई। जहवाँ शून्य तहाँ चलि जाई॥

विवेकादि के अभाव से राम के अनुभव द्वारा संशयादि का निवारण नहीं करके, बहुत लोग दश प्रकार के अनहद शब्द, विशुप्रकृति आकाशादि के अनुभव की आशा करते हैं, इस विपरीत तमासा को देखो। इसको उल्टा मिथ्या तमासा रूप समझो। क्योंकि इस अनहद के अनुभवादि से विनाशके हेतु संशयादि का नाश नहीं हो सकता है। अतः हे भाइयों! इसे तमासा मात्र समझो और तमासा समझ कर त्यागो।

क्यों कि इस तमासे में लगे रहने वाले, जहाँ शून्य (सत्यानन्दादि का अभाव) है, वहाँ अन्त में चले जाते हैं। अर्थात् जड़ प्रकृति शब्द आकाश आदि में लीन होते हैं। अतः अनहदादि के अनुभवादि की आशा को त्याग कर सच्चिदानन्द परमप्रिय सर्वात्मा राम के स्मरण अनुभवादिक ही कर्तव्य हैं, क्योंकि—

शून्यहि बाँछे शून्यहि गयऊ। हाथा छोड़ि बेहाथा भयऊ॥
संशय सावज सब संसारा। काल अहेरी साँझ सकारा॥

जो कोई राम के अनुभवादि की बाँछा (इच्छा नहीं करके शब्द आकाशादि रूप शून्य के अनुभव की ही बाँछा किये, सो शून्य ही में मर कर गये (लीन हुए) कि जिससे हाथ में (मन में) प्राप्त भी कुछ ज्ञान सुखादि को वे लोग छोड़ दिये। इससे ज्ञानादि वेहाथ (नष्ट परवश) हो गये। और संशय रूप सावज सब संसार में (संसार विषयक) रह गया, जिससे काल भी सांझ सबेरे अहेरी (शिकारी) होता है।

साखी—सुमिरन करहु राम के, काल गहे हैं केश।
नहिं जानहु कब मारि हैं, क्या घर क्या परदेश ॥१९॥

कबीर साहब का उपदेश है कि काल कष्टादि से बचने के लिये क्या घर क्या परदेश सर्वत्र सदा, अन्य कि बाँछा को त्याग कर राम के सुमिरण विचारादि

करो। और इस सुमिरण में आलस्यादि नहीं करो। क्योंकि काल तेरे केशों को पकड़ कर बैठा है (सदा शिर पर सवार है) और आयु के श्वासों को गिन रहा है। वह श्वास के पूर्ण होते ही मारेगा।

और तुम यह नहीं जानते हो कि कब कहाँ मारेगा। क्या घर में मारेगा या परदेश में मारेगा। अतः शीघ्र राम सुमिरणादि द्वारा कालादि के भयादि से रहित मुक्त होवो।

"न श्वः समुपासीत् को हि मनुष्यस्य श्वो वेद। (शतपथ २।१।३।९)
श्वः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिकम्।
नहि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य न वाऽकृतम्॥
(म०भा०शा०अ०१७५।१५) ॥१६॥"

इति अविवेक निवारणोपदेश प्रकरण ९

अथ दुःखयमयातनादिवारणार्थोपदेश प्रकरण १०

रमैनी २०

अब कहु राम नाम अविनाशी। हरि छोड़ि जियरा कतहुँ न जासी॥
जहाँ जाहु तहँ होहु पतङ्गा। अब जनि जरहु समुझि विष सङ्गा॥

सुमिरण कारण राम के, राम नाम लौ लाय।
तजि कामादि विकार सब, भव सागर तरि जाय॥४४॥

हे जियरा! (जीव!) अब भी अविनाशी राम नाम (स्वरूप) को कहो (भजो) और उस हरि राम को छोड़ कर कहीं नहीं जावो (राम के स्मरण चिन्तन पूर्वक ही सब उचित व्यवहार करो। क्योंकि राम को छोड़कर जहाँ जाते हो, तहाँ पतङ्ग तुल्य होकर विषयविषाग्नि में जलते हो। अब समुझ कर उससे बचो, विषयादि विष के सङ्ग में अब नहीं जलो।

राम नाम लौ लाय सो लीन्हा। भृङ्गी कीट समुझि मन दीन्हा॥

विषयों को विष रूप जान कर विवेकियों ने राम नाम में लौ (प्रेम ध्यान) लगा कर सो (राम नाम) ही लिया (प्राप्त किया) और कीट जैसे भृङ्ग को

समझ कर, उस भृङ्ग में मन देता (लगता) है, और भृङ्ग रूप हो जाता है। वैसे राम में मन लगाने वाले विवेकी राम स्वरूप हो गये।

और राम को नहीं समझने वाले अविवेकियों ने केवल राम के नाम मात्र में लौ लगा कर, सो (बाह्य विषयाग्नि) लिया, जैसे भृङ्ग ही कीट को ध्येय समझ कर कीट में मन दिया (लगाया) हो। तैसे अविवेकियों ने भ्रम से किसी विषय लोकादि विनश्वर को ही अविनाशी सुख स्वरूप समझ कर उसमें मन लगाया कि जिससे अनर्थ हुआ। क्योंकि—

भौ अति गरु जे दुख के भारी। करु जिय यतन जो देखु विचारी॥
मन की बात है लहर विकारा। ते नहिं सूझै वार न पारा॥

राम में लौ नहीं लगा कर, विषयाग्नि में मन के लगाने से ही अत्यन्त गरु जो दुःख के भारी (भार बोझ) हैं, सो प्राप्त हुए हैं। भ्रम संशय सहित संसार के कठिन दुःख प्राप्त हुए हैं। अतः उपदेश है कि विचार कर जो भजन ध्यानादि सुखप्रद समझो, सो करो। विचारादि से सुख स्वरूप राम को जानकर राम को भजो) क्योंकि विचारादि रहित अपने मन की बात (समझ व्यवहार) तो विकार (दोष) स्वरूप दुष्ट दुःखद लहर (तरङ्ग वा ज्वाला) रूप डुबाने जलाने वाले होते हैं। क्योंकि उसी मन के लहर (तरङ्ग) से संसार के वार-पार (सत्यात्मा) नहीं सूझता है। अतः विचार अवश्य कर्तव्य है।

साखी—इच्छा करि भव सागरे, वोहित राम अधार।
कहहिं कबिर हरि शरण गहु, गोखुर[1] वछ विस्तार॥२०॥

क्योंकि विचारादि रहित मन से जो जीव ने इच्छा करी सो इच्छा ही इसके लिये वर्तमान जन्मादि रूप संसार हुआ है। इस संसार में सर्वाधार स्वरूप अविनाशी राम ही इस जीव के कल्याण के लिये वोहित (नौका) है।

अतः सद्गुरु कबीर का उपदेश है कि अन्य सब इच्छा आशा आदि को त्याग कर अब भी केवल हरि (स्मरणादि से दुःख हर्ता राम) के शरण को गहो। तो यह संसार का विस्तार भी गौ के वछड़े के खुर के समान सुख से तरने के योग्य हो जायगा, दुस्तर नहीं रहेगा। क्योंकि—

"युक्त्या वै चरतो ज्ञस्य संसारो गोष्पदाकृतिः।
दूरसंत्यक्तयुक्तेस्तु महामत्तार्णवोपमः॥" (यो.वा. स्थिति. प्र.स.५७।३७)

---

1. गोखुरवत, यह पाठ ठीक प्रतीत होता है।

युक्ति से चलने वाले ज्ञानी के लिये संसार गोपदाकार होता है। और युक्ति को दूर त्यागने वाले के लिये महामत्त समुद्र तुल्य है।

काम क्रोध मद मारिये, भजिये राम उदार।
सुमिरण कारण राम के, यह मानव अवतार ॥४५॥

रमैनी ॥२१॥

बहुते दुःख दुःख की खानी। तब बचिहहु जब रामहि जानी॥
रामहि जानि युक्ति जो चलई। युक्तिहि ते फन्दा नहिं परई॥

हरि शरणागति के बिना, दुख अनन्त संसार।
तहँ उबरे गुरु युक्ति से, नहित जाय यम द्वार ॥४६॥

इच्छा जन्य संसार में हरिशरण को गहने के विना, यह संसार बहुत प्रकार के दुःख रूप है और दुःखों की खानि (आकर) रूप है। अर्थात् आध्यात्मिक (दैहिक मानस) आधिदैविक (देवजन्य) और आधिभौतिक (प्राणि-जन्य) तीन प्रकार के दुःख संसार में कहे जाते हैं। सो एक एक भी अनन्त अनन्त प्रकार के दुःख होते हैं। तथा अण्डज, पिण्डज, उष्मज, स्थावर चार प्रकार की खानि भी दुःख के ही हेतु हैं।

इस दुःखरूप संसार से तभी बचोगे कि जब अन्य सब की आशा तृष्णादि को त्याग कर राम ही को ध्येय ज्ञेय और सुख स्वरूप सर्वात्मा सत्य जानोगे।

क्योंकि राम ही को सत्य जान कर जो ज्ञानि अमानिता, अदम्भिता, अहिंसा, क्षान्ति, आर्जव (ऋजुता) आदि रूप योग युक्ति से चलता है। सो उन युक्तियों से ही फिर कहीं फन्दा (मनोमायाकृतजाल) में नहीं पड़ता है। अतः राम को जानकर युक्ति से सुमार्ग में गन्तव्य है, अहंकार दम्भादि कुमार्ग में नहीं।

युक्तिहि युक्त चला संसारा। निश्चय कहा न मानु हमारा॥
कनक कामिनी घोर पटोरा। सम्पति बहुत रहल दिन थोरा॥

यद्यपि अपने जिस मन की बात को विकार लहर रूप कहा गया है, उस मन से कल्पित युक्तिहि युक्ति से सब संसारी चलता है। तथापि निश्चय कर के हमारा (सद्गुरु सत शास्त्र का) कहा हुआ (उपदेश) को नहीं मानता है। अर्थात् श्रद्धा भक्ति शम दमादि द्वारा राम को जान कर, अमानिता आदि रूप युक्ति से नहीं चलता है अतः फन्दा में पड़ता है।

क्योंकि अपने मन की युक्ति से चलने वाला कनक, कामिनी, घोड़ा, पटोर (रेशम वस्त्र) आदि मायिक वस्तु को ही बहुत सम्पत्ति समझता है, शम दमादि रूप सम्पत्ति को नहीं समझता है। अतः कनकादि के लिए यत्न करके उन्हें प्राप्त करता है। और सो सम्पत्ति बहुत थोड़े दिन संसारियों के पास में रही, और रहती है। परन्तु उसी के अभिमानादि से यह फन्द में पड़ता है। क्योंकि—

थोरे हि सम्पति गौ बौराई। धर्म राय की खबरि न पाई॥
देखि त्रास मुख गौ कुम्हिलाई। अमरित धोखे गौ विष खाई॥

कनकादि रूप थोरी (तुच्छ) सम्पत्तियों से ही अविवेकी बौराय गये। अतः राम की भक्ति आदि नहीं कर सके, न सत शास्त्र गुरु की आज्ञा को सुन सके। अतः धर्मराज के न्यायादि की खबर भी इन लोगों ने नहीं पाई (पाप के फल रूप यम यातना का होश इनको नहीं रहा।

अतः मनमाना पापादि करते ही में जब अन्त काल आया, तब कर्मानुसार भयानक यमराज को देख कर त्रास (भय उद्वेग) भया और मुख कुम्हिला (सुख) गया। और पश्चात्ताप करने लगे कि अहो मैंने तो अमृत के धोखे में विषयविष को खाया, जिसका यह परिणाम (फल) रूप यमयातना है। अथवा जिन्होंने अमृत के धोखे में विषयविष खाया, उन्हीं का मुख यम को देखकर कुम्हिलाया और कुम्हिलाता है। क्योंकि—

जन्ममृत्युजरादुःखमनुयान्ति पुनः पुनः।
विमृशन्ति न संसारं पशवः परिमोहिताः॥ (योग वा.प्र.१।२३।२६)

मोह युक्त पशु (अज्ञ) प्राणी जन्मादि जन्य दुख बार-बार पाते हैं, परन्तु उससे रहित होने के लिये संसार का विचार नहीं करते हैं। परन्तु शास्त्र गुरु वचन में विश्वास करके दुष्ट संग विषयादि मुमुक्षु के लिये अवश्य त्याज्य हैं।

त्रास और मुख कुम्हिलाने में हेतु दर्शाते हैं कि—

मैं सिरजौं मैं मारऊँ, मैं जारौं मैं खाँव।
जल थल नभ महँ रमि रहौं, मोर निरञ्जन नाँव॥२१॥

वह यमराजदेव पापियों से कहता है, कि मैं ही संसार की सृष्टि (उत्पत्ति) करता हूँ। और मध्य में पालन करके अन्त में मारता हूं। और महाप्रलय काल में सूर्यरूप अग्नि से सब को जलाता (पकता) हूं। और पका कर सब को खाता

हूँ । और जल, भूमि तथा आकाश में रमा हुआ (व्यापक) रहता हूँ । और मेरा ही निरञ्जन (असङ्ग ईश्वर) नाम है । अतः सब कुछ करता हुआ भी मैं अकर्ता हूँ ।

भाव है कि भक्ति ज्ञानादि के विना सर्व संरक्षक ईश्वर ही भयानक यमादि-रूप प्रतीत होता है । और ईश्वर ही जलचरादि सब प्राणी का संहर्ता भी कर्मादि के अनुसार होता है । भक्ति ज्ञानादि से मोक्षप्रद होता है, अभय नित्य मुक्त निजात्म आनन्द स्वरूप से भासता है । अतः भक्ति द्वारा सर्वेश्वर राम निज स्वरूप ज्ञातव्य है "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ।" (ऋग्० म० १ अ० २ अनु० २२ सु० ८ वर्ग १०।६६) इत्यादि एक ही सत् को विप्र बहुत प्रकार से कहते हैं । अग्नि यम और मातरिश्वा भी एक सद्ब्रह्म को कहते हैं ॥ २१ ॥

रमैनी २२

अलख निरञ्जन लखै न कोई । जेहि बन्धे बन्धा सब कोई ॥
जेहि झूठे बन्धाय अयाना । झूठी बात साँच कै माना ॥
धन्धा बन्धा किन व्यवहारा । कर्म विवर्जित बसै निआरा ॥

यम आदिक सब रूप में, बिनु आतम पहिचान ।
बँधत जीव निज कर्म ते, करी स्नेह अभिमान ॥४७॥

वह मृत्यु काल में प्रतीत होने वाला निरञ्जन सदा प्राणियों के हृदय में अन्तर्यामी और सत्यात्मा रूप से वर्तमान रहता है । परन्तु सब अज्ञ प्राणियों से सदा अलख (अदृश्य=अज्ञेय) रहता है । अतः कोई अविवेकी मलिन मतिवाला कर्मी यथार्थ रूप से उसको नहीं लखता (जानता) है । और नहीं जानने से ही इस जीव के कर्मादि द्वारा जिस निरञ्जन के ही बन्ध (रचित संसार) में सब कोई बन्धा (बद्ध) है । जिससे सब संसार में बान्धा गया है ।

वह परमात्मा भी उन्हीं को बाँधा है कि जो अयान (अज्ञ) स्वयं झूठे (मिथ्या) पदार्थों में बँधाय (मोह से आसक्त) हैं । और विवेकादि के बिना जो झूठी बातों को साँच (सत्य) निश्चय करके मानते हैं । और जिन्होंने बन्धन रूप धन्धा (कार्य) का ही व्यवहार किये हैं और आवश्यक कर्तव्य कर्मों से विवर्जित (रहित) रह कर जो सत्पुरुषादि से न्यारा बसते हैं । सत्संग भक्ति विचारादि नहीं करते हैं, वे ही संसार में ईश्वर से बाँधे जाते हैं, अन्य नहीं ।

षट दर्शन औ आश्रम कीन्हा। षट रस बात षट वस्तुहिं चीन्हा॥
चारि वृक्ष छौ सखा बखानै। विद्या अगनित गनै न जानै॥
औरो आगम करै विचारा। ते नहिं सूझै वार न पारा॥
जप तीरथ व्रत कीजै पूजा। दान पुण्य कीजै बहु दूजा॥

और जिन्होंने योगी जङ्गमादि छौ दर्शन और ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, बानप्रस्थ और संन्यास रूप चार आश्रम के वेषादि का धारण किया। किन्तु एक सत्यात्मा को एक रस की बात को नहीं पहचाना। किन्तु षटरस वाली बात और षट (छः) वस्तु को सत्य चीन्हा (समझा) सो भेद युक्त रस (प्रेम) ज्ञान वाले राग द्वेषादि द्वारा यम से बाँधे गये और बाँधे जाते हैं। और जो चार वृक्ष (वेद) और उस वृक्ष के छौ शाखा (अङ्ग) का व्याख्यान करते हैं। और अगनित (अनन्त) विद्या को गनते (विचारते=गुनते) हैं। परन्तु एक सत्यात्मा को नहीं जानते हैं।

सो यदि और (अन्य) आगम (तन्त्र) ग्रन्थों का भी विचार करते हैं। तो ते (उन) सबसे भी, एक राम की भक्ति और ज्ञानादि के बिना संसार के वार पार नहीं सूझता है। राम की भक्ति और ज्ञान के विना, चाहे जप, तीर्थ, व्रत, पूजा आदि किये जायँ और दूसरे बहुत प्रकार के दान-पुण्य कर्म किये जायँ, परन्तु इन सब से भी संसार के वार पार नहीं सूझता है। किन्तु राम की भक्ति आत्मज्ञान के द्वारा सांसारिक स्नेह (राग आसक्ति मोह) को त्यागने से संसार के वार पार सूझता है। क्योंकि—

साखी—मन्दिर तो है नेह का, मति कोइ पैठु धाय।
जो कोइ पैठु धाय के, बिनु शिर सेतिहि जाय॥२२॥

यह संसार शरीर रूप मन्दिर अज्ञानमूलक स्नेह का कार्य रूप है सो दुःख रूप है। अतः इस मन्दिर में स्नेह द्वारा कोई मुमुक्षु सुखेच्छु दौड़कर नहीं पैठो। संसार तथा शरीर में सत्यादि बुद्धि से प्रेम स्नेह नहीं करो। क्योंकि जो कोई इस में दौड़कर पैठता है (आसक्त होता है) सो सेतिहि (व्यर्थ ही) बिना शिर के होकर (शिर कटा कर) जाता है, तिल तुल्य पींचा जाता है। अर्थात् ज्ञान के उत्तमाङ्ग (शम दमादि आत्मानन्द) से रहित होकर मरता है।

अथवा संसार के वार पार सूझने के लिये शुद्ध स्फटिक के मन्दिर के तुल्य शुद्ध स्नेह (प्रेम भक्ति) का मन्दिर है (प्रेम भक्ति युक्त हृदय है) परन्तु उसमें

बहुत धैर्य शान्ति से पैठा जाता है। अतः कोई दौड़ कर पैठने के लिये साहस नहीं करो। यदि इसमें कोई दौड़ कर पैठता है, तो वह भी बिना शिर से ही इसमें जाता है। अर्थात् सब अभिमान ममता को त्यागने पर शीघ्र राम भक्ति को प्राप्त करता है। अतः भक्ति मुक्ति के लिये अभिमानादि त्याज्य हैं।

को गृहेषु पुमान् सक्तमात्मानमजितेन्द्रियम्।
स्नेहपाशैर्दृढैर्बद्धमुत्सहेत विमोचितुम् ॥१॥ भा०स्क० ७।६।६॥
निःस्नेहो याति निर्वाणं स्नेहोऽनर्थस्य कारणम्।
निःस्नेहेन प्रदीपेन तदेतत्प्रकटी कृतम् ॥ (सुभाषितम्) ॥२२॥

इति दुःखयमयातना वर्णन प्रकरण १०

अथ संसारासारता वर्णन प्रकरण ११

सम्बन्ध–प्रथम कहा गया है कि संसार शरीर में स्नेह करने पर व्यर्थ ही शिर कटा कर जाना होता है, तहाँ शंका होती है, कि व्यर्थ ही कैसे जाना होता है। लोक परलोक में देहद्वारा नाना सुखों का भोग होता है। तो इसका समाधानहै कि–

रमैनी २३

अलपे सुख दुख आदिहुं अन्ता। मन भुलान मैगर मैं मन्ता॥
सुख विसराय मुक्ति कहँ पावै। परिहरि साँच झूठ कहँ धावै॥

अल्प विषय सुख लागि जड़, तजत महा सुख खान।
हानि लाभ कछु लखत नहिं, भ्रम वश फिरत भुलान ॥४८॥

(नाल्पे सुखमस्ति। छा० ७।२४।१) अल्प परिच्छिन्न इस संसार में सुख नहीं है विभु ब्रह्मात्मा सुख स्वरूप है। और विषय जन्य बहुत अल्प सुख होता भी है, तो महान् दुःख उसके आदि अन्त में लगा रहता है। तथा जन्म मरण रूप आदि अन्त में दुःख ही रहता है, सुख का नाम भी नहीं रहता है। तो भी मैगर (मस्त हाथी) तुल्य मैं मन्ता (अभिमानी) मन उस दुःख को भुलाना (विसरा) रहता है। और सुख ही समझता है।

यदि यह सांसारिक सुख को विसराय दे (भूल जाय) और दुःख को नहीं भूले, तो स्नेह के त्याग विराग भक्ति ज्ञान को प्राप्त करके मुक्ति को प्राप्त करे।

परन्तु संसार में सुख माननेवाला मन तो सांच सुख को त्याग कर झूठ सुख का ही ध्यान करता है। तो ऐसा मन वाला मुक्ति कहाँ कैसे पावै।

अनल जोति डाहै एक संगा। नयन नेह जस जरै पतंगा॥
करु विचार जे सब दुख जाई। परि हरि झूठा केर सगाई॥
लालच लागे जन्म सिराई। जरामरण नियरायल आई॥

क्योंकि जिन विषयों का ध्यान करता है, उनके साथ प्रथम संग (सम्बन्ध) होता है। भ० गीता में कहा गया है कि (ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते। अ० २।६२) विषयों के ध्यान करने वाले पुरुष का उनमें संग (प्रेम आसक्ति) होता है। फिर उससे काम क्रोध मोहादि द्वारा पुरुष का नाश होता है। अतः वह एक (केवल) संग ही अग्नि की ज्योति के समान इस पुरुष को काम क्रोधादि द्वारा डाहता (जलाता) है। तो भी यह स्वयं विषय संग में आकर इस प्रकार जलता है कि जैसे नेत्र के विषय में नेह (प्रेम) वश पतंग अग्नि में जलता है।

कबीर साहब का उपदेश है कि झूठा (असत्य) के सगाई (संग प्रेम आसक्ति) को त्यागकर, अब भी स्वधर्म सत्यात्मा के विचारादि करो, कि जिससे आत्मज्ञान द्वारा अज्ञान की निवृत्ति से अज्ञान मूलक सब दुःख नष्ट हो जाय।

क्योंकि विचारादि के विना लालच (लोभ) में लगे लगे अनन्त जन्म सिराय (बीत) गये। इस जन्म का भी यदि बहुत समय बीत गया हो, जरा मरण पास में आ पहुँचे हों, तो भी विचार करो, कि जिससे अज्ञान भ्रम की निवृत्ति हो। क्योंकि—

"मनागपि विचारेण चेतसः स्वस्य निग्रहः।
मनागपि कृतं येन तेनाप्तं जन्मनः फलम्॥
(योगवा० उपशम प्र० स० ६३।१।")

किञ्चिद् मात्र विचार से कुछ भी जिसने अपने चित्त का निरोध किया, उसने मानव जन्म का फल पाया, अतः विचार अवश्य कर्तव्य है।

भ्रम के बाँधल ई जगत, यहि विधि आवै जाय।
मानुष जन्महि पाय नर, काहे को जहड़ाय॥२३॥

विचारादि के बिना अज्ञान जन्य भ्रम के द्वारा अभिमान संगादि से बँधाया हुआ यह संसारी इस पूर्व कही विधि (रीति) से लोग संगादि करके जलते हुए आता है और जाता है (जन्मता मरता है)। तहाँ कबीर साहब कहते हैं कि हे नर ! मानुष जन्म हूँ पाकर तुम पशु आदि के समान क्यों जहड़ते हो (क्यों काम लोभादि के वश में पीड़ित होते हो) ?

"सर्वस्य मूलं मानुष्यं तद्धि यत्नेन रक्षयेत् ।
तद्वृद्धौ नास्ति चेद् यत्नो मूलं तु परिरक्षय ॥ (गरुड़ पु०)"

धर्म स्वर्ग मोक्ष सब का मूल मनुष्यत्व है, उसकी वृद्धि के लिये यदि यत्न नहीं है, तो मूल की अवश्य रक्षा करो ॥ २३ ॥

सम्बन्ध—बहुत लोग कहते हैं कि चन्द्रमा के ध्यान के बल से जैसे अग्नि के संग से भी चकोर की कोई हानि नहीं होती है, अतः वह अग्नि को खाता है। तैसे परमात्मा या किसी देव के ध्यान करते हुए, विषयों के भी ध्यान संगादि से हानि नहीं होती है, न पतङ्ग के समान मनुष्य जलता ही है। ऐसे उपदेशों के दुष्परिणामों का आगे वर्णन करते हैं। कि—

रमैनी २४

चन्द्र चकोर अस बात जनाई । मानुष बुद्धि दीन्ह पलटाई ॥
चारि अवस्था सपने कहई । झूठो फूरो मानत रहई ॥
मिथ्या बात न जानै कोई । यहि विधिहि सब गेल विगोई ॥

गुरुओं ने चन्द्र चकोर के समान बात जनाई (विषय संगादि का उपदेश दिया) तहाँ चकोर का तो जाति के स्वभाव शक्ति विशेष से अग्नि से मुख नहिं जलता है, जैसे ऊँट का मुख काँटे से नहीं बिधता है। और अज्ञ मनुष्य में तो यह स्वभाव है नहीं, कि विषयादि के संग से विकार नहीं होय। अतः उपदेशकों ने कुसङ्गादि कराकर मनुष्य की मानुषी बुद्धि को पलटाय दिया (विवेक युक्त बुद्धि को अविवेक युक्त कर दिया) तथा सत्सङ्गादि से विमुख अनात्म परायण कर दिया।

अतः बाल्यादि चारों अवस्था में स्वप्न तुल्य संसार विषयादि की ही बातों को मनुष्य कहते रहता है और झूठ (मिथ्या) बात वस्तु को ही फूर (सत्य) मानते रहता है। तथा विवेकपूर्वक सत्य मिथ्या को नहीं समझता है। अतः अविवेक से सत्य मिथ्या को एक ही करके मानते रहता है।

अतः मिथ्या बात मात्र (वाचारम्भण मात्र) विकार को या मिथ्या शब्द को कोई मिथ्या नहीं समझता है। इस प्रकार सब अविवेकी मनुष्यता को विवेक आदि को तथा सुख शान्ति को गमा कर गये (नष्ट हुए)।

आगे दै दै सबन गमाया। मानुष बुद्धि न सपनेहुँ पाया ॥
चौतिस अच्छर से निकले जोई। पाप पुण्य जानेगा सोई ॥

जिन लोगों ने विवेकादि से मनुष्यता को सिद्ध करके कुध्यान कुसङ्गादि के त्यागपूर्वक यहाँ ज्ञान ध्यानादि से जीवन मुक्ति को नहीं प्राप्त किया, सो सब लोगों ने आगे की आशा दे दे कर, सद्विचार आदि को मनुष्यता युक्त जीवन को व्यर्थ गमाया। क्योंकि आगे के लोक विषयादि की आशा वाले मानुषी विवेकमयी बुद्धि को स्वप्न में भी नहीं पाये।

और जो कोई चौंतिस अक्षर के जाल से निकलता है (नाम रूपात्मक देहादि को मिथ्या समझकर शुद्ध आत्मा को शब्दावाच्य निजस्वरूप समझता है) सोई पाप पुण्य (अनात्म और आत्मा) को विवेकपूर्वक अपरोक्ष जानता है और जानेगा।

साखी—सोइ कहते सोइ होहुगे, निकरि न बाहर आव।
हौं हजूर ठाढ़ कहते हौं, धोखे न जन्म गमाव ॥२४॥

चौंतिस अक्षर से निकलने के लिये युक्ति बताया गया है कि, सोई (देहादि) को कहते हुए, सोई (देहादि) स्वरूप ही क्या तुम कभी हो सकते हो ? अर्थात् देहादि को कहने वाला तुम देहादि स्वरूप कभी नहीं हो सकते हो। क्योंकि —

"घटद्रष्टा घटाद् भिन्नः सर्वथा न घटो यथा।
देहद्रष्टा तथा देहत्रितयाद् भेदमर्हति ॥"

घट को देखने वाला जैसे सर्वथा घट से भिन्न रहता है, घट रूप नहीं होता है। वैसे तीन देहों का द्रष्टा तीन देहों से भेद के योग्य है। और जो देह का द्रष्टा है, सोई वक्ता है अतः वह किसी विकार नाम रूपात्मक नहीं है। अतः जो कुछ तुम देखो या कहो उन सब से बाहर निकल न आओ। अर्थात् माया आदि युक्त चेतनात्मा में ब्रह्मादि शब्दों की शक्ति को जानकर, माया आदि से उपलक्षित (रहित) शुद्ध ब्रह्म निजात्मा को शुद्ध मनोवृत्ति मात्र से व्यक्त करो (समझो)। मैं हजूर (प्रत्यक्ष) उस रूप से उपस्थित होकर कह

रहा हूँ। तुम धोखे (मिथ्या नाम रूप) में आत्म बुद्धि करके इस जन्म को व्यर्थ नहीं गमावो।

विनु विचार सत्सङ्ग के, भ्रमवश ह्वै संसारि।
करि कुसङ्ग गहि असत भव, वहत मोह के धारि ॥४९॥
बिनु विवेक करि ध्यान हूँ, आशा से बन्धि जाय।
पाप पुण्य जानै नहीं, गुरु बिनु रहत भुलाय ॥५०॥
मन बुधि इन्द्रिय प्राण के, गमनागम लख जोय।
गमनागमन विहीन सत, साक्षि आतमा सोय ॥५१॥
जाति धर्म गुण कर्म अरु, सम्बन्धादि अनेक।
नाम हेतु हैं वस्तु के, आतम में नहि एक ॥५२॥
शुक्लादिक नहि रूप तहँ, नहि आकार विकार।
सम रस सबको जानता, आतम सो निर्धार ॥५३॥
तैं काहु का कोइ नहीं, तेरा या जग माहि।
तूँ सब का सब तोर है, यों लख तब भय नाहि ॥५४॥
निर्विशेष तूँ है सदा, सब विशेष जग माहि।
जो विशेष को जानता, सो विशेष ह्वै नाहि ॥५५॥

रमैनी २५

चौतिस अक्षर क यही विशेखा। सहसो नाम याहि मँह देखा ॥
भूलि भटकि नर फिरि घट आया। हता जान सो सबन गमाया ॥

नाम रूप के भेद में, भटका यह संसार।
लहा न एक स्वरूपसत, खोजत फिरै असार ॥५६॥

पाँच कवर्गादि के पचीस अक्षर और य, र, ल, व, ये चार, तथा श, ष, स, ह, क्ष, ये पाँच मिलाकर चौतीस अक्षर होते हैं, कि जिनसे निकलना चाहिये। उन चौतिस अक्षरों का ही यह सब विशेष (भेद प्रकार) रूप संसार है। क्योंकि इन चौतीस परिमित अक्षरों में सहस्रो (अनन्तो) नाम देखे जाते हैं। और नाम मात्र ही विकारात्मक संसार है। इस प्रकार श्रुति भी कहती है।

इन नामों में (मिथ्या देहादि) में जो मनुष्य सत्यात्मादि बुद्धि से भूला (आसक्त हुआ) सो मिथ्या व्यवहारादि में भटका (भ्रमण किया) तथा

अनेक लोकादि में भटका और भटक कर फिर किसी घट (शरीर) में कर्म वासना आदि के अनुसार आया और आता है। तहाँ फिर श्रेष्ठ मानव शरीर में बार बार आना अति दुर्लभ है। अतः यदि पशु आदि शरीरों में फिर आया, तो जो यहाँ जान (ज्ञान प्राण शक्ति) हता (था) सो ज्ञानादि सब इसने गमाया।

खोजहिं ब्रह्म विष्णु शिव शक्ती। अनन्तलोक खोजहिं बहु भक्ती॥
गण गन्धर्व खोजहिं मुनि देवा। अनन्तलोक खोजहिं बहु सेवा॥

यद्यपि नाम में भूलने से प्राप्त ज्ञान का भी अभाव हो जाता है; तथापि मनुष्य नामात्मक (शरीर स्वरूप) ब्रह्मा, विष्णु, शिव और शक्ति को खोजते हैं। और ब्रह्मा आदि भी किसी नाम नामी को खोजते हैं। और बहुत भक्तिपूर्वक अनन्त लोकों को सब खोजते हैं। और गणदेव, गन्धर्वदेव, मुनि लोग और अन्य देव भी बहुत सेवा (भक्ति) पूर्वक अनन्त (अविनाशी लोक) को खोजते हैं।

तथा अन्य जीव गणदेवादि को खोजते हैं—

विष्णुश्चरत्यसावुग्रं तपो वर्षाण्यनेकशः।
ब्रह्मा हरस्त्रयो देवा ध्यायन्तः कमपि ध्रुवम् ॥१॥
कामयानाः सदा कामं ते त्रयः सर्वदैव हि।
यजन्ति यज्ञान् विविधान् ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥२॥

(देवी भा० स्क० १।८।४५-४६)

वे विष्णु अनेकों वर्ष उग्र तप करते हैं। और ब्रह्मा तथा हर भी उग्र तप करते हैं। इस प्रकार तीनों देव किसी अविनाशी के ध्यान करते हुए तप करते हैं ॥ १ ॥ और वे तीनों ब्रह्मा, विष्णु, महेश देव किसी काम्य वस्तु की इच्छा करते हुए सदा ही अनेक प्रकार के यज्ञ करते हैं ॥ २ ॥

देवापि मार्गे मुह्यन्ति अपदस्य पदैषिणः। (म० भा० शा० अ० २३९।२३)

अपद ज्ञानी के पद को चाहने वाले देव मार्ग में भूलते हैं।

साखी—यती सती सब खोजहीं, मनहिं न मानै हार।
बड़ बड़ जीव न बाँचहीं, कहहिं कबीर पुकार ॥२५॥

यती (योगादि यत्न करने वाले संन्यासी) सती (सत्यवक्ता पतिव्रता) ये सब भी नाम रूप विशेष के खोज में लगे रहते हैं। क्योंकि जब तक नाम रूप से नहीं निकलते हैं, तब तक इनके मन खोज से हार ही नहीं मानता है (निवृत्त

शान्त नहीं होता है) अतः वह मन ही सब को भटकाता है। अतः इस खोज से मन के हार माने के विना इस खोज भूल भटक से बड़े बड़े सिद्ध योगी आदि जीव भी नहीं बचते हैं। और मनो निग्रह विवेकादिपूर्वक सङ्गादि को त्यागने पर, निजात्मा के अनुभव से ही सब जीव निर्विशेष आनन्द पद को प्राप्त करते हैं। अतः सङ्गत्यागादि के लिये कबीर साहब पुकार कर कहते हैं—

"दौड़त दौड़त दौड़िया, जेतिक मन की दौर।
दौड़ि थके मन थिर भया, वस्तु ठौर की ठौर॥" (अंग की साखी)

इति संसारासारता वर्णन प्रकरण ११

अथ सत्यकर्ता विचार प्रकरण १२

रमैनी २६

आपुहि कर्ता भया कुलाला। बहु विधि वासन गढ़ै कुम्हारा॥
बिधि ने सबहि कीन्ह एक ठाऊँ। अनेक यत्न कै बने कनाऊँ॥

जिहि खोजत सुर नर मुनि, सो कर्ता सब काहि।
सर्वातम गत भेद सो, चित्र रचत जग माहि॥५७॥
देहादिक अभिमान तजि, ताका करत विचार।
सो जन लह सुख सुयश को, लहत मुक्ति सत सार॥५८॥

"आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत् किञ्चनमिषत् स ईक्षत लोकानु सृजा इति। ऐतरेय" सृष्टि से प्रथम यह सब संसार आत्मा ही में लीन था, इससे एक आत्मा ही था, क्रियायुक्त कुछ नहीं था, उस आत्मा ने विचार किया कि लोकों की सृष्टि करूँ। इत्यादि श्रुतियों के अनुसार, जो नाम रूपादि सब विशेषों (भेदों) से रहित आत्मा है, सो आप ही मनो माया द्वारा कुलाल के समान व्यष्टि-समष्टि जगत का कर्ता भया (हुआ) है। और वही कुम्भकार बहुत प्रकार के शरीर रूप वासन (घट) को गढ़ता है।

और प्रारब्ध कर्म काल ब्रह्मा रूप विधि ने यद्यपि माता-पिता देश आदि रूप सब साधनों को एकत्र (एक स्थान में) किया, और करता है। तथापि उस कर्ता के ही अनेक सत्ता प्रकाशादि रूप यत्नों से यह कनाऊँ (कुत्सित नाम वाला

कार्य रूप काया) बनकर तैयार हुआ और होता है। और क नाम वाला आत्मदेव बहुत यत्न से शरीरी बना तथा बनता है।

जठर अग्नि महँ दीन्ह प्रजारी। ता महँ आपु भये प्रतिपाली॥
बहुत यतन कै बाहर आया। तब शिव शक्ती नाम धराया॥

उक्त रीति से प्रथम मानस संकल्पमय रचना करके उस कच्चे घट को पकाने के लिये, भौतिक घट को रचने के लिये, कर्ता ने उस देह रूप घट को माता के जठरानल (गर्भस्थान) में प्रजार दिया (जलाया) और उसमें आप प्रतिपालक हुआ। क्योंकि—

"प्रजापतिश्चरति गर्भेऽन्तरजायमानो बहुधा व्यजायते।
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थु र्भुवनानि विश्वाः॥"
(शुक्लयजु० ३१।१९)

सर्वात्मा प्रजापति गर्भ में प्रवेश करता है, और वस्तुतः जन्म रहित होते भी भूतों में माया से बहुधा जन्मता है। उसके योनि (स्थान) को ज्ञानी जानते हैं। और उसमें सब भुवन स्थिर हुए हैं। इत्यादि[1] वेद भी उक्तार्थ को ही कहते हैं।

वह कर्ता ही गर्भ में पालकादि रूप से बस कर, फिर जन्मकाल में बहुत यत्न करके गर्भ से बाहर शरीर सहित आया, और आता है। तब शरीरी बनकर वह अपना ही शिव (पुरुष) और शक्ति (स्त्री) नाम धराया है। अर्थात् चिदाभासादि द्वारा एक सत्य चिदात्मा ही व्यावहारिक जीव रूप होकर अनन्त स्त्री पुरुषादि हुआ है। और वस्तुतः वह स्त्री पुरुषादि सब भेदों से रहित है। "न स्त्री न पुमानेषः।" (श्वेता० ५।११) इत्यादि।

घर के सुत जो होय अयाना। ताके संग न जाय सयाना॥
साची बात कही मैं अपनी। भया दिवाना और कि सपनी॥

जैसे घर का औरस पुत्र भी यदि अयान (अज्ञ अधर्मी पतित) कुमार्गी हो जाता है, तो उसके संग में सयान (विवेकी) धर्मात्मा पिता नहीं जाता है। तैसे ही अपनी आत्मा से शरीर इन्द्रियादि उत्पन्न हुए हैं, परन्तु ये अज्ञानमय दुःखद अपवित्र हैं। इनमें विवेकी आसक्त अभिमानी नहीं होते हैं। अविवेकी इनमें अभिमानादि करके दुःखी होते हैं।

---

१. एषो ह देवः प्रदिशोऽनुसर्वाः, पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः। (श्वेता० २।१६)

कबीर साहब कहते हैं कि इस प्रकार की मैंने अपनी सच्ची बात कही है कि निजस्वरूप कर्ता से जन्य यह देह होती है, सो अज्ञ पुत्र के समान संग करने योग्य नहीं है। और इसके संगादि के त्याग से मुक्ति होती है, इत्यादि। परन्तु संसारी जीव अन्य की स्वप्न तुल्य मिथ्या बातों को सुनकर दिवाना (उन्मत्त) हुआ है। अतः संगादि को नहीं त्यागता है, किन्तु मिथ्या देह कुल जाति आदि का अभिमान करता है।

गुप्त प्रगट है एकै दूधा। काको कहिये ब्राह्मण शूधा॥
झूठे गर्व भूलै मति कोई। हिन्दू तुरुक झूठ कुल दोई॥

जिस शरीर के अज्ञ अभिमानादि करते हैं, सो गुप्त (सूक्ष्म या गर्भस्थ) और प्रकट अवस्था में एकै दूध (जाति स्वभाव) वाले (माया अविद्यामय) या भौतिक रहते हैं। सब मानव देह की सब अवस्था में एक मानव जाति रहती है। तो शरीर दृष्टि से किसको शुद्ध ब्राह्मण कहा जाय। धर्म सदाचार ज्ञान आत्म दृष्टि से शुद्ध कहा जा सकता है। परन्तु जैसे श्वेतादि पाँच वर्ण (रंग) के गाय के दूध गुप्त प्रकट दोनों अवस्था में एक श्वेत स्वरूप रहता है, तैसे चार वर्ण और अन्त्यजादि के शुद्ध आत्मा भी एक स्वरूप रहता है। चाहे वह अज्ञ के हृदय में गुप्त हो ज्ञानी के हृदय में प्रगट हो, परन्तु आत्मा में विलक्षणता नहीं होती है। अतः न शरीर में शुद्ध-अशुद्ध जाति आदि का भेद है, न आत्मा में भेद है। किन्तु भेद सब अज्ञानादि से कल्पित हैं।

अतः कबीर साहब कहते हैं कि झूठी वस्तु देहादि के गर्व (अभिमान) करके कोई भी सत्यात्मा को नहीं भूलो। किन्तु सत्यात्मा राम के सदा स्मरण भजन करो, क्योंकि ब्राह्मणादि पाँच भेद के समान, हिन्दु और तुरुक ये दो कुल भी झूठ ही कल्पित हैं।

जिज्ञासा हुई कि सब भेद मिथ्या है, तो सत्य क्या है? क्योंकि किसी सत्याश्रय के विना मिथ्या की प्रसिद्धि नहीं हो सकती है, तब कहा गया है कि—

साखी—जिन यह चित्र बनाइया, साँचा सो सुत धारि।
कहहिं कबिर ते जन भले, चित्रहिं लेहिं विचारि॥२६॥

जिन (जिस) सर्वात्मा कर्ता ने अपनी माया शक्ति से यह संसार शरीर रूप चित्र को बनाया है, केवल वही सूत्रधारि (सर्वनियन्ता अन्तर्यामी) सत्य है।

अथवा हे सुत ! (शिष्य !) उस चित्रकार रूप सत्य का धारण (निश्चय) करो । कबीर साहब कहते हैं कि वे ही जन भले (सुखी मुक्त) होते हैं कि जो चित्र को विचार कर उस चित्रकार को लेते (आत्मस्वरूप से प्राप्त करते) हैं, निजात्मा चित्रकार को समझते हैं। अतः उसे समझना चाहिये । इत्यादि ॥२६॥

सम्बन्ध—प्रथम कुलाल रूप से कर्ता का वर्णन किया गया है । तहाँ ब्रह्मा आदि विषयक भ्रम की निवृत्ति के लिये । और "यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम् ।" (श्वेत० ६।१८) जो ब्रह्मा को प्रथम सिद्ध करता है—

"यस्माद् विष्ण्वादयो देवाः सूर्यादिव मरीचयः ।
यस्माज्जगन्त्यनन्तानि बुद्बुदा जलधेरिव ॥" (योगवा० ३।५।७)

जिससे विष्णु आदि देव सूर्य से किरण के समान होते हैं। और जिससे समुद्र के अनन्त बुदबुद के समान अनन्त संसार होते हैं। उस एक सर्वात्मा सत्य-कर्ता को समझाने के लिये कहते हैं कि—

रमैनी २७

ब्रह्मा को दीन्हों ब्रह्मण्डा । सात द्वीप पुहुमी नव खण्डा ॥
सत्य सत्य कै विष्णु दिढ़ाई । तीनि लोक महँ राखिन जाई ॥

सर्वातम जगदीश इक, देत सबहि अधिकार ।
पालत सो सबको सदा, करत विविध विस्तार ॥५९॥

उक्त मायी सर्वज्ञ कर्ता (ईश्वर) ने ब्रह्मा को ब्रह्माण्ड में जन्म दिया । और सात द्वीप नव खण्ड युक्त पुहुमी (भूमि) आदि में रचना कार्य विशेष का अधिकार दिया । "हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वम् ।" (श्वेता० ३।४) इत्यादि और सत्यनाम वाले विष्णु को लोक में सत्य पालक रूप से दृढ़ाया (निश्चय कराया) और रखा, कि जिससे विष्णु तीन लोक में बार बार जन्म लेकर जाते हैं (अवतार लेते हैं)।

लिङ्ग रूप तब शङ्कर कीन्हा । धरती खिला रसातल दीन्हा ॥
तब अष्टाङ्गी रची कुमारी । तीनि लोक मोहिन सब झारी ॥
द्वितिय नाम पारवती भयऊ । सो कर्ता शङ्कर कहँ दयऊ ॥

उक्त ब्रह्मा और विष्णु को विभूति मिलने पर, पुराण के अनुसार उन्हें स्वतन्त्र कर्तृता का अभिमान हो गया, और परस्पर विरोध हो गया । तब कर्ता

ने उनके अभिमानादि की निवृत्ति के लिये लिङ्ग रूप ज्योतिर्मय शंकर को रचा और रसातल तक धरती (भूमि) में उस लिङ्ग की खिला (कील) गाड़ दिया।

फिर सुन्दर आठ अङ्ग वाली अष्टाङ्गी नामक तथा सती नामक कुमारी को कर्ता ने दक्ष प्रजापति के द्वारा रचा। उस कुमारी ने त्रिलोकवासी सब देवादि को मोहित किया। वही कुमारी दूसरे अवतार में पारवती नामवाली हुई। तब कर्ता ने शङ्कर के प्रति उसका प्रदान किया। इस प्रकार यह सब लीला एक ईश्वर से ही होती है। अतः ब्रह्मा आदि अनेक ईश्वर नहीं हैं। किन्तु—

एक ही पुरुष एक है नारी। ताते रची खानि भौ चारी॥
शर्मन वर्मन देव औ दासा। सत रज तम गुण धरती अकाशा॥

इस पूर्व कही रीति से एक ही सर्वात्मा स्वतन्त्र पुरुष है। और उसकी शक्ति रूप माया नाम वाली नारी भी एक है। उन दोनों से ही रचना होने से अण्डजादि चार खानि हुई है।

शर्मा उपाधिवाले ब्राह्मण, वर्मा उपाधिवाले क्षत्रिय, देव उपाधिवाले वैश्य और दास उपाधिवाले शूद्र (सेवक) उस एक कर्ता से हुए हैं। और सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण के विस्तार पृथिवी से आकाश (स्वर्गादि पर्यन्त) सब विस्तार एक ही मायी कर्ता से हुआ है।

साखी—एक अण्ड ओंकार ते, सब जग भया पसार।
कहहिं कबिर सब नारि के, अविचल पुरुष भतार॥२७॥

एक ओंकार (मायी परब्रह्म) से अनन्त अण्ड (ब्रह्माण्ड) और सब जगत का पसार (विस्तार) भया हुआ है। अतः कबीर साहब कहते हैं कि सब नारी (परतन्त्र) ब्रह्मा से तृण पर्यन्त जीव का एक ही अविचल (निष्क्रिय) अविनाशी पुरुष भर्ता (पोषणकर्ता) है, अनेक नहीं॥२७॥

सम्बन्ध—घट तुल्य ब्रह्माण्ड और शरीरों का जो कुम्भकार तुल्य कर्ता है, सोई पट तुल्य विस्तारों का जुलाहे तुल्य कर्ता है, अन्य नहीं, इत्यादि आशय से कहते हैं कि—

रमैनी २८

अस जुलहा का मर्म न जाना। जिन जग आनि पसारिन ताना॥
धरति अकाश द्वि गाड़ खनाया। चान्द सूर्य दो नरी बनाया॥

उत्पत्ति प्रलयादि जो, करत कुबिन्द समान।
तिहि निज पद जाने बिना, भूला सकल जहान॥६०॥

उक्त अविचल कर्ता ऐसा अद्भुत जोलहा है, कि जिसके मर्म (रहस्य) को बड़े बड़े लोगों ने भी नहीं जाना। और जिन (जिस) ने जगत ताना (विस्तार) को आनि (ला) कर प्रत्यक्ष ही पसारा (फैलाया) है। भूत भौतिक संसार को रचा है। तो भी उसके मर्म को लोग नहीं जान सके।

अथवा जिन लोगों ने सकाम कर्मादि के ताना को जगत में आकर ताना (फैलाया) उन लोगों ने इस भर्ता रूप जुलाहे के मर्म को नहीं जाना।

उस जुलाहे ने धरती और आकाश (स्वर्ग) दो गाड़ खनाया है। और अध्यात्म अधिदैव चन्द्र, सूर्य रूप दो दो नरी बनाया है। (कपड़ा बुनने के समय जिसमें पैर देकर पैरों से यन्त्र को चलाया जाता है, उसको गाड़ कहते हैं। और सूतों के आधार को नरी कहते हैं)।

सहस तार लै पूरिन पूरी। अजहूँ बिनै कठिन है दूरी॥
कहहिं कबीर कर्म से जोरी। सूत कुसूत बिनै भल कोरी॥२८॥

उस कर्ता ने सहस (अनन्त) तारों को लेकर आकाश रूप पूरी (थान) को पूर्ण किया है। और श्वास-प्रश्वास रूप प्राणों से शरीर को पूर्ण किया है। और अनादिकाल से अजहूँ (अबतक) बीन रहा है। आगे कठिन दूर काल पर्यन्त बीनना है। मुक्त के लिये पट नहीं बीना जाता है। अन्य के लिये सदा बिनाई होती है।

कबीर साहब कहते हैं कि जीवों के कर्मों से ही टूटे हुए तन्तुओं (प्रवाहों) को जोड़कर वह कोरी (जुलाहा) सूत-कुसूत सभी को भलीभाँति से ही बिनता

है (सुकर्म-कुकर्म के अनुसार सब शरीर को सावधानी से रचता है। उसकी रचना में तनिक भी भूल भ्रमादि नहीं होते हैं) ॥२८॥

इति सत्यकर्ता विचार प्रकरण १२

अथ सत्यकर्ता के ज्ञान बिना भ्रमादि प्रकरण १३

रमैनी २९

यहि विधि कहौं कहा नहिं माना। मारग माहिं पसारिन ताना॥
रात दिवस मिलि जोरिन तागा। ओटत काटत भरम न भागा॥

ज्ञानपन्थ इमि कहत गुरु, चलत न तहाँ कुलोग।
चलत सन्त सन्तोष गहि, लहत शान्ति सुख योग ॥६१॥

कबीर साहब कहते हैं कि मैं इस पूर्व कही रीति से एक सत्यकर्ता की बात को सदा कहता हूँ। जिन लोगों ने इस कहा हुआ उपदेश को नहीं माना, उन लोगों ने सांसारिक गमनागमन के मार्गों में काम्य-कर्मादि रूप ताने को पसारा (जन्मादि के हेतु रूप सांसारिक कर्म किया और करते हैं)।

और अपने परिवार विषयादि से मिलकर के ही (संग आसक्ति पूर्वक ही) कर्मादि तागों को रात-दिन मिल-मिलकर जोड़ते हैं। तथा ओटते-काटते (खण्डन-मण्डन वाद-विवादादि करते) हैं। परन्तु असङ्गतापूर्वक एक सर्वात्मा राम के भजन विचारादि के अभाव से, इनका संशय भ्रमादि नहीं भागा है, न भाग सकता है।

भरमा सब घट रहल समाई। भरम छोड़ि कतहूँ नहिं जाई॥
परै न पूरि दिनहुँ दिन छीना। तहँई जाय जहँ अङ्ग बिहीना॥
जो मत आदि अन्त चलि आया। सो मत सब उन प्रगट सुनाया॥

भ्रम के नहीं भागने से सब के घट (हृदय) में समाय कर भ्रम ही रह गया (मिथ्या वस्तु सत्यरूप निश्चित हो गया) अतः यह भ्रान्त पुरुष भ्रम को छोड़कर कहीं सत्संगादि में नहीं जाता है। अतः सत्य ज्ञानादि के अभाव से इसको कभी पूर नहीं पड़ता है। (पूर्ण तृप्ति नहीं होती है)।

किन्तु कुसङ्ग तृष्णादि से दिनो-दिन (सदा) यह क्षीण (नष्ट) होता जाता है। उस अवस्था में भी वहाँ ही जाता है कि जहाँ ज्ञान-ध्यानादि के अङ्ग (साधनों) से विहीन (विवेकादि से रहित) अभिमानी दम्भी आदि रहते हैं।

फिर जो (जिस) मत (धर्म-ज्ञानादि) से इन जीवों के आदि अन्त (जन्म-मरण) होते चले आ रहे हैं। वही राग-द्वेषादि मय मत, उस अज्ञ ने इन्हें प्रगट करके सुनाया और समझाया (सत्य भेद राग-द्वेषादि को निश्चित कराय दिया)।

साखी—वह संदेश फुर मानेहु, लीन्हों शिरहिं चढ़ाय।
सन्तो है सन्तोष सुख, रहु तो हृदय जुड़ाय ॥२९॥

उस परलोक स्वर्गादि के संदेश (मिथ्या नित्यत्वादि उपदेश) को तुमने फुर (सत्य) मान लिया और शिर ही पर चढ़ाय लिया (उसकी आशा-तृष्णादि को शिरोधार्य कर लिया) जिससे आशा आदि की वृद्धि से शोकादि द्वारा हृदय तपता है। और हे सन्तो ! सन्तोष ही सुखरूप है, अतः एक सर्वात्मा को सत्य समझकर, अनेक वस्तु की आशा-तृष्णादि को त्याग कर यदि विचारादि से सन्तुष्ट रहो, तो अबही हृदय जुड़ाय (शान्त शीतल हो जाय) ॥२९॥

रमैनी ३०

वे भूले षट दर्शन भाई। पाखण्ड वेष रहा लपटाई ॥
जीव शीव का आहिं नशौना। चारो बद्ध चतुर्गुण मौना ॥

असन्तोष दुख मूल है, पाखण्डहु दुख मूल।
मानत नहि सद्गुरु वचन, पाखण्डी सह शूल ॥६२॥

हे सन्तो ! भाई ! विवेकादि रूप ज्ञानाङ्ग से रहित वे षट दर्शनी भी मिथ्या में भूले (आसक्त) हैं कि जिनमें पाखण्डरूप वेष ही लिपटाय रहा है। अतः जिनको एक सत्यामा का ज्ञान नहीं है, सो पाखण्डरूप वेष में लिपटे (फँसे) हैं।

और वह पाखण्डरूप वेष अभिमान दम्भादि जीवों के शिव (शुभ) को नष्ट करनेवाला है। और शुभ के नष्ट होने से जीव अण्डजादि चारो खानों में बद्ध (बन्धनयुक्त) होते हैं। उनमें भी जो जीव शरीर जन्य दोष से मौन (मूक स्थावर) खान में प्राप्त होते हैं, सो अन्य की अपेक्षा चतुर्गुण बन्धनयुक्त होते

हैं। वहाँ से निकलना अति कठिन हो जाता है। तथा योगी आदि चार बद्ध होते हैं। और मौन (अनीश्वरवादी) चतुर्गुण बन्धनयुक्त होते हैं—

'शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः। वाचिकैः मृगपक्षितां मानसैरन्त्यजातिताम्।'

शरीर जन्य कर्मरूप दोष से मनुष्य स्थावरता को पाता है। वाचनिक दोष से मृग पक्षि होता है। मानस से अन्त्यज होता है।

जैनी धर्मक मर्म न जानै। पाती तोरि देव घर आनै॥
दवना मरुआ चम्पक फूला। मानहु जीव कोटि सम तूला॥

एक सत्यामा के विवेकादि से रहित जैनी परमधर्म के मर्म को नहीं जानता है। अतः सजीव वृक्ष की पत्तियों को तोड़कर निर्जीव देव के घर (मन्दिर) में लाता है। और निर्जीव मूर्तियों पर चढ़ाता है।

और दवना मरुआ चम्पा के फूल तो मानो करोड़ों जीव के समतुल्य (समान) रहते हैं। या जैनी उन्हें करोड़ों जीवतुल्य मानते हैं। तो भी अहिंसा धर्म को माननेवाले जैनी उन्हें तोड़ लाते हैं, अतः धर्म के मर्म को नहीं जानते हैं।

औ पृथिवी के रोम उपारै। देखत जन्म आपनो हारै॥
मनमथ बिन्दु करै असरारा। कलपै बिन्दु खसै नहिं द्वारा॥
ताकर हाल होय अदभूता। छौ दर्शन महँ जैनि बिगूता॥

और पार्थिव देह के रोमों को जैनी उखाड़ते हैं। तथा पृथिवी के रोमरूप वनस्पतियों को उखाड़ते हैं। तहाँ जीव को कष्ट देते हुए भी धर्म मानते हैं। अतः अहिंसा को धर्मरूप देखते (मानते) रहने पर भी मर्म के ज्ञान के बिना कुमार्ग में अपने जन्म को हारते (नष्ट करते) हैं। और वज्रोली मुद्रा आदि के प्रेमी जैनी मनमथ (काम) के बिन्दु के साथ ऐसा रार (हठ) करते हैं कि जिससे बिन्दु कलपता (क्षुब्ध होता) है, परन्तु लिङ्ग द्वार से योनि में गिरने नहीं पाता है। इस प्रकार के जैनियों का और उनके बिन्दु का अद्भुत (विचित्र) हाल होता है। अतः छः दर्शनों में अनीश्वरवादी यह जैनी अपने कल्याण को अधिक बिगोता (गमाता) है।

साखी—ज्ञान अमर पद बाहरे, नियरे ते है दूर।
जानै ताको निकट है, अनजाने को दूर॥२०॥

अपनी मांया शक्तिसे सब का कर्ता होता हुआ भी शुद्ध ज्ञान स्वरूप आत्मा ही अमर पद (अविनाशी स्थान) है। और उसका ज्ञान (अपरोक्ष अनुभव) अमर पद (मोक्ष मार्ग) है। परन्तु जो जीव उस अमर पद से बाहर हैं, उसके ज्ञान से रहित हैं, सो नियरे (पास की वस्तु) से ही दूर हैं। अतः वे ऊपर दूर देश में मोक्ष स्थान का वर्णन करते हैं।

परन्तु जो सत्य मोक्ष स्थान को जानता है, उसके लिये वह मोक्ष स्थान अत्यन्त निकट स्वरूप ही है। अनजान (अज्ञ) के ही लिये दूर है—
"दूरात्सुदूरे तदिहान्तिके च, पश्यत्स्विहैव विहितं गुहायाम् ।" (मुण्डक ३।१।७) तद्दूरे तद्वन्तिके। (ईशो० ५) ॥ ३० ॥

रमैनी ३१

बज्रहुँ ते तृण क्षिण महँ होई। तृणते बज्र करै पुनि सोई॥
निझरू नीरुजानि परिहरिया। कर्मक बाँधल लालच करिया॥

अज्ञान से दूर ज्ञान से निकटवर्ती कर्ता से ही बज्र तुल्यदुर्भेद्य संसार प्रलय के आरम्भ काल में बज्र से तृण तुल्य क्षण मात्र में हो जाता है। और फिर वही कर्ता सृष्टि के आदि काल में तृण से बज्र करता है। अतः संसार उत्पत्ति नाश वाला है और कर्ता अचल अनादि है।

उस निझरू (अविनाशी अखण्ड आनन्द नीर के झरना वर्षा वाले ब्रह्मात्मा को नीरुजानियों (निर्गत ज्ञान वाले अज्ञानियों) ने सर्वथा त्याग दिया। और काम कर्मादि से बँध कर, कर्माधीन मिलने वाले तुच्छ विषयादि का लालच (लोभ) किया, और करते हैं। अतः सत्यात्मा के विचारादि नहीं करने पाते हैं।

कर्म धर्म मति बुधि परिहरिया। झूठी नाम साँच लै धरिया॥
रजगति त्रिविध कीन्ह प्रकाशा। कर्म धर्म बुधि केर विनाशा॥

उक्त लोभ से सात्त्विक कर्मादि रूप स्वधर्म का और भावी हित की मति (ज्ञान) का और वर्तमान हित की बुद्धि (ज्ञान) का त्याग किया। और झूठी (मिथ्या) नाम मात्र विकारात्मक वस्तु को सत्य नाम लेकर धारण किया।

फिर उत्तम मध्यम और कनिष्ठ तीन प्रकार की राजसी गति का प्रकाश किया, कि जिससे सात्त्विक कर्मरूप धर्म और बुद्धि (एकात्म ज्ञान) ज्ञानका नाश हुआ, अलाभ हुआ।

भाव है कि मनुस्मृति अ० १२ में गुणों के लक्षण और गुण कृत गतियों का वर्णन है। तहाँ तामस गति, स्थावर कृमि कीटादि भाव को यद्यपि मनुष्य नहीं चाहते हैं, तथापि युद्ध, अपेयपान, राज्य, विवाद, गान, तुच्छ देव भावादि रूप तीन प्रकार की राजसी गति चाहते हैं, कि जिससे तप, त्याग, वैराग्य, धर्म आत्मविचार, ज्ञान, शौच, सन्तोष, शमदमादि सात्त्विक गति गुण धर्म का अभाव हो जाता है—"बुद्धिस्तात्कालिकी ज्ञेया मतिरागामि गोचरा" इस कोश के अनुसार वर्तमान विषयक ज्ञान को बुद्धि और भावी विषयक को मति कहते हैं।

रवि के उदय तार भौ छीना। चर बीहर दूनों महँ लीना॥
विष के खाये विष नहिं जावै। गारुड़ सो जो मरत जिआवै॥

जैसे रवि (सूर्य) के उदय से तारे क्षीण हो जाते हैं, वैसे ही राजस तामस प्रवृत्तियों से रज गति के प्रकाश से सात्त्विक कर्म धर्म और ज्ञान के नष्ट होने पर जीव सब चर (जङ्गम) और बीहर (कठिन बन्धन युक्त स्थावर) इन दोनों योनियों में ही लीन (प्राप्त) हुए और होते हैं।

क्योंकि जैसे विष के खाने से प्रथम खाये हुए विष की निवृत्ति नहीं होती है। प्रथम के विष की नशा (वेग) फिर विष के खाने से नहीं जाती है। वैसेही राजसी प्रवृत्ति भोगादि से प्रथम के भोगादिजन्य काम वासना तृष्णा आदि निवृत्त नहीं होते हैं। जिससे चराचर योनियों में भ्रमण रूप कष्ट होता है। तहाँ जैसे विष से मरते हुए को जो मन्त्रादि द्वारा जिलाता है (मरने से बचाता है) सो गारुड़ कहा जाता है। वैसेही विषय वासना आदि से बार-बार मरते हुए को मुक्त सुखी करनेवाले ज्ञानी महापुरुष को गुरु आचार्य कहा जाता है, अन्य को नहीं।

साखी—अलख जु लागा पलक में, पलकहि में डँसि जाय।
विषहर मन्त्र न मानये, गारुड़ काह कराय॥३१॥

परन्तु गारुड़ी भी साध्य विषको ही मन्त्रादि द्वारा निवृत्त करता है, नेत्रादि मर्म स्थान में साँप के काटने पर, वह साँप का विष असाध्य होता है। उसको गारुड़ी भी निवृत्त नहीं कर सकता है वैसे ही अविवेकियों से अलख (अज्ञेय अचिन्त्य) जो माया विषयादि रूप सर्प रजोगुण का प्रभाव है, सो जिनके पलक (नेत्र) में लगा, हृदय में लगा और उनके नेत्र या हृदय में पलमात्र काल में ही डँसकर चल गया (विषयादि नष्ट भी हो गये) परन्तु उनके काम वासना आदि से

व्याकुल यह जीव यदि सद्‌गुरु के विषहारक (नाशक) मंत्र को नहीं मानता है, तो सद्‌गुरुरूप गारुड़ भी उसको क्या कर सकते हैं ? वह जन्मादि संसार से नहीं उबरता है। अतः राजसी प्रवृत्ति आदि के त्यागपूर्वक प्रथम कुकाम वासनादि की निवृत्ति के लिये सत्सङ्गादि कर्तव्य है ॥३१॥

इति सत्यकर्ता के ज्ञान बिना भ्रमादि निरूपण प्रकरण १३

अथ ज्ञान के बिना दुर्दशा प्रकरण १४

रमैनी ३२

सुस्मृति आहिं गुणन के चीन्हा । पाप पुण्य का मारग कीन्हा ॥
सुस्मृति वेद पढ़ै असरारा । पाखण्ड रूप करै हँकारा ॥

जैसे गुरु उपदेशादि से कठिन काम वासना आदि नहीं निवृत्त होते हैं। वैसे ही वेदशास्त्र के पढ़ने से भी नहीं निवृत्त होते हैं। अतएव जो सुन्दर स्मृतियाँ (धर्मशास्त्र) शम-दमादि अहिंसा आदि रूप सद्‌गुणों (सद्धर्मों) को चिन्हाने वाली हैं। और जिन स्मृतियों ने पाप-पुण्य के मार्गों का विवेक कर दिया है, कि जिससे मनुष्य पाप मार्ग को त्यागकर, पुण्य मार्ग में ही निरन्तर चल सके।

उन स्मृतियों और वेदों को भी असरारा (निरन्तर=सदा) जो पढ़ते हैं, सो भी पाखण्ड स्वरूप का धारण करते हैं। और पाखण्डरूप वेषादि का ही अहंकार करते हैं। अथवा स्मृति वेद को पढ़ने वाले भी अस (ऐसा) रार (हठी क्रूर शठ) होते हैं, कि जिस हठ से पाखण्डरूप का धारण और अहंकार करते हैं। अतः

ज्यों सद्‌गुरु उपदेश ते, पाखण्डिहि नहिं ज्ञान।
त्यों सतशास्त्र विचार ते, लहत न आतम भान ॥६३॥

पढ़ै वेद औ करै बड़ाई । संशय गाँठि अजहुँ नहिं जाई ॥
पढ़ै सत्य से जिव बध करई । मूड़ काटि अगमन के धरई ॥

और अत्यन्त काम वासना आदि के वशवर्ती मनुष्य वेद को पढ़ता है, निषिद्ध भी अपनी बड़ाई आप करता है, परन्तु संशय, भ्रम और कामादिरूप गाँठि (ग्रन्थि बन्धन) उसके हृदय से अजहुँ (अब भी) नहीं जाते (छुटते) हैं।

अतएव जो सुस्मृति वेद रूप सत्य शास्त्र को पढ़ता है तथा सत्य नाम वाले विष्णु के नामों को जपता है, अहिंसादि महाव्रतों को जानता है, सो भी जीवों का वध तुच्छ स्वार्थ के लिये करता है। और बकरे आदि के शिरों को काट कर अपने आगे धरता है।

साखी—कहहिं कबिर ई पाखण्ड, बहुतक जीव सताव।
अनुभव भाव न दरशये, जियत न आपु रखाव॥३२॥

कबीर साहब कहते हैं कि ये पाखण्डी लोग बहुत जीव को सताते (पीड़ित करते) हैं। और वेदादि को पढ़ने पर भी इनमें सत्य धर्म दया दमादि के तथा आत्मा के अनुभव का भाव (सत्त्व) नहीं दीखता है, अतः जियते जी ये लोग अपनी रक्षा आप नहीं करते हैं, अन्य की रक्षा तो क्या करेंगे। मिथ्या आशा तृष्णा में अनुभव के विना लगे रहते हैं।

माया मल वश जीव सब, तजत ज्ञान विज्ञान।
मोह मद्य का पान कर, सतगुरु मन्त्र न मान॥६४॥३२॥

सम्बन्ध—वेद शास्त्र के पढ़ने पर भी संशयादि नहीं नष्ट होते हैं, इसमें क्या कारण है? क्या शास्त्र में कोई दोष है, या पुरुष में ही दोष रहते हैं कि जिससे पढ़ने पर भी संशयादि नहीं नष्ट होते हैं। ऐसी जिज्ञासा होने पर पुरुष के दोषों को दर्शाने के लिए कहा गया है कि—

रमैनी ३३

अन्ध सो दर्पण वेद पुराना। दर्वी काह महारस जाना॥
जस खर चन्दन लादे भारा। परिमल बास न जानु गमारा॥
कहहिं कबिर खोजै असमाना। सो न मिला जु जाय अभिमाना॥

बिनु विवेक अज्ञान से, अन्ध तुल्य जो लोग।
उनको वेद पुराण पढ़ि, नहीं ज्ञान नहि योग॥६५॥

अन्धों के प्रति दर्पण के समान, पाखण्डी अविवेकी अभिमानियों के प्रति वेद पुराणादि सत शास्त्र भी व्यर्थ होते हैं। और दर्वी (कलछी) जैसे षड्रस युक्त भक्ष्यादि पदार्थों में घूमने पर भी भक्ष्यादि के रसों को नहीं जानती है। वैसे जड़

बुद्धि वाले अभिमानी शास्त्र वर्णित महारस (ब्रह्मानन्द) को अमानिता आदि को क्या जान सकता है।

उसकी तो ऐसी दशा है कि जैसे गदहे पर चन्दन का भार (बोझ) लादा हो, तो वह गमार (अज्ञ) गदहा परिमल (चन्दन) की सुगन्ध को नहीं जानता है, भार मात्र को जानता है। तैसे अविवेकी बोझ तुल्य शास्त्र को जानता है। उसमें वर्णित सत्य धर्म आत्मानन्द को नहीं समझता है।

कबीर साहब कहते हैं कि आत्मानन्द के अज्ञान से ही शास्त्र के अध्येता वक्ता भी असमान (शून्य आकाशरूप स्वर्गादि) में आनन्द खोजते हैं, स्वर्गादि के लिये कर्मादि करते हैं। और यहाँ हृदयस्थ समरस सो चिन्तामणि उन्हें नहीं मिला, कि जिसके मिलने मात्र से अभिमान दम्भ हिंसा आदि समूल नष्ट हो जायँ और जीवन्मुक्ति की प्राप्ति हो जाय।

या अस (ऐसे) लोग मान (प्रतिष्ठा गौरव) खोजते हैं। क्योंकि वह तत्त्व उनको नहीं मिला कि जिससे मानादि की इच्छा तृष्णा चली जाय इत्यादि॥२३॥

रमैनी २४

वेद की पुत्री स्मृती भाई। सो जेवँरि कर लेतहिं आई॥
आपुहिं बरि आपन गर बन्धा। झूठी मोह काल के फन्दा॥

सुन्दर स्मृति और वेदादि तो दर्पण के समान हैं। परन्तु हे भाई! वेद की पुत्री मानी गई वस्तुतः लोभाज्ञानादि मूलक बहुत स्मृतियाँ भी ऐसी हैं, कि जो स्मृतियाँ मानो जीवों को बाँधने के लिये अपने कर (हाथ=वाक्य) में जेवँरी (कर्म कामादि रस्सी) लेते ही आई है। स्मृति कहती है कि (कर्मणा बध्यते जन्तु-र्विद्यया तु विमुच्यते। तस्मात्कर्म न कुर्वन्ति यतयः पारदर्शिनः (म० भा०) काम्य कर्म से प्राणी बँधता है, आत्मज्ञान से मुक्त होता है। अतः पारदर्शी (ज्ञानी) यति कर्म नहीं करते हैं।

और बन्धन प्रद उन स्मृति रूप वाक्यों को मनुष्यों ने बरिकर (रचकर) या स्वीकार करके अपने गलों में मोह से आप बाँधा है। और मोह वश काल फाँस की झूठी कल्पना की है। तथा उन स्मृतियों से जो झूठी वस्तुओं में झूठी बातों में मोह (आसक्ति आदि) होता है। सो इन जीवों के लिये काल के फन्द रूप होता है।

बाँधत बन्धन छोरि न जाई । विषय स्वरूप भूलि दुनिआई ॥
हमरहि दिखत सकल जग लूटा । दास कबीर राम कहि छूटा ॥

और यह जीव ऐसा दृढ़ बन्धन बाँधता है, कि जो फिर छोड़ा (खोला त्यागा) नहीं जा सकता है । और बन्धन के नहीं खुलने से विषय स्वरूप (देहाभिमानी विषयासक्त) होकर दुनिआई (सांसारिक व्यवहार मात्र) में भूला (फँसा) रहता है । तथा विषय स्वरूप दुनिआई में भूल कर विषयी (प्रकाशक) अपने स्वरूप को नहीं जानता है ।

अतः सांसारिक वस्तुओं को हमारी हमारी समझते समझते में ही सब संसारी कामादि से लूटे गये । तथा हमलोगों को देखते में लूटे गये । कबीर साहब कहते हैं कि कोई विरल दास (हरिगुरु भक्त) ही, रामादि निर्मल नामों को जप कर बन्धन कामादि से छूटा और छूटता है, कि जो निष्काम जपादि से ज्ञान को प्राप्त करता है ।

साखी—रामहि राम पुकारते, जिह्वा परिगो रौस ।
सूधा जल पीवै नहीं, खोदि पिवन की हौस ॥ ३४ ॥

रामादि जप कर सर्वथा निष्काम जीव तो ज्ञान पाकर मुक्त हो गये । परन्तु जिनको इस लोक के विषयादि की कामनाओं के निवृत्त होने पर भी परलोक के विषयादि की कामनायें बनी रह गईं तथा निज हृदयवर्ती सर्वात्मा राम को जिन्हों ने नहीं समझा, किन्तु दूरवर्ती तटस्थ राम को माना, उनलोगों को राम ही राम पुकारते में जिह्वा में रौस (आदत ठेला) पड़ गया। अतः दूर के समान सदा राम को पुकारते हैं, हृदय में नहीं समझते हैं ।

अतः सब तापों को शान्त करने वाला शुद्ध अमृत स्वरूप सुगम उपाय से लभ्य अनायास उपस्थित जल को नहीं पीते हैं (आत्मानन्द का अनुभव नहीं करते हैं) किन्तु कर्मादिकुद्दाल से खोद कर स्वर्ग पाताल के जल (सुख) को पीने (भोगने) की हौस (इच्छा) करते हैं किसी प्रकार आत्मानुभव किया जाय तो सब इच्छा निवृत हो सकती है, अन्यथा नहीं ॥ ३४ ॥

इति ज्ञान के बिना दुर्दशा प्रकरण १४

अथ मोक्ष स्थानाभाव प्रकरण १५

रमैनी ३५

पढ़ि पढ़ि पण्डित करु चतुराई । निज मुक्ति मोहि कहु समुझाई ॥
कहँ बस पुरुष कहाँ सो गाँऊ । पण्डित मोहि सुनावहु नाँऊ ॥

मोह मिटै बिनु मुक्ति नहिं, पढ़े वेदहूँ चार ।
दान पुण्य से होत का, जो नहिं सत्य विचार ॥६६॥

राम (परमात्मा) को दूर मानने वाले पण्डितों के प्रति कहते हैं, कि हे पण्डितों ! पढ़ पढ़ कर आप चतुराई भले ही करो, परन्तु अपनी मुक्ति भी तो मुझे समझा कर कहो ।

कि उस मुक्ति के दाता वह पुरुष कहाँ बसता है, उसका वह ग्राम कहाँ है । हे पण्डित ! सो नाम मुझे सुनाओ । अर्थात् अनेक मतवादी अनेक लोकों की कल्पना करते हैं । सर्व सम्मत कोई लोक ग्राम नहीं कह सकते हैं । अतः—

"मोक्षस्य न हि वासोऽस्ति न ग्रामान्तरमेव वा ।
अज्ञानहृदयग्रन्थिनाशो मोक्ष इति स्मृतः ॥"

मोक्ष का वास या ग्रामान्तर कहीं नहीं है, किन्तु ज्ञान से अज्ञान काम मोहादि हृदय ग्रन्थियों का नाश ही मोक्ष है, यही सिद्धान्त ठीक है ।

चारि वेद ब्रह्मा निज ठाना । मुक्तिक मर्म उनहुं नहिं जाना ॥

लोक पितामह ब्रह्मा जी ने चार वेदों को ठाना (रचा स्मरण आरम्भ किया) परन्तु तटस्थेश्वर वादियों के कल्पित मुक्तियों (सालोक्यादि) के मर्म को ब्रह्मा जी ने भी नहीं जाना ।

अर्थात् उन्होंने—"विमुक्तश्च विमुच्यते । अत्र ब्रह्म समश्नुते ॥"
(कठ० २।५।१=२।६।१४)

इत्यादि श्रुति के अनुसार जीवन्मुक्ति पूर्वक विदेहमुक्तिरूप ब्रह्मरूपता की प्राप्ति को यहाँ वर्तमान लोक में ही बताया है । तथा सद्गुरु और विचारादि के बिना ब्रह्मा भी मुक्ति के मर्म को नहीं जान सके । किन्तु माता के उपदेश पूर्वक विचारादि से जान सके । अतः सद्गुरु पूर्वक विचारादि कर्तव्य हैं । और यदि ब्रह्मा भी मरने ही पर मुक्ति मानते हों, तो समझो कि मुक्ति के मर्म को उन्होंने भी नहीं पाया इत्यादि ।

दान पुण्य उन बहुत बखाना । अपने मरण कि खबर न जाना ॥
एक नाम है अगम गँभीरा । तहँवा अस्थिर दास कबीरा ॥

आश्चर्य है कि मरने पर फल देनेवाले दान पुण्य कर्मादि का उन (ब्रह्माजी) ने बहुत व्याख्यान किया, तो क्या अपने मरने पर होने वाली मुक्तियों की खबर को वे भी नहीं जानते थे ।

एक अद्वितीय नाम वाला विभु चेतनदेव बाह्यइन्द्रियों से अगम्य अग्राह्य और गम्भीर है (अथाह अपार है) तहँवा (उस देव में) ये देवादि के दास (भक्त) कबीरा (जीव) अस्थिर (प्राप्ति स्थिरता से रहित) रहते हैं, अतः मरने ही पर मुक्ति मानते हैं ।

साखी—चिउँटी जहाँ न चढ़ि सकै, राई नहिं ठहराय ।
आवागमन कि गम नहीं, तहाँ सकल जग जाय ॥३५॥

उक्त अगम गम्भीर विभु सर्वात्मा के निरवयव अति सूक्ष्म सर्वात्मा होने से, जिस में चींटी भी नहीं चढ़ सकती है, न राई ठहर सकती है । न जिसमें किसी के आवागमनादि हो सकते हैं ।

तहाँ सुषुप्ति काल में सब संसारी जीव प्रतिदिन जाते हैं । परन्तु अज्ञान से संसारी बने रहते हैं और जाकर लौट आते हैं। श्रुति कहती है कि (सता सोम्य तदा सम्पन्नो भवति सति सम्पद्य न विदुः सति सम्पद्यामहे । छा० ६।८-६।१ । सर्वाः प्रजा अहरहर्गच्छन्त्य एतं ब्रह्मलोकं न विन्दन्ति । छा० ८।३।२) हे सोम्य ! उस सुषुप्ति में सत् ब्रह्मरूप से जीव सम्पन्न (मिलित) होता है । सत में प्राप्त होकर सब जानते नहीं हैं कि सत्य में प्राप्त हो रहे हैं । इस ब्रह्म स्वरूप लोक में प्रतिदिन जाती हुई भी सब प्रजा इस ब्रह्मलोक को प्राप्त नहीं करती है, अज्ञान से ब्रह्म अप्राप्त ही रहता है । ज्ञान पूर्वक उसकी प्राप्ति रूप मुक्ति को समझे बिना विद्वान् भी दूर की आशा आदि करते हैं, तो अन्य की बात ही क्या कहना है॥३५॥

इति मोक्ष स्थानाभाव प्रकरण ॥१५॥



अथ अज्ञानज मिथ्याहंकार प्रकरण १६

रमैनी ३६

पण्डित भूले पढ़ि गुणि वेदा । आपु अपन पौ जानु न भेदा ॥
संध्या तर्पण औ षट कर्मा । ई बहु रूप करहिं अस धर्मा ॥

सुषुप्ति में सब संसारी जीव जिस सत में प्राप्त होते हैं, वह सत ब्रह्म यदि दूर हो तो ऐसा हो नहीं सकता है। अतः वह सत पर ब्रह्म सर्वात्मा है। परन्तु बहुत शास्त्रज्ञ पण्डित वेदों को पढ़ गुण (विचार) कर भी उसको भूले रहते हैं, और अपने पौ (स्वरूप मोक्ष स्थान) के मर्म (भेद=रहस्य) को आप नहीं जानते हैं। अर्थात् अपना पौ (मोक्ष स्थान) अपना सत स्वरूप है। परन्तु उसके मर्म उपदेशादि को आप नहीं जानते हैं, तो अन्य को क्या उपदेश करेंगे। स्वयं अज्ञान से दूर देशादि मोक्षस्थानादि को खोजते हैं।

और ई (ये) लोग सन्ध्यावन्दन, पितृतर्पण और अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान और प्रतिग्रह रूप षट कर्म करते हैं। और इसी प्रकार के बहुत रूप वाले गुण भेद से भिन्न स्वरूप वाले धर्मों (कर्मों) को करते हैं। एक प्रकार के शुद्ध सात्त्विक शमदमादि नहीं करते हैं। न निष्काम सत कर्मादि करते हैं। अतः अपने स्वरूप को नहीं जानने पाते हैं।

गायत्री युग चार पढ़ाई। पूछहु जाय मुक्ति किन पाई ॥
औरक छुये लेत हौ सीचा । तुम ते कहहु कौन है नीचा ॥

और राजस तामस कर्मों में कामादि वश प्रवृत्त पण्डितों ने चारों युगों में गायत्री पढ़ाई। और गायत्री के पाठ मात्र से मुक्ति भी मानी गई। परन्तु किसी ज्ञानी ब्रह्म निष्ठ से जाकर पूछो कि शम दमादि पूर्वक आत्म ज्ञान के बिना किन लोगों ने कब मुक्ति पाई।

गायत्री पढ़ने पढ़ाने वाले देहाभिमानी दुर्गुणासक्तों से यह भी पूछो कि और किसी हरिभक्त से भी छू जाने पर आप जल का सींच लेते हो (अपने देह पर जल छीटते हो) परन्तु समझो और कहो कि संसार में तुम से नीच कौन है। अर्थात् दुर्गुण दुर्भव्य को त्यागने बिना मिथ्या अभिमान करना उचित नहीं है। न सुख और शान्ति है।

अवगुण गर्व करहु अधिकाई । अति कै गर्व न होय भलाई ॥
जासु नाम है गर्व प्रहारी । सो कस गर्वहि सकै सम्हारी ॥

क्योंकि यदि आप स्वाद वश हिंसा आदि रूप अवगुण और अन्य के तिरस्कारादि रूप गर्व दोनों अधिक करते हो । तो समझो कि अति कै (अत्यन्त गर्व करने पर) किसी की भलाई नहीं होती है । क्योंकि जिस देव तथा परमात्मा का गर्वप्रहारी नाम है, सो किसी के गर्व को कैसे सह सकेगा ।

साखी—कुल मर्यादा खोयके, खोजिन पद निर्वान ।
अङ्कुर बीज नशायके, भये विदेही थान ॥ ३६ ॥

जिन लोगों ने अपने कुल की मर्यादा (धार्मिक नियम शम दमादि) को खोय (नष्ट) करके, गायत्री के पाठादि मात्र से निर्वाण पद को खोजा (चाहा), वे लोग सुख शान्ति ज्ञान वृक्ष के अङ्कुर और बीज रूप विवेकादि को नशाय कर (नष्ट करके) विदेही स्थान (मृतक स्थान श्मशान) में प्राप्त हो गये ।

तथा जिन हिंसादि रहित विवेकियों ने कुल (सब) मर्यादा (मिथ्याभिमानों) को नष्ट करके नम्रता पूर्वक निर्वाण पद को खोजा, उन लोगों ने संसार वृक्षके कर्म वासनादि रूप अङ्कुर बीज को नष्ट करके जीवन्मुक्ति पूर्वक विदेह मुक्ति के स्थान को प्राप्त किया । वे लोग विदेह मुक्ति के भागि हुए और होते हैं ।

वेद पढ़े ते नहिं मिटै, मिथ्या तनु अभिमान ।
गै कुकर्म अभिमान के, ज्ञान हि से निर्वान ॥ ६७ ॥३६॥

इति अज्ञान मिथ्या हंकार प्रकरण १६



अथ ज्ञान भूमिकादि प्रकरण १७

रमैनी ३७

ज्ञानी चतुर विचक्षण लोई । एक सयान सयान न होई ॥
दुसर सयान को मर्म न जाना । उतपति परलय रैनि बिहाना ॥

चाह मात्र से ज्ञान नहिं, बिनु विचार के होय ।
सद्गुरु के उपदेश से, लह विचारि नर सोय ॥ ६८ ॥

जीवन्मुक्ति पूर्वक विदेह मुक्ति के हेतु रूप ज्ञान की सात भूमिका (अवस्था) शास्त्र में मानी गयी है। शुभेच्छा १, सुविचारणा २, तनुमानसा ३, सत्त्वापत्ति ४, असंसक्ति ५, पदार्थभाविनी ६, और तुर्यगा ७, ये उन के नाम हैं। तहाँ विरागादि पूर्वक ज्ञान मोक्ष की प्राप्ति की इच्छा को शुभेच्छा कहते हैं वहाँ कबीर साहब कहते हैं कि हे ज्ञानी (विवेकी) चतुर (शास्त्रज्ञ) विचक्षण (विचारी) लोगों ! एक सयान मात्र (केवल शुभेच्छा वाले) वस्तुतः सयान (ज्ञानी) नहीं होते हैं। किन्तु शुभेच्छा ज्ञान का बीज होता है। अतः उसको ज्ञान की अवस्था कहते हैं। जैसे कि अमानित्व अदम्भित्वादि को गीता अ० १३में ज्ञान कहा गया है।

अतः जब तक दूसर सयान (सुविचारी) के मर्म को मनुष्य नहीं जानता है (सुविचार नहीं करता है) तब तक रात दिन के समान अनिवार्य उत्पत्ति प्रलय (जन्म मरण) आदि रूप संसार होते ही रहते हैं। अतः शुभेच्छा के होने पर सुविचार अवश्य कर्तव्य है।

वाणिज एक सबन मिलि ठाना। नेम धर्म संयम भगवाना॥
हरि अस ठाकुर तेजि न जाई। बालन बिहिस्त गाव दुलहाई॥

परन्तु सुविचार नहीं करके, शुभेच्छा के होने पर सब लोगों ने मिलकर काम्य कर्मादि रूप एक प्रकार का वाणिज्य ठाना (किया) है। और भगवान् के, नियम से स्मरण, ध्यानादि धर्म संयमादि भी वाणिज्य ही किया है।

और तटस्थ हरि भी ऐसे विचित्र स्वामी हैं कि जो इन से त्यागें नहीं जा सकते हैं। और तटस्थ हरिको त्यागे विना स्वरूप का सुविचार नहीं हो सकता है। अतः विचाराभाव के कारण बालन (बालक=अज्ञ) सब दुलहाई की प्राप्ति से बिहिस्त (स्वर्ग मोक्ष) गाते (कहते) हैं। वस्तुतः सर्वात्मा हरि तो ऐसा ठाकुर है कि जिसका त्याग या ग्रहण किसी प्रकार से हो नहीं सकता है। तो भी अज्ञ लोग उस दुलहा को स्वर्ग में गाते (कहते) हैं। और वहाँ जाने के लिये काम्य कर्मादि करते हैं। हृदयादि में विचारादि से नहीं प्राप्त करते हैं।

साखी—ते नर कहहु कहाँ गये, जिनहिं दीन्ह गुरु घोंटि।
रामनाम निज जानि के, छाड़हु वस्तु हि खोंटि॥३७॥

कोई भी कहो तो कि वे प्राणी (मनुष्य) कहाँ जाकर मुक्त हुए, या मुक्त होकर कहाँ गये कि जिन को सद्गुरु ने हितैषिणी-माता की नाईं ज्ञान बूटी की

घोंटी दी (पिलाई) अर्थात् जैसे माता की औषधि से अज्ञ बच्चा जहाँ रहता है वहाँ ही रोग दुःख से मुक्त होता है। वैसे गुरुमुख से उपदेश पाने पर सुविचारी ज्ञान पाकर यहाँ ही मुक्त होते हैं।

अतः गुरु द्वारा निजात्मा का ही राम यह नाम जान कर खोटी वस्तु (मिथ्या देहादि) के अभिमान आसक्ति आशा आदि को छोड़ दो। हिंसादि दुष्कर्म अभक्ष्यभक्षणादि को त्यागो। क्योंकि—

"अतत्त्वे तत्त्वभावेन जीवो देहावृतः स्थितः।
निर्देहो भवति श्रीमान् सुखी तत्त्वैकभावनात् ॥"

(योग वा० प्र० ५।८२।२१)

मिथ्या देहादि में सत्यता आदि की भावना से जीव देही बना रहता है। और सत्य एकात्मा की भावना से जीवन्मुक्त सुखी होता है ॥ ३७ ॥

रमैनी ३८

एक सयान सयान न होई। दुसर सयान न जानै कोई ॥
तिसर सयान सयानहि खाई। चौथ सयान तहाँ लै जाई ॥

शुभ इच्छा सुविचार से, जब निज मन वश होय।
तब लहि आतम राम को, रह असङ्ग सुख सोय ॥ ६९ ॥

शुभेच्छा मात्र से खोट के त्याग नहीं होने के कारण गुरु उपदेश पाने पर भी जो एक सयान (शुभेच्छा मात्र वाला प्रथम भूमिकास्थ) रहता है, सो वस्तुतः सयान (ज्ञानी) नहीं हो जाता है। और मन की तनुता के बिना दूसर सयान (सुविचार वाला) भी कोई (किसी) सत्य को नहीं जानता है।

अतः तिसर सयान (तनुमानसा वाला योगी) सब सयानता के आश्रय मन को तनु (सूक्ष्म) करने से मानो सयान ही को खाता है (नष्ट मृतक निरभिमान करता है) फिर मन के मृतक होने पर चौथ सयान (सत्त्वापत्तिवाला) होता है (सत्य वस्तु को प्राप्त करता है) तो वह तहाँ लै (वहाँ तक) पहुँचता है, कि जहाँ जाने के लिये शुभ इच्छा आदि करता है। अतः वह वस्तुतः ज्ञानी (सत्त्वानुभवी) होता है। प्रथम की तीन भूमिका ज्ञान के साधन होती हैं। चौथी में साध्य ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

पँचय सयान न जाने कोई। छठय माँह सब गेल बिगोई॥
सतय सयान जु जानहु भाई। लोक वेद मँह देहु दिखाई॥

अभ्यास बल से सत्त्वापत्ति के दृढ़ होने पर मन के संकल्प-विकल्पादि के अभाव से, सांसारिक वस्तु में आसक्ति के सर्वथा अभाव से असंसक्ति नामक भूमिका कही जाती है। फिर उस भूमिका वाला पञ्चम सयान आत्मभिन्न कोई (किसी) पदार्थ को सत्यादि नहीं जानता है। अतः किसी में कभी आसक्त नहीं होता है। और इस असंसक्ति के अभ्यास तथा दृढ़ता से षष्ठी भूमिका पदार्थाऽभाविनी आती है, कि जिसमें सब अनात्म पदार्थ स्वयं बिगोय (भूल) जाते हैं। सर्वथा सत्त्व रहित भासते हैं। अर्थात् सब अनात्म पदार्थों का अभाव उस अवस्था में प्रत्यक्ष दीखता है। आत्मा ही सत्य निश्चल भासता है। और सप्तम भूमिका वालों का तो दर्शन भी दुर्लभ है। हे भाई! यदि उन्हें जानते हो, तो लोक-वेदादि में उनकी चर्चा आदि को देखाय दो (अर्थात् सर्वत्र समता वाले तुर्यावस्थास्थ ज्ञानी अत्यन्त दुर्लभ हैं)। और आत्मज्ञान अत्यन्त दुर्लभ है। क्योंकि—

साखी--बिजक बतावै वित्त को, जो वित गुप्त होय।
शब्द बतावै जीव को, बूझै विरला कोय॥३८॥

जैसे जो वित्त कोश (खजाना) भूमि आदि में गुप्त रहता है, उसको बीजक बही बताता है वैसे ही वेदादिस्वरूप सद्गुरु का शब्द पाँच कोशों से गुप्त जीव के सत्य स्वरूप को बताता है। परन्तु उसको विरला विचारादि करने वाला शमादि युक्त विवेकी ही समझता है। शब्दों को सुनने पर भी सब मनुष्य नहीं समझ पाते हैं। अतः विवेक विचारादि ज्ञान के लिये कर्त्तव्य हैं॥३८॥

इति ज्ञान भूमिकादि निरूपण प्रकरण १७



अथ यवनमत दुरवस्था प्रकरण १८

रमैनी ३६

जिन कलमा कलि माँह पढ़ाया। कुदरत खोजि तिनहुँ नहिं पाया॥
कर्म ते कर्म करै करतूता। वेद कितेब भया सब रीता॥

शम सन्तोष विवेक बिनु, विधि गति लखै न कोय।
कर्मजाल में जाय के, लखै न आतम कोय॥७०॥

सुविचारादि के अभाव से निजस्वरूप के ज्ञान के बिना जिन्होंने कलियुग में कलमा नामक मन्त्र को पढ़ा-पढ़ाया, उन्होंने भी तटस्थ कुदरत (ईश्वर और उसकी शक्ति) को खोजा, परन्तु खोजकर भी पाया नहीं।

क्योंकि वे लोग अब भी करतूत (कल्पित सकाम) आदि कर्म पर कर्म करते हैं। अहिंसा ब्रह्मचर्य सत्यात्मविचारादि नहीं करते हैं। अतः सत्यात्मा सत्य अहिंसा आदि के उपदेशरूप वेद किताब सब रीता (व्यर्थ अप्रमाण) हो गये हैं। उनके पठनादि की रीतिमात्र रही भी है, तो उनके अनुसार सत्कर्म भक्ति ज्ञान के अभाव से सतशास्त्र निष्फल ही हो गये हैं।

कर्म त सो जो गर्भ अवतरिया। कर्म त सो जो नामहि धरिया॥
कर्म ते सुन्नत और जनेऊ। हिन्दू तुरुक न जानै भेऊ॥

कर्म तो सो करते जो गर्भ से अवतार हुआ। अर्थात् पुत्रादि के जन्मकाल में जातनामक कर्म करते हैं। या सोई कर्म करते हैं कि जिससे गर्भवास और जन्म हुआ है। उससे रहित होने के लिये नहीं करते हैं। और व्यवहार के लिये जो बच्चों का नाम धरा गया, उसको नामकरणरूप कर्म समझते हैं। अथवा सो कर्म करते हैं कि जिससे अनेक नाम धरा गया, एक स्वरूपता की प्राप्ति नहीं हुई।

इसी प्रकार सुन्नत और जनेउ धारण को सुकर्म कहते हैं। और अन्य कर्म विधिपूर्वक सुन्नत जनेउ को प्राप्त करते-कराते हैं। परन्तु अहिंसा सत्य शौचादि सुविचारादि के भेद को प्रायः हिन्दू तुरुकपन के अभिमानी नहीं जानते हैं। अतएव जाति आदि के मिथ्या अभिमान भी करते हैं।

साखी—पानी पवन संजोय के, रचिया ई उतपात।
शून्यहि सुरति समोय के, कासो कहिये जात॥२९॥

रजोवीर्यादिरूप पानी और प्राणरूप पवन के संयोग सम्बन्ध करके, ई (यह) शरीररूप उतपात (जीवात्मा की उपाधि) रचा गया है। तहाँ उपाधि से शून्य (रहित) शुद्ध सत्यात्मा में सुरति (ध्यान) को समाकर (स्थिर करके) फिर किससे कौन जाति की बात कही जाय।

अर्थात् अनात्मपरायणता से ही जाति आदि का झगड़ा खड़ा होता है। अतः सुख शान्ति के लिये आत्मपरायण होना चाहिये। और आत्मपरायणता के लिये शुभेच्छापूर्वक सद्विचारादि कर्तव्य हैं ॥३९॥

रमैनी ४०

आदम आदि सूधि नहिं पाई। मामा हौवा कहँ ते आई॥
तहिया होते तुरुक न हिन्दू। न माँके रुधिर पिता के बिन्दू॥

कलमा पढ़ने-पढ़ाने वाले आदम (ब्रह्मा) के आदि की सूधि भेद (मर्म) को नहीं पाये। और हौवा (हव्यवती) नाम वाली आदम की मामा (स्त्री) कहाँ से आई ? इस भेद को कलमा पढ़ाने वाले नहीं पाये।

तथा आदम आदिकों ने जाति आदि भेद से रहित आत्मा के भेद (ज्ञान) को नहीं पाया। न आदम जी की स्त्री की सुधि (ज्ञान) को उन्होंने पाई कि वह कहाँ से आई ? और जिस समय आदम और उनकी स्त्री आदि सब प्रगट हुए उस समय तुरुक और हिन्दू नहीं थे, न माता के रुधिर और पिता के बिन्दु से उस समय की सृष्टि थी, किन्तु मानस सृष्टि थी। फिर हिन्दू तुरुक कैसे भिन्न हो गये ?

भाव है कि जाति आदिं के भेद आत्मा के अज्ञान से सिद्ध हुए हैं। अतः दुःखजनक भेदभाव की निवृत्ति के लिये आत्मा ही ज्ञातव्य है।

और इञ्जिल में कथा है कि (तब परमेश्वर ने भूमि की धूलि से आदम को बनाया और उसके नथुने में जीवन का श्वास फूँका और आदम जीता प्राण हुआ। और परमेश्वर ने आदम को बड़ी नीन्द में डाला और वह सो गया। तब उसने उसकी पसलियों में से एक पसली निकाली और उसके सेती मांस भर दिया। और परमेश्वर ने उस आदम की पसली से एक नारी बनाई। और उसे आदम के पास लाया।) इत्यादि कथा की दृष्टि से कहा गया है कि आदम आदि को वस्तुतः हव्यवती कहाँ से आई ? इसका ज्ञान नहीं हुआ।

अतः ऐसी कल्पना की गई है। क्योंकि आदम तो नीन्द में थे। और जब आदम की धूलि से सृष्टि हुई, तो स्त्री की भी धूलि से सृष्टि हो सकती थी। और आदम की सृष्टि काल में अन्य प्राणी नहीं थे, तो पसली के स्थान में भरने के लिये मांस कहाँ मिला? इत्यादि विचार से यह कल्पनामात्र सिद्ध होता है।

तहिया होत न गाय कसाई। तब कहु बिसमिल किन फरमाई॥
तहिया होत न कुल औ जाती। दोजख बिहिश्त कौन उतपाती॥
मन मुसले की खबर न जानै। मति भुलान दो दीन बखानै॥

आदम आदि के सृष्टिकाल में गाय और कसाई नहीं थे। तो कहो कि बिसमिल्ला कह कर हिंसा के लिये कौन किसके प्रति फरमाया (हुक्म दिया) अर्थात् यह ईश्वर नहीं फरमाया है। किन्तु जिह्वास्वादवश अज्ञान से हिंसा की जाती है।

और उस समय कुल जाति आदि के भेद नहीं थे, तो कुल जाति आदि के भेद से स्वर्ग-नरकादि का उतपात कौन मचाया? मुसले (मुसलमानों) का मन इस बात की खबर (उपदेश) को नहीं जानता है। और उसकी मति (बुद्धि) भी भुलान (भूल भ्रमयुक्त) है। तथा भावी हित बुद्धि को ये लोग भूले हुए हैं। अतएव मनुष्य के लिये दो दीन (दो धर्म) का बखान (कथन) करते हैं। मनुष्यमात्र के एक अहिंसा आदि धर्म को और एक ईश्वर को नहीं जानते हैं।

साखी—संयोगे का गुण रवे, वीयोगे गुण जाय।
जिह्वा स्वाद के कारने, कीन्हों बहुत उपाय ॥४०॥

जो लोग अहिंसा सत्य शौचादि धर्म का और इन्द्रियों का संयोग (संग्रह=निग्रह) करते हैं, इन्द्रिय और मन को सतमार्ग में लगाते हैं, कुमार्ग से रोकते हैं, उनके सद्‌गुण रवते (प्रसिद्ध प्रख्यात होते) हैं तथा बढ़ते हैं।

और इन धर्मों के वियोगे (त्यागे) से सञ्चित धर्मादि गुण भी कुभोगादि से जाते (नष्ट होते) हैं। तब महान् कष्ट सहना पड़ता है। तो भी कामान्ध विषय-लोलुप मनुष्यों ने जिह्वा स्वादादि की वशता के कारण सद्धर्म के विरोधी हिंसा आदि अधर्ममय भोगों के ही बहुत उपाय किया और करते हैं। अतः भावी सुख शान्ति से वञ्चित रहते हैं ॥४०॥

इति यवनमत दुरवस्था प्रकरण १८

अथ देवादि मोह विडम्बना प्रकरण १९

सम्बन्ध—आत्मज्ञान तथा निष्कामता के बिना सञ्चित सुकर्मादि को भोग कर जैसे मनुष्य दुःखी होते हैं, तैसे देव भी काम आशा आदि के वर्तमान रहते दुःखी होते हैं। अतः ज्ञानादि द्वारा दुःखों के मूलरूप कामादि निवारणीय हैं, इत्यादि आशय से कहते हैं कि—

रमैनी ४१

अम्बु कि राशि समुद्र कि खाई। रवि शशि कोटि तैंतिसो भाई॥
भँवरजाल महँ आसन माँड़ा। चाहत सुख दुख संग न छाड़ा॥

मनुष्यों की तो कथा क्या कही जाय, भोगों की कामना के रहने पर, सूर्य, चन्द्रादि तैंतीस कोटि देव भाई (देवगण) भी विषयात्मक जल की खाई (भयावह संसार समुद्र) के भँवरजाल (आवर्त समूह) में आसन माड़े (जमाये लगाये) रहते हैं। और सृष्टिकाल से ही उन्होंने आसन माड़ा है। इस संसारचक्र में ही वे लोग भी सदा सुख चाहते हैं। और ऐसे सुखेच्छुक देवों ने भी दुखद संग को नहीं छोड़ा है, न दुख इनके सङ्ग को छोड़ा है। क्योंकि—

दुख का मर्म न काहू पाया। बहुत भाँति के जग बौराया॥
आपुहि बावर आपु सयाना। हृदय बसै तिहि राम न जाना॥

भोग के लोलुप होकर संसार में रहने से जो दुःख होता है, उसके मर्म (भेद) को किसी अविवेकी कामी ने नहीं समझा। इससे बौराय कर (भ्रान्त होकर) संसार में बहुत प्रकार से बौराया (भटका)। और आप (स्वयं) बावर और सयान सब के हृदय में बसने वाला जो राम है, उस सर्वात्मा राम को इन कामियों ने नहीं जाना। क्योंकि—

> कामक्रोधौ स्थितौ यत्र तत्र दोषास्तदात्मकाः।
> दुःखानि च समस्तानि संस्थितानि न संशय॥ (पद्मपु० २।६६।२१७)
> सत्त्वोत्कटाः सुराः सर्वे विषयैश्च वशीकृताः।
> प्रमादिनि क्षुद्रसत्त्वे मनुष्ये चात्र का कथा॥ (दक्ष स्मृति० ७)

जहाँ काम, क्रोध रहते हैं, तद्रूप से ही अन्य सब दोष और सब दुःख वर्तमान रहते हैं, इसमें संशय नहीं है।

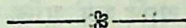
और सङ्ग कामादि के रहते उत्कट (अधिक) सत्त्वगुण वाले देव सब भी विषयों से वशीभूत किये जाते हैं, तो तुच्छ सत्त्व वाले प्रमादी इस मनुष्य में क्या कहना है ? अतः सत्य सुखार्थी सङ्ग कामादि को अवश्य त्यागे और सत्यात्मा राम को समझे कि जिससे समूल दुःख का अभाव हो। क्योंकि—

शम सन्तोष विवेक बिनु, देवहुँ लखत न राम।
भरमत नित संसार में, तजत न संग कुकाम ॥७१॥

साखी–तेई हरि तेइ ठाकुर, तेई हरि के दास।
याम भया नहि यामिनी, भामिनि चली निराश ॥४१॥

वह सर्वात्मा राम ही हरि (विष्णुदेव) है, वही ठाकुर (स्वामी जगदीश्वर) है। और वही हरि के दास अनन्त भक्तस्वरूप है। मोह अज्ञानरूप यामिनी (रात्रि) में उस राम के याम (अनुभव संग) जिसको नहीं हुआ, वह भामिनी (स्त्री) तुल्य परवश जीव निराश (हताश) होकर योन्यन्तर देशान्तर में चला और चलता है। क्योंकि ज्ञान के विना बुद्धि चञ्चल रहती है, कामी अज्ञ कभी स्थितप्रज्ञ नहीं होता है।

"न यम भया न यामिनी" इस पाठान्तर का अर्थ है कि हरि आदि स्वरूप एक राम को जानने वाले के लिये, यम यमयातना नहीं रहते हैं। और मायारूप भामिनी भी उसकी आशा छोड़ देती है, इत्यादि ॥४१॥



सम्बन्ध–एक सर्वात्मा राम के ही हरि ठाकुरादि स्वरूप होने से सृष्टि से प्रथम एक सत्यात्मा ही रहता है। और संसार उसी में लीन होकर, तद्रूप से ही रहता है। अतः सेव्य-सेवकादि भेदभाव भी नहीं रहता है। वही भेद रहित सत्यस्वरूप अब भी वर्तमान है, सोई ज्ञेय-ध्येय है। भेद स्वप्न तुल्य मिथ्या है, अतः वह ज्ञेय-ध्येय नहीं है। इत्यादि आशय से कहते हैं कि—

रमैनी ४२

जब हम रहलि रहल नहिं कोई। हमरहिं माँह रहल सब कोई ॥
कहहु राम कौन तोर सेवा। सो समुझाय कहहु मोहिं देवा ॥

सत्य एक सर्वातमा, राम प्रलय के माँहि।
रहुत ताहि नहि लखत नर, कपट काम जिहि आँहि ॥७२॥

सृष्टि से पूर्व काल में जब हम राम स्वरूप थे, तब कोई भेद नहीं था। किन्तु हमरे ही स्वरूप में कारण रूप से सब अभिन्न थे। अतः सत्य स्वरूप से अब भी अभिन्न के अनुभव होने पर, हे राम! तेरी सेवा कौन है। अर्थात् आत्मज्ञान होने पर, आत्मचिन्तन, ब्रह्मनिष्ठा, समाधि से भिन्न राम की सेवा, या राम स्वरूप ज्ञानी से की गई सेवा, सच्ची नहीं हो सकती है। लोक व्यवहार मात्र भले ही हो सकता है। वही व्यवहार अज्ञानी की दृष्टि से सत्य होता है, ज्ञानी की दृष्टि से नहीं। अतः हे राम! तेरी सेवा कौन है सो कहो। और सो भी हे देव! मुझे समझा कर कहो। भाव है कि—

"भजौं तो को है भजन को, तजौं तो को है आन।
तजन भजन से रहित है, सो कबीर मनमान॥" (अंग की साखी)

यद्यपि भेद को सत्य मानने वालों के मत में सुख या मोक्ष का मार्ग ज्ञान से आरब्ध (शुरू) होता है। जड़ प्रकृति आदि से भिन्न जीवात्मा अपने को समझता है, सो ज्ञान का स्वरूप होता है। और ईश्वर को दुःख रहित सुखी सद्गुण युक्त समझता है, सो भी ज्ञान का स्वरूप होता है। उसके बाद साकार वा निराकार का गुरु उपदेश के अनुसार चिन्तन ध्यानादि किया जाता है, सो सेवा भक्ति उपासना होती है।

और उसके बाद नाम जप, पूजा, दान, यज्ञादि से मोक्ष मार्ग की समाप्ति होने पर लोक विशेष में प्राप्ति आदि रूप मुक्ति मरने पर मिलती है। तथापि भेद को मिथ्या मायिक और एक ब्रह्मात्मा को ही सत्य मानने वालों का उससे सर्वथा विपरीत मोक्ष मार्ग है। सो कर्म से आरब्ध होकर ज्ञान में समाप्त होता है। कर्म और उपासना के साधनों का ज्ञान यद्यपि कर्मोपासना से प्रथम होता है। तथापि वह ज्ञान कर्माङ्ग और उपासनाङ्ग होने के कारण कर्मोपासना रूप ही होता है। और यज्ञ दान तप आदि रूप कर्म ज्ञानेच्छा का जनक श्रुति के अनुसार होता है। और—

"क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टेपरावरे।" (मुण्डक २।२।८)

पर अवर स्वरूप उस अविनाशी ब्रह्म के ज्ञान से प्रारब्धातिरिक्त भूत भावी सब कर्म का नाश होता है। अतः वह ब्रह्मज्ञान कर्मादि का अङ्ग हो नहीं सकता है। अतः निष्काम शुभकर्म उपासना कें बाद शुद्धान्तःकरण द्वारा अद्वैतात्मा के ज्ञान होने पर मोक्ष मार्ग समाप्त हो जाता है। इस के अधिकारी सदा ही दुर्लभ

होते हैं। और अज्ञान वश इसके विरोधी ही संसारी रहते हैं। इत्यादि आशय से कबीर साहब कहते हैं कि—

फुर फुर कहत मारु सब कोई। झूठहि झूठा साधुति होई॥
आँधर कहै सबै हम देखा। तहाँ दिठार बैठि मुख पेखा॥

फुर फुर (उक्त एक सदा सत्यं ही सत्य) की बात के कहने पर अविवेकी सब कोई सत्य वक्ता को ही मारते हैं। अतः यह किसी विवेकी के प्रति वक्तव्य है, अन्य के प्रति नहीं। क्योंकि झूठों (असत्य भाषियों) को झूठों (मिथ्या वस्तु मिथ्या भाषियों) में ही साधुति (साधुता सत्यता) की बुद्धि प्रतीति होती है। अतः वे लोग सत्य को नहीं मान सकते हैं। और आँधर (अज्ञ) भी कहता है (उपदेश देता है) कि हम सब सत्य पदार्थ को देखते हैं। और दृश्य सब पदार्थ मिथ्या होता है। परन्तु इस मर्म को नहीं जानने वाले उस अज्ञ के ही वचनों में विश्वास करते हैं। अतः वहाँ दिठार (अदृश्य सत्यात्मज्ञानी) बैठे-बैठे मुख देखते हैं, उनसे कोई कुछ पूछता भी नहीं है। या ज्ञानी सुखासन से बैठ कर मुख्यात्मा को जानते हैं, विवाद में नहीं पड़ते हैं।

अहित असत्यहि सत्य सुख, मानत मूढ़ अजान।
अहित संग ताते करत, रहत असत्य लुभान ॥७३॥
सत्य ब्रह्म को असत करि, स्वयं असत्य हि होय।
सत्य ब्रह्म लखि आतमा, अक्षय सुख लह सोय ॥७४॥

यहि विधि कहौं मानु जो कोई। जस मुख तस जो हृदया होई॥
कहहिं कबीर हंस मुसुकाई। हमरे कहल छूटिहहु भाई ॥४२॥

मैं तो सदा इसी प्रकार एक सत्य का कथन करता हूँ, तहाँ जो कोई मेरे कथन को मानेगा, सो तभी मानेगा, कि जैसा उसका मुख होगा, वैसा ही यदि उसका हृदय भी होगा। अर्थात् सत्यवक्ता शुद्ध हृदय वाले को ही गुरु और सतशास्त्र से भी शुद्ध एक सत्यात्मा का ज्ञान होता है, अन्य को नहीं।

और शास्त्र गुरु द्वारा ज्ञान की प्राप्ति के बिना संसार बन्धन की निवृत्ति नहीं होती है। अतः कबीर साहब कहते हैं कि हे मुसुकाई (मुसुक=कठिन बन्धन युक्त) हंसो! (जीवों!) इस हमरे (गुरु के) कहल (उपदेशजन्य ज्ञान) से

ही, हे भाई ! छूटोगे । या मुसुका कर कबीर साहब हंसों से कहते हैं, कि हे भाई ! हमारे कथन से ही छूटोगे—

"शास्त्रार्थभावनवशेन गिरा गुरूणां तत्सङ्गमेन नियमेन शमेन राम ! ।
तत्प्राप्यते सकलविश्वपदादतीतं सर्वेश्वरं परममाद्यमनादि शर्म ॥"
(योगवा० प्र० ६-२।१६१।३४)

हे राम ! गुरुओं के वचन से शास्त्रार्थ के विचार-चिन्तन शम सदा गुरु के संगसे वह पद मिलता है, कि जो सब संसार पद से पर, परम आद्य-अनादि सुख स्वरूप है ॥ ४२ ॥

रमैनी ४३

जिन जिव कीन्ह आपु विश्वासा । नरक गये ते नरकहि बासा ॥
आवत जात न लागै बारा । काल अहेरी साँझ सकारा ॥
चौदह विद्या पढ़ि समुझावै । अपने मरण कि खबर न पावै ॥

कपट काम त्यागे बिना, किया जु निज विश्वास ।
सो गुरुज्ञान विराग बिनु, परा काल के फाँस ॥७५॥

जिन जीवों ने सद्‌गुरु आदि के बिना अपने मन से किसी अनात्मा असत्य अधर्म आदि में आत्मता आदि का विश्वास किया, अतः ज्ञान के बिना मिथ्या विश्वास से वे जीव नरक में गये और नरक ही में वास हुआ और होता है ।

नरक से निकलने पर भी आते-जाते (जन्मते-मरते) में वार (अधिक समय) नहीं लगता है । क्योंकि उनके लिये साँझ-सकारे (सबेरे) सदा काल अहेरी (शिकारी) बना रहता है । आत्मज्ञ सद्‌गुरु के बिना चाहे चौदह विद्याओं को पढ़कर जो अन्य को समझाते हैं, सो भी अपने मरण (परलोक) की खबर को नहीं जानते हैं, कि मरने पर क्या होगा ? अतः मिथ्या मुक्ति की कल्पना करते हैं ।

जाने जीव को परा अन्देशा । झूठ आनि के कहा संदेशा ॥
संगति छोड़ि करै असरारा । उबहै मोट नरक के भारा ॥

केवल पुस्तक पाठियों के वचन से परलोकादि को जानने वालों को निश्चय नहीं होता है । उलटा जानने वाले जीवों को अन्देशा (संशय) प्राप्त होता है ।

क्योंकि उन लोगों ने झूठ ही संदेश को आनिकर (कल्पना करके) कहा और कहते हैं। सत्यात्मा को नहीं समझाते हैं।

सद्गुरु आदि के बिना परलोकादि के ज्ञान नहीं होते भी मनमुखी: मनुष्य सद्गुरु सन्त की सङ्गति को छोड़कर, अस (ऐसा) रार (हठ) करते हैं कि जिससे नरक के भार को उबहते (उठाते ढोते) हैं (अशुचि देहादि में सत्य शुचि आत्मता आदि के अभिमानादि करके बार-बार अशुचि देहादि पाते हैं)।

साखी--गुरुद्रोही औ मनमुखी, नारि पुरुष विविचार।
ते चौरासी भरमही, जौं लगि चन्द दिनकार ॥४३॥

क्योंकि गुरु से द्रोह (विरोध) करने वाले और विविचार (सद्विचार रहित) मनमुखी (स्वच्छन्दचारी) नारी और पुरुष सबही चौरासी लाख योनियों में तब-तक भ्रमते हैं, कि जबतक चन्द्र और दिनकर (सूर्य) वर्तमान रहते हैं। अर्थात् महाप्रलय में भ्रमण से रहित होते हैं, सृष्टिकाल में नहीं।

परमानन्द सत ब्रह्म के, ज्ञानयुक्त सम दृष्टि।
पक्षपात मद रहित गुरु, करत अभय सुख वृष्टि ॥७६॥

सद्गुरुयोग विराग शम, दम श्रद्धादि विहीन।
सत अनुभव पावत नहीं, रहत दीन मति हीन ॥७७॥

गुरु निन्दा कुविरोध हठ, द्रोह पाप का मूल।
तजै तिनहि सो सुख लहै, नहि तो लह दुख शूल ॥७८॥

गत विचार मन वश परा, मनमुख पामर प्राणि।
सदा करत आपन अहित, करत आन की हानि ॥७९॥४३॥

इति देवादि मोहविडम्बना प्रकरण १९



अथ सत्संगादि बिना संसार वर्णन प्रकरण २०

रमैनी ४४

कबहुँ न भयउ संग औ साथा। ऐसेहि जन्म गमायो आछा॥
बहुरि न पैहहु ऐसो थाना। साधु संगति तुम नहिं पहिचाना॥
अब तो होइ नरक मँह बासा। निशिदिन रहहु लबारक पासा॥

सत्सङ्गति बिनु कुसंग से, व्यर्थ मनुष तनु जाय।
ताते करिय सुयत्न सो, जिहि न मोह पछताय ॥८०॥

जो मनुष्य गुरु से द्रोह नहीं भी करते हैं, किन्तु कबही सद्गुरु सन्त के सङ्ग में प्राप्त नहीं हुए, न सद्गुरु के साथ में स्थिर हुए, सो मनुष्य अच्छा (सुन्दर) मनुष्य जन्म को ऐसे ही (व्यर्थ ही) गमाय दिये।

अतः साहब कहते हैं कि फिर ऐसा सुन्दर स्थान शीघ्र नहीं पावोगे। इस स्थान में साधु संगति को तुम नहीं पहचानते हो। न साधु संग करके सत्यात्मा सत्यधर्म को पहचानते हो। तो अब आगे तेरा नरक में ही बास होगा। क्योंकि सत्संग सद्विचारादि के अभाव से, रात-दिन सदा लबारों (झूठ वक्ताओं) के साथ में रहते हो। और मिथ्या भाषण भारी पाप है, वैसे ही मिथ्याभाषी का संग भी भारी पाप है। अतः लबार के संग को त्यागकर सत्संग ही कर्तव्य है।

साखी–जात सबन कहँ देखिया, कहहिं कबीर पुकार।
चेतुवा ह्वै तो चेतहू, दिवस परतु है धार ॥४४॥

क्योंकि कुसंगादि के कारण सब ही को नरकादि में जाते हुए नष्ट होते हुए महात्माओं ने देखा (समझा) है। अतः कबीर साहब पुकार के कहते हैं, कि यदि चेतना है तो शीघ्र चेतो (सत्संगादि करो) नहीं तो दिन में (प्रकाशमय मनुष्य जन्म में) ही धाड़ा (कामादि डाकू) प्राप्त होते हैं। अतः—

तजि कुसङ्ग सत्संग करु, प्रथम चेत यह आहि।
यहि भक्ति विज्ञान दै, मुक्ति भवन ले जाहि ॥८१॥
समदर्शी जहँ सन्त जन, तहाँ न व्यापै मोह।
काम क्रोध मद लोभ नहि, रहत ज्ञान अद्रोह ॥८२॥

सरल शुद्ध मति सन्त का, सङ्ग पाप हरि लेत ।
मानस रोग विकार को, हरत अभय पद देत ॥८३॥
सत्सङ्गत बिनु ज्ञान नहि, नही धर्म नहि ध्यान ।
ताते नित सत्संग करि, तरिय मृत्यु मतिमान ॥८४॥४४॥

—❀—

रमैनी ४५

हिरणाकश रावन गौ कंसा । कृष्ण गये सुन नर मुनि वंशा ॥
ब्रह्मा गये मर्म नहिं जाना । बड़े गये जे रहे सयाना ॥

हिरणाकश आदिक गये, ब्रह्मा गये महान ।
सो समुझत नहि गहत विष, ताते मरत अजान ॥८५॥

शीघ्र चेतने के लिये, चेतनात्मा को समझने के लिये उपदेश किया गया है। वह चेतनात्मा कोई प्रतापी शरीरी या शरीर रूप नहीं है, अविनाशी एक है। इस आशय से कहा गया है कि—हिरण्यकश्यप रावण कंस गये । कृष्ण और सुर नर मुनियों के अनन्त वंशज गये । लोक पितामह ब्रह्मा गये । शरीर को सदा रखने के उपाय रूप मर्म को कोई नहीं जान सका । अतः सब शरीरों से भिन्न आवागमन रहित चेतनात्मा को समझना चाहिये । क्योंकि—

समुझ परी नहिं राम कहानी । निरबक दूध कि सरबक पानी ॥
रहिगौ पन्थ थकित भौ पवना । दशो दिशा उजारि भौ गवना ॥

जब तक सर्वात्मा राम की कहानी (कथा) जिन को नहीं समझ पड़ी कि कौन निर्बक (निर्मल) बक सम्बन्ध से रहित, बक वृत्ति से अलभ्य मानसरोवर का दूध है (शुद्धात्मा है) और क्या सर्बक सम्पूर्ण बक सहित बक वृत्ति से प्राप्य तालाब का पानी (मायात्मक विषयादि) है । तब तक उनको गन्तव्य पन्थ (कर्तव्यकर्मादि) रह गया । और प्राणादिक थक गये । अतः वर्तमान शरीर रूप नगर को उजार कर (नष्ट करके) उजाड़ (शून्य तुल्य) दशो दिशाओं में उन अज्ञानी सबका गमन हुआ और होता है । अतः गमनागमन रहित मुक्ति के लिये विवेकादि पूर्वक राम कथा ज्ञातव्य है ।

मीन जाल भौ यह संसारा । लोहक नाव पषाणक भारा ॥
खेवै सब मर्म हम जानी । तैयो कहै रहै उतरानी ॥

जिनका मार्ग बाकी रह गया, जिनके राम कथा भी समझ में नहीं आई, उन अविवेकियों के लिये यह संसार मछलियों के जाल तुल्य हुआ, अतः जहाँ गये वहां ही मोह ममता आदि रूप जाल से बन्धे। और उनके सकाम कर्मादि अनगढ़ लोहे की नाव तुल्य हुए। और आशा तृष्णा मनोरथ वासना ये सब पाषाण के भार तुल्य हुए। और इस अवस्था में उस नौका को सब खेवते हैं। संसार सागर में चलाते हैं (कर्मानुष्ठान करते हैं) और समझते हैं कि संसार समुद्र से पार जाने के मर्म को हम जानते हैं और डूब रहे हैं, तो भी कहते हैं कि यह नौका उतराती ही रहेगी, इत्यादि। इस प्रकार अज्ञान भ्रम से प्राणी संसार में आते जाते रहते हैं, स्थिति नहीं पाते हैं। दुःखी होते हैं, परन्तु सुख की आशा से संसार में लगे रहते हैं। तहाँ बार बार जाने के प्रकार (भेद) को कहते हैं कि—

साखी--मछरी मुख जस केचुआ, मुसवन मँह गिरदान।
सर्पन माँह गहेजुआ, जात सबन कहँ जान ॥४५॥

मछलियों के मुख में लोहे की काँटी सहित केचुआ (चेरा) के ग्रहण से, मूसों के मुख में गिरदान (चुहेदानी) के अन्न के ग्रहण से, या गिरदान (लाल गिरगिट) के ग्रहण से और सर्पों के मुख में गहेजुआ (चूहा तुल्य सकण्टक जन्तु विशेष) के ग्रहण से, जैसे इनका नाश होता है, वैसे ही विषयवासना कामादि से सब प्राणी का जान (प्राण) जाता है। या राम कथा के ज्ञानादि के विना सबको इसी प्रकार जाते हुए जानो (समझो) और इस प्रकार के नाश से बचने के लिये राम कथा को समझ कर आशा आदि को त्याग कर योग युक्त मुक्त सुखी होवो ॥ ४५ ॥

इति सत्सङ्गादि विना संसार वर्णन प्रकरण ॥ २० ॥

अथ मायाकृत विनाशवर्णन प्रकरण २१

सम्बन्ध—सब भूत भौतिक पदार्थ उत्पन्न नष्ट होते हैं, तहाँ उत्पत्ति नाशादि रहित आत्माराम साक्षिस्वरूप से रहता है। मायात्मक उसकी शक्ति ही उसके प्रकाश बल से नाना स्वरूप होकर सब कार्यों को सिद्ध करती है। अतः उत्पन्न नष्ट होने वाले सब पदार्थ माया मात्र रहते हैं। इत्यादि आशय से आगे की रमैनी है कि—

रमैनी ४६

बिनशे नाग गरुड़ गलि जाई। बिनशे कपटी औ शत भाई॥
बिनशे पाप पुण्य जिन कीन्हा। बिनशे गुण निर्गुण जिन चीन्हा॥
बिनशे अग्नि पवन औ पानी। बिनशे सृष्टि कहाँ लौं गानी॥
विष्णु लोक बिनशै क्षण माँही। हौं देखा प्रलय की छाँही॥

पाताल वासी नाग (सर्प विशेष) और नाग के विरोधी गरुड़ विनष्ट हुए और गल जाते (नष्ट होते) हैं। और कपटी (जुआरी) शकुनी और शत भाई (सौ भाई) दुर्योधनादि भी नष्ट हुए। पाप पुण्य जिन्होंने किये, गुण और निर्गुण को जिन्होंने चीन्हा वे भी विनष्ट हुए। अग्नि पवन और पानी विनष्ट होते हैं। सब सृष्टि विनष्ट होती है। गिनकर या गाय कर कहाँ तक कहा जाय। विष्णु लोक (परिच्छिन्न वैकुण्ठ ब्रह्मलोकादि) क्षणमात्र में नष्ट होता है। हौं (मैं) सब संसार को प्रलय की छाया (प्रतिबिम्ब) स्वरूप अब भी देखा करता हूँ। आत्मानुभव से सब संसार क्षणभंगुर भासता है। आत्मा ही स्थिर भासता है, अन्य नहीं।

साखी—मच्छ रूप माया भई, जौरहिं खेल अहेर।
हरिहर ब्रह्म न ऊबरे, सुर नर मुनि किहिकेर॥४६॥

सबके विनाश में यह कारण है कि जैसे छोटी बड़ी अनेक प्रकार की मछलियाँ होती हैं। और बड़ी मछली छोटी मछली को खा लेती है। तैसे ही छोटे बड़े, बली निर्बल शरीरादिरूप मायारूप मछली हुई है। और जौरहिं (साथ ही) रह कर परस्पर अनन्त रूप से अहेर (शिकार) खेलती है। उस माया के शिकार में हरिहर और ब्रह्मा नाम वाले शरीर नहीं ऊबरते (बचते) हैं। तो अन्य सुर नर मुनि आदि किसके शरीर ऊबरेंगे। सबकी एक आत्मा ही ऊबरने वाली वस्तु है, अन्य नहीं।

नशत भूत भौतिक सकल, विष्णु लोक क्षण माँहि।
एक नशत नहिं आतमा, मूढ़ लखत नहिं ताहि॥८६॥४६॥

रमैनी ४७

जरासन्ध शिशुपाल सँहारा। सहसा अर्जुन छल सो मारा॥
बड़ छल रावण सो गौ बीती। लङ्का रहल कञ्चन की भीती॥
दुर्योधन अभिमानहि गयऊ। पाण्डव केर भेद नहिं पयऊ॥

माया ने ही भीम रूप से जरा सन्ध का और कृष्णरूप से शिशु पाल का संहार किया। और सहसा अर्जुन छल (था) सो परशुराम रूप माया से मारा गया। या छल रूप माया से मारा गया।

और रावण बड़ (बड़ा प्रतापी) छल (था) जिसकी लङ्का में कंचन की भीत्ति (दीवाल) रही। सो रावण भी माया से ही बीत गया (नष्ट हुआ)।

और दुर्योधन अभिमान रूप माया से नष्ट हुआ। और पाण्डवों के भेद (मर्म) नहीं पाया। माया मद में भूला रहा।

माया डिम्भ गेल सब राजा। उत्तम मध्यम बाजन बाजा॥
छौ चकवे बिति धरणि समानी। एको जीव प्रतीति न आनी॥
कहँ लै कहौं अचेतहिं गयऊ। चेत अचेत झगर इक भयऊ॥

माया के डिम्भ (अभिमानी या पुत्र) सब राजा गये। और कर्मादि के अनुसार उनके यश अपयश का बाजा उत्तम मध्यम बजा।

जरासन्धादि छौ चक्रवर्तीपन के अभिमानी बीत (मर) कर पृथिवी में लीन हुए। सो देख सुनकर भी एक जीवस्वरूप की सत्यता की प्रतीति को जीवों ने नहीं प्राप्त की। राम कथा में प्रतीति जीवों ने नहीं लाई। या एक जीव भी सत्सङ्गादि के विना सत्य प्रतीति को नहीं प्राप्त किया। न माया को समझा।

कहाँ तक कहा जाय, विश्वासादि के विना सब अचेत ही गये। और चेत अचेत का एक प्रकार का झगड़ा हुआ। ज्ञानी और अज्ञानी का भी विवेक नहीं हो सका, कि जिससे लोग ज्ञानी के ही शरण में जायँ और ज्ञान को प्राप्त करें।

साखी—ई माया है मोहिनी, मोहिन सब जग झार॥
हरिचन्द सतके कारणे, घर-घर शोक विकार॥४७॥

ई (यह) प्रत्यक्ष विषय शरीरादि रूप तामसी माया और अविद्या, मोहिनी (मोहने वाली) है। सो सब संसारी को झारकर (ढूँढ़ ढूँढ़ कर) मोहित किया।

है। हरिश्चन्द्र जैसे सत्य की रक्षा के लिये माया से मोहित हुए, तैसे घर-घर (सब शरीरों) में कामादि विकार जन्य शोकादि होते हैं।

लघु दीरघ माया भई, दीरघ लघुकर काल।
माया को माया हने, चेतन अकल अकाल ॥८७॥

हरिश्चन्द्र राजा ने मानस अश्वमेध में मानस अश्व की हिंसा करके, उसके दोष की निवृत्ति के लिये प्रायश्चित्त नहीं किया। उसी हिंसा का दण्ड उन्हें भोगना पड़ा। सो मार्कण्डेय पुराण में लिखा है। कि—"अश्वमेधविपाकोऽयं हरिश्चन्द्रस्य भूपतेः।" इससे याज्ञिक हिंसा का भी कठिन अनर्थ रूप फल सिद्ध होता है। लौकिक हिंसा की अनर्थता को तो कहना ही क्या है।

मत्स्य रूप माया धरी, नाशत सकल अजान।
नशत न सो जिहि मोह नहि, साक्षि रूप निज जान ॥८८॥४७॥

इति मायाकृत विनाश वर्णन प्रकरण ॥२१॥



अथ यवन मत समीक्षा प्रकरण २२

रमैनी ४८

मानिकपूर कबीर बसेरी। मदत सुनी शेखतकी केरी॥
ऊजे सुनी यवन पुर धामा। झूसी सहर पिरन को नामा॥
एकिस पीर लिखे तिहि ठामा। खतमा पढ़े पैगम्बर नामा॥

साक्षिरूप के ज्ञान बिनु, रहत मलिन मति हीन।
सो तजिये धरि ध्यान उर, लखिये स्वात्म प्रवीन ॥ ८९ ॥

माया कृत यवनों के विमोह के वर्णन के लिये कबीर साहब कहते हैं कि एक समय मेरी बसेरी (निवास स्थिति) मानिकपुर में थी। तो वहाँ शेखतकी की मदत (मदहत स्तुति साहाय्य) सुनी गई। और ऊजे (वह प्रसिद्ध जो) यवनपुर धाम (स्थान मुकाम) है, वहाँ की बात भी सुनी गई। झूसी शहर में रहने वाले पीरों के नाम सुने गये। और उस झूसी में मूये हुए इकिस पीरों के नाम कबरों में लिखे हुए सुने गये और उन कबरों के पास में पैगम्बर नामा (पैगम्बरों की नामावली) रूप खतमा (किताब) मुसलमान पढ़ते हैं, और उन मृतकों को सुनाते हैं। इत्यादिक बात मानिकपुर में सुनी गई।

सुनी बोल मोहि रहो न जाई। देखि मोकरवा रहा भुलाई॥
हवी नवी नवीहुं को कामा। जहँ लगि अमल सु सबी हरामा॥

कबीर साहब कहते हैं कि उन बातों को सुन कर मुझे चुप लगा कर रहा नहीं गया। अतः भूमी में जाकर उनसे कहा कि अन्य को तो आप बुतपरस्त कहते हो और स्वयं जड़ मोकरवा (कबरों) को देख कर भूले (भ्रान्त) हो। इसको श्रोता चेतन मानकर खतमा सुना रहे हो। उन लोगों ने कहा कि यह हवी (ईश्वर वा मित्र) और नवी (आचार्य पैगम्बर) का काम (सेवा) कर रहे हैं। तब कबीर साहब ने कहा कि चाहे हवी का या नवियों के नवी का काम हो, परन्तु जहाँ तक अमल (तुच्छ व्यसन) रूप अविवेक जन्य व्यवहार है, सो सब हराम (निषिद्ध) है, अपवित्र है।

साखी–शेख अकरदी शेख सकरदी, मानहु बचन हमार।
आदि अन्त औ उतपति परलय, देखहु दृष्टि पसार ॥४८॥

हे अकरदी सकरदी शेखों ! हमारे वचनों को मानो, तो उन व्यसनों को त्याग कर और विवेक दृष्टि को पसार (बढ़ा) कर, सब संसार के आदि अन्त स्वरूप सब की उत्पत्ति का कारण, लय का आधार रूप परमात्मा को देख (समझ) सकते हो। अतः व्यसनों को त्याग कर, परमात्मा को देखो, कबरों को नहीं ॥ ४८ ॥

रमैनी ४९

दर की वात कहो दरवेशा। बादशाह है कौने वेषा॥
कहाँ कूच कहँ करै मुकामा। मैं तोहि पूछौ मूसलमाना॥
लाल जरद की नाना बाना। कौन सुरति को करहु सलामा॥

हे दरवेशों ! (विरक्त फकीरों !) व्यसन को त्याग कर दर की (सत्य मुकाम की) बात कहो। और बादशाह (खुदा ईश्वर) 'कौन वेष वाला है, सो कहो। अर्थात् सबका आदि अन्त स्वरूप परमात्मा सब वेष आकारादि से रहित है। उसको समझ कर अन्य को समझावो।

और हे मुसलमानों ! मैं तुमसे पूछता हूं कि सब जगत का आधार बादशाह जगत् में कहाँ कूच (यात्रा) करता है। और कहाँ मुकाम (आसन) करता है। और वह लाल है कि जरद (पीला) है। कि नाना बाना (चित्रवेष वाला) है।

और तुम कौन सुरति (आकार) को सलाम करते हो। अर्थात् यात्रा मुकाम रहित विभु और रूप आकारादि रहित परमात्मा को अपने दरवेशों से समझो और उसी को सलाम करो।

काजी काज करहु तुम कैसा। घर घर जवह करावहु बैसा(भैंसा)॥
बकरी मुरगी किन फरमाया। किसके हुकुम तुँ छुरी चलाया॥
दर्द न जानै पीर कहावै। बैता पढ़ि-पढ़ि जग समुझावै॥
कहहिं कबीर सयाद कहावै। आपु सरीखे जग कबुलावै॥

हे काजी! (पण्डित) तुम कैसा काज (कार्य) करते हो। तुम घर घर में बैसा (बैठा) हुआ भैंसा आदि का जवह कराते हो, क्या यही कर्तव्य कार्य है।

तुम्हें बकरी मुरगी किन महापुरुषों ने फरमाया है। बकरी आदि को कौन भक्ष्य बताया है। और उसके ऊपर किसके हुकुम से छुरी चलायो और चलाते हो। अर्थात् हुकुम आदि के बिना स्वार्थान्धता से छुरी चलाते हो।

और अन्धा होने ही से जो दूसरे की पीड़ा दर्द को नहीं जानता है, सो हिंसक भी पीर (गुरु) कहाता है। और बैंत पढ़ पढ़ कर मिथ्या ही आप समझे बिना संसारीको समझाता है।

कबीर साहब कहते हैं कि जो सयाद (सैय्यद) कहाता है, सो स्वयं हिंसक होता हुआ, अपने ही समान संसारियों से हिंसा आदि का कबूल (स्वीकार) कराता है। परन्तु ये सब अकाज (अकर्तव्य) हैं।

साखी—दिन को रोजा रहत हौ, राति कुहत हौ गाय।
यह तो खून वह बन्दगी, क्यों कर खुसी खुदाय॥४६॥

और दिन को रोजा व्रत (उपवास) रहते (करते) हो। और रात्रि के समय माता तुल्य दूध देने वाली गाय को कुहते (मारते) हो। तो अपराध तो यह प्राणी का खून रूप हुआ। और बन्दगी (भक्ति) वह दिन के उपवास मात्र हुई, फिर न्याय कर्ता खुदा किस प्रकार खुश (प्रसन्न) होगा। अर्थात् ईश्वर की प्रसन्नता के लिये हिंसा असत्य व्यभिचारादि अवश्य त्याज्य हैं॥४६॥

इति यवन मत समीक्षा प्रकरण २२

अथ आसक्तिज ज्ञान दुर्लभता प्रकरण २३

रमैनी ५०

कहइत मोहि भेल युग चारी। समुझत नाहिं मोर सुत नारी ॥
बंशहि आगि लगि वंशहि जरिया। भरम भुला नल धन्धे परिया ॥

गुरु कहते युग चार से, बिनु विचार नहिं कोय।
समुझत सद्गुरु राम को, मोह मग्न सब होय ॥९०॥

मोह भ्रम की निवृत्ति के लिये मोहि (मुझे) गुरु को इस प्रकार से कहते चार युग हो गये, परन्तु लोग गुरु की बात को समझते नहीं हैं। किन्तु मोह वश समझते और कहते हैं कि यह मेरा पुत्र है और यह मेरी नारी है। इनसे वंश की स्थिति द्वारा लोक परलोक में मुझे सुख शान्ति मिलेगी। इत्यादि।

परन्तु बाँसों में परस्पर के रगड़ से जैसे अग्नि उत्पन्न होती है, और उससे बाँस जल जाते हैं। वैसे वंश कुलादि के अभिमानियों में राग द्वेषादि उत्पन्न होते हैं, जिनसे उनका नाश होता है। तो भी भ्रम से सत्य सुख शान्ति के मार्गों को भूल कर मनुष्य केवल वंशादि के धन्धों में पड़े रहते हैं।

हस्तिक फन्दे हस्ती रहई। मृगा के फन्दे मृगा रहई ॥
लोहहिं लोह काटु जस आना। तिय के तत्त्व तिया पै जाना ॥

जैसे पोसे हुए शिक्षित हाथी के फन्दे (बन्धन) में जंगली हाथी रहते (फँसते) हैं, मृग के फन्दे में मृग रहते फँसते हैं। वैसे ही स्ववंश कुल जाति के मोहादि फन्दों में मनुष्य फँसते हैं।

और जैसे लोहा ही अन्य लोहे को काटता है, वैसे स्ववंशादि के ही लोग दुर्बल को पीड़ित करते हैं। और जैसे स्त्री के तत्त्व (रहस्य मर्म) को अन्य स्त्री से ही जाना जाता है, वैसे वंश जाति से ही किसी की गुप्त बात जानी जाती है, कि जिससे हानि होती है। तथापि मोह वश ममता नहीं छूटती है।

साखी—नारी रचन्ते पुरुषा, पुरुष रचन्ते नारि।
पुरुषहिं पुरुषा जो रचै, सो बिरला संसारि ॥५०॥

उक्त रीति से वंशादि द्वारा नाश बन्धनादि के होने पर भी मोह कामादि के वश में होकर माया रूप नारी के शरीर में पुरुष रचते पचते हैं। आसक्त होते हैं,

और नारी की रचना करते हैं। और पुरुषों में नारी आसक्त होती है, पुरुष की रचना करती है। इस प्रकार प्रकृति पुरुष के सम्बन्ध से संसार का प्रवाह बना रहता है।

और जो स्वयं पुरुष (जितेन्द्रिय स्वतन्त्र ज्ञानी गुरु) होकर स्वतुल्य पुरुष की रचना करते हैं, तथा जो स्वयं जितेन्द्रिय जिज्ञासु होकर सद्‌गुरु में रचते हैं (उनकी सेवा आदि करते हैं), ईश्वरपरायण भक्त होते हैं, सो विरले संसारी होते हैं। वही संसार प्रवाह से रहित मुक्त होते हैं ॥५०॥

इति आसक्तिज ज्ञानदुर्लभता प्रकरण २३

अथ धारणारहस्य प्रकरण २४

रमैनी ५१

जाकर नाम अकहुआ भाई। ताकर काह रमैनी गाई ॥
कहै के तात्पर्य है ऐसा। जस पन्थी बोहित चढ़ि बैसा ॥

कोइ अकह के रमण जपि, मानत हैं मन मोद।
उनको सद्‌गुरु कहत हैं, बैठु रहनि के गोद ॥९१॥

सच्चरित्र श्रद्धा सहित, ज्ञान जु लहै सुजान।
सो लाँघै भवसिन्धु को, यथा सुकपि हनुमान ॥९२॥

पुरुष होकर पुरुष में रमने वाले की धारणा के वर्णन के लिये कहते हैं कि हे भाई! जिस परब्रह्म परमात्मा का अकहुआ (अकह) नाम है। जो किसी वाणी या इन्द्रिय का विषय नहीं है। क्योंकि—"अशब्दमस्पर्शम्" इत्यादि शास्त्र के अनुसार वह निर्गुण है। उस निर्गुण की रमैनी (लीला क्रीड़ा) आदि क्या गाते हो? उसको समझने के लिये योग, ध्यान विचारादि कर्तव्य हैं।

इससे यह नहीं समझना कि मैं अकह की चर्चा कल्पित नामादि का निषेध कर रहा हूँ। किन्तु इस मेरे कथन का ऐसा तात्पर्य है कि जैसे नदी से पार जाने वाला पथिक बोहित (नौका) पर चढ़कर बैठता है, तब नाविक के खेवने से पार होता है। केवल नाविक या नौका के नामादि से नहीं।

है कछु रहनि गहनि की बाता । बैठा रहै चला पुनि जाता ॥
रहै बदन नहि स्वाँग स्वभाऊ । मन अस्थिर नहिं बोलै काऊ ॥

उक्त नदी पार होने में नौका पर बैठने के समान, संसार सिंधु से पार होने में कुछ रहनी (सच्चरित्र विवेक वैराग्य शमदमादि धारणा) की गहनी (ग्रहण) की बात (उपदेश) शास्त्र में है । कि—

"निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।
द्वन्द्वै विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञै गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥"(भ.गी.अ. १५।५)

अहंकार मोह से रहित संगजन्य राग-द्वेष को जीतने वाले, सदा आत्म-परमात्म विचारपरायण, निष्काम, सुख-दुःख नामक द्वन्द्वों से रहित, अमूढ (विवेकी) ही उस अविनाशी निर्गुण पद (स्वरूप) को पाते हैं । इत्यादि इन धारणाओं से ही जैसे नौका पर बैठा भी रहता है और पार भी चला जाता है, तैसे धारणा में स्थिर शास्त्र गुरु आज्ञा के अनुसार स्थिति वाला स्थिर रहते संसार दुःख से पार चला जाता है । और धारणा वाला मनुष्य बदन (देह) में स्वाँग (वेष) बनाने के स्वभाववाला नहीं रहता है । किसी साधारण सात्त्विक वेष से रहता है । तामस, राजस वेष का धारण कभी नहीं करता है । न अस्थिर (चञ्चल) मनपूर्वक किसी से कोई बात बोलता है । अर्थात्—

"हिये तराजू तौलिके, तब मुख बाहर आन ।" (साखी २८२)

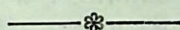
और मन के स्थिर होने पर कोई बात नहीं बोलता है । अर्थात्— "मौन रहै कि हरि यश गावै ।" (शब्द ६७) मौन रहता है या हरियश को गाता है, लौकिक वाद-विवाद नहीं करता है ।

साखी—तन रहये मन जात है, मन रहये तन जाय ।
तन मन एकै है रहै, हंस कबीर कहाय ॥५१॥

पूर्ण धारणा के बिना किसी का तन (शरीर) स्थिर रहता है । लोक-भयादि से कुमार्ग में नहीं जाता है । परन्तु अभिमानी मन जहाँ-तहाँ जाता है । और किसी का मन स्थिर रहता है, परन्तु संगादिवश तन (शरीर) कहीं जाता है । इन दोनों अवस्थाओं में भी हंस दशा (पूर्ण विवेक ज्ञान दशा) नहीं रहती है । किन्तु जब तन-मन दोनों से एक धारणा में एकात्मा में स्थिर होकर रहे, तब वह प्राणी हंस (पूर्णविवेकी) कहा जाता है । यह कबीर साहब का उपदेश है ।

अथवा तन व्यवहार में रहता है। मन भजन में जाता है। या मन व्यवहार में रहता है और तन पूजा आदि भक्ति में जाता है। परन्तु तन-मन दोनों से जब एकात्मनिष्ठ होता है, तब सद्गुरु कबीर का हंस कहा जाता है।

हिंसादिक तन से तजी, मन से तजि परद्रोह।
सत्य मधुर हित जो कहै, रहनि गहै गत मोह ॥९३॥
न्यायागत निज अर्थ शुभ, काम धर्म अविरोधि।
दम्भ झूठ हिंसा रहित, धर्म गहै मन शोधि ॥९४॥
हरि गुरुशरण सुनाव गहि, उतरै जन भवपार।
निज आतम ही पार है, और सकल भवधार ॥९५॥
आतमनिष्ठ विरक्त मुनि, जीवन मुक्त कहाय।
सोइ विदेही मुक्ति लह, परमहंस पद पाय ॥९६॥५१॥



सम्बन्ध—पूर्ण हंस दशा के विना मनुष्य हरि को दूर तटस्थ मानते हैं। और शिवजी आदि को तटस्थ हरि के भक्त और अब भी उनको हरि के वियोगी मानते हैं। अतः तन मन की एक निष्ठा के लिये यत्न भी नहीं करते हैं कि जिससे पूर्ण हंस दशा की प्राप्ति हो, इत्यादि आशय से हंस दशा की प्राप्ति कर्तव्यता के लिये कहते हैं। कि—

रमैनी ५२

जिहि कारण शिव अजहुँ वियोगी। अंग विभूति लाय भौ योगी ॥
शेष सहस मुख पार न पावै। सो अब खसम सही समुझावै ॥
ऐसी विधि जो मो कहँ धावै। छठये माँह सो दर्शन पावै ॥
कौनहुँ भाव दिखाई देऊँ। गुप्ते रहि सुभाव सब लेऊँ ॥

जिसे तटस्थ लोकान्तरवासी बुद्धि से शिवजी भजते हैं। और जिसकी प्राप्ति के लिये अब भी वियोगी (विरही भक्त विरक्त) बने हैं। और अंग (देह) में विभूति लगाकर योगी हुए हैं। हजार मुख से गाने पर भी शेषनाग जिसके गुणों के पार (अन्त) को नहीं पाते हैं। सो खसम (स्वामी) अब (सृष्टिकाल में) कपिल व्यासादि रूप से प्रकट होकर (अवतार लेकर)

अपने सही (सत्य) स्वरूप को समझाता है कि ऐसी विधि से (तन मन को एक करके जो कोई मेरा ध्यान करता है, सो छठमें मास में मेरा दर्शन पाता है। और देवादि किसी भाव (स्वरूप) से मैं उसे दिखाई (दर्शन) देता हूँ। और गुप्त ही रहकर उसके सब भक्तिभाव (प्रेम) आदि को मैं लेता हूँ (ग्रहण स्वीकार करता हूँ)।

साखी—कहहिं कबीर पुकारिके, सबका उहै विचार।
कहा हमार मानै नहीं, किमि छूटै भ्रमजाल ॥५२॥

कबीर साहब पुकार कर कहते हैं कि प्रायः सब का उहे (तटस्थेश्वर वाद विषयक ही) विचार है। और हमार (आत्मज्ञ धारणा वालों का) कहा (रहनी गहन के उपदेश) को कोई नहीं मानता है, तो भेद के भ्रमादिरूप जाल (विस्तार बन्धन) कैसे छूटे ? वस्तुतः एक सर्वात्मा राम के सद्धारणादि द्वारा अनुभव होने ही से भ्रमजाल की निवृत्ति मुक्ति है, अन्यथा नहीं। अतः सद्धारणादि ज्ञान के लिये कर्तव्य हैं ॥५२॥

इति धारणारहस्य प्रकरण २४



अथ दुराशा प्राबल्य प्रकरण २५

रमैनी ५३

महादेव मुनि अन्त न पाया। उमा सहित उन जन्म गमाया॥
उनहू से सिध साधक कोई। मन निश्चय कहु कैसे होई॥

महादेवजी ऐसे मुनि या महादेवजी और अन्य मुनि सब जिसके गुणादि के अन्त को नहीं पाये। न जिसके स्वरूप के अन्त (मर्म) को पाये। क्योंकि वह स्वामी गुप्त रह करके ही भाव लेता है, प्रकट नहीं होता है। इसीसे अन्त के खोज में शिवजी ने उमासहित जन्म गमाया परन्तु अन्त नहीं पाया।

तो क्या उन शिव और उमा (पार्वती) से भी कोई अधिक सिद्ध और साधक होगा कि जो अन्त पायेगा। और अन्त पाये बिना मन में निश्चय कैसे हो सकता है ? सो कहो और समझो।

अर्थात् एक सत्यात्मा राम ही माया से अनन्त स्वरूप होता है। उसी के अन्त को महादेवजी आदि भी नहीं पाया। क्योंकि अनन्त का अन्त है ही नहीं, तो कोई पावेगा कैसे ? अतः उसके आदि अन्त को खोजना व्यर्थ और अज्ञान से होता है। यदि उसके आदि अन्त का कोई वर्णन भी करे तो किसी विचारवान् के मन में निश्चय कैसे हो सकता है ? वह तो अनन्त ही समझेगा। इत्यादि।

जब लग तन में आहै सोई। तब लगि चेति न देखै कोई॥
तब चेतिहो जब तजि हो प्राना। भया यान तब मन पछताना॥
इतना सुनत निकट चलिआई। मन विकार नहिं छूटी भाई॥

साहब कहते हैं कि जिस अनन्त को तटस्थ मानकर उसके आदि अन्त को सब खोजते हैं। सो अनन्त ही जब लग (जब तक) जीवित अपने शरीर में अन्तर्यामी रूप से आत्मरूप से जीवरूप से आहै (वर्तमान है) प्रकट है। तब तक कोई तटस्थवादी अविवेकी चेतकर (सावधान होकर) नहीं देखता है, किन्तु लोकान्तर में दर्शन करना चाहता है।

परन्तु क्या तब चेतोगे (विचारादि कर सकोगे) कि जब प्राण त्यागोगे। अर्थात् मरने पर मानव शरीर गुरु आदि के अभाव रहते चेत नहीं सकोगे। अतः चेतने के बिना जब जिसका इस मानव शरीर से यान (यात्रा गमन) भया, तब वह मन में पश्चात्ताप ही किया। तुम्हें भी अभी चेतने बिना फिर मन में पछताना होगा। अतः अभी चेतना चाहिये।

इतनी बातों को सुनते सुनते मृत्यु भी निकट चल आई, परन्तु हे भाई चेतने के बिना किसी के मन के विकार कामादि नहीं छूट सके (मन के विकारों से छुट्टी नहीं मिली) तथा इन बातों को सुनकर जिनकी बुद्धि मोक्ष मार्ग के निकट में आई (शुभेच्छा हुई) चेतने के बिना उनकी भी बुद्धि विकारों से नहीं छूट सकी। अतः सचेत होकर आत्मानुभव कर्तव्य है।

साखी—तीनि लोक में आय के, छूटि न काहु कि आश।
एक अँधरा जग खाइया, सबका भया विनाश॥५३॥

तीनों लोक में कहीं भी जन्म लेकर आने से, अर्थात् उत्तम स्वर्गादि में भी प्राप्त होने से, तीनों लोक की विभूतियों को प्राप्त करने से आत्मज्ञानादि के बिना किसी की आशा तृष्णा नहीं निवृत्त हुई। और आशा तृष्णा वासना के वर्तमान

रहने पर, एक कामान्ध मन कालरूप होकर संसारी को खा गया, कि जिससे सबका विनाश हुआ और होता है।

रहनी की गहनी बिना, भरमत हैं सब वादि।
शिव शेषहुँ को कहत अस, भरम न छुटत अनादि ॥९७॥
जाके अन्त न शिव लहे, जन लहि हैं सो कौन।
यों विचारि गहि धारणा, सन्त रहत गहि मौन ॥९८॥
आशा साँपिनी खात जग, चेतत नाहि विमूढ।
आशा तज़ि सब सन्त जन, लखते तत्त्व निगूढ ॥९९॥५३॥

इति दुराशा प्रावल्य प्रकरण २५

अथ मृत्यु ममत्व प्रावल्य प्रकरण २६

सम्बन्ध—इस लोक के शरीर सम्पत्ति आदि को विनश्वर समझ कर, इनकी आशा आदि मनुष्य त्यागता भी है। तो ब्रह्मलोक ब्रह्मा आदि के शरीरादि को नित्य मान कर, उनकी आशा आदि से मन के वश में पड़ता है। आत्मज्ञान चेतादि से वञ्चित रहता है। अतः उनकी आशा आदि की निवृत्ति ही के लिये वर्णन है कि—

रमैनी ५४

मरिगौ ब्रह्मा काशिक बासी। शीव सहित मूये अविनाशी॥
मथुरा मरिगौ कृष्ण गोआरा। मरि मरि गये दशो अवतारा॥
मरि मरि गये भक्ति जिन ठानी। सर्गुण में जिन निर्गुण आनी॥

गायत्री द्वारा इस भूमि में जन्म लेने वाले ब्रह्मा मर गये। क्योंकि जिसका जन्म होता है, उसका मरण भी अवश्य होता है। और सो ब्रह्मा स्वरूप से अविनाशी काशी के वासी शिवसहित मुये (स्थूल शरीर को त्यागा) स्थूल शरीर सहित सदा नहीं रह सके। इसी प्रकार मथुरा के निवासी कृष्ण और उनके संगी गोआर (गोप-गोपी) सब मर गये और अनन्तों कल्प के दश-दश अवतार सब मर-मर गये।

और जिन्होंने भक्ति ठानी (की) या सगुण में जिन्होंने निर्गुण को आनी (प्राप्त) किया, भक्ति से सगुण में निर्गुण का अपरोक्ष अनुभव किया, वे भी मर गये। उनके शरीर भी नहीं रह गये।

अतः किसी नित्य शरीर की आशा से भक्ति आदि नहीं करना चाहिये। शरीरों से रहित ही सर्वात्मा को नित्य समझना चाहिये। क्योंकि किसी भी योग विद्या बल से शरीर अविनाशी अचल किसी का नहीं रह सकता है। शरीर शब्द का अर्थ ही विनश्वर है। अतएव—

साखी—नाथ मच्छन्दर छुटे नहीं, गोरख दत्त औ व्यास।
कहहिं कबीर पुकारि के, परे काल के फांस ॥५४॥

कबीर साहब पुकार के कहते हैं कि महा सिद्ध योगी मच्छन्दर (मत्स्येन्द्र) नाथ गोरख नाथ के गुरु मृत्यु से नहीं छूटे (नहीं बचे) न योगी गोरख बचे, न महात्मा दत्तात्रेय बचे, न परम विद्वान् व्यासमुनि मृत्यु से बचे। किन्तु काल के फांस (मृत्यु के वश) में सब परे।

या ये सब काल के फांस से परे रहे। बलात्कार से काल के बन्धन में पड़ने वाले नहीं थे। तो भी अनिवार्य मृत्यु से नहीं छूटे। स्वेच्छा से भी मरना ही पड़ा। अर्थात् सिद्ध अवतारादि के शरीरों की भी ऐसी अवस्था कालादि वश आ जाती है। कि जिससे उन्हे भी शरीर को त्यागने की इच्छा अवश्य होती है। अतः शरीर नहीं रहता है।

संसारावलयो ग्रस्ता निगीर्णा रुद्रकोटयः।
भुक्तानि विष्णुवृन्दानि क्व न शक्ता वयं मुने ! ॥ १ ॥
(योग वा० प्र० ४।१०।१७)

संसार की पक्तियों को हम खा चुके हैं। करोड़ो रुद्र को निगले हैं। कैक वृन्द विष्णु को खा चुके हैं, हे मुने ! हम कहाँ समर्थ नहीं हैं। यह भृगु मुनि के प्रति काल की उक्ति है।

ब्रह्मा मर गै शिव सहित, अमर न बाँचै कोय।
तदपि न त्यागत आश नर, जीवन की मति होय ॥१००॥५४॥

रमैनी ५५

गये राम औ गये लक्षमना। संग न गई सीता अस धना ॥
जात कौरवहि लागु न बारा। गये भोज जिन साजल धारा ॥
गये पण्डु कुन्ती सी रानी। सहदेवहुँ जिन मति बुधि ठानी ॥
सर्व सोने का लंक उठाया। चलत बार कछु संग न लाया ॥

रामादिक गै त्यागि सब, सम्पति अति बलवन्त ।
लखि ममता तजता नहीं, धन जोड़त ह्वै अन्त ॥ १०१ ॥

इस मानव लोक और देह से श्रीराम और लक्ष्मण गये । अर्थात् जिस देह की बाल्यादि अवस्था होती है, उस देह सहित यदि किसी लोकान्तर में भी जाया जाय, तो कभी उसको छोड़ना ही पड़ेगा । और उस देह के छूटने पर यदि किसी को उस देहका कहीं दर्शन होता है, तो उस दर्शन को माया बल से स्वप्न दर्शन के समान नूतन कार्य विषयक समझना चाहिये । अतः रामादि मानव देह रहित हो गये, यह सत्य है । और सीता ऐसी धना (धन्या) स्त्री भी राम जी के साथ नहीं गयी ।

दुर्योधनादि कौरव (कुरुवंशी) को जाते में बार नहीं लगा । और जिन (जिस) भोज राजा ने अपनी धारा नामक नगरी को साजा (सुसज्जित किया) सो भोज भी गये ।

पण्डु राजा गये । कुन्ती सी विदुषी उनकी रानी गई । मति बुद्धि (भावी वर्तमान विषयक ज्ञान) को ठानने (प्रकट प्राप्त करने) वाले सहदेव भी गये ।

और सम्पूर्ण लङ्का में सोने के दिवाल उठाया (बनाया धारण किया) सो रावण चलते समय कुछ भी संग नहीं ले जा सका ।

जाकी पुरी अन्तरिक्ष छाई । सो हरिचन्द देखल नहिं जाई ॥
मूरख मानुष बहुत संयोवै । अपने मरे और लगि रोवै ॥
इ न जानै अपने मरि जैवे । विभव टका दश और हि खैवे ॥

जिस हरिश्चन्द्र की पुरी (नगरी) ऊँचे महलों के कारण मानो अन्तरिक्ष लोक में छाई (बसी) थी । सो हरिश्चन्द्र आज कहीं देखे नहीं जाते हैं । न मरने के बाद हरिश्चन्द्र ने उस नगरी में जाकर फिर कभी उसको देखा ।

ऐसा वियोग होने पर भी मूर्ख मनुष्य बहुत संयोग (संग्रह) करते हैं । और आप मरते हैं (मरण के निकट पहुँच जाते हैं) तो भी अन्य धन पुत्रादि के लिये रोते हैं (चिन्ता करते हैं) आत्मचिन्तन उस समय भी नहीं करते हैं ।

और यह नहीं जानते (समझते) हैं, कि हम आप मरकर यहाँ नहीं रह सकेंगे । मर कर कहीं अन्यत्र ही जाना होगा । तो जो हमारे दश टका (रुपये) विभव हैं, उन्हे लेकर अन्य लोग ही खायेगें (भोगेंगे) हमारे काम के ये भी नहीं रहेंगे । फिर हम अन्य के लिये क्यों चिन्ता करें । इत्यादि ।

साखी—अपनी अपनी करि गये, लागि न काहु कि साथ ।
अपनी करि गौ रावणा, अपनी दशरथ नाथ ॥५५॥

उक्त रीति से अन्त में भी नहीं समझने विचारने के कारण अन्त काल तक अपनी अपनी (मेरी मेरी) करके सब गये । और जाते हैं । परन्तु कोई वस्तु (विभव) किसी के साथ नहीं लगी । तो भी अपनी बुद्धि करते ही रावण गया और अपनी बुद्धि करके ही दशरथनाथ (दशरथ राजा) गये । तथा दशरथजी के नाथ (प्राणाधार) राम जी अपनी करके गये ।

रागद्वेष मोहादि के, ममता होत निमित्त ।
रागद्वेष वश प्राणि पुनि, लखत न हित अनहित्त ॥१०२॥
होत मोह कामादि वश, बिनु विवेक के प्राणि ।
करत पाप अनुचित क्रिया, लखत न निज हित हानि ॥१०३॥
ममता तजि भजु राम को, समता करु सब माँहि ।
तब सुख सुयश महान फल, पाइय सुजन सदाहि ॥१०४॥
सम असङ्ग इक ब्रह्म है, सत चित आनन्द रूप ।
ममता तजि तिहि पाइये, सो निज शुद्ध स्वरूप ॥१०५॥५५॥

इति मृत्यु ममत्व प्राबल्य प्रकरण २६

अथ ममतादि से तापादि वर्णन प्रकरण २७

रमैनी ५६

दिन दिन जलै जलन के पाँऊ । डाढे जाय न उमगे काँऊ ॥
कान्द न देइ मसखरी करई । कहु दुइ भाँति कैसे निस्तरई ॥

उक्त ममता और मोह के वशवर्ती प्राणी प्रतिदिन काम क्रोधादि रूप अग्नि से जलते हैं । दैहिकादि तापों से पीड़ित होते हैं । और फिर भी जलन (अग्नि तुल्य) विषयादि में पाँव (मन देते हैं, जिससे डाढ़े (जलाये) जाते हैं । और काँऊ (कोई कभी) उमगते (बढ़ते पनपते) नहीं हैं ।

और सद्गुरु सत्पुरुषों की बातों उपदेशों में कान नहीं देते हैं । उल्टा उनसे मसखरी करते हैं । तो कहो कि इन दोनों प्रकारों से निस्तार कैसे पा सकते हैं ।

अर्थात् सत्पुरुष का अनादर और उनके उपदेश का अनादर ये दोनों कठिन संसार के हेतु हैं। इनके रहते संसार से निस्तार (मोक्ष) नहीं होता है। किन्तु आदर से निस्तार होता है।

अकरम करै कर्म को धावै। पढ़ि गुणि वेद जगत समुझावै॥
छूँछा परै अकारथ जाई। कहहिं कबिर चित चेतहु भाई॥५६॥

क्योंकि दयालु अहिंसक सत्पुरुष को और उनके उपदेश को नहीं मानने वाले हिंसा आदि रूप अकरम (अकर्तव्य पाप कर्म) करते हैं। और उसी को कर्तव्य कर्म रूप करके ध्याते (समझते हैं) या अकर्म करते हैं। और बन्ध प्रद कर्म के लिये धावते दौड़ते हैं। और वेदादि को पढ़ गुण कर भी उन अकर्म कर्म को संसारी के प्रति समझाते हैं। परन्तु सत्सङ्गादि द्वारा कुकर्म को त्यागे विना उनके पठन पाठनादि सब छूछा पड़ते हैं (निष्फल होते हैं) और अकारथ (अनर्थ अकार्य) रूप उनका जीवन जाता है। अतः कबीर साहब कहते हैं कि हे भाई! चित (चेतनात्मा) को चेतो (समझो) चित्त से सावधान होकर चेतो (विचारादि करो)।

ममताकृत शोकाग्नि में, जरत सकल संसार।
गुरु शिष्यहुँ बाँचत नहीं, ममता तजै उबार॥१०४॥५६॥

कृतिया लोक सूत्र इक अहई। लाख पचास की आयु कहई॥
विद्या वेद पढ़ै पुनि सोई। वचन कहत प्रत्यक्षे होई॥
पहुंची बात विद्या के पेटा। वाहु को भरम भया संकेता॥

लोक में कृतिया (कार्यों का बोधक) सूत्रात्मक एक ज्योतिष का ग्रन्थ है। अथवा सूत्र (ब्रह्मा) का एक कृतिया (कार्यात्मक) ब्रह्मलोक है। और उस ग्रन्थ को पढ़ने वाले लाखो पचासों की आयु का, या ब्रह्मलोक वासी आदि के पचासों लाख वर्ष प्रर्यन्त की आयु का वर्णन करते हैं। और वे लोग वेदादि विद्याओं को पढ़ते हैं। विद्या और वेद को पढ़ कर विद्या के बल से ही आयु आदि का वर्णन करते हैं। परन्तु वचन इस प्रकार से कहते हैं, कि मानो प्रत्यक्ष ही देखकर कहते हों।

वस्तुतः प्रत्यक्ष देख कर नहीं कहते हैं। किन्तु विद्या की बात उनके पेट (हृदय) में पहुँची (निश्चित) रहती है। अतः वह ज्ञान संकेत जन्य होता है, प्रत्यक्ष नहीं। और उन्हें भी उस संकेत का भ्रम हुआ है और होता है। कि जिससे

मिथ्या मायामय को सत्य मानते हैं। अतः ज्योतिपादि से चिरायुष्कता आदि को समझकर चित्त के चेतने में आलस्यादि नहीं करना चाहिये। शीघ्र चेतना चाहिये।

साखी—खग खोजन कहँ तूँ परा, पीछे अगम अपार।
विनु परिचय ते जानहूँ, झूठा है हंकार ॥५७॥

चिदात्मा को जाने विना खग (आकाशगामी चिरजीवी देवादि) को खोजने में तूँ (मनुष्य) व्यर्थ परा (लगा है) और उस देवादि के पीछे (पूर्व में) वर्तमान अगम अपार वस्तु है। उस कारण को छोड़कर तुम आगे के कार्यों को खोजते हो। और उस पीछे की वस्तु के परिचय के विना देवादि को सत्य समझते हो। और ज्ञानीपन का अहंकार करते हो। परन्तु यह अहंकार झूठा है। तुम ज्ञानी नहीं हो। आत्मज्ञानी ज्ञानी कहा जाता है, अन्य नहीं ॥५७॥

इति ममतादि जन्य तापादि वर्णन प्रकरण २७



अथ गुरु भक्ति जनित निर्द्वन्द्व स्वाराज्य प्रकरण २८

रमैनी ५८

तैं सुत मानु हमारी सेवा। तो कहँ राज देव हो देवा॥
अगम दुर्गम गढ़ देऊँ छुड़ाई। औरो बात सुनहु कछु आई॥

हे सुत ! (सज्जन शिष्य) मिथ्या अहंकारों को त्यागकर तुम हमारी (गुरु की) सेवा को मानो। आत्मज्ञान के लिये सद्गुरुकी सेवा को कर्तव्य समझो और सेवा करो, तो हे देव ! (दैवी सम्पत्ति वाले) तुझे मैं (सद्गुरु) निष्कण्टक राज्य (स्वतन्त्र मोक्ष) दूँगा। क्योंकि—

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
समं पश्यन्नात्मयाजी स्वराज्यमधिगच्छति ॥ (मनुः१२।९१)

सब प्राणी में अपनी सम आत्मा को और आत्मा में सब प्राणी को देखता हुआ आत्म पूजक स्वराज्य (मोक्ष) पाता है।

और हे देव ! मैं अगम दुर्गम गढ़ (कल्पित लोक परलोक छोड़ा दूँगा। गमनागमन से रहित, देहों से मुक्त अचल सुख स्वरूप कर दूँगा। अतः लोकादि रूप गढ़ों से और (अन्य) वस्तु की बात को गुरु शरण में आकर कुछ भी सुनो।

उत्पति परलय देउँ दिखाई। करहु राज सुख विलसहु आई॥
एको बार न होइहैं बाँको। बहुरि जन्म नहिं होइहैं ताको॥
जाय पाप सुख दीहौं घाना। निश्चय वचन कबीर के माना॥

यदि तुम सतगुरु के वचनों को सुनोगे तो उत्पत्ति प्रलय को देखा दूँगा (अनुभव करा दूँगा) फिर उत्पत्ति आदि से रहित होकर राज्य करो और निज राज्य स्वरूप में आकर सुखमंय विलास (लीला) करो (ब्रह्मानन्द का अनुभव करो)। इस राज्य विलास में आने पर एक वार भी बाँका नहीं होगा। क्योंकि (ताको इस राज्य में आने वाले को) फिर जन्म नहीं होगा।

और उसके जन्म के कारणादि रूप अविद्या मोह कामादि रूप सब पाप (दुःख के हेतु) चले जायेगें (नष्ट हो जायेंगे) इस प्रकार समूल दुःख को नष्ट करके मैं घना (निरन्तर अनन्त) सुख दूँगा। इस कबीर साहब के वचन को निश्चय करके मानना चाहिये। क्योंकि जिन्होंने निश्चय करके माना, उन्हें स्वाराज्य मिला घना सुख हुआ इत्यादि।

साखी—साधु सन्त तेई जना, माना वचन हमार।
आदि अन्त उतपति प्रलय, देखहु दृष्टि पसार॥५८॥

और वे जन साधु (चतुर=कुशल) सन्त (सज्जन) हैं कि जिन्होंने हमारे (सद्गुरु के) वचनो को माना है। और स्वाराज्य का लाभ किया है। अतः सब मनुष्य सद्गुरु के वचनों को मानो। और विवेक विज्ञानरूप दृष्टि को पसार (फैला) कर सबके आदि अन्त स्वरूप सत्यामा को और मायामय मिथ्या उत्पत्ति प्रलय को देखो (समझो) क्योंकि—

प्रलयोत्पत्तितत्त्वज्ञाः सर्वज्ञाः समदर्शिनः।
वीतरागा विमुच्यन्ते पुरुषाः सर्व बन्धनैः॥ (ब्रह्म०पु०११।६।६)

प्रलयादि के तत्त्व को जानने वाले, सबके सार को जानने वाले समदर्शी विरक्त पुरुष सब बन्धनों से मुक्त होते हैं। अतः—

ममता तजि गुरु सेवियो, तो निज परिचय होय।
सुख स्वराज्य समता मिलै, दुख भय रहै न कोय॥१०७॥५८॥

इति गुरु भक्ति जनित निर्द्वन्द्व स्वराज्य प्रकरण २८

अथ वैराग्यार्थोपदेश प्रकरण २९

रमैनी ५६

चढ़त चढ़ावत भड़हर फोरी। मन नहिं जानै केकर चोरी॥
चोरा एक मुसे संसारा। बिरला जन कोइ बूझनहारा॥
स्वर्ग पताल भूमि ले बारी। एके राम सकल रखवारी॥

गुरु शरणागति ज्ञान बिनु, गगन चढ़ावत प्रान।
चहत चढ़न स्वर्गादि में, जानत नहिं निज हान ॥१०८॥

सद्‌गुरु की बात तथा सेवा को नहीं माननेवाले लोकान्तरादि में स्वयं चढ़ते में तथा अन्य को चढ़ाते में (स्वर्गादि के लिये कर्मादि करते कराते में) शरीररूप भड़हर (घट) को फोड़ते हैं। अतः कामादि के वशीभूत अशुद्ध उनका मन यह नहीं जानता है कि मूल धन सुख शान्ति की चोरी कौन करता है।

और मोह अविवेकरूप एकही चोर संसारी के सब धन को चोराता है, उसको बूझने (समझने) वाला कोई विरला ही सत्पुरुष होता है। और स्वर्ग, पाताल, भूमि तथा बारि (जल) ले (पर्यन्त) सब स्थानों में एक ही राम सब का सदा रखवारी (रक्षा) करता है (ईश्वर देवादि स्वरूप से सब का रक्षक होता है) तथा एक राम के ज्ञानादि से मुक्ति रूप रक्षा होती है।

साखी—पाहन ह्वै ह्वै सब गये, बिनु भितियन को चित्र।
जासो कियो मिताइया, सो धन भया न हित्त ॥५९॥

उस अत्यन्त हित राम के भजन निष्काम सत्कर्म उपासना सत्सङ्ग गुरुसेवा आदि से मनुष्य में चेतनता (विवेकिता) आती है। अतः भजनादि के अभाव से उक्त चोर और राम के ज्ञान से रहित सब मनुष्य पाहन के समान जड़ हो होकर गये। और बिना भित्तियों के ही शून्य आकाश में अनन्त लोक देहादि की रचना किये (मिथ्यालोकों की सत्य रूप से कल्पना किये)। और जिन वर्तमान धनादिकों से मिताई (मित्रता प्रेम) किये, सो धनादि इनका हित नहीं हुआ। तो कल्पित चित्र कैसे हित हो सकता है। ये सब वासना आदि द्वारा अहित ही हुए और होते हैं। अतः हित के लिये सत्यात्माराम और सद्‌गुरुही सेवनीय हैं॥५६॥

रमैनी ६०

छाड़हु पति छाड़हु लबराई । मन अभिमान छूटि तब जाई ॥
जनि लो चोरी भिक्षा खाई । फिरि बिरवा पलुहावन जाई ॥
पुनि सम्पति औ पति कहँ धावै । सो बिरवा संसारहिं आवै ॥

उक्त अत्यन्त हित राम के ज्ञान और सद्गुरु की प्राप्ति शान्ति आदि के लिये, अहित स्वरूप धनादि के पति (पतित्व=स्वामित्व) के अभिमान को छोड़ दो । तथा सत्य पति राम की प्राप्ति के लिये मिथ्या कल्पित पतियों को छोड़ दो, और लबराई (असत्य बोल व्यवहार) को छोड़ दो । तब अनर्थ का हेतु मन का अभिमान छूट जायगा ।

और चोरी (अन्याय) से किसी के धनादि जनि (नहीं) लो । किन्तु भिक्षा (न्यायार्जित) अन्न को खावो । अपने धनों को ईश्वरार्पित करके उनसे मांग कर खाओ तो यह धारणा वृत्ति ही प्रथम के शुष्क बुद्धि बल जीव रूप बिरवा (वृक्ष) को पलुहावने (पनपाने बढ़ाने) के लिये जन्म लेगी (उक्त वृत्ति से सदा आनन्द मिलेगा)।

ऐसा नहीं करके जो कोई पुनः पुनः (बार-बार) धन सम्पत्ति और पतित्व (स्वामित्व) तथा मिथ्या पति के ध्यानादि करते हैं। धनादि के लिये धावा करते (दौड़ते) हैं । सो बिरवा (जीव) बार-बार संसार ही में आते हैं। संसार बन के वृक्ष बने रहते हैं ।

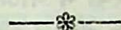
साखी—झूठ झूठ के छाड़हू, मिथ्या यह संसार ।
तिहि कारण मैं कहत हूँ, जाते होय उबार ॥६०॥

उपदेश है कि जन्मादि रूप संसार से रहित होने के लिये पतित्वादि के अभिमानादि रूप संसार के हेतुओं को और संसार को झूठ से भी झूठ (अत्यन्त मिथ्या) समझ कर अभिमान ममता आदि को त्याग दो । क्योंकि यह संसार वस्तुतः मिथ्या (अनिर्वाच्य) है । परन्तु मिथ्या होते भी सदुपदेशादि जन्य ज्ञानादि के बिना इस से उबार (निस्तार) नहीं होता है । यह संसार दुष्ट स्वप्न के समान अज्ञ के लिये दुःखद बना रहता है। इसी कारण से मैं कहता हूँ, कि जिसके श्रवणादि जन्य ज्ञान विरागादि से मुमुक्षुओं को उबार (मोक्ष) हो । क्योंकि—

"नात्यक्त्वा सुखमाप्नोति नाऽत्यक्त्वा विन्दते परम् ।
नाऽत्यक्त्वा चाभयः शेते त्यक्त्वा सर्वं सुखी भव ॥"
(महाभा. शा. अ. १७६।२२)

त्याग के बिना कोई सुख नहीं पाता है। न परपद परब्रह्म को प्राप्त करता है, न अभय होकर सोने पाता है। अतः भयादि के कारणरूप सब वस्तुओं को त्याग कर सुखी होवो, यह उपदेश है ॥६०॥

इति वैराग्यार्थोपदेश प्रकरण २९



अथ अज्ञानज वञ्चनादि प्रकरण ३०

रमैनी ६१

धर्म कथा जो कहते रहई। लाबरि उठी परातहिं कहई ॥
लाबरि बिहने लाबरि साँझा। इक लाबरि बसु हृदया माँझा॥
रामहुँ केर मर्म नहिं जाना। लै मति ठानिन वेद पुराना ॥
वेदहुँ केर कहल नहिं करई। जरतहिं रहै सुस्त नहिं परई ॥

त्याग विना अभिमान के, धर्म कहत जो मानि।
सो सुख शान्ति न पावई, कह नित झूठ कहानि ॥१०९॥

अभिमान को त्यागे बिना सन्तोष, विराग, आत्मज्ञान से रहित जो कोई, धर्म की कथाओं को कहते रहते हैं। सो मनुष्य काम लोभ अज्ञानादि वश प्रात ही ऊठ कर लाबरी (असत्य कथा) कहते हैं।

बिहने (प्रातः काल के बाद सवेरे) और सन्ध्या के समय भी लाबरी (असत्य) कहते हैं। और कोई एक लाबरि (मिथ्या बात) सदा उनके हृदय में बसती है।

क्योंकि उन्होंने सत्य एक राम के तो मर्म (रहस्य उपदेश स्वरूप) को ही नहीं जाना है। किन्तु सद्गुरु आदि के बिना अपनी मति (बुद्धि) के अनुसार वेद-पुराण को लेकर कथा करना ठाना है।

अतः वेदार्थ के ज्ञानादि के अभावादि से वेदहुँ के कहे हुए धर्मों को वे लोग नहीं करते हैं, इस कारण से कामादि अग्नि से जलते रहते हैं, शान्ति नहीं पाते हैं।

साखी—गुणातीत के गावते, आपुहि गये भ्रमाय।
माटिक तन माटी मिले, पवनहि पवन समाय ॥६१॥

शान्ति नहीं पाने में कारण है कि वेद के कहना नहीं करने से हृदय की अपवित्रता के कारण गुणातीत सर्वात्मा राम के ज्ञान से रहित प्राणी राम से भिन्न किसी अनात्मा को गुणातीत करके (समझ करके) उसी को गाते में, उसी की धर्म कथा के करते में अपने को भ्रमाय गये (अपने स्वरूप अपने कर्तव्य को भूल गये) हैं। और इसी अवस्था में माटी के स्थूल तन माटी में मिल गये। और प्राणवायु महावायु में समाय गया (लीन हो गया) ब्रह्मात्मा में नहीं लीन हुआ। अतः शान्ति नहीं मिली। जन्मादि संसार बाकी रह गया ॥६१॥

रमैनी ६२

जो तैं कर्ता वरण विचारा। जन्मत तीनि दण्ड अनुसारा॥

गुणातीत के ज्ञान बिनु, आपुहि मानत शुद्ध।
शुद्ध सकल घट में वसै, ताहि न लखत अबुद्ध ॥११०॥

जो तुम अपने स्वरूप को भूलने वालों ने तटस्थ गुणातीत कर्ता का विचार किया। और—"चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः।" (भ० गी० अ० ४।१३) इत्यादि के अनुसार गुण कर्म विभाग से या स्वाभाविक जन्म मात्र से वर्णों का विचार (स्वीकार) किया। तो क्या जन्म से ही तन, मन और वाक् इन तीनों के दमनरूप दण्डों का भी अनुसरण (धारण) किया।

अर्थात् तन, मन वाक् के दमन (वशीकरण) से कोई श्रेष्ठ वर्ण होता है। रक्षणादि कर्म से क्षत्रिय आदि होते हैं, सो जन्ममात्र से नहीं हो सकते हैं। अथवा तुमने स्वयं कर्म कर्ता होकर वर्णों का विचार किया। और—

"जायमानो ह वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणै ऋणवाञ्जायते।" (तैत्ति० सं० ६।३।१०।५)

इत्यादि वचनों के अनुसार देव, पितृ, ऋषि ऋणरूप तीन दण्ड का जन्मतः स्वीकार किया, सो भ्रम से किया। क्योंकि कामी गृहस्थ के लिये तीन ऋण श्रुति में कहे गये हैं। जन्मजात के लिये नहीं। तीन तापरूप दण्ड भ्रम से ही समझो। ताप देह के धर्म हैं। भ्रम से आत्मा में भासते हैं।

जन्मत शूद्र मुये पुनि शूद्रा। कृतम जनेउ डारि जग मुद्रा॥

और वह देह भी जन्म के समय शूद्र (संस्कार रहित अशुचि) रहती है। फिर मरने पर शूद्र ही हो जाती है। मध्यकाल में कृतम (कृत्रिम) जनेउ डारकर

कृत्रिम देह का ही संसार में व्यवहार के लिये मुद्रा (चिन्ह) किया जाता है। आत्मा या सूक्ष्म देह में न कोई जाति रहती है, न कोई चिन्ह किया जा सकता है।

जो तुम ब्राह्मण ब्राह्मणि जाया। और द्वार ह्वै काह न आया॥
जो तुम तुरुक तुरुकिनी जाया। पेटहि काह न सुनत कराया॥

और यदि तुम जन्म से ब्राह्मण हो और ब्राह्मणी ने तुझे जाया (जन्माया) है, या ब्राह्मणी तेरी जाया (स्त्री) है, तो अन्य की अपेक्षा और (अन्य) द्वार से आप क्यों नहीं आये ? सृष्टि काल में मुख से ब्राह्मण की सृष्टि कही जाती है। अतः मुख से वेदाऽध्ययनाऽध्यापनादि द्वारा ब्राह्मण हो सकता है। अन्यथा नहीं।

और यदि तुम जन्म से तुरुक हो और तेरी जाया (स्त्री) तुरुकिनी है। या तुरुकिनी ने तुझे जन्माया है, तो पेट से ही सुन्नत कराकर क्यों नहीं आये ? अर्थात् देह के धर्म भी जाति आदि, मिथ्या देह की अपेक्षा भी अत्यन्त मिथ्या हैं। इनके अभिमानादि मुमुक्षु के लिये अत्यन्त त्याज्य हैं।

कारी पिअरी दूहहु गाई। ताकर दूध देहु बिलगाई॥
छाडु कपट नल अधिक सयानी। कहहिं कबिर भजु सारंगपानी॥

और काली पीली गौ को दूहो। और उनके दूध को विलगा देना (भिन्न करना) चाहो, तो नहीं बिलगा सकते हो। वैसे ही अनेक वर्ण के देहों में आत्मा के विवेक करने पर उसमें भेद को नहीं सिद्ध कर सकते हो। किन्तु कपटादि से आत्मा में भेद मानते हो। अतः हे मनुष्यों ! आत्म ज्ञानादि के लिये कपटादि को छोड़ दो और अधिक सयानि (लौकिक चतुराई वञ्चकता) को त्यागो। और सारंगपानी (शुद्ध सात्त्विक विष्णुदेव) को भजो। या कपटादि को त्याग कर शुद्ध दूध जल तुल्य ब्रह्मात्मा को भजो। क्योंकि—

"गवामनेकवर्णानां क्षीरस्याप्येकवर्णता।
क्षीरवत्पश्यते ज्ञानं लिङ्गिनस्तु गवां यथा ॥१॥ (ब्रह्मविन्दूप० ९)॥६२॥

रमैनी ६३

नाना रूप वरण इक कीन्हा। चारि वरण वे काहु न चीन्हा॥
नष्ट गये करता नहिं चीन्हा। नष्ट गये औरहि मन दीन्हा॥

जिसका भजन कर्तव्य है, उस कर्ता ने नानारूप वाले मानव शरीरों का एक वर्ण (मनुष्यत्व) किया है। गुण कर्म स्वभावादि से फिर भिन्न-भिन्न वर्ण हो

गये हैं। उस कर्ता से चार वर्ण हुए हैं, इसमें गो-महिषादि के समान कोई भेदक चीन्ह (लक्षण) नहीं है। तथा एक वरण वाला एक कर्ता ने निज शक्तियों से नानारूप अपना ही किया है—

"य एकोऽवर्णो बहुधाशक्तियोगात्।" (श्वेता० ४।१)

"एकं स्वं बहुधा कुर्याद् बहुरूपं यथा नटः।" (अनुभूति प्रकाश० ११।९०)

अतः चार खानि के वे चार वरण उसी के स्वरूप हैं। परन्तु विवेकादि के विना उस कर्ता को कोई चीन्हता नहीं है। और जो लोग उस कर्ता को नहीं चीन्ह पाये, सो सब नष्ट गये (नष्ट हुए) और जो उससे अन्य में मन लगाये (अनात्मप्रेमी हुए) सो नष्ट हुए।

नष्ट गये जिन वेद बखाना। वेद पढ़ा पै भेद न जाना॥
विमलख करै नयन नहिं सूझा। भया यान तब कछु नहिं बूझा॥

और आत्मा से अन्य में मन लगानेवाले जिन लोगों ने वेदों का व्याख्यान भी किया वे भी नष्ट हुए। क्योंकि अनात्म-प्रेमिता के कारण उन लोगों ने वेदों को पढ़ा तो भी वेदों के भेद (मर्म रहस्य) को नहीं जाना (वेद प्रतिपाद्य कर्ता को नहीं समझा)। क्योंकि सर्वथा दर्शनशक्ति से रहित अन्धा यदि विमलख (आँख को विमल करनेवाली औषधि सुरमा) का प्रयोग करता है, तो भी उसको नहीं सूझता है। वैसे ही अनात्मप्रेमी सर्वथा अविवेकी को वेदादि के पढ़ने से ज्ञान नहीं होता है। ऐसे मनुष्यों का जब इस मानव देह से यान (गमन) हुआ, तब वे लोग कुछ नहीं बूझ समझ सके।

अर्थात् विवेकी हरिगुरु भक्त तो यदि वर्तमान जन्म में किसी प्रतिबन्धक से ज्ञान नहीं पा सका, तो भावी जन्म में प्रतिबन्धक कर्मादि के भोगादि से नष्ट होने पर ज्ञान पाता है। परन्तु अविवेकी भक्ति विचारादि रहित अनात्मप्रेमी पशु-पक्षी आदि योनियों में प्राप्त होने के कारण कुछ समझ नहीं पाते हैं।

साखी—नाना नाच नचाय के, नाचै नट के वेष।
घट घट अविनाशी बसै, सुनहु तकी तुम शेख॥६३॥

विवेकादि के विना मरने पर भी सत्यात्मा का ज्ञान नहीं हो सकता है। अतः जीवित अवस्था में ही विवेकादि पूर्वक ज्ञान के लिये उपदेश है कि शरीर

इन्द्रिय, सूर्य-चन्द्रादि को नाना नाच नचाय कर जो सर्वात्मा बुद्धि आदि उपाधि वाला होकर (मानो नट तुल्य वेषों को धरकर) औपाधिक रूप से नाचता है (नाचता हुआ प्रतीत होता है)। वस्तुतः वह अचल है। अतएव अविनाशी स्वरूप से घट घट में बसता है (घटों के नाशादि से उसके नाशादि नहीं होते हैं।

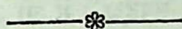
हे शेखतकी ! (विवेकियों शेष के जिज्ञासुओं) उस अविनाशी के श्रवणादि करो (विनश्वर देह वर्णादि के अभिमानादि को त्यागो) समझो कि—

"चत्वार एकस्य पितुः सुताश्च तेषां सुतानां खलु जातिरेका।
एवं प्रजानां हि पितैक एव पित्रैकभावान्न च जाति भेदः॥"

(भविष्यपु० १।४१।४५)

शुद्ध सकल घटवासि सत, कर्ता लखत न ताहि।
ताते नशत अबुद्ध नर, लखत ताहि दुख जाहि॥१११॥६३॥

इति अज्ञानज वञ्चनादि प्रकरण ३०



अथ दुर्बोधासक्ति फल वर्णन प्रकरण ३१

रमैनी ६४

काया कञ्चन यतन कराया। बहुत भाँति कै मन पलटाया॥
जौं सौ बार कहौं समुझाई। तैयो धरा छुआ नहिं जाई॥

अविनाशी के ज्ञान बिनु, काया कंचन काहि।
करत यत्न बहु मूढ नर, भ्रमत सदा जग माहि॥११२॥

उक्त एक अविनाशी के विवेक विज्ञानादि के बिना मनुष्यों ने काया (देह) और कञ्चनादि द्रव्यों का ही यत्न (उपाय) किया कराया। और उसी यत्न में बहुत प्रकार से मन को पलटाया (भरमाया)।

ऐसे अविवेकियों के प्रति यदि सैकड़ों बार समझाकर कहा जाय कि कनकादि को और कामिनी की काया को देख कर नहीं भूलो (इनमें आसक्त नहीं होवो) न केवल निज काया पोषक होवो। किन्तु इस काया से परोपकार भक्ति सद्विचारादि करो। तो इस प्रकार कहने पर भी इन अत्यन्त कामियों से यह सदुपदेश धरा और छूआ भी नहीं जाता है। ऐसे उपदेशों को वे लोग सुनना नहीं चाहते हैं।

अथवा कायामें जो कञ्चनतुल्य दीप्त आत्मा है, उसके लिये गुरुने यत्न कराया।
और—"कनक कामिनी देखि के, तूँ मति भूल सुरंग ॥
× × × ×
चित चञ्चलता छोड़ दे, माया से मन फेर ॥
जाहि ते सब कुछ भया, ताहि काह न हेर ॥"

इत्यादि उपदेशों से सैकड़ों वार कामियों के मन को वहुत प्रकार से अनात्मा से पलटाया, तौ भी उपदेश धरा हुआ नहीं जाता है। न गृहीत-कनकादि त्यागे जाते हैं।

जन के कहे जु जन रहि जाई। नव निद्धी सिद्धी सो पाई ॥
सदा धर्म तिहि हृदया बसई। राम कसौटी कसते रहई ॥
जो रे कसावट अन्ते जाई। सो बावर अपने बौराई ॥

और उक्त गुरुजन के कहे (उपदेश) में जो जन (मनुष्य) सदा रह जाते हैं (कनक कामिनी आदि रूप माया से मन को फेर कर जो चित्त की चञ्चलता के त्याग पूर्वक अविनाशी राम को खोजते हैं) तथा अपने को हरि गुरु के जन (दास) कहते हुए सज्जनता युक्त रहते हैं। सो नवनिधि और सब सिद्धियों को अनायास ही पाते हैं। अर्थात् सब इच्छा से रहित नित्य तृप्त हो जाते हैं।

क्योंकि उन गुरु भक्तों के हृदय में सदा धर्म बसता है। और वे लोग बुद्धि रूप कसौटी से सदा सर्वात्मा राम को कसते (भजते विचारते) रहते हैं, ऋद्धि सिद्धि आदि को तुच्छ समझते हैं। और यदि किसी गुरु भक्त का भी कसावट (विचार ध्यान) राम से अन्ते (अन्यत्र) चला जाता है, तो वह बावर (कुविचारी) अपने अपराध से आप बौराता है।

साखी–ताते फाँसी काल की, करहु आपनो शोच।
सन्त सिधाये सन्त जहँ, मिलि रहु पोंचहि पोंच ॥६४॥

ताते (आत्मा राम से अन्य की चिन्ता आदि द्वारा बावरा होने से) काल की फाँसी लगती है और लगी है। अतः अपने स्वरूप राम के ही शोच (विचार ध्यानादि) करो, राम को भजो। और इस विचारादि के लिये सन्त (सज्जन जिज्ञासु) तहाँ सिधाये (गये) कि जहाँ ज्ञानी सन्त रहते हैं। और वहाँ जाकर

सिधाये (सब सिद्धि पाये) और पाते हैं। और पोंच (नीच असज्जन पोंच से मिलकर पोंच ही रहे और रहते हैं। यदि पोंच भी सज्जन का सङ्ग करें तो सज्जन हो सकते हैं। अतः कुसङ्ग के त्याग पूर्वक सत्सङ्ग ही कर्तव्य है।

काया कञ्चन मोह तजि, मानै सद्गुरु बैन।
लहै सकल सुख सिद्धि सो, धर्म गहै दिन रैन ॥११३॥
रामहि सुमिरै सर्वदा, ताते मिटै उपाधि।
राम बिना जो आन भज, ताहि होत सब व्याधि ॥११४॥
ताते नित्यहि राम भजु, जाइय सन्तन पास।
होइय सन्त बिराग गहि, नीच होंहि खल दास ॥११५॥६४॥

रमैनी ६५

अपने गुण कहँ अवगुण कहहू। यहि अभाग जो तुम न विचारहू॥
तुम जियरा बहुते दुख पाया। जल बिनु मीन कौन सचुपाया॥

निज गुण ज्ञान विराग शम, ता बिनु को जग मीत।
परम अभाग्य विचार बिनु, ताहि गहो दृढ़ चीत ॥११६॥

हे मनुष्यों ! तुम अपने गुण (विवेक विचारादि) को जो अवगुण कहते और समझते हो और अन्य देव विषयादि की आशा करते हो, उनमें मन लगाते हो, अतः विचारादि जो नहीं करने पाते हो, यही तुम्हारा अभाग्य है (कुभाग्य का फल और चीह्न है)।

और हे जियरा ! (जीव !) विचारादि के बिना तुम बहुत दुःख पाये हो और आगे भी इसके बिना सुख नहीं पा सकते हो। क्योंकि जल के बिना मछली कहाँ कौन (सचु) सुख पाती है ? तैसे विचारादि द्वारा आत्मलाभ के बिना संसार समुद्र के मीन तुल्य किसने कहाँ कौन सुख पाया ? क्योंकि— "यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति।" (छा० ७।२।२४) जो भूमा (ब्रह्म) है सोई सुख स्वरूप है, अल्प में सुख नहीं है।

चातक जल हल आसहि पासा। स्वाँग धरे भवसागर आसा॥
चातक जल हल भरल जु पासा। मेघ न बरसै चलै उदासा॥

जैसे चातक के आस-पास (अति निकट) में जल हल (था) तो भी वह मेघ से जल चाहता था और चाहता है। वैसे ही आनन्दस्वरूप राम के अत्यन्त

निकट रहते, विचारादि के बिना मनुष्य आनन्द की प्राप्ति के लिये स्वाँग का धारण करता है और विरक्तादि के वेषों का धारण करके भी भवसागर के पदार्थों की ही आशा करता है। देवादि से आनन्द चाहता है।

और चातक के पास में जल-हल (जल समूह) के भरे रहने पर भी यदि मेघ से जल नहीं बरसता है, तो वह उदास होकर फिरता है। वैसे आनन्दस्वरूप के पास में रहते भी अज्ञ प्राणी विषयादि के बिना मारा-मारा भटकता फिरता है।

राम नाम इहे निज सारू। औरो झूठ सकल संसारू॥
हरि उतङ्ग तुम जाति पतङ्गा। यम घर कियहु जीव को सङ्गा॥

जिस आनन्दस्वरूप को अनात्मा मानकर मनुष्य खोजते हैं, वह राम नाम वाला इहे (यह प्रत्यक्ष) निज सार (सत्य) स्वरूप है। और उससे औरो (भिन्न) सब संसार झूठ (मिथ्या) है।

वह सर्वात्मारूप हरि अत्यन्त उतंग (महान्) है। परन्तु उसके ज्ञानादि बिना तुम पतङ्ग जाति तुल्य तुच्छ हुए हो, या हरि (चित्त को हरनेवाली माया) उतंग (उच्च) अग्नि सिखा तुल्य है। तुम उसमें पतङ्ग जाति के समान पड़ते हो। इसीसे यम के घर संसार शरीर में अपने जीवात्मा का संग (सम्बन्ध) किये हो।

किञ्चित है स्वप्ने निधि पाई। हिय न माय कहँ धरहु छिपाई॥
हिय न समाय छोड़ु नहिं पारा। झूठ लोभ तैं कछु न विचारा॥

और यम घर में संग (देहाभिमानादि) करके जिस निधि को तुमने पाई है, सो स्वप्न की निधि के समान किञ्चित् तुच्छ है—"यदल्पं तन्मर्त्यम्।" (छा.७।२३।२) अत्यन्त अल्प विनश्वर है। परन्तु तुम उसीको सर्वश्रेष्ठ जानकर बहुत यत्न से छिपाकर रखते हो और वह तेरे हृदय में समाती नहीं है, अन्यत्र कहाँ छिपाकर धरोगे कि जहाँ कोई न देखे, न ले सके।

तुम उस को हृदय में धरने योग्य मानते हो। परन्तु वह हृदय में समाती नहीं है। न तुम उसके पारा (पाछा) छोड़ते हो, न छोड़ने में पार पाते हो। अतः उस झूठी वस्तु के लोभ के कारण तुमने कुछ भी विचार नहीं किया।

सुस्मृति कीन्ह आपुहि नहिं माना। तरुवर तर छागर ह्वै जाना ॥
जिव दुर्मति डोलै संसारा। ते नहिं सूझै वार न पारा ॥

सत्यात्मा के विचार नहीं करने से तुमने अनात्मपदार्थ निधि आदि की सुस्मृति (स्मृति स्मरण ध्यान) की और आपुहि (अपने आत्मा राम को) नहीं माना (आत्मा के श्रवण-मनन ध्यान नहीं किया)।

अतः संसार वन के लोकादिरूप तरुवर (वृक्ष) के तर (तले नीचे) तुझे छागर (बलि पशु बकरा) होकर जाना होता है और होगा। जैसे अक्षत के दूब चावलादि को खाता हुआ बकरा नष्ट होता है। तैसे विषय भोगते हुए नष्ट होगे।

क्योंकि सब दुर्बुद्धि जीव इसी प्रकार संसार में डोलता है और इसी लोभादि भोगादि के कारण संसार के वार-पार नहीं सूझते हैं।

साखी—अन्ध भया सब डोलये, कोइ न करै विचार।
कहा हमार मानै नहिं, किमि छूटै भ्रमजाल ॥६५॥

आशा आदिवश अविवेकान्ध कामान्ध होकर सब भटकते हैं और विवेकादि के लिये कोई स्वयं विचार नहीं करते हैं। न हमार (सद्गुरु का) कहा मानते हैं, तो भ्रमजाल (भ्रम समूह बन्धन) कैसे छूटे ? विचार और सदुपदेश ही बन्धन निवृत्ति के मुख्य हेतु हैं, अन्य नहीं। प्रथम भी कहा गया है कि— "कहु दुइ भाँति कैसे निस्तरई" इत्यादि।

झूठ संग से लोभ करि, करत न सत्य विचार।
बलि पशु सम सो मूढ जन, जन्म जन्म सह मार ॥११७॥
सतगुरु वचन सुनत नहीं, निज पुरुषारथ हीन।
जल बिनु मीन समान सो, तपत अन्ध मति हीन ॥११८॥
सतगुरु शरण विचारयुत, सत्य राम को जानि।
तजत अविद्या जाल को, तपत न सो विज्ञानि ॥११९॥
ताते भजु गुरुचरण को, सुनु गुरु वैन सुखैन।
यह सब सन्तन श्रुति मता, कटै क्लेश ह्वै चैन ॥१२०॥
हरि गुरु भजन बिना नहीं, होत ज्ञान विज्ञान।
बिनु विवेक वैराग्य नहि, ताते भजिय महान ॥१२१॥६५॥

इति दुर्बोधासक्ति फल वर्णन प्रकरण ३१

अथ सद्गुरु साधु शिष्य प्रदर्शन प्रकरण ३२

रमैनी ६६

सोइ हित बन्धु मोहि मन भावै । जात कुमारग मारग लावै ॥
सो सयान मारग रहि जाई । करै खोज कबहूँ न भुलाई ॥

गुन गाहक के बन्धु हित, सतगुरु सम नहिं कोय ।
सरल हृदय गहि पन्थ शिख, भव बन भूल न सोय ॥१२२॥

अविवेक के कारण जो अन्ध तुल्य संसार में भटकते हैं, उनके लिये सोई हित और बन्धु मेरे मन में भाते (भासते) हैं कि जो परोपकारी सद्गुरु, कुमार्ग में विवेकादि के विना जाते हुए को विवेक के प्रदान पूर्वक सुमार्ग में लाते हैं। हिंसादि अधर्म छोड़ा कर अहिंसा आदि चेताते हैं। अनात्मा से विमुख करके आत्म सम्मुख करते हैं।

और वही सयान (चतुर) शिष्य है कि जो सद्गुरु सत शास्त्र से ज्ञात सत मार्ग में ही रहता है। काम क्रोधादि वश मार्ग से विचलित नहीं होता और कहीं संशयादि होने पर जो सत्संग विचारादि द्वारा सदा सन्मार्ग सद्वस्तु का ही खोज करता है। और प्राप्त ज्ञान सत्मार्ग सतवस्तु को जो कभी भूलता नहीं है। चिन्तन अभ्यास से ज्ञान को दृढ़ किये रहता है।

झूठा सुत है ताको तजई । गुरु की दया राम ते भजई ॥
किञ्चित है एक ते भुलाना । धन सुत देखि भया अभिमाना ॥

और सुत (पुत्र) वित्तादि रूप जो संसार की वस्तु मिथ्या (झूठा) है, उनके संगादि को त्यागे। धन का यथोचित दानादि करे और राम (ईश्वर) से गुरु की दया को भजे (चाहे)। तथा राम से भी अधिक समझ कर गुरु की दया रूप (सन्मार्ग) का भजन (सेवन) करे और सांसारिक रमण के हेतु रूप मायात्मक राम से भजे (भगे) सो सयान है।

और जो किञ्चित् (तुच्छ अविवेकी) हैं, सो एक आत्मा राम को भूले हैं। और उन्हें अनेक धन पुत्रादि को देखकर अभिमान हुआ है और होता है। अथवा गुरु दया आत्मलाभ से अन्य धन पुत्रादि किञ्चित् हैं। और उन्हीं से एक आत्मा भूला है। क्योंकि धन पुत्रादि को देखकर जीवों को अभिमान हुआ है। और निरभिमानी आत्मज्ञान पाता है। इत्यादि।

साखी—दिया खता न किया पयाना, मन्दर भया उजार ।
मरे गये तेइ मरे गये, बाँचे बाँचनिहार ॥६६॥

विचारादि रहित मनुष्य न किसी सत्पात्र के प्रति धन का दान दिया (किया) न यथा योग्य खता (खाया खिलाया) न खाता है। और इस देहसे पयान (यात्रा) किया (कर दिया) फिर मन्दर (देह) उजार (शून्य) भया (हो गया)।

इस प्रकार जो मरे गये, वेई अकेले मरे और खाली हाथ गये। और बाँचे हुए धनादि बाँचने वाले (जीवित) पुरुषों के हो गये। दानादि धर्म किये होते तो धर्म अवश्य साथ जाता। जो ऐसा नहीं किये उनके धनादि किसी प्रकार भी साथ नहीं जा सके। अतः त्याग धर्म अवश्य कर्तव्य है।

(दिया नखताना किया पयाना) ऐसा प्रायः प्रथम चरण का पाठ है। जिसका (दीप) नखताना (बूत गया) इत्यादि अर्थ करते हैं। परन्तु प्रकरण तथा छन्द के अनुसार मूल पाठ ही ठीक है।

कलि में दान प्रधान है, सतगुरु किया सुदान ।
सन्त सकल सो कहत हैं, मूढ़ करत अभिमान ॥ १२३ ॥
तजै झूठ अभिमान छल, करै दान हित जानि ।
भोगै उचित सुभोग को, तब सुख पावै प्रानि ॥ १२४ ॥६६॥

इति सद्गुरु साधु शिष्य प्रदर्शन प्रकरण ३२

अथ अभक्तानर्थ वर्णन पूर्वक भक्तमुक्ति वर्णन प्रकरण ३३

रमैनी ६७

देह हलाय भक्ति नहिं होई। स्वांग धरे नर बहुविधि जोई ॥
धींगा धींगी भलो न माना। जो काहु मोहि हृदय न जाना ॥
मुख कछु और हृदय कछु आना। स्वपनेहु काहु मोहि नहिं जाना ॥
ते दुख पावै यहि संसारा। जो चेतै तो होय उबारा ॥
जो नर गुरु की निन्दा करई। शूकर श्वान जन्म सो धरई ॥

भव बन भूल न जाहि से, भक्ति सुहरि गुरुध्यान ।
हरि गुरु निन्दक भक्ति बिनु; होवत शूकर श्वान ॥१२५॥

निरभिमानता पूर्वक यज्ञ, अध्ययन, दानादि द्वारा संशोधित हृदय से सद्गुरु सर्वात्मा राम के श्रवण ज्ञान ध्यानादि भक्ति कही जाति है, सो स्वर्ग सुख मोक्ष का साधन होती है। अतः उचित भोग भोजनादि के त्याग द्वारा देह के हलाये (कृश करने) से भक्ति नहीं होती है। यदि कोई बहुत प्रकार के स्वाँग (वेष) का धारण करे, तो उससे भी भक्ति नहीं सिद्ध होती है।

और धींगा धींगी (नग्न) रहना भला नहीं माना गया है। और जो काहु (जो कोई) मोहि (सद्गुरु सर्वात्मा को) हृदय से (मन से) नहीं जाना, हृदय में नहीं समझा तो उस से भक्ति नहीं हो सकती है।

और जिसके मुख में कुछ और वचन रता है, हृदय (मन) में उस से अन्य कुछ निश्चय रहता है, सो असत्य भाषी कपटी वञ्चक प्राणी मुझे स्वप्न में भी नहीं जान सकता है। शोधित हृदय वाला सत्य वक्ता ही सद्गुरु सत्यात्मा को पहचान सकता है। गुरुधर्मादि के पहचानादि के बिना वे ही कुमार्गी प्राणी संसार में दुःख पाते हैं। और जो (यदि) कपटादि को त्याग कर चेतै (सतमार्ग को गुरु द्वारा पहचानै) सत मार्ग गामी होवे, तो उबार होता है (दुःख से निस्तार होता है)।

जो चेतने के बिना सद्गुरु सत्पुरुष की निन्दा करता है, सो शूकर श्वानादि के जन्मों को पाता है। क्योंकि—

"परिवादात् खरो भवति श्वा वै भवति निन्दकः।
परिभोक्ता कृमि र्भवति कीटो भवति मत्सरी ॥" (मनुस्म०अ०२।२०२)

गुरु के परिवाद (दोष कथन) से गदहा होता है, गुरुनिन्दक कुत्ता होता है और मत्सरी (गुरु के शुभ द्वेषी) कीट होता है। अन्याय से गुरुवित्त के भोक्ताकृमि होता है।

साखी—लक्ष चौरासी जीव योनि महँ। भटकि भटकि दुख पाव ॥
कहहिं कबिर जो रामहिं जानै। सो मोहि नीके भाव ॥

गुरुनिन्दक अचेत जीव चौरासी लाख योनियों में भटक भटक कर दुःख पाते हैं। कबीर साहब कहते हैं कि जो विवेकी गुरु भक्त सद्गुरु को सच्चिदानन्द राम ही जानता है, सो मुझे नीके (सुन्दर सत्पात्र) भावता (भासता) है। प्रितीत होता है। वह मोक्षाधिकारी है।

हृदय कपट तजि सत्य गहि, सद्गुरु को पहचानि।
राम रूप लखि प्रकट विहि, तरै सकल अघ खानि ॥१२६॥६७॥

रमैनी ६८

ताहि वियोगे भयो अनाथा । परेउ कुञ्जबन पाव न पन्था ॥
वेद नकल है जो कोइ जानै । जो समझै तो भलो जु मानै ॥

पहिचानै बिनु राम गुरु, से रह नित्य वियोग ।
ताते भये अनाथ सब, लहत न पन्थ सुयोग ॥१२७॥
भव कानन में कर्मवश, भटकत ज्ञान विहीन ।
बिनु गुरु वेदहुँ ते नहीं, लखत पन्थ मति हीन ॥१२८॥
लखि सुपन्थ गुरु वाक्य से, निर्गुण रामहि जान ।
गुण कृत मायाजाल लखि, तजै सकल अभिमान ॥१२९॥

ताहि (उस) सद्‌गुरु के वियोग (अप्राप्ति) से ही यह जीव अनाथ (रक्षक स्वामी रहित) हुआ है । और कुञ्ज (सघन) वन तुल्य संसार में पड़ा है । इससे बाहर जाने का पन्थ (मार्ग) को नहीं पा रहा है ।

यद्यपि वेदों में संसार वन से निकलने के मार्ग का वर्णन है । तथापि वेद भी संसार वन का नकल (प्रतिरूपक) है (अनन्त विस्तार युक्त शुभाशुभ का मिश्रण सहित है) यदि विवेक पूर्वक सद्‌गुरु से वेद को समझे, तभी जिज्ञासु मुमुक्षु वेद की भली बात को, भले अर्थों को माने और काम कर्मादि को कामी के लिये जान कर उन्हे त्यागे । अतः विवेक पूर्वक वेदार्थ के ज्ञान के लिये भी ज्ञानी गुरु की आवश्यकता होती है । गुरु के बिना वेद मात्र से विविक्त मोक्ष मार्ग का ज्ञान नहीं हो सकता है ।

नटवत बन्द खेल जो जानै । तिहि का गुण जो ठाकुर मानै ॥
ऊहे खले सब घट माहीं । दूसर को लेखै कछु नाहीं ॥
भलो पोंच जो अवसर आवै । कैसहुं के जन पूरा पावै ॥

सद्‌गुरु से जानने योग्य जो अविनाशी चेतन देव नट के समान संसार बन्धन रूप खेल को मिथ्या रचता है और मिथ्या जानता (प्रकाशता) है, उसी के आश्रित रहने वाली त्रिगुण माया रूप यह संसार है । और जो चेतनदेव माया शक्ति से ही ठाकुर (ईश्वर) माना जाता है, जिसको ज्ञानी ठाकुर मानते हैं ।

वही चेतन देव जीव रूप से तथा अन्तर्यामी साक्षी रूप से सब घटों (देहों) में खेल रहा है और दूसरे को कुछ सत्य नहीं देख रहा है। दूसरी वस्तु उसकी माया से मिथ्या ही भासती है।

जीवों को इस माया मय संसार में भले (शुभ) और पोंच (अशुभ) सुख दुःख दोनों के अवसर आते हैं। तहां तुच्छ भले के अवसर को पाकर दुःख को भूल जाने के कारण विरागादि के अभाव से जीव पूर्णपद (मोक्ष) नहीं पाते हैं। कोई अनन्त पुण्य वाले सज्जन गुरुकृपा से उस सर्वात्मा को किसी प्रकार जानकर पूर्ण पद पाते हैं।

साखी—जाही कहँ सर लागये, सोई जानै पीर।
लागै तो भागै नहीं, सुख सिन्धु निहारु कबीर ॥६८॥

क्योंकि किसी पुण्य के प्रभाव से जिसके हृदय में विषय कामादि बाण तुल्य दुःखद प्रतीत होते हैं, सोई दुख की निवृत्ति के लिये पीर (गुरु) को जानता है (प्राप्त करता है) फिर जिसके हृदय में सद्गुरु के वचन बाण तुल्य पैठते हैं। वह सांसारिक सुख सहित सब संसार को पीर (पीड़ा) दुःख स्वरूप समझता है।

अतः सद्गुरु के वाक्य रूप बाण के लगने पर जीव फिर संसार में सुखादि के लोभादि से नहीं भागता है (नहीं भटकता है) किन्तु अपने हृदय गुफ़ा में बैठकर यहाँ ही विभु सुख समुद्र को प्रत्यक्ष देखता है। सच्चिदानन्द स्वरूप विभु आत्मा का अनुभव करता है। क्योंकि—

दोष दरश ते होत है, प्रथम अपर वैराग्य।
पर वैराग्य विवेक से, हुए होत बड़ भाग्य ॥१३०॥

और—"अर्द्ध प्राप्तविवेकस्य न प्राप्तस्यामलं पदम्।
चेतसस्त्यजतो भोगान् परितापो भृशं भवेत् ॥१॥"

परिप्राप्तविवेकस्य त्यक्तसंसारसंस्थितेः। चेतसस्त्यजतो रूपमानन्दो हि विवर्द्धते ॥२॥
(योग वा०प्र०४।६९।२३-२७)

अमल पद की प्राप्ति रहित अर्द्ध विवेकी चित्त को, भोगों को त्यागने पर परिताप अधिक बढ़ता है ॥१॥ पूर्ण विवेकी विरक्त चित्त को, चित्तरूपता के त्यागने पर आनन्द ही बढ़ता है ॥ २ ॥६८॥

इति अभक्तानर्थवर्णन पूर्वक भक्तमुक्ति वर्णन प्रकरण ३३



अथ कुयोगिप्रपञ्च प्रकरण ३४

रमैनी ६९

ऐसा योग न देखा भाई। भूला फिरै लिये गफलाई ॥
महादेव को पन्थ चलावै। ऐसो बड़ो महन्त कहावै ॥
हाट बजारे लावै तारी। कच्चा सिद्धहिं माया प्यारी ॥

दोष दरश सुविवेक बिनु, भूला भोग मझार।
सोउ कहावत योगि यति, यह कलि कपट पसार ॥१३१॥

संशोधित हृदय द्वारा संसार की दुःख रूपता आदि के ज्ञान पूर्वक भक्ति सहित परम विराग और अभ्यासादि से राजस तामस वृत्तियों के निरोध करके उक्त सुखसिंधु का हृदय में प्रत्यच करना ही योग है। इस आशय से कबीर साहब कहते हैं कि हे भाई! ऐसा (सुख सिंधु के दर्शन समान) अन्य योग वेदादि में वर्णित नहीं देखा गया है।

तथा ऐसा योग को जिसने सद्गुरु के बिना नहीं देखा है। वही गफलाई (मूढता) लिये भूला फिरता है। और ऐसे लोग ही महा विरक्त परम ज्ञानी महादेव जी के योग मत को तो चलाते (बात विचार करते) हैं। और धनादि का संग्रह करके बड़े महन्त कहाते हैं और हाट बाजार में तारी (समाधि) लगाते हैं। क्योंकि उन कच्चे सिद्धों को माया ही प्यारी लगती है। उसी के लिये करामात के नाटक देखाते हैं। सुख सिंधु का दर्शन नहीं चाहते हैं।

कब देवदत्त मवासी तोरी। कब शुकदेव तोपकी जोरी ॥
नारद कब बन्दूक चलाया। व्यासदेव कब बम्ब बजाया ॥
करहिं लड़ाई मति के मन्दा। ई अतीत की तरकस बन्दा ॥

सुखसिन्धु के दर्शनार्थी विष्णुदेव का अवताररूप दत्तात्रेयरूप देवदत्तजी ने कब किसी के मवासी (गृह खजाना आदि) को तोड़ा और शुकदेवजी ने कब तोपकी (तोप समूह या तोप चलानेवाले तोपची फौज) को जोड़ा (संग्रह किया)।

नारदजी ने कब बन्दूक चलाया तथा व्यासजी ने कब बम्ब (युद्ध बाजा) बजाया। इन महात्माओं के चरित्र को नहीं समझनेवाले मतिमन्द लोग ही विरक्त वेषधारी होकर भी परस्पर लड़ाई करते हैं। तो क्या ये अतीत विरक्त

संन्यासी हैं, योगी हैं या तरकस बाँधनेवाले फौजी सिपाही हैं। अर्थात् ऐसे लोग सुखसिन्धु के दर्शनार्थी विरक्त योगी नहीं हो सकते हैं।

भये विरक्त लोभ मन ठाना। सोना पहिरि लजावैं बाना॥
घोड़ा घोड़ी कीन्ह बटोरा। गाम पाय जस चलैं करोरा॥

क्योंकि वे लोग वेषादि मात्र से विरक्त हुए और मन में लोभ ठाना (किया) इससे सुवर्णादि के भूषणादि को पहिर कर बाना (वेष) को भी लज्जित करते हैं।

और इन लोगों ने घोड़ा घोड़ी आदि का भी बटोर (संग्रह) किया और करते हैं। फिर ग्रामादि को प्राप्त करके करोरा (कोटिपति) के समान राजसी वेष से चलते हैं। ऐसे योगी संन्यासी लोक वेद से विलक्षण ही होते हैं।

साखी–सुन्दरि नाहीं शोभई, सनकादिक के साथ।
कबहुँक दाग लगावई, कारी हाँड़ी हाथ ॥६९॥

ग्राम को प्राप्त करनेवाले योगी आदि सुन्दरी को भी प्राप्त करते हैं। परन्तु सनकादिक (त्यागाश्रमवाले) के साथ में सुन्दरी नहीं शोभती है। क्योंकि वह कभी न कभी दाग लगाती है। अपयश पाप कराती है। जैसे कि हाथ में सदा रहनेवाली काली हाँड़ी दाग लगाती है।

अतः स्त्री द्रव्यादि का सर्वथा त्याग करके निर्लोभ कामादि रहित हो सके, तभी त्यागाश्रम में प्रविष्ट होना चाहिये, अन्यथा नहीं। क्योंकि—

"अजिह्वः षण्डकः पङ्गुरन्धो बधिर एव च।
मुग्धश्च मुच्यते भिक्षुः षड्भिरेतैर्न संशयः ॥१॥
माद्यति प्रमदां दृष्ट्वा सुरां पीत्वा तु माद्यति।
तस्माद् दृष्टिविषां नारीं दूरतः परिवर्जयेत् ॥२॥"

(नारदपरिव्राजकोप० १३।६२।६।३१)

अनासक्ति कुवचन के त्याग से जिह्वा को, स्त्री विकार के त्याग से लिङ्ग को, निष्फल गति त्याग से पैर को, दूर देश निषिद्ध दर्शन के त्याग से नेत्र को, शब्दासक्ति के त्याग से श्रोत को और विषयजन्य मनोविकार के त्याग से मन को वश में रखनेवाला राग-द्वेषादि रहित संन्यासी अजिह्वादि कहलाता है। वह इन छः धारणाओं से मुक्त होता है, इसमें संशय नहीं है ॥१॥

और मदिरा को पीने से माँतता है, स्त्री को देखते ही माँतता है। अतः दृष्टि मात्र से मद के हेतु स्त्री को संन्यासी दूर से त्यागे ॥२॥६९॥

रमैनी ७०

बोलना कासो बोलिय भाई। बोलतहि सब तत्त्व नशाई ॥
बोलत बोलत बाढु विकारा। सो बोलिय जो परै विचारा ॥
मिलहीं सन्त बचन दुइ कहिये। मिलहिं असन्त मौन हो रहिये ॥

करि निज हृदय विचार, सद्गुरु के उपदेश को।
बोलिय सन्त मझार, मौनहि करिय असन्त महँ ॥१३२॥

हे भाई ! पूर्व वर्णित उपदेश बोलना (कहना) है। परन्तु वह किससे बोलना चाहिये, ऐसा विचार करके ही बोलने योग्य है। क्योंकि विचार के बिना किसी अनधिकारी के प्रति बोलते ही सब तत्त्व नष्ट होता है (कहना व्यर्थ होता है और शान्ति का नाश होता है)।

क्योंकि विचार के बिना बोलते-बोलते क्रोध द्रोहादिरूप विकार बढ़ते हैं। जिससे सुख शान्ति नहीं रहने पाते हैं, विवेक नष्ट हो जाता है। अतः विचार कर सोई बात बोलना चाहिये कि जो विचार में परै (बोलने योग्य निश्चित हो)।

जो कोई सन्त मिले (निश्चित हों) तो उनसे दो वचन कहना चाहिये। और असन्त मिलें तो मौन होकर रहना चाहिये। क्योंकि सन्त थोड़े में समझेंगे। असन्त नहीं, वे विवाद बढ़ायेंगे और विकार होगा, अतः मौन में कुशल है।

पण्डित सो बोलिय हितकारी। मूरख सो रहिये झँख मारी ॥
कहहिं कबीर अर्ध घट डोलै। पूरा ह्वै विचार ले बोलै ॥

स्व पर के हितकारी (सन्त) पण्डित (विद्वान्, विवेकी) के प्रति हितकर वचन बोलना चाहिये और मूर्ख (ज्ञानाभिमानी·अल्पज्ञ अज्ञ) से झँख (मनोवेग) को मार कर मौन रहना चाहिये। मूर्ख के साथ बोलने के अवसर आने पर भी नहीं बोलना चाहिये।

क्योंकि अर्ध जलयुक्त घट के समान अल्पज्ञ ज्ञानाभिमानी डोलता (चञ्चल रहता) है। बहुभाषी होने के कारण सत्यभाषी सत्य प्रतिज्ञ नहीं होता है। अतः उसका कोई निश्चित सिद्धान्त नहीं रहता है।

और पूर्ण घट तुल्य पूर्णात्मविवेकी विचार पूर्वक सत्य ही बोलता है। अतः उसके साथ बोलने से शान्ति मिलती है, कहना सुनना सार्थक होता है, इत्यादि। अतः—"पक्षं संत्यज्य यत्नेन बालस्यापि सुभाषितम्।

गृह्णाति धर्मतत्त्वं च व्यवस्यति स पण्डितः ॥" (शुक्रनी. अ. १।३२२)

जो पक्षपात को यत्न से त्यागकर बालक के भी सुंदर वचनों का ग्रहण करता है और धर्म के यथार्थ स्वरूप का निर्णय करता है, वह पण्डित कहाता है। उससे बोलना चाहिये ॥७०॥

रमैनी ७१

शोक बधावा सम करि माना। ताकि बात इन्द्रहुं नहिं जाना ॥
जटा तोरि पहिरावै सेली। योग युक्ति के गर्व दुहेली ॥
आसन उड़ये कौन बड़ाई। जैसे काग चील्ह मड़राई ॥

पूरणपद जिन पाइया, सो भै सम सब माँहि।
मूरख सो पावत नहीं, बात करत उन काहि ॥१३३॥

वस्तुतः पूर्ण ज्ञानी के लिये शोक का अवसर इष्ट वियोगादि और बधावा (उत्सव) का अवसर इष्ट की प्राप्ति आदि दोनों सम होते हैं (दुःख सुख के हेतु नहीं होते हैं) परन्तु जिन ज्ञानाभिमानियों ने कहने के लिये शोक बधाई को सम कर के माना है। उन के छल की बात को महाछली इन्द्र ने भी नहीं जाना, वे इन्द्र से भी अधिक छली होते हैं।

क्योंकि वे लोग वेषाभिमानी होकर, अन्य के स्व बाल से सिद्ध जटा को तोड़ कर, भेड़ी के बाल से रचित सेली पहिराते हैं और योग युक्ति के दुहेली (कठिन अति अधिक) गर्व रखते हैं और जैसे काग चील आकाश में मड़राता (घूमता) है, तैसे आसन के उड़ाने से भी कौन सच्ची बड़ाई हो सकती है। परन्तु अल्पज्ञ प्राणी इस का भी अभिमान करते हैं।

जैसि भित्ति तैसी है नारी। राज पाट सम गनै उजारी ॥
जस नरकहिं तस चन्दन जाना। जस बावर तस रहै सयाना ॥
लपसि लवंग गनै एक सारा। खाँड़ परिहरी फाँकै छारा ॥

उक्त अभिमानी कहते हैं कि जैसी भित्ति मिट्टी की होती है, तैसी नारी होती है। और ऐसा कह कर नारी का संग करते हैं। (सङ्गात्संजायते कामः)

संग से कुकाम होता है, इत्यादि उपदेशों को नहीं मानते हैं। और राज्य स्थानादि के समान उजार (शून्य एकान्त) को गिनते हैं। अतः कभी एकान्त का सेवन नहीं करते हैं। फिर अपने को योगी कहते हैं।

और नरक के हेतु मांस मद्यादि के तुल्य ही पवित्र चन्दनादि को जानते हैं। अतः मद्यादि पान करके जैसे बावरा रहे, तैसे सयान (योगी) रहते हैं। अतः मीठ लपसी और तिक्त लवंगादि सब वस्तु को मानो एक ही गिनते हैं (आत्मानात्मा धर्माधर्म को एक ही समझते हैं) अतः विवेक के विना खाँड़ को छोड़ कर छार फांकते हैं। राम भक्ति गुरु भक्ति आत्मानन्द सत्यधर्म को त्याग कर निषिद्ध विषय भोगते हैं।

साखी–इहे विचार विचारते, गये बुद्धि बल चेत।
दुइ मिलि एके ह्वै रहा, काहि लगाऊँ हेत ॥७१॥

इस पूर्व वर्णित कुविचार के विचारते (करते) में जिनके बुद्धि बल और चेत (होश विवेक) नष्ट हो गये हैं। सो शुभाशुभ दोनों से मिलकर एकमेक (तन्मय) हो रहे हैं। तहाँ किस से हेत (प्रेम) लगाया (किया) जाय। यहाँ उदासीन मौन रहना ही ठीक है)

अज्ञ भी विज्ञ की बात करते हैं (वेष धरते हैं) अतः बहुत लोगों की दृष्टि में अज्ञ विज्ञ दोनों मिलकर एक हो रहे हैं। और उन्हें चिन्ता होती है कि किस से हेत लगाऊँ। अतः अत्यन्त विचार कर बोलना चाहिये ॥ ७१ ॥

इति कुयोगिप्रपञ्च प्रकरण ३४

—※—

अथ माया गमनागमनादि प्रकरण ३५

रमैनी ७२

नारि एक संसार हि आई। माय न वाके बापहिं जाई॥
गोड़ न मूड़ न प्राण अधारा। ता महँ भभरि रहा संसारा॥
दिना सात लै वाकी सही। बुद अदबुद अचरज का कही॥
वाके बन्दन करु सब कोई। बुद अदबुदअचरज बड़ होई॥

भ्रमाज्ञान कुविचारमय, माया रूपी नारि।
विविध रूप धरि जगत में, आई अचरज भारि॥१३४॥

उक्त अविवेक चिन्ता आदि का हेतु रूप एक मायात्मक नारी संसार शरीर रूप गृह बनाकर उसमें स्वयं भी बुद्धि ममता आशा तृष्णा कनकादि रूपसे आई है। और अनादि होने से उसकी जननी माता नहीं है। न बाप (पिता) से जाई (जन्मी) है या माता के बिना पिता से ही कार्य रूप से जन्मी है।

और उसके गोड़ (पैर) मूड़ (शिर) प्राण और प्राण के आधार हृदयादि कुछ नहीं हैं। तो भी सब संसारी उसी में भ्रम रहा है। (उस से रचित कार्यों में सत्य प्राप्यादि बुद्धि से सब भटक रहा है)।

क्योंकि रवि वारादि सातो दिन लै (पर्यन्त) उसी की सही (सत्याता का निश्चय) सब करते हैं। तथा मन बुद्धि पंचतन्मात्रा में उसी की सही (सत्ता) प्रतीत होती है। बुद (बुध)के लिये भी अदबुद (आश्चर्य) रूप माया की आश्चर्य-रूपता को क्या कहा जाय। या बुद (कथनाई ज्ञात) अदबुद (अकथ अज्ञात) स्वरूप आश्चर्य को क्या कहा जाय।

उसी की वन्दना सब कोई करते हैं। इससे बुध (विद्वान्) को भी अद्भुत माया विषयक आश्चर्य होता है। वाच्य अवाच्य स्वरूप से बड़ा आश्चर्य भासता है ज्ञानी अज्ञानी सब को आश्चर्य होता है।

साखी—मूस बिलाई एक संग, कहु कैसे रहि जाय।
सन्तो अचरज देखहु, हस्ती सिंहहिं खाय॥७२॥

अज्ञ जीव रूप मूस और आश्चर्य स्वरूप मायारूप बिलाई एक संग में अनादि काल से कैसे रह जाते हैं, सो कहो (समझो) यह भी आश्चर्य है। अर्थात् मृतक स्वरूप नष्ट भयभीत ही होकर जीव सदा रहते हैं, निर्भय कभी नहीं होते हैं।

और हे सन्तो ! एक आश्चर्य देखो कि विवेक दृष्टि से सिंह स्वरूप जीवात्मा को अविवेक दशा में हस्तिनी रूप माया खाती है (कष्ट देती है) अतः सर्वथा विवेक कर्तव्य है ॥ ७२ ॥

रमैनी ७३

चली जाति देखी एक नारी । तर गागरि ऊपर पनिहारी ॥
चली जाति वह बाटहि बाटा । सोवनहार के ऊपर खाटा ॥
जाड़न मरे सपेदी सँवरी । खसम न चिन्हे घरणि भौ बवरी ॥

आवै सो चलि जात है, जन्मे सो मरि जाय ।
अस विचारि सब सन्त जन, रहैं अचलमठ छाय ॥ १३५ ॥

अचल अमल मठ जब किया, तब भै देह विहीन ।
संग दोष लागै नहीं, आश सकल तज दीन ॥ १३६ ॥

विवेक इस लिये कर्तव्य है कि जिस से पूर्वकाल के विवेकियों ने चेतनात्मा से विविक्त भिन्न एक माया नारी को हीचली जाती हुई देखी है । और आत्मा अचल देखा गया है । जिस से विवेकी नाशादि के भय से रहित मुक्त हुए हैं । और विवेकादि के होने पर देह रूप गागर (घट) तरे (लीन नष्ट) हो जाता है और ज्ञान पनिहारी (विवेकी की बुद्धि) सर्वोपरि ब्रह्मात्मा में स्थिर लीन होती है ।

और प्रलय काल में जाने वाली विषय युक्त माया रूप पनिहारी ब्रह्माण्ड शरीर रूप गागर (कलश) को अपने तरे (अन्दर) करके स्वयं ऊपर (ब्रह्मस्वरूप में) जाती है । और वह जिस मार्ग से आती है, उसी बाट (मार्ग) से जाती है । परन्तु क्रम उलटा होता है । आकाश, वायु, तेज, जल भूमि क्रम से आती है । भूमि जलादि क्रम से जाती है क्योंकि—

"विपर्ययेण तु क्रमोऽत उपपद्यते च ॥" (ब्रह्म सू० २।३।१४)

प्रलय का क्रम सृष्टि से विपरीत होता है । क्योंकि ऐसा ही बन सकता है । और उसके जाने के समय तक मोह निन्द से सोने वालों के ऊपर देहादि की वासना आदि रूप खाट लाद कर जाती है । जागने वाले को मुक्त कर देती है । और अनादि होते भी जाड़न (जड़ता) से मरती (परिणत होती) है । और सत्त्वगुण रूप सपेदी (उज्वलता) भी उसमें सवँरी (लगी) है । तो भी उस

मायात्मक बुद्धि रूप घरणी विवेक के बिना खसम (असंग स्वामी) को नहीं चीन्हती है । क्योंकि वह बवरी (पगली) हुई रहती है ।

साँझ सकार दीप लै बारै । खसमहि छाड़ि रहै लगवारै ॥
वाही के संग निशिदिन राँची । पिय सो बात कहै नहीं साँची ॥
सोवत छाड़ि चली पिय अपना । अब दहुं ई दुख कहव किहि सना ॥

वह माया ही सन्ध्या और सकार (सवेरे) के समय चन्द्र तारे सूर्यादिरूप दीप को बारती (प्रज्वलित करती) है । परन्तु असंग पति को छोड़ कर लगवार (ससङ्ग पराश्रित) कार्य में आसक्त तत्पर रहती है । और उसी के साथ रात दिन प्रेम करती है । जीव स्वरूप स्वामी को सत्य बात नहीं कहती है । उसके प्रति सत्य को प्रकट नहीं करती है । उस को मोहित करती है । जगाती नहीं है । अतः मोह निन्द से सोते हुए प्रिय पति को छोड़ कर जब माया चली, तब फिर सृष्टि होने पर जो यह जीव को दुःख होता है । गर्भ वास नरकादि होते हैं । सो किस से कहना भी बन सकता है । या कैसे किसी से कहा जाय । गर्भादि-जन्य दुःख वचनागोचर होते हैं ।

साखी–अपनी जाँघ उघारिके, अपनी कही न जाय ।
की चित जानै आपना, की मेरो जन गाय ॥७३॥

और जैसे अपनी जाँघ (गुह्य स्थान) को उघार कर, अपनी गुप्त बात कही नहीं जाती है । तैसे ही अपनी भूल दुर्बुद्धिता की बात स्वयं कही नहीं जाती है । किन्तु क्या तो अपना चित्त (मन) जानता है या विवेकी संसार के रहस्यज्ञ गुरुभक्त जन उपदेश विरागादि के लिये गाते (कहते) हैं । क्योंकि—

"स्वस्यापराधवृक्षस्य जायते स्वादु किं फलम् ।
अपराधं ततस्त्यक्त्वा भजस्व निर्गुणं हरिम् ॥१॥

अनन्तानीह दुःखानि सुखं तृणलवायते ।
नातः सुखेषु बध्नीयाद् दृष्टिं दुःखानुबन्धिषु ॥२॥

क्षयित्वात् सर्वभावानां स्वर्गमानुष्ययोर्द्वयोः ।
सुखं नास्त्येव सलिलं मृगतृष्णास्विवैतयोः ॥३॥"

(योगवा० प्र० २।१३।२३-२५)

अपने अपराध वृक्ष का सुख फल नहीं होता है। अतः अपराधों को त्याग कर निर्गुण राम को भजो ॥ १ ॥ यहाँ अनन्त दुःख हैं। सुख तृण लव तुल्य है। अतः दुःख युक्त सुख में मन नहीं लगावै ॥ २ ॥ स्वर्ग, मर्त्य दोनों लोकों के सब पदार्थ विनश्वर हैं। अतः इनमें सुख नहीं है। जैसे मृगतृष्णा में जल नहीं रहता है ॥ ३ ॥ ७३ ॥

इति मायागमनागमनादि प्रकरण ३५



अथ मुक्त भ्रान्त स्थिति प्रकरण ३६

रमैनी ७४

तहिया गुप्त स्थूल नहिं काया। ताके शोक न ताके माया ॥
कमल पत्र तरंग इक माहीं। सङ्गहि रहै लिप्त पै नाहीं ॥

आशा से संसारि ह्वै, शोक मोह युत होय।
आशा तजि जग को तजा, लहा राम नित सोय ॥१३७॥
पावन परम सुजान सो, विमल भक्ति लहि नीर।
भक्ती सुमति विहीन नर, सेवत भव गम्भीर ॥१३८॥

तहिया (चली जाती हुई माया को देखकर अचल आत्मा को समझने पर, गुरुजन ज्ञानी होने पर) फिर गुप्त (सूक्ष्म) और स्थूल काया (शरीर) नहीं होते हैं (भावी देहरूप संसार से ज्ञानी मुक्त हो जाता है) और वर्तमान शरीर आदि के भी शोक (वियोगजन्य चिन्ता) आदि ज्ञानी को नहीं होते हैं। न शरीरादि की माया (ममता) रहती है।

किन्तु जैसे कमलपत्र और जलतरंग के एक जलाशय में साथ ही रहने भी, तरंग के पै (पय जल) से कमलपत्र लिप्त नहीं होता है। तैसे ज्ञानी संसार में शरीरादि के साथ रहते भी शोक ममता आदि से लिप्त (युक्त) नहीं होता है।

आश ओस अण्ड मँह रहई। अगनित अण्ड न कोई कहई ॥
निराधार आधार ले जानी। राम नाम ले उचरी बानी ॥

ज्ञानी के असङ्ग (अलिप्त) रहने में यह कारण है कि अज्ञ की आशा के विषयरूप ओस तुल्य तुच्छ वस्तु ही अण्ड (ब्रह्माण्ड) में रहती है और उसको

चाहनेवाला जीव अण्डजादि शरीरों में बद्ध रहता है और ज्ञानी तो असंख्य ब्रह्माण्ड को भी कोई वस्तु नहीं कहता है। सब को मिथ्या मायामात्र जानता है।

और सब मिथ्या का आधार (अधिष्ठान) सत्य स्वरूप एक निराधार को ज्ञानी जान लेता है और उसी सत्य निराधार का राम नाम लेकर ज्ञानी की वाणी उचरती है। सत्य सर्वाधार को ज्ञानी राम कहता है, जपता है। अतः मिथ्या संसार से असङ्ग रहता है।

धर्म कहै सब पानी अहई। जाती के मन पानी अहई॥
ढोर पतङ्ग सरे घरियारा। तेहि पानी सब करै अचारा॥
फन्द छोड़ि जो बाहर होई। बहुरि पन्थ नहिं जोहै सोई॥

सब धर्मवाले जिसको पानी (पवित्र) कहते हैं। तथा सब धर्मवाले और सब जाति के मन में जो पानी (पावन करनेवाला) निश्चित है।

उस नदी आदि के पानी में ढोर (पशु) पतङ्ग घरियारादि यद्यपि मरते, सड़ते हैं। तथापि उस पानी को उनसे असङ्ग निर्दोषादि मानकर उसी पानी से सब आचार करते हैं। स्नानादि करते हैं और अपने को पवित्र समझते हैं।

परन्तु जो कोई शरीरादि के मोह, ममता आसक्ति आदिरूप फन्दों को छोड़कर, इनसे बाहर (निरभिमान) होता है। सो फिर उस संसार मार्ग को जलमात्र से सत्य शुद्धि को नहीं जोहता (जानता) है, समझता है कि–"न वारिणा शुद्धयति चान्तरात्मा।" अतः ज्ञान-ध्यान रामभक्ति आदि से सत्य शुद्धि समझता और पुनरावृत्ति रहित हो जाता है।

साखी–भरमक बाँधल ई जगत, कोई न करै विचार।
हरि कि भक्ति जाने विना, बूड़ि मुआ संसार॥७४॥

विवेकादि के विना भ्रममूलक कामादियुक्त कर्मादि करके मोहादि से सब संसारी बँधे हैं। अतः उक्त सत्य शुद्धि के लिये कोई विचार नहीं करता है और विचारादि के विना एक सर्वात्मा हरि को तथा हरि की भक्ति को नहीं जानने से उस भक्ति विना सब संसारी बूड़कर मूए और मरते हैं। अतः जन्मादि संसार से उबार के लिये विचारादि से भ्रान्ति को नष्ट करके हरिभक्ति ज्ञातव्य और कर्तव्य है। क्योंकि—भक्तियोगो निरूपद्रवः। भक्तियोगान्मुक्तिः। भक्त्याऽसाध्यं न किञ्चिदस्ति॥ (त्रिपाद विभूति महानारायणोप० ८)

इमं गुणसमाहारमात्मभावेन पश्यतः ।
असम्यग् दर्शनैर्दुःखमनन्तं नोपशाम्यति ॥१॥
त्यक्त्वा यः प्राकृतं कर्म नित्यमात्मरतिर्मुनिः ।
सर्वभूतात्मभूतस्तस्मात्स गच्छेदुत्तमां गतिम् ॥२॥
(महाभा० शा० अ० २१९।१९४)

मिथ्या ज्ञानों से गुण के समूहरूप इस देह को आत्मा समझनेवाले का अनन्त दुःख शान्त नहीं होता है ॥१॥ किन्तु जो मुनि स्वाभाविक कर्म को त्यागकर, सदा आत्मप्रेमी सर्वात्माश्रय होता है, सो उससे उत्तम गति पाता है ॥२॥७४॥

इति मुक्तभ्रान्तस्थिति प्रकरण ३६



अथ परम प्रभुशरणागति प्रकरण ३७

रमैनी ७५

तिहि साहब के लागहु साथा । द्वि दुख मेटि के होहु सनाथा ॥
दशरथ कुल अवतरि नहिं आया । नहिं लंका के राव सताया ॥
नहिं देवकि के गर्भहि आया । नहिं यशोदा गोद खेलाया ॥
पृथिवी रमन धमन नहिं करिया । पैठि पताल नहीं बलि छलिया ॥

जिस हरि की भक्ति तथा ज्ञान-ध्यान से अविद्या आदि की निवृत्तिरूप परम शुद्धि मुक्ति होती है, उसी त्रिदेवादि से पर अविनाशी साहब (प्रभु) के साथ लगो (अभिन्न = अनन्य भाव से उससे मिलो)। उसके ज्ञाता तदात्मक सद्गुरु के साथ लगो और इस साथ लगने के द्वारा जन्म-मरणरूप दो दुःख को तथा द्वैतभाव राग-द्वेषादिरूप दुःखों को अविद्यादि क्लेशों को मेट (नष्ट) करके सनाथ (रक्षित कृत कृत्य) होवो ।

जिसके साथ होने से सनाथ होगे, वह विभु असङ्गादि होने के कारण अवतार लेकर दशरथजी के घर में नहीं आया, न लंका के राव (राजा) रावण को सताया (नष्ट किया) न लंका का राजा उसको सताया (कष्ट दिया)। विभु होने ही से वह देवकी के गर्भ में नहीं आया, न यशोदा ने उसको गोद में खेलाया और वह पृथिवी पर रमण (क्रीड़ा) नहीं किया, न वह धमन (धावन)

रूप क्रिया किया या पृथिवी रमन (पृथिवीपति) राजाओं का धमन (दमन नाश) नहीं किया, न पताल में पैठकर बलिराजा को ठगा। क्योंकि—

न बलि राज से माँड़ल रारी। नहिं हिरणाकश बधल पछारी॥
बराह रूप धरणि नहिं धरिया। छत्री मारि निछत्री न करिया॥
नहिं गोवरधन कर गहि धरिया। नहिं ग्वाल संग बन बन फिरिया॥
गण्डक शालग्राम नहिं कूला। मच्छ कच्छ होय नहिं जल डूला॥
द्वारावति शरीर नहिं छाड़ा। लै जगन्नाथ पिण्ड नहिं गाड़ा॥

वह साहब बली राजाओं से रार (झगड़ा) नहीं माँड़ा (नहीं ठाना) न हिरण्यकश्यप को पछार कर उसका वध किया। बाराहरूप होकर पृथिवी का धारण नहीं किया, न क्षत्रियों को मारकर भूमि को निःक्षत्रिय (क्षत्रिय रहित) किया।

गोवरधन (गोवर्द्धन) को हाथ से पकड़कर नहीं धरा, न गोपों के साथ वन-वन में फिरा और गण्डक (गण्डकी नदी) में शालग्राम शिला का कूल (समूह) रूप नहीं हुआ या उस नदी के कूल (तट) में शालग्राम नहीं हुआ। सर्वकर्ता, सर्वधर्ता, सर्वसंहर्ता सर्वात्म स्वरूप से होता हुआ भी जो किसी विशेष परिमित स्वरूप नहीं हुआ, न होता है। उस साहब के साथ लगो, तो सब द्वन्द्व दुःख से रहित मुक्त होगे। विभु होने ही से मत्स्य, कच्छप होकर जल में नहीं डोला, न द्वारावती (द्वारिका) में वह शरीर का त्याग किया। क्योंकि व्यष्टि कोई एक शरीर उसका नहीं होता है। श्रुति उसे काया वर्णादि से रहित कहती है। अतएव उसके पिण्ड (शरीर) को लेकर कोई कभी जगन्नाथपुरी में नहीं गाड़ा।

साखी—कहहिं कबीर पुकारि के, वा पन्थे मति भूल।
जिहि राखेहु अनुमान कै, स्थूल नहीं अस्थूल ॥७५॥

कबीर साहब पुकार के कहते हैं कि दो दुःख मेटने की यदि इच्छा हो तो उस स्थूल शरीर शरीरी के ज्ञान-ध्यानादिरूप मार्ग में नहीं भूलो (उन मार्गों को सत्य गन्तव्य नहीं समझो) क्योंकि अद्भुत संसार को देखकर जिस सर्वज्ञ सर्व-शक्तिमान कर्ता का अनुमान कर रखे हो, वह ईश्वर भी स्थूल रूपादि गुणवाला नहीं है। किन्तु अस्थूल (स्थूल शरीरादि से रहित सूक्ष्मों से अति सूक्ष्म) है—"अस्थूलमनण्वह्रस्वम्। (बृ० ३।८।८)" "न तस्य कार्यं करणं च विद्यते।" (श्वेता० ६।८)

"न देवः पुण्डरीकाक्षो न च देवस्त्रिलोचनः ।
न देवः कमलोद्भूतो न देवस्त्रिदशेश्वरः ॥१॥
अकृत्रिममनाद्यन्तं देवनं देव उच्यते ।
आकारादिपरिच्छिन्ने मिते वस्तुनि तत्कुतः ॥२॥" (योगवा०)

स्थूलता अणुता ह्रस्वता रहित ब्रह्म है । उसके शरीर इन्द्रिय नहीं है । विष्णु, शिव, ब्रह्मा, इन्द्र, देव (ईश्वर) नहीं हैं । अतः इनके अवतार भी ईश्वररूप देव नहीं हो सकते हैं ॥१॥ अकृत्रिम आदि अन्त रहित प्रकाशक देव कहा जाता है । वह देवत्व आकारादिवाला परिमित पदार्थ में कैसे हो सकता है ॥२॥

जाकि भक्ति विज्ञान बिनु, बूड़त है संसार ।
तिहि साहब के लागिये, साथ न गहिय असार ॥१३९॥७५॥

रमैनी ७६

माया मोह कठिन संसारा । इहे विचार न काहु विचारा ॥
माया मोह कठिन जग फन्दा । होय विवेकी सोइ जन बन्दा ॥
राम नाम लै बेरा धारा । सो तो ले संसारहिं पारा ॥

माया जनित विमोह से, कोइ न तजत असार ।
करि विचार ताको तजै, भजै राम ह्वै पार ॥१४०॥

पूर्व वर्णित विचार जन्य भक्ति ज्ञान से मुक्ति होती है । परन्तु ममता कपटादिरूप माया और माया जन्य मोह (आसक्ति अविवेक) संसार में कठिन बन्धनादि स्वरूप हैं । अतः यह स्थूल अस्थूलादि का विचार विवेक किसी ने नहीं किया । उक्त उपदेश को नहीं विचारा ।

संसार में माया मोह कठिन फन्द (फाँस = जाल) है । जो माया आदि के विवेकी हो और इन फन्दों से बचे, सोई जन वन्दनीय पूज्य भक्त हैं ।

फिर विवेक करके रामनामरूप बेरा (नौका) का जो धारण कर लेता है । राम नामवाला सर्वाधारात्मक बेरा को प्राप्त करता है । वह तो अवश्य ही संसार सागर के पार ही को लेता (प्राप्त) करता है । संसार की वस्तु को नहीं प्राप्त करता है । उसके लिये संसार गोखुर तुल्य सुतर तुच्छ हो जाता है ।

साखी—राम नाम अति दुर्लभ, औरन ते नहिं काम ।
आदि अन्त औ युग युग, रामहिं ते संग्राम ॥७६॥

विवेकी राम नाम से अन्य को इसलिये नहीं प्राप्त करता है कि उसके लिये राम नाम ही अत्यन्त दुर्लभ है। क्योंकि राम की प्राप्ति से उसको पूर्ण तृप्ति सर्वेच्छा निवृत्ति हो सकती है। जिससे काम पूर्ण हो सकता है और राम से औरन (अन्य पदार्थों) से कभी काम पूर्ण नहीं होता है।

क्योंकि राम ही सब संसार तथा अर्थ, धर्म कामादि का आदि (मूल) और अन्त (अधार समाप्ति) स्वरूप है और आधाररूप से युग-युग में सदा रहने वाला तथा सब युगादि काल स्वरूप राम ही है और राम ही से संग्राम (गुणों का संघर्षरूप प्रलय का कारण) होता है।

अथवा अन्य से कोई काम (फल) सिद्ध नहीं होता है। अतः आदि (जन्म) से अन्त (मरण) पर्यन्त युग-युग में जिज्ञासु भक्तजन राम की प्राप्ति के लिये इन्द्रियादि से तथा राम से भी संग्राम करते हैं। इसी संग्राम के साधन का आगे पञ्चम कहरा में वर्णन है कि—"प्रेम बाण एक सतगुरु दीन्हा" इत्यादि और—

"प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्मतल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्॥" (मुण्डक० २।२।४)

ओंकार धनुष है, मन बाण है। ब्रह्म उसका लक्ष्य कहा जाता है। सो प्रमादरहित समाहित चित्तवाले से वेद्धव्य (ध्येय) है। शर जैसे लक्ष्य में मग्न प्रविष्ट होता है, तैसे ध्याता मन द्वारा तन्मय (ब्रह्ममय=ब्रह्मनिष्ठ) होता है। इत्यादि ॥७६॥

इति परमप्रभुशरणागति प्रकरण ३७

अथ परमप्रभु और माया की एकता प्रकरण ३८

रमैनी ७७

एके काल सकल संसारा। एक नाम है जगत पियारा॥
तिया पुरुष कछु कहल न जाई। सर्वरूप जग रहा समाई॥

एक मोह ज्यों काल है, परम प्रिय त्यों राम।
सर्वरूप सो सर्व पर, तिहि पाये विश्राम ॥१४१॥

एक मायाजन्य मोह सब संसार में काल है (बार-बार मृत्यु का हेतु है) तथा एक राम सकल संसार का माया-मोह द्वारा काल (प्रलय

कारक) है और वही एक नाम (एक स्वरूप) राम सब जगत् का प्यारा (प्रियतम आत्मा) है—

"अमृतं चैव मृत्युश्च द्वयं देहे प्रतिष्ठितम् ।
मृत्युरापद्यते मोहाज्ज्ञानेन विन्दतेऽमृतम् ॥"
(म० भा० शा० अ० १७५।३०)

अमृत और मृत्यु दोनों देहों में ही स्थिर हैं। तहाँ मोह से मृत्यु पाया जाता है और ज्ञान से प्राणी अमृत पाता है।

और ज्ञान से पानेयोग्य जो प्रियतमात्मारूप अमृत है सो स्त्री, पुरुष या अन्य किसी व्यक्ति परिमित स्वरूप नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि—

"एक एव त्रिलोकात्मा रूपादि गुणवर्जितः ।" (योगवा० प्र० ६।२।४८।२३)
तीनों लोक की आत्मा एक ही है। सो रूपादि सब गुणों से रहित निर्गुण ब्रह्म है। अतः सर्वस्वरूप होकर सब जगत् में समाय रहा है। क्योंकि—

"नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः ।
यद्यच्छरीरमादत्ते तेन तेन स युज्यते ॥" (श्वेत० ५।१०)

यह आत्मा स्त्री पुरुष या नपुंसक नहीं है। किन्तु कारण सूक्ष्म शरीर द्वारा जिस-जिस स्थूल शरीर का ग्रहण करता है, तत्तद् व्यवहार से युक्त होता है। परमार्थ स्वरूप से सर्वत्र एक रस रहता है। अतएव

रूप निरूप जाय नहिं बोली। हलुका गरुआ जाय न तौली ॥
भूख न तृषा धूप नहिं छाहीं। दुख सुख रहित रहै तिहि माहीं ॥

सर्वस्वरूपता एकरसता से वह रूपवाले (तेज जल भूमि स्वरूप) ही नहीं कहा सकता है। न निरूप आकाश वायु स्वरूप ही बोली (शब्द) से कहा जा सकता है। न हलका या गरुआ तौला जा सकता है। न उस में भूख, पिपासा, धूप (ताप) और छाया आदि कहे जा सकते हैं। क्योंकि—

"क्षुधा पिपासा प्राणस्य मनसः शोकमोहकौ ।
जन्ममृत्यू शरीरस्य षडूर्मिरहितः शिवः ॥"

भूख, प्यास प्राण के धर्म हैं। शोक, मोह मन के हैं और जन्म-मरण शरीर के होते हैं। अतः आत्मा संसार के षट् ऊर्मि (तरंग) से रहित शिव (नित्य मुक्त) स्वरूप है। अतएव धूप, छाया आदि सब द्वन्द्व दुःख-सुख आदि

से रहित है। तथापि उन रूप-नीरूप और सुख-दुःखादि में असंग विभु साक्षीस्वरूप से रहता है।

साखी--अगम अपार रूप बहू, औ अरूप बहु भाय।
बहुत ध्यान के जोहिया, नहिं तिहि संख्या आय ॥७७॥

वह सर्वात्माराम औपाधिक स्वरूप से अगम अपार बहुत रूपवाला है और अरूप (रूपरहित) बहुत स्वरूप से भासता है (प्रतीत होता है, प्रकाशता है) बहुत ध्यानादि करके खोजने पर भी उसकी संख्या का पता किसी को नहीं लगता (मिलता) है। अतः पारमार्थिक स्वरूप से एक होते भी औपाधिक (मायिक) स्वरूप से असंख्य (अनन्त) है।

"अस्त्यनन्तविलासात्मा सर्वगः सर्वसंश्रयः।
चिदाकाशोऽविनाशात्मा प्रदीपः सर्वजन्तुषु ॥"
(योगवा० प्र० २।१०।११)

अनन्त लीलावाला व्यापक सर्वाधार अविनाशी चिदाकाशरूप आत्मा सब प्राणी में प्रदीप (प्रकाश) स्वरूप है ॥७७॥

इति परमप्रभु और माया की एकता प्रकरण ३८

अथ निजापराध फल वर्णन प्रकरण ३९

रमैनी ७८

मानुष जन्म चुकेहु अपराधी। यह तन केर बहुत है साझी ॥
तात जननि कह पुत्र हमारा। स्वारथ लागि कीन्ह प्रतिपाला ॥
कामिनि कहै मोर पिय अहई। बाघिनि रूप गरासन चहई ॥

एक राम को जानिये, करिये पर उपकार।
ता बिनु नर तन व्यर्थ यह, बन्धन रूप असार ॥१४२॥

जो मनुष्य दुर्लभ परमप्रिय राम के भजन प्राप्ति नहीं करके तथा उसकी प्राप्ति के लिये गुरु, माता-पिता सन्त धर्मादि की सेवा-परोपकारादि नहीं करके, देह पोषण परायण हैं, सो अपराधी (धर्मादि के हिंसक पापी) मनुष्य, मानुष

जन्म पाकर चूके (भूले) हैं। मानवोचित कार्य नहीं करते हैं। जो मनुष्य जन्म पाकर रामभक्ति ज्ञप्ति नहीं प्राप्त किये सो भारी चूक किये, अपराधी हुए।

और जिस देह के लिये. जिसमें आसक्त होकर चूक अपराध करते हैं, इस देह के बहुत साझी (हिस्सेदार) हैं। अतः माता-पिता कहते हैं कि यह हमारा पुत्र है। हमने अपने स्वार्थ सेवा आदि के लिये इसका प्रतिपालन किया है।

कामिनी (कामुकी वेश्या) भी कहती है कि यह मेरा प्यारा है। परन्तु वह प्रिय बना कर व्याघ्री की नाईं अर्थ धर्मादि को ग्रसना (नष्ट करना चाहती है।

सूत कलत्र रहै लौ लाई। जम्बुक नित्य रहे मुँह बाई॥
काग गीध दूौ मरण विचारै। शुकर श्वान दूौ पन्थ निहारै॥
अग्नि कहै मैं ई तन जारौं। सो न करहु जो जरत उबारो॥
धरती कहै मोहि मिलि जाई। पवन कहै मैं लेउँ उड़ाई॥

पुत्र और कलत्र (घर की स्त्री) ये दोनों (लौ) आशा प्रेम लगाये रहते हैं। गीदड़ इस देह के मांस के लिये सदा मुख बाये रहते हैं।

काग और गीध इस देह के मरण को शोचते हैं शूकर कूकर भी इसके मार्ग देखते हैं (आशा करते हैं)।

अग्नि कहती है कि मैं इस देह को जलाऊँ, यह मेरा भक्ष्य है। अब तुम सो (वह) काम न करो (उस कर्म को अवश्य करो) कि जिससे जरते हुए का सब तापों से उवार हो।

पृथिवी चाहती है कि यह मुझ में मिल जाय और वायु कहता है कि मैं इसे उड़ा कर ले जाऊँ। अर्थात् देहाभिमानी को सब भूत भौतिक पदार्थ अपने अपने तरफ खींचते हैं। जिससे देही राग द्वेषादि में पड़कर कष्ट पाता है।

तेहि घर को घर कहै गमारा। सो बेड़ी है गले तुम्हारा॥
सो तन तुम आपन कै जानी। विषय सरूप भूला अज्ञानी॥

उक्त रीति से अनेक की ममता के विषय रूप घर (देह) को जो खास अपना घर कहता है, सो गमार (मूर्ख) है। क्योंकि अपना माना हुआ सो देह रूप घर तुम्हारे (मानने वालों के) गले की बेड़ी तुल्य है।

तो भी तुम अज्ञों ने उस देह को अपना जान कर, विषय स्वरूप देह में अभिमान से विषयी (देहों का प्रकाशक साक्षी) स्वरूप को भूला है। देहाभिमान से सर्वात्मा राम को नहीं प्राप्त करने पाते हो।

साखी–इतना तनके साझिया, जन्मो भर दुख पाव।
चेतत नाहीं मुग्ध नल, मोर मोर गोहराव ॥७८॥

इतना (ये माता पिता आदि अनन्त) देह के साझिया (हिस्सेदार) हैं। उस देह में ममता अभिमानादि करके यह मनुष्य जन्मों भर (जन्म से मरण पर्यन्त) दुःख पाता है। और वह मुग्ध (मूढ अज्ञ) नर चेतता (विवेक करता) नहीं है। किन्तु मेरा मेरा पुकारता है। अतः आगामी दुःख से भी रहित नहीं होता है॥ ७८ ॥

सम्बन्ध---यहाँ शंका होती है कि अनादि मोह मायादि मूलक दुःख रूप यह संसार जन्म मरणादि भी प्रवाह रूप से अनादि ही हैं। तहाँ जैसे अनादि नित्यात्मा कभी नष्ट नहीं होता है (अयमात्मा ब्रह्म) यह आत्मा अविनाशी ब्रह्म है। इसी प्रकार दुःख जनक अनादि मोहादि का और दुख का भी नाश नहीं हो सकता है। तो कोई चेतकर भी दुःखों से रहित कैसे हो सकता है। तो इस शंका का आगे समाधान है कि—

रमैनी ७९

बढवत बढी घटावत छोटी। परखत खर परखावत खोटी॥

यद्यपि मोह अनादि तम, तदपि ज्ञान रवि पाय।
नशत समूल न मूढ लख, भोगत विषय बलाय॥ १४३॥

सब दोषन का मूल है, माया मोह अपार।
बढ़त कुसङ्गादिक किये, घटत सुसंग उदार॥ १४४॥

अनादि आत्मा एक रस रहने वाला निर्विकार सत्य है। अतः उसका किसी प्रकार भी कभी नाश नहीं होता है। और मोह ममता कामादि को बढ़ाने से ये प्रति दिन बढ़ते जाते हैं। इन की बढ़ी (वृद्धि) होती है, सो सर्वानुभूत है।

और विचार वैराग्यादि द्वारा मोहादि के घटाने से ये सब छोटी (न्यून तुच्छ) वस्तु हो जाते हैं। माया अविद्या मात्र प्रतीत होते हैं। अतः विज्ञानादि से सर्वथा नष्ट होते हैं। क्योंकि मोहादि और मोहादि के विषय सब अनात्म वस्तु

को अपनी बुद्धि से परखने (विचारने समझने) पर, ये सब खर (खरा सत्य) यद्यपि प्रतीत होते हैं। अविनाशी भासते हैं। तथापि ज्ञानी सद्गुरु द्वारा परखावने (परीक्षा कराने) पर ये सब खोंटी (मिथ्या माया मात्र) सिद्ध होते हैं। अतः इनकी ज्ञान से निवृत्ति होती है।

केतिक कहौं कहाँ लै कही। औरो कहौं परै जो सही ॥
कहल बिना मोहि रहल न जाई। बिढ़ईं लेले कूकुर खाई ॥

उन मोहादि दुःख के हेतुओं की निवृत्ति के ही लिये मैंने बहुत बात कही है, अब कितना कहें। कहाँ तक (अन्तिम वस्तु तक) की बातों को मैंने कही है। और भी कहूँ यदि कहना सही पड़े (सफल होय)।

क्योंकि योग्य अधिकारी जिज्ञासु के मिलने पर मुझसे (गुरु से) कहे बिना रहा नहीं जा सकता है। परन्तु कूकुर तुल्य लोग बिढई (गर्म रोटी विशेष वा कर्ज) तुल्य अपकारक स्वादु विषय को ही कर्म द्वारा ले लेकर खाते (भोगते) हैं कहा नहीं मानते हैं। मोहादि को नहीं घटाते हैं। तो इनके प्रति अब क्या कहा जाय। तो भी कहते हैं कि—

साखी—खाते खाते युग गया, अजहुं न चेतहु आय।
कहहिं कबीर पुकारि के, ई जिव जरतहि जाय ॥७९॥

उक्त विषयों के भोगते में जीवों के अनन्त युग बीत गये। परन्तु अजहूँ (अब भी) जिनको चेतहु (विवेकहु) नहीं आया (होश नहीं हुआ) कबीर साहब पुकार के कहते हैं कि ऐसे जीव जरते ही जाते हैं।

अथवा उपदेश है कि भोगते भोगते युग बीता। भोग से तृप्ति नहीं हुई। अतः यदि कोई तृप्ति चाहो तो अब भी सत्सङ्ग गुरु शरण में आकर चेतो न (अवश्य चेतो) क्योंकि चेतने के बिना यह संसारी जीव जरता ही जाता है। शान्ति नहीं पाता है। सद्गुरु सरणागति पूर्वक विवेक विचारादिक ही शान्ति के हेतु हैं। अतः सो कर्तव्य हैं ॥ ७९ ॥

इति निजापराधफल वर्णन प्रकरण २९



अथ दुराशानिवारण विवेकावश्यकता प्रकरण ४०

रमैनी ८०

बहुतक साहस करहु जिय अपना। तिहि साहब सो भेंट न सपना॥
खरा खोंट जिन नहिं परखाया। चहत लाभ तिन मूल गमाया॥
समुझि न परल पातरी मोंटी। ओछी गाँठि सबै भौ खोंटी॥

बिनु बिवेक नहि मुक्ति सुख, कोटिन किये उपाय।
चाहत लाभहु मूढ नर, चलता मूल गमाय॥१४५॥

सत्सङ्ग सद्गुरु सद्भक्ति के विना यदि तुम अपना जिय (मन) से बहुत यत्न करते हो। तो भी जिस साहब के परिचय (ज्ञान) से सब द्वन्द्व मिटते हैं, उस साहब से स्वप्न में भी भेंट (मेल) न हुआ न होने का है।

क्योंकि जिन लोगों ने खरा-खोंट (सत्य-असत्य) को सद्गुरु से नहीं परखाया (विवेक ज्ञान नहीं करवाया) रत्न पारख तुल्य सत्य मिथ्या के पारख (ज्ञान) को सद्गुरु से नहीं प्राप्त किया। तो वे लोग यदि लाभ स्वर्गादि चाहते हैं, तो मूल मनुष्यता निज स्वरूप को भी गमाते हैं और गमाये (भूले)।

गुरु आदि के विना जिनको पातरी (सूक्ष्म) और मोटी (स्थूल) देह खोंटी (मिथ्या) नहीं समझ पड़ी, उनकी ओछी गाँठी (तुच्छ आशा कामादि ग्रन्थि) से उनके जीवन मनुष्यता आदि सब खोंटी (तुच्छ) वस्तु हो गयी और होती है।

कहहिं कबिर किहि देवहु खोरी। जब चलिहहु झिंझि आशा तोरी॥

उक्त रीति से अपने अपराधों से ही जीवनादि निष्फल जाते हैं। अतः कबीर साहब कहते हैं कि जब अन्तकाल में झीनी-झीनी आशाओं को तोड़कर (तृप्त हुए विना हताश होकर) कामादि बन्धन युक्त चलोगे, तब किसको खोरी (दोष) दोगे। अर्थात् किसी को दोष नहीं दे सकोगे। अपने अपराध को आप भोगोगे। अतः अभी अपराधों दोषों से रहित होने के लिये साहब से परिचय करो और परिचय के लिये अन्य सब आशा कामादि को त्यागकर सत्सङ्ग सद्गुरु को सेवो, इत्यादि उपदेश है।

साखी–झीं झीं आशा महँ लगे, ज्ञानी पण्डित दास।
पार न पावहिं बापुरे, भरमत फिरहिं उदास ॥८०॥

स्वर्ग सुख देवभावादि विषयक लोकमान्यता शास्त्रादि विषयक सूक्ष्म-सूक्ष्म अनेक आशा वासनाओं में ज्ञानी (शास्त्रज्ञ) पण्डित और दास (भक्त) देवोपासक भी लगे रहते हैं। अतः आशा, तृष्णा, कामादि के पार नहीं पाते हैं, न संसार के पार पाते हैं। किन्तु आशादि से बापुरे (बावरे) और उदास होकर संसार में भ्रमते-फिरते हैं। अतः विवेकादि से आशा आदि निवारणीय हैं ॥८०॥

इति दुराशानिवारण विवेकावश्यकता प्रकरण ४०

अथ देवचरित्र विमोह प्रभाव प्रकरण ४१

रमैनी ८१

देव चरित्र सुनहु रे भाई। सो ब्रह्मा जो धिया नशाई ॥
ऊजे कहे मदोदरि तारा। तिन घर जेठ सदा लगवारा ॥
सुरपति जाय अहल्यहि छलिया। सुरगुरु घरनि चन्द्रमा हरिया ॥
कहहिं कबिर हरि के गुण गाया। कुन्ती कर्ण कुमारहि जाया ॥

मोह रहत कामादि वश, देवहु होवत नीत।
ताते मोह निवारिये, करि सद्गुरु हरि प्रीत ॥१४६॥
देव भाव की आश को, नाशन हित गुरुदेव।
मोह जनित कहि देव के, चरित सुनो सो भेव ॥१४७॥

हे भाई मुमुक्षुओं! देव लोकादि की आशा वासना की निवृत्ति के लिये देवचरित्रों को सुनो। वह ब्रह्मा लोकपितामह प्रजापति देव हैं, कि जो—

"प्रजापतिर्ह वै स्वां दुहितरमभिदध्यौ।" (शतपथ० १।७।४)

प्रजापति ने अपनी धिया (दुहिता) को काम दृष्टि से चिन्तन करके निन्दित हुए।

वह मन्दोदरी और तारा देवकन्या कही जाती हैं। उनके घर में लगवार (जार) ज्येष्ठ (पूज्यपति) हुआ। सुरपति (इन्द्र) ने गौतम ऋषि की स्त्री अहल्या को ऋषि का स्वरूप बनाकर ठगा।

और सुरगुरु (बृहस्पति) जी की घरणी (स्त्री) को ब्रह्माजी का अवतार, अत्रि ऋषि का पुत्र चन्द्रमा ने हरण किया। कबीर साहब कहते हैं कि हरि (सूर्य) देव का गुण महाभारत में गाया हुआ है कि जिस मोह कामरूप गुण से कुन्ती ने कुमारावस्था में कर्ण को जाया (जन्माया)।

अर्थात् कुन्ती ने दुर्वासा ऋषि से प्राप्त मन्त्र की परीक्षा के लिये, मन्त्र द्वारा सूर्यदेव के गुण (महिमा) को गाया। तो सूर्यदेव ने कुन्ती के पास में आकर उससे संग किया कि जिससे कर्ण का जन्म हुआ।

अतः सिद्ध होता है कि देवादि होने से भी कामादि से विमुक्ति शान्ति नहीं मिलती है। इसलिये आशा, तृष्णा को त्यागकर विवेकादि पूर्वक वह साहब सेवनीय है कि जिस से सब द्वन्द्व समूल नष्ट होयँ ॥८१॥

रमैनी ८२

सुखक वृक्ष एक जगत उपाया। समुझि न परल विषय कछु माया॥
छौ छत्री निपत्त युग चारी। फल दुइ पाप पुण्य अधिकारी॥

सद्विवेक ही वृक्ष इक, सुख छायाप्रद आहि।
विषये माया अरुझि जिव, सुख छाया लख नाहिं ॥१४८॥

मोह विवश समुझत नहीं, कोऽहं को जगदीश।
नट सम साजत साज सब, लखत न ईश अनीश ॥१४९॥

मोहावृत्त विज्ञान निज, समुझत नहिं जग माहिं।
सत्यासत्य विवेक युत, याते भव भरमाहिं ॥१५०॥

नित्य निर्मल सुख स्वरूप फल के उपाय रूप वृक्ष संसार में मोह आशा कामादि रहित एक आत्मज्ञान ही है, अन्य नहीं। सो आत्मा विषय रूप कछु (तुच्छ) माया से देवादि को भी सदा अपरोक्ष रूप से यत्न के विना समझ नहीं परा। कोई देव भी महा यत्न ब्रह्मचर्यादि से ही आत्मा को समझ सके।

और जब तक आत्मा को नहीं समझ पाये, तब तक ब्रह्मा आदि छौ क्षत्रियों (लोक रक्षकों) का भी चार युग पर्यन्त संसार में निपात (निपतन) हुआ। और वे लोग भी सांसारिक सुख दुःख रूप दो फल के और पाप पुण्य के अधिकारी हुए।

स्वाद अमित कछु वरणि न जाई । क चरित्र सो ताहि समाई ॥
नटवत सारे साज साजिया । जो खेलै सो देखु वाजिया ॥
मोहा बपुरा युक्ति न देखा । शिव शक्ती विरञ्चि नहिं पेखा ॥

मोहादि से विषय रूप माया में अमित (अनन्त) स्वाद प्रतीत होते हैं। कि जिनका कुछ वर्णन नहीं किया जा सकता है। अतः बहुत चरित्र करके सो (ब्रह्मा आदि) तथा अन्य संसारी देवादि ताही (उसमाया) में समाते लीन संलग्न होते हैं। कोई विरल परमविरक्त ज्ञानी संसार माया बन्धन से मुक्त परम ब्रह्म सुखी कभी होते हैं विरक्त ज्ञानी से अन्य सारे (सब) देवादि नट के समान मिथ्या साज (भोग साधन) साजते (जोड़ते) हैं। और जो लोग साजों से खेलते हैं (सांसारिक क्रीड़ा करते हैं) सो फिर आगे बाजी (मिथ्या तमासा) को बार बार देखते हैं।

परन्तु वपुरा (अज्ञ) जीव मोहा (मोह को प्राप्त हुआ) है। अतः मोक्ष की युक्ति को नहीं देखा है। अन्य की तो कथा क्या कहनी है। अपने अपने अधिकार पर्यन्त शिव शक्ति और विरञ्चि ने भी माया जाल से रहित होने के मार्गों को नहीं पेखा (नहीं देखा) या शिव (मोक्ष कल्यान) स्वरूप ब्रह्म ईश्वर की शक्ति को और विरञ्चि (विधि) को बावरे लोगों ने नहीं देखा।

साखी—परदे परदे चलि गया, समुझि परी नहिं बानि ।
जो जानै सो बांचि हैं, होत सकल की हानि ॥८२॥

जिसको सद्गुरु की वाणी नहीं समझ पड़ी, न मायारूप विषय बाणी मात्र (मिथ्या) समझ पड़ी, सो सब जीव माया जन्य परदे परदे (आवरण) मोह में चला गया। मोह बन्धनादि से मुक्त नहीं हुआ।

अब भी जो कोई सद्गुरु की वाणी को और विषयादि के मिथ्यात्व को जानेगें, सो एक सत्यात्मा को विभु नित्य मुक्त स्वरूप जानकर, संसार बन्धन से बचेगें। अन्य सब की महती हानी होती है। मनुष्यता व्यर्थ जाती है। अथवा जानने से सब तम रूप माया जाल की हानि (निवृत्ति) हो जाती है। अतः जानने वाले माया जाल से बँचते हैं ॥ ८२ ॥

इति देवचरित्रविमोह प्रभाव प्रकरण ४१

अथ मोक्षार्थिक्षत्रिय और जीवसम्बोधन प्रकरण ४२

रमैनी ८३

छत्री करै क्षत्रिया धर्मा। वाके बढ़ै सबाई कर्मा॥
जिन अबधू गुरुज्ञान लखाया। ताकर मन तहईं लै धाया॥

वाणी को समझे विनाइन्द्रिय विषयवशवर्ती जो क्षत्रिय (वीरपुरुष) भी क्षत्रिया (क्षात्र) धर्म (युद्धादि) करता है। उसके बन्धन प्रद कर्म ही प्रति दिन सवाई बढते हैं।

क्योंकि कर्म मात्र से बन्धप्रद कर्म की निवृत्ति नहीं होती है। अतः कर्मों से भावी जन्मादि संसार की वृद्धि ही होती है।

किन्तु जिन अबधू (वधू रहित) विरक्तों अवधूतों ने गुरु से ज्ञान लखाया (लख पाया)। या जिन अवधुओं को ज्ञान स्वरूप आत्मा को गुरु ने लखाया (दर्शाया) उन लोगों का मन तहईं लै (उस ज्ञान स्वरूप ही तक) धाया (दौड़ा) और दौड़ता है। तथा ज्ञान स्वरूप में लय होने के लिये उन का मन दौड़ गया। अतः वे मनोमाया मय बन्धनों से मुक्त हुए और होते हैं। अन्य नहीं।

क्षत्री सो जो कुटुम से जूझै। पाँचो मेटि एक कै बूझै॥
जीवहि मारिजीब प्रतिपालै। देखत जन्म आपनो हारै॥
हालै करै निशानै घाऊ। जूझि परै तब मनमथ राऊ॥

वास्तविक क्षत्रिय (वीर) वह है कि जो अपने अन्यायी कुटुम्ब तुल्य इन्द्रियों से युद्ध करता है कि जिससे संसार के रमण क्रीड़ा में नहीं फंसता है। क्योंकि वह पांचो ज्ञानेन्द्रियों की सत्ता स्वन्त्रता प्रभुत्व को मिटाकर फिर एकात्म स्वरूप को सिद्ध (अनुभूत) करके एकात्मा को ही सत्य बूझता (समझता) है।

और सत्य ज्ञान को सत्य के ज्ञान को इन्द्रियजन्य नहीं मानता है। अतः वह इन्द्रिय जन्य ज्ञान के विषयों में आसक्त नहीं होता है।

और दुष्ट प्राणी तुल्य दुष्ट मन रूप जीव को मार कर जीवात्मा (अपने स्वरूप) की रक्षा करता है। और रक्षित अपने स्वरूप को देखते ही अपने जन्म

मरणादि को हार जाता है। जन्मादि को देह के धर्म समझकर स्वयं जन्मादि संसार से रहित हो जाता है।

और हालै (अति शीघ्र) निशाना करके इन्द्रिय कामादि शत्रु को घाव (घायल) करता है इन्द्रियों को विषयों से विमुख करता है। फिर मनमथ राजा (काम देव) से युद्ध करता है। सब प्रकार के मैथुनों इच्छाओं को त्यागता है, वही वस्तुतः वीर है। क्योंकि—

"बलेन परराष्ट्राणि गृह्णँश्शूरस्तु नोच्यते।
जितो येनेन्द्रियग्रामः स शूरः कथ्यते बुधैः॥" (दक्षस्मृ० अ० ७)

बल से अन्य राज्यों का ग्रहण कर्ता शूर नहीं कहा जाता है। किन्तु जिसने इन्द्रिय समूह को जीता, वही विद्वानों से शूर कहा जाता है।

साखी—शून्य सनेही राम बिनु, चले अपन पौ खोय।
मनमथ मरै न जीवई, जीवहि मरण न होय॥८३॥

उक्त विवेकादि युक्त वीरता के अभाव से आनन्द सत्यता से शून्य विषयादि के स्नेही (प्रेमी) जीव सब सर्वात्मा राम की प्राप्ति के बिना अपने पौ (दाव, अवसर, स्वरूप) को खोय (गमाय) कर चले और चलते (मरते) हैं और यदि मनमथ मर जाय और फिर जीवित नहीं हो तो जीव का कभी फिर मरण नहीं हो। अतः उक्त वीरता को प्राप्त करके मनमथादि अवश्य मारने योग्य हैं॥८३॥

रमैनी ८४

ये जियरा तैं दुख हि सम्हारू। जे दुख व्यापि रहा संसारू॥
माया मोह बँधा सब कोई। अलपे लाभ मूल गौ खोई॥
मोर तोर में सबे विगूता। जननी उदर गर्भ मँह सूता॥

मोह जनित जो दुःख अति, व्यापि रहा संसार।
तिहि निवृत्ति के कारणे, करिये तत्त्व विचार॥१५१॥

उपदेश है कि ये (हे) जियरा (जीव) उस दुःख ही से अपने को सम्हारो (सावधानी से बचाओ) दुःख को समझकर बचने के लिये सचेत रहो कि जो दुःख संसार में सदा सर्वत्र व्याप्त हो रहा है। वह दुःख यह है कि माया (ममता) मोह (अविवेक स्नेह) से सब कोई बँधे हैं और अल्पे (थोड़े)

लाभ (सुख) में मूल सुख को खो (भूल) गये हैं और मोर-तोर (राग-द्वेष) में सदा सब अपने मूल सुख को विगोते (गमाते) हैं। उसका अनुभव नहीं करने पाते हैं। अतः जननी (माता) के उदर के अन्दर गर्भस्थान में गर्भ (बचा) होकर जीव सोया और सोता है।

ई बहु खेल खेलै बहुरूता। जन भँवरा अस गये बहूता॥
उपजि विनशि योनिहि फिरि आवै। दुख संताप कष्ट बहु पावै॥
सुखक लेश स्वप्नहुँ नहिं पावै। सो न मिला जो जरत बुझावै॥

जन्म लेने के बाद यह कभी बहुत प्रकार के खेल आनन्द से खेलता है। कभी कष्ट से बहुत रोता है। इसी प्रकार विषयरस के लोभी जन भँवरा (कीट तुल्य मनुष्य) गये और स्वर्ग नरकादि में जाते हैं। आत्म लीन नहीं होते हैं।

फिर जन्म लेकर मरते हैं और फिर बार-बार योनियों में ही आते हैं और रोगादि जन्य बहुत दुःख, इष्ट वियोगादिजन्य संताप (शोक) और व्यापारादि-जन्य कष्ट पाते हैं। जन्मादिजन्य कठिन दुःख भोगते हैं।

और सत्य सुख के लेश को भी ऐसे जीव स्वप्न में भी नहीं पाते हैं। क्योंकि सो सद्गुरु सत्यात्मा सत्यज्ञान इनको नहीं मिला कि जो जलते हुए इनको बुझावे (समझावे शान्त तापरहित करे और सत्य सुख शान्ति देवे)।

मोर तोर में जरु जग सारा। धृक स्वारथ झूठो संसारा॥
झूठी मोह रहा जग लागी। इनते भागि बहुरि पुनि आगी॥
जिहि हित कै राखै सब कोई। सो सयान बाँचा नहिं होई॥

उक्त रीति से शान्ति के अभाव से सब संसारी मोर-तोर (राग-द्वेष) रूप अग्नि में जलते हैं। यही संसार में व्यापक दुःख है। संसार के स्वार्थ झूठ है। अतः उसको धिक्कार है, वह सुख का हेतु नहीं है।

उस झूठी वस्तु के मोह में संसारी लगे (फँसे) रहते हैं। सब संसार मोह में ही लगा रहता है। अतः इन वर्तमान दुःख और दुःखद स्वार्थों से भागकर भी फिर बहुरि (लौट-लौटकर) गर्भ नरकादिरूप अग्नि में ही सब प्राप्त होते हैं और जिस धनादि स्वार्थ को सब कोई हित मानकर रक्षित रखते हैं, हे सयान! सो कोई पदार्थ बाँचनेवाला अविनाशी सत्य नहीं हो सकता है।

अथवा जिस सयान (देवादि) को मनुष्य सब हित (सुख मोक्षप्रद) निश्चित करके रखते हैं, सो सयान स्वयं प्रलयादि में बचे हुए नहीं सिद्ध होते हैं। अतः देवादि कोई सत्य हित सुखद नहीं हैं। किन्तु पूर्व वर्णित आत्मज्ञान ही सत्य हितकारक है।

साखी—आपु आपु चेतै नहीं, कहुँ तो रुसुआ होय।
कहहिं कबीर जो स्वप्ने, अस्ति निरस्ति न होय ॥८४॥

इति श्रीसद्गुरुकबीरकृते विविधबन्धबीजविध्वंसने
बीजकनाम्नि ग्रन्थे परमाद्वयबोधसम्पादकं
प्रथमं रमैनीप्रकरणं समाप्तम् ॥१॥

अविवेकी मुग्ध लोग आप अपने स्वरूप को नहीं चेतते (सम्भालते समझते) हैं और चेतने के लिये कहने पर भी रुसुआ (रुष्ट) होते हैं और अपने को सम्भालने विना उन पदार्थों में आसक्त होते हैं कि जो पदार्थ स्वप्ने में (अज्ञान दशा में) सत्य सुखद प्रतीत होते हैं। परन्तु जागने पर (ज्ञानावस्था में) अस्ति-निरस्ति (सत्य-असत्य) कुछ नहीं सिद्ध होते हैं।

अतः उन पदार्थों को ज्ञानी लोग अकह, (अनिर्वचनीय) मिथ्या कहते हैं, सत्य नहीं। अतः संसार सांसारिक वस्तु को स्वप्न तुल्य मिथ्या जानकर सांसारिक रमण के त्यागपूर्वक स्व सत्यस्वरूप को समझकर रामरमण कर्तव्य है। यह रमैनी प्रकरण का मुख्य तात्पर्य है ॥८४॥

स्वप्न तुल्य यह सब संसारा। जीव स्वरूप सत्य तहँ सारा ॥
ज्योति स्वरूप सुसहज प्रकाशा। सुर्यादिक भासहुँ का भासा ॥
सोइ ब्रह्म मायामय ईशा। ताहि सत्य सुख कहंत मुनीशा ॥
माया शक्ति रूप तहँ राजै। शक्ति सहित तहँ ईश विराजै ॥
ताकी इच्छा ते संसारा। विधि हरि शम्भु सहित विस्तारा ॥
निर्गुण ब्रह्म सगुण जो ईशा। सत्य राम तिहि कहत कबीशा ॥
ब्रह्मचर्य रत मुनि विज्ञानी। ताहि लखहिं निज आत्म अमानी ॥
पाप परायण परतियगामी। राम न लखहिं न अन्तर्यामी ॥
सर्वाधार जु राम अखण्डा। प्रकटत तहाँ अमित ब्रह्मण्डा ॥
ब्रह्मा विष्णु महेशहुँ तामें। प्रकटत भूमि अकाशहुँ वामें ॥

तिहि जानहि सतगुरु विज्ञानी। सकल जगत मिथ्या पहिचानी ॥
विज्ञहुँ करहिं राम सुख आशा। करि अपरोक्ष हि होहिं निराशा ॥
प्रथम आश करि राम की, लखि अति होंहि निराश।
करहिं मुक्त निज दास को, काटहिं यम जग फाँस ॥ १॥

सद्गुरु परम कृपालु सुजाना। जन हित हेतु विचार महाना ॥
कर्म सुभक्ति ज्ञान विज्ञाना। उपदेशहिं जप योगहुँ नाना ॥
बिनु गुरु ज्ञान न द्वन्द्व नशाहीं। द्वन्द्व अछत सुख स्वप्नहुँ नाहीं ॥
नर तनु पाय न कीन्ह विचारा। नहिं गुरु भक्ति न धर्म अचारा ॥
सो जनु निज कर काटहिं शीशा। होहिं प्रेत मरि परम खबीसा ॥
अस दुर्गति टारन के कारन। नरकादि दुख द्वन्द्व निवारन ॥
त्रिगुण पार पहुँचावन हेतू। करि विचार गुरु कहहिं सचेतू ॥
नाम रूप गुण रहित विशुद्धम्। लखिय राम निज रूप विबुद्धम् ॥
तत्त्वमसी श्रुति सो समुझावै। नारदादि मुनिजन तिहि गावै ॥
जब लगि लखिय न निज सत रूपं। तब लगि मिटै न बन्ध कुरूपम् ॥
मायाऽविद्या काम कुकर्मा। बाँधत अज्ञहिं लहत न शर्मा ॥
याते प्रथम काम सब त्यागी। करिय सुकर्म बोध सुख लागी ॥
पुनि करु भक्ति योग निष्कामा। भजिय राम गुरु धर्म अकामा ॥
काम बन्धप्रद छल हंकारा। ता वश सुर नर सब संसारा ॥
कामहि मोह रूप धरि आवै। क्रोध रूप धरि अधिक सतावै ॥
सङ्गज काम काम से सङ्गा। लोभ द्रोह छल रहत अभङ्गा ॥
मोह जनित होवत अभिमाना। अभिमानी मन पाप खजाना ॥
याते तजि अभिमान छल, सुनिये सद्गुरु बैन।
भजिये राम गुरुदेव को, तब पाइय सुख चैन ॥ २ ॥

राग द्वेष अति दूर भगाइय। प्रेम भक्ति मन माँह बसाइय ॥
माया मद नहिं मन मँह लाइय। दया दान दिल नहिं बिसराइय ॥
सकल विषय जग चिन्ता त्यागी। राम भजै सो जन बड़ भागी ॥
इन्द्रिय गण का करै निरोधा। करै न मन निरोध सुख बोधा ॥
सो मन वश पुनि करै कुसङ्गा। विषय सङ्ग शुभमति का भङ्गा ॥
याते राम भक्ति मन लाई। विषय प्रीति सब तजिय सदाई ॥
स्मरिय राम नहिं विषय कदापी। धारिय तनु शुभ हेतु तथापी ॥

करिय न विश्व विषय विश्वासा। होइ हैं ये मम सुखद सुपासा ॥
काम हि लखिय अखिल दुख मूला। ब्रह्मचर्य सब विधि अनुकूला ॥
परै नाहिं भव फंद विवेकी। विषय विसारि सुगुरु पद टेकी ॥
सत्य गहै जो असत विहाई। मोह मेघ तेहि निकट न आई ॥
जग बिसराय जगत पति रामा। भजै ताहि सब विधि विश्रामा ॥
ज्ञान भानु तिहि निशि दिन भासै। अन्तहुँ मोह न रैनि प्रकाशै ॥

सत गुरु पद विश्वास करि, एक राम सत जानि।
विषय मोह अज्ञान हनि, ह्वै विवेकि गुरु ज्ञानि ॥ ३ ॥

तजि कुसङ्ग सो सुमिरै रामा। परै न कष्ट न विसरै ठामा ॥
विनु विवेक जो ज्ञान कथा ही। कहहिं न तिहि भव पन्थ सिराही ॥
करि विवेक जो सुमिरहिं रामा। पावन परम सकल सुख धामा ॥
कीट भृङ्ग सम राम सु होही। तजि व्यवहारिक रूप विमोही ॥
विनु विवेक निज रूप विहाई। भव वन भ्रमत जीव समुदाई ॥
सहत दुसह दुख लहत न पन्था। जिहि गावत श्रुति सब सद्ग्रन्था ॥

निज इच्छा से रचत सब, जन्मादिक संसार।
तहउँ राम गुरु शरण को, गहै होय भवपार ॥४॥

चार खानि दुखरूप अपारा। राम ज्ञान विनु नहिं निस्तारा ॥
राम ज्ञान युत योग विरागा। पाय तरै भव सिन्धु सभागा ॥
योग ज्ञान विनु लघु धन पाई। भक्ति हीन खल गण बौराई ॥
सो यम त्रास सहै दुख शोका। धर्म रहित पावै यम लोका ॥
जन्मत मरत हुँ अति दुख पावै। जब लो राम न सत गुरु ध्यावै ॥

विषयाऽनल मँह जाय के, पड़त पतङ्ग समान।
तजत न सुख संसार के, जब लगि मिथ्या जान ॥५॥

तजि मिथ्या के सङ्ग कुभोगा। करहि विचार शमादि सुयोगा ॥
लोभ फाँस जे नाहिं बँधाहीं। छोभ द्रोह भय तहँ नहिं जाहीं ॥
सो सब सुख भाजन जन हो ही। मानुषता सुबुद्धि युत जोही ॥
करि विचार जग जानि असारा। शब्दावाच्य राम निरुआरा ॥
गुणमय तन मन त्यागि विकारा। निर्विकार निर्गुण लखि सारा ॥
सो न भ्रमहि पुनि यहि भव माँही। मधुकर सरिस सुरस सत ग्राही ॥
पाप पुण्य का करहिं विचारा। रामहि परम पुण्य निरुआरा ॥

शुभ अशुभन का करहिं विवेका । शुभ स्वरूप शुचि रामहिं एका ॥
गहहिं पुण्य शुभ त्यागि असारा । सगुन राम जो रचत अपारा ॥

सो करता निज रूप इमि, जन विवेकी लहि ज्ञान ।
त्यागहि माया अंश को, देहादिक अभिमान ॥६॥

कर्ता कुम्भकार सम सोई । चित्रकार सम चित्रक होई ॥
निर्गुण राम सर्वथा साँचा । चित्रकार कहिये सत बाचा ॥
गर्भहुँ माहिं चित्र प्रति पालै । ब्रह्मादिक तिहि आज्ञा चालै ॥
तन्तु वाय ज्यों पट विस्तारा । करत तथा सो जगत पसारा ॥

माया महिला एक युत, कर्त्ता ईश्वर एक ।
रचत चराचर त्रिगुण सब, सन्तन किया विवेक ॥ ७ ॥

कर बिनु रचत अयास विहीना । अद्भुत पुरुष अपार सुभीना ॥
सकल कर्म सोइ करत अकर्ता । सङ्ग रहित सब का सोइ भर्ता ॥
करण रहित कर्ता सो होई । बिनु विचार लखि पाव न कोई ॥
चित्रकार ओंकार कहावै । राम वाहि को सन्तन गावै ॥
अविचल सो भर्ता सब ही का । करि विचार लखु जीवन जीका ॥
जो न करहिं इमि ब्रह्म विचारा । लखहिं न राम अगुण सब सारा ॥
सतगुरु सत्य वचन नहिं मानहिं । सो निज कर्मक ताना तानहिं ॥
चाहहिं सुख सब द्वन्द्व विहीना । सुख न लहहिं होवहिं अति दीना ॥
भ्रम तम नशत न दुःख निदाना । तब लगि सुख स्वप्नहुं नहिं भाना ॥

भ्रम न नशत कभि कर्म से, विनु विचार सत ज्ञान ।
तृप्त न होत सुबोध बिनु, करत झूठ अभिमान ॥८॥

अभिमानी सत सङ्ग विहाई । करत कुसङ्ग मोह वश जाई ॥
तजि सन्तोष कुमति हिय धारी । श्रुति सन्तन मति निपट विसारी ॥
सुनि कुकाम के कथा विवादा । अज्ञ अबुध जन की सम्वादा ॥
राग द्वेष वश होहिं निरन्तर । भजहि न राम एक अभि अन्तर ॥
रज तम गुण वश होहिं सदाही । शुद्ध सत्त्व गुण जानहिं नाहीं ॥
ज्ञान अमर पद पावहिं नाहीं । अति समीप जहँ सन्तन जाहीं ॥
निज स्वरूप सत अमर न आना । देवन अबुध अमर सब माना ॥
चाहहिं उनके लोक विशेषा । लखहिं न निकट अमर अविशेषा ॥

चिदानन्द घन जगदाधारा। सदाऽसङ्ग सुख सिन्धु अपारा॥
सर्वरूप सबही से न्यारा। कर्ता सो सब का भर्तारा॥

दूर लखहि ताको अबुध, कर्ता जो निज रूप।
माया मति निज शक्ति लहि, होवत विविध स्वरूप॥९॥

एक सूर्य बहु घट जल माहीं। भिन्न देखिये भिन्न सु नाहीं॥
तथा जीव ईशहुँ बहु भासे। मति माया महँ भिन्न प्रकाशे॥
सत्य ब्रह्म एकहि ओंकारा। चिदानन्द घन अगम अपारा॥
गहि सन्तोष सु करिय विचारा। अविनाशी कर्ता लखु सारा॥
तृण ते वज्र वज्र तृण करई। सत कर्ता सो जो परिहरई॥
सो निज कर्म धर्म मति त्यागी। लोभि कर्म वश भ्रमै अभागी॥
असत् विषय विष का करि पाना। मरै न लखै स्वधर्म महाना॥
हिंसा कुमति सकै नहिं त्यागी। जो मतिमन्द विषय अनुरागी॥

पढ़ै वेद सत शास्त्र को, जो नहि करै विचार।
गुरु सत मन्त्र न मानई, मरै स वारम्वार॥१०॥

अन्धहि दर्पण से नहिं सूझै। वेदहुँ पढ़ि त्यों मूढ न बूझै॥
करै जीव निज धर्मक घाता। धर्म अहिंसा नहिं विख्याता॥
आतम अनुभव होय न ताही। पाखण्डहुँ हिंसा रुचि जाही॥
निज दुख सुख सम लखै न आना। दया दान नहिं ज्ञान गुमाना॥
जाकी अस मति वेद त्रिपाठी। दर्वी सम तिहि रस मति नाठी॥
चन्दन वाहि कुखर सम सोई। वेदहुँ पढ़ि पद लखै न जोई॥
निजानन्द जानै नहिं नित्यम्। खोजै सुख स्वर्गादि अनित्यम्॥
ताहि न मिला सकल सुखराशी। राम सहज सुखरूप प्रकाशी॥
जाके मिले मिटै अभिमाना। सो न मिला गुरु सन्त सुजाना॥
ताते कुमति रचित विधि नाना। बचनहु धर्मशास्त्र करि माना॥
वेद पुत्रि पुनि मानत ताही। ताते मोह फाँस बँधि जाही॥
मिथ्या विषयन का करि ध्याना। ताहि पाय पुनि करि अभिमाना॥
बँधत कीर मर्कट सम आपू। आनहुँ बाँधत मोह प्रतापू॥

जो कछु कीन्ह विचार उर, हिंसादिक तजि दूर।
सोउ गुरु सत्सङ्गादि बिनु, राम लखहिं अति दूर॥११॥

रामहि सुधा सरस सब भाँती । अमृत सत्य प्रिय परम सँघाती ॥
गर्भहुँ में न तजत सो साथा । तिहि सम कौन कहिय प्रिय नाथा ॥
नित्य मुक्त सर्वातम सोई । ताहि लखत जन मुक्तहि होई ॥
मिटत अविद्यामय संसारा । तिहि जु राम निज रूप सँभारा ॥
काम क्रोध हिंसा मद टारी । राम भजा जो पर उपकारी ॥
सो सद्गुरु सद्वचन दिढ़ाई । जीवन्मुक्त हुआ मति पाई ॥

कामादिक के त्याग विनु, पढ़हि चतुर जो वेद ।
लखहि राम सो दूर अति, जपहि ताहि सहि खेद ॥१२॥

चाहत कर्मज मुक्ति न आना । जिहि निर्वेद न ज्ञान महाना ॥
जप तप करि चाहहिं हरि लोका । शिव लोकादिक परम विशोका ॥
लोक शोकप्रद सब क्षय युक्ता । शोक रहित इक राम विमुक्ता ॥
कर्मज मुक्ति अनित्यहि होई । विनु विवेक जन सत लखु सोई ॥
विनु विराग नहिं सत्य प्रकाशै । अति अनित्यहूँ नित्यहि भासै ॥
जीवन्मुक्ति ज्ञान से होई । नित्य मुक्ति अभिव्यक्तिहि सोई ॥
काम क्रोध मद लोभक नाशा । चिदानन्द का परम प्रकाशा ॥
मुक्ति कहिय तिहि जीवत पावै । मुयेहुँ मुक्त सो सन्त कहावै ॥
ब्रह्मादिक ताही सत माना । वेद माहिं तिहि गुरुमुख जाना ॥
एकल ब्रह्मनिष्ठ वड़ भागी । नित्य मुक्ति लह विषय विरागी ॥
सर्वाधार क्रियादि विहीना । नित्य मुक्त विभु नित्य नवीना ॥
सुखसागर प्रकाश निधि जोई । ताहि लहत जन मुक्तहि होई ॥
ब्रह्मनिष्ठ तिहि पावहिं योगी । लहहिं न ताहि विषय रस भोगी ॥
ब्रह्मनिष्ठ सब काम विहीना । जीवन मुक्त वासना क्षीना ॥
परम विदेह मुक्ति को पाई । पुनि न लहहिं भव तनु दुखदाई ॥
दीप सिखा ज्यों तेज समाना । सूर्य प्रभा घट सूर्य मिलाना ॥
ज्यों घट नभ विभु नभ मिलि जाई । ज्ञानवान् त्यों ब्रह्म समाई ॥

देव भक्त करि कर्म बहु, वेदहु पढ़ि बुध कोय ।
लखत न सत्य स्वरूप निज, बिनु अभिमान विगोय ॥१३॥

दम्भ सकल अभिमानहुँ त्यागी । हिंसा रहित सु परम विरागी ॥
क्षमा दया संतोष सुयुक्ता । सद्विवेकि सब सङ्ग वियुक्ता ॥
शुचि ऋजु स्थिर सब सम मति जोई । सद्गुरु भक्त ज्ञान लह सोई ॥

अवगुण गर्व करत अति जोई। ता कहँ सत सुख सुयश न होई ॥
अभिमानिहुँ चाहत कल्याणा। शुभ इच्छा अति करत महाना ॥
बिनु विचार शुभ पावत नाहीं। बिनु सत ज्ञान न शोक नशाहीं ॥
वणिक समान करत व्यवहारा। योग जाप तप भक्ति अचारा ॥
मिथ्या जग सुख लोकहु लागी। सत्याऽऽलोक न लहत अभागी ॥

गुरु वचनामृत पान करि, होहिं भक्त इह मुक्त।
राम नाम निज जानि के, करहिं न कर्म अयुक्त ॥१४॥

राम नाम जानन के कारण। श्रवण विचार करहिं शम धारण ॥
सहित विराग विवेक दिढ़ाई। विषय जनित सुख को बिसराई ॥
मोह मान तजि चाहहिं ज्ञाना। ताहि शुभेच्छा कहहिं सुजाना ॥
यदपि ज्ञान साधन सो होई। इच्छा युत नहिं ज्ञानी कोई ॥
तदपि ज्ञान बीज तँह आवै। ज्ञान अवस्था यों कहलावै ॥
सदाचार सत्सङ्ग विचारा। सहित विराग मनन निरुआरा ॥
सो विचारणा नाम कहावै। ज्ञान भूमि तिहि दूसर गावै ॥
तदपि न मन तनुता बिनु ज्ञाना। सत्य तत्त्व का होय महाना ॥
याते मन तनुता करि योगी। पावै ज्ञान न पाव कुभोगी ॥

विषयासक्ति अभाव नित, चञ्चलता का नाश।
ताहि कहिय तनुमानसा, जग से रहन उदास ॥१५॥

चञ्चल मनहि जु मन कहलावै। चञ्चलता बिनु मृत तिहि गावै ॥
सब सयानता मन से होई। ताहि निरुद्ध करै जो कोई ॥
सो सयान जनु खाहि सयाना। निज स्वरूप पुनि सत्त्वहि जाना ॥
जिहि लगि साधन तीनों कीन्हा। तहाँ जाय निज आसन दीन्हा ॥
सत्त्वापत्ति कहत हैं ताही। असंसक्ति ताते पर आही ॥
असंसक्त जग मिथ्या जानै। आतम भिन्न सत्य नहिं मानै ॥

परपदारथाभाविनी, षष्ठ भूमि जब आय।
सकल अनातम वस्तु तब, मन से जात बिलाय ॥१६॥

सप्तम ज्ञान भूमि गत ज्ञानी। तुर्यग गति लहि सम सुख मानी ॥
सदा शान्त सम रस रह सोई। दुर्लभ अस गति लह जन कोई ॥
लोक वेद व्यवहार अतीता। लखहिं सन्त जिन तन मन जीता ॥

विजक वतावै वित्त को, जो वित गुप्ता होय।
शब्द वतावै जीव को, बूझै बिरला कोय ॥१७॥

ज्ञान भूमि विनु लखै न ताहीं। जीव स्वरूप सत्य जो आहीं ॥
तन मन माहिं रहत अरुझाना। शिव स्वरूप निज रूप न जाना ॥
शुभ इच्छा विचार करि भारी। मन को मारि सत्त्व हिय धारी ॥
अनासक्त तुर्यग गति पाई। निज स्वरूप में रमहि सदाई ॥
मन्त्र जापि जन सेवहिं देवा। जग सुख चाहि विषय रस लेवा ॥
सो सुख सत्य राम नहिं जानहिं। सर्वातम सुख नहिं पहिचानहिं ॥
सद्गुरु सत्य वचन नहिं मानहिं। निज पौरुष विश्वास न आनहिं ॥
सो दुख लहहिं नरक महँ वासा। करहिं द्रोह गुरु तजहिं न आशा ॥
राम कथा जिन नहिं मन लाई। साधु सङ्ग जिहि नाहिं सुहाई ॥
निर्गुण सगुण न तत्त्व विचारा। काम क्रोध मद को नहिं मारा ॥
ता कहँ कठिन पन्थ जग माहीं। भ्रमत सदा सत शरण न पाहीं ॥
मन माया वश भ्रमहिं सदाहीं। मत्स्य मूस सम रिपु वश जाहीं ॥
मोह विवश माया वश कामी। पड़हिं फन्द सत लखहिं न स्वामी ॥
जाहि लखहिं निज सुख के हेतू। सोइ हनत जनु ह्वै ग्रहण केतू ॥

कामिनि नारी काम वश, कामी नर हित मानि।
करत प्रीति अति कामि त्यों, कामिनि हित पहिचानि ॥१८॥

बँधत परस्पर मानि अनन्दा। रामहि भूलि पड़त यम फन्दा ॥
निष्कामी जो नर जिज्ञासू। पुरुष जितेन्द्रिय ज्ञान पिपासू ॥
करत प्रीति हरि सत गुरु से ही। सोइ विरल लह मुक्ति विदेही ॥
और सकल रचना जग राचै। धरि बहु देह विविध विधि नाचै ॥
जिहि लखतहि सब नाशिय नाचा। नर तनु माहिं लखिय सो साँचा ॥
जो नहिं लखत सत्य सो प्राणी। करि बहु आश सहत हित हानी ॥

आश मोह ममता सहित, मरत जु नर तन पाय।
काम क्रोध से जरत सो, गर्भ नरक महँ जाय ॥१९॥

सद्गुरु वचन न जिहि विश्वासा, रामभक्ति नहिं सत्य उपासा ॥
वहत सदा सो भव के धारा। लहत न तहँ सत सुखद अधारा ॥
मानै जो सद्गुरु उपदेशा। तजै झूठ सत गहै हमेशा ॥

हिंसा कपट क्रूरता त्यागी। योग युक्ति गहि रहै विरागी॥
रहै सदाहि इकान्त सुदेशा। सो स्वाराज्य लहै निजदेशा॥
निष्कण्टक ता राज्यहि माहीं। होत शोक दुख पुनि कहुं नाहीं॥
सुख अखण्ड लह ज्ञान अनन्ता। बहुरि न जन्म लहै नहिं अन्ता॥
सद्गुरु वचन सत्य जो माना। सोइ साधु सो सन्त सुजाना॥

सद्गुरु वचन विचार विनु, जो चढ़ता कहुं जाय।
औरन कोहुं चढ़ावता, चोर तासु धन खाय॥२०॥

चढ़त चढ़ावत नर तनु पाई। स्थिर न होत निजरूप समाई॥
सो सुर लोक सुसम्पति से हू। गिरत न जिहि गुरुराम सनेहू॥
हरत चोर ताके धन नाना। जिहि न मिला धन राम खजाना॥
चोर एक मन मोह महाना। राम तहाँ रक्षक नहिं आना॥
करि विचार जो जानिय ताही। तो पुनि मोह निकट नहिं आहीं॥
जानिय राम हि सत्य अपारा। त्यागिय मोह विकार असारा॥
तजिय असत्य वचन निठुराई। निर्गुण राम भजिय मन लाई॥
यह सब वेदन का उपदेशा। राम भजिय सब मिटै कलेशा॥
जो नहिं वेद कहल सो करई। जरतहि रहै सुस्त नहिं परई॥
गुणातीत के जपतहुं जापू। राम स्वरूप लखत नहिं आपू॥
ताते भ्रमत सकल संसारा। गुणातीत कहि आन पुकारा॥
वर्ण विचार करत अभिमाना। शुद्धस्वरूप राम नहिं जाना॥
छाड़िय कपट भजिय सो रामा। सोइ सब कर्ता सो सुख धामा॥
भजिय कपट मद दम्भ विहाई। तो कर्ता लखि पाइय भाई॥

विनु कर्ता निज ज्ञान के, नष्ट होत अभिमानि।
वेदहुँ पढ़ि नहि लहत सुख, जौं लो मर्म न जानि॥२१॥

सब घट बसत राम अविनाशी। बहिरन्तर सुख सहज प्रकाशी॥
नित्य अखण्ड असङ्ग उदासी। तिहि समुझत गुरु वच विश्वासी॥
सदा धर्म हिय धारत सोई। जाते राम प्रकट हिय होई॥
जो नहिं राम धर्म हिय धारत। ताको काल दण्ड दै मारत॥
ताते पोंचक संग विहाई। सन्त संग करि धर्म कमाई॥
निज गुण शम दमादि को धारी। राम धरिय हिय नित्य सम्हारी॥

रामहि सत्य झूठ जग सारा। यों लखि जन होवत भव पारा ॥
लोभ विवश नहिं करत विचारा। सो नहिं राम लखत दुख पारा ॥
सुमिरत औरहिं राम न जानै। विष विषयन का भोगहिं ठानै ॥
ताते दुर्मति दूर न होई। सत्य सुपन्थ न सूझत कोई ॥
चीन्हत नहिं सुपन्थ जिन देखा। भटकत लखि पाखण्ड सुभेखा ॥
भ्रमत कुपन्थ माहिं जनु अन्धा। करत बन्धप्रद कुत्सित धन्धा ॥
तहँ सुबन्धु हित गुरु सो भासै। जो कुपन्थि को सुपथ प्रकाशै ॥
सो यदि चलै सुपन्थ सम्हारी। त्यागै दुखद सङ्गि सुत नारी ॥
त्यागै तन धन सुत अभिमाना। सो पद लहै महान सुजाना ॥

युक्ताहार विहार करि, युक्तहि स्वप्न प्रबोध।
तन मन वच को वश करै, लहै सुयोग सुबोध ॥२२॥

भक्तिहुं याहि विधिहि जन पावै। तनु सुखाय नहिं भक्त कहावै ॥
जौं लो हृदय राम नहिं मानै। सद्गुरु सन्तहुं नहिं पहिचानै ॥
प्रेम न हृदय धर्म गुरु माँहीं। राम कथा न नाम जप आहीं ॥
मान कपट त्यागै नहिं द्रोहा। तौ लो भक्ति न सुख सन्दोहा ॥
निंदा तजै न पर अपमाना। पर उपकार हृदय नहिं आना ॥
सकल राममय नहिं जग देखा। यम नियमहुँ नहिं गहा अशेखा ॥
सो किमि योगि भक्त कहलावै। मूल रहित तरु फल किमि पावै ॥
गुरु निन्दक शूकर तनु धरई। श्वानक तनु धरि भूकिहि मरई ॥
भक्ति रहित गुरु निन्दक जोई। सकल योनि दुख पावै सोई ॥

निन्दा पर अपकार तजि, श्रद्धा हृदय बसाय।
रामहि जानि सुगुरु भजै, सो सद्भक्त कहाय ॥२३॥

गुरु बिनु लहै न नाथ सुपन्था। भव वन भुलै कहै सद्ग्रन्था ॥
सत्य झूठ कछु जानि न जाई। मृग तृष्णाहुँ सत्य लखि धाई ॥
सत्य सदा सुख परम प्रकाशा। निकट न तहाँ करत विश्वासा ॥
सद्गुरु बिनु सो सूझत नाहीं। बिनु विश्वास न पूछत ताहीं ॥
वेद विपिन का मर्म न जानै। गुरु बिनु तहँउँ भेद भय मानै ॥
अभय दानि गुरु को पहिचानै। ताहि सेवि निज तत्त्व पिछानै ॥

गुरुमुख वेद विचार से, सत्य स्वामी घट बासि।
अन्तर्यामिहि रूप निज, लखत सत्य विश्वासि ॥२४॥

अन्तर्यामि समुझि निज रूपा। पुनि न भ्रमत भव मुक्त स्वरूपा ॥
योग भोगप्रद करत न सोई। बोलत वचन अमिय रस पोई ॥
मायहिं चल लखि ताका संगा। तजत राम का करत प्रसंगा ॥
कमल पत्र सम रहि जग माहीं। शोक मोह भ्रम पावत नाहीं ॥
निराधार सब जगदाधारा। राम ताहि कहि भजत उदारा ॥
अति पावन सत ताको जानहिं। परम तृप्ति ताही ते मानहिं ॥
शेष महेश सदा शिव सोई। मायी ईश्वर गुण से होई ॥
सर्वातम सूक्षम अविनाशी। अप्रतिहत सब जगत निवासी ॥
वार पार जाका कहुँ नाहीं। देशकाल कृत अन्त न आहीं ॥
कृपण न भजहिं ताहि अति मूढा। बिनु विचार भव पन्थ निरूढा ॥
जानहिं नहिं हरि भक्ति सुपावन। भजहिं भूतगण अतिहि अपावन ॥
करहिं कुकर्म भयङ्कर सोई। जाते जन्म मरण भय होई ॥
हिंसा करि पावहिं भय नाना। भूत प्रेत लखि देव महाना ॥
एक देव प्रभु लखहिं न द्रोही। सर्वातम हित सब का जोही ॥
करहिं उदार भक्ति अति पावन। राग द्वेष भय भेद नशावन ॥
चिन्तन ध्यान भक्ति कहलावै। प्रेमसहित गुरु रामहि गावै ॥
करै सन्त गुरु की सेवकाई। दीन भक्त की करै सहाई ॥
करहिं सुसत्य भक्ति निज सोई। जाते जन्म मरण नहिं होई ॥
लागहिं तिहि साहब के साथा। जो जन्मादिक रहित सुनाथा ॥

मोह सहित अति कृपण जन, करहिं न सत्य विचार।
मोह रहित जन राम भजि, होहिं भवाम्बुधि पार ॥२५॥

राम नाम दुर्लभ सब सारा। भजिय राम भव पाइय पारा ॥
एकै मोह काल दुखदाई। एक राम सब प्रिय सुखदाई ॥
सर्वरूप सब से अति न्यारा। नारि पुरुष नहिं राम उदारा ॥
ह्रस्व न दीर्घ नाहिं लघु भारा। दूर न निकट सु अगम अपारा ॥
प्राण धर्म है क्षुधा पिपासा। शोक मोह का मन में बासा ॥
जन्म मरण पुनि तन के होई। इनहिं भवोर्मि कहिय सब कोई ॥

सुख दुख काम क्रोध भय भाना । धृति लज्यादिक मनहिं न आना ॥
राम असंग एकरस साखी । ताहि ब्रह्म मुनिजन श्रुति भाखी ॥

वेद कहत ओंकार जिहि, ब्रह्म सच्चिदानन्द ॥
सन्त कहत तिहि राम हरि, पूरण परमानन्द ॥२६॥

रमत जहाँ योगी बड़ भागी । भक्त ज्ञानप्रिय निशि दिन जागी ॥
सो रमता सब में सत स्वामी । सब ही रमावत अन्तर्यामी ॥
पगु बिनु चलत नयन बिनु देखत । लखत सबहि तिहि कोइ न पेखत ॥
कर्मेन्द्रिय बिनु कर्म करावै । ज्ञानेन्द्रिय बिनु ज्ञानि कहावै ॥

सर्व साक्षि सर्वज्ञ विभु, सर्वातम सत राम ।
भजत न तिहि अपराधि जन, सजत देह धन धाम ॥२७॥

जा तनु के साजत नित साजा । ताके दायद अमित समाजा ॥
दुख पावत तहँ करि अभिमाना । बढ़वत मोह महातम नाना ॥
बिनु विचार तनु हित सतमानै । ताते मरण अहित भय जानै ॥
चाहै जीवन भोग अनन्ता । लखै न राम वेद गुरु सन्ता ॥
जाके पुण्य प्रबल कोइ जागै । सो गुरु सन्त शरण में लागै ॥
सत गुरु से यदि लहै विवेका । जानै सत्य राम निज एका ॥
मिथ्या लखै देह धन धामा । भोगहुं लखै दुखद परिणामा ॥
मोह मिटावन में हो शूरा । सो जन लखै अभय पद पूरा ॥
तजै आश सब देवन जी की । मोह जनित जग जानै फीकी ॥
बिनु विवेक बहु हानि हि जानी । करै विवेक सदा सो ज्ञानी ॥
समुझै स्थूल सूक्ष्म संसारा । तजै ग्रन्थि सब काम विकारा ॥

धन्य जीव जो काम तजि, करि गुरु वचन विचार ।
मोह नाशि लहि राम को, होंहि भवाम्बुधि पार ॥२८॥

बिनु विचार नहिं पाइय पारा । महामोह मय यह संसारा ॥
बिनु गुरु वचन विचार न होई । बिनु सत्सङ्ग न सुख लह कोई ॥
बिनु सत्कर्म पुण्य बिनु पाये । मिलहि न सतगुरु सन्त सुहाये ॥
याते प्रथम पुण्य पथ लागी । हिंसा कपट दम्भ मद त्यागी ॥
करिय सुकर्म सबहि सुखदाई । राग द्वेष परद्रोह विहाई ॥
तजि अभिमान करिय शुभ काजा । तब पाइय गुरु सन्त समाजा ॥

सुखफलपद्र इक वृक्ष महाना । सन्त समाज राम गुरु ज्ञाना ॥
समुझत नहिं तिहि विषय पियासू । विनु गुरु ज्ञान न होन प्रकाशू ॥
सुख दुख लहत न राम पिछानै । करि बहु कर्म करत अभिमानै ॥
गुरु से ज्ञान लहत सत जोई । तजि अभिमान राम रत सोई ॥
इन्द्रिय वश करि कामहिं मारी । निज स्वरूप में रहत सम्हारी ॥

मोह मारि मारै मदन, ममता तजै सुवीर ।
इन्द्रिय गण मन वश करै, सो क्षत्रिय रणधीर ॥२९॥

ह्वै विरक्त गुरु ज्ञान लहि, धरै ध्यान दिनरात ।
करै सुतत्त्व विचार वा, सोइ शूर विख्यात ॥३०॥
काम निवारण भक्ति है, निज स्वरूप धन पाय ।
मोह मिटाइय तो सदा, सुख स्वरूप दर्शाय ॥३१॥
स्वप्न तुल्य संसार लखि, मोह मिटावहिं सन्त ।
सो अति धन्य सुधन्य हैं, सद्गुरु श्री भगवन्त ॥३२॥
स्वप्न तुल्यता विषमता, माया जग को जान ।
समता सत सुख रूपता, शूर निजातम मान ॥३३॥
दुख स्वभाव है जगत का, सुख स्वभाव हरि केर ।
जाकर जौन स्वभाव सो, तजत न जीवत हेर ॥३४॥
कामादिक संसार को, याते मारिय मीत ।
काम मरे माया मरे, मरि हैं जगत अनीत ॥३५॥

काम क्रोध मद लोभ छल, ईर्ष्या दम्भ अपार ।
द्वेष मोह सब जगत है, जगतहि सकल विकार ॥३६॥
निर्विकार हरि जानिये, सर्व शक्ति भण्डार ।
मायामय बल अकथ सो, माया मय संसार ॥३७॥
सहज स्वभाव हि से दया, जामें रहत सदाय ।
सो सद्गुरु परमातमा, सन्त विमल मति आय ॥३८॥

सन्त रूपता धारि के, सद्गुरु शरणे जाय ।
सुख समुद्र हि पाय के, तामें रहै समाय ॥३९॥
गुरु उपदेश विचार से, अभिमानादि बिलाय ।
देह धनादिक गुणहुंके, तब सुख सिन्धु मिलाय ॥४०॥

सो पुनि रमत न जगत में, राम रमत नित मीत ।
दुख भोगत नहिं सुख लहत, होत सकल का हीत ॥४१॥
याते गुरु उपदेश यह, दिये सकल हित लागि ।
जो सुनि करत विचार नित, सो होवत बड़ भागि ॥४२॥
गुरु ज्ञान से मोह भय, मद के हुए अभाव ।
भासत तुर्या काल में, जो निज सहज स्वभाव ॥४३॥
सो गुरु ज्ञान विचार शुभ, सत समाधि से ज्ञेय ।
विमल रूप निज आतमा, रहत जहां नहिं हेय ॥४४॥
नित्य मुक्त सोइ ब्रह्म हरि, अज अविनाशी देव ।
निर्गुण राम परातमा, करन योग्य नित सेव ॥४५॥
सद्गुरु दीनदयालु सोइ, हरन सकल जंजाल ।
ज्ञान भानु करि उदय हिय, मेटिय मोह विशाल ॥४६॥
श्रीरमिता गुरु राम ही, मोहन गुरु मदहारि ।
श्रीहरिहर गुरु सदय अति, गुरु कबीर पुरतारि ॥४७॥
हरि सुमिरण गुरु वचन गहि, मेटि रमण संसारि ।
चिदानन्द घन ब्रह्म में, रमिय जु सब अघहारि ॥४८॥
श्रवण सुकीर्तन स्मृति सदा, गुरुपद सेवन ध्यान ।
अर्चन वन्दन दासता, भक्ति करहिं मतिमान ॥४९॥
ईश कथा श्रवणादि से, प्रीति अचल प्रभु माहिं ।
निरति ताहि कह सन्त जन, प्रेम भक्ति सो आहि ॥५०॥
कीर्तन सद्गुण गान शुभ, समरण सुरति कहन्त ।
स्तुति वन्दन लघुतादि को, कहत दासता सन्त ॥५१॥
निरपेक्षहि उपकारिता, हरि गुरु माँहि निहारि ।
लखत सुहृद सत मित्रता, सख्य भक्ति हिय धारि ॥५२॥
स्मरण से तन्मय सदा, होवत सन्त सुजान ।
आत्म निवेदन भक्ति सो, फल स्वरूप निज ज्ञान ॥५३॥
सुमिरण साधन सार है, सुमिरण से सब होय ।
राम भजै तजि काम मद, लहै परम पद सोय ॥५४॥

जाको राम भजन नहिं भावै ।
सो भटकत निशि दिन माया में, आपन पौ नहिं पावै ॥
सुत वनिता परिवार संग में, ममता करि बँधि जावै ।
सुमिरत नाहिं अभय के दाता, ताको कौन छुड़ावै ॥
धर्म कर्म नित शुभ विसराई, धन धामादिक ध्यावै ।
हरि गुरु सुयश न गावै मन से, नाम न नित लौ लावै ॥
मृग तृष्णा सम जग सत जानै, सत्य राम विसरावै ।
हनूमान हरि भजै अबहुं तो, तिहि हरि ठौर दिखावै ॥१॥

जन को राम भजन सुखदाई ।
ममता त्यागि करै सत्संगति, तँह शुभ गति मति पाई ॥
सुख दुख में समता मन आनै, हर्ष शोक विसराई ।
राग द्वेष मद काम क्रोध तजि, राम भजे मन लाई ॥
स्तुति निन्दा को सम करि मानै, त्यागै मान बड़ाई ।
हरि चर्चा तजि करै न कबहीं, स्तुति निन्दा अधमाई ॥
हनूमान हरि गुरु की महिमा, गावै गर्व गमाई ।
पावै अभय अचल पद अबहीं, रामरूप लखि भाई ॥२॥

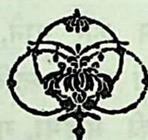
है यह जगत राम की लीला ।
सत्संगति करि जो लखि लेहीं, होहिं सन्त शुभ शीला ॥
त्यागहिं विषय विवेक धारि उर, गहहिं शमादि अखीला ।
त्याग विना प्राणी के तन मन, होत विषय अहि बीला ॥
झूठा तन धन साँचा जानै, लखै न राम रसीला ।
सकल प्राणि ताते भय पावै, बँधे मोह की कीला ॥
अजहूँ भजै राम जो प्राणी, जो बसता सब दीला ।
हनूमान सो अभय होत नित, जाका मन नहिं हीला ॥३॥

स्वप्न तुल्य संसार लखि, एक राम सत मान।
भजिय तजिय अभिमान को, पाइय पद निर्वान ॥५५॥

अजममरमनन्तं ज्ञानरूपं महान्तं,
शिवमचलमनादिं भूतदेहादिहीनम्।
सकलकरणहीनं सर्वभूतस्थितं तं,
हरिमकलममायं सर्वगं वन्द एकम् ॥१॥

ॐ शम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः

इति श्रीमत्स्वामिहनुमद्दासषट्शास्त्रिविरचित बीजक-
सारबोधिनी टीका प्रथम रमैनी प्रकरण ॥१॥



❀ ओम् राम ❀

❀ श्रीसद्गुरु कबीर साहब कृत बीजक ❀

बीजक सारबोधिनी टीका सहित

द्वितीय शब्द प्रकरण

अथ

सम्बन्ध वर्णन

सतचित आनन्द एक अज, अभय अखण्ड अरूप ।
सर्वाधार अनन्त हरि, राम सदा निज रूप ॥१॥
निराधार अद्वैत शिव, विमल विगत सब खेद ।
नमत ताहि हनुमान नित, जाहि बखानत वेद ॥२॥

शब्द शक्ति का विषय नहिं, यद्यपि राम दयालु ।
तद्यपि शब्द स्वभाव से, जानत तिहि श्रद्धालु ॥३॥
शब्द शक्ति के ज्ञान बिनु, जार्गहि सूते लोग ।
शब्द श्रवण से ज्यों तथा, जार्नहि जन तजि भोग ॥४॥
ताते सद्गुरु रमण मुख, करि उपदेशन जाकि ।
नामान्तर पर रीति से, व्यक्ति करत हैं ताकि ॥५॥
जीव रूप को राम कहि, माया कहि अज नारि ।
उपदेशत हैं जीव को, सुनत सकल अवहारि ॥६॥

जाके सत प्रकाश ते माया । रचत अमित ब्रह्माण्ड निकाया ॥
रचत भूत सूक्षम सब स्थूला । सकल लोक का होवत मूला ॥
प्राण पवन रचि बुद्धि अपारा । अहङ्कार करि करत पसारा ॥
सूक्षम इन्द्रिय सब करि माया । रचत चराचर की सो काया ॥

काया कमलक बासि तँह, जीव भँवर बँधि जाय ।
रस लोभी बिनु गुरु कृपा, छुटत न आन उपाय ॥७॥

सुगुरु कृपामय वचन को, ताते सुनिये सन्त ।
ज्ञान ध्यान उर आनि के, पाइय भव का अन्त ॥८॥

"हे जना ! अपरिज्ञात आत्मा वो दुःखसिद्धये ।
परिज्ञातस्त्वनन्ताय सुखायोपशमाय च ॥१॥
मिश्रीभूतमिवानेन देहेनोपहतात्मना ।
व्यक्तीकृत्य स्वमात्मानं स्वस्था भवत मा चिरम् ॥२॥
यथा रजोभिर्गगनं यथा कमलमम्बुभिः ।
न लिप्यतेऽपि संश्लिष्टै र्देहैरात्मा तथैव च ॥३॥
सुखदुःखे न देहस्य सर्वातीतस्य नात्मनः ।
एते ह्यज्ञानकस्यैव तस्मिन्नष्टे न कस्यचित् ॥४॥"
(योगवा० प्र० ६।६।२३-२४-३१-३४)

"स एनमविदितो न भुनक्ति ।" (बृहदा० १।४।१५)

अविदित = अपरिज्ञात आत्मा इस जीव की रक्षा नहीं करता है । अतः हे मनुष्यों ! अपरिज्ञात आत्मा ही तुम्हारे दुःख की सिद्धि के लिये होता है और परिज्ञात होने पर अनन्त सुख और उपशम (सब दुःख की निवृत्ति) रूप मोक्ष के लिये होता है ॥१॥ विनश्वर इस देह के साथ अविवेक से मिश्रित तुल्य इस अपनी आत्मा को विवेक ज्ञान से व्यक्त पृथक् करके स्वस्थ सुखी होवो, इसमें विलम्ब नहीं करो ॥२॥ जैसे आकाश में स्थिर धूलियों से आकाश और कमल पत्रस्थ जल से कमलपत्र लिप्त नहीं होता है, तैसे अविवेक से आत्मस्थ देहादि से आत्मा लिप्त नहीं होता है ॥३॥ और जड़ देह को स्वतः सुख-दुःख द्वन्द्व नहीं होते हैं, न सर्व पर असङ्ग आत्मा को सुख-दुःखादि होते हैं, किन्तु अज्ञान-मूलक अहंकारादि संघातयुक्त चिदाभासात्मक जीव को जन्मादिपूर्वक सुख-दुःखादि होते हैं । उस व्यावहारिक जीव को सत्यात्मा के ज्ञान से, अज्ञान की निवृत्ति से द्वन्द्वरूप संसार का अभावरूप मोक्ष होता है ॥४॥

ताते गुरु उपदेश ते, पाइय आतम ज्ञान ।
नाशिय मोह मदादि को, पाइय पद निर्वान ॥९॥
द्वन्द्व सकल अज्ञानमय, नशे ताहि नशि जाहिं ।
चेतन एक अनन्त सुख, सहज शान्त दरशाहिं ॥१०॥
सुनिये सन्त सुजान, करिय ज्ञान गुरु वचन सो ।
पाइय पद निर्वान, तारिय गत निज शरण को ॥११॥

अथ राममाया प्रकरण १

शब्द १

राम तेरि माया द्वन्द्व मचावै ।
गति मति वाकी समुझि परे नहिं, सुर नर मुनिहिं नचावै ॥

हे राम ! (जीवात्मन्) तेरी माया (तेरे स्वरूपाश्रित अविद्या) मोहकाल में सदा जन्म-मरण राग-द्वेषादि द्वन्द्वों को मचाती (उत्पन्न सिद्ध) करती है और उसकी गति मति समझ नहीं पड़ती है या मति से उसकी गति समझ में नहीं आती है । अतः सुर, नर, मुनि सब को नचाती है । जो निज मति या गुरु मति से उसकी गति (आश्रय चाल) को समझते हैं, सो नाच से मुक्त हो जाते हैं ।

का सीमर के सखा बढ़ाये, फूल अनूपम बानी ।
केतिक चातक लाग रहे हैं, चाखत रुवा उड़ानी ॥

यदि उसकी गति नहीं समझी गयी, तो सीमर के शाखाओं के समान पुत्र पौत्रादि रूप शाखाओं के बढ़ाने से क्या फल मिल सकता है । तथा उस सीमर के निःसार निर्गन्ध बानी से कहने के लिये अनूपम पुष्प तुल्य सुन्दर गृह धनादि से क्या फल हो सकता है । क्योंकि सीमर में लगे हुए (सीमर सेवी) चातक के समान कितने अज्ञ मनुष्य इस संसार सीमर पुत्र पौत्र धनादि में लगे (आसक्त) रहते हैं । परन्तु जैसे सीमर के फल को चाखते (खाने के लिये प्रवृत होते) ही उसमें से रुवा उड़ता है, तैसे भोगादि के लिये प्रवृत्त होते ही संसार की सम्पत्ति नष्ट हो जाती है । क्योंकि यह क्षणभङ्गुर है ।

काह खजूर बड़ाई तेरी, फल कोई नहिं पावै ।
ग्रीषम ऋतु जब आय तुलानी, छाया काम न आवै ॥

धन सम्पत्ति द्वारा यदि खजूर की नाईं, तुझे बड़ाई मिली, तो उस तेरी बड़ाई से क्या हुआ, इस बड़ाई से कोइ सच्चा फल नहीं पाता है । जैसे ऊँचे खजूर के फल को कोई नहीं पाता है । और ग्रीषम ऋतु में जैसे तुच्छ खजूर की छाया किसी काम की नहीं होती है, तैसे ही मरणादि काल रूप ग्रीषम काल के आने पर, इस लौकिक बड़ाई की छाया काम नहीं आती है । जब मृत्यु यम-

यातना आदि का समय आ जाता है, तब धनादि सब निरर्थक हो जाते हैं। ज्ञान भक्ति धर्म ही सदा सार्थक होते हैं।

अपने चतुर और को सिखवैं, कनक कामिनी स्यानी।
कहहिं कबीर सुनहु हो सन्तो!, रामचरण ऋत मानी ॥११॥

उक्त रीति से पुत्र पौत्रादि से वा धनादिजन्य बड़ाई से कोई सच्चा फल नहीं मिलता है। तो भी अज्ञान मोहादि युक्त मनुष्य, पुत्रादि के लिये और बड़ाई के लिये कनक कामिनी की प्राप्ति करने कराने में आप चतुर रहते हैं और अन्य को भी वही कनक कामिनी की स्यानी (चतुराई) सिखाते हैं। माया की गति को समझने के लिये यत्नादि नहीं करते हैं। अतः कबीर साहब सन्तों से कहते हैं कि आप श्रवणादि करो। सो भी (राम) सद्गुरु की चरण सेवा को ऋत (सत्य) मानकर श्रवण करो। अर्थात् (निराकार वह राम है, पाय सकिय नहिं अन्त। जो चाहो आकार युत, तो प्रत्यक्ष गुरु सन्त ॥ १ ॥ अङ्ग साखी) वह निर्गुण राम निराकार है, उसके अन्त को नहीं पा सकते, आकार सहित को भजना चाहो, तो गुरु संत को भजो क्योंकि पहली भक्ति सत्सङ्ग को और गुरुपादपूजा को ईश्वरपाद पूजा रूप अन्यत्र भी कहा गया है ॥

मोह त्याग विनु द्वन्द्व जग, मायाऽविद्या कीन।
जो रम तहँ तिहि फल नहीं, राम रमत फल लीन ॥ १२ ॥१॥

शब्द २

माया महा ठगिनि हम जानी।
त्रिगुनी फाँस लिये कर डोलै, बोलै मधुरी बानी ॥

हम (रामस्वरूप गुरु सन्तों) ने माया को महा ठगिनी जाना है। अतः (गई ठगौरि जब ठग पहिचाना) माया की गति को पहचानने से हमारे लिये उसकी ठगौरी (ठगपन) चली गई। तो भी अज्ञों को बाँधने के लिये, तीन गुणमय, ज्ञानसुख, रागद्वेष, मोह प्रमाद अज्ञानादिरूप फाँस अपने कर (हाथ) में (सब व्यवहार में) लेकर संसार में डोलती=फिरती रहती है। और स्त्री आदि रूप होकर मोह जनक मधुरी बानी बोलती है।

केशव के कमला ह्वै बैठी, शिव के भवन भवानी।
पण्डा के मूरति ह्वै बैठी, तीरथ हूँ में पानी ॥

योगी के योगिनि ह्वै बैठी, राजा के गृह रानी।
काहू के हीरा ह्वै बैठी, काहुक कौड़ी कानी॥

और केशव (विष्णुदेव) के घर में कमला (लक्ष्मी) होकर माया बैठी है। शिवजी के घर में भवानी (पारवती) होकर बैठी है। तीर्थ के पण्डाओं के घरों में देवमूर्ति होकर बैठी है। तीर्थों में पानी होकर बैठी है।

योगियों के घर में योगिनो और राजा के घर में रानी हुई है और किसी धनी के घर में हीरा आदि रत्न होकर बैठी है। और किसी गरीब के घर में कानी (फूटी) कौड़ी आदि रूप से बैठी है। अथवा किसी अविवेकियों की दृष्टि में जो बहुमूल्य हीरा होकर बैठी है, सो किसी विवेकियों की दृष्टि में कानी कौड़ी (अति तुच्छ) है।

भक्ता के भक्तिनि ह्वै बैठी, ब्रह्मा के ब्रह्मानी।
कहहिं कबीर सुनहु हो सन्तो, ई सब अकथ कहानी॥२॥

भक्तों के घर में भक्तिनी, ब्रह्मा के घर में ब्रह्माणी हो कर माया बैठी है। अतः कबीर साहब कहते हैं, कि यह पूर्व वर्णित सब अकथ (अनिर्वाच्य=अद्भुत) माया की कहानी (कथा) है। तथा यह सब संसार अकथ की कथा (कार्य) रूप है, हे सन्तो! उसका श्रवण करो और माया की वञ्चना से बचो। और—

"ता गुरु पद को सेविये, जिनमाया पहिचानि।
ठगनी को ठगि दूरि करि, राम मिलाया आनि॥१३॥"

"यत्किञ्चनाङ्ग! भुवनेषु महामहिम्ना व्याप्तं जरत्तृणलवत्त्वमुपागतं वा।
दृश्यं स्फुरन्तु हराद्यपि तामविद्यां विद्धि क्षयाय तदतीततयाऽऽत्मलाभः॥"
(योग वा० ६।८।२२)

हे प्रिय! सब भुवनों में जो दृश्य महामहिमा से व्याप्त हैं। या जीर्ण तृण-लवरूपता को प्राप्त हैं। या हरि हरादि रूप से प्रतीत हो रहे हैं। उन सबको अविद्या (माया) जानो, इन सब से आगे आत्म लाभ है॥ २॥

शब्द ३

सन्तो आवै जाय सो माया।
है प्रति पाल काल नहिं वाके ना कहुं गया न आया॥

लक्षण और प्रमाण से वस्तु की सिद्धि (बुद्धि=ज्ञान) होती है। तहाँ प्रत्यक्ष, अनुमानादि प्रमाण कहे जाते हैं और असाधारण विशेष धर्म (गुण

आकारादि) लक्षण कहे जाते हैं) और तन्त्र वार्तिक (ग्रन्थ) में लिखा है कि सर्वज्ञ ऋषि भी पृथक् पृथक् रूप से लक्ष्य (ज्ञेय) पदार्थों के अन्त को नहीं पाते हैं। और लक्षण द्वारा सिद्ध (वर्तमान) द्रव्यादि पदार्थों के अन्त को विद्वान् भी पा जाते हैं। अतः माया और राम के लक्षण को इस शब्द से कहते हैं, कि जिसकी चर्चा शूरू से हुई है। यद्यपि द्वन्द्व कारणत्व माया का लक्षण प्रथम शब्द में कहा गया है। परन्तु वह लक्षण कार्य रूप माया में नहीं रहता है। अतः कार्य कारण स्वरूप सब माया का लक्षण कहते हैं। कि—

हे सन्तो ? परिणाम, उत्पत्ति क्रिया द्वारा जो वस्तु आने जाने वाली है, सो स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर और भूत भौतिक पदार्थ त्रिगुण प्रकृति पर्यन्त सब माया स्वरूप हैं। और उस सर्वात्मा राम के कोई प्रतिपाल (रक्षक) और काल (नाशक) तथा जनकादिक नहीं हैं। वही सब का प्रतिपालक है। और विभु होने से वह न कभीं कहीं गया, न कहीं से आया। अतः जिस में क्रिया विकारादि हों, उसको माया स्वरूप समझना चाहिये। और क्रिया विकारादि रहित सर्वात्मा राम को समझना चाहिये।

क्या मकसूद मच्छ कछ होना, शंखाऽसुर न सँघारा।
है दयाल द्रोह नहिं वाको, कहहु कौन को मारा॥
नहि वे कर्ता ब्राह कहायो, धरनि धरो नहिं भारा।
इ सब काम साहब के नाहीं, झूठ कहै संसारा॥

मत्स्य वा कच्छप होने से पूर्णकाम राम को क्या मकसूद (मकसद= प्रयोजन=फल) है। प्रयोजन के अभाव से ही उसने शंकाऽसुर का संघार (नाश) नहीं किया। और वह केवल दयालु स्वरूप है, उसको किसी से द्रोह नहीं है। तो कहो कि द्रोह के विना वह किस को मारा, किसी को नहीं।

वह कर्ता ब्राह नहीं कहाया, न धरणी के भार को धारण किया। क्योंकि ये सब विशेष काम (कार्य) साहब ईश्वर के नहीं हैं संसारी झूठ ही इन्हे ईश्वर के काम कहता है। ईश्वर संसार का साधारण कर्ता (कारण) है, विशेष नहीं।

खम्भ फोरि जो बाहर होई, ताहि पतिज सब कोई।
हिरणाकश नख उदर विदारे, सो नहिं कर्ता होई॥

बावन होय नहिं बलि को जाँच्यो, जो जाँचे सो माया ।
बिना विवेक सकल जग भरमें, माया जग भरमाया ॥

पत्थर के खम्भे को फोर कर जो नृसिंह उस में से बाहर होते (निकलते) हैं, उनकी ईश्वरता का विश्वास सब कोई करते हैं। उनको पति मानकर सब जय मनाते हैं। परन्तु वह कर्ता राम तो सदा सर्वत्र एक रस वर्तमान रहता है। अतः जो हिरण्यकश्यप के उदर को नखों से विदारा (फाड़ा) सो विभु समदर्शी कर्ता नहीं हो सकता है।

वह समदर्शी बावन रूप होकर बलि से पृथिवी की याचना नहीं किया, जो जाँचा (जिसने याचना की) सो माया का स्वरूप बना था। इस विवेक ज्ञान के बिना सब संसारी भ्रम में पड़े हैं और माया ने सब जगत को भरमाया है।

परशु राम हो क्षत्रि न मारा, ईछल माया कीन्हा ।
सतगुरु भक्ति भेद नहिं जान्यो, जीवन मिथ्या दीन्हा ॥
सिरजनहार न ब्याही सीता, जल पषाण नहिं बन्धा ।
वे रघुनाथ एक को सुमिरै, जो सुमिरै सो अन्धा ॥

सर्वात्मा राम ने परशुराम होकर क्षत्रियों को नहीं मारा किन्तु यह छल भी माया ने ही किया। जिन्होंने सद्गुरु की भक्ति करके इस भेद (मर्म) को नहीं जाना, उन लोगों ने अपने जीवन (आयु) को मिथ्या माया में ही बिता दिया। वह अव्यक्त सृष्टि कर्ता ईश्वर सीता को नहीं ब्याहा। न जल में पाषाण का पूल बाँधा। क्यों कि उस सीता को ब्याहने वाले रघुनाथ एक सर्वात्मा राम का स्मरण स्वयं करते रहे। फिर भी जो भिन्नभाव से उनकी व्यक्ति मात्र का स्मरण करते हैं, सो सत्य राम के विवेक रहित अज्ञ हैं।

गोपी ग्वाल न गोकुल आयो, करते कंस न मारा ।
मेहरवान सबन के साहब, नहिं जीता नहिं हारा ॥
नहिं वे कर्ता बुद्ध कहायो, नहीं असुर को मारा ।
ज्ञान हीन करता सब भरमें, माया जग संहारा ॥

वह सत्य कर्ता गोपी ग्वाल के निवास स्थान गोकुल में नहीं आया। न करते (हाथ से) कंस को मारा, क्योंकि वह साहब सब के ऊपर मेहरवान

(दयावान) है। अतः वह न किसी से युद्ध किया, न किसी को जीता, न किसी से हारा।

वह कर्ता बुद्ध नहीं कहाया, न असुरों को यज्ञ से विमुख करके बहका कर मारा। किन्तु जो ज्ञान हीन लोग सब सत्य कर्ता से विमुख हुए, कर्ता के स्वरूप में भ्रम युक्त हुए, उन का माया ने संहार (नाश) किया (मच्छ रूप माया भई) इत्यादि रमैनी में देखना चाहिये।

नहिं वै कर्ता भये कलंकी, नहीं कलिं गहि मारा।
ई छल बल सब माया कीन्हा, यत्तसत्त सब टारा॥
दश अवतार ईश्वरी माया, कर्ता कै जिन पूजा।
कहहिं कबीर सुनहु हो सन्तो, उपजै खपै सो दूजा ॥३॥

वह कर्ता कलंकी (कल्कि) नहीं भया, न कलिं गहि (कलि को पकड़कर) मारा। किन्तु यह सब छल बल माया ने किया। और यतियों सतियों के यत्त सत्त (नियम सत्यव्रत) को टारा (नष्ट किया) ये दश अवतार रूप भी आने जाने वाले होने के कारण ईश्वरी (इश्वर सम्बन्धिनी) माया होती है। वा ईश्वरी (समर्था) माया होती है। जिनकी पूजा कर्ता रूप से की जाती है।

परन्तु कबीर साहब कहते हैं, कि हे सन्तो ! श्रवणादि करो और समझो कि जो उपजै (उत्पन्न हो) और खपै (नष्ट हो) सो कर्ता राम से (दूजा) दूसरी वस्तु है। उत्पत्ति आदि रहित निर्विकार सत्ता, प्रकाश, स्वशक्ति माया मात्र से कर्ता राम है शरीर शरीरी आदि रूप से नहीं। उससे अन्य देव मनुष्यादि रूप सब उसके माया मय विस्तार हैं। इस प्रकार एक राम और अनेक माया को समझो।

(नारि एक संसारहिं आई) (चली जात देखी एक नारी रमैनी ७२-७३) में आने जाने वली वर्णित नारी को माया रूप समझाने द्वारा यहाँ दोनों रमैनी का विवरण किया गया है ॥ ३ ॥

इति राम माया प्रकरण ९



अथ माया जन्य मोह प्रकरण २

शब्द ४

माया मोह मोहित कीन्हा। ताते ज्ञान रतन हर लीन्हा॥
जीवन ऐसो स्वपन जैसो, जीवन स्वपन समाना।
शब्दे गुरु उपदेश दीन्हा, छाड़ु परम निधाना॥

माया आतम राम की, चर्चा भइ बहु बार।
उनके लक्षण जानि के, हो माया से पार॥१४॥

गुरु उपदेश क श्रवण विनु, माया मोहित कीन्ह।
अजहूँ भजु भगवन्त को, करि विचार तजु तीन॥१५॥

श्रवणादि के बिना माया जन्य मोह ने जीवों को मोहित (विवेक रहित) किया। और मोहित करने द्वारा इनके शुभ ज्ञानस्वरूप आत्मरत्न को हर लिया है (छिपाया है)। अतः जो जीवन ऐसा तुच्छ अल्प है, कि जैसा स्वप्न होता है। सो भी जीवन स्वप्न तुल्य विषय भोग व्यवहारादि में ही समाया (नष्ट हुआ) अतः उस जीवन में ज्ञान रत्न को मनुष्य नही पाया। इस दशा को देख कर परमतत्त्व के ज्ञान के निधान (आश्रय) गुरु ने सार शब्द का उपदेश दिया कि हे परम निधान! (परम सुख के पात्र मनुष्यों!) तुम इन विषय मोहादि को छोड़ो।

ज्योतिहिं देखि पतङ्ग हुलसे, पशु नहिं पेखै आगी।
काल फाँस नल मुग्ध न चेतै, कनक कामिनी लागी॥
शेख सैयद कितेब निरखै, सुस्मृति शास्त्र विचारै।
सतगुरु के उपदेश बिनु ते, जानिके जिव मारै॥

जैसे दीपादि की ज्योति को देख कर पतङ्ग हुलसता (आनन्दित होता) है, उसको दाहक अग्नि नहीं समझता है। तैसे ही पशु तुल्य मुग्ध (अविवेकी) मनुष्य भी विषयों को अग्नि तुल्य नहीं समझते हैं। अतः कनक कामिनी में लाग (आसक्त हो) कर, काल फांस से बचने के लिये वे मुग्ध मनुष्य नहीं चेतते (सावधान होते) हैं।

जो शेख सैयद आदि किताबों को देखते हैं और जो ब्राह्मणादि सुन्दर स्मृति (धर्म शास्त्र) को विचारते हैं, सो भी सतगुरु के उपदेश जन्य चेत (होश ज्ञान) के विना काल फांस के वश में होकर जान कर जीव घात रूप पाप करते हैं।

करु विचार विकार परिहरु, तरण तारणो सोई।
कहहिं कबिर भगवन्त भजु नल, द्वितीया और न कोई ॥४॥

विचारादि बिना मनुष्य पाप करते हैं। अतः उपदेश है कि विचार करो और मोह काम हिंसादि रूप भीतर बाहर के विकारों (दोषों पापों) को सर्वथा त्यागो। यही स्वयं तरने और अन्य को तारने के लिये साधन रूप तरन तारन है। और विचार से सब विकार को त्याग कर एक सर्वात्मा राम भगवान को हे मनुष्यों ! तुम अवश्य भजो। दूसरे किसी मायिक वस्तु को नहीं भजो। क्योंकि उस एक से अन्य कोई सत्य सुखद नहीं है। क्योंकि—

"अलख चितेरा कर बिना, रच माया के भौन।
काय कर्म वश ह्वै रहा नहिं जानै पति कौन ॥१॥
माया तो ठगिनी भई, ठगत फिरै सब देश।
जा ठग ने ठगिनी ठगी, ता ठग को आदेश ॥२॥" अङ्ग साखी॥४॥

शब्द ५

सन्तो अचरज एक भौ भारी, कहूं तो को पतिआई ॥
ऐके पुरुष एक है नारी, ताकर करहु विचारा।
एके अण्ड सकल चौरासी, भरम भुला संसारा ॥

एक पुरुष इक नारी से, बहु विधि जगत जु होय।
भारी अचरज रूप सो, करि विचार लखु सोय ॥१६॥
भगवद्भक्ति विचार बिनु, लखि न पड़त जग जाल।
सद्गुरु भक्ति विचार करि, नाशिय भ्रम तम काल ॥१७॥

हे सन्तो ! एक भगवान् से अनन्त संसार एक भारी आश्चर्य स्वरूप हुआ है। विकारों को त्याग कर विचार से ही इस बात को कोई समझ सकता है। विचारादि के बिना कहने पर भी विश्वास कौन करता है। अर्थात् कहने पर भी तो कोई पतिआता (विश्वास करता) नहीं है।

सत्य एक भगवान् स्वरूप पुरुष है। और उसकी शक्ति माया रूप नारी भी एक है। इन दोनों से संसार हुआ है। अतः इन दोनों का ही विचार करो। विचार से एक पुरुष एक नारी रूप सब संसार को समझो।

क्योंकि सब ब्राह्माण्ड और चौरासी लाख रूप सब योनियों में एक ही सत्यत्मा पुरुष है। परन्तु विचारादि के बिना सब संसारी अनेक स्वरूप भ्रम में भूला (आसक्त) है।

एके नारी जाल पसारी, जग में भया अँदेशा।
खोजत खोजत अन्त न पाया, ब्रह्मा विष्णु महेशा ॥
नाग फाँस लिये घट भीतर, मूसिन सब जग झारी।
ज्ञान खड्ग बिनु सब जग जूझै, पकरि न काहू पारी ॥

एक ही नारी ने पुरुष से बल पाकर सब संसार जाल (विस्तार) को पसारी है। विचारादि के बिना उस जाल में सत्य बुद्धि पूर्वक फँसे रहने से संसार में अनेक प्रकार के अन्देशा (संशय भ्रम) हुआ है। और माया के विस्तार को खोजते खोजते ब्रह्मा विष्णु महेश भी इस विस्तार के अन्त नहीं पाये। अतः इसके अन्त को खोजना व्यर्थ है। विचार से एक पुरुष एक नारी को ही समझना उचित है। क्योंकि—

"अयं सदेव इत्येवं संपरिज्ञानमात्रतः।
जन्तो र्न जायते दुःखं जीवन्मुक्तत्वमेति च ॥" (योगवा० प्र० ३।६।६)

यह संसार सद्ब्रह्ममात्र ही है। ऐसे सम्यक् ज्ञानमात्र से प्राणी को दुःख नहीं होता है और जीवन मुक्तित्व को पाता है और ज्ञान के बिना काम तृष्णा आदिरूप नाग फाँस लेकर वह माया सब जीव के घट के भीतर वर्तमान (स्थिर) रहती है और उस नाग फाँस से बाँधकर सबके विवेक विचारादि धन को झार कर मूस (चोरा) लिया है तो भी सब संसारी ज्ञानरूप तरवार के बिना माया के साथ युद्ध करते हैं। माया को वश करके सुखशान्ति धन चाहते हैं। परन्तु एकात्म ज्ञानादि के बिना उसे पकड़कर किसी ने वश में नहीं किया।

आपुहि मूल फूल फुलवारी, आपुहि चुनि चुनि खाई।
कहहिं कबीर तेइ जन उबरे, जिहि गुरु लियो जगाई ॥५॥

"गुणा गुणेषु वर्तन्ते" (भ० गी० अ० ३।२८) "इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्ते" (भ० गी० अ० ५।९) "स्वभावस्तु प्रवर्तते" (भ० गी० अ० ५।१४) इत्यादि के अनुसार, एक मायारूप स्वभाव आप ही संसार वृक्ष का मूल और कर्मरूप फूल तथा चराचर शरीर भूत-भौतिक स्वरूप फुलवारी बनती है और अहंकार बुद्धि आदिरूप होकर विषयरूप फल-फूलों को स्वयं चुन-चुनकर खाती है और माया से ही जीव भी संसार के मूलादिरूप बनकर कर्म फलों का भोक्ता होता है। साक्षीस्वरूप आत्मा प्रकाशमात्र करता है। साहब कहते हैं कि इस मायाजाल से वे ही जन मुक्त होते हैं कि जिन्हें सगुद्रु ने मोह निन्द से जगा लिया है ॥५॥

शब्द ६

सन्तो ! अचरज एक भौ भारी, पुत्र धयल महतारी ॥
पिता के संग भई बावरी, कन्या रहल कुमारी ।
खसमहि छोड़ ससुर संग गवनी, सो किन लेहु विचारी ॥
भाई के संग सासुर गवनी, सासुहिं सावत दीन्हा ।
ननद भौज परपञ्च रच्यो है, मोर नाम कहि लीन्हा ॥

सद्विचार गुरु ज्ञान विनु, इक अचरज भौ भारि ।
मन से करि परपञ्च सव, सद्गुरु से रह न्यारि ॥१८॥

हे सन्तो ! जागे विना एक भारी आश्चर्य हुआ है कि "माया से मन ऊपजे" इत्यादि के अनुसार माया के पुत्र मन ने माया को धारण कर लिया है और आत्मा का धारण निश्चय नहीं करता है। अतः संसार में भ्रम-संशयादि हुए हैं और बुद्धिरूप कन्या सर्वात्मा पिता के साथ रहती हुई भी बावरी हुई है। अतः तटस्थ देव ईश्वरादि को पिता समझती है। अतएव कुमारी रह गई है। जीव-साक्षीरूप कूटस्थ पति को प्राप्त नहीं करती है।

अतः उस साक्षी और सद्गुरु स्वरूप खसम (स्वामी) को त्यागकर, वञ्चक गुरु आदिरूप ससुर (सुर = देव सहित, देवभक्त) के साथ बुद्धि चली है, सो क्यों नहीं विचार कर लेते हो। इस बात को विचारने विना ही यह बुद्धि मनरूप भाई के संग होकर लोकान्तरादिरूप सासुर (असुरसहित) स्थान में गमन करती है और किया है तथा अविद्या कुवाणी आदिरूप सासु को सावत (संग) दिया और किया है अर्थात् अविद्या कुशब्द के श्रवणादि से सासु (असु = प्राणसहित)

शरीर का धारण उसमें आत्मता का अभिमान किया और प्राणी को पीड़ित किया है। इस प्रकार अविद्या आशा, तृष्णा आदिरूप ननद और दुर्बुद्धिरूप भौज मिलकर यह प्रपञ्च रचा है और यह प्रपञ्च मेरा है, ऐसा नाम (शब्द) कहकर (ममता करके) अविद्या और दुर्बुद्धि ने ही इस प्रपञ्च को लिया है (प्राप्त किया है)। सद्गुरु सत्यात्मा का भी वही नाम लेती है। उनमें प्रपञ्च का मिथ्या आरोप करती है।

समधी के संग नाहीं आई, सहज भई घरवारी।
कहहिं कबीर सुनहु हो सन्तो, पुरुष जन्म भौ नारी ॥६॥

प्रपञ्च परायण जिनकी बुद्धि समधी (सम बुद्धिवाले) महात्माओं की संगति में नहीं आई, उनकी वह बुद्धि सहज स्वभाव प्रारब्धादि से सिद्ध, संसार देहरूप घर के ही घरवारी (व्यापारवाली) हुई। कबीर साहब कहते हैं कि बुद्धि की ऐसी प्रवृत्ति से पुरुष (जीवात्मा) जन्म लेकर नारी (परवश) हुआ है तथा जन्म से पुरुष होते भी नारी हुआ है। यही गुरुज्ञान के बिना आश्चर्यरूप संसार है।

"चेतस्तु जीवतां यातं चिच्छक्तिपरिभूषितम्।
विद्यात्संसारसंरम्भं कपिपोतकचञ्चलम् ॥१॥
जडो देहो न दुःखार्हो दुःखीदेह्यविचारतः।
अविचारो घनाज्ञानादज्ञानं दुःखकारणम् ॥२॥
अविवेकाऽऽमयोन्नद्धं मनो विविधवृत्तिमत्।
नानाकारविहारेण परिभ्रमति चक्रवत् ॥३॥
शुभाशुभानां धर्माणां जीवो विषयतां गतः।
अविवेकैकदोषेण कोशेनेव हि कीटकः ॥४॥"

(योगवा० प्र० ३।११५।११-१९-२१)

चित् शक्ति से युक्त, संसार के भोग में संरम्भ (आग्रह) वाले कपिशिशु तुल्य चञ्चल चित्त को ही जीवता को प्राप्त समझना चाहिये ॥१॥ जड़ देह दुःख के योग्य नहीं है। किन्तु विचाराभाव कुविचार से देही (जीव) दुःखी है और निविड़ अन्धकार तुल्य अज्ञान से अविचार है। अतः दुर्बुद्धि आदिरूप अज्ञान ही दुःखों का कारण है ॥२॥ क्योंकि अविवेक अज्ञानरूप रोग से अतिबद्ध पीड़ित, विविध वृत्ति युक्त मन स्व सुख के लिये नाना आकाररूप विहार द्वारा

चक्र तुल्य परिभ्रमण करता है ॥३॥ और अविवेकरूप एक दोष से ही कोश से कीट के समान जीव शुभाशुभ धर्मों के वश में देही हो गया है ॥४॥६॥

इति माया मोह प्रकरण २

अथ ज्ञानी की स्थिति प्रकरण ३

शब्द ७

मायी मैं दूनों कुल उजियारी।
सासु ननद पटिया मिलि बँधलों, भँसुरहि परलों गारी॥

करि विचार जिन मति लही, मन माया को मारि।
लही सकल तिन सिद्धियाँ, मुक्ति लही सत सारि॥१९॥

विचारादि से उक्त मोहादि को नष्ट करने वाले ज्ञानियों की स्थिति का वर्णन करते हैं कि—मायी (माया को अपने वश में करनेवाले) मैंने तो संसार समुद्र के दोनों कुल (तट) उजियारी (प्रत्यक्ष) कर लिया है। लोक-परलोक को समझा है। मातृकुल, पितृकुल को पावन किया है और माया अविद्या शरीरादिरूप सासु, ननद को मिलाकर विवेकरूप पटाञ्चल में बाँध लिया है। सब को एक नारी रूप समझा है या उनसे मिलकर देहादि द्वारा पटिया (बाल तुल्य तमोगुण को) बाँधा है तथा भँसुर (बड़े-बड़े अज्ञ देवादि) को गाली दिया है। अर्थात् उनमें ईश्वरता आदि का निषेध करके मायिकता ठहराया है।

जारों माँग तासु नारी की, सरवर रचल धमारी।
जना पाँच कुखिया में रखलों, और दुई औ चारी॥
पार परोसिन करों कलेवा, संगहि बुधि महतारी।
सहजे बपुरे सेज बिछावल, सुतलों पाँव पसारी॥

और उन आशा, तृष्णा, अविद्या आदिरूप नारियों की माँग (कपार) को जलाता हूँ (उनकी सत्ता शक्ति को नष्ट करता हूँ) कि जिन्होंने संसार सरोवर में धमार खेल रचा है (द्वन्द्व किया है)। इस प्रकार पाँच ज्ञान इन्द्रियरूप पाँच जना, द्वन्द्वरूप राग, द्वेष दो जना और चार अन्तःकरणरूप चार जना को मैंने कोंख में रख लिया, इनका निरोध किया।

और संसार से पार पहुँचे हुए जीवन्मुक्त मेरे पड़ोसी हैं। उनके साथ ब्रह्मानन्द का कलेवा (पूर्ण भोजन मैं करता हूँ। और साथ ही में बुद्धि (विद्या) रूप माता सहकारिणी (सहायक) रहती है। सहज स्वभाव से प्राप्त बपुरा (मिथ्या) इस शरीर रूप शय्या को बिछा कर, इस पर मानो मैं पाँव पसार कर सोया हूँ। मैं सर्वथा इससे अब भिन्न हूँ।

आउँ न जाउँ मरों नहिं जीवों, साहब मेटल गारी।
एक नाम मैं निज कै गहलों, ते छूटल संसारी॥
एक नाम मैं बदि कै लेखों, कहहिं कबीर पुकारी॥ ७॥

देहाभिमानादि रहित होने से अब मैं न कहीं से आता हूँ, न कहीं जाता हूँ, न मरता हूँ न जीता (जन्मता) हूँ। क्योंकि सद्गुरु साहब ने मेरे सब गालियों (दोषों कुशब्दों) को मेट दिया है। अतः मैंने एक नाम (सत्य स्वरूप) को खास करके समझा है, कि जिससे संसारीपन छूट गया है। और मैं एक नाम (स्वरूप) ही निश्चय करके देखता (समझता) हूँ। इस प्रकार पुकार कर कबीर साहब ज्ञानी की स्थिति का वर्णन करते हैं।

इस शब्द से सत्य धर्मनिष्ठ पतिव्रता के धर्म का भी एकोक्ति से वर्णन किया गया है, कि वह भी मानो माया को वश में करके माता से कहती है, कि मेरे दोनों कुल उज्वल हैं। अर्थात् वह किसी की निन्दा नहीं करती है। सासु ननद से प्रेम का, भँसुर (भवपरायण) से असङ्ग का, कुलटा के फटकार का वर्णन करती है। श्रुति वर्णित सन्तानोत्पत्ति, साधु साध्वी स्त्री सासु की सेवा, प्रीति, पति के प्रेम से प्राप्त शय्या आदि से सन्तोष को धर्म रूप बताती है और धर्म से ही कल्याण समझती हैं। सो कबीर साहब पुकार के कहते हैं॥ ७॥

शब्द ८

सन्तो! कहौं तो को पतिआई, झूठ कहत साँच बनिआई॥
लौके रतन अबेध अमोलिक, नहिं गाहक नहिं साँई॥
चिमिकि चिमिकि चिमके दृग दहुं दिशि, अर्ब रहा छिरिआई॥

हे सन्तो! मैं उक्त एक सत्य स्वरूप को कहता हूं, परन्तु विचारादि के बिना विश्वास कौन करता है, अर्थात् कोई विश्वास नहीं करता है। कोई बिरल विचारवान ही विश्वास करेगा। कहना यह है कि सत्य निर्गुण आत्मा शब्द

शक्ति का विषय नहीं है, अवाच्य है। अतः झूठ (मिथ्या वाच्य सगुण) को ही कहते-सुनते विचारते में लक्षणा आदि द्वारा निर्गुण सत्यात्मा का बोध जिज्ञासु को बन आता है (सिद्ध होता है)। फिर वह अवेध (अखण्ड) अमूल्यरत्न (परम प्रकाश स्वरूप) आत्मा उस जिज्ञासु को लौकता (प्रत्यक्ष होता) है कि जिस रत्न के सर्वात्मा होने से उसका कोई ग्राहक और स्वामी नहीं है।

वह दृक् (द्रष्टा चेतन) ही सूर्य चन्द्रादि रूप से चमक चमक कर दशो दिशाओं में एक रस स्वस्वरूप से चमक (प्रकाश) रहा है। और अर्ब (सौ करोड़) अनन्त स्वरूप से छिरिआया (बिखरा फैला) है। अनन्त जीव शिव रूप से वही भासता है।

"अगम अपार रूप बहु, औ अरूप बहु भाय।
बहुत ध्यान कै जोहिया, नहिं तिहि संख्या आय ॥" (रमैनी साखी ७७)

इत्यादि वर्णित का ही यहाँ फिर वर्णन है।

आपेहिं गुरु कृपा कछु कीन्हा, निर्गुण अलख लखाई।
सहज समाधी उन्मुनि जागे, सहज मिले रघुराई ॥

पुण्य प्रभाव से जब जिसको सद्गुरु मिले और आप ही दयालुता से जब कुछ कृपा किये, तो निर्गुण अलख (अलक्ष्य अज्ञेय अवाच्य) को भी आत्म रूप से लखाय (समझाय) दिये। या आप राम ने जब गुरु रूप से कृपा की तब अपने निर्गुण अलख स्वरूप को स्वयं लखाया फिर सहज समाधि और उन्मुनि मुद्रा द्वारा जागने पर (मोहादिको त्यागने पर) या सहज समाधि उन्मुनिमुद्रा के जागने पर निर्गुण रघुराई (राम) सहज (अनायास) ही मिले और मिलते हैं। अर्थात् गुरु उपदेश में विश्वास स्थिरता अभ्यास रूप सहज समाधि और मनोवृत्ति की ऊर्ध्व सूक्ष्म स्वरूप तरफ गति तत्परता प्रेमादि रूप उन्मुनी मुद्रा से सर्वात्माराम सहज ही (हठ के बिना) मिलता है।

जहँ जहँ देखो तहँ तहँ सोई, माणिक बेध्यो हीरा।
परम तत्त्व यह गुरु ते पायो, कहें उपदेश कबीरा ॥ ८ ॥

सर्वात्मा निर्गुण राम के मिलने पर जहाँ जहाँ देखता हूँ, तहाँ तहाँ सो राम ही सत्य प्रतीत होता है। नाम रूपात्मक संसार मिथ्या भासता है। और वह राम महा कठिन माणिक हीरा में भी बेधा (व्यापक) है। असंग परम सूक्ष्म सर्वात्मा

होने से वह किसी से निरुद्ध नहीं होता है। इस असंग अखण्ड परम तत्त्व को जिस किसी ने पाया, सो गुरु से ही पाया। अतः कबीराओं (जीवों) के प्रति अब भी सन्त गुरु इसके उपदेशों को कहते हैं। ज्ञानी गुरु का उपदेश देना कर्तव्य है।

विनु विचार नहिं सिद्धि कछु, नहिं विवेक विज्ञान।
नहिं श्रद्धा गुरु वचन में, ताते फिरत भुलान॥ २०॥
करि विचार गुरु शरण गहि, लहिये निर्गुण राम।
सहज समाधिहुँ पाय के, पाइय पर विश्राम॥२१॥८॥

शब्द ९

यन्त्री यन्त्र अनूपम बाजै। वाके अष्ट गगन मुख गाजै॥
तूं ही बाजै तूंही गाजै, तूंहि लिये कर डोलै।
एक शब्द में राग छतीसो, अनहद बानी बोलै॥

ज्ञानी समुझि स्वरूप निज, शिष्यहि दे उपदेश।
यन्त्री तुम नहिं यन्त्र हो, करु विवेक यह वेष॥२२॥

हे यन्त्री (देही) जीव ! तेरा यह यन्त्र (देह सितार) अनूपम बाजता है, यह दैवी वीणा अद्भुत शब्द करती है। क्योंकि लोक में यन्त्र को बजाने वाला यन्त्र के किसी एक तरफ रह कर यन्त्र को बजाता है। और इस दैवी वीणा को बजाने वाला इसके आठो दिशाओं में और आकाश में सब के मुख में गाजता (विराजता) है। या आकाश के आठ दिशारूप मुख में, वर्णोच्चारण के आठो स्थानों में बाहर भीतर सर्वत्र विराजता है। और वस्तुतः तूंही बाजता है तूंही गाजता है और तूंही प्राणादि रूप हाथ में यन्त्र को लेकर डोलते (चलते) हो और एक शब्द में छत्तीस राग और अनहद वाणी तूंही बोलते हो। तेरे बिना यन्त्र कुछ नहीं कर सकता है। ऐसा तेरा अद्भुत स्वरूप है।

मुख को नाल श्रवण को तुम्बा, सतगुरु सांज बनाया।
जिह्वा तार नासिका चरई, माया मोम लगाया॥
गगन मण्डल में भौ उजिआरा, उलटा फेर लगाया।
कहहिं कबिर जन भये विवेकी, जिन यन्त्री मन लाया॥९॥

इस यन्त्र में मुख को नाल रूप बनाया है, श्रोत्र को तुम्बा बनाया है। और इसके सब साज को सर्वज्ञ सद्गुरु (ईश्वर) ने बनाया है। इसमें जिह्वा

तारूप है, नासिका चरई (खूँटी) है माया (ममता) मोम रूप लगाई गई है। उस माया से जीव सदा सुलटा (सीधा) बाहर की फेरी लगाता है। यन्त्र द्वारा बाहर का गीत गाता है और बाहर का व्यवहार करता है। क्योंकि—"पराञ्चिखानि व्यतृणत् स्वयं भूः। (कठ० २।१।१)"

ईश्वर ने ही बाह्य विषयों के ज्ञान के लिये इन्द्रियों को रचा है। परन्तु जिन लोगों ने "कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन्" अमृतत्व की इच्छा करते हुए चक्षु आदि इन्द्रियों का निरोध पूर्वक उलटा फेरी लगाया (अन्तर्मुख मन को किया) उनके गगन मण्डल (हृदय) में (प्रकाश अनुभव) हुआ कबीर साहब कहते हैं कि जिन्होंने उलटा फेर लगा कर, अन्य अनुभवादि को भी त्याग कर यन्त्री में मन को लगाया (अन्तरात्मा का चिन्तन किया) वे लोग विवेकि हुए। अतः आत्म चिन्तन कर्तव्य है ॥ ९ ॥

शब्द १०

रामुरा झीं झीं जन्तर बाजै। कर चरण बिहूना नाचै ॥
कर बिनु बाजै सुनै श्रवण बिनु, शरवण श्रोतासोई।
पट नहिं सुवस सभा बिनु अवसर, बूझहु मुनि जन लोई ॥

कर श्रवणादिक बिनु सकल, करत विविध व्यवहार।
जागत हूँ सोया सरिस, रहता विगत विकार ॥२३॥
विश्व वृक्ष तहँ बीज बिनु, भासत माया सेहि।
मनहिं चढ़त ता वृक्षपर, आतम सदा अदेहि ॥२४॥
यों तहं मनहिं लगाइये, होइय विमल विवेकि।
यह सतगुरु उपदेश सत, राखु हृदय में टेकि ॥२५॥

उक्त यन्त्री में कैसे मन लगाना चाहिये, ऐसी जिज्ञासा होने पर कहते हैं कि हे रामुरा (रामराजा, रामधनार्थी) तेरे प्रकाश से ही झीने झीने यन्त्र बाजते हैं। अतः तुम ही यन्त्री हो, यन्त्र नहीं। और तेरी सत्ता ज्योति से कर चरणादि रहित मन नाचता है। और मनके नाचों के साक्षी होने से तुम भी मानो कर चरणादि बिना मन के साथ नाचते हो। और यन्त्र कर बिना तुम से बजता है। क्योंकि ये प्रत्यक्ष करादि यन्त्र में हैं, यन्त्री में नहीं। इसी प्रकार श्रोत्र के बिना यन्त्री शब्द सुनता है। क्योंकि वह (श्रोत्रस्य श्रोत्रम्। केन०

१।२। श्रोत्र का भी श्रोता (ज्ञाता) प्रकाशक होने से श्रोत्र का श्रोत्र है। और वस्त्र विना भी सुवस्त्र (आवृत) है। और विना अवसर के सदा उसकी सभा लगी रहती है। अन्तर्यामी रूप से सदा कर्मादि का निरीक्षण करते रहता है। हे लोगों! मुनिजन से इस तत्त्व को समझो। या हे मुनिजन लोगों! इस उपदेश से यन्त्री को मन लगा कर समझो। (अपाणिपादः) इत्यादि श्रुतिभी है।

इन्द्रिय बिनु भोग स्वाद जिह्वा बिनु, अक्षय पिण्ड बिहूना।
जागत चोर मन्दिर तहँ मूसै, खसम अछत घर सूना॥
बिज बिनु अङ्कुर पेड़ बिनु तरुवर, बिनु फूले फल फरिया।
बाँझक कोख पुत्र अवतरिया, बिनु पग तरुवर चढ़िया॥

वह यन्त्री इन्द्रिय विनु सब भोग को जानता है जिह्वा के विना स्वाद को जानता है और शरीर में रहते भी शरीर से रहित अक्षय (निर्विकार अविनाशी) है। और उसके सदा जागते रहते भी कामादि चोर उस मन्दिर (देह) में चोरी करते हैं। और सुषुप्ति आदि काल में उस खसम के रहते भी घर शून्य तुल्य रहता है। अतः वह अपनी नियति को कभी अन्यथा नहीं करता है। उसकी नियती रूप माया से सत्य बीज के विना वासना से कर्मादि अंकुर उसमें भासते हैं। और त्रिगुण पेंड़ के विना संसार वृक्ष भासता है। धर्मादि पुष्प के बिना सुखादि फल फलते हैं। और वन्ध्या माया के कुक्षी से सब पुत्र मन उत्पन्न होकर पैर के विना संसार वृक्ष पर चढ़ते हैं, संसारी जीव सिद्ध होते हैं।

मसि बिनु द्वात कलम बिनु कागज, बिनु अक्षर सुधि होई।
सुधि बिनु सहज ज्ञान बिनु ज्ञाता, कहहिं कबिर जन सोई॥१०॥

और मसी के विना चित्त रूप दवात है। कलम के विना पांच भूतादि कागज हैं। तहाँ अक्षर के बिना ही सब संसार की रचना कर्मादि की उस यन्त्री को सुधि (स्मृति ज्ञान) होती है। और वस्तुतः वह ज्ञान उसके स्वरूप से भिन्न सत्ता वाला नहीं होता है। अतः सुधि के बिना ही उसके लिये सब संसार के कार्य सहज (अनायास साध्य) है। और स्वरूप से भिन्न ज्ञान के बिना ही सब का ज्ञाता (साक्षी प्रकाशक) है। कबीर साहब कहते हैं कि हे सज्जनों! सोई यन्त्री है, कि जिसमें मन लगाने से मनुष्य विवेकी होता है १० ॥

इति विज्ञस्थिति-प्रकरण ३

अथ निर्भेद निष्प्रपञ्चात्म प्रकरण ॥ ४ ॥

शब्द ११

पण्डित देखहु हृदय विचारी, को पुरुषा को नारी ॥
सहज समाना घट घट बोले, वाको चरित अनूपा ।
वाको नाम काह कहि लीजै, ना वह वरण न रूपा ॥

हे पण्डितों ! (जिज्ञासु मुमुक्षुओं !) हृदय में विचार कर यन्त्री को देखो (समझो) कि कौन पुरुष है और कौन नारी (स्त्री) है ।

अर्थात्—"नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः ।
यद्यच्छरीरमादत्ते तेन तेन स युज्यते ॥" (श्वेता० ४।१०)

यह आत्मा स्त्री पुरुष नहीं है, न नपुंसक है । किन्तु जिस जिस शरीर का ग्रहण करता है, उस उस व्यवहार से युक्त होता है ।

और वह एक ही आत्मा घट घट में साक्षी जीवादि रूप से समाया (व्यापक) है । जीव रूप से बोलता है । उसका चरित्र अनूप (उपमा रहित) है । उसके तुल्य कुछ है नहीं, कि जो उसकी उपमा हो सके । और वह नाम रहित है, क्योंकि वर्णन करने योग्य वरण (जाति आकारादि) वाला और रूप वाला नहीं है, तो फिर गुण क्रिया जाति सम्बन्धादि को उसमें कह कर या मान कर उसका शेष नाम लिया जाय । जाति गुण कर्मादि से ही नाम लिये (धरे) जाते हैं । (यहां तक सात रमैनी का विवरण हुआ है) ॥

मैं तैं काह करसि नल बौरे, क्या तेरा क्या मेरा ।
राम खोदाय शक्ति शिव एके, कहु दहुं काहि निहोरा ॥
वेद पुराण कुराण कितेबा, नाना भाँति बखाना ।
हिन्दू तुरुक योगि औ जैनी, एकल काहु न जाना ॥

उक्त विवेक नामादि रहित के ज्ञान बिना, हे बौरे ! उस आत्मा में मैं तैं आदि भेद का व्यवहार क्या करते हो । इसमें क्या तेरा और क्या मेरा है । वह एक ही राम खोदाय शक्ति और शिव कहा जाता है । फिर कहो तो कि ऐसी स्थिति में निहोरा किसका करना है । वेद पुराण किताब आदि भी उसी एक का

नाना प्रकार से व्याख्यान करते हैं। परन्तु विचारादि से रहित हिन्दू तुरुक योगी और जैनी किसी ने एकल (अद्वैत) सत्यात्मा को नहीं जाना।

छौ दर्शन में जो परमाना, तासु नाम मन माना।
कहहिं कबिर हमहिं पै बौरे, ई सब खलक सयाना ॥११॥

अद्वैत को नहीं जानने से छौ योगी जङ्गमादि दर्शनों में जो भिन्न भिन्न वस्तु देवादि परम ब्रह्म उत्तम प्रमाणिक माने गये हैं। उनके भिन्न भिन्न नामों को सब का मन मान लिया है। अतः नाम रूपादि रहित तत्त्व की खोज विचारादि कोई नहीं करते हैं। इनकी सभा में केवल हम आत्मज्ञ ही बौरे हो जाते हैं, सब संसारी अपने मन से सयान (ज्ञानी) बनते हैं। अथवा केवल नाम रूप के सयान ये संसारी हमारी दृष्टि में बौरे हैं। अतः एकात्मा के विचारादि नहीं करते हैं॥११॥

शब्द १२

पण्डित मिथ्या करहु विचारा। न वहाँ सृष्टि न सिरजन हारा॥
स्थूल अस्थूल पवन नहिं पावक, रवि शशि धरनि न नीरा।
ज्योति स्वरूप काल नहिं उहवाँ, वचन न आहिं शरीरा॥
कर्म धर्म कछुवो नहिं उहवाँ, न उहाँ मन्त्र न पूजा।
संयम सहित भाव नहिं उहवाँ, सो दहुं एककि दूजा॥

हे पण्डित! यदि सृष्टि आदि मात्र का ही विचार करते हो, तो मिथ्या का ही विचार करते हो। क्योंकि पूर्व वर्णित उस सत्यात्मा में सृष्टि सिरजनहार सत्य नहीं हैं, मायिक मिथ्या हैं। स्थूल और अस्थूल (सूक्ष्म) संसार तथा शरीरादि का उस आत्मा में अभाव है। और वायु, अग्नि, सूर्य, चन्द्र, पृथिवी, जल का भी असङ्ग आत्मा में अभाव है। और ये सब सत्य नहीं हैं। उस ज्योतिः (नित्य ज्ञान) स्वरूप में काल का सम्बन्ध नहीं है। तथा ज्योतिः स्वरूप काल उसमें नहीं है, न वचन (वाक्) की उसमें प्रवृत्ति होती है, न कारण शरीर है। न उसमें कर्म है, न कर्मजन्य धर्माधर्म (पुण्यपापादि) कुछ भी उस में हैं। न मन्त्र, है न पूजा है। धारणा ध्यान और समाधि की एकविषयता रूप संयम और उसके सहित अन्यभाव (भावना=पदार्थ) भी उसमें सत्य नहीं हैं। सोई आत्मा एक है अथवा दूजा अनेक है। वह एक अपनी आत्माही सत्य है, या दूजा (दूसरा) भी सत्य है, यही विचार करो। यह विचार सत्य है, अन्य नहीं।

गोरख राम एको नहिं उहवाँ, न उहाँ वेद विचारा ।
हरिहर ब्रह्मा नहिं शिवशक्ती, न उहाँ तीर्थ अचारा ॥
माय वाप गुरु जाके नाहीं, सो दूजा कि अकेला ।
कहहिं कबिर जो अबकी समुझै, सोई गुरु हम चेला ॥१२॥

उस स्वरूप में सिद्ध गोरख और अवतार स्वरूप रामादि एक भी नहीं हैं। न वहां बेद का विचार है। वह वाणी का अविषय है। उसमें हरि हरादि रूपता नहीं है, न शिव शक्ति का भेद है। 'न तीर्थ आचार का सम्बन्ध है। जिसके माता पिता गुरु नहीं है, सो द्वैत (भेद) युक्त है कि अकेला (अद्वैत) है। यह विचारना और समझना चाहिये। क्योंकि जो कोई अबकी (इस मानव देह में) इस अर्थ को समझता है, वह गुरु है। और हम (समझने की उत्कट इच्छा वाले) शिष्य हैं। वे शिष्य भी ज्ञान पाके मुक्त होते हैं।

"त्यक्त्वा यः प्राकृतं कर्म नित्यमात्मारतिर्मुनिः ।
सर्वभूतात्मभूस्तस्मात्स गच्छेदुत्तमां गतिम् ॥" (म.भा.शा.अ.१६४)

जो मुनि (विचारवान्) स्वाभाविक कर्मों को त्यागकर सदा आत्म प्रीति वाले होते हैं, सो सर्वात्म स्वरूप के अनुभवी होकर, उस से उत्तम गति (मोक्ष) पाते हैं॥ १ ॥ १२ ॥

इति निर्भेद निष्प्रपञ्चात्म प्रकरण ॥ ४ ॥

अथ भ्रान्त सम्बोधन प्रकरण ५

शब्द १३

पण्डित देखहु मन महँ जानी ।
कहु दहुँ छूति कहाँ ते उपजी, तबहि छूति तुम मानी ॥
नादे बिन्द रुधिर मिलि सङ्गे, घट ही में घट सपुजै ।
अष्ट कमल ह्वै पुहुमी आई, छूति कहाँ ते उपजै ॥

हे पण्डित ! जिस छूति को अपने मन में जानी है (मन से समझी है) उस छूत को फिर विचार कर देखो और कहो तो भी कि वह छूत कहाँ से

उपजी है । तब फिर आपने उसको मान ली है । माता के पेट में नाद (शब्द) की उत्पत्ति के स्थान नाभि के पास गर्भाशय में रजोवीर्य के साथ प्राण के मिलने से माता के घट में ही यह घट (देह) कललादि रूप होकर सब अङ्गों से पूर्ण होता है, वहाँ पकता है और बढ़ता है। फिर आठ कमलादि युक्त होकर माता के अष्टम कमल मूलाधार के पास योनि द्वारा यह शरीर भूमिपर आता है। तो ऐसे शरीर में छूति कहाँ से उपजी, यह तो स्वयं छूति स्वरूप है।

लख चौरासी नाना बासन, सो सब सरि भौ माटी ।
एके पाट सकल बैठायो, सींचि लेत दहुँ काकी ॥
छूतिहिं जेवन छूतिहिं अचवन, छूतिहिं जगत उपाया ।
कहहिं कबीर ते छूत विवर्जित, जाके सङ्ग न माया ॥१३॥

और चौरासी लाख योनियों के जो नाना प्रकार के देहरूप बासन (घट) हो चुके हैं, सो सब सड़कर मिट्टी हो गये हैं और उस एक मिट्टीमय पाट पर सब प्राणी ईश्वर से बैठाये गये हो तो किसकी छूत से जल के सींच लेते हो (देह पर जल छींटते हो)। विचार कर देखो तो जेवन-अचवन (अन्न जल) सब छूत स्वरूप हैं और जगत के उपाय (कारण) रजोवीर्यादि और सबका मूल कारण अविद्या माया छूत स्वरूप है। अतः कबीर साहब कहते हैं कि वही छूत से सर्वथा रहित है कि जिसके साथ में माया नहीं है। अर्थात् कनक-कामिनी मांस, मद्य आदि के त्यागी, देहाभिमान काम-क्रोधादि रहित असङ्गात्मनिष्ठ ज्ञानी पवित्र है, अन्य अभिमानी नहीं ।

देखिय हृदय विचारि के, कौन पुरुष को नारि ।
एक अखण्डहि आतमा, लखत सकल अघहारि ॥२६॥

मिथ्या विश्व विचार से, क्या फल पाइय तात ! ।
करिये सत्य विचार इक, तब पाइय कुशलात ॥२७॥

करि विचार सब त्यागिये, माया सङ्गति मीत ।
जिहि संग माया मद नहिं, सोई परम पुनीत ॥२८॥

काम क्रोध छूतक महा, छूतक लोभ समाय ।
शील सरोवर न्हाइये, तब यह छूतक जाय ॥२९॥१३॥

शब्द १४

पण्डित सोधि कहहु समुझाई । जाते आवागमन नशाई ॥
अर्थ धर्म औ काम मोक्ष कहु, कौन दिशा बस भाई ॥
उत्तर कि दखिन पूरब कि पच्छिम, स्वर्ग पताल कि माँही ॥
बिना गोपाल ठौर नहिं कतहूँ, नरक जात दहुँ काही ॥

हे पण्डितों ! उक्त मायारूप छूत से रहित होने के लिये स्वयं शोध (विचार=समझ) कर, अन्य को भी वह वस्तु समझाकर कहो कि जिसके ज्ञानादि से आवागमन (जन्म-मरणादि) द्वन्द्व नष्ट हो जायँ और अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष हे भाई ! कौन दिशा में वसते हैं, सो समझाकर कहो। उत्तर कि दक्षिण, पूर्व कि पश्चिम बसते हैं। अथवा स्वर्ग में कि पाताल में कि इस माँही (मध्य-लोक में) वसते हैं, सो समझाकर कहो।

अर्थात् बाहर किसी दिशा का नियम नहीं है किन्तु जहाँ गुरु अमृत घोंटी पिलाते हैं, वहाँ ही कामादि पूर्ण हो जाते हैं और "पूरव दिशा हंस गति होई" (रमैनी ९) इस उपदेश के अनुसार आन्तरिक पूर्व दिशा और मध्यलोक में गति होती है, सो समझाकर कहो। इत्यादि और गोपाल (पृथिवी इन्द्रियादि का पालक) सर्वात्मा राम के विना कहीं कोई ठौर (स्थान) नहीं है। राम व्यापक है तो भी जीव नरक में क्यों जा रहे हैं, इनकी रक्षा राम क्यों नहीं करता है ? सो समझो और समझाओ।

अनजाने को स्वर्ग नरक है, हरि जाने को नाहीं।
जे डर के सब लोग डरत हैं, सो डर हम न डराहीं ॥
पाप पुण्य की शंका नाहीं, स्वर्ग नरक नहिं जाहीं।
कहहिं कबीर सुनहु हो सन्तो !, जहँ पद तहँई समाहीं ॥१४॥

और समझो कि अनजान (गोपाल के ज्ञान से रहित) का ही स्वर्ग-नरक में गमनागमन होता है तथा अज्ञ के लिये स्वर्ग भी नरक के समान ही दुःखद है और सर्वात्मा हरि को जाननेवाले के लिये गमनागमन नरकादि दुःख नहीं रहते हैं। अतः जिस भय के हेतु ईश्वरादि से सब लोग डरते हैं, उस भय हेतु से हम ज्ञानी नहीं डरते हैं। ईश्वर को प्रियतमात्मा मानते हैं। फिर सर्वात्मदर्शी होने

के कारण रागद्वेषादि के अभाव से ज्ञानी को पाप-पुण्य और उनके फलों की शंका भी नहीं रह जाती है, इनका ज्ञानाग्नि से नाश हो जाता है। अतः ज्ञानी स्वर्ग-नरकादि में कहीं नहीं जाते हैं। किन्तु कबीर साहब कहते हैं कि हे सन्तो! सुनो जीवन्मुक्त ज्ञानी का जहाँ पद (स्थान) रहता है, वहाँ ही विभु ब्रह्म में समा जाता (लीन होता) है—

"न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति ब्रह्मैव सन् ब्रह्माऽप्येति।
अत्र ब्रह्म समश्नुते॥" (बृ० ४।४।६-७)

ज्ञानी के प्राण अन्तकाल में शरीर से उत्क्रमण नहीं करते हैं। क्योंकि जीवन काल में ही ब्रह्म होता हुआ वह अन्त में ब्रह्म में लीन होता है। यहाँ ही ब्रह्म को प्राप्त करता है, कहीं जाकर नहीं॥१४॥

इति भ्रान्त सम्बोधन प्रकरण ५

अथ सशक्तीश्वरादि प्रकरण ६

शब्द १५

अवधू कुदरत की गति न्यारी।
रंक निवाज करे वह राजा, भूपति करै भिखारी॥
याते लोग हरफना लागे, चन्दन फूल न फूला।
मच्छ शिकारी रमे जंगल में, सिंह समुद्रहि झूला॥

हे अवधू! (विरक्तों!) ज्ञानी निर्भय मुक्त होता है। परन्तु अज्ञ के लिये कुदरत (ईश शक्ति) की गति (चाल) ज्ञानी से न्यारी (विलक्षण) होती है। अज्ञों के भयादि का हेतु होती है। अतः रंक (दरिद्र) की उसके कर्म वासनादि के अनुसार दया रक्षा करके उसको राजा कर देती है। राजाओं के भोगादि के हेतु कर्मों के क्षीण होने पर उन्हें भिक्षुक करती है।

और इस कुदरत से ही लोग हरएक फन्दों में फँसे हैं या लोग में हरफ (अक्षर) अविनाशी आत्मा का उपदेश नहीं लगता है और इसीसे चन्दन में फूल नहीं फूला। अच्छे लोगों में सत्कर्मादि उज्वल ज्ञान विकशित नहीं हुए। और निरपराधी मछलियों का शिकारी हुआ। सिंह भय से जंगल में ही रमता है और समुद्र में झूला (पूल) बना सो सब कुदरत की गति है तथा मछली (माया)

शिकारी होकर संसार वन में रमती है और ज्ञानरहित सिंह (जीव) चौरासी लाख योनिरूप समुद्र में कुदरत से झूलता है, स्वतन्त्र नहीं।

रेंड़रुख भयउ मलयागिरि, चहुंदिश फूटी वासा।
तीन लोक ब्रह्माण्ड खण्ड में, देखे अन्ध तमासा॥
पंगू मेरु सुमेरु उलंघै, त्रिभुवन मुक्ता डोलै।
गुँगा ज्ञान विज्ञान प्रकाशै, अनहद बानी बोलै॥

रेंड़रुख (वृक्ष) तुल्य हीन पुरुष साधन से मलयागिर तुल्य सिद्ध हो गया और उसका सुयशरूप वास चारो दिशा में फैला और अन्धा भी अभ्यासादि से तीनों लोक ब्रह्माण्ड और नव खण्डादि के तमासे को देखता है और पंगु (मन की चञ्चलता से रहित) योगी मेरु दण्ड तथा सुमेरु का उलंघन करता है और देह बन्धन से मुक्त होकर तीनों लोक में विचरता है और बाह्य व्यवहार से मूक पुरुष ज्ञान-विज्ञान का प्रकाश करता है और अनहद की सत्य वाणी बोलता है (वस्तुतः जीवात्मा सब इन्द्रियों से रहित है और सूक्ष्म देह गत इन्द्रियों द्वारा वह सब कार्य करता है और अन्ध पंगु तुल्य होने ही पर अजब तमासा देखता है। संसार का उलंघन करता है। ज्ञान-विज्ञान सार शब्द का प्रकाश करता है)।

अकाशहिं बाँधि पताल पठावै, शेष स्वर्ग पर राजै।
कहहिं कबीर राम है राजा, जो कछु करै सो छाजै॥१५॥

जिसकी शक्ति से ये सब बातें होती है, वह राम कर्मों के क्षीण होने पर आकाश (स्वर्ग) वासी देव को बाँधकर पाताल में भेजता है और शेष (पाताल वासी) को कर्मादि के अनुसार स्वर्ग के ऊपर विराजमान करता है। साहब कहते हैं कि वह राम राजा (स्वतन्त्र प्रभु) है। जो कुछ करता है, सो सब उसको शोभता है।

जन्म मरण अज्ञान से, स्वर्ग नरक भय होय।
पण्डित का कर्तव्य यह, डारै सब भय खोय॥३०॥
पण्डित होय विरक्त पुनि, लखिये गति भगवन्त।
जाकी माया रचत भव, उचितानुचित अनन्त॥३१॥
जो दरिद्र को भूपकर, भूपति करै भिखारि।
करै अनन्त विडम्बना, ताकी गति अति न्यारि॥३२॥१५॥

शब्द १६

अवधू वे तत्त्व रावल राता। नाचे बाजन बाजु बराता॥
मौरिक माथे दुल्लह दीन्हो, अकथ जोरि कहाता।
मड़वक चारन समधी दीन्हों, पुत्र बिआहल माता॥

सतगुरु बिना अनेक विध, होत विपर्यय चाल।
सो मेटिय सतसंग करि, चलिय नित्य सँभाल॥२३॥

हे अवधू! उक्त कुदरत की वशता से ही रावल (राम स्वरूप जीवात्मा) वे तत्त्व (परोक्ष अनात्मा) में राता (प्रेम किया) है कि जिससे मायामय आश्चर्यरूप व्यवहार हो रहा है। आश्चर्य यह है कि देहरूप बाजन (यन्त्र) कर्मों में नाचता है और प्राण इन्द्रिय मन का संघ (व्यावहारिक जीव) बाजता है। पराधीन शब्द बोलता है। तन, मन, इन्द्रिय का मेल नहीं होता है। सावधानी से बूझ-समझकर कर्मादि नहीं किये जाते हैं। न सँभार कर शब्द बोला जाता है। अतः—

"मुख कछु आन हृदय कछु आना। स्वमेहु काहु मोहि नहिं जाना॥"

मन आदि की एकता के बिना, सद्गुरु सत्यात्मा का ज्ञान नहीं होता है।

और आत्म-ज्ञानादि के अभाव से ही सर्वात्मा राम दुलहा के मौर तुल्य विभूतिरूप लोक विशेष में या शरीरादि के किसी देश विशेष में दुलहा को स्थान अज्ञ लोगों ने दिया है। उसको विभु नहीं समझते हैं और अकथ (अनिर्वाच्य मिथ्या) माया की ही कथा को जोड़कर सब कहते हैं। कर जोरकर उसकी स्तुति करते हैं और समात्म बुद्धिवाले महात्माओं को संसार मण्डप के चारण (गुण-गायक भिक्षुक) जानकर, उन्हें भिक्षा आदि दे देते हैं। परन्तु उनके उपदेशों को नहीं मानते हैं। अतः माया के पुत्ररूप जीव तथा मन माया अविद्यारूप माता को ही ब्याहा (प्राप्त किया) सद्गुरु सत्यात्मा को नहीं पाया।

दुलहिनि लीपि चौक बैठायो, निर्भय पद परगाता।
भाते उलटि बरातहि खायो, भली बनी कुशलाता॥

अज्ञों की बुद्धि रूप दुलहिन ने शरीर को नहाय धोय कर, चन्दनादि लेप कर शुद्ध किया। और हृदयस्थान में अन्तः करण को चौका समझा, वहाँ तटस्थ किसी देवादि को पति मान कर बैठाया (निश्चय किया) तथा पर (भिन्न) पति विषयादि से निर्भय पद (मोक्ष) गाने लगी। अनात्म विषयादि से ही सुख

मोक्ष समझने लगी। अतः (भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः) इस उक्ति के अनुसार जिसको निर्भय पद समझा गया था, वह भात (भोग्य) पदार्थ ही उलट कर अज्ञ जीव रूप वरात को खाया, तो क्या भली कुशलता बनी, परन्तु अज्ञ उसी को कुशलता समझा।

पाणी ग्रहण भयो भव मण्डन, सुषमनि सुरतिसमानी।
कहहिं कबीर सुनहु हो सन्तो!, बूझहु पण्डित ज्ञानी ॥१६॥

उक्त रीति से बुद्धि दुलहिन का पाणिग्रहण (देहादि से विवाह) हुआ। उसमें वारम्बार जन्म मरणादि रूप भव (संसार) से ही मण्डन (भूषण शोभा) किया गया। और इस संसार दशा में ही उसकी सुरति (ध्यान वृत्ति) सुषुम्ना नाड़ी में समाई (मरण उपस्थित हुआ या हठ समाधिलगी) क्योंकि अज्ञ की बुद्धि समाधिस्थ होने पर भी विषय वासना को नहीं छोड़ती है। न मरण काल में छोड़ती है और इन दोनों काल में सुषुम्ना में सुरत जाती है। अतः ज्ञान के बिना समाधि वा मरण से कुशलता मुक्ति नहीं है। इसी से कबीर साहब कहते हैं कि हे सन्तो! ज्ञानी पण्डितों से श्रवणादि करो और श्रवणादि करके सत्यात्मा राम को बूझो (समझो) तभी सच्ची कुशलता होगी ॥ १६ ॥

शब्द १७

अवधू सो योगी गुरु मेरा, जो यह पद का करै निबेरा ॥
तरुवर एक मूल बिनु ठाढ़े, बिनु फूले फल लागा।
शाखा पत्र कछु नहिं वाके, अष्ट गगन मुख जागा ॥

हे अवधू! जिस ज्ञानी पण्डित से श्रवणादि करना चाहिये सोई योगी और गुरु है और मेरा स्वरूप है। और जो यह (अपरोक्ष) पद (स्वरूप सर्वाधार राम) का निबेरा (विवेक विज्ञान) करता कराता है, सो गुरु है। क्योंकि विवेकादिके बिना जो एक संसार वृक्ष मूल बिना खड़ा है। अर्थात् लोक में वृक्ष का नीचे (स्थूल) मूल होता है और यह संसार वृक्ष "ऊर्ध्व मूलोऽवाक् शाखः।" (कठ.२।६।१) इत्यादि शास्त्र के अनुसार उर्ध्व (सूक्ष्म) मूल और नीचे स्थूल शाखा वाला वर्णित है। अतः यह माया मात्र है। वस्तुतः इस रूप से एक आत्मा ही माया द्वारा खड़ा है। और इस में फूल के बिना फल लगता है। अर्थात् कल्पित कर्मादि से सुख दुःखादिक फल होते हैं। अतः यह मानो बट या पीपर रूप वनस्पति तुल्य

है। शाखा पत्रादि कुछ भी इसके सत्य नहीं हैं। तो भी आकाश के आठो दिशा रूप मुख में यह वृक्ष जागृत (प्रसिद्ध) है।

पौ बिनु पत्र करह बिनु तुम्बा, बिनु जिह्वा गुण गावै।
गावन हारक रेख रूप नहिं, सत गुरु होय लखावै॥

इस वृक्ष में कारण रूप से माया रूपलता वर्तमान है, जिसमें पौ (आधार डंटी) के बिना ही बुद्धि इन्द्रियादि पत्ते लगे हैं। और करह (वृन्त) के बिना शिर श्रवणादि तुम्बे लगे हैं। और इन पत्र तुम्बे से युक्त यह शरीर रूप यन्त्र बना है। इस यन्त्र को बजाता हुआ गुण गाने वाला जिह्वा के बिना ही गुण को गाता है। अर्थात् शरीर में जिह्वा है सो यन्त्र है यन्त्री को जीभ नहीं है।

और जिस को गाता है, सो त्रिगुण मय पदार्थ हैं। गुणों का साक्षी आत्मा ज्ञेयगुण रूप नहीं होता है। और उस गाने वाला का कोई आकार रूप नहीं है। अर्थात् गाने वाला गुण शरीरादि से भिन्न है। परन्तु वह अपने स्वरूप को नहीं समझता है। अतः शरीरादि रूप अपने को समझता है। यदि कोई सतगुरु प्राप्त होयँ, तो उसके स्वरूप को लखावैं। या वही सतगुरु स्वरूप होकर अपने स्वरूप को लखाता (समझाता) है।

पक्षिक खोज मीन को मारग, कहहिं कबिर दुइ भारी।
अपरम पार पार पुरुषोत्तम, मूरति की बलिहारी॥१७॥

यद्यपि निश्चिन्ह आकाश में पक्षी की खोज (मार्ग) और तीव्र धारा के सम्मुख मीन मार्ग के समान, ज्ञान के समाधि मार्ग और शुभेच्छा पूर्वक सुविचारादि मार्ग दोनों कठिन हैं। तो भी इन मार्गों में चलने चलाने वाले गुरु शिष्यों की मूर्ति की वलिहारी (धन्य वाद) है वे लोग अपरंपार (विभु) संसार से पार पहुंचे हुए पुरुषोत्तम हैं। उनके लिये कोई मार्ग कठिन नहीं है। या उड्डीयान बन्ध, मूलबन्ध, यन्त्रबन्धादि रूप पक्षिमार्ग और शब्द सुरति योगादिरूप मीनमार्ग दोनों भारी (कष्ट साध्य) हैं। अतः विवेकादि पूर्वक सद्गुरु से इस विभु आत्मा के परिचय वाले ही, उस अपरंपार स्वरूप सय कष्ट से पार पहुंचे हैं उनकी मूर्ति की बलिहारी है।

लहि सुसमाधि विचार पथ, जिन मेटा अज्ञान।
लखा प्रकट सत आतमा, सो विरक्त मतिमान॥२४॥

मिथ्या लखि संसार को, रेख रूप से हीन।
सद्गुरु से निज को लखा, उत्तम पुरुष प्रवीन ॥ ३५ ॥१७॥

इति सशक्तीश्वर तत्त्वादि प्रकरण ६

अथ सद्गुरु से ज्ञानादि प्रकरण ७

शब्द १८

बुझि लीजै ब्रह्म ज्ञानी।
घूरि घूरि वर्षा वर्षायो, परिया बुन्द न पानी ॥

सद्गुरु से करि श्रवण नित, करिये सत्य विचार।
ता बिनु होत न बोध दृढ़, उलट जाय व्यवहार ॥ ३६ ॥

हे मनुष्यों ! ब्रह्मज्ञानी गुरु से उक्त रेख रूप रहित सत्यात्मा को, उसके ज्ञान के मार्गों को बूझ (समझ) लो। क्योंकि बूझने के बिना तुमने घूर-घूर कर (लौट-लौट विचर-विचर कर) बार-बार संसार में आकर अपने सुख शान्ति के लिये वर्षा वर्षाया। कर्मोपासनादि किया। परन्तु उससे सुख शान्ति कारक पानी एक बुन्द भी नहीं पड़ा है। ताप राग द्वेषादि का नाशक धर्म ज्ञान तुझे नहीं प्राप्त हुआ है।

चिउँटी के पगु हस्ती बाध्यो, छेरी बीगर खायो।
उदधि माहँ ते निकरि छाँछरि, चौड़े गेह बनायो ॥

और ज्ञान के अभाव से ही तुमने सवासन मन रूप चींटी के, विकल्प संशय रूप पैर में अपनी आत्मा रूप हाथी को बाँधा है। जिससे बुद्धि रूप छेरी को कामादि वृक नष्ट कर दिये हैं। या माया कुबुद्धि रूप छेरी ने जीवात्मा रूप व्याघ्र को खा लिया है वश में किया है और ब्रह्म आत्म स्वरूप समुद्र से निकल कर दुर्बुद्धि रूप छाँछरी (मछली) चौड़े (मैदान) संसार में घर बनाई है। तथा संसार समुद्र के देवादि संसार से दूर मुक्त प्रतीत होते हैं। अतः मानो संसार समुद्र से निकल कर चौड़े स्वर्गादि में गृह बनाये हैं।

मेढ़क सर्प रहै एक संगे, बिलिया श्वान बियाहीं।
नित उठि सिंह सियार से डरपे, अदबुद कथो न जाहीं ॥

और ज्ञानादि के अभाव से ही मेढ़क तुल्य चञ्चल जीव तथा काल अहंकारादि रूप सर्प सदा एकत्र साथ रहते हैं। जीव कभी निर्भय नहीं होता है और अविद्या कुबुद्धिरूप बिल्ली मृत्यु कुसङ्गादिरूप कुत्ता को बिआती (पैदा करती) है या उसके साथ विवाह करती है। जिससे सिंह तुल्य जिज्ञासु आदि भी सियाररूप कुदेव भूत-प्रेतादि से सदा दिन में भी डरते हैं। ज्ञान के बिना यह सब आश्चर्य होता है। सो सब कहा नहीं जा सकता है।

कौने शशा मृगहिं बन घेरे, बाण पारथिहि मेलै।
उदधि भूपते तरुवर डाहे, मच्छ अहेरा खेलै॥

क्योंकि कौने (कोई) एक चञ्चल इन्द्रियरूप शशा (खरगोश) अज्ञानी के मनरूप मृग को संसार बन में घेर कर रखता है। ज्ञानादि मार्ग में जाने नहीं देता है और वह शशा पारथी (सब के रक्षक) जीव के ऊपर भी कामादि शोकादिरूप बाण डारता है। हे भूप (देहाभिमानी) जीव ! संसार समुद्रही तेरे शान्तिप्रद सब शुभ विचार ज्ञान ध्यानादिरूप वृक्षों को जला रहा है और देवमाया, ममता आदिरूप मछली तेरा अहेर करती है।

अर्थात् ज्ञान-विवेक वैराग्यादि के बिना एकेन्द्रिय की विषय परायणता से भी जीव महा दुःखी परवश होते हैं। यदि विवेक विज्ञानादि हो तो कौन ऐसा शशा है, जो मृग को बन में घेर सके। क्योंकि विवेकी जीवरूप पारथी ही उन पर ज्ञान बाण डारता है और उस बाण से भूपति के संसार को तथा तीन देहरूप तरुवर को जला देता है और माया, ममतारूप मछली का भी अहेर खेलता है। अतः वह केवल ज्ञान से ममता आदि को नष्ट करके मुक्त हो जाता है।

कहहिं कबीर यह अद्बुद ज्ञाना, को यहि ज्ञानहि मानै।
बिनु पँखिये उड़िजाय अकाहिं, जीवहिं मरण न जानै॥१८॥

कबीर साहब कहते हैं कि माया, ममता आदि की निवृत्ति द्वारा कहीं जाने बिना भी मुक्ति देनेवाला यह ज्ञान का उपदेश अविवेकियों के लिये अद्भुत स्वरूप आश्चर्यजनक है। अतः कौन अविवेकी इस उपदेश को मानेगा। वह तो बिना पाँख के ही आकाश में उड़ जाता है। अर्थात् स्वर्गादि की प्राप्ति के लिये कर्मादि करता है। परन्तु ऐसे जीवों को मृत्यु तुच्छ समझता है। बार-बार पीड़ित

करता है और वे जीव भी स्वर्गादि से पतन, वार-वार मरण को नहीं समझते हैं। अतः आकाश में उड़ते हैं। इत्यादि

शब्द १९

ए तत्त्व राम जपहु हो प्राणी, तुम बूझहु अकथ कहानी।
जाको भाव होत हरि ऊपर, जागत रैनि बिहानी॥
डाइनि डारे श्वनहा डोरे, सिंह रहे बन घेरे।
पाँच कुटुम मिलि जूझन लागे, बाजन बाजु घनेरे॥

तजि आशा स्वर्गादि की, भजिये आतम राम।
करि वश मन मति इन्द्रि को, अचल लहिये विश्राम॥३७॥
अकथ कथा को समुझि पुनि, हरि में होत जु भाव।
त्यागि कुवुद्धि कुकाम मद, सो निज तत्त्व सुपाव॥३८॥

उपदेश है कि हे प्राणी! ब्रह्मज्ञानी से बूझ-समझकर, ए तत्त्व (इस अपरोक्ष सर्वात्मस्वरूप सत्य) राम को जपो (भजो स्मरण करो) दूर की आशा आदि को त्यागो और अकथ माया की कहानी (कथा) को ज्ञानी से समझो। इस प्रकार समझकर जिसको माया सहित या निर्गुण सर्वात्मा हरि के ऊपर भाव (प्रेम) होता है, सो रात-दिन सदा जागता रहता है (मोह-निद्रा से रहित रहता है)। वह हिंसा आदि के हेतुरूप कुबुद्धिरूप डाइन (डाकिनी) को डारता (त्यागता) है। कुवासनादि युक्त मन वाक्रूप कुत्ते को संयमादि डोरी से बाँधता है। फिर अहंकार कालादिरूप सिंह को योगादि बन में घेरे रहता है।

अथवा अहंकारादि सिंह स्वयं योग बन के घेरे में रहने लगते हैं, बाह्य अहंकार नष्ट हो जाता है। अहं ब्रह्मास्मि, इत्यादि चिन्तन होता है। इस प्रकार कुबुद्धि मन अहंकार के हरिभावना से वश होने पर पाँच ज्ञानेन्द्रियरूप कुटुम्ब स्वयं परस्पर मिलकर युद्ध करने लगते हैं (परस्पर की सहायता से विषय विमुख होते हैं)। अतः विवेकी भी उनके साथ युद्ध करके अनायास ही उन्हें वश में करता है। फिर उनके पराजय से उत्सव के घनेरे अनहद बाजे स्वयं बजते हैं, लोक में सुयश आदि होते हैं।

रोवै मृगा शशा बन हाँकै, बाण पारथिहि मेलै।
सायर जरै सकल बन डाहै, मच्छ अहेरा खेलै॥

फिर चञ्चल मनरूप काम संशयादि प्राणादिरूप मृग और इन्द्रियरूप शशा रोते हैं (इनका कुछ वश नहीं चलता है)। क्योंकि वह पारथि (स्व शान्ति विज्ञानादि का रक्षक) जीव, इन्हें अपने स्वरूप और हृदयादि से भव वन में हाँक (भगा) देता है और इनके ऊपर ज्ञान बाण का प्रहार करता है कि जिस ज्ञानाग्नि से संसार समुद्र भी जल जाता है और लोक भुवनादिरूप सब वन दग्ध हो जाते हैं (बाधित हो जाते हैं)। फिर शुष्क समुद्र की मछली तुल्य ममता का अहेर ज्ञानी खेलता है (ममता को सर्वथा नष्ट करता है) अथवा जो जीव प्रथम मत्स्य तुल्य कामादि का लक्ष्य (शिकार) था, सो अब स्वयं इनका अहेर खेलता है।

कहहिं कबीर सुनहु हो सन्तो ! जो यह पद निरुआरै।
जो यह पद को गाय विचारै, आपु तरै औ तारै ॥१९॥

कबीर साहब कहते हैं कि हे सन्तो ! सुनो, जो कोई इस अपरोक्ष आत्मपद का निरुआर (देहादि से विवेक) करेगा और इस मेरे पद (शब्द) को गाकर विचारेगा, सो आप भी मुक्त होगा और अन्य को भी मुक्त करेगा।

निज स्वरूप अनुभूति युत, तारण तरण जु होय।
ज्ञानाग्निहि से क्लेश दहि, भव बन भूल न सोय ॥३९॥१९॥

शब्द २०

सन्तो ! घर मँह झगड़ा भारी।
राति दिवस मिलि उठि उठि लागै, पाँच ढोटा एक नारी ॥
न्यारो न्यारो भोजन चाहै, पाँचो अधिक सवादी।
कोइ काहु को हटा न मानै, आपुहि आपु मुरादी ॥

सद्गुरु वचन विचार बिनु, सकल देह के माँहि।
होत युद्ध अति प्रबल नित, तिहि निवारि सुख पाँहि ॥४०॥

हे सन्तो ! इस देहरूप घर में भारी झगड़ा है। पाँच ढोटा (लड़के तुल्य ज्ञानेन्द्रिय) और कुबुद्धिरूप एक नारी, रात दिन उठ-उठकर और मिलकर, एक जीव से झगड़ने लगते हैं। झगड़ा इस बात का है कि ये पाँचो कुमति से जुदा-जुदा भोजन (विषय) चाहते हैं और न्याय प्राप्त भोजन से तृप्त नहीं होते हैं।

क्योंकि पाँचो अधिक स्वाद-परायण हैं और कोई किसी का हटा (निवारण) नहीं मानता है। किन्तु अपनी-अपनी स्वतन्त्रता प्रभुत्व के मुरादी (ढोल) सब बजाते हैं, जिससे जीव पीड़ित होते हैं—

"जिह्वैकतोऽमुमपकर्षति कर्हि तर्षा, शिश्नोऽन्यतस्त्वगुदरं श्रवणं कुतश्चित्।
घ्राणोऽन्यतश्चपलदृक् क्व च कर्मशक्तिर्बह्व्य सपत्न्य इव गेहपतिं लुनन्ति ॥"
(भा० स्क० ११।९।२७)

दुर्मति केर दोहागिनि मेटे, ढोटहिं चाप चपेरे।
कहहिं कबीर सोइ जन मेरा, घर की रारि निवेरे ॥२०॥

जो कोई दुर्बुद्धि के दोहागिनि (दोहाई प्रभुत्व) को नष्ट करे और इन्द्रियों को चाँप-चपेरे से (दमन करके दण्ड देकर) दबाव से वश में करे। कबीर साहब कहते हैं कि इस प्रकार जो घर के झगड़े को निवृत्त करे, सोई जन मेरा है। (गुरुभक्त है) ॥२०॥

इति गुरु से ज्ञानादि प्रकरण ७

अथ अधिकार परीक्षा प्रकरण ८

शब्द २१

सन्तो ! बोले ते जग मारै।
अन बोले ते कैसे बनिहै, शब्दहिं कोइ न विचारै ॥

बिनु विचार के देह में, ज्यों झगड़ा नित होय।
त्यों बाहर भी होत है, करि विचार तजु सोय ॥४१॥

"बोलना का सो बोलिय भाई।" (रमैनी ७०) इत्यादि के विवरणरूप से उपदेश है कि हे सन्तो ! पूर्व वर्णित उपदेश को भी अनधिकारी के प्रति बोलने से, वह संसारी उपदेशक को ही मारता है और अनबोले ते (बोले बिना) जिज्ञासुअधिकारी का कार्य कैसे बनेगा ? क्योंकि बोले बिना शब्द को कोई विचार नहीं सकता है। अतः अधिकार को समझकर, विचारपूर्वक योग्यता के अनुसार उपदेश देना उचित और सफल होता है। इसलिये अधिकारी के प्रति बोलना चाहिये।

पहिले जन्म पुत्र के भयऊ, बाप जनमिया पाछे।
बाप पूत की एके माया, ई अचरज को काछे॥

सद्गुरु के उपदेश के विना अधिकारी भी समझता है, कि जीव जगत रूप पुत्र का पहिले जन्म हुआ और ब्रह्मा विष्णु आदि देव रूप पिता ने पीछे जन्म लिये (पाये) अजन्मा ईश्वर नहीं हैं। और बाप पूत (ईश्वर जीव) की माया एक है। परन्तु ई (यह) आश्चर्य की बात है, ऐसा होना असम्भव है। और इस असम्भव को सद्गुरु के विना कौन काछ (समझकरधर) सकता है।

अर्थात् ईश्वर की माया व्यावहारिक सर्वसाधारण संसार का कारण होती है। देव की माया प्रातिमासिक स्वप्न तुल्य विभूति चमत्कार का हेतु होती है देव अपने भक्त मात्र को अद्भुत स्वरूप आदि देखा देते हैं। साधारण जीव की माया अविद्या अज्ञान स्वरूप होती है, कि जिस से मोह ममता आदि होते हैं। और जीवेश्वर का पारमार्थिक स्वरूप एक अजन्मा है। इत्यादि तत्त्वको सद्गुरु के विना कोई नहीं समझता है, न हृदय में धारण करता है। अतः जिज्ञासुओं के प्रति उपदेश कर्तव्य है।

दुन्दुर राजा टीका बैठे, विषहर करै खवासी।
श्वान बापुरा धरनि ढाकनो, बिल्ली घर में दासी॥

वस्तुतः भक्तिमाता के ज्ञान वैराग्य रूप पुत्र प्रथम होते हैं, तब ईश्वर सद्गुरु रूप पिता आत्मास्वरूप से पीछे जन्मते (प्रकट होते) हैं परन्तु वैसी भक्ति भी सच्चे ज्ञानी गुरु से मिलती है। और लोक में जिज्ञासा आदि से भी रहित दुन्दुर (द्वन्द्व युक्त दादुर या उन्दर चूहा तुल्य तुच्छ मनुष्य) राजा (स्वतन्त्र ज्ञानी) की टीका (तिलकादि वेष) लेकर बैठता है। और सदुपदेश रहित विषहर (विषधर) तुल्य समर्थ जिज्ञासु उसकी खवासी (सेवा) करता है।

फिर इस कुसङ्ग से बावरे कुत्ते तुल्य उस सेवक का मन ढाकन में (हृदय रूप पड़दे में) विषय वासनादि को धारण करता है। तब आशा तृष्णादि रूप बिल्ली उसके देह रूप घर में दासी बन कर बैठती है। अर्थात् वासनादि युक्त मन से आशा तृष्णादि पूर्वक उक्त राजा (गुरु) की सेवा शिष्य भक्त करता है।

काग दुकाग कारकुन आगे, बैल करै पटवारी।
कहहिं कबीर सनहु हो सन्तो! भैंसे न्याय निवारी॥२१॥

फिर काग दुकाग (छोटे बड़े कौवे) तुल्य हिंसक वाममार्गी आदि उस राजा के आगे मुख्य कार्यकर्ता (कारकून) होते हैं और बैल तुल्य जड़ अविवेकी पटवारी (लेखक) होते हैं और भैंसे तुल्य क्रोधी तामसी न्याय (धर्मादि मर्यादा) का निवारण त्याग निरोध (विचारादि) करते हैं। सदुपदेश विचारादि के बिना यह दुर्दशा होती है अतः विचारपूर्वक अधिकारियों को उपदेश देना चाहिये ॥ २१ ॥

शब्द २२

सन्तो ! देखत जग बौराना।
साँच कहौं तो मारन धावै, झूठहि जग पतियाना ॥
नेमी देखा धर्मी देखा, प्रात करहिं असनाना ॥
आतम मारि पषाणहि पूजै, इन महँ कछू न ज्ञाना ॥

सद्विचार बिनु देहि सब, रहत मत्त सम नित्य।

समुझत सत्य असत्य नहि, लखत न नित्य अनित्य ॥२४॥

बोलने से संसारी मारता है, इस बात को सुनकर जिज्ञासा हुई कि हित बात को सुनकर क्यों मारता है। तब कहते हैं कि, हे सन्तो ! देखो यह जग बौराया है। हिताहित के ज्ञान से रहित है। अतः साँच हित की बात कही जाय, तो मारने दोड़ता है। और झूठ अहित बात में विश्वास करता है ऐसे विपरीत ज्ञान वाले नेमी (शौचादि के नियमवालों) को देखा और धर्मी (धर्म के अभिमानी) को देखा, तो वे लोग प्रातःकाल में नियम से स्नान करते हैं। परन्तु उसके बाद सचेत आत्मा (जीव) को मार कर, निर्जीव पाषाण की मूर्तियों की पूजा करते हैं। इस से समझा जाता है कि इनमें कुछ भी नियम धर्माधर्मादि का ज्ञान नहीं है। क्योंकि शौच, सन्तोष, तप स्वाध्यय, ईश्वरप्रणिधान (ईश्वर में सर्व स्वकर्मार्पण) आदि रूप नियम, अहिंसा सत्यादि धर्म वाले ऐसा कभी नहीं कर सकते हैं। अतः ये लोग बौराये रहने से ढोंग मात्र करते हैं, नियम धर्म नहीं।

बहुतक देखा पीर औलिया, पढ़हिं कितेब कुराना ॥
कै मुरीद तदबीर बतावैं, इन महँ ऊहे ज्ञाना ॥

आसन मारि डिम्भ धरि बैठे, मन महँ बहुत गुमाना ॥
पीतर पाथर पूजन लागे, तीरथ गर्व भुलाना ॥

बहुत पीर (गुरु) को देखा और औलिया (विरक्त साधुओं)को देखा कि जो कुराण किताब को पढ़ते हैं और मुरीद (शिष्य) कै (करके) तदबीर (उपाय=साधन) बताते हैं, उनमें भी वही मिथ्या ज्ञान रहता है। अहिंसा आदि सत्य धर्म को नही जानते हैं।

कोई आसन मारि (लगा) कर और डिम्भ (दम्भ) धरके बैठते हैं। और मन में वेषादि का बहुत अभिमान रखते हैं। परन्तु ज्ञान के बिना पीतल पत्थरादि की मूर्तियों की पूजा में लगे रहते हैं और तीर्थाटन के गर्वमें भी भूले रहते हैं।

माला पेन्हे टोपी पेन्हे, छाप तिलक अनुमाना ॥
साखी शब्दे गावत भूले, आतम खबर न जाना ॥
हिन्दु कहै मोहि राम पियारा, तुरुक कहै रहिमाना ॥
आपुस में दोउ लरि लरि मूये, मर्म काहु नहिं जाना ॥

और माला टोपी पेन्हते हैं तथा अनुमान (कल्पना) से छाप तिलक लगाते=हैं। और साखी शब्द (प्रमाणरूप शब्द) को गाते में भूले (मग्न) रहते हैं। परन्तु आत्मा की खबर (उपदेश विचारादि) को नहीं जानते हैं।

खबर ज्ञान के बिना हिन्दू कहता है कि मुझे राम प्यारा है, तुरुक कहता है कि मुझे रहिमान दयालु खुदा प्यारा है और इस प्रकार नामों से भेद मान कर आपस में दोनों लड़लड़कर मरते हैं। और राम खुदा एक है, इस मर्म को इन्होंने नहीं जाना।

घर घर मन्त्र जो देत फिरत हैं, महिमा के अभिमाना ॥
गुरु सहित शिष्य सब बूड़े, अन्तकाल पछताना ॥
कहहिं कबीर सुनहु हो सन्तो! ई सब भरम भुलाना ॥
केतिक हटो हटा नहिं मानै, सहजे सहज समाना ॥२२॥

मर्म को जाने बिना जो घर घर में मन्त्र देते फिरते हैं और गुरुत्व निमित्तक महिमा के जिनको अभिमान रहता है, ऐसे गुरु सहित सब शिष्य रागद्वेषादि करके संसार नरकादि में डूबे और डूबते हैं और अन्त काल में पश्चाताप करते

हैं। कबीर साहब करते हैं कि हे सन्तो ! सुनो, ये सब भ्रम (मिथ्या) संसार बन में भूले हैं। इन्हे कितना कुमार्ग से हटाया जाय, हटाना नहीं मानते हैं। किन्तु सहज स्वभाव (अविद्या) से सिद्ध हिंसादि व्यवहार संसार में ही सहज स्वभाव से ये समाते (जाते, लगते) हैं ॥२२॥

इति अधिकार परीक्षा प्रकरण ८

अथ ज्ञान बिना हिंसा मतभेद प्रकरण ९

शब्द २३

सन्तो ! राह दुनों हम दीठा।
हिन्दू तुरुक हटा नहिं मानै, स्वाद सबन को मीठा ॥
हिन्दू व्रत एकादशि साधै, दूध सिंघाड़ा सेती ॥
अन्न को त्यागे मन नहिं हटकै, पारन करै सगौती ॥
तुरुक रोजा निमाज गुजारै, बिसमिल बाँग पुकारै ॥
इनको भिस्त कैसक होइ हैं, साँझहि मुरगी मारै ॥

भरम सिद्ध बहु मार्ग भै, रहा मूल में एक।
गहत न एक हि मूढनर, कहत सन्त सविवेक ॥४३॥

हे सन्तो ! भ्रम में भूले हुए हिन्दू और तुरुक दोनों के राह (मार्ग) को हमने देखा है। परन्तु उस कुमार्ग हिंसा आदि से हटाना हिन्दू तुरुक नहीं मानते हैं। क्योंकि इन सबको मांसादि के स्वाद मीठा=मधुर प्रिय है। धर्म स्वर्ग मोक्ष प्रिय नहीं है। अतः हिन्दू दूध सिंघाड़ा आदि फलाहार (सेती) से एकादशी व्रत को सिद्ध करते हैं। तहाँ एक दिन अन्न को त्यागते हैं। परन्तु मन आदि इन्द्रियो को सदा अभक्ष्य से नहीं हटाते हैं। अतः द्वादशी के दिन सगौती (मांस) से पारण (पारणा व्रत पूर्ती) करते हैं। इसी प्रकार तुरुक रोजा (उपवास) व्रत करके निमाज गुजारते (पढ़ते) हैं। और बिसमिल्ला ऐसा बाँग (वचन) पुकारते हैं। परन्तु इनको भिस्त (स्वर्ग मोक्ष) कैसे हो सकता है, क्योंकि दिन में उपवास करके संध्या के समय मुरगी को मारते हैं।

हिन्दु कि दया मेहर तुरुकन की, दूनों घट सो त्यागी।
वे हलाल वे झटका मारे, आग दुनों घर लागी॥
हिन्दू तुरुक की एक राह है, सत गुरु इहै बताई।
कहहिं कबीर सुनहु हो सन्तो! राम न कहहु खुदाई॥२३॥

और जो हिन्दू के मत में दया कही जाती है, वह तुरुक मत में मेहर कही जाती है। उस दया नामक मेहर को सगौती से पारणा करने वाले और संध्या को मुरगी मारने वाले दोनों ने अपने घट से त्याग दिया, हृदय से दया को हटा दिया। अतः वह तुरुक हलाल करता है, धीरे से गला काटता है और हिन्दू झटका से शीघ्र मारता है। परन्तु इन दोनों के घर में पाप ताप रूप अग्नि लगती है। वस्तुतः हिन्दु तुरुक दोनों के एक ही दया रूप सुन्दर मार्ग हैं और सद्गुरु ने इस दया अहिंसा को ही समझाया है, सत मार्ग बताया है। अतः कबीर साहब कहते हैं कि हे सन्तो! तुम इस दया का श्रवण विचार धारण करो फिर चाहे राम कहो, या खुदा न कहो। अर्थात् जैसे एक दया का नाम मत भेद से भिन्न धरा गया है, तैसे ही एक सत्यात्माराम के भिन्न नाम धरे गये हैं। वस्तु में भेद नहीं है। भेद को मिटाकर राग द्वेष को मिटाना सच्ची साधुता है। अतः यदि साधुता हो तो राम खुदा कुछ नहीं कहो तो भी कल्याण है, अन्यथा नहीं॥२३॥

शब्द २४

भूला वे अहमक नादाना। तुम हरदम रामहि ना जाना॥
बरबस आनि जु गाय पछारिन, गला काटि जिव आप लिया॥
जियत जीव मुरदार करत हैं, ताको कहत हलाल किया॥

हिंसा सम नहिं पाप कछु, शत्रु न सम अज्ञान।
ताते होवत द्वेष मद, कपट द्रोह अभिमान॥४४॥

उक्त दया श्रवणादि रहित, वे अहमक (रे शठ मूर्ख) और नादान (अज्ञ बदहोश) तुम मार्ग को भूले हो। अतः तुमने हरदम (सदा, सब प्राणी रूप) राम को तुमने नहीं जाना है। और सर्वातमा राम के सदा नहीं जानने से ही अज्ञों ने बरवश (बल से जबरन्) गाय को ले आन कर पछारा और उसके गले को काट कर उसके जीव (प्राण) को आप लिया (नष्ट किया) इस प्रकार

जीवित प्राणी को जो स्वयं मुरदा कर देता है, सो मूर्खता से कहता है, कि मैंने उसको हलाल (पवित्र) किया है।

जाहि मांस को पाक कहत हौ, ताकी उत्पति सुन भाई।
रज बीरज से मांस उपानी, मांस नपाकी तुम खाई ॥
अपनी देखि कहत नहिं अहमक, कहत हमारे बड़न किया।
उसकी खून तुम्हारी गरदन, जिन तुमको उपदेश दिया ॥

हे भाई ! जिस मांस को पाक (पवित्र) कहते हो, उसकी उत्पत्ति को सुनो (समझो) रजो वीर्य से मांस उपानी (उत्पन्न) होता है। अतः वह पाक नहीं हो सकता है। तो भी रे नपाकी ! (अपवित्रात्मा) तुम उसको खाते हो।

अहमक लोग अपनी देखी हुई अपवित्रता हिंसा की बात को नहीं कहते हैं, किन्तु कहते हैं कि हिंसा मांसाहार हमारे बड़ों ने किया है। अतः यह कर्तव्य है। तहाँ साहब कहते हैं कि उस प्राणी की खून (हिंसा) तेरे गरदन (गले) पर और जिन्हों ने तुमको उपदेश दिया है, उनके गले पर सवार होगी। दोनों को बदला देना होगा। अतः हिंसा को त्यागो।

गई सियाही आइ सफेदी, दिल सफेद अजहूँ न हुआ।
रोजा निमाज बंग का कीजै, हुजरे भीतर पैठि मुआ ॥
पण्डित वेद पुराण पढ़त हैं, मोलना पढ़ै कोराना।
कहहिं कबीर दोउ नरक परे, जिन हरदम राम न जाना ॥२४॥

स्याही (बालों की कालिमा) गई। श्वेतता आई। परन्तु अजहूं (वृद्धावस्था में) भी यदि दिल साफ (शुद्ध) हिंसा आदि से रहित नहीं हुआ, तो रोजा व्रत से, निमाज के पाठ से और बाँग देने से क्या किया जा सकता है औ हुजरा (मसजीद की एकान्त कोठरी) के भीतर पैठ कर भी हिंसक व्यर्थ मुआ और मरता है। क्योंकि जो पण्डित वेद पुराणादि पढ़ते हैं। और जो मोलना कोरान पढ़ते हैं। परन्तु जिन लोगों ने हरदम (सदा सब प्राणी में) राम को नहीं जाना है, तो वे दोनों हिंसक नरक में पड़े, फिर अन्य की कथा क्या कहनी है। यतः—

हिंसक दया न जानई, क्षमा न सूझै ताहि।
क्रोध लोभ वश होत सो, तम भव गोता खाँहि ॥४५॥

दान न करत विवेक युत, पक्षपाति सो होय ।
हित अनहित समुझत नहीं, साधुन निन्दत सोय ॥४६॥
परम अहिंसा धर्म है, तन में प्राण समान ।
अन्य धर्म सब अङ्ग हैं, ता विनु सब का हान ॥४७॥
अन्य धर्म सब कर्म हैं, भव बन्धन का हेतु ।
सत्य अहिंसा बोध दृढ़, भव सागर का सेतु ॥४८॥
पढ़ना लिखना चातुरी, यह सांसारिक बात ।
दया अहिंसा भक्ति दम, मोक्ष हेतु विख्यात ॥४९॥
भक्ति अहिंसा सरलता, सहित सत्य ह्वे धर्म ।
हिंसा कपटादिक सहित, सत्यहुँ होत अधर्म ॥५०॥
स्तेयहुं हिंसा रूप है, ताते होत अधर्म ।
जन के प्राण समान धन, ताका हरण कुकर्म ॥५१॥
ब्रह्मचर्य विनु होत है, निज पर का अतिघात ।
नारि संग से गर्भ ह्वे, तहाँ कष्ट दिन रात ॥५२॥
जो दीजिय सो पाइय, यह अति बात प्रसिद्ध ।
दुख देवै जो आन को, ताको सुख कँह सिद्ध ॥५३॥
परम धर्म श्रुति सिद्ध है, सत्य अहिंसा मानु ।
कामक्रोध छल लोभ मद, तजे अहिंसा जानु ॥५४॥
सकल धर्म पोषक बनै, पोष्य अहिंसा एक ।
पुष्ट महाव्रत होत सो, देत सुशुद्ध विवेक ॥५५॥
लहि विवेक शौचादि शुभ, करत उचित मतिमान ।
दम्भ कपट ईर्ष्या तजत, कुपथ मोह अभिमान ॥५६॥
अविद्यादि रागादि मल, मिटै न बिनु विज्ञान ।
ताको लहै विवेकी नर, त्यागि पाप अभिमान ॥५७॥
जो विवेक युत सत्य शम, भक्ति अहिंसा तोष ।
इन्द्रिय निग्रह ध्यान शुभ, सो तपविमल अदोष ॥५८॥
तप से लहत महान पद, स्वर्ग मोक्ष विश्राम ।
समदर्शी ह्वे सकल में, निरखै निर्गुण राम ॥५९॥
निर्गुण रामहि जो लखा, ताते गुण नशि जायँ ।
जो बन्धन का हेतु जग, कर्म शुभाशुभ आयँ ॥६०॥

काम क्रोध मद लोभ छल, मत्सर ममता मूल ।
राम दरश ते नशत ये, मिटत सकल भव शूल ॥६१॥
दयाधर्म का मूल है, हिंसा मल की खान ।
मांस मद्य अति अशुचि अघ, ताहि तजिय लहि ज्ञान ॥६२॥
ज्ञान सोइ जाते मिटै, हिंसा अघ अभिमान ।
मिलै राम नहि नरक ह्वे, शोक समूल नशान ॥६३॥
शोक मूल अज्ञान है, संशय भ्रम समुदाय ।
यही तीन मलमूल हैं, नरक मूल दुखदाय ॥६४॥
सद्विवेक सत धर्म तप, निवृतिरूप हैं सर्व ।
क्षमा अहिंसाऽचौर्य दम, ब्रह्मचर्य निर्गर्व ॥६५॥
प्रवृतिरूप दानादि जप, सेवा पर उपकार ।
पर अपकारादिक तजी, यज्ञाचार उदार ॥६६॥
इन सब से मल दूर ह्वे, निष्कामी जनकेर ।
इनके बिनु दिल श्वेत नहि, मिटै न मन का फेर ॥६७॥
दिल सफेद तब जानिये, विषय भोग रुचि जाय ।
रहै प्रसन्न न छल गहै, राग द्वेष मिट जाय ॥६८॥
मन प्रसन्न करि भक्ति से, सद्गुरु शरणे जाय ।
करि उपासना स्थिर करै, तब गुरु वचनहि पाय ॥६९॥
लखै राम को सर्व पर, सर्व रूप सुख रूप ।
लहै सुपरमानन्द नित, अचल विवेकी भूप ॥७०॥
योग युक्ति से गहिय मन, सद्विवेक से बुद्धि ।
मान तजिय सद्भक्ति से, पाइय परम विशुद्धि ॥७१॥
तन कसिये तप त्याग से, पर विराग से इन्द्रि ।
तजि कुभोग सत्सङ्ग से, पाइय परम सदिन्द्रि ॥७२॥
मन इन्द्रिय जो वश किये, उनके वश संसार ।
देवादिक सब हित भये, मिट गै सकल विकार ॥७३॥
मन इन्द्रिय जिहि वश भये, सोइ पण्डित सत् ज्ञानि ।
सो मोलना बड़ काजिहुँ, और सकल बक ध्यानि ॥७४॥
बक ध्यानी भोगै सदा, नरक दुःख यम मार ।
ज्ञानी उतरे पार भव, यह श्रुति सन्त विचार ॥७५॥

यथा शक्ति जो करत नित, क्षमा अनुग्रह दान ।
अहिंसादि सत धर्म निज, सो हरि लहत निदान ॥७६॥

हरि गुरु नौ भव सिन्धु में, तिंनहि मिले भवपार ।
उतरत हैं सब सन्त बुध, यह निश्चय उर धार ॥७७॥

कामि तरत क्रोधी तरत, लोभी तरत संभार ।
हरि गुरुशरण जु गहत कभि, हिंसक वार न पार ॥७८॥

यहि निमित्त उपदेश शुभ, सत गुरु दीन दयाल ।
दिया ताहि सुनिये सुजन, रहिये नित्य सँभाल॥७९॥२४॥

शब्द २५

काजी तुम कौन कितेब बखानी ।
झंखत बकत रहहु निशिवासर, मति एको नहिं जानी ॥

एक राम के ज्ञान बिनु, काजी पण्डित दोउ ।
भूले अति पाखण्ड में, धर्म न जानै ओउ ॥८०॥

हे काजी ! तुम कौन किताब का व्याख्यान करते हो कि जिसके व्याख्यान करने पर भी सदा झंखते (शोक-चिन्ता करते) रहते हो और रात-दिन व्यर्थ बकते रहते हो और भावीहित अहिंसा आदि एको धर्म ज्ञान भक्ति की मति तुमने नहीं जानी (नहीं पाई) तो उस किताब के व्याख्यान से क्या मिला ?

शक्ति नु माने सुनत करत हो, मैं न बदोंगा भाई ।
जो खुदाय तव सुन्नत कर्ता, आपुहि काटि न आई ॥
सुनत कराय तुरुक जो कहिये, औरत को का कहिये ।
अर्द्ध शरीरी नारि बखानै, ताते हिन्दू रहिये ॥

और शक्ति का अनुमान (कल्पना) करके असमर्थ अज्ञ बालक की सुन्नति करते हो, हे भाई ! मैं इसको नहीं मानूँगा, न मैं तुझे कुछ बदता (समझता) हूँ और यदि तेरा खुदा सुन्नत कर्ता है तो स्वयं गर्भ से ही लिङ्ग कटा हुआ क्यों नहीं आया ? या तुम्हारा खुदा आपही आकर क्यों नहीं काटता है ? अपने काम में तुझे वह क्यों सामिल करता है और यदि सुन्नत कराने से तुरुक कहा जाता हो

तो औरतों को क्या कहना चाहिये और गृहस्थ शरीरधारी का स्त्री अर्द्धाङ्ग कही जाती है और सुन्नत के बिना वह हिन्दू ही रहती है। अतः तुम भी हिन्दू ही रहो।

घालि जनेऊ ब्राह्मण होना, मेहरि क्या पहिराया।
वे जन्म की शूद्री परोसे, तुम पाँड़े क्यों खाया॥
हिन्दू तुरुक कहाँ ते आया, किन यह राह चलाया।
दिल में खोजि देखु खोजा दे, भिस्त कहाँ किन पाया॥

इसी प्रकार जनेऊ (यज्ञ सूत्र) के गले में घालने (देने पेन्हने) से यदि ब्राह्मण होना हो तो मेहरी (स्त्री) को क्या पहिराया जाता है ? अर्थात् नहीं पहिराया जाता है। अतः जनेऊ के बिना वह जन्म की शूद्री (शूद्रा) भोजन परोसती है तो तुम पाण्डे (ब्राह्मण) होकर भी क्यों खाते हो ?

और समझो कि हिन्दू तुरुक कहाँ से आये हैं ? (इनमें भेद कैसे हुआ है ?) और इनके भिन्न-भिन्न इस मार्ग को किन लोगों ने चलाया है। इन बातों को सब अपने-अपने दिल में खोजो (विचारो)। स्वयं विचार से नहीं समझ पड़े, तो खोजा दो (सत्सङ्ग आदि में खोजना शुरू करो) और समझो कि इन मिथ्या कल्पित अनेक मार्गों से अहिंसा ज्ञान आदि के बिना कहाँ किन लोगों ने सुन्नत और जनेऊ से भिस्त पाया। और भिस्त के लिये अहिंसा आदि का ही धारण करके दया दमादि पूर्वक एक सत्यात्मा राम को समझो।

छाडु पसार राम भजु बौरे, जोर करतु हैं भारी।
कबिरा न ओट राम की पकरी, अन्त चले पछ हारी॥२५॥

और मन माया कृत पसार (विस्तार) को छोड़ दो, सर्वात्माराम को भजो। हे बौरे ! इसीसे स्वर्ग मोक्ष सुख शान्ति की प्राप्ति हो सकती है अन्यथा नहीं। इसलिये मैं भारी जोर करता हूँ, आग्रह पूर्वक कहता हूँ कि पसार को त्याग करके राम को भजो। क्योंकि जिन्होंने पसार को त्यागकर राम की ओट (शरण) नहीं पकड़ी, वे लोग अन्त में अपने पक्ष (सहायक शक्ति बलादि) को हारकर (मनुष्यता को व्यर्थ नष्ट करके) चले और चलते हैं।

राम दरश जिनको नहीं गुण वश पड़ते सोय।
पाखण्डी कहि असत पुनि, पड़त नरक में सोय॥८१॥

पाखण्डी मति मलिन नर, पढ़ै जु चारो वेद ।
रावण सम तिहि दिखत नहिं, घर्म सहै सो खेद ॥८२॥
प्रत्यक्षहूँ सो राम लखि, करै न तँह विश्वास ।
हनै आत्माराम को, सहै कठिन भव त्रास ॥८३॥
याते सब पाखण्ड तजि, करि गुरु वच विश्वास ।
लखि सर्वातमराम को, निर्गुण विगत विलास ॥८४॥
कामादिक गुण त्यागिये, नरक हेतु जो आहि ।
यह गुरु का उपदेश सत, समुझि गहिये मन माहि ॥८५॥२५॥

शब्द २६

**भाइ रे दुइ जगदीश कहाँ ते आया, कहु कौने भरमाया ।
अल्लह राम करीमा केशव, हरि हजरत नाम धराया ॥
गहना एक कनक ते गहना, इनमें भाव न दूजा ।
कहन सुनन को दो करि थापे, इक निमाज इक पूजा ॥**

ओट न पकड़त राम की, रामहि जानत नाहि ।
दो करि ताते मानई, भूलि परा भव माहि ॥८६॥

मति हीन लोग दो (अनेक) ईश्वर मानते हैं । अतः कहते हैं कि रे भाई ! दो ईश्वर कहाँ से आये (किस प्रमाण से दो जगदीश सिद्ध हुए) सब वेदादि तो (एको देवः) एक ईश्वर है, इस प्रकार कहते हैं । तुम्हें किसने भरमाया है कि जिससे दो मानते हो, सो कहो । यदि कहो कि अल्लाह रामादि नामों के अनेक होने से जगदीश अनेक हैं तो कहना ठीक नहीं है । क्योंकि एक ही जगदीश अल्लह, राम, करीमा, केशव, हरि और हजरत आदि नाम धराया है ।

जैसे एक कनक से अनेक गहना (भूषण) बनते हैं, परन्तु इन गहनाओं और कनक में दूजा भाव (भेद) नहीं रहता है तो भी कहने-सुनने (व्यवहार) के लिये, दो (भेद) करके स्थापित (निश्चित) किया जाता है । इसी प्रकार एक जगदीश में नाना नामरूप माया से होते हैं, सत्य भेद नहीं रहता है और मिथ्या भेद से ही एक निमाज पढ़ता है तो एक पूजा करता है । ईश्वराराधना दृष्टि से दोनों एक ही है ।

वही महादेव वही मुहम्मद, ब्रह्मा आदम कहिये।
कोइ हिन्दू कोइ तुरुक कहावै, एक जिमी पर रहिये॥
वेद कितेब पढ़े वे कुतबा, वे मोलना वे पाँड़े।
बेगर बेगर नाम धराये, एक मटिया के भाँड़े॥

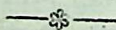
वही एक जगदीश महादेव, मुहम्मद, ब्रह्मा, आदम आदि गुणोपाधि द्वारा भूषण के समान अनेक कहा जाता है। अतः चाहे कोई हिन्दू कहावे, कोई तुरुक कहावे, परन्तु सब को एक जिमी (भूमिका अवस्था धर्म) पर स्थिर रहना चाहिये। एक ईश्वर भक्त होकर राग, द्वेष नहीं करना चाहिये।

क्योंकि वे हिन्दू वेद पढ़ते हैं, वे मुसलमान किताब को कुतबा (पढ़ते) हैं। वे मुसलमान पढ़कर मोलना कहाते हैं, वे हिन्दू पढ़कर पण्डित कहाते हैं। इस प्रकार बेगर-बेगर (जुदा-जुदा) नाम धराया है। परन्तु जिस शरीर का नाम धराया है, वह शरीर तो एक माटी के अनेक भाँड़े (घटादि) तुल्य ही है। अन्तर्यामी ईश्वर आत्मा सब शरीर में एक ही है। मतिहीन मनुष्य उसे भी देह भेद से भिन्न मानते हैं। एक राम स्वरूप नहीं समझते हैं। अतः कबीर साहब कहते हैं कि—

कहहिं कबीर ई दूनों भूले, रामहिं किनहुँ न पाया।
वे खस्सी वे गाय कटावे, बादहि जन्म गमाया ॥२६॥

देहाभिमानी पण्डित मोलना=हिन्दू-तुरुक ई (ये) दोनों एक सत्यात्मा राम को भूले हुए हैं। उसके विचार श्रवणादि भी नहीं करते हैं। अतः किसी अभिमानी ने सर्वात्मा राम ही को नहीं पाया (खस्सी, गाय आदि में भी राम को नहीं समझा) अतः बकरा, गाय को पण्डित मोलना भी कटवाया, जिससे बाद ही (व्यर्थ ही) जन्म गमाया तथा बाद (व्यर्थ कथा) में ही जन्म गमाया, उपदेशों का धारण नहीं किया ॥२६॥

इति ज्ञान बिना हिंसा मतभेद प्रकरण ९



अथ गृहाद्यासक्ति निषेध प्रकरण १०

शब्द २७

भूला लोग कहै घर मेरा ।
जा घरवा मँह भूला डोलहु, सो घरवा नहिं तेरा ॥
हाथी घोड़ा बैल बाहनू, संग्रह कियहु घनेरा ।
बस्ती मँह से दियो खदेरा, जंगल कियहु बसेरा ॥

राम न पाया देह का, अभिमानी जड़ जीव ।
ममता करि भवनादि की, ताकी फुटी नसीब ॥८७॥

उक्त रीति से आत्माराम को भूले हुए लोग कहते हैं कि घर मेरा (हमारा) है । तहाँ गुरु कहते हैं कि आत्माराम को भूलकर जिसके व्यवहार में डोल रहे हो (व्यग्र चञ्चल हो) सो घर वस्तुतः तेरा नहीं है, स्वप्न तुल्य तेरा तुझे प्रतीत हो रहा है । सो भी तेरा हित नहीं है । क्योंकि गृहासक्ति से तुमने हाथी, घोड़ा, बैल और वाहन (रथ पालकी) आदि घनेरा (बहुत) वस्तु का संग्रह किया । सो संग्रह तुझे रामस्वरूप सर्वाधार बस्ती (वास स्थान) से खदेड़ (भगा) दिया कि जिससे तुम भयावह संसार जंगल में वास किये हो । या मृत्यु जब गेह देह से खदेड़ दिया तब तुम जंगल में वास किये हो । यह राम को भूलने का फल है ।

गाँठी बाँधि खरच नहिं पठयो, बहुरि न कीयो फेरा ।
बीबी बाहर हरम महल में, बीच मियाँ को डेरा ॥

और संग्रह में ही लगे रहने से तुमने सद्भक्ति ज्ञानादि रूप खर्च (शम्बल) हृदय रूप गाँठी में नहीं बाँधा न भावी सुख क्रममुक्ति के लिये खरच पठाया (दानोपासनादि किया) या जो संग्रह किया सो वस्तु तुमने गाँठी में बाँधी, पठाया नहीं, ईश्वरार्पण दानादि नहीं किया और सांसारिक कामों से बहुर (लौट) कर विस्मृत निजात्मदेवादि के तरफ तुमने कभी फेरा (खोज) नहीं की । किन्तु बीबी (कुलांगना) तुल्य सद्बुद्धि को तुमने बाहर के व्यवहार में लगाया । मानो हृदय से सुबुद्धि को बाहर निकाल दिया और आशा तृष्णा हरम (वेश्या) को हृदय रूप महल (घर) में बसाया और उनके बीच (मध्य) में जीव रूप मियाँ तुमको डेरा करना पड़ा है ।

नव मन सूत अरुझ नहिं सरुझै, जन्म जन्म अरुझेरा ।
कहहिं कबीर सुनहु हो सन्तो !, यह पद करहु निबेरा ॥२७॥

और हरमों के बीच में डेरा होने से चार अन्तःकरण पाँच ज्ञानेन्द्रिय रूप नौ मन सूत विषयों में अरुझे (फंसे) रहते हैं और ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, भोक्ता, भोग, भोग्य, कर्ता, करण, कर्म रूप नव विध संसार आत्मा में अरुझे रहते हैं। सो सब जन्मों में अरुझते जाते हैं। अतः साहब कहते हैं कि हे सन्तो ! श्रवणादि करो और इस अपरोक्ष आत्म पद का निबेरा (विवेक) इस अरुझ का निबेरा (निवृत्ति) करो कि जिससे आत्मज्ञान रूप सद्‌बुद्धि हृदय में बसे और अविद्या रूप आशा तृष्णा आदि निवृत्त हो ॥२७॥

शब्द २८

जोलहा बीनहु हो हरि नामा । जाको सुर नर मुनि धरु ध्याना ॥
ताना तनै के अहुंठा लीन्हों, चरखी चारो वेदा ।
सर खूंटी एक राम नरायण, पूरण प्रगटे भेदा ॥

इन्द्रिय अन्तःकरण सब, बिनु विवेक अरुझाय ।
तनु धनादि में ताहि को, सरुझन करिय उपाय ॥८८॥
मन इन्द्रिय सरुझाय सत, हरिपट शुद्ध बनाय ।
करि अनुभव निज रूप को, नहि आवै नहि जाय ॥८९॥

हे जोलहा ! (विवेक युक्त मानव तनु लब्धा जीव !) सरुझे हुए उक्त सूतों से उस हरि नाम वाले पट को बीनो (प्राप्त करो) कि जिस हरि का सुर नर मुनि सब ध्यान धरते (करते) हैं। अर्थात् विषयादि से विमुख मन इन्द्रियादि को सर्वात्मा हरि में लगावो। इनकी सत्ता आदि को हरि स्वरूप ही समझ कर हरि चिन्तन ध्यान करो। क्योंकि इस हरि पट की प्राप्ति के योग्य तुम अहुंठा (साढ़े तीन हाथ का देह रूप गज) लिये हो और चार वेद रूप चरखी पाये हो। तथा सर खूंटी आदि सब सूत का आधार रूप एक नारायण (नरों का आश्रय) राम ही है। उस एक राम से ही सब भेद (मर्म) पूर्ण रूप से प्रकट होते हैं और होगें। सब भेद युक्त कार्य भी उसीसे सिद्ध होते हैं।

भव सागर एक कठवत कीन्हा, तामें माँड़ी साना ।
माँड़ी के तन माँड़ी रह्यो है, मांड़ी बिरले जाना ॥

चांद सूर्य दुइ गोड़ा कीन्हों, मध द्विप मांझा कीन्हा ।
त्रिभुवन नाथ जु माँजन लागे, साम मून्हिया दीन्हा ॥

उस राम ने भवसागर रूप एक कठौत (काष्ठ पात्र) किया है और उसमें पांच भूतों का संमिश्रण रूप माँड़ी साना गया है और उस माँड़ी का कार्य रूप यह शरीर संसार में माँड़ि (व्याप्त हो) रहा है। इसको बिरल कोई माँड़ी (भूत मात्र) समझते हैं। बहुत लोग इसी में आत्मता का अभिमान करते हैं।

बाहर भीतर के चन्द्र सूर्य गोड़ा किये गये हैं और मध्य जम्बूद्वीप तथा सुष्मणा नाड़ी को माँझा किया गया है। तहाँ त्रिभुवन नाथ (व्यावहारिक) जो जीव उक्त नव मन सूत को माँजने लगा और सूतों के टूटने पर साम (समता) रूप मून्हि (गाँठ) दिया (समभाव से हरि चिन्तन किया)।

पाई कै जब भरना लीन्हों, वै बांधे को रामा ।
वै भराय तिहुं लोकहि बांध्यो, कोउ न रहत उवामा ॥

सो व्यावहारिक जीव जब पाई (शुद्धि) करके भरना (भरनी) लिया, पूर्ण हरि पट के लिये प्रवृत्त हुआ, तृप्ति सन्तोष प्रसन्नता प्राप्त किया, तब सर्वात्मा राम वै बाँधने के लिये उन्मुख हो गये। ईश्वर की प्रसन्नता हो गई और जब वै भर गया (विवेक पूर्ण हुआ) तब तीनों लोक नियम सूत्र से बँध गया, देवादि सब प्रसन्न हो गये। कोई भी उवाम (उलटे विरोधी) नहीं रहते हैं।

तीन लोक एक करिगह कीन्हा, डगमग कीन्हा ताना ।
आदि पुरुष बेठावन बैठे, कबिरा ज्योति समाना ॥२८॥

उस जीव के लिये तीनों लोक एक करिगह (पट यन्त्र गृह) किया गया है। वह सर्वत्र हरि पट बीन सकता है और वह सब ताना (विस्तार) को डगमग किया है (चञ्चल मिथ्या समझा है) अतः वह कहीं भी हरि से अन्य को नहीं पाना चाहता है। अतः सर्वादिपुरुषरूप पट के ही बेठावने (सम्हालने) के लिये जो जीव ध्यान चिन्तन में बैठा, सो कबिरा (जीव) ज्योति तुल्य हो गया या ज्योतियों की ज्योति में समा गया (लीन हो गया)।

सकल मित्र सम सुहृद विभु, आदि पुरुष को पाय ।
गमनागमन विहीन अज, शुद्ध रूप हो जाय ॥९०॥२८॥

शब्द २६

रामुरा चली बिनावन माहो, घर छोड़े जात जोलाहो ॥
गज नव गज दश गज उनइस की, पुरिया एक तनाई ।
सात सूत नव गाँठ बहत्तर, पाट लागु अधिकाई ॥

हरि पट के बीने बिना, मायाऽविद्या बुद्धि ।
बिनत अनन्त शरीर पट, रहत न एकहु शुद्धि ॥९१॥

उक्त रामुरा (राम राजा या रामधन) की प्राप्ति के विना जीव की बुद्धि संसार वन में चली (सांसारिक कामना वासना को धारण किया) तथा नवीन पट विनावने के लिये रामराजा (जीव) चला । तब उस समय यह जोलहा (जीव) प्राप्त घर (देह) को छोड़ कर जाता है । फिर पांच प्राण चार अन्तःकरण रूप नौ गज और दशेंद्रिय रूप दश गज को मिला कर उनइस १६ गज की एक पुरिया (थान पुर) इसने तनाई । जिसमें त्वक् रुधिर, मांस, मज्जा, मेद, हाड़ और वीर्य रूप सात धातु सात सूत हुए नव प्रधान नाड़ी या खुले नव द्वार नव गाँठ हुए और बहत्तर कोटि से भी अधिक नाड़ी रूप आकृति आदि रूप अधिक पाट (किनारी) लगाये गये । बहत्तर कोठे बनाये गये ।

ता पट तूल न गज न अमाई, पैसन सेर अढ़ाई ।
तामँह घटै बढ़ै रतियो नहिं, करकच कर घरहाई ॥

इस पट में तूल गजादि कोई अमायिक (सत्य) नहीं रहते हैं, न लौकिक तूल गज इसमें अमाता (समाता) है । इसी प्रकार इसमें लौकिक सेर अढ़ैया आदि नहीं पैठते हैं या पैसों में अढ़ाई सेर मिलता है । अर्थात् एक मानव देह के कर्म से ज्ञानादि के विना चौरासी लाख योनियों में शरीर मिलते हैं । क्योंकि भोगे विना उन कर्मों में रत्ति मात्र भी कभी घटता वढ़ता नहीं है । किन्तु करकच (पाप कर्म) सब घरों में हाय (शोकादि) उत्पन्न करते हैं, शुभ कर्म नहीं ।

निति उठि बैठ खसम से बरबस, तामें लागु तिहाई ।
भिंगी पुरिया काम न आवै, जोलहा चला रिसाई ॥

कुकर्म से दुःख होने पर भी, यह जीव अन्य योनियों से छुटकारा पाने पर जब मानव तन में आता है, तब मानों सोये से उठ कर बैठता है । परन्तु बैठकर

खसम (सद्गुरु ईश्वर) से ही बरबस (जबरन्) काम करता है। धर्म नीति को नहीं मानता है। परन्तु उस स्वाभाविक धर्म न्याय रहित प्रवृत्ति में भी गुण सङ्गादि के भेद से तिहाई लगते हैं (सात्त्विक राजस तामस तीन भाग होते हैं)। और उनके फल सुख दुःख और मोह प्राप्त होते हैं। फिर कर्माधीन ही शरीर रूप पुरिया के रोगादि से भींगने (व्याप्त होने) पर जब यह काम नहीं आता है (भोग के योग्य नहीं रहता है) तब जीव जोलहा रुष्ट होकर तृप्ति रहित चलता (मरता) है। ज्ञान भक्ति आदि के बिना तृप्त मुक्त नहीं होता है।

कहहिं कबीर सुनहु हो सन्तो, जिन यह सृष्टि उपाई।
छाडु पसार राम भजु बौरे, भवसागर कठिनाई ॥२६॥

अतः कबीर साहब कहते हैं कि हे सन्तो ! राम के श्रवणादि करो और जिन मन माया के पसार विस्तार मोह कामादिकों ने यह शरीरादि रूप सृष्टि को उत्पन्न किया है, उन पसारों को छोड़ो कि जिससे भावी सृष्टि से रहित मुक्त होगे। और हे बौरे (अविवेकियों) तुम भी सन्तों से समझ कर उस राम को भजो। क्योंकि राम के भजे विना भवसागर में कठिनाई होती है ॥२९॥

शब्द ३०

सन्त उधारण चूनरी, ररा ममा के भाति हो ॥
बालमीक बन बोइया, चूनि लिया शुकदेव।
कर्म बनौरा ह्वै रहा, सुत कातहिं जयदेव ॥

शुद्ध सुहरि पट सबहि को, मिलि न सकत इमि जानि।
सगुण चित्र पट सन्त भी, रचत सुजन हित मानि ॥९२॥

सात्त्विक पसार को नहीं त्याग सकने वाले सन्तों ने (उस) चूनरी (त्रिगुणमय चित्रपट) का धारण किया। जो ररा ममा (राम) के सदृश भाति (प्रतीत) होता है। या सन्तों ने साधारण जीवों के उद्धार के लिये चूनरी रची, जो ररा ममा के सदृश भासती है। और उसकी सिद्धि के लिये वाल्मीकमहर्षि ने बन (बांगा=कपास) बोया। शुकदेवजी ने मानो कपास चून लाये और साधारण कर्म उस कपास में बनौरा (बीज) हो कर रहा। फिर जयदेव कवि उसे ओट धून कर सूत कातते हैं (सूत बनाय दिया)।

तीन लोक ताना तन्यो, ब्रह्मा विष्णु महेश।
नाम लेत मुनि हारिया, सुरपति सकल नरेश ॥
बिनु जिह्वे गुण गाइया, बिनु वस्ति का गेह।
शूने घर का पाहुना तासो लायो नेह ॥

फिर गुणाभिमानी ब्रह्मा विष्णु और महेश तीनों देवों ने उस सूत के तीनों लोकों में ताना किया। इस प्रकार चित्र पट सिद्ध होने पर उसके नामों के लेते (जपते) में मुनि लोग और देवेन्द्र नरेन्द्र सब हार गये। अर्थात् (रामहि राम पुकारते, जिह्वा परिगौ रौस। सुधा जल पीवै नहीं, खोदि पिवन की हौंस (रमैनी सा० ३४) इस वचन के अनुसार तटस्थ राम को पुकार कर थक गये। थकने पर जिह्वा के बिना ही मन से गुण को गाने लगे। और बस्ती (ग्राम स्थान) के बिना ही आकाश में नित्य घर की कल्पना किये और शून्य घर का पाहुन बन कर, उस शून्य घरादिक से ही नेह (प्रेम) किये।

चार वेद काँड़ा किया, निराकार किय राछ।
बिनै कबीरा चूनरी, वै नहिं बांधी वाछ (बार) ॥३०॥

चार वेद को काँड़ा (शरादि) और निराकार निर्गुण राम को राछ नामक साधन बना कर (समझकर) कबीरा (जीव) सदा चूनरी बिनता है। परन्तु बाछ कर (विवेक करके) वै (वय) नहीं बाँधा है, न बाँधता है। अतः शुद्ध अपरोक्ष पट नहीं प्राप्त होता है। विवेक करे तो साकार में भी निराकार को पा सकता है। इत्यादि ॥३०॥

इति गृहाद्यासक्ति निषेध प्रकरण १०

अथ कुयोगी आदि प्रकरण ११

शब्द ३१

ऐसो योगिया वैद करमी। जाके गमन आकाश न धरनी ॥
हाथ न वाके पांव न वाके, रूप न वाके रेखा।
बिना हाट हटवाई लावै, करै बयाई लेखा ॥

कर्म न वाके धर्म न वाके, योग न वाके युक्ती।
शींगी पात्र कछू नहिं वाके, काहेक मांगै भुक्ती॥

शुद्ध सुहरि पट लाभ विनु, भया कुयोगि कुवैद्य।
चाहत भोग परि लोभ वश, चहत न मुक्ति अवैद्य॥९३॥

विवेकादि के बिना यह जीव ऐसा योगिया कुयोगी (शिष्य) और वैदकरमी (भव दुःख वारक वैद्य=गुरु) हुआ है कि जिसके आकाश और भूमि में कहीं कुछ गम (होश) नहीं है। या कहीं गमन (सद्गति) नहीं हो सकता है। अर्थात् भोग परायण गुरु शिष्य दोनों सत्य अनुभव और सद्गति नहीं पाते हैं। वस्तुतः देह में हाथ आदि हैं, उस जीवात्मा के हाथ, पाँव, रूप आकार नहीं हैं। और स्वरूप सत्ता से ही हाट के बिना हटवाई (व्यवहार नाप जोख) हिसाब लगाता है तथा वय (व्यय खर्च) आय का लेखा करता है। कर्मों के भोग, अभोग, उत्पत्ति, प्रलय, विद्या, अविद्या आदि को जानता है। ये सब इस स्वरूप प्रकाश से सिद्ध होते हैं। और इसमें कर्म धर्म लिप्त नहीं होते हैं। न योग और युक्ति तर्क की आवश्यकता होती है। इस का स्वरूप स्वयं प्रकाश है। न इसको शींगी पात्र किसी से सम्बन्ध होता है। अर्थात् सच्चे शिष्य और गुरु के मेल होने पर ऐसा स्वरूप का अनुभव होता है। और भोग की तृष्णा नहीं रहती है, तो वह भोग काहे को माँगेगा। ऐसा स्वरूप होते भी जो भोग माँगता है (चाहता है) सो अविवेक से भोग परायण होता है।

तैं मोहि जाना मैं तोहि जाना, मैं तोहि मांह समाना।
उत्पति प्रलय एक नहिं होते, तब कहु कौनक ध्याना॥
योगि एक आनि ठाढ़ कियो है, राम रहा भर पूरी।
औषध मूल कछू नहिं वाके, राम सजीवन मूरी॥

जब तैं (विवेकी शिष्य) मोहि (सद्गुरु) को जाना और मैं (गुरु) ने तुम शिष्य को ज्ञान का अधिकारी समझा और मैं जब तुममें ज्ञान उपदेश द्वारा समाया (प्रवेश किया) या जानने पर जब मुझ तुझ में समता हो गई।

"गुरु समाना शिष्य में, निजकर लागी नेह।
बिलगाये बिलगे नहीं, एक प्राण दुई देह॥"

इस प्रकार प्राण (आत्मा) एक हो गया। तब गुरु शिष्य में उत्पत्ति प्रलयादि एक भी विकार फिर नहीं होते हैं। तब कहो कि ध्यान भी किसका हो सकता है। केवल स्वरूप स्थिति रहती है। अनात्म ध्यान भोग भावना आदि निवृत्त हो जाते हैं।

क्योंकि कुयोगियों ने एक अनात्म ध्येय को ले आन कर ठाढ़ (खड़ा) किया है, और सत्य सर्वात्मा राम तो सदा सर्वत्र भरपूर (व्यापक) ही रहता है। और वही राम सजीवन मूरी (जन्मादि दुःख नाशक औषध) है और उस राम के मूल औषध दूसरा नहीं है। वही सब का मूल है। अथवा उस कुयोगी के पास में कुछ भी मूल औषध नहीं रहता है। अतः अनात्म राम को सजीवन मूरी समझता है।

नटवत बाजा पेखन पेखै, बाजीगर की बाजी।
कहहिं कबीर सुनहु हो सन्तो, भै सो राज विराजी ॥३१॥

और वह कुयोगी नट के समान शींगी आदि बाजा बजाकर, अनहद को सुनकर उस पेखन (तमासा) को पेखता (देखता देखाता) है, कि जो बाजीगर के बाजी तुल्य मिथ्या रहता है। कबीर साहब कहते हैं कि हे सन्तों! तुम आत्म श्रवणादि करो। नटबाजी में नहीं भूलो, उस बाजी में भूलनेसे, सो (वह) स्वतन्त्र राजा (जीव) विराजी (राज्यरहित परतन्त्र) हुआ है। या मिथ्या तमासा से विराजी (विशेष राजी प्रसन्न) हुआ है ॥ ३१ ॥

शब्द ३२

नल को ढाढ़स देखहु आई। कछु अकथ कथा है भाई ॥
सिंह शार्दूल एक हर जोतिन, सीकत बोइन धाना।
बन के भलुआ चाखुर फेरे, छागर भये किसाना ॥

अज्ञ जनो की अकथ कहानी, सुनिये सन्त सुजान।
निज अधिकार विना करते हैं, अधरम धरम न जान ॥९४॥

हे सन्तो! अज्ञ गुरु शिष्यादिरूप मनुष्यों के कुछ ढाढ़स (साहस) को आकर देखो (समझो) हे भाई! इनकी कथा अकथ (अद्भुत) है। इन लोगों ने सिंह शार्दूल (सिंह व्याघ्र) तुल्य (अहंकार मन) को एक काम्य कर्मरूप हर में जोता (लगाया) है (अहंकार फल संकल्पपूर्वक कर्मादि करते हैं) ज्ञान के लिये निष्काम कर्म ये नहीं करते हैं। अतः सत्याङ्कुर फलादि के अहेतु वासना

कामादिरूप धाना (बीज) इन्होंने बोया है। तहाँ संसार वन के भलुआ (भालू) तुल्य भूले-भटके लोग चाखुर (चौकी) फेरते हैं। उसका अनुमोदन स्वीकार करते हैं और छागर तुल्य अज्ञ गुरु शिष्यादि किसान (व्यवहारी) बने हैं।

छेरी बाघ ही ब्याह होत है, मंगल गावै गाई।
वन के रोभ्क ले दायज दीन्हों, गोह लोकन्दे जाई॥

और छेरी तुल्य अज्ञ की बुद्धि का कुदेव विषयादि के साथ (ब्याह) विवाह (सम्बन्ध) होता है। उसीसे गाय तुल्य जड़ बुद्धि वाले मंगल (शुभ) गाते कहते हैं और विवाह में वन के रोभ्क (मृग=नीलगाय) तुल्य वनवासी लोग दहेज दिये गये हैं। वनवास मात्र से देवलोक के भोगों का अधिकारी समझे गये हैं और गोह तुल्य आलसी लोग इस विवाह में लोकनी (लौंड़ी=दासी) बनकर जा रहे हैं। कर्म-धर्मादि के बिना ही कर्मी के संग से स्वर्गेच्छुक हैं।

कागा कापर धोवन लागे, बकुला किरपहीं दाँते।
माँछी मूड़ मूड़ावन लागे, हमहुँ जाब बराते॥

वेष स्नान बक ध्यान से, स्वर्ग मोक्ष कह अज्ञ।
करत विवेक न अध त्यजत, होवत नाहिं कृतज्ञ॥९५॥

काक तुल्य लोग कपड़ा धोला रहें हैं, स्नानादि से मानो शुद्ध बन रहे हैं और बकवृत्ति दाँत किरपते हैं (हँसते कथा करते हैं) और माँखी तुल्य भक्ष्याभक्ष्यादि के अविवेकी माथ मुड़ाने लगे हैं और ये सब निश्चय किये हैं कि किसानादि गृहस्थ जहाँ अनेक कर्म करके पुत्र-पौत्रादि सहित जायँगे, वहाँ हम सब इस बरात के साथ स्नान, कथा, वेषादिमात्र से ही चले जायँगे कर्म ज्ञानादि से हमें क्या लेना है? कबीर साहब कहते हैं कि हे सन्तो! सुनो कि जो कोई इस पद को अर्थाता है (इस पद में वर्णित व्यवहारों को करता है) सोई इस संसार में प्रायः पण्डित ज्ञाता भक्त कहाता है। सो अकथ कथा है। अतः "मिलहिं असन्त मौन हो रहिये" इत्यादि तात्पर्य है॥३२॥

इति कुयोगी आदि प्रकरण ११

अथ द्रोहासक्ति आदि से भक्ति ज्ञान की अप्राप्ति अपूर्णता प्र० १२

शब्द ३३

जो चरखा (हो) जरि जाय, बड़हिया ना मरै।
(मैं) कातों सूत हजार, चरखुला जनि जरै॥
बाबा मोर ब्याह करो, अच्छा वर हित काहु।
जब लगि अच्छा नहिं मिलै, तब लगि आपुहि ब्याहु॥

देहासक्तिहि अज्ञ को, भरमावत दिन रात।
जहाँ जलत तँह शिष्य सुत, पहुँचावत निज जात॥९६॥

कुयोगी उक्त पण्डित आदि कहलाने वाले समझते हैं कि यदि यह देहरूप चरखा जर भी जाय तो बढ़ही (ईश्वर मन) तो मरता नहीं है। अतः देह होती ही है, विदेह नित्य मोक्ष की सम्भावना नहीं है। अतः यह वर्तमान ही देह बनी रहे, यह चरखा नहीं जरे कि जिससे मैं कर्म, जप, तप आदिरूप हजारो सूत कातूँ, ऐसा समझकर वैद्य गुरुरूप पिता के पास लोग जाते हैं और विनय करते हैं कि हे बाबा! किसी अच्छा हित वर (देव) के साथ मेरा ब्याह (सम्बन्ध) करो और मुझे जबतक अच्छा वर की प्राप्ति नहीं हो तबतक आपही मुझे बरो (मेरे को स्वीकार करो)।

प्रथमहि नगर पहुँचते, परिगौ शोक संताप।
एक अचम्भा देखिया, बिटिया ब्याही बाप॥
समधी के घर लम्बधी (आये) आये बहु के भाय।
गोड़े चूल्हा देइ दे, चरखा दियो ढढाय॥

कबीर साहब कहते हैं कि जिस नगर में पहुँचते ही इस जीव को प्रथम शोक संताप प्राप्त हुए हैं, उस देह संसाररूप नगर से यह मोक्ष नहीं चाहता है। यह आश्चर्य है और एक यह भी आश्चर्य देखा है कि यह जीव स्वयं बिटिया (पुत्री) तुल्य बनकर बाप तुल्य जन्मदाता से विवाह किया है (जन्म के हेतु को मोक्ष का हेतु माना है) तथा मोक्ष हेतु सर्वात्मा सद्गुरु से परिचय के बिना, जीवरूप पिता ने दुर्बुद्धिरूप पुत्री के साथ विवाह किया है।

और समधी (सम बुद्धिवाले फिर भी निज बुद्धि के विवाह को चाहनेवाले) शिष्य के घर में गुरुआरूप लम्बधी (बेटावाले) आये और बहु के भाई (अन्य कुबुद्धि लोग आये) सो सब इस जीव के (गोड़) पैररूप मन इन्द्रिय को कठिन काम्य-कर्मादिरूप तप्त चूल्हे में दे देकर चरखा (देह) को ढढाय (पीट दिये)।

देवलोक मरि जाहिगें, एक न मरै बढ़ाय।
या मन रञ्जन कारणे, चरखा दियो दिढ़ाय॥
कहहिं कबीर सुनु सन्तो, चरखहिं लखै जु कोय।
जो यह चरखा लखि परै, आवागमन न होय॥३३॥

और उन्होंने निश्चय करा दिया कि अन्य देव लोकादि सब मर जायँगे, परन्तु एक तेरा बढ़ही नहीं मरेगा, किन्तु तुझे वह देव बढ़ायगा। इस प्रकार उस गुरु ने शिष्य के मनोरञ्जन के लिये चरखा को दृढ़ करा दिया। जिससे जीव पक्का देहाभिमानी हो गया। कबीर साहब कहते हैं कि हे सन्तो ! सुनो जो कोई इस चरखा को चरखा ही समझता है, आत्मा नहीं समझता है और यदि यह चरखा समूल समझ में आ जाता है तो उस विविक्त आत्मज्ञानी का जन्म मरण नहीं होता है॥३३॥

शब्द ३४

बुझहु पण्डित करहु विचारा, पुरुषा है कि नारी॥
ब्राह्मण के घर ब्रह्मणी होती, योगी के घर चेली।
कलमा पढ़ि पढ़ि तुरुकिनि होती, कलि में रही अकेली॥

देह तत्त्व के ज्ञान हित, बुझिय पण्डित ज्ञानि।
मायामय तिहि जानिये, करि विचार ह्वै ध्यानि॥९७॥

उक्त विविक्त आत्मज्ञान के लिये उपदेश है कि, ज्ञानी पण्डितों से पूछो और स्वयं विचार करो या हे पण्डितों ! (शास्त्रज्ञों) आप समझो और विचार करो कि यह देहरूप चरखा संसार पुरुषा (चेतनात्मा) स्वरूप है कि नारी (माया) स्वरूप है और विचार आदि से निश्चय करो कि यह उस नारी स्वरूप ही है कि जो नारी ब्राह्मणों के घर में ब्राह्मणी होती है, योगियों के घर में चेली होती है और कलि में कलमा पढ़कर तुरुकिनी होती है और कलियुग में जो अकेली रह गई है।

अर्थात् घर (देश) कालादि के भेद से अनेक स्वरूप होनेवाली माया ही है, देश कालादि के भेद से भी सत्यात्मा में कभी भेद या विकारादि नहीं होते हैं। माया की कलि में अति प्रधानता हो गई है तो भी आत्मा निर्विकार समरस ही है। यह विचार से समझो।

वर नहिं वरै ब्याह नहिं करई, पुत्र जनामनि हारी।
कारो मूड़ को एक न छाड़ै, अजहुँ आदि कुमारी॥
मइके रहों न जाउँ सासुरे, साईं संग न सोवों।
कहैं कबीर मैं युग युग जीवों, जाति पाति कुल खोवों॥३४॥

क्योंकि यह माया असंग वर को नहीं वरती है (ससंग विकृत नहीं करती है) तो भी उस आत्मा की सत्ता प्रकाशादि से व्यावहारिक जीवादिरूप पुत्रों को उत्पन्न करनेवाली होती है और काले शिर (कृष्णकेश) वाले अज्ञ, तामसी युवा किसी पुरुष को स्वतन्त्र नहीं रहने देती है। अनादि होते भी अभी आदि कुमारी ही है। ऐसी माया को माता मानकर भजने वाले कबीर (कवि) कहते हैं कि मैं मइके (माता के गृह संसार) में रहूँगा, सासुर (ज्ञानी सद्गुरु) के यहाँ नहीं जाऊँगा और असंग पति के साथ नहीं सोऊँगा (मुक्त नहीं होऊँगा) किन्तु मइके में रहकर युग-युग जीऊँगा। इस संसार में जाति-पाति कुलादि के अभिमानों को नष्ट करूँगा। यही सुखप्रद मुक्ति है। सर्वथा विदेह होना तो मर जाना स्वयं नष्ट होना है इत्यादि ॥३४॥

शब्द ३५

साईं के संग सासुर आई।
संग न सूती स्वाद न मानी, गौ यौवन स्वप्ने की नाईं॥

सदाऽसंगपति संगही, आया जीव अजान।
मन इन्द्रिय के वश पड़ा, कहत आन की आन ॥९८॥

जो कोई कहते हैं कि असंग स्वामी के संग नहीं सोऊँगा, सो अज्ञान से ही कहते हैं, क्योंकि उनकी माता (माया) उनकी बुद्धि भी स्वामी के साथ ही संसार रूप सासुर (कामादि असुर युक्त संसार) में आई* है। तहाँ असुरों के प्रभाव

* "द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।" (श्वेता० ४।६)

से संग में नहीं सो सकी (एकात्मता) का निश्चय नहीं कर सकी। अतएव ब्रह्मानन्दरूप स्वाद को भी नहीं मनन कर सकी। अतः इस मानव तनु में स्थिति रूप यौवन (स्वस्थ समर्थावस्था) स्वप्न के समान मिथ्या विषयादि के चिन्तन में ही बीत गया।

जना चार मिलि लगन सोचायो, जना पांच मिलि मण्डप छाई।
सखी सहेलरि मङ्गल गावैं, दुख सुख माथे हरदि चढ़ाई॥

सत्यपति की प्राप्ति के विना मरण से फिर असत्यपति भोगादि की प्राप्ति के लिये चार जना (चार अन्तःकरण) लग्न शोचनेवाले हुए। फिर पांच जना (पृथिवी जल तेज वायु आकाश) मिल कर नवीन देह रूप मण्डप छाये। तहाँ यदि दैवयोग से फिर मानव देह मिली तो वहां भी भोगादि की सम्मति देने वाली इन्द्रियादि रूप जीव बुद्धि की सखी सहेली भोगो से ही मंगल गाती हैं। और दुर्बुद्धि युक्त जीव रूप दुलहिन के शिर पर दुख सुख रूप हरदी चढ़ाती है जीवात्मा में सुख दुख का आरोप करती हैं।

नाना रूप परी मन भाँवरि, गाँठि जोरि भाई पति आई।
अर्घ देइ लै चली सुवासिनि, चौकहिं राँड़ भई संग साँई॥

उक्त सुख दुःखादि से मन के नाना संकल्प विकल्प हर्ष शोकादि रूप हुए, सोई भाँवरी परी। भ्रमण प्राप्त हुआ। फिर अनोन्याऽध्यास कामादि रूप गांठी (ग्रन्थि बन्धन) जोर कर, अपने भ्राता मन देवादि में स्वामीपन का विश्वास किया। तब सुवासिनी (देवभक्त) लोग उस पति के लिये अर्घादि देकर चली। परन्तु असंग पति के साथ रहते भी उस असत् पति के नाश के निश्चय अप्राप्ति से चौके में ही बुद्धि राँड़ हो गई (जीवित अवस्था में पति को नहीं पाई मरनेपर पाने की आशा बनी रह गई)।

भया विवाह चली विनु दुल्लह, बाट जात समधी समुझाई।
कहै कबिर मैं गौने जैहों, तरब कन्त ले तूरब जाई॥३५॥

उक्त रीति से विवाह हुआ परन्तु पति के विना जब शोक युक्त जीव की बुद्धि संसार मार्ग में चली तब उसी बाट मार्ग से जाते हुए समधी (उसकेगुरु) ने शिष्य की बुद्धि को समुझाई कि यह स्वामी यहां नहीं मिलता है। मरने पर परलोक में मिलता है। अतः वे लोग शिष्य से कहते हैं कि मैं भी यहाँ से गमन

करके परलोक में जाऊँगा, तब वहाँ कन्त (स्वामी) के पास में जाकर, कन्त को लेकर (प्राप्त करके) तूरव (शीघ्र) तरब (मुक्त होऊँगा)। इसी प्रकार तेरी भी मुक्ति होगी इत्यादि।

मानव तन निष्फल गया, भया न हरि का ज्ञान।
सुख दुख माथे पर चढ़ा, हरिहि दूर करि मान ॥९९॥

इति देहासक्ति आदि से भक्ति ज्ञान की अप्राप्ति अपूर्णता प्रकरण १२

अथ मनःकामादिप्रबलता प्रकरण १३

शब्द ३६

(भाई रे) गइया एक विरञ्चि दियो है, (गईया) भार अभारो भाई॥
नौ नारी के पानि पियत है, तृषा तयो न बुझाई॥
कोठा बहत्तर औ लौ लायो, बज्र किवार लगाई।
खूंटा गाड़ि डोरि दृढ़ बाध्यो, तैयो तोरि पराई॥

मोह अविद्या काम से, मन वश भै सब जीव।
निकट निरन्तर लखत नहि, निर्गुण निर्मल पीव ॥१००॥
दिया विरञ्चि ने सबहि, मनहि अतृप्त कुगाय।
ताके पोषण माहि सब, रहत भुलाय लुभाय ॥१०१॥
करि विचार जो गहत मन, करत तृप्त अति ताहि।
लखत निजातम तत्त्व को, सो सद्गुरु सब काहि ॥१०२॥

उक्त अज्ञानादि से विरञ्चि (समष्टि मन उपाधि वाले) ईश्वर (हिरण्यगर्भ ने) सब जीवों को पोषने के लिये एक एक व्यष्टि मन रूप गाय दिया है कि जिससे जीव के सब व्यवहार सिद्ध होते हैं। परन्तु हे भाई पूर्ण विवेकादि के बिना वह भार (बोझ) रहित होते भी सब के लिये भार रूप हो गई है। (उसको पोषकर तृप्त करना कठिन हो गया है)।

क्योंकि खुले नव द्वारों की नाड़ियों द्वारा विषय रूप पानी सदा पीती है, तो भी उसकी तृष्णा शान्त नहीं होती है। सब द्वारों का निरोध रूप वज्र किवाड़ा लगाकर बहत्तर भीतर की कोठरी आदि में योगियों ने लौ ध्यान लगाया और ध्येय देव मूर्ति आदि रूप खूंटा गाड़ कर (निश्चय करके) प्रेमादि रूप दृढ़

डोरी से उसको अच्छी तरह से बांधा, तो भी वह गइया उस डोरी को तोड़कर पराय (भाग) गई।

चार वृक्ष छौ शाखा वाके, पत्र अठारह भाई।
एतिक ले गम किहिस गइया, गइया अति हरहाई ॥
ई सातो औरो है सातो, नौ औ चौदह भाई।
एतिक गइया खाय बढ़ायो, गइया तौं न अघाई ॥

वेद रूप चार वृक्ष, उनके अङ्ग व्याकरण, ज्योतिष, निरुक्त, पिङ्गल शिक्षा आदि रूप छौ शाखा, और पुराण रूप अठारह पत्र, हे भाई वह गइया यहाँ तक गम (ज्ञान प्राप्त) किया। वेदादि के अनुसार कर्मादि किया, उनके फलों को भोगा, तो भी अति हरही (चञ्चल) रह गई। और प्रत्यक्ष देह गत सात धातु, सात स्वरादि को और परोक्ष सात समुद्र द्वीपादि नव खण्ड निधि, चौदह विद्या भुवनादि को खायकर इन सबके सम्बन्धी भोगों को भोग कर गइया वृद्धि को प्राप्त किया, तो भी अघाई (तृप्त) नहीं हुई।

खुरता में राती है गइया, खेत सींग है भाई।
अवरण वरण कछू नहिं वाके, खाद्य अखाद्यहुँ खाई ॥
ब्रह्मा बिष्णु खोजि नहिं पाये, शिव सनकादिक भाई।
सिद्ध अनन्त वहि खोजि परे हैं, गइया किनहुं न पाई ॥

खुरता में (खुर २ चलने में) गइया राती (प्रीति वाली है) या ता (उस) गइया में खुर आदि नीचे का भाग, गमन शक्ति राती (लाल रजो गुण) रूप है। और इसके प्रधानांश श्वेत (सात्त्विक) है। अतः केवल सत्त्व गुण के अभाव से इसके लिये अवरण वरण (अग्राह्य ग्राह्य) कुछ नियम नहीं है। योनि देश कालादि भेद से यह गइया खाद्य अखाद्य सब कुछ खाती है। इसके बाहर भाग जाने पर ब्रह्मा विष्णु भी इसको खोज ढूंढ़ कर नहीं पाये कि यह कहाँ कितने समय में जाती है। शिव जी, सब भाई सनकादिक भी नहीं पाये। अनन्त सिद्ध इस मन की गति प्रपञ्च के खोज में पड़े (लगे) हैं। परन्तु कोई मन के प्रपञ्च को खोज कर पार नहीं पाये अतः इसको खोजना निरर्थक है। आत्मान्वेषण करना ही सार्थक है।

कहहिं कबीर सुनहु हो सन्तो, जो यह पद अर्थावै ।
जो यह पद को गाय विचारै, आगे ह्वै निर्वावै (है) ॥

अतः कबीर साहब कहते हैं कि हे सन्तो ! आत्मा के श्रवणादि करो, क्योंकि जो कोई इस आत्मस्वरूप पद (स्थान) और अर्थ के तरफ मन प्रपञ्च को छोड़ कर आता है और इस मेरे उपदेश रूप पद को गाय कर आत्म विचार करता है, मन के प्रपञ्च को आत्माधीन समझता है, सो सत्यात्मदर्शी अग्र गामी गुरु होकर दूसरे को भी निर्वाण पद की प्राप्ति कराता है ॥३६॥

शब्द ३७

कबिरा तेरो घर कन्दला में, या जग फिरत भुलाना ।
गुरु की कही करत नहिं कोई, अमहल महल दिवाना ॥
सकल ब्रह्म महँ हँस कबीरा, कागन चोंच पसारा ।
मन मथ कर्म धरे सब देही, नाद बिन्द बिस्तारा ॥

अन्तर्मुख मन के बिना, नहिं विचार शुभ ज्ञान ।
काम क्रोध व्यापै सदा, मन मतंग नहीं मान ॥१०३॥
ताते गुरु उपदेश ते, निज आतम करु ध्यान ।
जा बिनु दुर्गति जीव की, चौरासी अघ खान ॥१०४॥
सन्त विवेकी रहत हैं, ब्रह्म निष्ठ सब काल ।
काक वृत्ति नर बँधत हैं, मोह काम जंजाल ॥१०५॥

पूर्वोक्त विचार का ही विशेष रूप से वर्णन करते हैं कि हे कबीरा (जीव !) तेरा घर (व्यक्तरूप से स्थिति का स्थान) हृदय रूप कन्दला (कन्दरा गुफा) में है । (आत्माऽस्यजन्तोर्निहितो गुहायाम् । कठ० १।२।२०) इत्यादि शास्त्र के अनुसार हृदयगत बुद्धि में इस जीव का सत्य स्वरूप व्यक्त स्वरूप से निहित (स्थिर) है । उस स्वरूप को जाने बिना तुम इस संसार में भूला फिरता है । और सब सद्गुरु हृदय में ही ब्रह्म निष्ठ होने के लिये कहते हैं । परन्तु कोई अविवेकी कामी, गुरु के कही बात्त को नहीं सुनता है, न उसके अनुसार विचारादि करता है । किन्तु अमहल महल (मिथ्या संसार लोक घर) में सब दिवाना (उन्मत्त आसक्त) हुआ है ।

हे कबीरा ! सकल हँस (विवेकी) लोग तो ब्रह्म (विभु निजस्वरूप) में स्थिर रहते हैं। क्योंकि (ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति। छा० २।२३।१) इत्यादि उपदेश के अनुसार ब्रह्म में सम्यक् स्थिति से अमृतत्व की प्राप्ति को विवेकी समझते हैं। परन्तु काक तुल्य अविवेकी विषयों के लिये ही मन की इच्छा कामादि रूप चोंच को पसारते हैं। और वेही देही (देहाभिमानी) सब मन मथ (काम) के कर्म (मैथुनों) का धारण करते हैं कि जिससे नाद विन्दु (शब्द वीर्य) के कार्यों का विस्तार होता है (नाम रूप की वृद्धि होती है) अमृतत्व नहीं मिलता है।

सकल कबीरा बोलै बानी, पानी में घर छाया।
अनन्त लूट होत घट भीतर, घट का मर्म न पाया ॥
कामिनि रूपी सकल कबीरा, मृगा चरन्दे होई।
बड़ बड़ ज्ञानी मुनिवर थाके, पकरि सके नहिं कोई ॥

देहाभिमानी मैथुनासक्त सब जीव (मनुष्य) भी सत्य ब्रह्मात्मादि की बानी दूसरे के लिये बोलते हैं, परन्तु स्वयं विषय रूप पानी युक्त संसार में उन्होंने घर छाया (बनाया) है। अतः जो घट के भीतर अनन्त ब्रह्मानन्द शान्ति सुख की लूट होती है। कामादि उसको लूटते हैं। उस घट के मर्म को उन लोगों ने नहीं पाया (नहीं समझा)।

अतः कामिनी (काम वश प्रेम करने वाली स्त्री) रूप जो सब मृग शान्ति ज्ञान ध्यानादि खेती को (चरन्दे) चरने वाले होते हैं। तथा जो इन्द्रिय रूप मृग सब कामिनी आदि को चरने वाले होते हैं। भोग से उन्हें वश में करने के लिये यत्न करते करते बड़ २ ज्ञानी मुनि लोग थक गये। परन्तु इन मृगों को कोई पकड़ नहीं सके। अत एव शास्त्र कहता है कि (न जातुकामः कामानामुपभोगेन शाम्यति) कामियों का काम कभी उपभोग से शान्त नहीं होता है।

ब्रह्मा बरुण कुबेर पुरन्दर, पीपा औ प्रहलादा।
हिरणाकश नख उदर विदारे, तिनहुं को काल न राखा
गोरख ऐसो दत्त दिगम्बर, नामदेव जय दासा।
इनकी खबर कहत नहिं कोई, कहाँ कियो हैं बासा ॥

यद्यपि लोग स्थिर नामादि चाहते हैं, परन्तु ब्रह्मा वरुण कुबेर इन्द्र, पीपा, और प्रहलाद को तथा हिरण्यकश्यप के उदर को जिस नृसिंह भगवान् ने नख से फारा, उन सबको काल स्थिर नहीं राखा। गोरख ऐसे योगी दत्तात्रेय ऐसे दिगम्बर (विरक्त) नामदेव, जयदेव ऐसे दास (भक्त) इनकी खबर भी कोई नहीं कहता कि, कहाँ वास किये हैं। अर्थात सब नाम रूप विनश्वर हैं इनकी इच्छा नहीं करके ब्रह्मनिष्ठ होना चाहिये। क्योंकि—

चौपड़ खेल होत घट भीतर, जन्म की पासा ढारा।
दम दम की कोउ खबर न जानै, करि न सकै निरुवारा॥

नामादि की इच्छा के रहने पर मन माया कृत चौपड़ खेल घट के भीतर सदा होता है, जिसमें जन्म का हेतु रूप पासा डारा जाता है। अज्ञ जीव जितने वार इस खेल में हारते हैं, उतने वार तथा उससे बहुत अधिक वार जन्म लेना होता है। और वह पासा दम दम (श्वांस श्वांस) में डारा जाता है। जिसकी कोई अज्ञ खबर नहीं जानता है। अतः उसका निरुआर (निवारण) भी नहीं कर सकता है।

चार दिशा महि मण्डल रच्यो है, रूम साम बिच दिल्ली।
ता ऊपर कछु अजब तमासा, मारे हैं यम किल्ली॥

उक्त चौपर के ही लिये माया ने चार दिशा युक्त भूमण्डल और देह को रचा है, कि जिसमें रूम देश पश्चिम है, देह में बाल युक्त शिर पृष्ठ पश्चिम है शाम (आसाम) पूर्व है देह में इसकी समाप्ति रूप पैर पूर्व (आसाम) है। बीच में दिल्ली राजधानी है, देह में दिल (मन) का स्थान हृदय है। या लिंग के नीचे का कन्द देह में दिल्ली है। उनके ऊपर कुछ अजब तमासा है कि मनमाया ने यमकिल्ली मारा (ठोका) है। अर्थात् राजधानी कायम किया है, कि जिसके लिये मृत्यु होती है। और शरीर में लिङ्ग स्तन दुष्ट भावादि रूप यमकिल्ली दिल्ली के ऊपर लगाया है कि जिसमें बँधकर मनुष्यादि नरकादि दुःख भोगते हैं।

सकल अवतार जाहि महि मण्डल, अनन्त खड़ा कर जोरे।
अदबुद अगम अगाह रच्यो है, ई सब शोभा तेरे॥

तो भी सब अवतार और जिन्हें भूमण्डल का राज्य मिला है, वे सब अनन्त लोग फिर भी भूमण्डल और देहमण्डल के लिये ही कर जोड़े खड़े हैं। ईश्वर की

भक्ति तप आदि कर रहे हैं। क्योंकि यह बहुत आश्चर्य और अगम अगाध स्वरूप मन माया से रचा गया है। अतः इसको सब चाहते हैं। परन्तु विचार करने पर ये सब तेरी शोभा (विभूति) सिद्ध होती है।

सकल कबीरा बोलै वीरा, अजहुँ होहु हुसियारा।
कहहिं कबिर गुरु सिकली दर्पण, हरदम करहु पुकारा ॥३७॥

तेरे सत्य स्वरूप की माया मात्र सब संसार है, इस प्रकार सब वीर (जितेन्द्रिय ज्ञानी) लोग कहते हैं। तुम अब भी सावधान होवो और गुरु रूप सिकली (चितशोधक दर्पणकार) को हरदम पुकार कर (भजन करके) चित्त को शुद्ध करो चित्त की शुद्धि से ज्ञान द्वारा सब इच्छा की निवृत्ति होती है, यह सद्गुरु कबीर साहब का कथन है।

"जरत जरत ते बाँचेहु, काहु करहु गोहार।
विष विषया कहँ खायेहु, रात दिवस मिलि झार ॥र०सा०१३" ॥३७॥

इति मनः कामादि प्रबलताप्रकरण १३

अथ आत्मविस्मृतिपरिणाम प्रकरण १४

शब्द ३८

कबिरा तेरो बन कन्दला में, मानु अहेरा खेलै।
बपु बारी आनन्द मीरगा, रूचि रूचि शर मेलै॥

कामी जन को तृप्ति नहिं, देव ब्रह्म पद पाय।
ताते गुरु से श्रवण करि, नाशिय काम बलाय ॥१०६॥
कामादिक अति बधिक खल, मारत सुख मृग झार।
होवत जो हुसियार सो, उबरत मारत मार ॥१०७॥

हे कबीरा (जीव) तेरे बन (देहादि संसार) और हृदय रूप कन्दरा (गुफा) में तेरी सावधानी के विना तेरा ही कामादियुक्त मानु (मन) अहेर खेलता है तेरा नाश करता है)। क्योंकि बपु रूप वारी (बाग) में जो आनन्द स्वरूप मृग रहता है उस पर रूचि रूचि (सम्भाल सम्भाल) कर कामादि शोकादि रूप बाणों को डारता है, अर्थात् तुच्छ आनन्दादि की इच्छा आदि से सत्यानन्द को ही नष्ट (तिरोहित) करता है। अथवा तेरे बन कन्दला में ऋद्धि सिद्धि के

कामी योगी मानु (मानो) अहेर खेलते हैं और शरीर रूप बाग सम्बन्धी आनन्द मृग के लिये उसकी रुचि (इच्छा) कर कर के ध्यान शर डारते हैं।

चेतत रावल पावन खेड़ा, सहजे मूलहि बाँधे।
ध्यान धनुष औ ज्ञान बाण करि, योगेश्वर शर साधै॥

हे रावल (देहादि के स्वामी) जीव इस पावन खेड़ा (ग्राम) रूप शरीर में चेतो (अब भी सावधान होवो) क्योंकि जो चेतता है, सो सहज समाधि द्वारा अविद्या कामादि रूप जन्मादि संसार के मूल को ही बाँधता है (वशकरता है) मूलबन्धादि योग के साधनों को प्राप्त करता है। और अविद्या आदि को सर्वथा नष्ट करने के लिये ध्यान के धनुप और परोक्ष ज्ञान के बाण को सिद्ध करके अपरोक्षात्मानुभव रूप योगेश्वर शर को सिद्ध करता है। अतः

"प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्॥" (मुण्डक० २।२।४)

प्रणव रूप नाम द्वारा शब्दानुविद्ध समाधि स्वरूप धनुप है, ज्ञान स्वरूप निजात्माकार मनोवृत्ति शर है, तहाँ सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म ही उस शर का लक्ष्य कहा जाता है। सो अप्रमत्त (सावधान) से बेधन (प्राप्ति) के योग्य होता है। तहाँ शर जैसे लक्ष्य में मग्न (प्रविष्ट) होता है, तैसे ब्रह्मध्यानी ब्रह्ममय तत्स्वरूप हो जाता है, यही कर्तव्य है।

षट चक्रहि बेधि कमल बेध्यो, जाय उज्यारी कीन्हा।
काम क्रोध औ लोभ मोहहीं, हाँकी सावज दीन्हा॥
गगन मध्ये रोकिन्ह द्वारा, जहाँ दिवस नहिं राती।
दास कबीरा जाय पहुंचे, बिछुरे संग संघाती॥३८॥

यद्यपि हठी आदि योगी षटचक्र और आठ कमलों को भिन्न भिन्न शरो से बेधन करते हैं, तथापि सहज समाधि वालों ने उक्त योगेश्वर शर से ही सब चक्र और कमलों को बेधकर (आत्मानुभव से अनात्मा को मिथ्या समझकर) ऊर्ध्व भूमिका में जाकर सत्त्वापत्ति से असंसक्ति आदि ज्ञान की अवस्था में पहुंचकर उन्हों ने उजियारी (अखण्ड ज्योतिका प्रकाश अनुभव) किया।

और काम क्रोध लोभ मोहादि रूप आनन्दादि के बाधक सावजों को हृदय से हाँक (भगा) दिया। फिर दशम द्वार के निकट या आत्म स्वरूप हृदय गत गगन

में स्थिर हो कर, उनकामादिकों के आने के द्वार संकल्प विकल्पादि को रोक दिया। इस प्रकार जहाँ दिन रात का या किसी द्वन्द्व का सम्बन्ध नहीं होता है। वहाँ वे दास जीव सब जा पहुंचे और सब संग के संघाती मन इन्द्रिय प्राणादि वियुक्त हो गये ॥ ३८ ॥

शब्द ३९

अपन पौ आपुहीं बिसरेवो।
जैसे श्वान काँच मन्दर मँह, भरमत भूकिं मरेवो ॥

अपने मोह अज्ञान से, बँधता कपिवत जीव।
करि विवेक मोहादि तजि, होत विमल सत शीव ॥१०८॥

मनो माया रचित चौपड़ (जूआ) में सावधानी के बिना यह जीव अपने पौ (विजय स्थान) स्वरूप अपने आत्मा को आप ही इस प्रकार से बिसरा (भूला) है कि जैसे कुत्ता काँच के मन्दिर में अपने को भूलकर (अपने प्रतिबिम्ब को अपना स्वरूप नहीं जानकर) भिन्न बुद्धि से भ्रान्त होकर मरता है और भूक भूक कर मरता है, तैसे ही प्रतिबिम्ब तुल्य में शत्रु मित्रादि बुद्धि से मनुष्य जन्म मरणादि पाता है।

ज्यों केहरि वपु निरखि कूप जल, प्रतिमा देखि परेवो।
वैसे ही गज स्फटिक शिलामें, दशनन आनि अरेवो ॥

और जैसे सिंह कूप जलमें अपनी देह की प्रतिमा को देखकर उस में गिर पड़ता है और मरता है, वैसे ही हाथी श्वेत पहाड़ में अपने प्रतिबिम्ब को देख कर दातों से लड़ता भिड़ता है। इसी प्रकार लोकादि कूप में संसारी गिरते और लड़ते हैं।

मरकट मूठि स्वाद नहिं बिहुरे, घर घर रटत फिरेवो।
कहहिं कबिर ललनी के सुगना, तुहि कवनें पकरेवो ॥३९॥

बानर जैसे स्वाद वश होकर ओछे मुख वाले वर्तन में अन्न की मुट्ठी को नहीं खोलता है। अतः कलन्दर के वश में होकर घर घर में रटता भटकता फिरता है। वैसे सब जीव बिषय स्वाद वश स्वर्ग नरकादि में भटकता है। कबीर साहब कहते हैं कि हे ललनी के सुगना तुमको कौन पकड़ा है। तुम स्वयं भ्रम में पड़े हो।

अर्थात् सुगना के समान स्वयं जीव गर्भ नरकादि स्थान में जाकर अज्ञान से बँधता है। अतः अज्ञान को नष्ट करना चाहिये ॥३९॥

इति आत्मविस्मृतिपरिणाम प्रकरण १४

अथ सम्प्रदायाशक्ति और त्यागादि प्रकरण १५

शब्द ४०

सन्तो मते मातु जन रंगी।
पियत पियाला प्रेम सुधारस, मतवाले सतसंगी।

निज आतम को भूल कर, करि अनात्म से प्रीति।
माँतत है संसार में, रागी कहत न नीति ॥१०९॥
इन्द्रिय रस कामादि तजि, सगुण हुँ में मन लाय।
पावै निर्गुण ब्रह्म को, तृष्णा मोह जलाय ॥११०॥

यद्यपि अपना पौ स्वरूप आत्मा (यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः। केन० २।३) जिसको आत्मा अमत (अविज्ञात) मन बुद्धि का अविषय है, उसीको मत (विज्ञात) है और जिसको विज्ञात (बुद्धि का विषय) आत्मा है, सो आत्मा को नहीं जानता है। तथापि (असत्ये वर्त्मनि स्थित्वा ततः सत्यं समीहते) प्रथम असत्य कर्मोपासना मार्ग में स्थिर होकर के ही कोई सत्य की प्राप्ति के लिये चेष्टा करता है। अतः हे सन्तो! रङ्गी (त्रिगुण से रञ्जित चितवाले) प्रेमी अनुरागी भक्त जन मत (मति के विषय) सगुण वस्तु सिद्धान्त में मते रहते हैं। और सत्संगी लोग अमत विषयक प्रेम सुधारस को पीते हैं और उससे मतवाले (संसार को भूले) रहते हैं।

अरधे उरधे भाठी रोपिन, लीन्ह कषा रस गारी।
मुन्धो मदन काटि कर्म कश्मल, संतत चुवत अगारी ॥
गोरख दत्त वसिष्ठ व्यास कपि, नारद शुकमुनि जोरी।
बैठे सभा शम्भु सनकादिक, तहँ फिरु अधर कटोरी ॥

और उस प्रेम रस को चुलाने के लिये नीचे ऊपर के चक्र कमलादि को तथा लोक परलोक को भट्ठी रोपिन (निश्चय किये) हैं। और कषाय रस को गारकर

लिये (प्राप्त किये) हैं। और मदन (काम) के द्वार संकल्पादि को मुन्दा (रोका) है। तथा कश्मल (पाप) कर्म को काटा है। अतः उनके हृदय रूप आगार (घर) में यह प्रेम रस सदा चुता है। गोरख जी, दत्तात्रेय जी, वसिष्ठ जी, व्यास जी, हनुमान जी, देवर्षि नारद, शुकदेव जी, मुनि जोरी (नर नारायण जी) शिव जी तथा सनकादिक महात्मा लोग जिस सभा में बैठते हैं, तहाँ भी उस रस की कटोरी सबके अधर (ओष्ठ) पर फिरती है (इसकी चर्चा होती है)।

अम्बरीष बलि याज्ञ जनक जड़, शेष सहस मुख पाना।
कहँ ले वरणौ आदि अन्त लो, अमहल महल दिवाना॥
ध्रुव प्रहलाद विभीषण माते, माँती शिव की नारी।
निर्गुण ब्रह्म मातु वृन्दावन, अजहूँ लागु खुमारी॥

राजा अम्बरीष भक्त, याज्ञवल्क्यमुनि, ज्ञानी जनक, जड़भरत, इन सबों ने भी मत रस का पान किया। शेष जी इस रस को हजार मुख से पान किये। आदि से अन्त तक जो इस रस को पीने वाले हुए हैं या होंगे। उनको कहाँ तक वर्णन किया जाय। सबके सब अमहल-महल (मत सगुण ब्रह्म और सगुण के लोकादि) में प्रेम से मस्त हुए (साम्प्रदायिक दृष्टि के अभ्युपगमवाद से यहाँ का वर्णन है) ध्रुव-प्रह्लाद और विभीषण भी उसी रस से माते और शिवजी की नारी (पार्वती) माती और स्वयं स्वरूप से निर्गुण ब्रह्म स्वरूप कृष्णचन्द्र भी वृन्दावनरूप मत के प्रेम में मस्त हुए कि जिसकी खुमारी अब भी लगी है। अर्थात् "वृन्दावनं परित्यज्य पादमेकं न गच्छति" इस पुराण वचन के अनुसार प्रेमवश होने के कारण वृन्दावन को छोड़कर अब भी कहीं एक पैर नहीं उठाते हैं।

सुर नर मुनि यति पीर औलिया, जिनहिं पिया तिन जाना।
कहहिं कबीर गूँगे का शकर, क्योंकर कहैं दिवाना॥४०॥

देवादि जिन लोगों ने इस रस का पान किया, वे ही इसके स्वाद आनन्द को जान सके और आनन्द मग्न मूक हो गये। क्योंकि दिवाना (मस्त) वे लोग गूँगे के शकर तुल्य उस रस को क्योंकर (कैसे) कहें इस प्रकार कबीर साहब कहते हैं। भाव है कि निर्विशेष निर्गुण सर्वात्मा ब्रह्म ही यद्यपि वचनागोचर है। तथापि मस्ती से सगुण तटस्थ भी वचनाऽगोचर प्रतीत होता है॥४०॥

शब्द ४१

भाई रे नयन रसिक जो जागै ।
पारब्रह्म अविगति अविनाशी, कैसहु के मन लागै ॥
अमली लोग खुमारी तृष्णा, कतहुँ सन्तोष न पावै ।
काम क्रोध दोनों मतवाले, माया भरि भरि आवै ॥

इन्द्रिय रस को त्यागकर, मोह तजै मति पाय ।
पावै निर्गुण ब्रह्म को, तृष्णा काम जलाय ॥१११॥

रे भाई ! नयन रसिक (ऐन्द्रिक सुख के प्रेमी) भी यदि जागे (मोह अविवेक को त्यागे) तो अविगति (अमत=अग्राह्य) अविनाशी पारब्रह्म (निर्गुण परब्रह्म) में किसी प्रकार उसका मन भी लग जाय । परन्तु अमली (नयन रसिक व्यसनी) लोगों में तृष्णारूप खुमारी (नशा की गर्मी मस्ती) लगी रहती है, अतः वे लोग बाह्य दर्शन स्पर्शनादि किसी विषय में कहीं भी सन्तोष नहीं पाते हैं। अतः काम, क्रोध इन दोनों से मतवाले हुए रहते हैं और माया (ममता कपटादि) रूप भूत इन पर भर-भर (बार-बार अत्यन्त) आता है। इनमें आवेश करता है ।

ब्रह्म कलाल चढ़ाइन भाठी, लै इन्द्री रस चावै ।
संगहि पोंचक ज्ञान पुकारै, चतुरा ह्वै सो पावै ॥

माया के वशवर्ती ब्रह्मस्वरूप जीवात्मारूप कलवार ने ऐन्द्रियक विषय प्रेमरस की भट्ठी चढ़ाई है और इन्द्रियों द्वारा विषयों को लेकर विषयानन्द को चाहता है । अतः काम, तृष्णा आदि पोंचक (नीचता) संग ही में हैं और केवल मुख से ज्ञान की बात पुकार कर कहता है तो वह परब्रह्म को नहीं पा सकता है । किन्तु कामादि नीचों के संग से रहित जो चतुर (विवेकी) होता है । सोई निर्गुण परब्रह्म को प्राप्त करता है । अतः उपदेश है कि—

"भजिये निर्गुण राम को, तजिये विषय विकार" इत्यादि ।

संकट शोच पोंच यह कलि मँह, बहुतक व्याधि शरीरा ।
जहाँ धीर गम्भीर अति निश्चल, तँह उठि मिलहु कबीरा ॥

और उपदेश है कि चतुर भी संसार को दुःखरूप जानकर इससे विरक्त उपरत होकर सत्संगादि द्वारा ही दृढ़ ब्रह्मज्ञान को प्राप्त करता है और इस कलि

(कलहमय संसार) तथा इस कलियुग में बहुत प्रकार के संकट (आपत्ति दुःख) है और उनके कारण मन में शोक तथा पोंच (नीच) कामादिक हैं और स्थूल शरीर में बहुत प्रकार के रोग होते हैं, अतः इनसे रहित होने के लिये जहाँ धीर (ज्ञानी सात्त्विक धैर्यवाले) गम्भीर (उद्वेग रहित विज्ञ ब्रह्मानुभवी) अत्यन्त निश्चल (शान्त कूटस्थात्मानुभवी) सन्त सद्गुरु हों, हे कबीरा ! वहाँ उठकर जाओ और उनसे श्रद्धाभक्तिपूर्वक मिलो, तो तुम कष्टादि रहित परब्रह्म को प्राप्त करके मुक्त धीर गम्भीरादि स्वरूप होगे ॥४१॥

शब्द ४२

कोइ राम रसिक रस पीवहुगे, पीवहुगे सुख जीवहुगे ॥
फल अलंकृत बीज न बोकला, सुख पक्षी रस खाई ।
चुवै न बुन्द अंग नहिं भीजै, दास भँवर (सब) संग लाई ॥

विषय रसिकता त्यागि के, राम रसिक जो होय ।
सो पावै सुखशान्ति को, लहै परमपद सोय ॥११२॥

फिर भी कहते हैं कि जो कोई उक्त धीर गम्भीर महात्मा से मिलकर, राम रसिक होकर राम रस (ब्रह्मानन्द) को पीवोगे (समझोगे) तो पीने मात्र से सुख स्वरूप से जीवोगे (जीवन मुक्त होवोगे) और अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष, रूप चार प्रकार के फलों में यह मोक्ष रूप फल ही अलंकृत (पूर्ण तृप्ति कारक विभूपित) है। और इसमें बीज बोकला तुल्य (असार) कुछ नहीं रहता है। अविद्या रूप बीज तत्कृत आवरण रूप बोकला का अभाव हो जाता है। ज्ञान विराग-रूप पक्ष वाला पक्षी इसमें मोक्ष रूप सुख फल को खाता (भोगता) है। इस फल में से एक बुन्द भी अन्यत्र नही चूता है, सब आनन्द निज स्वरूप ही भासता है। अतः इससे अपने शरीर का भी कोई अंग (अवयव) नहीं भिजता है, सर्वाङ्ग सङ्ग से रहित यह मोक्ष सुख है। और क्षयादि के भय से तथा सब दोषों से रहित यह फल है। अतः सद्गुरु रूप पक्षी सब दास (भक्त) स्वरूप भँवरों को साथ में लेकर इस फल को खाते हैं।

निगम रसाल चार फल लागा, ता महँ तीन समाई।
एक दूरी चाहै सब कोई, यतन यतन काहू पाई ॥

गये वसंत गृषम ऋतु आई, बहुरि न तरु तर आवै ।
कहहिं कबिर स्वामी सुख सागर, राम मगन ह्वै पावै ॥४२॥

निगम (वेद) रूप रसाल (आम्रवृक्ष) में अर्थादि चारो फल लगे (निर्णीत वर्णित) है। उनमें तीन फल समाई (मायिकता युक्त विनश्वर) हैं और एक मोक्ष फल इन तीनों से दूर (पृथक्) है। और उसको सब कोई चाहते हैं (सब दुःख रहित नित्य सुख सब चाहते हैं) परन्तु सब पाते नहीं हैं, बहुत यत्न करते करते कोई विरले पाते हैं और जो कोई इस फल को पाते हैं उनके लिये संसार वन से वसन्त (शोभा उत्सव) चला गया और इसमें ग्रीपम ऋतु आ गया। अतः वे लोग फिर देह रूप वृक्ष तर नहीं आते हैं। अर्थात् ज्ञानाग्नि से दग्ध संसार की वासना आदि से रहित होने के कारण पुनरावृत्ति रहित विदेह मुक्त होते हैं। कबीर साहब कहते हैं कि जो पूर्व रीति से राम मगन (राम रसिक) होते हैं। सो स्वामी (समर्थ प्रभु ज्ञानी) होकर सुख सागर निज स्वरूप राम को पाते हैं ॥४२॥

इति सम्प्रदायासक्ति और त्यागादि प्रकरण १५

अथ मोह त्याग और ज्ञानाधिकारी प्रकरण १६

शब्द ४३

सन्तो ! जागत नीन्द न कीजै ।
काल न खाय कल्प नहिं व्यापै, देह जरा नहिं छीजै ॥

जिन यत्नों से कोई मोक्ष फल पाता है, उसका उपदेश देते हैं कि हे सन्तों! जागो (आत्मानात्मादि का विवेक करो) और मोह ममता प्रमाद रूप नीन्द नहीं करो, ऐसा ही करने से तुझे काल नहीं खा सकता है, न कल्प (प्रलय) व्यापेगा। क्योंकि देही को काल खाता है और कल्प व्यापता है। विवेकादि से युक्त मोहादि से रहित होने पर, तुझे देह जरा अवस्था आदि नहीं होगें, न तुम कभी छीजोगे (नष्ट होगे)। क्योंकि देह के ही नाश से तेरा नाश कहा जाता है, तुम अविनाशी अचल स्वरूप हो।

उलटी गंग समुद्रहिं शोखै, शशि औ सूरहिं ग्रासै ।
नव ग्रह मारि रोगिया बैठे, जल महँ बिम्ब प्रकाशै ॥

जो रोगी (संसारी) जीव भी मोह नीन्द को त्याग कर मनोवृत्ति रूप गंगा को संसारिक विषयादि से उलट कर संसार समुद्र को सुखाता है, रागद्वेषादि को नष्ट करता है। तथा सहज धारणा से सुष्मणा को स्थिर करके चन्द्र सूर्य नाड़ी को ग्रासता (लीन करता) है। तथा चन्द्र सूर्यादि लोकों को मिथ्या समझ कर वासनाओं की निवृत्ति द्वारा उत्तर दक्षिण मार्ग को त्यागता है। उनके लिये कर्मादि नहीं करता है। सो निष्काम विवेकी पाँच ज्ञानेन्द्रिय और चार अन्तःकरण रूप नवग्रह को मार (वश) करके तथा सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, राहु, केतु रूप नव ग्रहों को मारकर (मिथ्या समझकर) जल तुल्य शुद्ध हृदय में प्रतिबिम्ब समर्पक चिदानन्द का प्रकाश (अनुभव) करता है और उसी आनन्द स्वरूप में बैठता (ब्रह्म निष्ठ होता) है (उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्नि बोधत। कठ० १।३।१४) इत्यादि में यह उपदेश है।

बिनु चरणन को दहुं दिशि धावै, बिनु लोचन जग सूझै।
शशा उलटि सिंह को ग्रासै, ई अचरज को बुझै॥

फिर विद्वु निजात्मा के अनुभव होने पर (आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति सर्वतः। कठ० १।२।२१) बैठा हुआ दूर जाता है, सोया हुआ सर्वत्र प्राप्त होता है)। इत्यादि शास्त्र के अनुसार, चरणों के बिना दशो दिशाओं में दौड़ता है (सर्वत्र आत्म सत्ता समझता है) और चिद्रूप से नेत्र के बिना देखता है। सर्वद्रष्टा साक्षीस्वरूप अपने को समझता है। और उसके मनोवृत्ति रूप शशा संसार से उलटकर निजात्माकार होकर अविद्या काम अहंकारादि रूप सिंह को ग्रासता (निगलता) है। इस आश्चर्य को अविवेकी कौन समझ सकता है।

औंधे घड़ा नहीं जल बुडै, सुधे सो जल भरिया।
जिहि कारण नल भिन्न भिन्न करु, गुरु परसादे तरिया॥

क्योंकि जैसे औंधे घड़े में जल नहीं भरता है किन्तु सीधा होने से जल भरता है तब जलाशय में घड़ा डूबता है औंधे रहते नहीं डूबता है। और जल भरने से डूबने पर उसके बाहर भीतर पानी पूर्ण हो जाता है। वैसे ही विषयासक्त कपट कुतर्कादि युक्त अविवेकी के हृदय में ज्ञानामृत नहीं समाता है। किन्तु शुद्ध हृदय वाले विवेकी में ज्ञानामृत समाता है, तब ब्रह्मात्मा में मग्न होने पर बाहर भीतर एक अखण्ड आनन्द ही रहता है। फिर जिन अज्ञान अहँकारादि

रूप भेद के कारणों से मनुष्य भिन्न भिन्न करता (कहता मानता) है, उन अज्ञानादिकों को गुरु की प्रसन्नता कृपा से मनुष्य तर जाता है।

पैठि गुफा महँ सब जग देखै, बाहर कछु नहिं सूझै।
उलटा बाण पारथिहि लागै, शूर होय सो बूझै॥

अज्ञानादि दोषों के तरने पर यह आत्मज्ञानी अपने हृदय रूप गुफा में पैठकर सब संसार को देखता है। तो उसके अपने स्वरूप से बाहर (भिन्न) कुछ नहीं सूझता है। सबकी सत्ता आत्म स्वरूप ही प्रतीत होती है। उस समय ऐसी दशा होती है कि जैसे उलटा हुआ बाण पारथी (धनुषधारी वीर) को ही लगता है, तैसे संसार से उलटी हुई सब वृत्ति आत्मा में ही लगती है। और सब जगत को आत्ममय देखती है। परन्तु इस तत्त्व बात को सोई बूझता समझता है कि जो मन इन्द्रिय कामादि शत्रुओं पर विजय पानेवाला शूर होता है।

गायन कहै कबहुं नहिं गावै, अनबोला नित गावै।
नटवत बाजा पेखनि पेखै, अनहद हेत बढ़ावै॥

उक्त शूरता कामादि के विजय के बिना जो अपने को गायन (गायक उपदेशक गुरु) कहता है, सो कभी सत्य को नहीं गाता है। और उक्त विजयी अनबोल (मौन) रहते भी अपने शारीरिक व्यवहारों के द्वारा सदा सत्य का ही गान (उपदेश) करता है और जैसे नट अपने बाजा और मिथ्या पेखन (खेल तमासे) के तत्त्व को जानता है। तैसे उक्त शूर ज्ञानी नाम रूपात्मक मायिक खेल को मिथ्या जानता है। इसमें चकित आसक्त नहीं होता है और अनहद (निःसीम विभु) स्वरूप में हेत (प्रेम) बढ़ाता है। क्योंकि (यदल्पं तन्मर्त्यम् यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति। छा० ७।२४।२३) एक देशी सब विनश्वर हैं। जो भूमा (विभु) है वही सुख स्वरूप है अल्प में सुख नहीं है, यह सिद्धान्त है।

कथनी बन्दनि निज कै जोहै, इस सब अकथ कहानी।
धरती उलटि अकाशहिं बेधै, ई पुरुषन की बानी॥

फिर वह आत्मप्रेमी सब सत्य कथनी (कथा) और बन्दनी (स्तुति) को निज अदृश्य आत्मविषयक ही जोहता (देखता समझता) है और प्रत्यक्ष ई

(इस) दृश्य वस्तु को अकथ (अनिर्वचनीय) माया की कहानी (कल्पित-कथा) रूप वाचाऽऽरम्भणमात्र जानता है।

और पृथिवी आदि भूत-भौतिक पदार्थों को उत्पत्ति क्रम से उलटे क्रम द्वारा लयचिन्तन करके चिदाकाश में वेधता है (लय करता है) क्योंकि यही सत्पुरुषों का बान (स्वभाव) है या ऐसी ज्ञानी पुरुषों की बानी (बचन) उपदेश है। अर्थात्— "सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति।" (कठ० १।२।१५) इत्यादि श्रुति के अनुसार सब वेद जिसको कहते हैं। सोई आत्मा है और "अन्नेन सोम्य! शुङ्गेनापो मूलमन्विच्छ।" (छा० ६।३।१) इत्यादि के अनुसार तत् तत् कार्यों के मूल को विचारता हुआ परम मूल मात्र को ज्ञानी सत्य जानता है।

बिना पियाले अमृत अँचवै, नदी नीर भरि राखै।
कहहिं कबिर सो युगयुग जीवै, राम सुधा रस चाखै ॥४३॥

फिर वह ज्ञानी बिना प्याले (आधार) के अमृत को पीता है। निराधार ब्रह्मानन्द का अनुभव करता है और जिज्ञासुओं के लिये हृदय नदी में ज्ञान नीर भरकर रखता है और संसारी के लिये संसार नदी में विषयादि नीर को भरकर रख देता है। उसका ग्रहण नहीं करता है। कबीर साहब कहते हैं, जो कोई एकबार भी निराधार राम सुधारस को चाखता (अनुभव करता) है। सो युग-युग जीता है (जन्ममरणादि से रहित हो जाता है)।

मोह नीन्द से नरक में, पड़त सहत सब ताप।
ताते गुरु उपदेश से, मोह नीन्द तजु पाप ॥११३॥
जग से मन को फेरिये, लाइये आतम माँहि।
विभु आतम लखि हृदय में, निराधार फल पाँहि ॥११४॥
राम ज्ञान भौ जाहि, रामही सो भौ ज्ञानी।
विभु अज अमर अनूप, अभय अमरित सुखखानी ॥
आवागमन विहीन, द्वन्द्व से रहित अखण्डा।
साक्षी अकल अनीह, भेद भ्रम रहित अखण्डा ॥
पावन परम उदार, स्वतन्त्र सकल आधारा।
चिदानन्द सन्दोह, सकल अघ दुख से पारा ॥
हनूमान यों जानि, करिय सो यतन सदाही।
जानिय राम अनन्त, तरिय भवसिन्धु अथाही ॥११५॥४३॥

शब्द ४४

(भैं) कासे कहुं को सुने को पतिआई, फुलवक छुवत भँवर मरि जाई॥
गगन मण्डल महँ फुल एक फूला, तर भौं डार उपर भौ मूला।
जोतिय न बोइय सिंचिय न सोई, डार पात बिनु फुल एक होई॥

भोगासक्तिक त्याग बिनु, कहन सुनन सब झूठ।
मिटै न मलिन कुवासना, छुटै न वानर मूठ ॥११६॥

विषय मोहादि के त्याग और राम सुधारस पान के लिये किससे कहा जाय और कहने पर भी कौन सुनता है तथा सुनने पर भी कौन इस कथा में विश्वास प्रतीति प्रीति करता है। क्योंकि यह अज्ञ मनुष्यादि जीवरूप भँवरा जिस नाम रूपात्मक प्रेय पुष्पों में आसक्त है, उस विषयादिरूप फूलों के छूने (निषेध करने) से ही वह भँवरा मरता है। जिन देह स्त्री-पुत्र धनादि में आसक्त रहता है। उन्हें मिथ्या मलिन अनात्मादि कहने ही से मूढ़ जीव दुःखी होता है। जिस फूल (संसार) में भँवरा आसक्त है, सो एक संसाररूप कोमल फूल गगनमण्डल (चिदाकाश) में फूला (विकसित) हुआ है और "ऊर्ध्वमूलोऽवाक् शाखः।" (कठ० २।६।१) इत्यादि के अनुसार ऊपर (परम सूक्ष्म ईश्वर) मूल है और नीचे कार्यरूप डार हुए हैं और क्षेत्ररूप प्रकृति (माया) जोती-बोई या सींची नहीं जाती है, न उसमें वृक्ष, शाखा पत्रादि होते हैं तो भी उस क्षेत्ररूप प्रकृति में ही डार पत्रादि के बिना एक फूलरूप संसार और सब शरीर विषयादि होते हैं।

फुलभल फुलल मालिन भलगाँथल, फूल विनशि गौ भँवर निराशल।
कहहिं कबीर सुनहु सन्तो भाई, पंडित जन फुल रहल लोभाई।४४।

उस क्षेत्र संसार में देह स्त्री-पुत्रादिरूप भले (सुन्दर) फूल फूले हैं और अविद्या कुबुद्धिरूप मालिन ने उन फूलों की माला को कामादि सूत्रों से गाँथी है और गाँथकर जीवात्मा को पहिरायी है। उनमें आत्मत्व के अध्यास को तथा ममता आदि को सिद्ध की है। परन्तु उन फूलों के विनश्वर होने से जब वे फूल विनष्ट हो गये, तब तृप्ति रहित भँवरा (आसक्त जीव) निराश (हताश) हुआ और होता है। कबीर साहब कहते हैं कि हे सन्तों भाई! तुम सद्गुरु से आत्म-श्रवणादि करो, इस फूल की आशा आदि को त्यागो, क्योंकि ऐसा करने

के विना अमरदेव स्वर्गादि की इच्छा से पंडितजन भी इस तुच्छ फूल में लुभाये रहते हैं तो अन्य की कथा ही क्या कही जाय । परन्तु—

अमर कोइ नहि देव, विश्व नहि नाश विहीना ।
अर्थ धर्म सब काम, विनश्वर विगुण मलीना ॥
देह खेह मिलि जाय, तबे धन क्या सुख देवै ।
धर्म नशै दे भोग, योग बिनु को सुख सेवै ॥११७॥
कामी को नहि शान्ति, भ्रान्ति उपजत दिन राती ।
क्रोध लोभ बढ़ नित्य, मोह मद होत अराती ॥
तातें करिये विवेक, विमल वैराग्य दिढ़ावो ।
हनूमान लहि ज्ञान, परमपद निश्चल पावो ॥११८॥४४॥

इति मोह त्याग और त्यागाधिकारी प्रकरण १६



अथ अलौकिकात्म वैराग्य विषयक शंका-समाधान प्रकरण १७

शब्द ४५

(भाई रे) अदबुदरूप अनूप कथा है, कहुँ तो को पतिआई ।
जहँ जहँ देखो तहँ तहँ सोई, सब घट रहल समाई ॥

जिसके श्रवणादि कर्तव्य हैं, उस अदबुद (आश्चर्य) स्वरूप आत्मा की कथा भी अनूप (उपमा रहित) है, यदि मैं उसकी कथा कहूँ भी तो विवेकादि के विना कौन पतिआता (विश्वास करता) है । विवेक होने पर विचार के देखने से जहाँ जहाँ देखो तहाँ तहाँ वह आत्मा ही अस्ति भाति प्रिय रूप से बाहर भीतर प्रतीत होता है । और सब देहों में भी वही साक्षी, अन्तर्यामी, तथा जीव रूप से समा रहा है ।

लक्षि बिनु सुख दरिद्र बिनु दुख, नींद विना सुख सोवै ।
यश बिनु ज्योति रूप बिनु आशिक, रतन बिहुना रोवै ॥

लक्ष्मी के विना, लक्षपति आदि होने के विना भी वह ज्ञानी को सुख रूप भासता है और दरिद्रता के विना भी उसमें अज्ञ को दुःख भासता है और निन्द के विना सुख से सोया हुआ भासता है । क्या सुषुप्ति काल में नीन्द रहित

आत्मा में व्यावहारिक जीव सुख से सोता है। क्योंकि (सता सोम्य ! तदा सम्पन्नो भवति) उस समय सत्यात्मा से जीवात्मा (सम्पन्न) हो जाता है (मिल जाता है)। और यश के विना आत्मा की ज्योति (ख्याति प्रकाश स्वरूप) है। और रूप के विना ही उसके सब आशिक (प्रेमी) हैं। या उसमें सब आसक्त हैं। उसी परम प्रेम का विषय स्वयं प्रकाश रत्न को निज स्वरूप समझने के विना अज्ञानी जीव सब सदा रोते हैं। अतः आत्मा ज्ञातव्य है।

भ्रम बिनु गञ्जन मान बिनु निरखन, रूप बिना बहु रूपा।
थिति बिनु सुरति रहस बिनु आनन्द, ऐसो चरित अनूपा ॥

उस स्वरूप में भ्रम के विना अज्ञों को गञ्जन (विपत्ति) की प्रतीति होती है। प्रत्यक्षादि प्रमाणों के विना उसका निरखन होता है (वह स्वरूप से ही सबको प्रकाशता है प्रमाणों से नहीं) और अप्रमेय होने से उसको कोई प्रमाणों से नहीं जानता है किन्तु शब्द जन्य ज्ञान होने से अविद्या मात्र की निवृत्ति से आत्मा स्वयं प्रकाशता है। और रूपादि रहित होते भी (इन्द्रो मायाभिः पुरु रूप ईयते। बृ० २।५।१९) वह इन्द्र (आत्मा) माया से बहुत रूप होता है। और स्थिति के बिना उसको सबकी सुरति (स्मृति) रहती है और रहस्य ज्ञानादि के बिना वह सदा आनन्द स्वरूप रहता है। ऐसे उसके उपमा रहित चरित्र हैं।

कहहिं कबीर जगत हरि मानिक, देखहु चित अनुमानी।
परि हरि लाख लोग कुटुम तजि, भजि रहु सारँग पानी ॥४५॥

कबीर साहब कहते हैं कि सर्वात्मा हरि स्वरूप माणिक (रत्नहीरा) जगत में सर्वत्र वर्तमान है। परन्तु प्रथम अपने चित्त (अन्तःकरण) में श्रवण पूर्वक अनुमान (विचार) से देखो। (समझो) फिर लाख लोग कुटुम्बादि को त्याग कर उस सारंग पानी (हरि) को भजो, भजते रहो और सर्वत्र उसको देखो।

बक्ता पण्डित योगि जन, जो नहिं तजहिं विकार।
मति बिनु तब लगि बूड़ते, महा कठिन भव धार ॥११९॥
गुरु प्रसाद से मोह तजि, जो नित रहत सँभार।
राम सुधा रस पान करि, सदा स जीवनहार ॥१२०॥
गुरु प्रसाद से पाइये, ताकी कथा अनूप।
त्यागि सकल संगादि को, रत्न लहत मुनि भूप ॥१२१॥

राम रतन सब घट बसै, कहुँ घट बढ़ नहिं होय।
रहत एक रस सर्वदा, लखत विवेकी कोय ॥१२२॥
बिनु विकार तहँ भासते, भव के सब व्यावहार।
सकल त्यागकर भजिय तिहि, ता बिनु रोवन हार ॥१२३॥४५॥

शब्द ४६

अब हम भयली बाहर जल मीना, पूर्ब जन्म तप का मद कीना।
तहिया अछलो मैं मन वैरागी, तजलुं लोग कुटुम राम लागी ॥

पूर्ण विवेक विराग विनु, त्यागी गृह परिवार।
होत मूढ़ पद भ्रष्ट ही, ताते तजिय सँभार ॥१२४॥

उक्त उपदेश के तात्पर्य के अज्ञानी मन्द वैराग्य वाले किसी तटस्थ राम भक्त का कथन है कि आप लाखादि सम्पत्ति और लोग कुटुम्बादि को त्यागने के लिये उपदेश देते हो और मैं तो अब (कुटुम्बादि को त्यागने पर) जल से बाहर निकली हुई मछली तुल्य हुआ हूँ। अनुमान होता है कि मैं पूर्व जन्म में तप का मद (गर्व) किया था और मन में वैराग्य की वासना इच्छावाला भी था, कि जिससे मैं आज राम की प्राप्ति के लिये लोग कुटुम्ब को त्याग दिया हूँ। तहाँ कर्मात्मक तप के मद से दुःख हो रहा है और वैराग्य की वासना से त्याग हुआ है और उपदेश भी त्याग में कारण है।

तेजलों काशी मति भइ भोरी, प्राण नाथ कहु का गति मोरी।
हमहिं कुसेवक कि तुहईं आना, दुइ महँ दोष काहि भगवाना ॥
हम चलि ऐलि तोहारे शरणा, कतहुं न देखों हरि के चरना।
हम चलि ऐलि तोहारे पासा, दास कबिर भल कैल निराशा ॥४६॥

तप के अहंकार से पूर्व जन्म में मेरी मति (बुद्धि) भोरी (भ्रान्त) हो गई कि जिससे काशी को त्याग दिया। यदि काशी में मरे होते तो मुक्त ही हो जाते। त्यागादि की कोई जरूरत नहीं होती। हे प्राणनाथ! (गुरो! प्रभो!) कहो कि अब मेरी क्या गति (आश्रय) है, मैं कैसे सुखी मुक्त हो सकता हूँ। त्यागादि से तो मैं दुःख ही पाया। हे भगवन् (गुरो!) मैं ही कुसेवक हूँ, कि आप ही आन (गुरु से अन्य) असत उपदेशक हो। हम दोनों में किसका दोष

है कि जिससे यह मेरी ऐसी दशा है। विचारने पर मेरा दोष नहीं प्रतीत होता है। क्योंकि मैं तो आप के उपदेश के अनुसार सब त्यागकर तुम्हारी शरण में आगया हूँ और आप कहते हैं कि (जहँ जहँ देखो तहँ तहँ सोई) और मैं कहीं भी हरि के चरणों को नहीं देख रहा हूँ। हम तो सब को त्याग कर हरि चरणादि के दर्शन के ही लिये आप के पास में चल आये हैं। परन्तु हे कबीर (गुरो !) आपने मुझ भले दास को भली भाँति से निराश (हताश) किया है। अतः आप के ही दोष से मुझे हरि चरण का दर्शन नहीं हो रहा है, सो उचित नहीं है ॥४६॥

शब्द ४७

लोगा तूंही मति के भोरा।
ज्यों पानी पानी महँ मिलि गौ, त्यों धुरि मिले कबीरा।
जो मैं थीको साँचा व्यास, तोहर मरण ह्वे मगहर पास ॥
मगहर मरै सो गद्दह होवै, भल परतीति राम से खोवै।

जल से बाहर मीन सम, दारा धन बिनु मूढ़।
काशी में मरि मुक्ति चह, लखत न तत्त्व निगूढ़ ॥१२५॥
राम ज्ञान बिनु देह रति, ताते मति भरमाय।
करि विवेक गुरु शरण गहु, तब सब तम टरिजाय ॥१२६॥
तमो नाश मय मुक्ति में, देश काल गुण कोय।
करत न कछुक सहायकहुँ, ज्ञान भानु से होय ॥१२७॥
याते मन विस्तार तजि, ह्वै विरक्त मति धीर।
गहिय राम हृदि जाहिते, पुनि न होय भव भीर ॥१२८॥

सद्गुरु का उक्त शिष्य के प्रति सान्त्वना युक्त उपदेश है कि हे लोगा! तुमही मति के भोरा (भ्रान्त बुद्धि वाले) हो। प्रथम कहा गया है कि "हाथ न वाके पाँव न वाके रूप न वाके रेखा" इत्यादि उन उपदेशों को भ्रम से ही त्यागकर तुम हरि के चरण को देखना चाहते हो, निर्गुण सच्चिदानन्द का अनुभव नहीं करते हो।

अतः जैसे पानी में पानी मिल जाय, तैसे हे कबीरा (जीव !) तुम धूलि (देहाभिमानी) होकर धूलि (मिट्टी) रूप देह में भ्रम से मिले हो। अर्थात् शुद्ध जल में शुद्ध जल के समान, समुद्र में नदी के समान, ज्ञानी पुरुष नाम रूप

के अभिमानादि को त्याग कर निर्गुण राम में मिलते हैं। और तुम अज्ञान से जल के मछली तुल्य बनते हो, तो काल के वश में पड़कर दुःखी क्यों न होगे। और लोग कुटुम्बादि पानी तुल्य शान्ति कारक नहीं हैं, किन्तु पूर्व वर्णित सुख सागर राम ही पानी तुल्य है और उसी में तुम वर्तमान हो, परन्तु मति भ्रम से उसको समझ नहीं रहे हो। अतः (पानी में मीन पियासी। धुत्रिया जल बिच मरत पियासा) इत्यादि उपहास का विषय हो रहे हो। और यदि मैं (सद्गुरु) सच्चा व्यास (वक्ता) थीको (हूँ) या मैं यदि सच्चा हूँ और वेदादि के वक्ता व्यास मुनि यदि सच्चा हैं तो तेरा मगहर के पास मरण हो, या मगहर में ही मरण हो और तुम यदि मेरे तथा व्यास वचन के अनुसार आत्मज्ञ हो, तो फिर मरण नहीं पावोगे (मुक्त ही होवोगे) क्योंकि मगहर में जो मरता है सो गदहा तब होता है कि जब राम से भली प्रतीति को खोता है। अर्थात् राम की भक्ति और ज्ञान से ही सर्वोत्तम मुक्ति शान्ति सुख में जो विश्वास नहीं रखता है, विश्वासी भक्त और ज्ञानी कहीं मरे कुगति नहीं पाता है।

मगहर मरै मरण नहिं पावै, अन्ते मरै तो राम लजावै ॥
क्या काशी क्या मगहर ओरा, जोपै हृदय राम बसु मेरा।
जो काशी तन तजहिं कबीरा, तो कहु रामहि कौन निहोरा ४७

क्योंकि ज्ञानी भक्त मगहर में मरकर भी फिर मरण नहीं पाता है, मुक्त हो जाता है। और ज्ञानी भक्त होते भी यदि अन्ते (मगहरादि साधारण देश से अन्यत्र काशी आदि में) जाकर मुक्ति आदि के लिये मरता है, तो वह भक्त राम आदि को लजाता है (राम ज्ञान आदि के महिमा को नहीं जानता है) क्योंकि भक्त तो समझता है कि काशी और मगहर (ओरा) देश दिशा क्या कर सकता है, मुक्ति दाता तो राम की भक्ति और ज्ञान है, अतः यदि राम मेरे हृदय में बसते हैं (राम की भक्ति और ज्ञान हृदय में यदि है) तो मगहर और काशी से हानि या लाभ कुछ नहीं हो सकता है। और यदि जीव काशी में शरीर त्यागे और उसी से मुक्ति हो जाय तो कहो कि मुक्ति के लियें राम की निहोरा स्तुति बन्दना भक्ति किस काम की हो सकती है। तथा मुक्ति के लिये राम की भक्ति कौन करेगा अतः सच्ची भक्ति को प्राप्त करो इत्यादि ॥४७॥

इति अलौकिकात्म वैराग्य विषयक शंका समाधान प्रकरण १७

अथ अपार ब्रह्म विचारादि प्रकरण १८

शब्द ४८

अबधू छाड़हु मन विस्तारा ।
सो पद गहहु जाहि ते सदगति, पारब्रह्म ते न्यारा ॥
नाहिं महादेव नाहिं मुहम्मद, हरि हजरत कछु नाहीं ।
आदम ब्रह्मा नहिं तब होते, नहीं धूप औ छाहीं ॥

करि अनात्म प्रतिषेध गुरु, उपदेशत इक राम ।
त्यागिय सकल विकार को, भजिय राम निष्कांम ॥१२९॥
अल्प वस्तु में सुख नहिं, सुख स्वरूप इक राम ।
माया मद गुण त्यागिये, तब पाइय विश्राम ॥१३०॥
सकल विश्व देवादि से, पर पूरण गम्भीर ।
आदि अन्त से शून्य सत, ब्रह्म जानिये वीर ॥१३१॥

मन्द वैराग्यादि से खिन्न पूर्वोक्त विरक्त शिष्य के ही प्रति पूर्णविवेक वैराग्यादि के लिये उपदेश है कि हे अवधू ! मन के विस्तार (संकल्प विकल्पादि) को छोड़ो और सो पद स्वरूप वस्तु को गहो (समझो) कि जो पद पारब्रह्म (कार्य ब्रह्म एकदेशी देवादि) से न्यारा अपार विभु ब्रह्म है और जिसके गहने से सद्गति (मुक्ति) होती है या मन के विस्ताररूप संसार को छोड़ो और संसार से पार (शुद्ध) ब्रह्म से न्यारा जो है, उस सब को छोड़ो और उस शुद्ध ब्रह्मपद को गहो, कि जिससे सद्गति होती है । वह अपार या शुद्ध ब्रह्म महादेव मुहम्मद हरि और हजरत नहीं है और आदम ब्रह्मा भी सद्गति दायक में नहीं होते हैं । न धूप छाया का सम्बन्ध रहता है, महाप्रलयादि में परब्रह्म रहता है । परन्तु आदम ब्रह्मा धूप छाया आदि मन माया के विस्ताररूप कोई नहीं रहते हैं । अतः सद्गति के लिये एक सद्ब्रह्म को गहो ।

असिया से पैगम्बर नाहीं, सहस अठासी मूनी ।
चन्द्र सूर्य तारागण नाहीं, मच्छ कच्छ नहिं दूनी ॥
वेद कितेब स्मृति नहिं संयम, नहीं यवन पर स्याही ।
बंग निमाज कलिमा नहिं होते, रामो नाहिं खुदाही ॥

अस्सी सौ पैगम्बर नहीं रहते हैं, न अठासी हजार मुनि रहते हैं, न चन्द्र, सूर्य तारागण रहते हैं, न मत्स्य, कच्छप दोनों अवतार रहते हैं। न दुनियाँ रहती है और वेद, कुरान, धर्मशास्त्ररूप स्मृति, संयम नियमादि भी नहीं रहते हैं, न पवन रहते हैं, न उनसे पर स्याही (मलिनता) रहती है, न बाँग देना निमाज पढ़ना कलमा आदि रहते हैं। न राम खुदा का भेद रहता है (महाप्रलय मोक्ष-काल में इन सबका अभाव रहता है) परब्रह्म रहता है।

आदि अन्त मन मध्य न होते, आतस पवन न पानी।
लख चौरासी जीव जन्तु नहिं, साखी शब्द न बानी॥
कहहिं कबीर सुनहु हो अवधू, आगे करहु विचारा।
पूरण ब्रह्म कहाँ ते प्रगटे, किरतम किन उपचारा॥४८॥

और ब्रह्म आदि अंत और मध्य तथा मन की विषयता से रहित है और उसको जाननेवाले के भी आदि अन्त और मन की वशवर्तिता नहीं होते हैं। न द्वन्द्वों के हेतु आतस (तेज) पवन पानी का असङ्ग ब्रह्म में सम्बन्ध है और चौरासी लाख जीव जन्तु (बड़े छोटे) प्राणी प्रलयादि में नहीं रहते हैं न साखी शब्दादिरूप वाणी रहती है। कबीर साहब कहते हैं कि उस ब्रह्म के श्रवणादि करो और महादेवादि सब से आगे (परे) तत्त्व परब्रह्म का विचार करो और वह पूरण ब्रह्म कहाँ से (किन साधन सद्गुरुओं से) प्रगट (प्रत्यक्ष) होगा सो विचारो और किरतम (कार्य आकाश, वायु आदि) को किन कारणों ने उपचारा (उत्पन्न किया) इत्यादि और धीर-गम्भीर गुरुशरण में जाया करो, तो सगुण-निर्गुण ब्रह्म को जानकर चिन्तारहित मुक्त होगे॥४८॥

इति अपार ब्रह्मविचारादि प्रकरण १८



अथ भक्ति तत्फलादि प्रकरण १९

शब्द ४९

सन्तो ! भक्ति सतगुरु आनी ।
नारी एक पुरुष दुइ जाया, बूझहु पण्डित ज्ञानी ॥
पाहन फोरि गंग एक निकली, चहुँदिशि पानी पानी ।
ता पानी दुइ पर्वत बूड़े, दरिया लहर समानी ॥

प्रगटत जिमि सद्भक्ति से, सहज निजातम देव ।
मिटत द्वन्द्व सब सहज ही, सो अब कह गुरुदेव ॥१३२॥
नाम रूप परब्रह्म का, करिये नित्य विचार ।
सद्गुरु आनि भक्ति सो, ताहि हृदय में धार ॥१३६॥

हे सन्तो ! उक्त परब्रह्म के ज्ञानादि के लिये सद्गुरु ने संसार में प्रेम, श्रद्धा विचारादिरूप भक्ति (आनी) लाई है और उस भक्तिरूप एक नारी ने ज्ञान विरागरूप दो पुरुष को जिज्ञासुओं के हृदयों में जाया (उत्पन्न किया) है । इस बात को तुम ज्ञानी पण्डितों से बूझो (समझो) क्योंकि "मोक्ष कारण सामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी" मोक्ष के कारण समूह में भक्ति सबसे श्रेष्ठ है । अतः ज्ञानी पण्डित से भक्ति को समझकर, भक्ति द्वारा शुद्ध हृदय विरागादिपूर्वक श्रवणादि से ब्रह्मानुभव करो । क्योंकि जैसे पहाड़ को फोरकर गंगा निकली है । वैसे ही "माटिक कोट पषाणक ताला" इस रमैनी में वर्णित पाहन को फोर कर अचल सद्गुरु रूप पहाड़ से एक भक्तिरूप गंगा निकली है । अतः जहाँ भक्ति गंगा है तहाँ चारो दिशा में पानी-पानी (शुद्ध ब्रह्म सुख शान्ति-शान्ति) ही हैं और उसी पानी में विन्ध हिमालय, तुल्य द्वन्द्वरूप दो पर्वत बूड़ गए हैं । भक्तिमान प्राणी सब द्वन्द्व भेदभाव से रहित हो जाता है । क्योंकि उसके भक्ति ज्ञानात्मक लहर (तरंग) में संसाररूप दरिया समा गई (लीन हो गई) और समा जाती है और मन के तरंग सब ब्रह्म समुद्र में लीन हो जाते हैं ।

उड़ि माँखी तरुवर को लागी, बोले एकै बानी ।
वहि माँखी को माँखा नाहीं, गर्भ रहा बिनु पानी ॥
नारी सकल पुरुषवहिं खायो, ताते रही अकेला ।
कहहिं कबिर जो अबकी समुझै, सोइ गुरु हम चेला ॥४९॥

उक्त रीति से संसार और मन के लीन होने पर भक्त की बुद्धि वाक् वासना आदि माँखी अनेक हीन संसार से उड़कर श्रेष्ठ परब्रह्म में लगी और एक उसी वाणी को बोलने लगी और बोलती है। फिर उस माँखी के कोई माँखा (अनात्म पति) नहीं रहे और पानी विना (कारण रहित) साक्षी स्वरूप गर्भ उसमें रह गया। शुद्ध नित्य मुक्त एक ब्रह्मात्मा का निश्चय बुद्धि ने किया। इस प्रकार एक भक्तिरूप नारी ने सब अनात्म देवादि स्वरूप और काम, क्रोधादि स्वरूप पुरुषों को ज्ञान-विरागरूप पुत्रों द्वारा खा गई। अतः वह अकेली मोक्ष देनेवाली हुई और आत्मारूप पुरुष अकेला निर्भय रहा, द्वितीय का भय मिट गया, कबीर साहब कहते हैं कि जो कोई अबकी (इस मानव तन में) इस प्रकार अकेला (असंग) रहकर एक सत्यात्मा को समझते हैं, सो गुरु हैं और उनसे भिन्न जो कोई देहादि में अहम् बुद्धिवाले हैं सो चेले हैं ॥४९॥

शब्द ५०

आब विआब मुझे हरि (को) नामा। और सकल तजु कौने कामा॥
कहँ तब आदम कहँ तव हौवा। कहँ तब पीर पैगम्बर हूवा॥
कहँ तब जिमी कहाँ असमाना। कहँ तव वेद कितेव कुराना॥

उक्त भक्ति ज्ञान की प्राप्ति के लिये उपदेश है कि आब (इज्जत प्रतिष्ठा) काल में और विआब (अनादर दुःख) काल में मुझे हरिनामा (हरिनामवाला या हरि के नाम) से ही काम है। नाम द्वारा हरि का स्मरण भजन ही हमारे लिये सार वस्तु है। अन्य वस्तु मिथ्या है, उनसे हमें क्या जरूरत है ? ऐसा समझकर अन्य सब को त्यागो। क्योंकि उनसे तुझे कौन काम है ? सब काम को पूर्ण करने में एक हरि और हरि भक्ति ही समर्थ है।

अतः उस हरि भक्ति की प्राप्ति होने पर आदम और हौवा (हव्यवती) आदम की स्त्री कहाँ पृथक् भजनार्ह रह जाते हैं ? तथा पीर पैगम्बर भी कहाँ पृथक् उपासनीय रहते हैं। जिमी (भूमि) असमान (आकाश स्वर्ग) निवासी भी कहाँ पृथक् पूज्यादि रहते हैं। तथा अध्येतव्य वेद कुराणादि कहाँ पृथक् रहते हैं ? हरि भक्ति ज्ञान से सब का ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

जिन दुनियाँ महँ रचि मसजीद। झूठा रोजा झूठा ईद॥
साँचा एक अलह को नामा। जाको नय नय करहु सलामा॥

कहु दहुँ भिस्त कहाँ से आया। किसके कहे तुम छूरि चलाया॥
करता किरतम बाजी लाया। हिन्दु तुरुक की राह चलाया॥

इस भक्ति के बिना जिन्होंने दुनियाँ में मसजीद रची, उनकी मसजीद और रोजा, ईद सब झूठे (विनश्वर और पाखण्डमात्र) हैं। किन्तु जिस को झुक-झुक कर सलाम (प्रणाम) करते हो। उसी एक अलह (भक्ति ज्ञान के विना अलभ्य) हरि का नाम (स्वरूप) सत्य है।

हिंसादि रहित उसकी भक्ति के बिना कहाँ किन लोगों ने कहाँ से (किसप्रकार) भिस्त (स्वर्ग) आई (पाई) सो कहो तो अर्थात् भक्ति के बिना किसी को स्वर्ग नहीं हुआ और किसके कहने से तुमने निरपराध प्राणी पर छूरी चलाई। अर्थात् भक्ति के अभाव से ईश्वरादि की आज्ञा के बिना छूरी चलाते हो और तुम स्वयं कर्ता बन कर किरतम (कार्य) रूप बाजी (मिथ्या खेल) को लाकर (निश्चय करके) विवेकादि के बिना हिन्दू तुरुक के भिन्न भिन्न मार्ग चलाये हो। सच्ची भक्ति ज्ञान के बिना हिन्दू तुरुक के हिंसादि युक्त भिन्न भिन्न मार्ग सिद्ध हुए हैं।

कहँ तब दिवस कहाँ तब राती, कहँ तब किरतम की उतपाती।
नहिं वाकि जाति नहिं वाकि पाती, कहहिं कबिर वाकु दिवस नराती

सच्ची भक्ति यदि हो तो दिन रात का भेद कहाँ रहता है कि जिससे दिन में रोजा और रात्रि में गोवधादि हो सके। और तब (भक्ति होने पर) किसीअन्य कार्य की उत्पत्ति (उत्पात) कहाँ हो सकते हैं। क्योंकि उस भक्त की कोई जाति पाति नहीं रहती है। वह सब अभिमान से रहित हो जाता है और कबीर साहब कहते हैं कि उसको दिन रात का भेद नहीं रहता है। उसकी अखण्ड भक्ति रहती है।

भक्ति माँहि इक नाम दृढ़, गहिये सब सिधि होय।
तजिय मद कपटादि को, भ्रम तम रहै न कोय ॥१३४॥
पक्षपात तजि असत मल, विमल राम लौ लाय।
रहिये मिलै विज्ञान शुभ, ममता मल जरि जाय ॥१३५॥
सकल अशुभ को जारिये, समता दिल में आनि।
हनूमान सद्भक्ति से, रहत न जन अभिमानि ॥१३६॥
अभिमिति जाके मन नहीं, दया ज्ञान सम होय।
सो जन जीवत ब्रह्म हैं, मुक्त विमुक्तहु सोय ॥१३७॥५०॥

इति भक्ति तत्फलादि प्रकरण १९

अथ भक्ति दयादि बिना अन्य कर्म निष्फलता प्रकरण २०

शब्द ५१

अल्लह राम जीवों तेरि नाईं, जनके मेहर होहु तुम सांई।

समता सब में आनिये, तजिये हिंसा पाप।
तब पाइय सद्भक्ति शुभ, होय न भव संताप ॥१३८॥
दिशा देश कालादि से, अविच्छिन्न इक राम।
वेदादिक से जानिये, त्यागिय सकल कुकाम ॥१३९॥

हे जीवों! (मनुष्यों!) तेरे समान सब जीव अल्लाह राम (ईश्वर) के अंश प्यारे स्वरूप हैं। तथा तेरा ही वस्तुतः अल्लाह राम नाम है। ईश्वर के अंश होने से तुम ईश्वर स्वरूप हो और तटस्थ ईश्वर तेरे समान हैं। अतः तुम सांई (स्वामी) हो अतः हे सांई! सब जन (प्राणी) के ऊपर तुम ईश्वर के समान मेहरवान् (दयावान्) समदर्शी होवो। या हे सांई (फकीरों) तेरे समान सब जीव अल्लाह राम के प्यारे अंश हैं। अतः इन्हें अल्लाह राम जानकर मेहरवान् होवो और समदर्शी होवो।

क्या मूड़ी भूमी शिरनाये, क्या जल देह नहाये।
खून करहु मिसकीन कहावहु, अवगुण रहहु छिपाये ॥
क्या ऊज्जू जपमज्जन कीये, क्या मसजिद शिरनाये।
हृदया कपट निमाज गुजारहु, क्या हज मक्का जाये ॥

यदि सब प्राणी में समता, दया दिल में नहीं आई तो मुण्डित शिरको भूमि में नाय (नमाने) से क्या, जल से देह को नहाने धोने से क्या फल हो सकता है। क्योंकि हृदय की नम्रता और शुद्धि के बिना बाहर की नम्रता और शुद्धि निरर्थक होती है और हृदय की अशुद्धि तथा क्रूरता से खून (घात) करते हो और पाखण्ड से मिसकीन (दीन भक्त) कहाते हो। कपट से अपने अवगुणों को छिपाये रहते हो। तो उज्जू (जलादि से बाह्य शुद्धि) और मन्त्र जप तथा मज्जन (स्नान) करने से और मसजिद में जाकर शिर झुकाने से क्या हो सकता है। हृदय में कपट (क्रूरता छल विषमता) रहते निमाज कर गुजारते हो। मक्का जाकर हज (तीर्थाटन विधि) करते हो, तो इस से क्या फल हो सकता है। कपटादि के त्याग बिना सब व्यर्थ होते हैं।

हिन्दु एकादशि करै चौविसो, रोजा मुसलमाना ।
ग्यारह मास कहो किन टारै, एके माह न आना ॥

समता दया आदि रहित भी हिन्दू एकादशी को हरि दिवस जानकर चौविसो एकादशी व्रत करते हैं और रोजे के दिनों को खुदा के दिन मान कर मुसलमान रोजा व्रत एक मास करते हैं। तहाँ यदि एक ही माह (मास) एकादशी दिवस और रोजा दिवस मात्र ईश्वर का है और आन (अन्य) मास ईश्वर के नहीं हैं, तो कहो कि ग्यारह मास को किन्होंने टारा (किनके प्रताप से ग्यारह मास योगक्षेम पूर्वक बीते) और बीताये जाते हैं। या ईश्वर से ग्यारह मास को किन लोगों ने टारे और स्वयं स्वामी हुए।

जो खुदाय मसजीद बसत है, और मुलुक किहि केरा ।
तीरथ मूरति राम निवासी, दुइ महँ किनहुं न हेरा ॥
पूरब दिशा हरि के बासा, पच्छिम अलह मुकामा ।
दिल महँ खोज दिलहि में खोजो, यहैं करीमा रामा ॥

और यदि खुदा मसजीद में बसता है, तो और मुलुक (देश) किसका है। और यदि तीर्थ मूर्ति आदि में ही राम निवास करता है, तो अन्यत्र कौन बसने वाला स्वामी है। अर्थात् सब काल और देश का स्वामी एक है, अन्य नहीं। परन्तु विचार रहित इन हिन्दू तुरुक दोनों में इस सत्यात्मा को किसी ने नहीं समझा न खोज किया। अतः हिन्दुओं ने पूर्वदिशा में क्षीरसागर में हरि के बास (स्थान) को माना और मुसलमानोंने पश्चिम मक्का में अल्लाह के मुकाम (स्थान) को माना। परन्तु हे सज्जनों! हरि के प्राप्ति का खोज (मार्ग) दिल में ही दया समता विचारादि रूप है। अतः ध्यानादि से दिल ही में खोजो (ढूंढ़ो) तो यहाँ ही करीमा राम मिलेगें, अन्यत्र नहीं।

वेद कितेब कहो किम झूठा, झूठा जो न विचारै ।
सब घट एक एक करि लेखै, भी दूजा कहि मारै ॥
जहँ लगि जग महँ रूप उपानो, सो सब रूप तुम्हारा ।
कबिर पोगरा अलह राम का, सो गुरु पीर हमारा ॥१५॥

वेदादि को पढ़कर भी झूठे अर्थों में लोग भ्रमते हैं। इससे यदि कोई वेद किताब को झूठा (मिथ्या अर्थ के बोधक) कहे, तो कहते हैं कि वेद किताब को किम (किस प्रकार) झूठा कहा जाय झूठा वह है जो विचार नहीं करता है (वेदादि को विचार कर अहिंसा आदि धर्म समता आदि को नहीं समझने वाला झूठा है) अतः जो सब घटों में एक एक प्राणी को अपने तुल्य सुख दुःखादि युक्त समझता है। तथा सब घट में जो एक अन्तर्यामी राम है, उसको भी जो वेदादि द्वारा एक करके अभय स्वरूप समझता है, सो भी विचारादि के बिना भी (भय) और दूजा (भेद) दृष्टि करके प्राणी को मारता है और उसके मांस को विचारादि के बिना भक्ष्यादि समझता है।

कबीर साहब कहते हैं कि संसार में जितने रूप (व्यक्ति) सब योनियों में उपानों (उत्पन्न हुए हैं) सो सब तेरे ही रूप हैं, सब में तेरी आत्मा है। सब में तेरे तुल्य भोक्ता जीव हैं, ऐसा समझो और दया अहिंसा आदि करो। यदि कहा जाय कि सबमें एकात्मा है, तो गुरु शिष्यादि भाव कैसे हो सकता है। तो साहब कहते हैं कि अल्लह राम का पोगरा (समर्थ स्वरूप) ज्ञानी है, सो हम लोगों का गुरु पीर है। या अज्ञ जीव अल्लह राम के पोगरे (बच्चे) हैं और वह अल्लह राम ही हमारा गुरु पीर है। सो सब के लिये तुल्य है। अतः सम दृष्टिता से उसे समझना चाहिये।

समता ही है ज्ञान, ध्यान शुभ याको मानो।
योग जाप विज्ञान, सकल समता को जानो॥
समता बिनु नहिं भक्ति, मुक्ति नहिं आवै पासा।
समता बिनु नहिं धर्म, किये कोटिन उपवासा॥
कटै न यम के फन्द, द्वन्द्व नित बढ़ै अनन्ता।
समता से हनुमान, मिलै हरि शुद्ध अनन्ता॥१४०॥

विषमतादि करि दूर, सदा समता दिल राखो।
हिंसा कपट विहाय सत्य मित हित ही भाखो॥
करी क्रूरता दूर शूर शत्रुन पर होवो।
मारि काम मद लोभ क्रोध के मूलही खोवो॥
मोह मारि तजि द्वेष राग तजि मधुरहि भाखो।
तबही कह हनुमान भक्त आपन को आखो॥१४१॥५१॥

शब्द ५२

रामहि गावै औ (रहि) समुझावै, हरि जानै बिनु विकल फिरै ॥
जा मुख वेद गायत्री उचरे, जाके वचन संसार तरै ।
जाके पाँव जगत उठि लागै, सो ब्राह्मण जिव बद्ध करै ॥

समता बिनु जपि राम हूँ, करि वा कर्म हजार ।
बिनु विवेक करि पाप नर, पड़ता नरक मझार ॥१४२॥
सम हरि आतम ज्ञान बिनु, पूजत प्रेत मशान ।
तजि अमृत विष खात जोइ, तिहि सम कौन अजान ॥१४३॥

समता आदि के बिना जो तीर्थ मूर्ति आदि मात्र वासी राम को गाते हैं और अन्य को समझाते भी हैं, सो सर्वात्मा हरि गुरु को जाने बिना विकल (व्याकुल) हुए फिरते हैं। और जो लोग मुख से वेद गायत्री का उच्चारण करते हैं और जिनके वचन से संसारी तरने की आशा रखते हैं। कोई सज्जन जिज्ञासु जिनके वचन से विचारादि करके दुःख को तरता है। अतएव सब संसारी ऊठकर जिनके पाँव लगते हैं (प्रणाम करते हैं) सो ब्राह्मण भी हरि के ज्ञान बिना जीवों का वध करते हैं तथा कराते हैं। यह आश्चर्य है।

अपने ऊँच नीच घर भोजन, घीन कर्म हठि उदर भरै ।
ग्रहण अमावस ढुकि ढुकि मांगे, कर दीपक लिय कूप परै ॥

अपने ऊँचपन के अभिमान को रखकर भी लोभादि वश नीचों के घर में भोजन करते हैं। या मांसादि नीच (निन्दित) वस्तु का अपने घर में भोजन करते हैं और हठ से घृणित कर्म करके उदर भरते हैं, धार्मिक मर्यादा को नहीं रखते हैं। अतः ग्रहण अमावस्या आदि कालों में गृह तीर्थादि में ढुक ढुक कर (घुस घुसकर) निषिद्ध दान मांगते हैं। इससे मानो शास्त्र दीप को हाथ में लेकर भी मोह वश नरक कूप में पड़ते हैं।

एकादशि व्रतक मर्म न जानै, भूत व्रत हठि हृदये धरैं ।
तजि कपूर गाँठी विष बाँधै, ज्ञान गमाये मुग्ध फिरैं ॥

सात्त्विक दया अहिंसा हरि भक्ति युक्त एकादशी व्रत के मर्म (भेद) को नहीं जानते हैं। किन्तु अशुद्ध भूत व्रत (प्रेत व्रत) को हठ से हृदय में धारण करते हैं। अतः सात्त्विक पुण्य कर्मादि रूप कपूर को त्याग कर राजस तामस पाप

कर्मादि रूप विष को हृदय रूप गठरी में बाँधते हैं और ज्ञान रूप रत्न को गमा (खो) कर मुग्ध (मोह युक्त अविवेकी मूर्ख) हुए फिरते रहते हैं ।

छीजे साहु चोर प्रति पाले, सन्त जना से कूट करै ।
कहहिं कबिर जिह्वा के लम्पट, यहि विधि ब्राह्म नरक परै ॥५२॥

और मुग्ध होने ही से साहु (सज्जन श्रेष्ठी) यदि छीजता (नष्ट होता) हैं, तो उसकी रक्षा नहीं करके चोरों का प्रतिपालन करते हैं और सन्त जनों से कूट (मसखरी=माया) करते हैं । सो जिह्वा के लम्पट (स्वाद कुवाक्य परायण) इस पूर्व विधि (रीति) से नरक में पड़ते हैं । अतः यह विधि सर्वथा त्याज्य है ।

जिह्वा मन जिहि वश नहीं, ताके वश नहिं कोय ।
मन इन्द्रिय कामादि खल, के वश में सो होय ॥१४४॥
कामादिक वश पाप करि, पड़त नरक में प्राणि ।
सहत कष्ट सब योनि में, होत सदा हित हानि ॥१४५॥
स्वाद त्यागि करि जीभ वश, मन-इन्द्रिय करि शान्त ।
भजिय राम तब पाइये, सुख निज रूप नितान्त ॥१४६॥५२॥

इति भक्ति दयादि बिना अन्यकर्म निष्फलता प्रकरण २०

अथ विचारादि बिना हिंसा दम्भादि प्रकरण २१

शब्द ५३

पांडे बूझ पियहु तुम पानी ।
जा मटिया के घर मँह बैठे, ता मँह सृष्टि समानी ॥
छपन कोटि जहँ यादव भीजे, मुनि जन सहस अठासी ।
परग परग पैगम्बर गाड़े, सो सब सरि भौ माटी ।
ता मटिया के भाँड़े पाँडे, बूझि पियहु तुम पानी ॥

विमल ब्रह्म जल छानि के, करु मन से विहि पान ।
माया मय संसार गृह, मलिन न दो तहँ ध्यान ॥१४७॥
भूमी जल आदिक सहित, माया मय विस्तार ।
तन धनादि सब अशुचि जग, भ्रान्ति सहित व्यवहार ॥१४८॥

तजिये भ्रम कुविचार मद, झूठा सब हंकार।
करि विवेक उर धारिये, सत्य राम व्यवहार ॥१४९॥

हे पाण्डे! (ब्राह्मणों) विवेकादि पूर्वक सद्गुरु से बूझकर (पूछ समझकर) शान्ति प्रद पानी (ब्रह्मानन्द) को पीवो (अनुभव करो) उसके बिना लौकिक पानी को तुम लोग अहिंसक वैष्णवादि से बूझकर पीते हो और जिस मिट्टी के घर में बैठते हो, उसी मिट्टी में सृष्टि समाई (लीन) हुई है।

क्योंकि छप्पन कोटि यादव (यदुवंशी) जहाँ भींजे (मर कर मिल गये) अठासी हजार मुनि जन जिसमें मिल गये और परग परग (परलोक गामी मृतक) पैगम्बर जिस माटी में गाड़े गये, सो सब सड़ कर माटी हो गये और हे पांडे उसी माँटी के भाँड़े (घड़े) बनाये जाते हैं तथा घर बनाये जाते हैं। फिर घर में रहकर घड़ों से पानी भर कर क्या बूझ कर पानी पीते हो।

मच्छ कच्छ घरियार बियाने, रुधिर नीर जल भरिया।
नदिया नीर नरक वहि आई, पशु मानुष सब सरिया॥
हाड़ झरी झरि गूद गली गलि, दूध कहाँ से आया।
सो लै पाँड़े जेवन बैठे, मटियहिं छूति लगाया॥

और नदियों में मछली, कछुआ, घरिआर बीआते हैं। जिससे उनके रुधिर युक्त नीर नदी के जल में भर जाते हैं (मिल जाते हैं) अतः उस जल-युक्त नदी मानो नरक ही वह कर आई है और आती है। क्योंकि उसमें पशु मनुष्यादि सब प्राणी सड़ते हैं। और हाड़ के झरनाओं (द्वारों) से झर झर कर तथा गुदा (मांस) की गलियों (नालियों) से गल गल (चू चू) कर दूध कहाँ शुद्ध स्थान से आया और आता है। परन्तु उस पानी और दूध को लेकर पाँड़े जेमने (भोजन करने) बैठते हैं और मिट्टी में ही प्रायः छूत लगाते (मानते) हैं।

वेद कितेब छाड़ि दहु पांड़े, ई सब मन के भरमा।
कहहिं कबीर सुनहु हो पांड़े, ई सब तोहरे करमा ॥५३॥

उक्त छूत मानने में वेदादि को प्रमाण कहते हैं। उनके प्रति कहा गया है कि हे पांड़े! वेद किताब को मिथ्या प्रमाण बतलाना छोड़ दो। ई (ये) संसार के सब विपरीत व्यवहार मन के कार्य भ्रम स्वरूप हैं। और कबीर साहब कहते हैं

कि हे पांड़े श्रवणादि से समझो, समझने विना ही हिंसादि युक्त मिथ्या छूतादि के व्यवहार तेरे ही कर्म से सिद्ध हुए हैं ॥५३॥

शब्द ५४.

पांड़े अचरज एक बड़ होई ।
एक मरि मुये अन्न नहिं खाई, एक मरि सिझै रसोई ।
करि सनान देवन की पूजा, नव गुण कांध जनेऊ ।
हाँड़ी हाड़ हाड़ थारी मुख, भल षट कर्म बनेऊ ॥

विनु विचार सत ज्ञान के, अचरज होवत भारि ।
पण्डितमानी खात हैं, मांस विप्र पद धारि ॥१५०॥

समझ के विना पांड़े के कर्मों को दर्शाते हुए कहते हैं कि हे पाँड़े ! एक भारी आश्चर्य होता है कि एक घर के मनुष्य के मुये (मरने) पर, वह मरि (मुर्दा) जब तक घर में रहता है, तब तक कोई अन्न नहीं खाता है। तथा लोग प्रायः एक दिन उपवास करते हैं और एक पशु आदि की मरि (मुर्दा शव) की रसोई सिझाई (पकाई) जाती है ।

और १ स्नान, २ संध्यावन्दन, ३ जप, ४ होम, ५ देवता अतिथि की पूजा ६ वैश्वदेव रूप । या १ अध्ययन २ अध्यापन, ३ यजन, ४ याजन, ५ दान, ६ प्रतिग्रह रूप षट कर्मों के स्थान में यदि १ स्नान, २ देवपूजा, ३ प्रधान नव गुण युक्त यज्ञोपवीत को कान्धे पर धारण, ४ हाँड़ी में हाड़, ५ थाली में हाड़, ६ मुख में हाड़ का धारण रूप षट् कर्म यदि करते हो तो भली रीति से षट् कर्म बन गये, यह व्यङ्ग है ॥

धर्म कथै जहँ जीव बधै तहँ, अकरम करि मोर भाई ।
जो तुम्हरे को ब्राह्मण कहिये, काको कहिय कसाई ॥
कहहिं कबीर सुनहु हो सन्तो, भरम भूलि दुनिआई ।
अपरम पार पार पुरुषोतम, या गति बिरले पाई ॥

हे मेरे भाई ! यज्ञादि धर्मों की जहाँ कथा कहते हो वहाँ भी प्राणियों का वध करते हो। धर्म विधि की जगह में हिंसा करते हो, सो भारी अकरम (निन्दित कर्म पाप) करते हो। इस अवस्था में भी यदि तुम्हें ब्राह्मण [illegible] [illegible] तो

कसाई किसको कहा जाय। कबीर साहब कहते हैं कि इन ब्राह्मणों के समान सब संसारी भ्रम (मिथ्या) में भूला है जो इन को ब्राह्मण समझता है। और अधर्म रूप हिंसादि को धर्म समझता है। तथा असत्य संसार को सत्य समझता है। इस भ्रम से पार (रहित) हुआ कोई विरला पुरुषोत्तम (श्रेष्ठ पुरुष) अपरंपार (विभु) या गति (अपरोक्षात्मगति समता) को प्राप्त करता है और इस रहस्य को समझता है। अर्थात् निर्गुण शुद्धात्मा को हिंसादि रहित शुद्धात्मा पुरुषोत्तम ही समझ सकता है। अतः आत्मज्ञानादि के लिये अहिंसादि शौचादि रूप यम नियम का अवश्य धारण करना चाहिये ॥ ५४ ॥

शब्द ५५

जस मांस नर कि तस मांस पशु कि, रुधिर रुधिर एक साराजी।
पशु के मांस भखे सब कोई, नर ही भखे सियारा जी ॥
ब्रह्म कुलाल मेदिनी भईया, उपजि विनशि कित गइया जी।
मांस मछरिया तो पै खइये, जो खेतन में बोइया जी ॥

भक्ष्याभक्ष्य विवेक बिनु, मांसन खात गमार।
सब मांसन को एक सा। समुझत नाहिं विकार ॥१५१॥

अविवेक से पशुमांस को भक्ष्य समझते हैं। अतः विवेक के लिये कहते हैं कि जैसे मनुष्य का मांस रजोवीर्य का कार्य रूप अपवित्र होता है, वैसा ही पशु का मांस भी होता है और मनुष्य के रुधिर के समान ही पशु का रुधिर होता है। अतः सब रुधिर एकसा होता है। तो भी पशु के मांस को हिन्दू तुरुकादि सब जाति वाले खाते हैं और मनुष्य के मांस को सियार खाता है अतः नर मांस तुल्य पशु का भी सियारादि का ही भक्ष्य है, मनुष्य का नहीं।

और ब्रह्म (ईश्वर) रूप कुम्हार से भूमि हुई है, उस पर कितने मनुष्य पशु आदि प्राणी उत्पन्न नष्ट हो गये हैं। इन पशुओं के मांस को और मछलियों को मनुष्य तब खा सकता है कि जैसे अन्न को स्वयं खेत में बोकर उपजाता है, तैसे मांस मछली को उपजा सके अन्यथा नहीं।

माटी को करि देवा देवी, जीव काटि के देइयाजी।
जो तेरा है साँचा देवा, खेत चरत किन लेइयाजी ॥

कहहिं कबीर सुनहु हो सन्तो !, रामनाम नित लेइयाजी ।
जो कछु कियो जिह्वा के स्वारथ, बदल पराया देइयाजी ।।५५।।

देवोपहार के बहाने जो मांस खाते हैं, उनसे कहा गया है कि माटी के पिंडी आदि में देव-देवी की कल्पना करके सजीव शरीर को काटकर उन्हें बलिदान देते हो । तहाँ यदि तेरा देव सत्य हैं और मांसाहारी हैं, प्राणी का भक्षक और तेरा रक्षक हैं तो तेरे खेत में चरते हुए पशुओं को पकड़कर क्यों नहीं खा लेते हैं ? जिह्वा के स्वादवश ऐसे देवों की कल्पना करते हो । अतः कबीर साहब कहते हैं कि हे सन्तो ! (सज्जनो !) सुनो धर्माधर्मादि के विवेक सर्वात्मा राम के ज्ञान के लिये रामनाम नित लो । परन्तु रामनाम लेने पर भी जो कुछ जिह्वा के स्वार्थ (स्वाद) वश हिंसा किये हो सो अन्य के बदला देना ही पड़ेगा । अतः अब से भी हिंसा त्यागो, त्यागे विना रामनाम लेने पर भी बदला देना होगा । त्यागपूर्वक भक्ति से ज्ञानपूर्वक मुक्ति मिलेगी इत्यादि ।।५५।।

इति विचारादि बिना हिंसा दम्भादि प्रकरण २१

अथ कलिग्रस्त ब्राह्मण प्रेतादि प्रकरण २२

शब्द ५६

सन्तो ! पाँड़े निपुन कसाई ।
बकरा मारि भैंसा पर धावै, दिल मँह दर्द न आई ।।
करि सनान तिलक दे बैठे, विधि से देवी पुजाई ।
आतमराम पलक मँह विनशे, रुधिरक नदी बहाई ।।
अति पुनीत ऊँचे कुल कहिये, सभा माँह अधिकाई ।
इनते दीक्षा सब कोइ माँगे, हँसि आवे मोहि भाई ।।

मांसाऽऽस्वाद विमोहवश, करत घात मांसाशि ।
जो घातक सो नीच नर, नरकगामि अघ राशि ।।१५२।।

हिंसारत हो विप्र तिहि, जानिय निपुण कसाय ।
हिंसकतायुत पूज्य ह्वे, यह कछु अजब लखाय ।।१५३।।

हे सन्तो ! पूर्वोक्त कर्मवाले पाँड़े निपुण कसाई हैं। अतः बकरों को मारकर भैंसों पर धावा करते हैं और उनके दिल में दर्द (दया पीड़ा) नहीं आती है। इस प्रकार का होते पूज्य होते हैं। यह निपुणता का फल होता है।

स्नान करके तिलक लगाकर बैठते हैं। विधि से देवी की पूजा कराते हैं और बकरा आदि जीवात्मा राम को पल में विनष्ट करके रुधिर की नदी बहा देते हैं। ऐसे लोग भी अत्यन्त पवित्र ऊँच कुल के कहे जाते हैं। सभा में इनकी अधिकाई श्रेष्ठता मानी जाती है और इनसे सब कोई दीक्षा (गुरुमन्त्रादि) माँगते हैं, परन्तु हे भाई ! यह अविवेक देखकर मुझे हँसी आती है।

पाप कटन कहँ कथा सुनावहिं, कर्म करावहिं नीचे।
हम तो दोउ परस्पर देखा, यम लाये हैं खींचे (धोखे)॥
गाय बधे तेहि तुरुक कहिये, इनते क्या वे छोटे।
कहहिं कबीर सुनहु हो सन्तो! कलि मँह ब्राह्मण खोटे ॥५६॥

हिंसक ब्राह्मण पाप को कटने (निवृत्त होने) के लिये तो पुराणादि की कथा सुनाते हैं, परन्तु हिंसा आदि नीच कर्म कराते हैं तहाँ हमने तो इनके कथन और व्यवहारों को करने-करानेवाले हिन्दू, मुसलमानों दोनों को परस्पर (एक-एक के साथ दूसरे-दूसरे को) मिलाकर देखा (समझा) तो निश्चय हुआ कि इन्हें यम खींच लाया है और धोखे में डाला है। तथा ये लोग यमरूप होकर बकरे आदि को खींच लाये हैं। गौ के बध करने से मनुष्य तुरुक कहा जाता है, तो इन तुरुकों से क्या वे बकरे आदि को मारनेवाले छोटे हैं। कबीर साहब कहते हैं कि हे सन्तो! सुनो कलियुग में कलि के प्रभाव से ब्राह्मण नामधारी तुरुक से छोटे नहीं हैं। किन्तु उनके तुल्य खोंटे हो गये हैं। प्रथम के ब्राह्मण शमदमादि युक्त दयालु होते थे।

कलि का यह परभाव, विप्र शम दम नहिं जानै।
नहीं ज्ञान विज्ञान, दया दिल में नहिं आनै॥
करै सदा हठवाद, नेकु हरि सुमिरै नाहीं।
धरै धर्म हिंसादि, सत्य तप सूझत नाहीं॥
क्षमा धैर्य तजि दूर, क्रूर ह्वै कर पर निन्दा।
सब की आतम एक, सत्य नहिं भजत गोविन्दा॥
सन्त विप्र के धर्म, सत्य शौचादिक जानो।
हनूमान् हरि धर्म, सरलता अब सब आनो ॥१५४॥५६॥

शब्द ५७

यह भ्रम भूत सकल जग खाया, जिन जिन पूजा तिन जहड़ाया ।
अण्ड न पिण्ड प्राण नहिं देहा, काटि काटि जिव कौतुक येहा ॥
बकरी मुरगी दीन्हों छेवा, आगिल जन्म उन अवसर लेवा ।
कहहिं कबीर सुनहु नर लोई, भुतवक पुजले भुतवे होई ॥५७॥

यह (लोक प्रसिद्ध) भ्रम भूत (मन की भावना के अनुसार कल्पना आदि से सिद्ध प्रेत विशेष) सब अज्ञ संसारी को खाया और खाता (नष्ट करता) है। और जिन जिन लोगों ने प्रेतों को पूजा, उन्हें वह भ्रम भूत जहड़ाया (पीड़ित किया)। जिस भ्रम भूत के (अण्ड पिण्ड) अण्डज शरीर या पिण्डज शरीर नहीं रहते हैं। तथा खान पान के योग्य प्राण या देह नहीं रहते हैं। तो भी उसके लिये सजीव शरीर को काट काट कर ये अज्ञ लोग कौतुक करते हैं। परन्तु जिन बकरी मुरगी आदि पर इन लोगों ने छेव दिया (शस्त्र चलाया है) वे भी अगले जन्मों में अवसर आने पर बदला लेगें। कबीर साहब कहते हैं कि हे नर लोगों ! सुनो, भूतों को पूजने वाला भूत ही मर कर होता है। क्योंकि—

"तं यथा यथोपासते तदेव भवति। भूतानि यान्ति भूतेज्याः।"

उस एक सत्य परमात्मा को जिस जिस कल्पित भाव से उपासना करता है, उस उस रूपता को प्राप्त होता है। और भूत को पूजने वाले भूतों को प्राप्त होते हैं। यह श्रुति गीता का उपदेश है। अतः भूत पूजा त्याज्य है।

भरम भूत पूर्जाहि अधम, शौच न जानहि जोय।
होंहि भूत अघ खानि सो, तजिय सुजन सब कोय ॥१५५॥
पूजिय सन्त सुदेव को, सर्वातम हरि जोय।
अति उदार पावन परम, अहित न जाते होय ॥१५६॥५७॥

शब्द ५८

का कहं रोवों गै बहुतेरे, बहुतक मुये फिरे नहिं फेरे ॥
जब हम रोया तब न संभारा, गर्भ बास की बात विचारा ॥

भरम भूत के वश पड़ा, मरता बहु संसारि।
काकी चिन्ता कीजिये, आप मरै पर मारि ॥१५७॥

किस किस के लिये रोया जाय, इस भ्रम भूत आदि के फन्दों में बहुत लोग गये हैं और मर कर गर्भ नरकादि में प्राप्त हुए हैं। और कुमार्ग में जाकर जो बहुत लोग मुये, सो मरण पर्यन्त किसी के फेरने से भी नहीं फिरे (सुमार्ग में नहीं आये)। और जब हम (गुरुजनों) ने रोया (उनका हित उन्हे समझाया) तब उन लोगों ने नहीं सँभारा, उलटा जिससे गर्भवासादि हो उसी बात को विचारा। तथा गर्भवास में कष्ट होने पर जिस बात का विचार किया जाता है, उसका भी सँभार (स्मरण) नहीं किया। उनके लिये अब क्या रोया जाय। उन्हें तो भोक्तव्य भोगना ही होगा।

अब तैं रोया क्या तैं पाया। किहिं कारण तैं मोहि रुलाया।
कहहिं कबीर सुनहु नर लोई। कालके वशी परे मति कोई।५८।

अब गर्भादि कष्ट काल में तुमने यदि रोया तो इस रोने से तुमने क्या फल पाया और अपने रुदनादि से तुमने मुझे (अन्य को) भी किस कारण से रुलाया (अब तो स्वयं सहना उचित है)। साहब कहते हैं कि हे नर लोगों ! श्रवणादि करो और पूर्व काल की वर्तमान की चिन्ता आदि को त्यागकर सो कार्य करो कि जिससे आगे अब काल के वश में कोई तेरे संगी नहीं पड़े न तुम पड़ो ॥५८॥

शब्द ५९

को न मुवा कहु पण्डित जाना। सो समुझाय कहु मोहिं स्याना॥
मूये ब्रह्मा विष्णु महेशा। पारवती सुत मुये गणेशा॥
मूये चन्द मुये रवि केता (शेषा)। मुये हनुमत जिन बाँधल सेता॥

देहधारि सब मरत हैं, एक न मरत अनन्त।
भजिय ताहि भगवन्त को, तजिये जाका अन्त ॥१५८॥

भजि अनन्त भगवन्त को, आपहु होत अनन्त।
आवागमन विहीन नित, कहत विमल श्रुति सन्त ॥१५९॥

बहुत विद्वान् भी "भूतोऽमीदेवयोनयः" इस अमर कोशादि के अनुसार भूतों को भी पूज्यदेव अमर समझते हैं। अतः साहब कहते हैं कि अमर होने के लिये ब्रह्म लोकादि देवभावादि चाहनेवाले हे पण्डितजन ! कौन नहीं मुआ सो कहो और जिसको आपने अमर जाना है, हे सयान ! सोई मुझे समझाकर कहो।

तथा नित्यानित्यादि के विवेकपूर्वक उपदेश दो और समझो कि अनन्त कल्प के अनन्त ब्रह्मा, विष्णु, महेश, पारवती के पुत्र गणेश मर गये हैं तथा चन्द्र, सूर्य कितने मर गये या केतु भी मर गया है और हनुमान तथा जिन नल-नीलादिकों ने सेतु बाँधा था वे सब मर गये हैं और जो वर्तमान ब्रह्मा आदि ब्रह्मलोकादि में हैं सो भी मरने वाले हैं, इन सब का नाम अमर है। क्योंकि—
"यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम्। सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्॥" इत्यादि श्रुति के अनुसार ब्रह्मा आदि की उत्पत्ति होती है और जिसकी उत्पत्ति होती है उसका अवश्य मरण होता है।

मूये कृष्ण मूये कर्तारा। एक न मुआ जो सिरजनहारा।
कहहिं कबीर मुआ नहिं सोई। जाके आवागमन न होई॥५७॥

कितने कृष्ण और कर्तार (अधिकारी प्रजापति मरीचि आदि) मर गये और नये-नये रचे गये और एक वही कभी नहीं मरा न मरता है कि जो अपनी मायाशक्ति सत्ता प्रकाश से अनायास सब को सिरजने वाला सर्वात्मा सच्चिदानन्द स्वरूप विभु है। अतः कबीर साहब कहते हैं कि सोई कभी नहीं मरा न मरेगा कि जिसके आवागमन (उत्पत्ति नाश विकार क्रिया) नहीं होते हैं। अर्थात् त्रिविध भेदरहित विभु ब्रह्म ही अज-अमर सर्वात्मा है, अन्य मायामय विस्तार है॥५९॥

इति कलिग्रस्त ब्राह्मण प्रेतादि प्रकरण २२

अथ देह सरोवर के त्याग ग्रहणादि प्रकरण २३

शब्द ६०

(सुनु) हंसा प्यारे सरवर तेजे जाय।
जिहि सरवर बिच मोतिया चुंगत होते, बहुविधि केलि कराय।
सूखे ताल पुरइन जल छाड़ेवो, कमल गेल कुम्हिलाय।
कहहिं कबीर जो अबके बिछुरे, बहुरि मिलहु कब आय॥६०॥

मानव देह सुहंस हित, अति उत्तम सर आँहि।
यहाँ तृप्ति जो कर चला, सो न भुलै भव माँहि॥१६०॥

हे प्यारे हंसा (मानव तनु धारि विवेकी जीव !) इस देह सरोवर को जिस समय त्यागे जाते हो, जब यह अत्यन्त जीर्ण हो गया हो, उस समय तक भी यदि हो सके, तो सर्वात्मा हरि के श्रवणादि करो। जिस देह में स्वस्थकाल में विविध ज्ञान सुखादिरूप मोती (मौक्तिक) अमृत चुँगते रहा और बहुत प्रकार की केलि (क्रीड़ा खेल सत्सङ्गादि) करते रहा। वह ताल अब सुखने लगा। पुरइन (कमलपत्र) तुल्य नेत्र अब जल छोड़ने लगे। मन विषयभोगादि के लिये असमर्थ हो गया। मुख हृदयादि कमल कुम्हिंला गये, तो भी श्रवणादि करो। क्योंकि यदि अबकी बार इस सुन्दर सर से बिछरोगे, तो फिर कब इस मानव लोक में आकर मनुष्य तन पाकर सद्गुरु आदि से मिलोगे। कब सर्वात्मा हरि को प्राप्त करो, इसका पता नहीं है। अतः अभी आवागमन रहित पद को प्राप्त करो, काल के वश में नहीं पड़ो तो अति उत्तम है, क्योंकि—

"यस्यानुवित्तः प्रतिबुद्ध आत्माऽस्मिन् संदेह्ये.गहने प्रविष्टः।
स विश्वकृत् स हि सर्वस्य कर्ता तस्यलोकः स उ लोक एव ॥१॥
"इहैव सन्तोऽथ विद्मस्तद्वयं न चेदवेदीर्महती विनष्टिः।
ये तद्विदुरमृतास्ते भवन्त्यथेतरे दुःखमेवापि यन्ति ॥"
(बृ०४।४।१३-१४)

संदेह अनर्थ युक्त गहन (विषम) इस देह में प्रविष्ट आत्मा जिसको लब्ध (ज्ञात) होता है, वह सर्वात्मा होकर विश्वकृत् सर्वकर्ता स्वरूप हो जाता है। उसी के सब लोक हो जाते हैं और वही लोक है ॥ १ ॥ इस देह में रहते हम उसे जानते हैं। यदि नहीं जानें तो हम "अवेदीः" अज्ञ होवें और हमारा महाविनाश हो। क्योंकि उसे जानने वाले मुक्त होते हैं। और अन्य दुःख ही पाते हैं ॥ २ ॥ ६० ॥

शब्द ६१

होदारी कीलै (देउँ तोहि) गारी, तुम समुझ सुपन्थ विचारी।
घरहुं के नाह जो अपना, तिन हूँ से भेंट न सपना ॥

ज्ञान अमल जलपान करि, तृप्त यहाँ जो नाहि।
सो माया वश भ्रमत भव, सुख स्वप्नहु नहि ताहि ॥ १६१ ॥
माया दारा काम वश, भरम पड़े सब लोग।
तजि माया विभु हरि भजै, दुर्लभ पावै योग ॥ १६२ ॥

होदारी (माया दारा के प्रेमी) तुम स्वयं गाली की लै (क्यों लेते हो) स्त्री में आसक्त होकर अनादर यम यातना आदि क्यों सहते हो। या तुझे क्या लेकर गाली दूं (गाली देकर भी तुझे कैसे समझाऊँ) सब अनर्थ नीचता को तुम आप ही स्वीकार किये हो। कि जो प्रेतादि को देव मान कर हिंसा व्यभिचारादि करते हो। मैं प्रेम से कहता हूँ कि अब भी तो विचार कर तुम सत मार्ग को समझो। क्योंकि विचार रहित दारी (व्यभिचारी) को अपने घर (हृदय) के बासी आवागमन रहित नाह (स्वामी) जो है, उससे स्वप्न में भी भेंट (मुलाकात) नहीं होती है। तथा स्त्रियों को भी घर के स्वामी से स्वप्न में भी भेंट नहीं होती। अतः उन्हें भी विचार कर सुपन्थ देखना चाहिये। केवल काम परायण नहीं होना चाहिये।

ब्राह्मण क्षत्री औ बानी। तिन हूँ कहलो नहिं मानी॥
योगी औ जंगम जेते। सब आपु गहे हैं ते ते।
कहहिं कबिर एक योगी। भरमि भरमि सब भोगी॥६१॥

परन्तु आश्चर्य है कि अनादि इस कहल (उपदेश) को ब्राह्मण क्षत्रिय और बानी (वैश्य) भी नहीं मानते हैं। और योगी जंगमादि जितने वेषधारी हैं (तेते) सो सब भी माया दारा आदि को आप गहे हैं, तो अन्य को माया आदि से कैसे मुक्त करेंगें। अतः कबीर साहब कहते हैं कि एक ब्रह्मात्मा ही वस्तुतः योगी है (सर्व योगेश्वर है) और उसके ज्ञानी तद्रूपता से एक (अद्वैत) योगी है। और अन्य सब विचार के बिना माया प्रेतादि में भरम भरम कर भोगी हुए हैं। अतः सब को भ्रम रहित होने के लिये विचार कर सुमार्ग पकड़ना चाहिये।

सत्य पन्थ बिनु योगि, यतिहुँ माया वश जाई।
पूजत प्रेत मशान, विप्र क्षत्रिय विश भाई॥
चहत अमर पद नित्य, करत नित कर्महि खोटा।
भोगत विषय विकार, सहत यमके सब सोंटा॥
मानत नहि गुरु बैन, वेद के सैन न जानै।
योगी जंगम होय, भोग में रहै भुलानै॥
छुटत न तन का मोह, द्रोह नहि दिल से भागै।
हनूमान यों जानि, सदा सन्तन संग लागै॥१६३॥
तहँ नित करै विचार, तब सब भागैं दोष गण।
सूझै अपरं पार, पाये सद्गुण योग धण॥१६४॥६१॥

शब्द ६२

भँवर उड़े बक वैठे आई। रैनि गये दिवसो चलि जाई।
हल हल काँपे बाला जीवा। नहिं जानों का करिहैं पीवा ॥

भोगी के हृदयादि से, जात विवेक विचार।
मरै सदा भयभीत ह्वै, छुटै न मोह विकार ॥१६५॥
सन्तन त्यागत्त भोगिको, सेवत काग कुबुद्धि।
ताते बाढ़त मोह तम, होत न सत्य विशुद्धि ॥१६६॥

चरम कर भोग में फंसने से भोगियों के हृदय से शुभ सार ग्राही विवेकादि रूप भँवर उड़ गये, विवेकी सज्जन साथ छोड़ दिये। और बकवृत्ति (अविवेक कुपुरुष) आकर हृदयादि में बैठ गये। तथा इसी अवस्था में बालों की कालिमा गई सफेदी आ गई। तो भी भोगासक्ति नहीं नष्ट हुई। जिस से पशु आदिपन अन्धतम रात्रि के बीतने पर सुप्रकाश युक्त प्राप्त दिवस तुल्य मनुष्यता व्यर्थ चली जाती है। अतः बाला (अज्ञ परवश) बालक स्त्री तुल्य जीव हल हल (थर थर) कापते हैं और अन्त में चिन्ता करते हैं कि न मालूम हमारा स्वामी हमारी कौन दशा करेगा।

काँचे बासन टिकै न पानी, उड़ि गौ हंस काया कुम्हिलानी।
काग उड़ावत भुजा पिरानी, कहहिं कविर यह कथा सिरानी ॥६२॥

फिर जैसे काँचे बासन (घटादि) में पानी नहीं टिकता (ठहरता) है। तैसे ही विनश्वर देह में प्राणादि के नहीं ठहरने से जब इसमें से प्राणादि सहित हंस (व्यावहारिक जीव) उड़ गया, तब शरीर कुम्हिला (सूख) गया। फिर इसके भक्षक कागादि के उड़ाने में भुजा के पीड़ित होने पर भी, थोड़ी देर में इसकी कथा भी ओरा (नष्ट हो) जाती है। या भोगी-भोग से काक कुबुद्धि को उड़ाते में थक गये, कुबुद्धि नष्ट नहीं हुई और देह की कथा समाप्त हो गई। अतः प्रथम भोगासक्ति को त्यागना चाहिये, यह उपदेश है ॥६२॥

शब्द ६३

योगिया फिरि गौ नगर मँझारी। जाय समान पाँच जहँ नारी ॥
गौ देशान्तर कोइ न बतावै। योगिया गुफा बहुरि नहिं आवै ॥

भोगि गया संसार में, जहाँ गये मन प्राण।
कर्माधीनहिं गति भई, मिला न आतम ज्ञान ॥१६७॥

मानव तनु की कथा बीतने पर योगिया (संयोगी भोगी निरभिमानी एक योगी होने के बिना फिर दूसरे नगर (लोक देह) में गया और वहाँ गया कि जहाँ वासनायुक्त मनसहित पाँच ज्ञानेन्द्रियरूप नारी जाकर समाई हुई थी। अर्थात् इन्द्रियों द्वारा विषयानुभवजन्य वासना द्वारा मन जहाँ पहुँचता है, प्राणादिसहित जीव मरकर वहाँ जाते हैं। अतः वह जहाँ गया, वहाँ ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, प्राण, अविद्यादि सब नारियाँ जाकर समाई।

और मनुष्य शरीर से अन्यत्र ऐसे दुर्गम देशान्तर में गया कि जहाँ इसको कोई कुछ बता (समझा) नहीं सकता है, न पता कह सकता है कि कहाँ गया। और वह योगिया त्यक्त गुफा में फिर लौटकर नहीं आता है, न फिर शीघ्र मानव तनरूप अन्य गुफा में आता है कि जहाँ कुछ समझ सके।

जरि गौ कन्था ध्वजा गौ टूटी। भजि गौ दण्ड खपर गौ फूटी॥
कहहिं कबिर ई कलि है खोटी। जो रहे करवा (सो) निकलै टोंटी॥६३

योगिया के जाने से त्वचा देहरूप कन्था जर गई। बाल भुजा श्वासादिरूप ध्वजा टूट गये। मेरु दण्ड भग्न (नष्ट) हो गया। शिर की (खपर) खोपरी फूट गयी। कबीर साहब कहते हैं कि यह कलि (कलहमय भोगियों के संगादि, भोगदेहासक्ति) खोटी (खराब मिथ्या पापरूप) है। इसके द्वारा जो वासना धर्माधर्मादि शरीररूप करवा (पात्र) में संचित रहता है, वही मरणकाल में जीव के साथ किसी द्वाररूप टोंटी से निकलता है और उसके अनुसार जन्म, आयु, भोग फिर मिलते हैं, मुक्ति नहीं। अतः मुक्ति के लिये कुसंगादि को त्यागकर शुभ का सम्पादन करो इत्यादि ॥६३॥

इति देह सरोवर के त्याग ग्रहणादि प्रकरण २३



अथ सद्गुरु में विश्वास बिना मोहादि प्रकरण २४

शब्द ६४

नल को नहिं परतीति हमारी ।
झूठन बणिज कियो झूठा सो, पूँजि सबन मिलि हारी ॥
षट दर्शन पाखण्ड चलायो, तिरदेवा अधिकारी ।
राजा देश वड़ो परपञ्ची, रैयत रहत उजारी ॥

भोगी की सङ्गति किये, भोगी ही नर होय ।
दुख पावत ताते तजो, जो सुख चाहो कोय ॥१६८॥
भोगी की सङ्गति तजी, राम भजे सुख होय ।
विद्यानन्दहुँ पावई, अमरित सत लह सोय ॥१६९॥
खोटी संगति मोह से, नहि गुरु वच विश्वास ।
कपि सम बँधता लोभ से, करत नरक में वास ॥१७०॥
जो गुरु वच विश्वास करि, त्यागै विषय विकार ।
सो न परै भव फन्द में, राखै सुरति सँभार ॥१७१॥

कुसङ्गी मनुष्यों को हमारी (सद्गुरु की प्रतीति (ज्ञान विश्वास) नहीं होती है । न अपनी सत्यात्मा की प्रतीति होती है । अतः झूठे लोग झूठों से वणिज (व्यवहार गुरु शिष्यादि सम्बन्ध) किये । अतः सब मिलकर विवेकादि के बिना पूँजी तुल्य मनुष्यता परमतत्त्व को मन-मायादि द्वारा हार गये (नष्ट अनादर किये) नहीं पाये (पूँजी के हारने से षट दर्शनी योगी आदि पाखण्ड चलाये (मिथ्या वेषादि का प्रचार किये) जिसमें सत्त्वादि गुणात्मक त्रिदेव अधिकारी (नेता) फल दानादि के स्वामी हुए कि जिससे तीन अवस्था लोकादि फल की प्राप्ति हो सके, मोक्षदाता प्रभु नहीं मिल सके । क्योंकि राजा का देश (त्रिगुण का देश) वड़ो परपञ्ची (बहुत कपट युक्त) है । अतः ये लोग रैयत (प्रजा) को उजाड़ते रहते हैं । त्रिगुणातीत हुए बिना त्रिगुण वशवर्ती जीव कहीं स्थिति नहीं पाते हैं ।

इत ते ऊत ऊतते इत रहु, यम की साटि समारी ।
ज्यों कपि डोरि बाँधु बाजीगर, अपनी खुसी परारी ॥

इहे पेंड़ उत्पति प्रलय की, विषया सबै विकारी।
जैसे श्वान अपावन राजी, त्यों लागी संसारी ॥

और उजाड़ने से स्थिति नहीं पाने से ही इतते (इस लोक और देह से) भगकर ऊत (पर लोक पर देह में) जीव जाते हैं। और वहाँ थोड़ी देर रहने पर उजाड़ने से ऊत से (वहाँ से) भाग कर इत (यहाँ) रहते हैं। और जहाँ जाते हैं, तहाँ सर्वत्र यम की साट (कोड़ा चाबुक) समारी हुई (तैयार) रहती है। तो भी गुणों के वश में जीव इस प्रकार यम यातना सहता है, कि जैसे वानर अपनी खुसी (इच्छा) से बन्धन में लोभ मोह वश पड़ता है, तो फिर बाजीगर उस को डोरी में बाँधता है, तो कष्ट सहना होता है। वैसे ही विषयादि में राग द्वेष मोह से स्वयं बँधाने पर सब जीव को यम कर्म डोरी से बाँधता है। क्योंकि ये विषय और कामादि सब मन के विकार ही उत्पत्ति प्रलय (जन्म मरणादि) संसार के पेंड़ (जड़ मूल कारण) हैं। तो भी जैसे कुत्ता अपावन मांसादि से राजी (प्रसन्न) रहता है। वैसे ही संसारी में अपावन विषय कामादि रूप माया लगी हुई है, उस से ये राजी होते हैं।

कहहिं कबिर यह अदबुद ज्ञाना, (को) मानै बात हमारी।
अजहूँ लेउँ छोड़ाय काल सो, जो करु सुरति सम्हारी ॥६४॥

कबीर साहब कहते हैं कि यह विवेकात्मक उपदेश अद्भुत ज्ञान स्वरूप है। यदि मनुष्य हमारी बात मानै और इस उपदेश के अनुसार यदि सम्भार कर सुरत (ध्यान चिन्तन विचार) करे, कुसंग कुभोग को त्यागे, तो मैं इसको अजहूँ (अब ही) काल फांस से छोड़ालूं (गुरु वचन से अभी मुक्त हो जायँ) ॥६४॥

शब्द ६५

हरि ठग ठगत सकल जग डोला। गमन करत मोसे मुखहुँनबोला।
बालापन के मीत हमारे। हमहिं तेजि कहँ चलेहु सकारे ॥

हरि ठग के ठगते भया, जन सब डामा डोल।
बोलत वचन विचारि नहि, डरत खात झक झोल ॥१७२॥
विषय काम प्रेतादि ठग, झूठे नर ठग जानु।
राम रतन ठगि जीव को, देत शोक भय दानु ॥१७३॥

अथ सद्गुरु में विश्वास बिना मोहादि प्रकरण २४

शब्द ६४

नल को नहिं परतीति हमारी ।
झूठन वणिज कियो झूठा सो, पूँजि सबन मिलि हारी ॥
षट दर्शन पाखण्ड चलायो, तिरदेवा अधिकारी ।
राजा देश बड़ो परपञ्ची, रैयत रहत उजारी ॥

भोगी की सङ्गति किये, भोगी ही नर होय ।
दुख पावत ताते तजो, जो सुख चाहो कोय ॥१६८॥
भोगी की सङ्गति तजी, राम भजे सुख होय ।
विद्यानन्दहुँ पावई, अमरित सत लह सोय ॥१६९॥
खोटी संगति मोह से, नहि गुरु वच विश्वास ।
कपि सम बँधता लोभ से, करत नरक में बास ॥१७०॥
जो गुरु वच विश्वास करि, त्यागै विषय विकार ।
सो न परै भव फन्द में, राखै सुरति सँभार ॥१७१॥

कुसङ्गी मनुष्यों को हमारी (सद्गुरु की प्रतीति (ज्ञान विश्वास) नहीं होती है । न अपनी सत्यात्मा की प्रतीति होती है । अतः झूठे लोग झूठों से वणिज (व्यवहार गुरु शिष्यादि सम्बन्ध) किये । अतः सब मिलकर विवेकादि के बिना पूँजी तुल्य मनुष्यता परमतत्त्व को मन-मायादि द्वारा हार गये (नष्ट अनादर किये) नहीं पाये (पूँजी के हारने से षट दर्शनी योगी आदि पाखण्ड चलाये (मिथ्या वेषादि का प्रचार किये) जिसमें सत्त्वादि गुणात्मक त्रिदेव अधिकारी (नेता) फल दानादि के स्वामी हुए कि जिससे तीन अवस्था लोकादि फल की प्राप्ति हो सके, मोक्षदाता प्रभु नहीं मिल सके । क्योंकि राजा का देश (त्रिगुण का देश) बड़ो परपञ्ची (बहुत कपट युक्त) है । अतः ये लोग रैयत (प्रजा) को उजाड़ते रहते हैं । त्रिगुणातीत हुए बिना त्रिगुण वशवर्ती जीव कहीं स्थिति नहीं पाते हैं ।

इत ते ऊत ऊतते इत रहु, यम की साटि समारी ।
ज्यों कपि डोरि बाँधु बाजीगर, अपनी खुशी परारी ॥

इहै पेंड़ उत्पति प्रलय की, विषया सबै विकारी।
जैसे श्वान अपावन राजी, त्यों लागी संसारी॥

और उजाड़ने से स्थिति नहीं पाने से ही इतते (इस लोक और देह से) भगकर ऊत (पर लोक पर देह में) जीव जाते हैं। और वहाँ थोड़ी देर रहने पर उजाड़ने से ऊत से (वहाँ से) भाग कर इत (यहाँ) रहते हैं। और जहाँ जाते हैं, तहाँ सर्वत्र यम की साट (कोड़ा चाबुक) समारी हुई (तैयार) रहती है। तो भी गुणों के वश में जीव इस प्रकार यम यातना सहता है, कि जैसे वानर अपनी खुसी (इच्छा) से बन्धन में लोभ मोह वश पड़ता है, तो फिर बाजीगर उस को डोरी में बाँधता है, तो कष्ट सहना होता है। वैसे ही विषयादि में राग द्वेष मोह से स्वयं बँधाने पर सब जीव को यम कर्म डोरी से बाँधता है। क्योंकि ये विषय और कामादि सब मन के विकार ही उत्पत्ति प्रलय (जंन्म मरणादि) संसार के पेंड़ (जड़ मूल कारण) हैं। तो भी जैसे कुत्ता अपावन मांसादि से राजी (प्रसन्न) रहता है। वैसे ही संसारी में अपावन विषय कामादि रूप माया लगी हुई है, उस से ये राजी होते हैं।

कहहिं कबिर यह अदबुद ज्ञाना, (को) मानै बात हमारी।
अजहूँ लेउँ छोड़ाय काल सो, जो करु सुरति सम्हारी॥६४॥

कबीर साहब कहते हैं कि यह विवेकात्मक उपदेश अद्भुत ज्ञान स्वरूप है। यदि मनुष्य हमारी बात मानै और इस उपदेश के अनुसार यदि सम्भार कर सुरत (ध्यान चिन्तन विचार) करे, कुसंग कुभोग को त्यागे, तो मैं इसको अजहूँ (अब ही) काल फांस से छोड़ालूं (गुरु वचन से अभी मुक्त हो जायँ)॥६४॥

शब्द ६५

हरि ठग ठगत सकल जग डोला। गमन करत मोसे मुखहुँनबोला।
बालापन के मीत हमारे। हमहिं तेजि कहँ चलेहु सकारे॥

हरि ठग के ठगते भया, जन सब डामा डोल।
बोलत वचन विचारि नहि, डरत खात झक झोल॥१७२॥
विषय काम प्रेतादि ठग, झूठे नर ठग जानु।
राम रतन ठगि जीव को, देत शोक भय दानु॥१७३॥

हरि ठग (सद्गुरु सत्यात्मा से विमुख करने वाले विषयादि और वञ्चक गुरु) के ठगत (ठगने से) सब संसारी डोल गये (चंचल हुए काँप गये) तथा वञ्चक गुरु भी ठगते हुए सब संसार में भटकते हैं। कहीं भी स्थिति नहीं पाते हैं। और ठगा जाने पर कुमार्ग में गमन करते समय मोसे (सद्गुरु से) मुख से बोलते भी नहीं हैं, किन्तु पुत्र मित्रादि में ममता करते हैं। और उन से वियोग होने पर उनके लिये शोक चिन्ता विलाप करते हैं कि गमन करते समय मुख से बोला भी नहीं। तो भी सद्गुरु कहते हैं कि अरे तुम उत्कट राग कामादि के अभाव से बालपन के हमारे मित्र हो, फिर इस समय हमे त्याग कर तुम सबेरे कहां चले हो। परन्तु वह तो पुत्रादि ही की चिन्ता में रहता है कि हमें त्याग कर कहाँ चले हो।

तुमहि पुरुष वे नारि तुम्हारी। तुम्हरि चाल पाहन हुं ते भारी।
माटिक देह पवन के शरीरा। हरि ठग गठ से डरहिं कबीरा॥६५

सद्गुरु कहते हैं कि तुमही (तेरी आत्माही) सब पुरों देहों में विराजने वाला पुरुष (स्वन्तत्र) है। और जिन से मिलने चले हो वे सब परतन्त्र परिच्छिन्न वस्तु तेरी नारी (माया मात्र) हैं। परन्तु इस विवेक ज्ञान के बिना तेरी चाल (व्यवहार) पत्थर से भी भारी (अधिक जड़ता युक्त) हो गई है, देहाभिमान से तुम पत्थर से भी जड़ हुए हो। वस्तुतः तुम पत्थर से भी अधिक अचल स्वभाव वाले हो, सो समझते नहीं हो, अतः डोलते हो। क्योंकि जन्म वृद्धि आदि युक्त यह माटी आदि का कार्य रूप स्थूल देह होती है। और प्राणादि का समूह रूप रूप सूक्ष्म शरीर होता है। इनमें ही जन्ममरणादि संसार होता है, आत्मा में नहीं। परन्तु हे कबीरा! हरि ठग से आत्म रत्न के ठगा जाने से जन्मादि संसार से डरते हो। तथा ठगों से डरते हो। हमारी कहना मानकर ज्ञान की प्राप्ति कर के निर्भय मुक्त होवो।

सब अनर्थ का मूल, मान अज्ञान हि जानो।
करि विवेक तजि मान, नित्य हरि हृदय पिछानो॥
करि सद्गुरु को मीत, हित ही सब का नित कीजे।
तजि माया मद दूर, मधुर सत हित हि भनीजे॥
संशय भ्रम को त्यागि, भजिय हरि अभय अनन्ता।
सब की आतम एक, लखिय निर्मल भगवन्ता॥

गावत वेद पुराण, भजत जिहि विमल सुसन्ता ।
"हनूमान" विज्ञानि, लहहिं निजपद गुण अन्ता ॥ १७४॥६५॥

शब्द ६६

हरि ठग जगत ठगौरी लाई । हरिक वियोगे कस जियहु (रे) भाई । (को) काको पुरुष कवन (का) की नारी । अकथ कथायम दृष्टि पसारी ॥

गुरु विवेक विज्ञान विनु, बञ्चक ठगत सदाहि ।
जो पहिचानै ठगन को, सो उबरै भव माहि ॥१७५॥

उक्त हरि ठगों ने संसार में ठगौरी (माया ममता वञ्चकता) लाई (फैलाई) है । जिससे सब हरि के वियोगी हुए हैं । (अपने को हरि से वियुक्त मानते हैं) परन्तु रे भाई ? हरि के वियोग रहते तुम कैसे जीते हो । सर्बात्मा हरि के बिना कोई जी नहीं सकता है हरि के वियोग का तुझे भ्रम हुआ है, वियोग है नहीं, हरि के विना कौन किसका रक्षक पुरुष है और कौन किस की सुखदा नारी है । रक्षक सुख स्वरूप एक सर्वात्मा हरि ही है । और ये लौकिक स्त्री पुरुष तो स्वप्न तुल्य अकथ (अनिर्वाच्य अद्भुत) माया की कथा (कार्य) रूप यम दृष्टि पसारी (फैली) हुई है । आत्म दृष्टि के विना इस स्त्री पुरुष विषयक दृष्टिमात्र से यम की दृष्टि (वश) में मनुष्य प्राप्त होता है ।

(को) काको पुत्र कवन (का) को बापा । कोरे मरै को सहै सन्तापा ॥

कौन किसका प्यारा पुत्र है, कौन किसका बाप है, कौन मरता है, कौन संताप करता है और उपवास करता है । अर्थात् सब का अत्यन्त प्यारा मरणादि रहित आत्माराम ही है और ये बाहर के पुत्रादि मिथ्या माया मोह मात्र तथा यम दृष्टि रूप हैं । क्योंकि—

"मम भार्यास्ति पुत्रश्च विभवो मे पुमांस्तथा ।
वन्धवः सुहृदश्चैवं वदन्तं बाधते यमः ॥" (इतिहास समुच्चय)

मेरी स्त्री है, पुत्र विभव पुरुष वन्धु सुहृद् मेरे हैं । इस प्रकार कहते हुए को यम पीड़ित करता है ।

ठगि ठगि मूल सबन को लीन्हा । राम ठगौरी काहु न चीन्हा । कहहिं कबिर ठग सो मन माना । गई ठगौरि जब ठग पहिचाना॥६६॥

उक्त ठगों ने सब के मूल धन को ठग ठग कर ले लिया (नष्ट किया छिपा दिया) और विवेकादि के अभाव से किसी ने राम ठगौरी (रामरत्न के ठग) को चीन्हा पहचाना नहीं) उल्टा उन ठगों से ही सब का मनमाना (प्रसन्न हुआ प्रेम किया) परन्तु जो कोई जब ठग को पहिचाना, तब उससे ठगौरी दूर हो गई। अतः ठग को पहिचानना चाहिये। क्योंकि—

"विज्ञाय सेवितश्चौरो मैत्रीमेति न चोरताम्" (पञ्चदशी)

समझकर सेवित चोर ठग भी मित्र हो जाता है। चोरी नहीं करता है ॥६६॥

इति सद्गुरु में विश्वास बिना मोहादि प्रकरण २४

अथ हरिजन का व्यवहार और आत्मावलम्बन प्रकरण २५

शब्द ६७

हरिजन हंस दशा लिये डोलै। निर्मलनाम चूनि चुनिबोलै ॥
मुक्ता हल लिये चोंच लभावै। मौन रहै कि हरियश गावै ॥

हरि ठग से जिन बाँचिया, भै सो हरिजन लोग।
रहत हंस पर योग गहि, गहत न काक कुभोग ॥१७६॥
बोलत वचन सुनामयुत, नीति युक्त गहि चाल।
चलत सदा शुभ पन्थ में, मन हरि रखत सँभाल ॥१७७॥
करि विवेक तजि कुमति जिन, हरि लहिया ततसार।
सोइ हंस परहंस गुरु, जन सो परम उदार ॥१७८॥

हरि ठग से बचे हुए हरिजन (सर्वात्मा हरि के भक्त लोग) हंस दशा (विवेक मय शुद्ध धारणा) को लिये हुए संसार में परहित के लिये डोलते (विचरते) हैं। और निर्मल हरिके निर्मल नामों (शब्दों) को चून चून कर बोलते हैं (पवित्र शब्दों का ही उचारण करते हैं)। और सधर्म भक्ति ज्ञान मोक्ष रूप मुक्ताहल (मोती मणि) के ही लिये चोंच (मनोवृत्ति) को लभाते (नमाते) हैं। और मौन रहते हैं या सत्सङ्गादि में सर्वात्मा हरिके यश को ही गाते हैं।

मान सरोवर तटके बासी। रामचरण चित अन्त उदासी ॥
कागा कुबुधि निकट नहिं आवै। प्रतिदिन हंसा दर्शन पावै ॥
क्षीर नीरका करै निबेरा। कहहिं कबीर सोइ जन मेरा ॥६७॥

और शुद्ध विचार सत्सङ्ग पुण्य कथा रूप मानसरोवर के तट के निवासी होते हैं। और सद्गुरु रूप राम के चरण में चित्त रखते हैं और अन्तःकरण से उदासीन (विरक्त) रहते हैं। तथा "पादोस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्याऽमृतं दिवि" इस वेदोक्त त्रिपादामृत के चिन्तन में चित्त रखते हैं। अतः संसार रूप एक अन्त-युक्त पाद से उदासीन विरक्त रहते हैं। तथा "तस्योदिति नाम। छा० १।६।७" उस ब्रह्म का उद् नाम है। उस उद् में आसीन (ब्रह्मनिष्ठ) रहते हैं। अतः—

"ब्रह्म संस्थोऽमृतत्वमेति" ब्रह्मनिष्ठ होने से अमृतत्व (मुक्ति) पाते हैं। कुबुद्धि हिंसकादि काक तुल्य मनुष्य उनके निकट में नहीं आते हैं। न हृदय में कुबुद्धि उत्पन्न होती है। अतः वे हंस लोग प्रतिदिन सन्त सद्गुरु रूप सगुण हरि का तथा सर्वात्मा निर्गुण हरि का दर्शन पाते हैं। कुसङ्गादि के अभाव से उनके दर्शन में विघ्न नहीं होता है। कबीर साहब कहते है कि उक्त रीति से हंस दशा को पाकर क्षीर नीर तुल्य आत्मा अनात्मा सत्य मिथ्या का जो निबेरा (विवेक विचार) करते रहते हैं, निर्मल ब्रह्मनिष्ठ रहते हैं, सोई मेरा जन हैं। वे परम शान्ति पाते हैं॥ ६७॥

शब्द ६८

आपन आश कीजे बहुतेरा। काहु न मर्म पावल हरि केरा॥
इन्द्रिय कहाँ करै विश्रामा। सो कहँ गै जो कहते रामा॥

निज पौरुष सुविवेक से, पाइय अमृत एक।
निज पौरुष बिनु नहिं मिटै, संसृति स्वप्न अनेक॥ १७९॥

जो तौष्टिक लोग हंस दशा गुरु भक्ति आदि के बिना ही किसी देव नामादि मात्र से सुख शान्ति मुक्ति चाहते हैं, उनके प्रति स्वात्मावलम्बन के लिये कहते हैं कि ईश्वर सद्गुरु आदि की आशा तो स्वाभाविक होती ही है, किन्तु आपन (अपने विचार विवेकादि की) भारी बहुतेरा (बहुत) आशा करो, क्योंकि इस अपने पुरुषार्थ के बिना किसी ने हरि के मर्म (भेद) रहस्य ज्ञान को नहीं पाया। और विचारादि पुरुषार्थ के बिना इन्द्रियाँ भी भोगादि से कहाँ विश्राम करतीं (शान्ति पातीं) हैं। और विवेकादि पुरुपार्थ के बिना जो केवल रामादि नाम मात्र कहते रहे सो शान्ति आदि रहित लोग कहाँ गये (किस लोक या मुक्ति को पाये)।

सो कहँ गये जो हते सयाना। होय मृतक वहि पदहि समाना॥
रामानन्द रामरस माँते। कहहिं कबिर हम कहि कहि थाके॥६८॥

और जो सयान (चतुर) हते (थे) सो चतुराई से कहाँ गये और समझो कि ये सब मृतक होकर उसी परोक्ष वस्तु लोकादिरूप पद में समाये लीन हुए (गये) कि जहाँ की आशा करते थे। विचार, विवेक, विज्ञान के विना इस अपरोक्ष सर्वात्माराम हरि पद में नहीं समा सके। क्योंकि तटस्थ राम (ईश्वर देवादि में आनन्द माननेवाले रामानन्द तटस्थ राम के रस (प्रेम) में ही माँते रहते हैं, अतः उसी में उन्हें समाना उचित है। कबीर साहब कहते हैं कि—

"करु विचार विकार परिहरु, तरण-तारणो सोई।
कहहिं कबिर भगवन्त भजु नल, द्वितिया और न कोई॥"

इत्यादि हम कह-कहकर थाक गये, परन्तु लोग स्वात्मावलम्बी नहीं होते हैं॥६८॥

शब्द ६९

ऐसे हरि से जगत लरतु हैं। पन्नग कतहुं गरुड़ धरतु हैं॥
मूस बिलाई कैसन हेतु। जम्बुक करै केहरि सो खेतू॥

विवेकादि के विना जो संसारी तटस्थ हरि (सूर्य विष्णु आदि देव) को मानो मन्त्रादि द्वारा लड़कर वश करना चाहते हैं। सो जगत के प्राणी हरि से इस प्रकार लड़ते हैं कि जैसे पन्नग (भूमि में पड़कर चलने वाला सर्प) आकाश में उड़नेवाले सर्पों के भक्षक गरुड़ को कहीं धरता हो (धरने के लिये उद्यम करता हो)।

और यह नहीं समझते हैं कि सर्प गरुड़ के समान ही भक्ष्य-भक्ष्यक स्वरूप मूस, बिलाई का हेत (प्रेम) कैसे निवह सकता है ? तो भी जैसे जम्बुक सिंह से खेत (युद्ध) करता हो, वैसे देव से युद्ध करते हैं। देव को वश करके सुखादि चाहते हैं। भाव है कि—

"तस्मादेषां तन्नप्रियं यदेतन्मनुष्या विद्युः।" (बृ० १।४।१०)

अज्ञ मनुष्य बहुत पशु तुल्य देव के उपकारक हैं। अतः उन देवों को यह प्रिय नहीं है कि उनसे प्रेमादि नहीं रखकर मनुष्य ज्ञानी स्वतन्त्र हो जायँ, अतः प्रेमभक्तिपूर्वक आत्मज्ञान को प्राप्त करना चाहिये। हठ से देव वशीकरणादि अनर्थ का हेतु है। वैसे सर्प, चूहा, जम्बुक तुल्य मनुष्य, गरुड़, बिल्ली, सिंह तुल्य

देव से मानो युद्ध प्रेम दोनों अवस्था में नष्ट होते हैं और सर्वात्मा हरि भी—

"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।" (मुण्ड० ३।२।४)

विवेक, विराग आदि बल रहित से प्राप्त नहीं किया जा सकता है। अतः पुरुषार्थ ही कर्तव्य है।

अचरज एक देखल संसारा। श्वनहा खेदु कुञ्जर असवारा ॥
कहहिं कबिर सुनु सन्तो भाई। इहे सन्धि काहु बिरले पाई ॥६९

विचारादि पुरुषार्थ के बिना यह भी एक आश्चर्य संसार में देखा जाता है कि श्वान तुल्य मनुष्य कुञ्जरस्थ तुल्य स्वर्गस्थ देवादि, कालादि को मन्त्रादि से खदेड़ना (भगाना) चाहता है। कबीर साहब कहते हैं कि हे सन्तो भाई! तुम आत्म-श्रवणादि करो। श्रवणादि से ही इस सन्धि (भेद) को कोई बिरले समझ पाता है। अन्यथा नहीं ॥६९॥

इति हरिजन का व्यवहार और आत्मावलम्बन प्रकरण २५



अथ वर्तमान संसार की दशा प्रकरण २६

शब्द ७०

को अस करै नगर कोतवलिया। मांस फैलाय गीध रखवरिया ॥
मुस भौ नाव मञ्जार कनहरिया। सोवै दादुर सर्प पहरुआ ॥

सद्‌गुरु सत्य विवेक बिनु, जग की उलटी चाल।
याते थाके सन्त कहि, को करि सके सँभाल ॥१८०॥

विवेकादि रहित ऐसे नगर संसार में कोतवाली (मोह निवारण द्वारा रक्षा) कौन करे कि जहाँ विषयरूप मांस फैलाय (पसार) कर उसके लोलुप गीध (मन कुदेवादि) रक्षक कोतवाल किये गये हैं और मूस (चूहा तुल्य विषयासक्त निरर्थक व्यवहारी) जहाँ नाव (नाव्य) नौका से पार जाने योग्य नदी तुल्य संसारात्मक शिष्य बने हैं। गृह संसारासक्त होते भी मोक्ष चाहते हैं और मञ्जार तुल्य स्वार्थी मांसाहारी कनहार (उपदेशरूप नौका से पार करनेवाले गुरु) बने हैं और दादुर तुल्य अनन्त वासना युक्त अल्प शक्तिवाले उस गुरु देवादि के भरोसे मोह, नींद से सोये हैं। तहाँ सर्प तुल्य कुदेव भूत-प्रेतादि पहरेदार बने हैं। तथा अपने नाश के हेतु पाप कुसङ्गादिक ही रक्षक हित माने गये हैं।

बैल बियाय गाय भौ बाँझा। बछवहिं दूहै तिन तिन साँझा॥
निति उठि सिंह सियार से जूझै। कबिरक पद जन बिरला बूझै॥७०

और कुसंगादि से बैल (जड़ बुद्धि मनुष्य विवेकरहित मन) बिआता (बढ़ता) है। राग-द्वेषादि द्वन्द्वरूप पुत्र-पुत्री को पैदा करता है और गायरूप श्रुति स्मृति सत्य वाणी विद्या बन्ध्या हो गयी है। अतः बछवा (मायिक मानस कल्पित वस्तु) को लोग तीन-तीन समय दूहते हैं अर्थात् सत्यानन्द रहित में आनन्द मानकर त्रिकाल सन्ध्या के समय उसी के ध्यानादि करते हैं, सत्यानन्दस्वरूप को गुरु आदि के बिना नहीं जानते हैं कि जिसके ध्यानादि कर सकें। अतः सिंह तुल्य विवेकादि के अधिकारी मनुष्य प्रतिदिन उठकर सियार तुल्य कुदेव कुकामादि से युद्ध करता है। इन्हें वश करना चाहता है, आत्मश्रवणादि नहीं करता है। अतः इस नगर में इन सबसे भिन्न कोई विरल विवेकी जन ही सद्गुरु के उपदेश से इस अपरोक्ष निज स्वरूप को समझता है ॥७०॥

शब्द ७१

हंसा संशय छूरि कुहिया। गैया पिवै बछरुअहिं दुहिया।
घर घर सावज करै अहेरा, पारथ ओटा लेई।
पानी माँह तलफ गौ भूभुरी, धूरि हिलोरा देई॥

जो अधिकारी ज्ञान के, बिरले सन्त सचेतु।
तिन्हिं कहत गुरु नाशिये, संशय काम सहेतु ॥१८१॥
संशय नाशत जीव को, भरम अविद्या लोभ।
आशा करि स्वर्गादि की, पावत कठिन कुक्षोभ ॥१८२॥
पाई निरुज शरीर शुभ, आसन करिय सँभार।
चिदानन्दघन ब्रह्म में, वचन न गहिय असार ॥१८३॥

हे हंसा (विवेकी मनुष्य !) संशय (प्रमाण प्रमेय का संदेह) भ्रम अज्ञान सहित कुहिया (घातक) छूरी है। क्योंकि—"संशयात्मा विनश्यति" संशययुक्त मनवाला नष्ट हो जाता है और वह संशय ही सद्विद्या वाणीरूप गाय को जल तुल्य पीकर पचा देता है। तथा विद्याजन्य हित सुखरूप बछरु को दूहता है, उसके सार स्वरूप को नष्ट करता है। तथा स्वयं आनन्द दूध युक्त जीवात्मारूप

गाय संशय से मायिक वस्तुरूप बछवा को दूहता है (भोगता है) और विषयानन्द दूध पीता है। निजानन्द को नहीं जानता है।

अतः घर-घर (सब शरीर) में इन्द्रिय, संशय कामादिरूप सावज (मृग) अहेर खेलते हैं (जीवों को पीड़ित करते हैं) और पारथ (उनके रक्षक जीव) देवादि की ओट (शरण) अपनी रक्षा के लिये लेते हैं और इस संशयालु कामी के लिये आनन्दरूप पानी (निजात्मा) में भूभुर (राख में छिपी हुई अग्नि) तुल्य त्रिताप पापादि प्रतीत होने लगे हैं और धूल तुल्य विषय आनन्द के हिलोरा (तरङ्ग) देनेवाले हुए हैं (विषयों में आनन्द भासने लगे हैं)।

धरती बरषै बादल भींजे, भीठ भया पौराऊ।
हंस उड़ाने ताल सुखाने, चहले बेधा पाँऊ॥

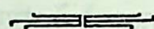
धरती (पृथ्वी) बरषती है (पृथ्वी पर मनुष्य कर्म करते हैं) उससे बादर भींजता है (स्वर्गवासी तृप्त होते हैं) अतः स्वर्गादि सुख के साधन मनुष्यलोक में होते हैं, तो भी अज्ञान संशयादि से भीठ (उन्नत शुष्क भूमि तुल्य स्वर्गादि) मनुष्यों की दृष्टि में पौराऊ (अगाध आनन्द जलयुक्त) हो गये हैं। मनुष्यों को स्वर्गादि में बहुत आनन्द भासता है। अतः स्वर्ग सुखादि की कामना, वासना सहित जीवरूप हंस प्रारब्ध के अन्त में जब इस मानव तनरूप सर से उड़ा, तब ताल (सर) तो सुख गया (नष्ट) हो गया। परन्तु ज्ञान के बिना वासना के कारण गर्भ नरकादिरूप चहले (कीचड़) में पाँव (मन) बेध (फँस) गया (मन में वासना कामादि वर्तमान रह गये।

जब लगि कर डोलै पगु चलये, तब लगि आश न कीजै।
कहहिं कबिर जो चलत नदी से, तासु वचन का लीजै॥७१॥

अतः सद्गुरु कहते हैं कि जब तक कर डोलता है (कर्म की शक्तियुक्त है) पैर में भी चलने की शक्ति है। इसी प्रकार अन्य इन्द्रिय मन शरीर स्वस्थ हैं, तब तक किसी की आशा नहीं करो। निष्काम होकर विचारादिरूप पुरुषार्थ करो। परमात्मा ने पुरुषार्थ के लिये कर-चरणादि साधन दिया है और कहते हैं कि जो स्वर्गादि नदी के समान चलायमान है, जो पुरुषादि स्वयं चञ्चल विनश्वर हैं। उनके बोधक या उनसे कथित वचनों को क्या धारण करते हो अचल तत्त्व के बोधक किसी अचल ज्ञानी के वचनों को सुनो।

आश न, के, आसन। नदी से, के, न दीसै। पाठ भेद हैं। अर्थ है कि चलते-फिरते के समय ही आसन (आत्मस्थिति) कर लो और जिसको चलते-फिरते में कुछ नहीं दीखता हो, मरने पर मोक्ष कहता हो, उसके वचनों को नहीं सुनो। जीवन्मुक्ति के लिये यत्न करो इत्यादि ॥७१॥

इति वर्तमान संसार की दशा प्रकरण २६



अथ निराकार के ज्ञान बिना साकार संसारासक्ति प्रकरण २७

शब्द ७२

सावज न होय भाई सावज न होई। वाके मांसु भखै सब कोई॥
सावज एक सकल संसारा, अविगति वाकी बाता।
पेट फारि जो देखिय भाई, नाहिं कलेज न आँता॥

निराकार निरवद्य सत, ब्रह्म सदा सुखराशि।
ताके बोधक शब्द सत, पाय लहिय अविनाशि ॥१८४॥
सार शब्द से हृदय में, जानिय लक्ष्य अनूप।
विगतावयव अखण्ड अज, त्यागिय वस्तु कुरूप ॥१८५॥

आशा वासनादि की निवृत्ति के लिये ज्ञानाधिकारी के प्रति उपदेश है कि हे भाई! यद्यपि वेद उपनिषद् में ब्रह्म आत्मा को सावज तुल्य लक्ष्य पक्षी (सुपर्ण) आदि शब्द से कहा गया है। तथापि वह अचल अखण्ड ब्रह्मात्मा कभी सावज तुल्य साकार नहीं होता है। क्योंकि साकार होगा तो कहीं एक देश में रहेगा। और उसके मांसु (ममता विषयक सुन्दर आनन्द) को सब प्राणी भखते (भोगते) हैं। अतः वह एक (निरवयव अद्वैत) सावज (लक्ष्य) सब संसार में व्यापक है। उसकी बात भी अविगति (अगम्य अथाह) है सब के समझने योग्य नहीं है। यदि पेट फार कर देखा जाय (हृदय में विवेक करके समझा जाय) तो उसमें कलेज आँतादि कुछ नहीं प्रतीत होते हैं। क्योंकि ये सब शरीर के अवयव हैं, आत्मा के नहीं। इनमें रहते भी आत्मा इनसे रहित असङ्ग है।

ऐसी वाकी मांसु रे भाई, पल पल मांसु बिकाई।
हाड़ गोड़ नहिं घूर पवारे, आगि धुआँ नहिं खाई॥

शीर शींग कछुवो नहिं वाको, पूंछ कहाँ वह पावै ।
सब पण्डित मिलि धन्धे परिया, कबिर बनौरी गावै ॥७२॥

उसका ऐसा मांसु (ममता विषय आनन्द) है कि पल पल में बिकता है। कर्मादि द्वारा सदा सब प्राणी उसी आनन्दांश को प्राप्त करते हैं, तो भी वह अक्षय एक रस रहता है। और उस सावज के हाड़ गोड़ घूर (कूड़ा खाने) में पवारे (डाले बीगे) नहीं जाते हैं। क्योंकि उसमें हाड़ादि निरसांश कुछ है ही नहीं। और अक्षय असङ्ग होने से उसको आग धुआँ भी नहीं खा सकते हैं, न अग्नि जला सकती है, न धूम मलिन कर सकते हैं, न वह आग धुआँ को खाता है (अपने में अग्नि आदि को सम्बद्ध नहीं होने देता है) अतः सर्वथा निर्विकार है। यद्यपि श्रुति में आनन्द मय कोश का पुच्छ रूप ब्रह्म को कहा गया है। शब्द ब्रह्म के "चत्वारि शृङ्गा त्रयोऽस्य पादा द्वे शीर्ष" चार सींग तीन पैर दो शिर कहे गये हैं। तथापि शुद्ध आनन्द स्वरूप ब्रह्मात्मा सब कोश और शब्द ब्रह्म से भिन्न है। अतः शिर रूप ध्रुव अवयव और शृङ्गादि कुछ नहीं हैं। तो वह पूँछ कहाँ कैसे पा सकता है ? इस तत्त्व को जाने बिना पुस्तकपाठी पण्डित सब भी शिर शृङ्गादि वाले को ही सत्य ब्रह्म मान कर उसके भक्ति उपासना आदि रूप धन्धोंमें पड़े लगे रहते हैं। और कवि लोग भी उसी बनौरी (बनावटी कल्पित) बात को गाते हैं। तथा कबीर साहब उसको कल्पित कहते हैं ॥७२॥

शब्द ७३

देखहु लोगा हरिकि सगाई। माय धरि पूत धिया संग जाई।
सासुननद मिलि अचल चलाई। मदरिया के घर बिटिया जाई॥
मैं बहनोइ राम मोर सारा। हमहि बाप हरि पुत्र हमारा॥

सार तत्त्व विज्ञान बिनु, माया वश अज्ञानि।
समुझत विपरीतहि सदा, रमत न रामहि जानि ॥१८६॥
माया मय देहादि में, रमत रु करत प्रलाप।
हरि सर्वेश्वर पुत्र हैं, जीवहि हरि का बाप ॥१८७॥

हे लोगों (जिज्ञासुओं !) सर्वात्मा हरि के साथ अपने सत्य सगाई (अभेद) को देखो। तथा इसके ज्ञान बिना हरिरूप जीवात्मा के कल्पित सगाई (सम्बन्ध) को देखो, कि यह माया रूप जगन्माता (अविद्या) को धारण करके अज्ञ पुत्र

होता है। अर्थात् इसका मन माया का पुत्र है। परन्तु अविद्या से जीव में पुत्रता प्रतीत होती है। और इसका मन ही माया (मायिक वस्तु) को धरता है। उसमें आसक्त होता है, तो जीव आसक्त कहा जाता है। और बुद्धि रूप धिया (पुत्री) के सङ्ग से जाता है। अर्थात् मन सहित जीव कुबुद्धि के सङ्ग से जन्म मरण गमनागमनादि वाला होता है। और मिथ्या पति की जननी मायारूप सासु और अविद्या कामना आशा आदि रूप ननद से मिलकर यह बुद्धि रूप लड़की अचल आत्मा को भी चलाकर (आत्मा में जन्म गमनादि की कल्पना करके) मदारी (मायावी) देवादि के संसार स्वर्गादि में जाती है।

और फिर दुर्बुद्धि से जीव समझता है, कि मैं (ऋष्य शृङ्ग रूप जीव) बहनोइ हूं और राम मोर (जीव का) सार (शाला) हैं। और दशरथ वसुदेवादि रूप हम (जीव) ही पिता हैं। और राम कृष्णादि रूप हरि हमारे (जीव के) पुत्र हैं।

कहहिं कबीर ई हरिके बूता। राम रमैते कुकुरिक पूता ॥७३॥

कबीर साहब कहते हैं कि जिसको तुम जीव का सार पुत्रादि समझते हो, वह विष्णुदेव का अवतार तो विष्णु देवरूप हरि का बूत (शक्ति स्वांग माया) मात्र है। सो (दश अवतार ईश्वरी माया) इत्यादि वचनों से कहा जा चुका है। ऐसा समझ कर जो विवेकी सर्वात्मा राम में रमते हैं। सो संसार स्वरूप कुकुरी (तन्तु समूह पूली) का पूत (पुत्ति तुल्य पवित्र सर्वाधार राम स्वरूप) हो जाते हैं ॥७३॥

शब्द ७४

हरि मोर पिय मैं राम कि बहुरिया। राम बड़ा मैं तन की लहुरिया॥
हरिमोर रहट मैं रतन पिउरिया। हरिके नाम लैकातिन बहुरिया॥
छौ मास ताग वरषदिनकुकुरी। लोग बोलै भल कातिन बपुरी॥

कल्पित भेदों में लगे, पति कहि गावहि आन।
लखत न हरि सर्वातमा, परम तत्त्व निर्वाण ॥ १८८ ॥

उक्त सर्वाधार सर्वात्मा हरि के ज्ञान प्राप्ति के बिना तटस्थ हरि की भक्तिवाले समझते हैं कि तटस्थ हरि मेरा प्रिय पति हैं। मैं उस रामकी बहुरिया (प्यारी स्त्री) हूँ वह राम बड़ा (सब से श्रेष्ठ) है, महान् है। मैं तन शरीर की लहुरिया (छोटी) हूं। अर्थात् हरि का शरीर भी महान् है और मेरा छोटा है और हरि मेरा रहटा (चरखा) है और मैं रतन तुल्य दीप्त पियुरी (पियुनी) हूँ। अर्थात् मेरा

मन उज्ज्वल पियुनी है। अतः मैं हरि के आश्रित रहकर सूक्ष्म सूत तुल्य स्थूल रूपता से रहित देव सुखी महान् हो सकता हूं। इस प्रकार समझकर जीवरूप वहुरिया अपने मन को सूतरूप से कातती है (हरि की भावना में मन को लगाती है) तहाँ छौ मास में ताग (चित की एकाग्रतारूप सविकल्प समाधि) किसी भाग्यवान् को प्राप्त होता है और एक वर्ष के अभ्यास से कुकुरी (ध्येयरूपता की प्राप्तिरूप निर्विकल्प समाधि) होती है। तव लोग बोलते (कहते) हैं कि यह वपुरी (देही) भला सूत काता है, अच्छा सुन्दर काम किया है। इस प्रकार वह प्रशंसनीय हो जाता है।

कहहिं कबीर सूत भल काता। हरि रहटा नहिं मुक्तिक दाता॥

कबीर साहब कहते हैं कि हरिशरण को पाकर भजन समाधि पर्यन्त सूत जीव ने भला ही काता है और कातता है। तथापि तटस्थ देवादिरूप हरि स्वयं रहटा (संसार कूप में बार-बार आने-जानेवाले रहट) हैं और अपने आश्रित को भी संसारचक्र में भ्रमाने वाले समर्थ पुरुष माने गये हैं। अतः मुक्ति को देनेवाले नहीं हैं अर्थात् अचल सर्वात्मस्वरूप हरि के ज्ञानादि के विना किसी के देने से मुक्ति नहीं मिलती है। अतः विवेक वैराग्यादिपूर्वक सर्वात्मा हरि ज्ञातव्य संभजनीय हैं। मुक्ति के लिये अन्य सेवनीयादि नहीं हैं। चित्त की एकाग्रता शुद्धि आदि के लिये निष्कामतापूर्वक भजनार्ह होते हैं॥७४॥

शब्द ७५

नरहरि लागि दव विकार कोई, मिलन बुझावन हारा।
मैं जानों तोही सो व्यापे, जरत सकल संसारा॥

निर्विकार हरि मिलन बिनु, लागा काम विकार।
जरता ताते जगत में, जीव न पावत पार॥१८९॥
निर्विकार हरि ज्ञान बिनु, सुख में दुःख दरशाय।
बाँधत गुण सब जीव को, कपट फाँस मन लाय॥१९०॥
गुण कृत बन्धनसहित सब, ईश देववश होंहि।
ज्ञानी की हरि आतमा, ईश देव सब सोहि॥१९१॥

हे नरहरि! (हे श्रेष्ठ नर!) उक्त अचल सर्वात्मा के ज्ञानादि बिना तुम में कामादि विकाररूप दव (वनाग्नि) लगी है या हे नर! (मनुष्यों) विकार

(कार्य) रूप हरि (चित्त हरणशील माया) रूप दावाग्नि संसार में लगी है और सद्गुरु आत्मज्ञान के बिना उस अग्नि को बुझाने (शान्त करने) वाला कोई नहीं मिलता है। यद्यपि तुम स्वर्ग देवादि में सुखशान्ति समझते हो, अतः स्वर्गादि की इच्छा करते हो तथापि मैं अच्छी तरह से जानता हूँ कि तो ही सो (तेरे ही समान) संसारभर में यह अग्नि व्याप्त है और अज्ञान दशा में देवादि सहित सब संसार कामादि अग्नि से जल रहा है या तोही (तेरी सत्यामा) से सब जगत व्याप्त है, सो मैं जानता हूँ कि जिसके ज्ञान से सब अग्नि नष्ट हो जाती है। परन्तु विवेकादि रहित संसारी उस ज्ञान के बिना जलता है।

पानी माँह अग्नि को अंकुर, मिल न बुझावै पानी।
एक न जरै जरै नव नारी, युक्ति काहु नहीं जानी॥

आश्चर्य है कि आनन्दस्वरूप पानी (आत्मा) में ही अज्ञान से कामादि अग्नि के अंकुर संकल्पादि भासते हैं तथा तापादि अग्नि के वासना कामादि अंकुर जीवात्मा में उत्पन्न होते हैं। परन्तु उस अंकुर और अग्नि से वह पानी न मिलता है, न बुझाता है। सबको प्रकाशता है तथा सत्ता देता है। असङ्ग साक्षी बना रहता है। क्योंकि वह किसी का विरोधी नहीं है, न उसका कोई विरोधी है। अतः वह एकात्मारूप पानी किसी अग्नि से नहीं जलता है। किन्तु नव नारी (प्राणान्तःकरण) भूख, प्यास, शोक, मोह, कामादि से जलती हैं और आत्मा में अविवेक भ्रम से तापादि भासते हैं और उस भ्रम की निवृत्ति के लिये कोई अविवेकी युक्ति नहीं जानता है। विवेक के बिना भक्ति वैराग्यादि को नहीं पाता है। न ज्ञान द्वारा भ्रान्ति निवृत्त होती है। क्योंकि—

सहर जरै पहरू सुख सोवै, कहै कुशल घर मेरा।
पुरिया जरै वस्तु निज उबरै, विकल राम रंग तेरा॥
कुबजा पुरुष गले एक लागा, पूजि न मन की साधा।
करत विचार जन्म गौ खीसइ, या तन रहल असाधा॥

संसार शहर तापादि से जलता है, तो भी कुगुरु मन रूप पहरु कहता है कि हमारे घर (स्वर्गादि) में सदा कुशल (आनन्द) ही रहता है। अतः युक्ति के ज्ञान के लिये गुरु भी यत्न नहीं जानता है, तो शिष्य कैसे जान सकता है। इस प्रकार शहर के जरने से भी देह रूप पुरिया (वेष्टन कोश) ही जरी, निज

वस्तु (असङ्गात्मा) उवरी (नष्ट नहीं हुई) परन्तु हे नरहरि ! तेरा रामरूप रंग (आनन्द स्वरूप) विकल (अप्राप्त शून्य व्याकुल) की नाईं भासता है (जैसे अग्नि से सुवर्ण नहीं जले परन्तु धूम से मलिन दीख पड़े, तैसे तेरा राम स्वरूप तुझे मलिन भासता है) ।

और निजानन्द के अज्ञान अविवेकादि से एक कुवजा (टेढ़ा कुब्ज त्रिगुण) पुरुष तेरे गले मे लिपट गया है । मन कुदेवादि के वश में तुम हो गये हो । उसे स्वामी मान लिये हो । परन्तु उससे तेरे मन का साध्य (इष्ट) पूर्ण नहीं हुआ है । और अनात्मपुरुष के विचार और खिस्सा (कथा) में जन्म बीत गया । अतः यह शरीर भी असाध्य अवश ही रहा । असाध्य रोग तुल्य इसके अभिमानादि नहीं निवृत्त हुए, न इसके द्वारा मोक्ष के साधन ही हो सके, यह निष्फल गया ।

ज्ञानि बूझि जो कपट करतु हैं, तेहि अस मन्द न कोई ।
कहहिं कबिर सब नारि राम की, मोते और न होई ॥७५॥

कोई तो सर्वथा अज्ञान से त्रिगुणमय देहादि में आसक्त होकर कपटादि करते हैं । सो अधिक मन्द (नीच) नहीं हैं । परन्तु जो शास्त्रादि से धर्माधर्म आत्मानात्मादि को स्वयं परोक्ष रूप से जान कर, तथा किसी गुरु से बूझ (पूछ) कर भी प्रबल कामादि कुसङ्गादि से कपट (असत्य भाषण वञ्चना दम्भादि) करते हैं । उन मायावियों के समान कोई मन्द नहीं है। और वे मायावी सब सदा राम की (ईश्वर की) नारी बने रहते हैं । कभी स्वतन्त्र मुक्त नहीं होने पाते हैं । और कबीर साहब कहते हैं कि वह राम मोते (मेरी आत्मा) से कभी और (अन्य भिन्न) नहीं होता है—"अज्ञान कपटादि से राम को सब आत्मा से भिन्न समझते हैं । क्यों कि (मुखकछु आन हृदय कछु आना । स्वपनेहुँ काहु मोहि जाना" इत्यादि ॥ ७९ ॥

इति निराकार के ज्ञान बिना संसारसाकारासक्ति प्रकरण २७

अथ लोभ फल और आशात्याग प्रकरण २८

शब्द ७६

सुभागे केहि कारण लोभ लागे, रतन जन्म गौ खोये ।
पूर्व जन्म कर्म भूमि कारण, बीज काहे के बोये ॥

सत सुभाग्य युत ज्ञानिनर, ताहि न व्यापै लोभ ।
नर कुभाग्य युत लोभ करि, करत कपट दुख भोग ॥१९२॥
जीवन भोग कुआश तजि, राम सँभारो चित्त ।
काल कर्म वश करन को, उचित कर्म करु नित्त ॥१९३॥

कपटादि के हेतु लोभ को त्यागने के लिये उपदेश है कि हे सुभागे (सुन्दर भाग्य वाले जानकार मनुष्यों) तुम में किस कारण (फल के लिये) लोभ लगता है। किस फल के लिये लोभ करके कपटादि करते हो। इस लोभ ने तो तेरे रतन तुल्य प्रकाश मय जन्म को नष्ट किया है और तुम लोभ वश कितने बार व्यर्थ जन्म खो (गमा) गयो है।

इस जन्म से पूर्व जन्म में इस भूमिपर इस जन्म के कारण रूप कर्म वासना आदि रूप बीजों को तुम ने काहे को (किस फल के लिये) बोया। किस कारण से बोया इस बात को सोचो विचारो समझो। अर्थात् अज्ञानादि जन्य लोभ से ही जन्म के हेतु बीजों को तुमने बोया, उस लोभ को भावी हित के लिये त्यागना ही उचित है। क्योंकि—

बुन्द से जिन पिण्ड साज्यो, अग्निहुं कुण्ड रहाया ।
दशहुं मास माता के गर्भहिं, बहुरि लागली माया ॥
बालहूँ ते वृद्ध हुआ पुनि, होनी रहा सो हूआ ।
जब यम ऐहैं बाँधि चलै हैं, नयन भरी भरी रोया ॥

लोभ को नहीं त्यागने से लोभादिजन्य बीज रूप कर्म वासना आदिकों ने पिता के बिन्दु आदि से तेरे पिण्ड (देह) को साजा (सिद्ध किया) है। और अग्निकुण्ड गर्भादि में भी रखा है और रहना हुआ है। तहाँ दश मास माता के गर्भ ही में रह कर बाहर होने पर बालपन में ही पूर्वजन्म के लोभ कर्मादि कारण से ही बहुरि (फिर) भी तुम में माया (कपट ममता मोह) लग गई।

और गर्भादि जन्य दुःख भूल गये हैं। इसी प्रकार यदि लोभ युक्त मनुष्य बालक से वृद्ध हुआ और जो कुछ उसको होनी (भोग होनेवाला) रहा सो भी हुआ। परन्तु लोभादि यदि नहीं निवृत्त हुए तो अन्तकाल में जब यम (मृत्यु) आवेंगे तब बाँधकर चलावेंगे। तब उस समय लोभादि युक्त मनुष्यों को नेत्रों में आँसू भर-भरकर रोना होता है और रोया है।

जीवन की जनि आशा राखहु, काल घेरे हैं श्वासा।
बाजी है संसार कबीरा, चित चेति ढारहु पासा ॥७६॥

यदि कष्ट रोदनादि से रहित मुक्त होना चाहो तो जीवनादि की आशा नहीं रखो। आशा को त्यागकर लोभ-कपटादि को शीघ्र त्यागो। क्योंकि काल श्वासा को घेरे हुए हैं। काल के अधीन जीवन है, स्वाधीन नहीं और हे कबीरा! इस मानव का संसार (व्यवहार) जूआ के बाजी (दाव) रूप है। अतः चित्त में चेतकर (सावधानी से समझकर) पासा ढारो अर्थात् सावधानी से लोभ, कपट दुश्चरित्रादि को त्यागकर उचित कर्मादिपूर्वक त्रिगुण पर असङ्ग आत्मा में मन को स्थिर करो कि जिससे मोक्षश्री का लाभ हो ॥७६॥

शब्द ७७

(बाबू) ऐसो है संसार तिहारो, ईहे कलि व्यवहारो।
को अब अनुख सहै निशिदिन को, नाहीं रहनि हमारो॥
स्मृति सोहाय सब कोइ जानै, हृदया तत्त्व न बूझै।
निर्जिव आगे सर्जिव थापे, लोचन कछू न सूझै॥

काम क्रोध लोभादिमय, दुःखद यह संसार।
तजि याको सज्जन चलैं, दुर्जन लें शिरभार ॥१९४॥
तजि अमरित विष को गहै, हिंसा करै कुबुद्धि।
निज आतम पर जीव की, लहै न एक विशुद्धि ॥१९५॥

हे बाबू! (प्रियसुज्ञ मनुष्यों!) ऐसो (लोभ, आशा, कामादिमूलक) तेरा यह जन्मादिरूप संसार है और कलि का व्यवहार भी ईहे (लोभादिमूलक) प्रत्यक्ष अनर्थरूप है। अब (विवेकावस्था में) निशिदिन (रात-दिन प्रतिदिन)

के अनुख (असह्य ताप, क्रोध, विग्रहादि) को कौन सहै ? इसमें हमारी रहनी (धारणा) नहीं रहती है। क्योंकि सोहाय (अपने-अपने मन के अनुकूल सुन्दर लगनेवाली) स्मृति (धर्मशास्त्र) को सब कोई जानते हैं। परन्तु हृदय के तत्त्व सत्यात्मा अहिंसा आदि सत्यधर्म को नहीं समझते हैं, न अपने सुख-दुःख आत्मादि के तुल्य सबके सुख-दुःखादि को समझते हैं। अतः निर्जीव मूर्ति आदि के आगे सजीव प्राणी को थापते (अर्पण करते) हैं। इन्हें आँखों से सजीव निर्जीवादि प्रत्यक्ष वस्तु नहीं कुछ सूझती है, तो हृदय के तत्त्व को तो ये कलि के मनुष्य कैसे कब समझेंगे ? अतः ऐसे व्यवहार वालों के संग का त्याग ही उचित है।

तजि अमृत विष काहेक अँचवै, गाँठी बाँधे खोटा।
चोरन दीन्हों पाट सिंहासन, साधुन से भौ ओटा॥
कहहिं कबीर झूठहि मिलि झूठा, ठगहिं ठग व्यवहारा।
तिनि लोक भरिपूरि रहो है, नाहीं है पतियारा॥७७॥

यदि ये हृदय के तत्त्व को समझते तथा आँखों से कुछ सूझता, तो अमृतरूप सत्यात्मा दया-धर्मादि को त्यागकर, विषयादि विष काहे को (क्यों) अँचवते (पीते) और हिंसा, कामादि खोटों (असत् तुच्छों पापों) को क्यों गाँठी (हृदय) में बाँधे रहते, समझने-बूझने के बिना ये अनर्थ करते हैं और इसी से चोरों (अज्ञों) को पाट सिंहासन दिये हैं (सुन्दर वस्त्र राजासन दिये हैं) तथा काम, लोभादि को हृदय में स्थान दिये हैं और साधुन (सद्गुरु सन्त और विवेकादि) से ओट (भेद परदा) भया है। उनसे छिपते हैं, सन्मुख नहीं जाते हैं। कबीर साहब कहते हैं कि इस प्रकार झूठों से मिलकर झूठे लोग रहते हैं तथा ठगों के साथ ठग का व्यवहार होता है और कलि में ऐसा ही व्यवहार तीनों लोक में भरपूर (व्याप्त परिपूर्ण) हो रहा है। सत्य का पतियार (विश्वास) नहीं है, तो मेरा रहनादि कैसे हो ॥७७॥

इति लोभ फल और आशा त्याग प्रकरण २८

अथ त्रिगुण पर हरिभक्ति आदि प्रकरण २९

शब्द ७८

राम गुण न्यारो न्यारो न्यारो ।
अबुझा लोग कहाँ लगि बूझै, बूझनिहार विचारो ॥
केतिक रामचन्द्र तपसी से, जिन यह जग भरमाया ।
केते कान्ह भये मुरलीधर, तिन भी अन्त न पाया ॥

हृदयामृत के पान हित, गुण निषेधि सुख थापि ।
उपदेशत गुरु शिष्य को, त्यागि गुणन लखु व्यापि ॥१९६॥
राम नित्य व्यापक विमल, सो हरि आतम एक ।
मायाकृत गुण अन्त नहिं, तिनका करिय विवेक ॥१९७॥

सर्वात्मा देशकाल वस्तु कृत अन्त रहित अनन्त निर्गुण राम, मायिक तीन गुणों से अत्यन्त न्यारा (भिन्न विलक्षण असंग) है और मायी ईश्वर के गुण (सर्वज्ञत्व, सर्वशक्तिमत्त्व, सर्वकर्तृत्व) भी सब संसारी जीवों से अत्यन्त विलक्षण है । इस अर्थ को अबुझा (सर्वथा गुरु विमुख अविवेकी) लोग कहाँ तक समझ सकते हैं ? अर्थात् नहीं समझ सकते हैं । किन्तु बूझनिहार (विवेकी गुरुमुख) लोग इस तत्त्व का अवश्य विचार करो ।

तपसी से (तपस्वी के समान) कितने रामचन्द्र हो गये, जिन्होंने इस संसार में लोक रक्षा आदि के लिये आप भ्रमण किया तथा अन्य को भी भ्रमण करवाया या अपने चरित्रों से संसार को भरमाया (चकित किया) और कितने मुरलीधर कान्हा (कृष्ण) हो गये । परन्तु उन लोगों ने भी राम के देशादि कृत अन्त को नहीं पाया । क्योंकि उसका अन्त है नहीं । वही विभु सर्वात्मा अमृत है, उससे अन्य अन्त वाले मर्त्य हैं ।

केते मच्छ कच्छ बाराह सरूपी, वामन नाम धराया ।
केते बौध भये निकलंकी, तिन भी अन्त न पाया ॥
केते सिध साधक संन्यासी, जिन बनवास बसाया ।
केते मुनि जन गोरख कहिये, तिन भी अन्त न पाया ॥

कितने मत्स्य, कच्छप, वराह स्वरूप अवतार हो गये, वामन नाम धराने वाले हुए। कितने बुद्ध कल्कि हो गये। परन्तु उन लोगों ने भी राम का अन्त नहीं पाया। कितने सिद्ध साधक (अभ्यासी) संन्यासी हुए और जिन लोगों ने बन में वास बसाया (किया) सो वानप्रस्थ तपस्वी हो गये, कितने मुनि लोग और गोरख (जितेन्द्रिय योगी) हो गये परन्तु उन लोगों ने भी अन्त नहीं पाया।

जाकी गति ब्रह्मा नहिं जानी, शिव सनकादिक हारे।
ताकी गति नल कैसे पैहैं, कहहिं कबीर पुकारे ॥७८॥

जिसकी गति (अन्त रहस्य) को ब्रह्मा नहीं जान सके और शिव, सनकादिक भी अन्त को खोजकर हार गये (थक गये) परन्तु अन्त नहीं पाये, उसकी गति (अन्त) मनुष्य कैसे पा सकते हैं ? अतः अन्त के खोज और लोभादि को त्याग कर, गमनागमनादि रहित अनन्त स्वरूप राम को गुरु से समझ कर भजना चाहिये। क्योंकि गुरु के विना भी इस मर्म को नहीं समझा जा सकता है ॥ ७८ ॥

शब्द ७९

ना हरि भजै न आदत छूटी।
शब्दहि समुझि सुधारत नाहीं, अँधरे भये हियहुँ की फूटी ॥

सद्विवेक हरिभजन बिनु, मिटै न मन का रोग।
खोजत अन्त अनन्त का, बाढ़त शोक वियोग ॥१९८॥
कामादिक तजि हरि भजै, करै सुशब्द विचार।
सद्गुरु सन्तन मिलि रहै, नाशै दुःख अपार ॥१९९॥
सद्गुरु मिलै अनन्त सुख, पावै नर सुविचारि।
सद्गुरु शब्द सुधारही, हरहिं सकल अँधियारि ॥२००॥

अनन्त विलक्षण गुण वाले या निर्गुण हरि को जब तक यह जीव नहीं भजता है, या आत्मनिष्ठ ब्रह्मनिष्ठ जब तक नहीं होता है, तब तक इसके लोभादि की अन्त खोजने की आदत (स्वभाव) नहीं छुटती है। क्योंकि हरि गुरुभक्ति के विना सार शब्द को ही समझ कर अपने को सुधारता नहीं है। लोभाहंकारादि से अविवेकादि से अपने को मुक्त विवेकी नहीं करता है। असार शब्दादि विषयों में फँसा रहता है। अतः यह अन्धा (अविवेकी) हुआ है। वाह्य वस्तु सजीव

निर्जीवादि भक्ष्याभक्ष्यादि को भी विवेक पूर्वक नहीं समझता है। और हृदय की वस्तु को समझने के लिये ज्ञान विज्ञान दृष्टि फूट गई है (प्राप्त ही नहीं हुई है) अतः आत्मा अनात्मा हिताहितादि को नहीं समझता है।

पानी माँह पषाणक रेखा, ठोकत उठे भुभूका।
सहस घड़ा नित ही जल ढारै, फिर सूखे का सूखा॥

और पानी में पषाण की रेखा (लकीर) की नाईं अभक्तों के हृदय में सदुपदेश टिकता नहीं है। अतः शब्द को समझ कर सुधारा नहीं कर सकते हैं। तथा पानी में सदा रहने वाली पत्थर की रेखा (आकार) स्वरूप के समान लोभादि युक्त अभक्त यदि सदा सत्सङ्गादि में ही रहते हैं तो भी जैसे पानी से बाहर करके पत्थर को ठोकने से उसमें से अग्नि की भुभूका (ज्योति) उठती (निकलती) है। तैसे ही शब्दादि के चोट से अभक्तों के हृदय से क्रोध लोभादि अग्नि निकलती है। शब्द से भी सुधारा नहीं होता है। क्योंकि जैसे पत्थर पर हजारो घड़ा जल प्रतिदिन ढारे जायँ, तो भी पत्थर सूखे का सूखा रहता है। तैसे श्रद्धा भक्ति आदि रहित अत्यन्त लोभादि युक्त को हजारो बार सदुपदेश दिया जाय तो उनका हृदय क्रूर ही रहता है। अतः वह शब्द को समझ कर नहीं सुधारता है। और सुधारने वाले की ज्ञानाग्नि पाषाणाग्नि तुल्य सदा व्यवहार में रहने पर भी नहीं बूझती है। पूछने पर ज्ञानी ज्ञान की बात करता है। हजारो विपत्ति में भी शोकादि रहित रहता है, रागद्वेषादियुक्त नहीं होता है।

शीतहिं शीतहिं शीत अंग भौ, सैन बाढि अधिकाई।
जो सन्निपात रोगियन मारै, सो साधुन सिधि पाई॥

अत्यन्त वृद्ध होने से या मृत्यु काल में शीत से शीत सब अंग हो गये, तो भी अभक्तों के हृदयादि में सन्निपाती रोगी के समान धनादि के सैन (इसारा मोह कामादि के फौज) ही अधिक बढ़ती है। कामादि वश मिथ्या चेष्टा करते हैं। उस समय भी भक्ति सद्भाव हृदय में नहीं आते हैं कबीर साहब कहते हैं कि जो प्रथम से त्रिगुण कृत रागद्वेष मोह काम लोभादि रूप सन्निपात रोग युक्त होते भी भक्ति विवेकादि द्वारा इस त्रिगुण त्रिदोषरूप सन्निपात को मारते हैं (ज्ञानाभ्यासादि से नष्ट करते हैं) वे ही साधु (सज्जन कुशल) लोग सिद्धि (मुक्ति) पाते हैं और पाये हैं।

अनहद कहत कहत जग विनशे, अनहद सृष्टि समानी ।
निकट पयाना यमपुर धावै, बोलै एकै बानी ॥

उक्त सन्निपात को नष्ट किये बिना जगत के प्राणी अनहद (विभु) परमात्मा को कहते कहते नाम लेते लेते भी नष्ट हुए । और जिस अनहद का नाम लेते हैं सो अनहद वस्तु सब संसार और देहों में सम स्वरूप से समाई हुई है, परन्तु उसको पाते नहीं हैं । क्योंकि (है समीप सन्धि बूझै कोई) समीप रहते भी उसके मर्म कोई कोई जानते हैं । उसकी प्राप्ति के लिये अत्यन्त निकट अपने हृदय में ही पयाना (यात्रा) की आवश्यकता है । सो यात्रा नहीं करके ये संसारी जहाँ तहाँ यमपुर में दौड़ते हैं । और केवल मुखसे एक अनहद की वाणी मात्र बोलते हैं ।

सतगुरु मिले बहुत सुख लहिया, सत गुरु शब्द सुधारै ।
कहहिं कबिर सो सदा सुखारी, जो यह पद हिं विचारै ॥७९॥

साहब कहते हैं कि यदि ऐसे जीवों को किसी भाग्य वश सद्गुरु मिल जायँ, तो इन्हें बहुत सुख का लाभ हो । तथा जिन्हें सद्गुरु मिल चुके हैं, उन लोगों ने बहुत अनन्त सुख का लाभ किया है । क्योंकि जो इस सद्गुरु के पद (सत्य शब्द आत्मा स्वरूप) को ही विचारता है, अन्य शब्द जाल में नहीं फँसता है । उसको सद्गुरु का शब्द सुधार देता है (काम लोभादि रहित पवित्र ज्ञानी कर देता है) अतः वह सदा सुखी रहता है ॥७९॥

इति त्रिगुणपर हरिभक्ति आदि प्रकरण २९



अथ राम में रमण विना दण्ड भ्रमादि प्रकरण ३०

शब्द ८०

राम न रमसि कवन दण्ड लागा, मरि जैवे का करवे अभागा ॥
कोइ तपसी कोइ मुण्डित केशा, पाखण्ड भरम मन्त्र उपदेशा ॥

मोह तिमिर से रहित ह्वै, राम रमै जो सन्त ।
ताके मिटैं उपाधि सब, मिलै सकल सुख अन्त ॥२०१॥

राम रमण से शूल युत, दण्ड ताप नशि जाय।
निज अभाग्य वश मूढ़ जन, तहाँ नहीं मन लाय ॥२०२॥

वेदादिक पढ़ि वेष धरि, कुटुंम स्वजन प्रतिपालि।
करत गर्व नहिं हरि भजत, पड़त भरम यम जालि ॥२०३॥

इस सर्वात्मा राम को विचारने से मनुष्य सदा सुखी होता है। तो भी जो कोई सर्वात्मा राम में नहीं रमते हो, तो कहो कि इस रमण में कौन दण्ड लगता है (क्या हानि प्रतीत होती है) कि जिससे नहीं रमते हो। हानि कोइ नहीं है, तो भी तुम अभागे हो कि जिससे नहीं रमते हो। रे अभागा मर जायगा तब क्या करेगा, अभी जितना हो सकता हो उतना राम भजन करो। आश्चर्य है कि सर्व सुख प्रद रामरमण नहीं करके कोई तपसी बनते हैं, कोई केश मुड़ा कर संन्यासी बनते हैं और पाखण्ड रूप वेप और भ्रम रूप मन्त्रों का उपदेश सिद्धि आदि के लिये करते हैं।

विद्या वेद पढ़ि करै हंकारा, अन्त काल मुख फांकै छारा।
दुखित सुखित ह्वै कुटुम जेमावै, मरणकाल एकसर दुख पावै ॥

जो कोई राम रमण रहित होते हैं, सो विद्या वेदादि को पढ़कर भी देह विद्यादि के अहंकार करते हैं। अतः अन्त काल में मुख से छार फांकते हैं (कष्ट भोगते हैं)। राम में रमणे वाले वेदादि को पढ़ कर भी सब अहंकार से रहित होकर अन्त में विदेह मुक्त होते हैं।

और जो लोग मरण पर्यन्त दुःखित सुखित होकर अन्याय से भी द्रव्यों का उपार्जन करके कुटुम्बों को जेमाते (खिलाते) हैं। वे भी राम में रमण के बिना अन्त काल में अकेले ही दुःख पाते हैं, कोई कुटुम्ब सहायक नहीं होता है और राम भजन सर्वत्र सदा सहायक होता है।

कहहिं कबिर ई कलि है खोटी, जो रह करवा स निकलै टोंटी ।८०।

कबीर साहब कहते हैं कि यह कलि युग खोट (हीन) काल है कि जहाँ राम रमण नहीं होता है। अतः जो धर्माधर्म शरीर रूप करवा (मृतिका पात्र) में उपार्जित रहता है, सोई मरण काल में किसी द्वार रूप टोंटी द्वारा जीव के साथ निकलता है, फिर उसके अनुसार शरीर भोगादि मिलते हैं, मोक्ष नहीं ॥८०॥

शब्द ८१

हरि बिनु भरम बिगुरचे गन्दा ।
जहँ जहँ गये अपन पौ खोये, तेहि फन्दे बहु फन्दा ॥
योगी कहै योग है नीको, द्वितीया और न भाई ॥
लुञ्चित मुण्डित मौन जटाधर, तिनहुं कहाँ सिद्धि पाई ॥

सर्वातम हरि ज्ञान बिनु, बढ़ै भरम अति हीन ।
तजै मोह अभिमान जब, तब लांघै तनु तीन ॥२०४॥

सर्वात्महरि सद्गुरु की भक्ति अनुभूति के बिना संसार में गन्दा (हीन पाप जनक) भ्रम बिगुरचा (फैला) है। उस भ्रम कर्मादि के वश होकर यह जीव जहाँ जहाँ गया, तहाँ तहाँ अपने पौ (दाव स्थान स्वरूप) को खोया। त्रिगुण बन्धन में पड़ा। फिर उस आत्मत्याग विमोह रूप एक फन्द (फाँस) से ममता अभिमान राग द्वेषादि रूप बहुत फन्द प्राप्त हुए।

तहाँ अभिमान वश योगी कहते हैं कि सिद्धि आदि के हेतु योग ही सबसे श्रेष्ठ सुन्दर साधन है और दूसरी हरि भक्ति आदि कोई श्रेष्ठ या मोक्ष के साधन नहीं हैं। इसी प्रकार लुञ्चित (बाल लुञ्चन वाले जैनी) मुण्डित (संन्यासी) मौनी या बुद्ध संन्यासी जटाधारी ये सब अपने अपने वेषादि को श्रेष्ठ कहते हैं। परन्तु हरि में रमणादि के बिना उन लोगों ने भी कहाँ सच्ची सिद्धि पाई। अर्थात् वेषादि मात्र से किसी ने सर्वात्मा के ज्ञान को हरि गुरु की भक्ति बिना नहीं पाया, न भ्रम निवृत्त हुआ।

ज्ञानी गुनी शूर कवि दाता, ई जो कहहिं बड़ हम ही ।
जहँ से उपजे तहईं समाने, छूटि गेल सब तब ही ॥
बायें दहिने तेजि विकारा, निज के हरि पद गहिया ।
कहहिं कबिर गुंगे गुड़ खायो, पूछे सो का कहिया ॥८१॥

ज्ञानी (शास्त्रज्ञ विद्वान्) गुनी (कला कुशल) वीर, काव्यकर्ता और दानी ये सब अपने अपने को बड़े कहते हैं, कि हमही बड़े हैं। इस प्रकार ज्ञानादि का अभिमान करते हैं। परन्तु राम रमणादि के बिना जिस गर्भादि से उपजे (जन्मे) तहईं (उसी में) जब फिर समाये (पैठे) तब ही (उसी समय) सब अभिमान

छूट गये। क्योंकि लोभादि के समान गर्व अभिमान भी जन्मादि संसार का हेतु होता है और अभिमान वश गर्भादि में प्राप्त होने पर कष्ट मोहादि से तब तक अभिमान चला जाता है। यदि प्रथम ही इसको त्यागा जाय तो ऐसी अवस्था ही नहीं हो।

अतः कबीर साहब कहते हैं कि बायें दहिने (अशुभ शुभ) लोभादि, ज्ञान अभिमानादि दोनों विकारों को त्याग कर, धर्माधर्मादि के अभिमान, उत्तर दक्षिण मार्ग की इच्छा, इन सब को त्याग कर, जिन्होंने निज कै (निज स्वरूप से) हरिपद (हरि स्वरूप वस्तु) को गहा (जाना) है। अर्थात् अनन्त हरि को निजात्मा सर्वात्मा समझा है। वे लोग गूंगों के गुड़ के समान पूछने से भी क्या कहेगें। किसकी बड़ाई किसकी निन्दा करेगें। वे तो सब को निजात्मा ही समझेगें। और निजात्मा को वाणीका अविषय जानकर चुप लगायगें ॥८१॥

शब्द ८२

ऐसो भरम विगुरचन भारी।
वेद कितेव दीन औ दोजख, को पुरुषा को नारी॥
माटी को घट साज बनाया, नादे बिन्द समाना।
घट विनशे क्या नाम धरहुगे, अहमक खोज भुलाना॥

मोहादिक के त्याग बिनु, भरम बढ़ा भव भारि।
बंधा त्रिगुण अभिमान से, छूटै राम विचारि॥२०५॥

अभिमान को नहीं त्यागने से भ्रम का ऐसा भारी विगुरचन (विस्तार वृद्धि) हुआ है, कि वह भ्रम वेद किताब दीन (धर्म) और दोजख (नरक) आदि सब ही स्थानों में फैल रहा है। द्वेष मोहादि सर्वत्र वर्तमान है। सर्व विषयक संशय विपर्यय हैं। और कौन पुरुष हैं, कौन नारी है, आत्मा में नारी पुरुषपन की प्रीतीति भी भ्रम का ही विस्तार है। क्योंकि माटी आदि भूतों के कार्य रूप यह घट (देह) रूप साज (जीव के भोग साधन) बनाया गया है। और नाद (नामादि रूप शब्द प्राण) में तथा पिता के बिन्दु में यह घट ही समाया है। अर्थात् यह देह रजो वीर्य का कार्य है। प्राण के अधीन इस की स्थिति है। और स्त्री पुरुषादि इसी के नाम होते हैं। अतः इस घट के विनष्ट होने पर जीवात्मा का कौन नाम धर सकोगे। जीवात्मा में स्त्री पुरुषादि नामों का भ्रम ही समझो। रे अहमक!

(अज्ञानी) यह स्त्री पुरुषादि नाम रहित आत्मा ही भुलाना (भूला) हुआ है या उसका खोज (मार्ग) को तुम भूले हुए हो। अतः देहादि के अभिमान करते हो। खोजकर प्राप्त करो कि जिससे सब अभिमानादि नष्ट हो जायँ। अन्यथा अज्ञ आत्मा के नामों को खोजता हुआ भटकता है।

एके त्वचा हाड़ मल मूत्रा, एक रुधिर एक गूदा।
एक बुन्द ते सृष्टि रच्यो है, को ब्राह्मण को शूद्रा॥
रजगुण ब्रह्मा तम गुण शंकर, सत्त्व गुणी हरि सोई।
कहहिं कबीर राम रमि रहिये, हिन्दू तुरुक न कोई॥८२॥

सब मानव शरीर में भी त्वचा हाड़ मल मूत्र रुधिर गूदा (मांस) आदि एक से होते हैं। और एक प्रकार के बिन्दु से सृष्टि रची गई है। तहाँ शरीर दृष्टि से भी कौन ब्राह्मणादि और कौन शूद्रादि हैं। यह सब भी भ्रम का विस्तार है।

सर्वात्मा एक हरि ही रजो गुण उपाधि से ब्रह्मा तमोगुण से शंकर होता है। और सोई सत्त्व गुणी होकर हरि (विष्णु) होता है। अतः ये नामादि भेद गुण मात्र में हैं, आत्मा में नहीं। गुण भेद से ही मनुष्यादि में भी अनन्त भेद है। आत्मा सर्वत्र एक है। अतः कबीर साहब कहते हैं कि गुण कृत भेद भ्रम अभिमान आदि को त्याग कर, सर्वात्मा राम में रम रहो, तो हिन्दू तुरुकादि कोई भेद सत्य नहीं रहेगा। और जो एक राम में रम रहे हैं, सो हिन्दू तुरुकादि किसी स्वरूप नहीं हैं, किन्तु सर्वाभिमान रहित राम स्वरूप हैं॥ ८२॥

इति राम रमण बिना दण्ड भ्रमादि प्रकरण ३०

अथ त्रिगुण कृत प्रपञ्चादि प्रकरण ३१

शब्द ८३

हंसा हो चित चेतु सबेरा। इन परपञ्च कयल बहुतेरा॥
पाखण्ड रूप रचो इन तिरगुण, तेहि पाखण्ड भुला संसारा॥
घर के खसम बधिक वै राजा, परजा का दहुं करै विचारा॥

हे हंसा अति शीघ्र ही, त्यागिय गुण अभिमान।
पाखण्ड छल परपञ्च तजि, गहु सत वचन प्रमान॥२०६॥

हे हंस ! (विवेकी जीव !) अपने चित्त में सवेरा (शीघ्र) चेतो (सावधान होकर आत्मानुभवकरो) या सवेरे चित (चेतनात्मा) को चेतो (समझो) चेतने के बिना इन तीन गुणों ने तेरे बन्धनादि के लिये बहुत प्रकार का प्रपञ्च (मोहादि का विस्तार) किया है।

और इन तीन गुणों ने पाखण्ड (वञ्चक मिथ्या संशय भ्रम अनक शरीर आकार वेषादि) को रचा है। अतः उस पाखण्ड में ही सत्यादि बुद्धि से संसारी भूला है (निज स्वरूप के विचारादि को छोड़ कर उसमें आसक्त है)।

और देह संसार रूप घर के त्रिगुण देवादिक ही खसम (स्वामी रक्षक) हैं। परन्तु अविवेकी चेत रहित प्रजा के वे राजा ही बधिक होते हैं, कष्ट देते हैं, तो बेचारी (असमर्थ उनके वश में रहने वाली) प्रजा कर ही क्या सकती है। अतः सावधान होकर उनकी अधीनता से मुक्त त्रिगुणातीत आत्मनिष्ठ होवो।

भक्ति न जानै भक्त कहावै, तेजि अमृत विष कैलन सारा।
आगे बड़े ऐसही भूले, तिनहुं न मानल कहल हमारा॥
कहल हमार गाँठि बाँधि हो, निशि वासर रहिहो हुसियारा।
ये कलि गुरु बड़े परपञ्ची, डारि ठगौरी सब जग मारा॥

त्रिगुण वशवर्ती लोग भक्ति के अहिंसा दया सत्य सन्तोष प्रेमादिमय स्वस्वरूप को नहीं जानते हैं, तो भी भक्त कहाते हैं। अतः सत्यात्मा अहिंसादि रूप अमृत को त्याग कर त्रिगुण विषय शरीरादि और हिंसा आदि विष को ही सार (सत्य धर्म) निश्चय किया है। आगे के जो बड़े लोग भी सावधानी के बिना इसी प्रकार गुण प्रपञ्चों में भूले, उन लोगों ने भी हमारा (सद्गुरु का) कहा नहीं माना (सवेरे नहीं चेता) इसी से भूले।

अतः तुम हमारी कहल (बात) को गाँठी में बाँधिहो (हृदय में रखना) और रात-दिन सावधान रहना (प्रपञ्ची और प्रपञ्च से बचना)। क्योंकि इस कलि के ये गुरु कहाने वाले भी बड़े परपञ्ची (मायावी) हैं। अतः ठगौरी (कपट की पासा) डारकर सब जगत को मारा है (आत्मविमुख करके प्रपञ्च हिंसा आदि में सब को लगाया है।

वेद कितेब छौ फन्द पसारा, तेहि फन्दे पर आपु विचारा।
कहहिं कबिर तेहि हंस न बिसरो, जामें मिले छुड़ावनहारा॥८३॥

जीवों को विश्वास दिलाने के लिये कलि के कुगुरुओं ने वेद कितावरूप दो फन्द (पास) पसारा है और उस पर अपने मनमाना अर्थ को आप ही विचारा है। अतः सद्गुरु आदि के विना ज्ञान के अभाव से स्वयं ही वे लोग "त्रैगुण्य विषया वेदाः" त्रिगुण विषयक वेदादिकृत बन्धन में पड़े रहते हैं, तो अन्य को कैसे मुक्त कर सकते हैं ? इसलिये कबीर साहब कहते हैं कि हे हंसों ! उस सद्गुरु को कभी नहीं बिसरो (भूलो) कि जिनमें त्रिगुण बन्धन को छोड़ाने वाला अनुभव मिले (अर्थात् सावधानी से ऐसे गुरु को खोजकर प्राप्त करो, फिर उस गुरु के ध्यान, सेवा आदिपूर्वक आत्मज्ञान को प्राप्त करो) इत्यादि ॥८३॥

शब्द ८४

सन्त महन्तो सुमिरहु सोई । काल फाँस ते बाँचा होई ॥
दत्तात्रेय मर्म नहिं जाना, मिथ्या साधि भुलाना ।
सलिला मथि कै घृत को काढ़िन, ताहि समाधि समाना ॥

विगत प्रपञ्च सुसन्त जन, महा सुमति युत होय ।
तारत हैं भवसिन्धु से, शरण शिष्य गह जोय ॥२०७॥
सुमिरिय ताहि सुसन्त को, सेविय प्रेम समेतु ।
जिनमें मिलै विमुक्ति कर, ज्ञान विराग सहेतु ॥२०८॥
सुमिरण युत सम्भाल बिनु, पारब्रह्म का ज्ञान ।
पावत नहिं ताते सुमिरु, सहित सँभाल सुजान ॥२०९॥

हे हंस ! सोई (उन ही) सन्त-महन्तों को सुमिरो कि जो स्वयं काल-फाँस से बचे हों और जिनमें काल-फाँस से छुड़ानेवाला अनुभव मिल सके। तथा हे सन्तो ! महन्तो ! सोई (उसी) तत्त्व हरि को सुमिरो कि जो अविनाशी हो। क्योंकि सन्त-महन्त की भक्ति और अविनाशी के स्मरण, विचार, ध्यानादि के विना दत्तात्रेयजी ने अविनाशी सत्यात्मा के मर्म (भेद रहस्य) को नहीं जाना। अतः सच्ची समाधि के विघ्नरूप मिथ्या समाधि वस्तु में भूले रहे। प्रथम मानो पानी मथकर कल्पित घृत को काढ़िन (निकाला)। अर्थात् त्रिगुण के ध्यानादि से क्षणिक शान्ति सुख को प्राप्त किया। परन्तु उससे तृप्ति नहीं हुई, तो फिर ताही (उसी) अविनाशी की समाधि में समाये (लीन हुए) और तृप्ति पाये।

गोरख पवन राखि नहिं जाना, योग युक्ति अनुमाना ।
ऋद्धि सिद्धि संयम बहुतेरी, पारब्रह्म नहिं जाना ॥
वसिष्ठ श्रेष्ठ विद्या अधिकारी, रामैसो शिष साखा ।
जाहि राम को कर्ता कहिये, तिनहुँक काल न राखा ॥

गोरखजी ने भी पवन (प्राण) को राखा (निरोध किया) जिससे समाधिस्थ हुए । परन्तु सद्गुरु स्मरण विचारादि के बिना परब्रह्म निजात्मा को प्रत्यक्ष नहीं जाना । किन्तु योग और युक्ति (तर्कादि) से अनुमानमात्र किया और योग की युक्ति तथा धारणा ध्यान, समाधि की एक विषयतारूप संयमों से ऋद्धि सिद्धि बहुत प्रकार की प्राप्त हुई, परन्तु त्रिगुण से पार ब्रह्म को गुरु स्मरणादि के बिना नहीं जाना । वसिष्ठजी अतिश्रेष्ठ ब्रह्मविद्या के अधिकारी (आचार्य्य) हुए । जिनके भगवान् रामचन्द्र ऐसे महापुरुष शिष्यरूप शाखा (वंश) हुए और विद्या आदि विभूति युक्त जिस रामचन्द्रजी को कर्ता (भगवान्) कहा जाता है, उन देही वसिष्ठमुनि और रामचन्द्रजी को भी इस भूमि में काल सदा नहीं रहने दिया । अतः गुणमय देह से रहित ही गुरु, ईश्वर, कर्ता को काल-फाँस से रहित समझो और सँभालकर उस देह रहित के स्मरणादि करो । ऋद्धि, सिद्धि आदि में नहीं भूलो ।

हिन्दू कहै हमे लै जारब, तुरुक कहै मोर पीर ।
दोनों आय दीन महँ झगरहिं, देखहिं हंस कबीर ॥८४॥

शरीर से भिन्न हरि गुरु आदि के स्वरूप को नहीं समझने के कारण देहाभिमानी हिन्दू मृत पिता गुरुजनादि के शरीर को लेकर कहता है कि इस देह को हम जलायेंगे तभी इन गुरुजनों की सद्गति होगी और तुरुक कहता है कि ये मृत देहस्वरूप मेरे पीर (गुरु) हैं, इन्हें गाड़ूँगा । गाड़ने से इनकी सद्गति होगी । इस प्रकार दोनों आकर अपने-अपने दीन (धर्म) में आत्मविवेकादि के बिना झगड़ते हैं । परन्तु हंस (विवेकी) कबीर साक्षीरूप से देखते हैं । जारने-गाड़ने के झगड़ों से उदासीन रहते हैं ॥ ८४ ॥

इति त्रिगुणकृत प्रपञ्चादि प्रकरण ३१

अथ मन को चिह्नने बिना रागादि प्रकरण ३२

शब्द ८९

ता मन को चिह्नहु रे भाई । तन छूटे मन कहाँ समाई ॥
सनक सनन्दन जयदेव नामा । भक्ति हेतु मन उनहुँ न जाना ॥
अम्बरीष प्रहलाद सुदामा । भक्त सहित मन उनहुँ न जाना ॥
भरतरि गोरख गोपी चन्दा । ता मन मिलि मिली कियो अनन्दा ॥

ज्ञान बिना मन होत है, जन्मादिक दुख हेतु ।
ज्ञान पाय अभिमान तजि, मनहिं होत भवसेतु ॥२१०॥
जन्ममरण का हेतु जो, मन लीजै तिहि जान ।
तजि ताको निज तत्त्व गहि, पाइय पद निर्वान ॥२११॥

उपदेश है कि रे भाई ! शरीर को जारने-गाड़ने के लिये क्यों झगड़ते हो, जो मन जन्म-मरणादि का तथा सद्गति आदि का हेतु (मुख्य कारण) है, उस मन को चीन्हो (समझो) कि शरीर छूटने पर कौन मन कहाँ समाता है ? क्योंकि मनोगत वासना आदि के अनुसार ही जीव को संसार गति या मुक्ति होती है। सनक, सनन्दन, जयदेव, नामा (नामदेव) के मन ही भक्ति का हेतु हुआ। परन्तु भक्तिकाल में भक्ति के हेतुरूप मन को उन लोगों ने भी नहीं जाना, किन्तु निजात्मा में भक्ति के हेतुत्व का आरोप उनके मन ने ही करवाया। आत्मा सेव्य-सेवक भाव से रहित है, परन्तु भक्तिकाल में इस तत्त्व को भुला करके ही मन से कल्पित भेद को मानकर भक्ति की जाती है। इसी प्रकार अम्बरीष प्रहलाद और सुदामा अन्य भक्तों के सहित इन लोगों ने भी भक्ति के हेतुरूप मन को नहीं जाना। भर्तृहरि, गोरख और गोपीचन्द ने योगबल से मानसविभूति को पाकर उन विभूतियों से मिल-मिलकर आनन्द का अनुभव किया। भाव है कि—

"मन माया दुइ एक है, माया मनहि समाय ।"
"माया के वश सब परे, ब्रह्मा विष्णु महेश ।
सनक सनन्दन नारदहुँ, गौरी पूत गणेश ॥"

"उनहुं न भौ उपदेश" इत्यादि वक्ष्यमाण रीति से पूर्व जन्म में निष्कामतार्थक उपदेश के अभाव से सकाम तपों के द्वारा जो सिद्धि अधिकारादि मिलते हैं, सो सब मन माया के प्रपञ्चरूप रहते हैं। मुमुक्षु को ऐसा समझना चाहिये।

जा मन के कोइ जान भेवा। ता मन मगन भये शुकदेवा॥
शिव सनकादिक नारद शेखा। तन भीतर मन उनहुँ न पेखा॥
एकल निरञ्जन सकल शरीरा। ता महँ भ्रमि भ्रमि रहल कबीरा॥

जिस मन के भेद (मर्म) को कोई अविवेकी नहीं जानता है, उस मन में विवेकी शुकदेवजी मग्न हुए। उसके अन्दर साक्षीरूप से प्रवेश किये और मन के मार्ग में नहीं भटके। शिवजी, सनकादिक, नारदजी और शेष भगवान् ने भी शरीर के भीतर बैठा हुआ मन को नहीं देखा। किन्तु अपने-अपने अधिकार पर्यन्त अधिकारों (व्यवहारों) में विचरते हुए मन को देखा। क्योंकि व्यवहार काल में अकेला मन ही निरञ्जन (समर्थ ईश्वर) होकर सब शरीरों में वर्तमान रहता है और उस मन के ही मिथ्या प्रपञ्च में सत्य बुद्धि से भ्रान्त होकर जीव सब संसार में रहा और रहता है। अतः इसके प्रपञ्च से छूटने के लिये प्रथम मन ही को समझना चाहिये कि—

(मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः।
बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं मनः ॥१॥

अमनो नाशमभ्येति मनोऽज्ञस्यतु शृङ्खला।
आत्मानं च मनस्तस्माद्वित्त भोः पुरुषोत्तमाः ॥२॥
मनो हि जगतां कर्तृ मनो हि पुरुषः परः।
मनः कृतं कृतं लोके न शरीर कृतं कृतम् ॥३॥८५॥

शब्द ८६

झगरा एक बढ़ो राजा राम। जो निरुवारे सो निर्वान॥
ब्रह्म बड़ा कि जहाँ से आया। वेद बड़ा कि जिन उपजाया॥
ई मन बड़ा कि जेहि मन मान। राम बड़ा कि रामहिं जान॥
भ्रमि भ्रमि कबिरा फिरे उदास। तीरथ बड़ा कि तीर्थक दास॥८६॥

भक्ति हेतु मन ज्ञान बिनु, मन प्रपञ्च में जीव।
भ्रमत जाति धर्मादि में, लंहत न निर्मल शीव ॥२१२॥

निर्मल शिव विज्ञान बिनु, कलह बढ़्यो जग माँहि।
नाशय ताहि विचार करि, सो सुख लहै सदाँहि ॥२१३॥

आतम बड़ कि अनातमा, धर्म गुणादिक आँहि ।
संशय कृत भव कलह है, करि विचार तजु ताहि ॥२१४॥

हे राजा राम (विवेकि जीवात्मन्) एक प्रकार का झगड़ा (संशयादिजन्य कहल) संसार में बहुत बढ़ गया है । जो कोई विवेक विचारादि से इस को निरुआरेगा (निवृत्त करेगा) सोई निर्वाण (मुक्त) होगा । झगड़ा (संशय) है कि ब्रह्म (ब्रह्मा तथा ब्राह्मणत्व) बड़ा है कि (इदं ब्रह्म । बृ० ४।५।७। यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम् । श्वेता०६।१८।) इत्यादि वचनों के अनुसार ब्राह्मणत्व और ब्रह्मा जहाँ से आते (सिद्ध होते हैं, सो परब्रह्म बड़ा है, वेद बड़ा है । कि (अस्य महतः भूतस्य निःश्वसितमेतदृग्वेदः । बृ० ३।४।१०) जिसके निःश्वास तुल्य अनायास ऋग्वेदादि होते हैं, अतः जिसने वेदों को उपजाया, सो बड़ा है। यह प्रपञ्च करने वाला मन बड़ा है, कि (येनाहुर्मनो मतम् । केन खं०१।५) (मन्वानो मनः । बृ०१। ४।७) मनको प्रकाशनेवाला, मनन शक्तिवाला बड़ा है । इसी प्रकार तटस्थ देवादि स्वरूप राम (ईश्वर) बड़ा है, कि (स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता । श्वेत० ३।१९) जो सब वेद्य वस्तु रामादि को जानता है और जिसको विषय रूप से जाननेवाला कोई नहीं है, सो बड़ा है । इत्यादि—

झगड़ा (संशय) बढ़ा है, जिससे जीव सब भ्रम में पड़ कर उदास हुआ फिरता है । इसको यह भी संशय होता है कि ऋषि मुनि सेवित जलादि रूप जड़ तीर्थ बड़ा है कि तीर्थ का सेवक बड़ा है, इत्यादि । तहाँ एक सत्य सर्वात्मा को सब से बड़ा समझ कर इन संशयों को नष्ट करने वाला मुक्त होता है । क्योंकि उक्त आत्मा के ही सत्त्व प्रकाशादि की अधिक अभिव्यक्ति से अन्य में भी बड़ापन होता है, न्यूनाभिव्यक्ति से लघुता होती है । तथा मन माया के कर्तृत्वादि आत्ममूलक ही है ॥८६॥

इति मन को चीन्हने बिना रागादि प्रकरण ३२



अथ अविकारिभगवत्स्वरूप प्रकरण ३३

शब्द ८७

चातक कहाँ पुकारै दूरी, सो जल जगत रहा भरिपूरी ॥
जेहि जल नाद बिन्द का भेदा, षट कर्म सहित उपानो वेदा ॥

शान्तिदानि रसदानि प्रिय, जो हरि हित सब काहि ।
सो सत दूर न निकट अति, जानिय निज मन माँहि ॥२१५॥
बाहर भीतर एक रस, व्यापक परमानन्द ।
ताहि भजिय तजि काम मद, दूर कहै मतिमन्द ॥२१६॥

उपदेश है कि जो सबसे बड़ा है, जिसके ज्ञान से मुक्ति होती है, हे चातक-तुल्य भक्त जीव ! विद्यारूप स्वाति नक्षत्र में प्राप्त करनेयोग्य तृप्तिप्रद मोक्षदाता उस हरिरूप जल को दूर तुम कहाँ पुकारते हो ? वह जल (तृप्तिप्रद) हरि तो जगत् में सर्वत्र भरा हुआ पूर्ण (व्यापक) है और जिस सर्वात्मा हरि में ही नाद (प्राण शब्द) और विन्दु (वीर्यादि) के भेद (कार्य विस्ताररूप नामरूप देहादि अनन्त सब संसार) हुए हैं और जिस जल में अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान और प्रतिग्रहरूप षट्कर्मों के प्रतिपादन सहित वेद सब उत्पन्न हुए हैं, उसको अन्यत्र कहाँ पुकारते-खोजते हो, वह आनन्दस्वरूप तेरे हृदय में है, यहाँ ही अनुभव करो–

"रसो वै सः । रसꣳ ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति ।" (तैति० २।७)

वह आत्मा ब्रह्म रस (आनन्द) स्वरूप है । उसी आनन्द को प्राप्त करके यह जीव आनन्दवाला होता है अन्यथा नहीं ।

जेहि जल जीव शीव का वासा । सो जल धरणि अमर परकाशा ।
जेहि जल उपजल सकल शरीरा । सो जल भेद न जानु कबीरा ॥८७॥

और जिस जल (आनन्दस्वरूप निर्गुण निर्मल सर्वात्मा ब्रह्म) में अविद्यादि युक्त व्यवहारिक जीव का तथा मायी शिव (ईश्वर) का भी वास (स्थिति) है, सो जल (वही सर्वात्मा) धरणी (पृथिवी) और अमर (स्वर्गादि) लोकों में प्रकाश करता है । सूर्य-चन्द्रादि भी उसी से प्रकाशते हैं । क्योंकि सब धरणी आदि में आत्मा ही अमर (अविनाशी) प्रकाश रूप है । अन्य सब प्रकाशों के अभावकाल में भी प्रकाशता है और जिस जल में ही सब शरीर उत्पन्न हुए हैं,

आश्चर्य है कि अत्यन्त निकटवर्ती उस जल के भेद (मर्म) को जीव नहीं जानता है और दूर के जल के लिये पुकारता है। अतः कहा जाता है कि हे जिज्ञासु जीव! उसी जल के भेद (रहस्य) को सद्गुरु विचारादि से जानो न, कि जिससे सब आशा-तृष्णादि समूल नष्ट हो जायँ—

"आत्मानं चेद् विजानीयादयमस्मीति पूरूषः।
किमिच्छन् कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत् ॥" (बृ० ४।४।१२)

यदि आत्मा को पुरुष जान जाय कि यह सर्वसाक्षी स्वरूप मैं हूँ, देहादि नहीं, तो फिर किसकी इच्छा करता हुआ किस काम के लिये शरीर को पीड़ित करेगा॥८७॥

शब्द ८८

जो पै बीजरूप भगवाना। तौ पण्डित का पूछहु आना।
कहँ मन कहँ बुधि कहँ हंकारा। सत रज तम गुण तीन प्रकारा॥

बिनु विचार दुर्मति कहैं, हैं भगवान् विकारि।
निर्विकार मतिमान् लखि, मन माया दें टारि॥२१७॥
निर्विकार हरि शुद्ध सत, माया रचत विकार।
नेति नेति कहि वेद तिहि, बोधत गुण गो पार॥२१८॥

सर्वसाक्षी अविनाशी निर्विकार होते भी जल तुल्य संसार का साधारण कारण मायात्मक शक्ति द्वारा आत्मा है, बीज तुल्य विकारी या विशेष कारणरूप नहीं है। विकारी कारण माया अविद्यादिक हैं और विशेष कारण जीवों के कर्म वासना आदिक हैं। गीता में— "बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि।" (अ० ७।१०) मुझे सब भूतों के बीजरूप जानो। यह स्वाऽभिन्न अव्यक्त (माया) की दृष्टि से कहा गया है और—"सर्वं खल्विदं ब्रह्म।" (छा० ३।१४।१) इत्यादि भी सत्ता की दृष्टि से इस सब संसार को ब्रह्मस्वरूप कहा गया है। तहाँ इस तत्त्व के ज्ञानादि के बिना ईश्वर को बीज तुल्य विकारी कारण जो कोई मानते हैं उनसे साहब कहते हैं कि जो पै (यदि) भगवान् संसार के बीजरूप हैं तो पण्डितों से भगवान् के विषय में अन्य क्या पूछते हो? जो कुछ देखते-सुनते हो, सो सब तो भगवान् ही भगवान् है। विश्व का ज्ञान ही भगवान् का ज्ञान है और जिनके निरोधादि करना हो, वे मन, बुद्धि, अहंकार और सत्त्व, रज, तमोरूप तीन प्रकार के गुण भगवान् से पृथक् कहाँ हैं? अर्थात् भगवान् परिणामी हो तो मन निरोधादि साधन व्यर्थ हैं।

विष अमृत फल फलै अनेका। बहुधा वेद कहै तरवेका ॥
कहहिं कबिर तैं मैं का जाना। को दहुँ छूटल को अरुझाना ॥८८॥

क्योंकि विष अमृत (दुःख सुख) आदिरूप अनेक फल विश्ववृक्षरूप भगवान् ही फलता है। विश्व वृक्षरूप तथा सब फल स्वरूप भगवान् होता है। तहाँ यदि वेद बहुत प्रकार से संसार से तरने के लिये साधनों को कहता भी है तो (तरवे का) तरोगे क्या, किससे तरोगे संसार भी तो भगवान् ही है और यदि वह सर्वथा संसार रूप हो गया है, जैसे दूध दही हो जाता है, तो वह भगवान् अब पृथक् रह कहाँ गया है, कि जिसको संसार से तर कर प्राप्त करोगे। यदि सुवर्ण तुल्य परिणामी भगवान् हो, तो भी तरना नहीं बन सकता है। क्योंकि उस अवस्था में तुम तरने की इच्छा वाले स्वयं भगवान् हो।

अतः कबीर साहब कहते हैं कि भगवान् से पृथक् तैं मैं यह भेद क्या समझते हो। और को दहुं (कौन कहो) कि छूटा हुआ (मुक्त) है। और कौन अरुझाना (बद्ध) है। अतः सर्वात्मा भगवान् को जल तुल्य निमित्त कारणमात्र अपरिणामी समझना चाहिये और माया अविद्यामय सुव्यवस्थित भेद को ईश्वराधीन समझना चाहिये। और मोक्ष के लिये निर्विकार एक सत्यात्मा को समझना चाहिये ॥ ८८ ॥

इति अविकारिभगवात्स्वरूप प्रकरण ३३

अथ निर्वाणपद प्रकरण ३४

शब्द ८९

बुझु बुझु पण्डित पदनिर्वान। साँझ परे कहवाँ बस भान ॥
उँच निच पर्वत ढेला न ईत (ट)। बिनु गायन तहवाँ उठेगीत ॥

गुण गोपार पद बूझिये, पण्डित करिय विचार।
माया से तहँ होत सब, नाम रूप संसार ॥ २१९ ॥

"यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छति।
तं देवाः सर्वेऽर्पितास्तदुनात्येति कश्चन ॥" (कठ २।१।९)

जिससे सूर्य उदित होते हैं, जिसमें अस्त होते हैं, उसी में सब देव, वाक्, प्राणादि स्थापित हैं। उसका अतिक्रमण कोई नहीं करता है (उस सर्वात्मा

के विना किसी की स्थिति नहीं है) अतः उस निर्विकार सर्वाधार को समझने के लिये उपदेश है कि हे पण्डित ! (जिज्ञासुजन !) अविनाशी निर्वाणपद (मोक्ष, सर्वविलय स्थान) को अवश्य समझो और समझने के लिये विचारो। समझो कि मरण सुषुप्ति रूप संध्याकाल में जीवात्मा के ज्ञान शक्ति रूप भानु (सूर्य) कहाँ बसता है।

तथा लौकिक संध्या और प्रलयकाल में सूर्यादि लोक देव कहाँ बसते हैं। यद्यपि लोक समझते हैं और लिखा भी है कि संध्या के समय ऊँचे पर्वत से सूर्य छिप जाते हैं। तथापि सूर्यादि को छिपाने के लिये या विलय के लिये ऊँच नीच कोई स्थान या ढेला ईंट आदि इतर पदार्थ नहीं हैं, किन्तु सर्वात्मा चिदाकाश ही है। और गायन के विना उसीमें अनहदादि शब्द रूप गीत उठते हैं (प्रकट होते हैं)। अतः सर्व नामरूप के आधार रूप चिदात्मा को जानो।

ओस न प्यास मन्दिर नहिं जहवाँ। सहसो धेनु दुहावै तहवाँ॥
नित्य अमावस नित संक्राँती। नित नवग्रह लागै केहि भाँती॥

उस आत्म स्वरूप में विषय रूप जल के अंश रूप ओस का सम्बन्ध नहीं होता है, न उस विषयादि की प्यास (इच्छा) होती है, न उसमें देह लोकादि रूप मन्दिर की आवश्यकता है। तो भी हजारो (अनन्तों) मनोवृत्ति प्राणवृत्ति रूप धेनु देह के अन्दर उसी स्वरूप में दुहाती हैं (आनन्द ज्ञान सत्ता प्रकाशादि रूप रसों को उस आत्मा ही में पूर्ण प्राप्त करती है) तथा सूर्य भी धेनु नामक अपने अनन्त किरणों को उसी में पूर्ण प्राप्त करते हैं।

चित्त चद्रमा का सुषुप्ति में विलयरूप तथा सुष्मणा में सूर्यचन्द्र नाड़ी का विलयरूप अमावस्या भी उसीके आश्रित सदा होती है। और जीवरूप सूर्य का इन्द्रिय पर संक्रमण (गमन) रूप श्वास प्रश्वास रूप संक्रान्ति भी आत्मप्रकाशादि से ही होती है। और पांच ज्ञानेद्रिय चार अन्तःकरण रूप अध्यात्म नवग्रह तथा बाह्य नव ग्रह उस आत्म सत्ता प्रकाश से ही लगते हैं, सो किस प्रकार लगते हैं। तथा अमावस्या संक्रान्ति किस प्रकार से होती है, इन सब को समझना चाहिये।

मैं तोहि पूछौ पिण्डत जना। हृदया ग्रहण लागु केहि खना॥
कहहिं कबिर यतनो नहिं जान। कौन शब्द गुरु लगलौकान।८९।

और हे पण्डित जन ! मैं तुम से पूछता हूँ कि हृदय के अन्दर चित्त चन्द्र में और जीव भानु में इन्द्रियरूप मोहकामादिरूप ग्रहण केहि खना (किस प्रकार)

से लगते हैं, सो समझो और जिज्ञासुओं से कहो। यदि इतनी बात भी नहीं जानते हो, तो तेरे कान में गुरु का कौन शब्द लगा है। अर्थात् चिदाकाश निजस्वरूप के अज्ञान से ही शोक मोह कामादि ग्रहण लगते हैं। अतः इनकी निवृत्ति के लिये आत्मज्ञान की प्राप्ति करके ब्रह्मनिष्ठ होवो ॥८९॥

इति निर्वाणपद प्रकरण ३४

अथ विवेक ज्ञानोपदेश प्रकरण ३५

शब्द ९०

बुझु बुझु पण्डित मन चित लाय। कबहुं भरल वहे कबहुं सुखाय॥
खण उबे खण डुबे खण अवगाह। रतन न मिलै पावै नहिं थाह॥

हे पण्डित! (विवेकिजन!) प्रथम अपने मन को ही चित्त लगा कर (सावधान होकर) खूब समझो (ता मन को चिन्हहु रे भाई) इस उक्त रीति से सुगति कुगति के हेतु रूप मन को समझकर सुगति के मार्ग में ही मन को प्रवृत्त करो और चित (चेतनात्मा) में मन लगाकर चेतनात्मा को समझो। क्योंकि समझने के बिना यह मन ही आशा, तृष्णा, वासना, मनोरथादि जल से भरी हुई नदी तुल्य होकर के भी बहता है और उसमें जीव को बहाता है और कभी ज्ञानाग्नि से सुख जाता है, (आशा आदि से रहित होता है) तब आप भी शान्त वेग रहित सुखी होता है और जीव को भी सुखी करता है। योगभाष्य में कहा गया है कि कैवल्य और संसार दोनों के लिये चित्त नदी बहती है। तहाँ विवेकमय चित्त नदी कैवल्य (मोक्ष) के लिये होती है, सोई कर्तव्य है। क्योंकि—

"चित्तमेव हि संसारस्तत्प्रयत्नेन शोधयेत्।
यच्चित्तस्तन्मयो भवति गुह्यमेतत्सनातनम् ॥१॥
चित्तस्यहि प्रसादेन हन्ति कर्मशुभाशुभम्।
प्रसन्नात्माऽऽत्मनि स्थित्वा सुखमक्षयमश्नुते ॥२॥"

(मैत्रेय्युपनिषद् १।५-६)

विवेकादि रहित अशुद्ध चित्त ही संसार स्वरूप है, अतः उसको प्रयत्न से शुद्ध करना चाहिये, क्योंकि जिस चित्तवाला होता है, तन्मय प्राणी हो जाता है, यह सनातन रहस्य है ॥१॥ और चित्त की स्वच्छता से ज्ञान द्वारा शुभाशुभ कर्मों को

नष्ट करके प्रसन्न मनवाला ज्ञानी निजात्मा में स्थिर होकर अक्षय सुख पाता है ॥२॥ और संसारात्मक चित्त नदी के सूखने के विना तथा चित्त की स्वच्छता के विना यह मन (चित्त) स्वरचित संसार से क्षण में दुःख के आने पर उवता (उपराम होता) है। फिर क्षण में सुख मिलने पर संसार में डूबता (आसक्त होता) है। क्षण में अवगाह करता है (इस संसार के थाह लेने का विचार करता है) संसार में अनन्त सुख खोजता है। परन्तु जब तक ज्ञान स्वरूप आत्मरत्न इसको नहीं मिलता है। तब तक संसार का थाह (अन्त नित्यानन्द) नहीं पाता है। अतः ज्ञानरत्न को प्राप्त करना चाहिये। क्योंकि—

नदिया नाहिं सँसरि वहे नीर। मच्छ न मर केवट रहे तीर ॥

ज्ञानरत्न के मिलने पर मानस नदी नहीं रहती है और निराधार ज्ञान स्वरूप आनन्दामृतमय नीर सँसर कर (फैलकर) बहता है। जीवरूप मछली उस अमृत को पीने पर फिर नहीं मरती है। कालरूप केवट उससे तीर (दूर तट) पर रहता है और ज्ञानरत्न के नहीं मिलने पर भी सत्य नदी के नहीं रहते भी मनोरथादि का प्रवाह चलते रहता है। ममतामत्स्य नष्ट नहीं होती है और संसार से पार करनेवाले केवट (ईश्वर सद्गुरु) तटस्थ दूर भासते हैं और काल पास में रहता है।

पोखरि नाहिं बाँधल तहँ घाट। पुरइनि नाहिं कमल माँह बाट॥
कहहिं कबीर ई मन का धोख। बैठा रहे चलन चहे चोख ॥९०॥

और पोखरि (तालाब) के नहीं रहते भी मन से चार अवस्था, चार खानरूप घाट वहाँ बाँधे गये हैं। अपने चार स्वरूप, चार मोक्ष, सुमेरु के ऊपर प्रधान चार स्वर्ग सिद्ध किये गये हैं और पुरइन के बिना ही शरीर के अन्दर आठ कमलों में आने-जाने का मार्ग बनाया है। कबीर साहब कहते हैं कि जन्मादिरूप यह संसार मन का धोख (भूल अज्ञान) रूप है और यह बैठा रहता है, परन्तु चोख (शीघ्र) चलना (पहुँचना मोक्ष सुख पाना) चाहता है। साधन के विना मोक्ष सुख चाहता है। अतः मन को समझकर इसके धोखे से बचना चाहिये—

"चित्तनदी नाम उभयतो वहति कल्याणाय वहति पापाय च। या तु कैवल्य प्राग्भारा विवेकविषयनिम्ना सा कल्याणवहा, संसारप्राग्भाराऽविवेकविषयनिम्ना पापवहा।" (योगभाष्य) चित्त नदी पाप-पुण्य दोनों के लिये बहती है। तहाँ

मोक्षाभिमुख विवेक विषय गम्भीरतावाली कल्याण के लिये होती है। संसाराभिमुख अविवेक गम्भीरतावाली पाप के लिये होती है। अतः चित्त को विवेक युक्त करना और समझना चाहिये।

निज कृत दुःख संसार में, मन भरमत विनु ज्ञान।
करि विचार लहि ज्ञान निज, पाइय पद निर्वाण ॥२२०॥
राम रतन जब लगि नहीं, पावत मूढ अजान।
तब लगि मन रचता जगत, तामें रहत भुलान ॥२२१॥
ताते लखिय विवेक युत, मन माया निज राम।
विश्व विपिन तब ह्वै नहीं, मन पावै विश्राम ॥२२२॥९०॥

शब्द ९१

बुझु बुझु पण्डित बिरवा न होय। अधा बस पुरुष अधा बस जोय॥
बिरवा एक सकल संसारा। स्वर्ग शीश जर गेल पताला॥
बारह पखुरी चौबिस पाता। घन बरोह लागु चहुँ पासा॥

"अज्ञानादेव संसारो ज्ञानादेव विमुच्यते" अज्ञान जन्य मोह राग-द्वेषादि से जन्म-मरणादिरूप बन्धनात्मक संसार होता है और ज्ञान से जीव मुक्त (जन्मादि रहित) होता है। अतः हे पण्डित! उक्त मन और चिदात्मा को अवश्य विवेक पूर्वक समझो कि जिससे यह देहादिरूप संसाररूप बिरवा (वृक्ष) तुझे फिर नहीं प्राप्त हो। क्योंकि धानादि के बीज में तुष और चावल जब तक दोनों मिले रहते हैं, तब तक अनुकूल भूमि जल के सम्बन्ध होने पर उनसे अंकुर होते हैं। तुष के वियोग होने पर अंकुर नहीं होते हैं। वैसे ही संसार में जबतक विवेक रहित आधा पुरुष चेतनात्मा बसता है और आधा बुद्धि प्रकृतिरूप जोय (स्त्री) बसती है, तभी तक व्यष्टि-समष्टि यह सब संसार होता है। तहाँ विवेकादि द्वारा जीव अपने व्यष्टि संसार से रहित होता है।

मायी ईश्वर रचित यह सम्पूर्ण संसार एक महान् वृक्षरूप है। जिसका स्वर्ग (ब्रह्मलोक) शिर (सर्वोत्तमाङ्ग) है और पाताल तक जड़ गया है। काल भी इस महा संसार वृक्ष के अन्तर्गत है। अतः बारह मास इसकी पखुरी (स्कन्धरूप शाखा) हैं और चौबीस पक्ष पत्ते हैं। सात दिन, पहरादि इस वट वृक्ष के चारो तरफ सघन बरोह (विस्तार) लगे हैं।

अथवा तीन गुण पञ्चतन्मात्रा (सूक्ष्म अपञ्चीकृत भूत) अव्यक्त, महत्तत्त्व, अहंकार और मन बारह पखुरी हैं और पाँच विषय सहित पाँच स्थूल भूत, पाँच प्राण, दशेन्द्रिय, चार अवस्था युक्त चार खानि के चार प्रकार के स्थूल शरीर ये सब चौबिस प्रकार के पत्ते हैं और इनके कार्य कर्म व्यापार घने बरोह सर्वत्र लगे हैं।

फुलै न फलै वाकि है बानी। निशिवासर विकार चुव पानी॥
कहहिं कबिर कछु अछलो न तहिया। हरि बिरवहिं प्रतिपालिन जहिया॥

इस वृक्ष का स्वभाव है कि यह कभी सत्य फूल फल युक्त नहीं होता है। क्योंकि यह स्वयं मायामय मिथ्या है। अतः इसके आश्रित रहने वालों के लिये सच्चे फूल फल (ज्ञान मोक्ष) भी इसमें नहीं लगते हैं। इसे त्यागने पर (मिथ्या समझने ही पर) सत्य ज्ञान मोक्ष फल प्राप्त होते हैं और सत्य फूल फल के नहीं लगने पर भी फूल फल की बानी (कथा) संसार में होती है। उस कथा को सुनकर जो इसके आश्रित रहते हैं, इसे सत्य सुखद मानकर इसमें आसक्त रहते हैं। उनके ऊपर काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, गर्व, मात्सर्यरूप मन के विकारात्मक तथा जन्म जरामरणादि शरीर के विकारात्मक पानी सदा चूते रहते हैं कि जिससे हर्ष, शोक, राग-द्वेषादिरूप क्लेद (क्लेश कष्ट) बने रहते हैं। अतः इसे मिथ्या समझाकर आसक्ति आदि से रहित तथा कष्टों से विमुक्त करने के लिये कबीर साहब जी कहते हैं कि जिस महाप्रलय में सर्वात्मा हरि ने निज माया में लीन इस संसार का कारणरूप से प्रतिपालन किया उस समय "सदेव सोम्येदमग्र आसीत्" इत्यादि शास्त्र के अनुसार एक सत्य से अतिरिक्त परमाणु आदि कुछ नहीं था, एक सत्य था और हरि मायामात्र से यह हुआ है। अतः मायिक मिथ्या इसको जानकर सत्यात्मा को पृथक् समझो। ऐसा समझने वालों के लिये संसार वृक्ष तुच्छ हो जाता है, नहीं रहता है। अतः कष्टप्रद भी नहीं होता है, इत्यादि।

भक्ति विरति विज्ञान से, विश्व वृक्ष से भिन्न।
चिदानन्द सतरूप लखि, होवत जीव न खिन्न ॥२२३॥
निज विवेक विज्ञान से, मृत्यु न आवै पास।
सब विकार सहजे मिटै, सुखी रहे हरिदास ॥२२४॥९१॥

शब्द ९२

वहि बिरवहिं चीन्है जो कोई । जरा मरण रहिते तन होई ॥
बिरवा एक सकल संसारा । पेंड़ एक फूटल तिन डारा ॥
मध्य के डारि चारि फल लागा । साखा पत्र गणै को वाका ॥

भक्ति विवेक विराग युत, विश्व वृक्ष लख जोय ।
ज्ञान खड्ग से खंडि तिहि, मुक्त सुखी सो होय ॥२२५॥

उक्त संसार वृत्त को पूर्व वर्णित रीति से विवेकपूर्वक जो कोई चीन्हता (जानता) है, सो जरा-मरण, रोग-शोकादि सब कष्टों से रहित हो जाता है । क्योंकि ज्ञान-भानु के प्रकाश से अविद्यातम (कारण शरीर) के निवृत्त होने पर वह ज्ञानी सब तनु से रहित (मुक्त) हो जाता है ।

यह सम्पूर्ण संसार एक महान् वृत्त है जिसका मायी एक ईश्वर पेंड़ (जड़ मूल) है । और उस एक मूल से तीन गुणमय ब्रह्मा विष्णु महेश नामक त्रिदेव रूप, स्वर्ग मर्त्य पाताल तीन लोक रूप तीन डार (स्कन्ध) फूटे (निकले) हैं । तहाँ मध्य के सात्त्विक डार में सात्त्विक कर्म श्रद्धा धैर्यादि द्वारा अर्थ, धर्म, काम, मोत्त रूप चारो सुन्दर फल लगे और लगते हैं । तथा मध्य के मनुष्य लोक में सब फलों के साधन सिद्ध होते हैं । चारो फल यहाँ मिलते हैं, ज्ञान से जीवन्मुक्ति यहाँ मिलती है, अर्थादि भी मिलते हैं । उस वृक्ष के लोक चन्द्र सूर्य तारागण आदि भूतभौतिक विस्तार रूप शाखा पत्र को तो गिन कौन सकता है ? क्योंकि शाखा पत्र का विस्तार अनन्त असंख्य है ।

बेलि एक त्रिभुवन लपटानी । बाँधे ते छूटै नहिं ज्ञानी ॥
कहहिं कबीर हम जात पुकारा । पण्डितहोयसो करै विचारा॥९२॥

माया अविद्यारूप एक बेलि (लता) आशा, तृष्णा, वासना आदिरूप से तीनों भुवनों (प्रजा की उत्पत्ति के स्थानरूप लोकों) में अरुझी लिपटी हुई है । उससे बाँधे जाने से शास्त्रज्ञ ज्ञानी भी नहीं छूटने पाते हैं । किन्तु पूर्व वर्णित रीति से अविद्या आशा तृष्णादिको नष्ट करने वाले ज्ञानी ही जरा मरणादि से रहित मुक्त होते हैं । क्योंकि ते (वे अविद्या माया) छूटे हुए ज्ञानी को फिर कभी नहीं बाँधती हैं । क्योंकि ज्ञानी की अविद्या माया रही नहीं जाती है । कबीर साहब कहते हैं कि हम पुकार कर कहते जाते हैं कि जो कोई पण्डित

(विवेकी विद्वान्) हो सो अविद्यादि कृत बन्धनादि की निवृत्ति जनक ज्ञान के लिये इस संसार वृत्त, सर्वात्मा हरि का विचार अवश्य करे, कि जिससे विरागादि पूर्वक मान मोह संगदोषादि से रहित होकर अविद्या के छेदनपूर्वक मुक्त हो सके ॥९२॥

शब्द ९३

कहु हो निरञ्जन कौने बानी ।
हाथ पाँव मुख श्रवण जीभ नहिं, का कहि जपहु हो प्राणी ॥
ज्योतिहिं ज्योति ज्योति जो कहिये, ज्योति कवन सहिदानी ॥
ज्योतिहिं ज्योति ज्योति दै मारै, तब कहँ ज्योति समानी ॥

बिनु विचार नहिं पाइये, परं ब्रह्म का ज्ञान ।
ज्ञानी बुध से श्रवण करि, करु विचार विद्वान् ॥२२६॥
बिनु विचार विज्ञान के, भासत बहु सत भेद ।
लहि विज्ञान विचार से, पाइय पर निर्वेद ॥२२७॥

जो कोई सत्सङ्ग विचार नहीं करके निर्गुण परमात्मा को शरीरादि रहित मानकर भी, केवल कोई नाम द्वारा भजन करते हैं, उनसे विचारादि के लिये कहते हैं कि हे प्राणी (मनुष्यों !) जिसके नाम जपते हो वह निरञ्जन (निर्दोष निर्गुण) परमात्मा कौने बानी (कौन स्वभाववाला या किस बानी=शब्द का विषय) है, सो कहो (समझो) क्योंकि "यद्वाचानभ्युदितम् ।" (केन० १।४) इत्यादि श्रुति के अनुसार वह वाणी से कहा नहीं जा सकता है । वाक् का अविषय है । और "अकायम् अशरीरम्" इत्यादि श्रुति के अनुसार जिसके हाथ पाँव मुख श्रोत्र जिह्वा आदि कुछ भी कर्मादि के साधन नहीं हैं । उसको ग्रहीता, गन्ता, वक्ता, श्रोता रसज्ञादि तो कुछ कह नहीं सकते हो, फिर उसको अन्य क्या कह कर जपते हो । यदि उस ज्योति (ज्ञान स्वरूप) को सूर्यादि ज्योतियों की ज्योति स्वरूप "तमेव भान्तमनुभाति सर्वम् ।" (मुण्ड० २।२।१०) इत्यादि श्रुतियों के अनुसार कहो तथा मन नेत्रादि ज्योतियों की ज्योति कहो, तो उन सब ज्योतियों की ज्योति की सहिदानी (चिन्ह) कौन है (लक्षण क्या है) यह विचार से ही समझना होगा ।

और जब अन्य सब ज्योतियों को वह ज्योति की ज्योति दे मारती है (सुषुप्ति महाप्रलय में लीन करती है) तब सब ये अनात्म ज्योति कहाँ समाती हैं । सावयव विशेष पदार्थ निरवयव निर्विशेष में कहाँ कैसे घुसते हैं, सो विचार से समझो । अर्थात् इन्हें मायामात्र समझो ।

चार वेद ब्रह्मा जो कहिया, तिनहुँ न या गति जानी।
कहहिं कबीर सुनहु हो सन्तो, बूझहु पण्डित ज्ञानी ॥९३॥

जिस ब्रह्मा ने चार वेद को कहा, उन्होंने भी विचार गुरु आदि के बिना इस गति (ज्योति आदि की ब्रह्मात्मा में विलय रूप प्राप्ति) को नहीं जानी कि कैसे गति होती है। किन्तु ईश्वरीय विद्या शक्ति रूप गायत्री रूप निज माता से जानी। जैसे इन्द्र ने हैमवती नामक विद्या शक्ति से परम पूज्य ब्रह्म को समझा, सो केनोपनिषद् में वर्णित है। अतः कबीर साहब कहते हैं, कि हे सन्तो ! (जिज्ञासुओं !) मेरा यह उपदेश सुनो और ज्ञानी पण्डितों से श्रवणादि पूर्वक इस रहस्य को समझो कि स्वप्न का संसार जैसे चिन्मात्र में लीन होता है, तैसे यह बाह्य संसार भी चिन्मात्र में लीन होता है। यह भी मिथ्या है। ऐसा समझ कर एक सत्य निर्गुण राम को भजो, इत्यादि ॥९३॥

शब्द ९४

कहु हो अम्बर कासो लागा। चेतन हारा चेतु सभागा॥
अम्बर मध्ये दीसै तारा। एक चेतु दुज चेतवनहारा॥

तजि विकार निज रूप लखु, चिदाकाश अविनाशि।
तारागण वत ताहि में, भासत गुरु शिख राशि ॥२२८॥

किसी अनात्मा विकारी शरीरादि को भ्रम से सत्यादि मानकर सेवने वाले योग्य पुरुष के प्रति कहते हैं कि हे अम्बर ! (अविनाशी चिदाकाश रूप जीव !) तुम किस अनात्म जड़ विकारी वस्तु में लगे हो (किससे प्रेम किये हो) सो समझो और कहो। अर्थात् तुम किसी अनात्मा को सत्य निरञ्जनादि मानकर जपते हो, उसको अपना आधार समझते हो, परन्तु तेरा सत्य स्वरूप किसी अन्य के आश्रित रहने वाला नहीं है, वही सर्वाधार निराधार निर्विकार निर्गुण राम है। हे सभागे ! तेरे स्वरूप से भिन्न सब वस्तु जड़ हैं। तुम सबको चेतनहार (प्रकाशक साक्षीस्वरूप) हो (तेरा स्वरूप ही ज्योतियों की ज्योति है। तुम उस अपने स्वरूप को चेतो (समझो) सद्गुरु से श्रवण विचारादि द्वारा स्वरूप को जानो और समझो कि तेरे अम्बर स्वरूप में ही माया अविद्या अन्तःकरणादि द्वारा अनन्त चिदाभास चित्प्रतिबिम्ब चिदंशाभिव्यक्ति रूप तारे दीखते हैं। उनमें ही एक शिष्य होकर चेतता है और दूसरे गुरु होकर चेताने वाले होते हैं। आत्मा

में गुरु शिष्य भाव नहीं है, किन्तु व्यावहारिक जीव में व्यवहार मात्र गुरु शिष्य भाव हैं, सत्य नहीं।

जो खोजो सो उहँवा नाहीं। सो तो आहिं अमर पद माहीं॥
कहहिं कबिर पद बूझै सोई। मुख हृदय जाके एकै होई ॥९४॥

और जिस नित्य सुखादिरूप मोक्ष को तुम खोजते हो, सो भी उहँवा (परोक्ष स्वर्गादि में अन्यत्र) कहीं भी नहीं है, किन्तु वह सुखादि तो इस अपरोक्ष अमर पद (अविनाशी विभु निजस्वरूप) में ही है। परन्तु विवेकादि के बिना उसकी प्रतीति नहीं होती है। अतः विवेकादि कर्तव्य हैं। कबीर साहब कहते हैं कि विवेकादि करके उस अमर पद को सोई बूझता (समझता) है कि जिसके मुख हृदय एक होते हैं। सत्य भाषी कपटादि रहित शुद्ध हृदयवाला, गुरु से आत्मज्ञान पाता है। अतः जिज्ञासु को सत्यवक्ता कपटादि रहित होना चाहिये। क्योंकि— "सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येषआत्मा सम्यग् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्" (मुंडक. ३।१।५) सत्य, तप, सम्यक् ज्ञान और नित्य ब्रह्मचर्य से यह आत्मा प्राप्त करने (समझने) योग्य है, अन्यथा नहीं ॥९४॥

इति विवेक ज्ञानोपदेश प्रकरण ३५

अथ विवेकादि बिना अभिमानादि प्रकरण ३६

शब्द ९५

बन्दे करिले आपु निवेरा।
जियत आपु लखु जियत ठौर करु, मुये कहाँ घर तेरा॥

करि विवेक निज रूप में, निश्चल कीजै चित्त।
जीवत ही यह कीजिये, मुये न होवै हित्त ॥२२९॥
चिदाकाश में नित्य सुख, है दुख लेशहुँ नाहि।
ताहि किया निज ठौर जिन, सो न भ्रमहि भव माहि ॥२३०॥

हे बन्दे! (भक्तो!) तुम अपने सत्य स्वरूप का निवेरा (विवेक) आप कर लो, वैराग्य, विज्ञानादि द्वारा अपना मोक्ष कर लो और मोक्ष के लिये जीवित अवस्था में अपने स्वरूप ही को निर्गुण ब्रह्म समझो। और जियते ही

में अपना ठौर (स्थिति) और स्थिति के स्थान का निश्चय आप कर लो। जिस घर को स्थिति का स्थान समझते हो, मरने पर यह घर तेरा कहाँ रहेगा। यह घर मरने पर किसी अन्य का हो जायगा। और आगे की तेरी अचल स्थिति के लिये अन्य कोई कुछ नहीं रह सकता है। अतः अन्य लोक देवादि की आशा छोड़ कर अपने स्वरूप का अनुभव करो, संसार को मिथ्या समझो यही अचल स्थिति का साधन है।

यहि अवसर नहिं चेतहु प्राणी, अन्त कोइ नहिं तेरा ॥
कहहिं कबीर सुनहु हो सन्तो, कठिन काल को घेरा ॥९५॥

हे प्राणी ! यदि इस स्वस्थ मानव जीवन के अवसर में नहीं चेतते हो (अपनी निवेरा और स्थिति नहीं करते हो) तो अन्त में तेरा सहायक रक्षक कोई नहीं होगा तथा जिस गृहादि को अपने स्थानादि समझते हो, सो कोई तेरा नहीं रहेगा, न यह अवसर रहेगा। किन्तु महा कठिन अवसर आयगा। उसको कोई रोक नहीं सकेगा। अतः कबीर साहब कहते हैं कि हे सन्तो ! अभी उस काल के घेरा को सुनो (उसको रोकने के उपाय को सुनो) और वह यत्न करो कि जिससे तेरे लिये कठिन काल का अवसर नहीं आवे।

माया मद को त्यागिये, करिये सरल स्वभाव।
चिदानन्द विभु पाइये, सदा एक रस भाव ॥२३१॥
करि विवेक निज भाव में, निश्चल कीजै ठाम।
जीवतही सो होत है, मुये न पाइय राम ॥२३२॥९५॥

शब्द ९६

लोग बोलै दुरि गये कबीर। या मति कोइ जानैगा धीर ॥
दशरथ सुत तिहुँ लोकहिं जाना। राम नाम के मर्महिं आना ॥
जिहि जस जानि परी जिव लेखा। रज्जुक करै उरग ज्यों पेखा ॥

निकट भाव में ठाम बिनु, हरि को कहते दूर।
दूर लोक जाना चहैं, लखै न भव भरपूर ॥२३३॥
दशरथ पुत्र सुपुरुष को, राम लखहिं बहु लोग।
आवागमन विहीन अज, लखहिं बिरल करि योग ॥२३४॥

कबीर साहब कहते हैं कि लोग बोलते हैं कि हम बहुत दूर गये (पहुँचे) हुए हैं। अर्थात् परमात्मा बहुत दूर बैकुण्ठ साकेत सत्यलोक या गोलोक आदि में बहुत दूर रहता है। सो हम समझ चुके हैं। क्योंकि जो कबीर (ज्ञानी भक्त) हुए सो सब दूर देश में गये, वहाँ जाकर मुक्त हुए। वहाँ जो नहीं गये सो दुर गये (नष्ट हुए) सब लोग ऐसा समझते हैं। अतः या मति (इस अपरोक्ष सर्वात्म ज्ञान) को कोई विरला धीर (सात्त्विक धैर्य युक्त विवेकी) ही जानेगा (प्राप्त करेगा) दशरथ पुत्रादिरूप हरि राम को तो प्रायः तीनो लोकवासी जानते हैं, परन्तु रामनाम के मर्म (सत्यार्थ) को समझना कुछ और ही है। अर्थात् तीन अवस्था तक को जानने वाले दशरथ सुतादि को ईश्वर मानते हैं। तुर्यावस्था के अनुभवी सर्वात्मा को राम मानते हैं, क्योंकि— "सर्वं रमयति, सर्वत्र रमते, रमन्ते योगिनो यस्मिन्" इन व्याख्यानों के अनुसार (अच्, ण, घञ्) प्रत्ययान्त राम शब्द का आनन्दघन स्वतन्त्र ज्ञानी से ज्ञेय विभु ब्रह्म ही अर्थ सिद्ध होता है। इस विचारादि के विना जिस जीव को जैसी बात वस्तु जान पड़ी, वह वैसे ही राम को समझने लगा, जैसे कि कोई मन्द अन्धकार में रस्सी को सर्प देखता है। वैसे ही राम का भ्रम भी होता है, किसी देहमात्र में राम आत्मादि बुद्धि होती है।

यद्यपि फल उत्तम गुण जाना। हरिहि छोड़ि मन मुक्ति न आना॥
हरि अधार जस मीनहिं नीरा। और यतन कछु कहहिं कबीरा॥९६॥

अज अद्वय हरि ज्ञान विनु, मन से मुक्ति न होय।
अन्य मिले संसार सुख, सगुण राम भजु जोय॥२३५॥

यद्यपि दशरथ पुत्रादि की भक्ति ज्ञानादि से उत्तम गुणवाला अन्तःकरण की शुद्धि स्वर्गादि फल महात्माओं ने जाना (माना) है, सो ठीक ही है। तथापि ज्ञानमात्र से सब अज्ञान पापादि को हरनेवाले सर्वात्मा असङ्ग साक्षीस्वरूप निर्गुण हरि को छोड़ (त्यागकर = उस हरि की ज्ञप्ति-प्राप्ति के विना) आन = अन्य किसी प्रकार से जीव मन के प्रपञ्च जन्मादि से (सूक्ष्मादि देह से) मुक्ति नहीं पाता है और सर्वात्मा हरि के ज्ञान होने पर सो मुक्ति पाई जाती है। क्योंकि हरि सब जगत् के इस प्रकार का आधार है कि जैसे मछली का आधार जल होता है। अतः अज्ञान मन आदि का आधार भी हरि ही हैं। तहाँ प्रकाशरूप ज्ञान से अन्धकाररूप अज्ञान मन पापादि के नाश होने से मुक्ति होती है और विवेक द्वारा हरि से संसार को पृथक् करने पर जल रहित मीन के समान संसार नष्ट

होता है। परन्तु मोहादिवश जीव हरि की भक्ति ज्ञान-ध्यानादि को त्यागकर कर्मादि कुछ और ही यत्न कहता और करता है। "न जहाति मनः प्राणान् विना ज्ञानेन कर्हि चित्" ज्ञान के बिना मन, प्राणों को नहीं त्यागता है और ज्ञान से वासना रहित होकर मन स्वयं नष्ट हो जाता है, इत्यादि योगवासिष्ठ में वर्णित है ॥९६॥

शब्द ९७

कैसे के तरो नाथ कसे के तरो। अब बहु कुटिल भरो ॥
कैसो तेरी सेवा पूजा, कैसा तेरो ध्यान।
ऊपर ऊजर देखो, बक अनुमान ॥
भाव तो भुवंग देखो, अति विविचारी।
सुरति सचान तेरी, मति तो मञ्जारी ॥

जब लो भाव विशुद्धि नहिं, सुरति निरति थिर नाहिं।
तब लो निर्गुण ज्ञान नहिं, मुक्ति न किहि विधि पाहिं ॥२३६॥
तन धनादि अभिमान जिहि, दम्भ दर्प युत चित्त।
पड़ि कुवुद्धि के फेर में, सो न लहै हरि वित्त ॥२३७॥

प्रथम कहा गया है कि सर्वात्मा हरि के ज्ञान से मुक्ति होती है। परन्तु उस ज्ञान के साधन और स्वरूप बोधक अमानिता, अदम्भिता, अहिंसा, क्षमा आदि गीता में वर्णित हैं तथा शास्त्र में प्रसिद्ध हैं और कहा गया है कि—"छाड़हु पति छाड़हु लबराई" इत्यादि। अतः कहा जाता है कि इन साधनों के बिना मुक्ति की आशा करना व्यर्थ है। हे नाथ! (स्वामित्व के अभिमानी) तुम कैसे तरोगे (किसी प्रकार भी अमानिता आदि के बिना नहीं तर सकोगे) क्योंकि अमानिता आदि के अभाव से अब ही तुम में कुटिलता कामादि कुशत्रु भरे (पूर्ण रूप से) पड़े हैं। और मोक्षप्रद भक्ति तथा ज्ञान सरलता निष्कामता आदि स्वरूप होते हैं। इस कुटिलता कामादि युक्त अवस्था में तुम से किसी सद्गुरु देवादि की सेवा और पूजा भी किस प्रकार की और कैसे हो सकती है। अर्थात् उक्त प्रकार वाली सात्त्विक ज्ञानप्रद सेवा पूजा नहीं हो सकती है। तथा तेरा ध्यान (तुमसे किया गया गुरु सत्यात्मादि का ध्यान) भी कैसा हो सकता है। शुद्ध ध्यान नहीं हो सकता है। क्योंकि शुद्ध ध्यान मन की उज्ज्वलता से होता है। और तुम ऊपर से ही बक के समान उज्ज्वल दीखते हो। और

तेरे मन का भाव (आशय) भुजंग तुल्य टेढ़ा दीखता है। तथा अत्यन्त विविचार (कुविचारी) भाव दीखता है। और तेरी सुरति (मनोवृत्ति) सचान (वाज) तुल्य है। और मति=बुद्धि बिल्ली तुल्य घातक है।

अति रे विरोध देखो, अति रे दिवाना ॥
छवो दरशन देखो, वेष लपटाना ॥
कहहिं कबीर, सुनहु नल वन्दा ॥
डाइनि एक, सकल जग खन्दा ॥९७॥

उक्त कुटिलता कामादि के कारण परस्पर अत्यन्त विरोध दीखता है। अत्यन्त दिवाना (अहंकारी गर्वी) लोग दीखते हैं। तथा छवो दर्शनों योगी जङ्गमादि में भी वेपमात्र लिपटा हुआ दीखता है। वेपों का अभिमान दीखता है। और मुक्ति निरभिमानिता आदि द्वारा ज्ञान से होती है, तो तुम कैसे तरोगे।

कबीर साहब कहते हैं कि हे वन्दा ! भक्त मनुष्यों ! मुक्ति चाहो तो अब भी कुटलिता आदि को त्यागकर सद्‌गुरु से श्रवणादि करके आत्मानुभव करो। इसके बिना एक अविद्या रूप डाइन (डाकिनी) सब संसारी को खाती है, कष्ट देती है।

"माया बड़ि ही डाकिनी, करै काल की चोंट।
कोइ इक हरिजन उबरा, पार ब्रह्म की ओट ॥१॥" (अंग की साखी)॥९७॥

इति विवेकादि बिना अभिमानादि प्रकरण ३६

अथ शाम्बरी देहादि तुच्छता प्रकरण ३७

शब्द ९८

अब हम जानिया हो, हरि बाजी का खेल।
डङ्क बजाय देखाय तमासा, बहुरि लेत सकेल ॥

अभिमानी को मुक्ति नहिं, कुपथ गामि सुख नाहिं।
यह जब लखा विचार से, तजा मान क्षणमाहिं ॥२३८॥
समझा सब संसार को, हरि माया का खेल।
क्षण भंगुर समझे विना, सुर नर मुनि दुख झेल ॥२३९॥
पाया गुरु उपदेश जो, सो पाया निज ज्ञान।
माया मिथ्या जानि के, पाया पद निर्वाण ॥२४०॥

हे मनुष्यों ! गुरु के उपदेश को सुनने वाले हम लोगों ने तो अब जान लिया है कि यह संसार सर्वात्मा राम हरि (ईश्वर) की बाजी (माया) का खेल (मिथ्या कौतुक) रूप है। और जैसे नट डंका (ढोल) बजाकर मिथ्या तमासा दिखाकर बहुरि (फिर) उस तमासे को सकेल (समेट) लेता है, वैसे ही हरि भी प्रथम शब्द की सृष्टि करके मिथ्या संसार को रचते और लय करते हैं।

हरि बाजी सुर नर मुनि जहड़े, माया चाटक लाया।
घर में डारि सबे भरमाया, हृदया ज्ञान न आया ॥

उक्त माया को हरि को विवेकपूर्वक जाने विना हरि की बाजी रूप माया से सुर नर मुनि सब जहड़े (धोखे में पड़े दुःखी हुए) क्योंकि माया ने उनमें चाटक (दृष्टि बन्ध काम लोभादि) लाय (लगा) दिया। फिर देह लोकादि रूप घर में डालकर (देहाभिमानादि कराकर) सब संसार सब खानि आदि में सबको भरमाया, अतः सत्यात्मा का ज्ञान सबके हृदय में नहीं प्राप्त हुआ। तथा चाटक के लगने से जिसके हृदय ये ज्ञानोदय नहीं हुआ उसको माया ने भरमाया, अन्य को नहीं। अतः अवश्य अन्तरात्मा ज्ञातव्य है।

बाजी झूठ बाजीगर साँचा, साधुन की मति ऐसी।
कहहिं कबिर जिन जैसी समुझो, ताकी गति भौ तैसी ॥९८॥

नट कृत बाजी (खेल) के समान माया और माया के कार्य रूप बाजी झूठ (मिथ्या) है और बाजीगर तुल्य सर्वात्मा हरि सत्य है। उस हरि की सत्ता से ही माया मायिक पदार्थ सत्य भासते हैं, उनमें स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। ऐसी साधुओं (विवेकियों) की मति (सिद्धान्त) है।

कबीर साहब कहते हैं कि जिन लोगों ने जैसी समझी (मति पाई) उनकी वैसी ही गति हुई और होती है, अर्थात् हरि को सत्य समझनेवाले हरि को पाये, संसार को सत्य समझने वाले संसार पाये ॥ ९८ ॥

शब्द ९९

चलहु क्या टेंढ़ो टेंढ़ो टेंढ़ो।
दशहुँ द्वार नरक भरि बूड़े, तूँ गन्धी का बेढ़ो ॥

निज आतम सत ज्ञान बिनु, तन धन जन अभिमानि।
बूड़त हैं भवसिन्धु में, एक राम नहि जानि ॥२४१॥

संसार को सत्य मानकर देहादि के अभिमानियों के प्रति उपदेश है कि झूठी धन सम्पत्ति सौन्दर्यादि को पाकर, अत्यन्त टेंढ़े होकर (ऐंठकर) तथा कपटयुक्त होकर क्या चलते हो। जिस देह के दशो द्वार मल मूत्र कफ कर्ण-विडादि से भरे हैं, उस देह के अभिमान करके उस नरक कुण्ड में तुम बूड़े हो और दुर्गन्ध पदार्थों के वेढ़ (बखार) बने हो। अथवा तुम सुगन्ध के स्थान होते भी देहाभिमान से भरे हुए नरक कुण्ड में बूड़े हो। अर्थात् सच्चिदानन्द स्वरूप होते भी देहाभिमान से मर्त्य जड़ दुःखी हुए हो।

फूटी नयन हृदय नहीं सूझै, मति एको नहिं जानी।
काम क्रोध तृष्णा के माँते, बूड़ि मुये बिनु पानी॥
जो जारे तन होय भस्म धुरि, गाड़े कृमि बिट खाई।
शूकर श्वान काग का भोजन, तन की इहे बड़ाई॥

देहाभिमान से हृदय की विवेक दृष्टि फूटी है, अतः सत्य वस्तु नहीं सूझती है। और एक भी मति (भावी हित की बुद्धि) तुमने नहीं पाई है। अतः काम क्रोध और तृष्णा (लोभ) करके माँते रहते हो "त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः। कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥" काम क्रोध और लोभ ये तीन प्रकार के नरक द्वार (हेतु) हैं। और जीवात्मा के नाश कष्ट के हेतु हैं। अतः इन तीनों को त्यागना चाहिये, इत्यादि उपदेशों को मतवालेपन से भूले रहते हो जिससे पानी के विना ही संसार सागर में देहाभिमान से कितने बार बूड़ कर मुये हो। और मरने पर यदि देह को जलाया जाता है, तो यह जलकर (भस्म होकर) धूलि हो जाती है। गाड़ने पर कृमि हो जाती है और कहीं बाहर छोड़ देने पर कुत्ते सियार आदि खाकर विट (विष्ठा कर देते हैं। क्योंकि यह मृतक देह शूकर श्वानादि का भोजन रूप है। और इसकी यही बड़ाई है।

चेति न देखु मुग्ध नल बौरे, तुमते काल न दूरी।
कोटिक यतन करो या तन की, अन्त अवस्था धूरी॥
बालू के घरवा मँह बैठे, चेतत नाहिं अयाना।
कहहिं कबिर एक राम भजे बिनु, बूड़े बहुत सयाना॥६६॥

हे मुग्ध (अज्ञ मूढ़) बौरे (मतवाले) नर! शीघ्र चेत कर (सावधान होकर) देखो न (देहाभिमानादि को त्याग कर आत्मा राम को अवश्य शीघ्र

समझो) क्योंकि तुमसे काल (मृत्यु) दूर नहीं है, देहाभिमानी के साथ में सदा मृत्यु वर्तमान है। और देह के लिये करोड़ों यत्न करते हो या करोगे तो भी यह अन्त अवस्था में धूली होगी। बालू के घर तुल्य विनश्वर देह में बैठे (आसक्त) अयान (अज्ञ) अभिमानी चेतते नहीं हैं (एक सत्यात्मा राम के विवेक विचारादि नहीं करते हैं) अतः कबीर साहब कहते कि ऐसे बहुत सयान (लोक व्यवहार में कुशल) भी एक सर्वात्मा राम को भजने के बिना संसार-सागर में बूड़े (जन्मादि प्रवाह में गये और जाते हैं) अतः विवेक विचारादि द्वारा सब अभिमान काम क्रोध लोभादि को त्याग कर मोक्ष के लिये एक सर्वात्मा राम का भजन (स्मरण ध्यानादि) कर्तव्य है ॥ ९९ ॥

इति संसार शाम्बरी देहादि तुच्छता प्रकरण ३७

अथ गर्भ जन्ममरणादि दुःख वर्णन प्रकरण ३८

शब्द १००

फिरहु क्या फूले फूले फूले।
जब दश मास औन्ध मुख होते, सो दिन काहे भूले॥
ज्यों माँखी संचय नहिं बिहुरे, शोचि शोचि धन कीन्हा।
मूये पीछे लेहु लेहु करि, भूत रहन कस दीन्हा॥

करि देहक अभिमान मद, करत जु धन अभिमान।
ताहि करत उपदेश गुरु, राम भजिय तजि मान ॥२४२॥
मान तजे बिनु मोहवश, पड़ता यम के फन्द।
भजो राम तजि काम मद, पावो परमानन्द ॥२४३॥

तन धनादि के अभिमान से श्रद्धाभक्ति आदि को भूलकर क्या अत्यन्त फूले (गर्वित हुए) फिरते हो। इस अभिमान (गर्व) से ही जब दश मास अधोमुख होते हो और— "जहँ से उपजे तहइँ समाने, छूट गेल सब तबही" इस उक्ति के अनुसार सब गर्वादि से रहित कष्ट दशा में प्राप्त होते हो। सो दिन काहे भूल गये हैं, उनके स्मरणादि करके गर्व को त्यागो।

और जैसे मधुमाँखी सहत (मधु) का संचय करती है और उससे बिछुरती (वियुक्त होती) नहीं है, सदा उसको सेवती है। तैसे तुमने शोच-शोच कर धन का संचय किया है और उसको सेवते हो और उससे गर्वित होते हो, परन्तु यदि उसका उचित उपभोग दानादि नहीं करते हो। परन्तु तेरे मरने के पीछे सब लोग लेहु लेहु कहकर ले लेगें। तेरे साथ में कुछ नहीं जायगा। उस धन के व्यर्थ अभिमान में तुम रामधन धर्मधन को खोते हो, जो कि सदा साथ में रहने वाला और जाने वाला है। धन तो लेही लेगें, तेरे भूत (भौतिक शरीर) को भी कैसे रहने देगें (या रहने दिये) तेरे अनन्त शरीर हो चुके हैं और सब नष्ट हुए और नष्ट किये गये हैं।

जारे देह भस्म होय जाई, गाड़े माटी खाई।
काँचे कुम्भ उदक ज्यों भरिया, तन की यही बड़ाई॥
देहरि ले वरनारि संगि है, आगे संग सुहेला।
मृतक थान लो संग खटोला, फिर पुनि हंस अकेला॥
राम न रमसि मोह के माँते, परेहु काल वश कूँवा।
कहहिं कबिर नल आप बँधायो, ज्यों नलिनी भ्रम सूवा॥१००॥

क्योंकि जलाने से देह भस्म हो जाती है, गाड़ने से माटी होती है। बाहर कहीं बीग देने से कोई प्राणी इसे खा लेते हैं। कच्चे घड़े में जल के समान इसमें प्राण भरे और कुछ कर्माधीन टिके हैं। इस देह की यही बड़ाई है।

मरने पर देहरि (द्वार) तक अच्छी स्त्री मुर्दे के साथ रहती है और कुछ आगे तक साथ के सुहेला (सुहृद् इष्ट मित्र) रहते हैं और मृतक स्थान (श्मशान) तक साथ में खटोला (खाट) रथी रहता है। फिर तो जीवात्मा रूप हंस पुनः पुनः (बार बार) अकेला ही चलता है। कोई साथी नहीं होता है, तो भी तुम इन स्त्री आदि के मोह में माँते रहने के कारण सदा के संगी राम में रमते नहीं हो। (राम की भक्ति स्मरणादि नहीं करते हो) इसी से काल (मृत्यु) के वश में होकर गर्भ नरकादि अन्ध कूप में पड़े हो (संसार में फँसे हो) और कबीर साहब कहते हैं कि मनुष्य संसारबन्धन में आप ही इस प्रकार से बँधाया है कि जैसे नलिनी में सूवा भ्रम से बँधता है।

"कबीर कहाँ गर्बिये, देही देखि सुरंग।
बिछुड़े पै मेला नहीं, ज्यों केचुली भुजंग ॥ १ ॥
मतवाला घूमत फिरै, रोम रोम रस पूर।
छाड़ै आश शरीर की, देखै राम हजूर ॥ २ ॥
तू मति जानै बावरा, मेरा है सब कोय।
पिण्ड प्राण सो बँधि रहा, सो आपन नहिं होय" ॥३॥१००॥

शब्द १०१

अब कहँ चलेहु अकेला मीता। उठियो न करहु घरहु की चींता॥
खीर खाँड़ घृत पिण्ड सँमारा। सो तन लै बाहर कै डारा ॥
जिहि शिर रचि रचि बाँधहु पागा। सो शिर रतन विदारै कागा ॥
हाड़ जरै जस लकरिक झूरी। केश जरै जस तृण की कूरी ॥
आवत संग न जात सँघाती। काह भये दल बाँधे हाथी ॥

राम न भजत विमोह वश, कहत गृहादिक मोर।
सो न लहत सुख शान्ति गति, सह यम दण्ड कठोर ॥२४४॥
मरण हुए यम दण्ड से, रहित होन के हेतु।
करि न सकत भजनादि कछु, नशत धनादि समेतु ॥२४५॥

यद्यपि प्रारब्ध कर्म सबको भोगना होता है, तथापि संचित और आगामिक कर्मों का विवेकज आत्मज्ञान से नाश और अश्लेष (असम्बन्ध) होता है। अतः शास्त्र की आज्ञा है कि "हेयं दुःखमनागतम्" भावी दुःख विवेकादि द्वारा निवारणीय है। सो विवेकादि नहीं करके जो जन्म भर गृहादि में आसक्त रहकर मरने वाले हैं। उनसे कहा जाता है कि—हे गृहादि के मित्रों ! (प्रेमियों !) अब मरण काल में कहाँ अकेले चले हो। अब उठकर घर की चिन्ता भी करो न। खीर खाँड़ घृतादि से जिस पिण्ड (देह) को तुमने सँभारा (पोपा पाला) सो देह भी अब बाहर करके डारी (रखी) गई।

जिस शिर पर रच रचकर सुन्दर पगरी बाँधता था, उस शिर रूप रत्न (उत्तमाङ्ग) को अब काग विदारता (फारता) है। और चिता में सूखी लकड़ी के समान हाड़ जलता है। और तृण की कूरी (पूँज) के समान केश जलते हैं। और जन्म लेकर आते समय जो संग में नहीं आया। और जाते (मरते)

समय जो संघाती (साथी) नहीं हुआ, ऐसे दल (फौज जमात) के बटोरने से क्या फल मिला और हाथी बाँधने से कौन फल हुआ। इनसे ही "राम की प्राप्ति रूप फल का अभाव हुआ, कोई सत्य फल हुआ नहीं।

माया के रस लेहुं न पाया। अन्तर यम बिलार होय धाया ॥
कहहिंकबिरनलअजहुँनजागा। यमकेमुगदरमाँझशिरलागा॥१०१

गृहादि की चिन्ता में व्यग्र अज्ञ माया के रस (आनन्द) नहीं लेने पाया, भोग से तृप्त नहीं हुआ और संग्रही चूहा तुल्य इसको पकड़ने के लिये अन्तर (बीच) में ही यम बिलार तुल्य होकर दौड़ पड़ा। कबीर साहब कहते हैं कि जो मनुष्य अजहुँ (अबहुँ) मरण काल में भी मोह निद्रा से नहीं जागा, उसके मध्य शिर में यम दण्ड लगा और लगता है। अतः मरण समय में भी हो सके तो यमदण्ड से बचने के लिये यत्न कर्तव्य है ॥१०१॥

इति गर्भ जन्म मरणादि दुःखादि वर्णन प्रकरण ३८



अथ राम बिना दुःखादि वर्णन प्रकरण ३९

शब्द १०२

मरिहौ रे तन का लै करिहौ। प्राण छुटे बाहर लै धरिहौ ॥
काय विगुरचन अनवन भाँती। कोई जारै कोइ गाड़ै माटी ॥
हिन्दु ले जारै तुरुक ले गाड़ै। यहिविधिअन्तदोनोंघर छाड़ै ॥
कर्म फाँस यमजाल पसारा। ज्यों धीमर मछरी गहि मारा ॥

राम बिना मरणादि दुख, कर्मादिक वश होंहि।
परि कुदेश पछतावहीं, सदा मृत्यु वश रोंहि ॥२४६॥

हे देहाभिमानी ! मरोगे तब क्या इस देह को लेकर फिर कुछ करोगे। प्राण छूटने पर तो यह बाहर लेकर धरी जायगी, किसी काम के लायक नहीं रहेगी। और बाहर भी इस काया का विगुरचन (विनाश) अनवन (अन्य अन्य) प्रकार से होगा। इसे कोई जरायगा, तो कोई माटी में गाड़ेगा।

क्योंकि हिन्दू इसको लेकर जलाता है और तुरुक लेकर गाड़ता है। इस प्रकार अन्त में हिन्दू तुरुक दोनों घर को अवश्य छोड़ते हैं। परन्तु प्रथम से मोह

कर्मनाशक विवेकादि के अभाव से कर्मरूप फाँस वाले मोह ममता वासना आदि रूप जाल को पसार कर यम (मृत्यु) रखता है। और उस जाल के द्वारा पकड़ कर जीवों को इस प्रकार मारता है (कर्म फल भोगाता है) कि जैसे मछली को धीमर जाल से पकड़ कर मारता है।

राम बिना नल होइहो कैसा। बाट माँझ गोबरौरा जैसा॥
कहहिं कबिर पाछै पछतैहौ। या घर से जब वा घर जैहौ॥

हे मनुष्यों! सर्वात्मा राम की प्राप्ति ज्ञप्ति के बिना तेरी कैसी दशा होगी कि जैसे मार्ग में गोबरौरा (गोबरकीट) की दशा होती है। वह गोबर की गोली सहित मार्ग में पैरों से पीसा जाता है। तैसे तुम सर्वस्व सहित काल से पीसे जावोगे। और साहब कहते हैं कि पीछे पश्चात्ताप करोगे कि जब इस घर (लोक देह) से परलोक हीनदेहादि में जावोगे। अतः किसी प्रकार भी राम को प्राप्त करो भजो ॥१०२॥

शब्द १०३

अपनो कर्म न मेटो जाई।
कर्मक लिखल मिटे दहुँ कैसे, जो युग कोटि सिराई॥
जो सीता रघुनाथ विवाही, सूर्य मन्त्र लिखि दीन्हा॥
गुरु वसिष्ठ मिलि लगन शोचाई, पल एक संच न कीन्हा॥

राम ज्ञान हरि भजन बिनु, मिटै न कर्म अपार।
कर्म विवश ब्रह्मादि सुर, सो न उतारहिं पार॥२४७॥

पूर्व वर्णित सर्वात्मा राम की अनुभूति तद्रूपता की प्राप्ति या भोगे बिना अपना किया हुआ कर्म मेटा (नष्ट किया) नहीं जा सकता है। कर्मान्तर के भोगते में कोई कर्म को चाहे करोड़ों युग सिराये (बीते) हों तो भी—

"अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।
नाभुक्तं क्षीयते कर्मकल्पकोटिशतैरपि॥१॥"

किये हुए शुभाशुभ कर्म अवश्य ही भोगना पड़ता है, क्योंकि अभुक्त कर्म सैकड़ों करोड़ों कल्पकाल से भी नष्ट नहीं होता है। तहाँ ज्ञानी के संचित आगामी कर्मों का ज्ञानाग्नि से नाश होने पर भी जो प्रारब्ध कर्म भोग के लिये लिखित

(निश्चित) हो चुके हैं, वह कर्म के लिखल (निश्चय) तो कैसे मिटे ? वह किसी प्रकार भी नहीं मिट सकता है। चाहे कोटि युग बीत जाय, तो भी प्रारब्ध कर्म भोग से निवृत्त होता है। अतएव जब सीता को रघुनाथ ने विवाही (पत्नीरूप से स्वीकार किया) तब उस विवाह में स्वयं सूर्य भगवान् ने वैवाहिक मन्त्र लिखकर दिया और कुलगुरु वसिष्ठजी ने अन्य विद्वान् जनकजी के पुरोहितादि से मिलकर लग्न शोचा, तो भी विवाह होने पर रघुनाथ (रामचन्द्र) जी ने और सीताजी ने पलमात्र भी संच (सुख आराम) नहीं किया, कभी शान्ति उन्होंने नहीं पाई। गरुड़पुराण का वचन है कि—

"कर्माण्यत्र प्रधानानि सम्यगृक्षे शुभे ग्रहे।
वसिष्ठकृतलग्नापि जानकी दुखःभाजनम् ॥"

(आचारकाण्ड अ० ११३।२५)

कर्म ही यहाँ प्रधान है, अतः श्रेष्ठ नक्षत्र शुभग्रह काल में वसिष्ठजी से कृतलग्नवाली जानकी दुःख पात्र हुई।

तीन लोक के कर्ता कहिये, बालि बध्यो बरियाई।
एक समय ऐसी बनि आई, उनहूँ अवसर पाई ॥
नारद मुनि के बदन छिपायो, कीन्हों कपि के रूपा।
शिशुपाल के भुजा उपारेउ, आपु भये हरि ठूँठा (भूपा)॥

जिस रामचन्द्रजी को तीनों लोकों के कर्ता स्वरूप कहा जाता है, उन्होंने बाली को बलात्कार से वध किया। फिर एक ऐसा समय उनके लिये भी बन कर आया कि जिससे कृष्णावतार में उनको भी उसके फल को भोगने का अवसर मिला और बाली को व्याधरूप से बदला लेने का अवसर मिला और विष्णु भगवान् ने नारदजी के मुख को माया से छिपा दिया और बानर का रूप बना दिया तथा कृष्णावतार में शिशुपाल की भुजा को माया से उखाड़ दिया, उससे हरि आप भी ठूँठ (विकृत हाथवाले) हुए और नारदजी के शापों को भोगना पड़ा।

पारवती को बाँझ न कहिय, ईश न कहिये भिखारी।
कहहिं कबिर कर्ता के बाते, कर्मक बात नियारी ॥१०३॥

पार्वतीजी को स्वभाव से ही बाँझ (वन्ध्या) नहीं कहना चाहिये, न ईश (महेश शिव) जी को स्वभाव से निष्कारण भिक्षुक कहना चाहिये। किन्तु

कबीर साहब कर्ताओं (अधिकारियों) की बातों को कहते हैं कि कर्म की बात (व्यवहार) कर्ताओं से न्यारी (विलक्षण अधिक शक्तिवाली) है। अतः सब अधिकारी भी कर्माधीनकल्प पर्यन्त रहते हैं, कर्माधीन पार्वतीजी वन्ध्या रही। शिवजी भिक्षुक रहे। ये लोग स्वकर्म को नहीं मेट सके, तो अन्य कौन मेट सकता है ? अतः गरुड़पुराण का वचन है कि—

"ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे,
विष्णुर्येन दशावतारगहने क्षिप्तो महासंकटे।
रुद्रो येन कपालपाणिपुटके भिक्षाटनं कारितः,
सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः कर्मणे ॥१॥"

(आचारकाण्ड पूर्व खं० अ० ११३।१४)

जिस कर्म ने ब्रह्माण्डभाण्डोदर में कुलाल तुल्य ब्रह्मा को नियमित किया है, महासंकटरूप दशावतार गहन में विष्णु को फेंका है। रुद्र को कपाल युक्त पाणिपुटक में भिक्षाटन कराया, सूर्य जिससे सदा आकाश में भ्रमते हैं, उस कर्म के प्रति प्रणाम है ॥१०३॥

शब्द १०४

तन धरि सुखिया कोइ न देखा, जो देखा सो दुखिया।
उदय अस्त की बात कहत है, सोऊ तो भौ दुखिया॥
बाटे बाटे सब जग दुखिया, क्या गिरही वैरागी।
शुकाचार्य दुख ही के कारण, गर्भहिं माया त्यागी॥

बिनु विवेक के देह धरि, दुखिया सब संसार।
करि विवेक ताते तजो, माया सकल विकार ॥२४८॥

ज्ञान बिना अपने कर्मों के नहीं मिटने से शरीर के कर्माधीन धारण करने पर किसी को सुखी नहीं देखा गया। किन्तु जो देहधारी देहाभिमानी देखा गया, सो दुखिया ही देखा गया। आत्मज्ञानादि के विना जो उदय अस्त (सृष्टि प्रलय-उदयाचल अस्ताचल) की बात को कहता है, सो भी दुखिया हुआ और होता है। क्योंकि संसार के सब मार्ग (कर्म व्यवहार वर्ण आश्रम) में सब संसारी दुःखी हैं। क्या गृहस्थ क्या वैरागी (वेषधारी विरक्त) देही अवस्था में सब दुःखी हैं। शुकाचार्य (ज्ञानी शुकदेव जी) ने इस दुःख ही के कारण

(दुःख की निवृत्ति ही के लिये) गर्भ से ही माया (ममता देहाभिमानादि) को त्याग दिया । अतः सुख दुःखादि से रहित निर्द्वन्द्व जीवन्मुक्त हुए ।

योगी जंगम ते अति दुखिया, तपसी कहँ दुख दूना ।
आशा तृष्णा सब घट व्यापे, कोइ महल नहिं सूना ॥
साँच कहों तो सब जग खीझै, झूठ कहल नहिं जाई ।
कहहिं कबीर तेइ भौ दुखिया, जिन यह राह चलाई ॥१०४॥

माया के त्याग और विवेकादि के बिना जो योगी जंगम बने हैं, सो अत्यन्त दुःखी हैं और अज्ञ तपस्वियों को अन्य की अपेक्षा दूना (द्विगुण) दुःख होता है । क्योंकि आशा तृष्णा तो सब घट में व्यापती है और दैहिक दुःख तपस्वियों को अधिक रहता है । विवेकादि के बिना कोई महल (हृदय) आशा तृष्णा से शून्य (रहित) नहीं होता है । परन्तु इस साँच (सत्य) बात के कहने से सब संसारी खीझते (क्रुद्ध) होते हैं । और मुझसे झूठ कहा नहीं जा सकता है । अतः कहते हैं कि वे ही लोग दुखिया हुए कि जिन लोगों ने यह आशा तृष्णा कामादिमय संसार के बहुविध मार्ग चलाये और उनमें चले अन्य को चलाये, निष्काम आशा आदि रहित नहीं हुए, अतः सुखेच्छु को कामादि रहित होना चाहिये । अन्यथा संसार के प्रवर्तक भी दुःखी हुए और होते हैं ।

शब्द १०५

खसम बिनु तेलिक बैल भयो ।
बैठत नाहिं साधु के सङ्गति, नाधे जन्म गयो ॥
बहि बहि मरहु पचहु निःस्वारथ, यम के दण्ड सह्यो ।
धन दारा सुत राज काज हित, माथे भार गह्यो ॥

मद माया त्यागे बिना, तेलिक बैल समान ।
नर भरमत भय दुख सहत, निज सुख मुक्ति न जान ॥२४९॥

आशा तृष्णादि के वशवर्ती प्राणी सर्वात्मा सद्गुरुरूप खसम (रक्षक स्वामी) की प्राप्ति के बिना बद्धनेत्र परिमित देश में परवश घूमने वाले तेली के बैल तुल्य हुए और होते हैं। विवेकादि के बिना लोक-परलोकादि में भ्रमते हैं। क्योंकि ऐसे प्राणी कभी साधुओं (ज्ञानी सन्तों) की सङ्गति में नहीं बैठते हैं। अतः

काम्य कर्म लोक व्यवहार रूप कोल्हू में नाधे (बाँधे लगे) ही उनका जन्म गया और जाता है। साहब कहते हैं कि रे अविवेकी निःस्वारथ (सत्य स्वार्थ के विना) मिथ्या स्वार्थ के लिये तुम वह बहकर बैल तुल्य मरता है और पचता (पीड़ित होता) है। और इसी से तुमने यम के दण्डों (यातनाओं) को कितने बार सह चुके हो। और फिर भी धन स्त्री पुत्र और राज्य के कार्यों के लिये अपने शिर पर अनेकों भार धर कर उसको पकड़े हो और सत्सङ्ग सद्विचार हरिस्मरणादि नहीं करते हो यह आश्चर्य और दुःखप्रद मार्ग है।

खसमहि छोड़ि विषय रंग राच्यो, पापक बीज बयो।
झूठ मुक्ति नल आश जीवन की, प्रेतक जूठ खयो॥
लख चौरासी जीव योनि महँ, सायर जात वह्यो।
कहहिं कबीर सुनहु हो सन्तो, श्वानक पूँछ गह्यो॥१०५॥

क्योंकि जो सर्वात्मा सद्गुरु सन्तस्वरूप खसम (असंग स्वामी) को छोड़कर विषय के रंग (सौन्दर्य आनन्द राग) में राचा (प्रेम रुचि किया) सो पाप के बीज लोभादि को अपने हृदय रूप क्षेत्र में बोया और बोता है। अतः उस मनुष्य के लिये मुक्ति झूठ हो जाती है। अर्थात् वह परलोक (स्वर्गादि) को और मोक्ष को मिथ्या समझता है। क्योंकि—

"न सांपरायः प्रतिभाति बालं प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम्।"

(कठ० १।२।६)

प्रमादी धन के मोह से मूढ़ अज्ञ को सांपराय (परलोक) प्रतीत ही नहीं होता है। अतः वह इस शरीर सहित जीवन की और भोगादि की आशा करता है और जीवनादि के लिये प्रेतों को पूज कर प्रेतों का जूठ खाया और खाता है। भुक्तोपभुक्त अशुचि विषयों को भोगता है। इससे चौरासी लाख जीवों की योनि रूप सायर (समुद्र) में वह प्राणी सदा वहा जाता है। और कबीर साहब कहते हैं कि हे सन्तो! सुनो, इस अवस्था में भी (कहहिं कबीर हरि शरण गहु। रमैनी २०) इत्यादि उपदेश को नहीं मान कर भूत प्रेतादि रूप कुत्तों के पूँछ (शरण) को गहा है। जिससे अधिक कष्ट ही पाता है। तुम सत्सङ्गादि करके सर्वात्मा राम को समझो॥१०५॥

शब्द १०६

पण्डित बाद बदै सो झूठा ।
राम के कहै जगत् गति पावै, खाँड़ कहै मुख मीठा ॥
पावक कहै पाँव जो डाहै, जल कहे तृषा बुझाई ।
भोजन कहै भूख जो भागै, तो दुनियाँ तरि जाई ॥

तेलिक बैल समान जो, विषयासक्त अजान ।
राम कहन से मुक्ति नहि, पावत गहि अभिमान ॥२५०॥
नाम भजन से भक्ति लहि, ज्ञानहि से लह मुक्ति ।
नाम कथन से मुक्ति नहि, यह गुरु वचन सयुक्ति ॥१५१॥
सत्य प्रीति करि विषय में, माया रत जो प्राणि ।
एक राम के भजन बिनु, तिहि यम बाँधत मानि ॥२५२॥

हे पण्डितों ! प्रेत के जूठ को खाने वाला तथा श्वान के शरण को पकड़ने वाला होता हुआ यदि वाद वदता है । रामादि नामके कथन मात्र से अपनी मुक्ति मानता हुआ नाम विषयक अर्थवाद स्तुति वचन को कहता है, कि अजामिल आदि एक बार नाम कहने से मुक्त हो गये, सो झूठा है । अजामिल आदि के पूर्व पुण्यों को जाने विना ऐसा कहता है ।

और यदि ईश्वर के रामादि नाम मात्र के कहने मात्र से संसारी सद्गति मुक्ति पावे तो खाँड़ के कहने से मुख में मिठास होनी चाहिये । और अग्नि के कहने से यदि पाँव डाहै (जलै) जल के कहने से प्यास मिटे, भोजन के नाम लेने से भूख भग जाय, तो माना जा सकता है कि राम कहने मात्र से दुनियाँ तर जायगी । अतः—

"यस्यै देवतायै हविर्गृहीतं स्यात्तां मनसा ध्यायन् वषट् कुर्यात् ।"
(गोपथ ब्रा० ३।४)

इत्यादि वचनों के अनुसार नाम जपादि सभी स्थानों में विवेक विश्वास ध्यानादि की आवश्यकता होती है । यह भाव है ।

नल के संग सुगा हरि बोलै, हरिप्रताप नहिं जानै ।
जो कबहुं उड़ि जाय जङ्गल मँह, स्वपनहुं सुरति न आनै ॥

बिनु देखे बिनु अरस परश बिनु, नाम लिये का होई।
धन धन कहे धनिक जो होवै, निरधन रहै न कोई॥

क्योंकि विवेकादि के बिना सुवा भी हरि रामादि बोलता है, परन्तु बोलने मात्र से हरि प्रताप को नहीं जान जाता है। अतः यदि कभी जङ्गल में उड़ जाता है, तों स्वप्न में भी हरि को सुरति (ध्यान) में नहीं आनता है। उसी के समान विवेक से देखे बिना और परोक्ष रूप से दर्शन तथा प्रत्यक्ष आत्मरूप से दर्शन रूप अरस परश के (ज्ञान के) बिना केवल नाम लेने से क्या हो सकता है। कौन सच्चा फल मिल सकता है। यदि धन धन कहने से धनिक हुआ जाय तो कोई निर्धन नहीं रह जाय। नाम मात्र से मुक्ति हो तो कोई संसारी नहीं रहे।

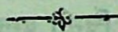
यद्यपि— "शब्दे मारा गिर पड़ा, शब्दे छोड़ा राज।
जिन यह शब्द विवेकिया, तिनको समरा क़ाज॥" (साखी ६)

इत्यादि वचनों के अनुसार शब्दों के विवेक पूर्वक आत्मविवेक से मुक्ति होती है तथापि शब्द मात्र के कहने से नहीं।

साँची नेह विषय माया सो, हरि भक्तन की फांसी।
कहहिं कबिर एक राम भजे बिनु, बाँधे यमपुर जासी॥१०६॥

क्योंकि विषयादि रूप माया में सत्यता की बुद्धि से उसमें नेह (स्नेह) से हरि भक्तों को भी फांसी लगती है। अर्थात् नामोच्चारण मात्र से भक्त हरि भक्त कहाने वाले हृदय से त्रिगुण विषय के प्रेमी गुणों से बाँधे जाते हैं। अतः कबीर साहब कहते हैं कि सब विषयादि को मिथ्या अपवित्र दुःख रूप समझकर, एक सच्चिदानन्द परम पवित्र राम को भजने के बिना तुम यमपुर में बाँधे जाते हो। अतः सब को मिथ्या आदि समझकर, उसमें स्नेह को त्याग कर एक सर्वात्मा राम को भजो॥ १०६॥

इति राम बिना दुःखादि वर्णन प्रकरण ३६



अथ मायाकृतभ्रमतरणार्थोदेश प्रकरण ४०

शब्द १०७

है कोई गुरु ज्ञानि जगत में, उलटी वेदो बूझै।
पानी में आग लागी, अन्धहि आँखिन सूझै॥

पाया गुरु से ज्ञान जिन, सो जग सुख नहिं जान।
लखै सत्य सुख एक हरि, सन्त सोइ परमान॥२५३॥

गुरु ज्ञानी (सद्गुरु से ज्ञान पाने वाले ज्ञानी) संसार में कोइ विरले हैं, कि जो (यस्यां जागर्ति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः। गीता २। ६९) जिस व्यवहार में अज्ञ प्राणी जागते हैं (सावधान) प्रवृत्त होते हैं) उसको अज्ञानात्मक अन्ध रात्रि रूप समझने वाले मुनिके समान सब वेद (वेद्य पदार्थ) अविवेक दशामें जैसे प्रतित होते हैं, उससे उलट करके विवेक दशा में उन्हें समझते हैं। अर्थात् सत्य सुखादि भासते हुए संसार स्वर्गादि को मिथ्या दुःखदादि जानते हैं। और (नायमस्तीति चैके। कठ १।१।२०) मरने पर आत्मा नहीं रहता है, इस प्रकार असत् भासते हुए आत्मा को जो सत्य सदा एक रस वर्तमान जानते है, तथा मन को संसार से उलटकर वेद को उलटकर जो सत्यात्माराम को जानते हैं, सो गुरुज्ञानी हैं। ऐसा समझने के बिना पानी (ताप रहित सुख स्वरूप आत्मा) में मिथ्या तापाग्नि भ्रम से लगी है, सो अन्धों (अज्ञों) को आँखों से नहीं सूझता है। आत्मा में ताप पापादि को अज्ञ प्राणी मिथ्या नहीं समझते हैं किन्तु जन्म मरणादि आत्मा में ही मानते हैं। क्योंकि जब बाहर से अन्ध (निरुद्धेन्द्रिय वाला) हुआ जाता है, तभी विवेक विज्ञान रूप नेत्रों द्वारा सब तापादि से रहित आत्मा राम सूझता है, बाह्यवृत्ति वाले को नहीं सूझता है।

गाई तो नाहर को खैलो, हरिणी खैलो चीता।
कागा नगरे फाँदि के, बटेरन बाज जीता॥

सत्यात्मा राम के सूझने के विना मन माया रूप गाय, नाहर (बड़े बड़े लोग नृपति आदि) को खा गई है। और हरिणी (विषयों के तरफ चित्त को हरने प्राप्त करने वाली इन्द्रियाँ) चीता (चिन्ता ग्रस्त छोटे छोटे प्राणी) को खाई हैं। कामी सन्तोषादि रहितों की इन्द्रियाँ, स्ववश की हैं। तहाँ अलि (भ्रमर) पतंग, मीन, मृग, हस्ती तुल्य गन्ध, रूप रस शब्द स्पर्श रूप एक एक विषयों के प्रेमी

को तो एक एक इन्द्रिय खाती नष्ट करती है। परन्तु बाजतुल्य उड़ाकू होकर जो सब विषयों के प्रेमी होते हैं, वैसे काक तुल्य मलिन मन वालों के नगर में फांद कर (पैठकर) बटेरतुल्य सब इन्द्रियाँ तथा तुच्छ वासनायें उनकी बुद्धि विवेक विचारादिरूप बाजों को जीता है।

मूसा तो मञ्जारे खैलो, स्यारे खैलो श्वाना।
आदि का उद्देश जाने, तासू विश्वे बाना॥

मूसा (मलिन वासना चौर्यवृत्ति) मञ्जार (शास्त्रजन्य बोधादि) को खाया और स्यार (कुदेव की भावना) श्वान तुल्य हिंसक मांसाशी मनुष्यों को खाया। परन्तु किसी अवस्था में भी किसी पुण्य के प्रभाव से सर्वादिस्वरूप आत्माराम ओंकार के उद्देश (खोज मार्ग उपदेश) को जो जानता है, उसको संसार में सब काम बन गया (सिद्ध हो गया) तथा उसमें सब संसार बाना (स्वांग) के समान सहजधारणार्ह हो गया।

एकही तो दादुर खैलो, पाँचेहूँ भुवंगा।
कहहिं कबीर पुकारिके, हैं दोउ एक संगा ॥१०७॥

आदि के उद्देश के प्रभाव से ही एक ही दादुर (दया दान दम को उर में धारनेवाला) अल्पज्ञ अल्पशक्तिवाला भी जीव अविद्या, अस्मिता (अविवेक), राग, द्वेष, अभिनिवेश (अहंकार मरण का भय) इन पाँच सर्पों को आत्मनिष्ठ होकर खा गया। पाँच प्राण, पाँच ज्ञानेन्द्रियों को वश किया, जन्म, जरा, मरण, दारिद्र्य, व्याधिरूप पाँचों दुःखों से रहित हुआ। पाँच देवादि की अधीनता (वश्यता) से मुक्त हुआ और होता है। कबीर साहब कहते हैं कि इस ज्ञानावस्था में साधारण जीव और देव ईश्वर एकत्र साथ ही रहैं, परन्तु कोई किसी के बाधक नहीं होते हैं। आत्मभाव से ही विदेहमोक्ष पर्यन्त जीव के साथ देवादि वर्ताव करते हैं और जीव भी आत्मभाव से वर्ताव करता है। सबको सत्य ब्रह्म निजात्म स्वरूप जानता है, इत्यादि ॥१०७॥

शब्द १०८

योगिया के नगर बसै मति कोई। जोरे बसै जो योगिया होई॥
वही योगिया के उलटा ज्ञाना। कारा चोला नाहीं म्याना॥

ज्ञानी को देवादि के साथ रहते विरोध नहीं रहता है, यह सुनकर कोई मुमुक्षु कुसङ्ग न करले। अतः साहब उपदेश देते हैं कि कोई मुमुक्षु योगिया (संयोगी भोगी व्यभिचारी अति संग्रही कृपण) के नगर (ग्राम समूह) संग में मति (नहीं) वसो। क्योंकि जो कोई उस नगर में बसता है, सो "सङ्गात्संजायते कामः।" (भ० गी० २।६२) संग से काम की उत्पत्ति होने के कारण कामी होकर योगिया (कुयोगी संयोगी) हो जाता है। अतः श्रीमद्भागवत का वचन है कि—

"सङ्गं न कुर्यादसतां शिश्नोदरतृपां क्वचित्।
तेषां सङ्गात्तमस्यन्धे पतत्यन्धानुगोऽन्धवत् ॥१॥" (स्क० ११।२६।३)

लिङ्ग पेट को तृप्त करने वाले असत पुरुषों का कहीं सङ्ग नहीं करे। क्योंकि उनके सङ्ग से अन्धे के पीछे चलने वाला अन्ध के समान अन्धतम नरकादि में गिरता है। और वर्तमान काल में भी कुसङ्ग से ज्ञानहानि और कष्ट होता है। क्योंकि उस योगिया का ज्ञान उलटा (विपरीत) अविद्या रूप रहता है।

"अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या।" (योग सूत्र)

अनित्य, अशुचि, दुःख और अनात्मा में नित्य, शुचि, सुख, आत्मबुद्धि (ज्ञान) रूप उलटा ज्ञान को अविद्या कहते हैं।

अविद्या अविवेकादि से ही उस योगिया के चोला (स्थूल सूक्ष्म देह) कारा (क्रूर तीक्ष्ण दया रहित तलवार तुल्य घातक) रहता है और उसको संयत (वश) रखने के लिये विवेक वैराग्य अमानिता आदिरूप म्यान (कोश) योगिया के पास में नहीं रहता है, अतः वह संगी को पीड़ित करता ही है।

प्रगट सो कन्था गुप्ताधारी। ता महँ मूल सजीवन भारी ॥
वही योगियाके युक्ति जो बूझै। राम रमै तिहि त्रिभुवन सूझै ॥
अमृत वेली क्षण क्षण पीवै, कहैं कबिर योगि युग युग जीवै ॥

क्योंकि प्रगट (स्थूल) और गुप्त (सूक्ष्म) दोनों देह रूप कन्था (गुदरी) को धारण करने वाला (देहाभिमानी) वह योगिया होता है। दया धर्मादि को भी नहीं समझता है। क्योंकि उन दोनों देहों के अन्दर उनके मूल कारणरूप अविद्या (अज्ञान) योगिया में भारी सजीवन (आत्म ज्ञान के बिना अविनाशी) रहता है। और उस प्रबल अज्ञान ही से वह योगिया रहता है, योगी नहीं है।

इस प्रकार यदि जो कोई उस योगिया के अज्ञानादि मूलक युक्ति (सांसारिक सम्बन्ध) गुरु आदि द्वारा समझे और ज्ञान से अज्ञान को नष्ट करके सर्वात्मा

राम में रमे, उसको तीनों भुवन (लोक) सूझता है। तीन शरीर तीन लोक से भिन्न होकर वह साक्षी रूप से सबको देखता है। और विद्यामृत बेली (लता) के रस (ज्ञानानन्द) को क्षण क्षण में पीता (अनुभव करता) है और सब कबीर (ज्ञानी) योगी कहते हैं कि वह साक्षी स्वरूप से युग युग जीता है।

अथवा उपासक कर्मी कबीर कहते हैं कि योगिया के संग से हानि होती है। किन्तु उसके यज्ञ दानादि रूप युक्ति को जो समझता है और तटस्थ राम में रमता है, सो सिद्धि के बल से तीनों लोकों को प्रत्यक्ष देखता है। तथा स्वर्ग साकेतादि लोकों में जाकर अमृत बेली के रस को पीता है और अमर होकर युग-युग जीता है। वस्तुतः—

भोगी की सङ्गति किये, भोगी ही जन होय।
ताकी सङ्गति त्यागिये, जो सुख चाहो कोय ॥२५४॥१०८॥

शब्द १०९

भाइ रे बिरले दोस्त हमारे, बहुत बहुत का कहिये।
गढ़न भञ्जन समारन आपे, राम रखै त्यों रहिये॥

योग युक्ति युत राम के, प्रेमी बिरल सुजान।
कहिय अन्य से बात का, जहँ विवेक नहिं ध्यान ॥२५५॥
माया से सब रचत नित, रक्षत करत जु भंग।
सोइ राम सत जानिये, चिन्ता तजु बहिरङ्ग ॥२५६॥
संग करो ता सन्त का, लखा सत्य हरि जोय।
औरन की सङ्गति किये, कुमति हृदय में होय ॥२५७॥
राम बिना कछु सत्य नहिं, तजिय आन की आश।
संशय मोह विनाशिये, अनुभव लहि सुख राश ॥२५८॥

रे भाई! पूर्वोक्त उपदेशों के अनधिकारी जो बहुत लोग हैं, उन बहुत लोगों से तो क्या कहा जाय। जो बिरले हमारे दोस्त (प्रेमी) हैं, उनके लिये कहा जाता है कि गढ़न, समारन, भञ्जन (उत्पत्ति, पालन, नाश) करने वाला जो आप (सर्वात्मा स्वयं) राम है। जिसकी सत्ता शक्ति (माया) से अनायास सब संसार की उत्पत्ति पालनादि स्वप्न के समान होते हैं। सो राम जैसे रखे तैसे चिन्ता रहित होकर रहना चाहिये, इस प्रकार राम में भक्ति विश्वासादि से आशा तृष्णादि के अभाव पूर्वक कुसङ्ग के अभाव से शान्ति मिलेगी, अन्यथा नहीं।

आसन पवन योग श्रुति स्मृति, ज्योतिष पढ़ि बैलाना।
छौ दर्शन पाखण्ड छयानवे, एकल काहु न जाना॥
आलम दुनी सकल फिरि आयो, एकल उहे न आना।
ताजी करिगह जगत उपायो, मन मँह मन न समाना॥

उक्त विश्वास भक्ति ज्ञान के विना आसनाभ्यास, पवनयोग (हठयोग प्राणायाम) करने वाले तथा श्रुति स्मृति ज्योतिष को पढ़ने वाले आसन योगादि करके तथा श्रुति आदि को पढ़कर भी राम में विश्वासादि के विना बैलाना (बैल तुल्य जड़ देहाभिमानी हुए) रहते हैं। इस प्रकार के षट् दर्शनी योगी जंगमादि और छयानवे पाखण्ड के वेषधारी कोई भी एकल (अद्वैत) राम को नहीं जाना।

सकल आलम (जमात) दुनी (दुनियाँ) में सत्यादि को बाहर खोजकर फिर आया परन्तु एकल सर्वात्मा वह राम ही सत्य सुख स्वरूप है, सो सब के अन्तरात्मा होने के कारण बाहर खोजने वालों को नहीं मिला। और उस राम की प्राप्ति के विना जीवों ने पुराने करिगह (कर्मतन्तु वयन स्थान शरीर) को त्याग कर भी बार-बार जगत् में ताजी (नूतन) करिगह को उपाया (उत्पन्न प्राप्त किया) क्योंकि इनका मन, मन में नहीं समाया (मन अपने अन्दर में साक्षी स्वरूप राम को नहीं समझा) स्वात्मनिष्ठ नहीं हुआ।

कहहिं कबिर योगी औ जंगम, फीकी इनकी आशा।
राम नाम रटिये ज्यों चातक, निश्चय भक्ति निवासा॥१०९॥

कबीर साहब कहते हैं कि सर्वात्मराम के ज्ञानादि को जो नहीं पाये हैं, ऐसे जो सिद्धि आदि के कामुक योगी और जंगम होते हैं। इनकी फीकी तुच्छ आशा होती है। हे मुमुक्षुओं! सब तुच्छ आशाओं को त्याग कर चातक के समान अनन्यभाव से राम नाम जपो रटो तो अवश्य हृदय में राम भक्ति का निवास होगा, अन्य भक्ति चली जायगी जिससे सर्वात्मा राम का अनुभव और मोक्ष प्राप्त होगा इत्यादि॥१०९॥

इति मायाकृत भ्रमतरणार्थोपदेश प्रकरण ४०

अथ संशय जन्यजन्भादि प्रकरण ४१

शब्द ११०

रामुरा संशय गाँठि न छूटै, ताते पकरि पकरि यम लूटै ॥
ह्वै मिस्कीन कुलीन कहाहु, तुम योगी संन्यासी ।
ज्ञानी गुणी शूर कवि दाता, या मति किनहुँ न नाशी ॥

संसय भ्रम अज्ञान तम, जब लग तन अभिमान ।
तब लग जियत न तरत सो, मरि न तरत अनजान ॥२५९॥
भोगत कृत कर्मादि फल, मुक्ति न लहत अचेत ।
देखत भी समझत नहीं, विकल फिरत ज्यों प्रेत ॥२६०॥

योगी जंगम शिवभक्त होते हैं। अतः पूर्व शब्द के अन्त का अर्थ किया जाय कि योगी जंगम की फीकी आशा होती है, कि चातक के समान राम नाम रटिये, इत्यादि। तो वह अर्थ उचित नहीं होगा, क्योंकि वे लोग राम नाम जपते नहीं हैं। और पूर्वोक्त अर्थ में शंका होती है कि प्रथम कहा गया है कि—

"राम कहे जो जगत गति पावै, खाँड़ कहे मुख मीठा।"

अतः पूर्वापर में विरोध प्रतीत होता है। अतः इस शंका की निवृत्ति के लिये कहते हैं कि हे रामुरा! (राम धन वाले, रामराजा जीव!) जब तक संशय, अज्ञान भ्रम नहीं निवृत्त होते हैं और काम आशा तृष्णादि रूप ग्रन्थि (बन्धन) नहीं छूटते हैं, तब तक उस संशय और ग्रन्थि से ही पकर पकर कर मृत्यु कष्ट देती है। अतः सद्गुरु के उपदेशादि द्वारा संशय कामादि रहित होकर राम नाम जपने से ज्ञान युक्त भक्ति निरभिमानी के हृदय में वसती है। परन्तु राम के संशय और कामादि युक्त होते भी मिस्कीन (दीन दास भक्त) तुम कहाते हो, तथा योगी और सन्यासी कहाते हो और कुलीन कहाते हो (कुलीनता के अभिमान करते हो) इसी प्रकार संशयादि के रहते ज्ञानी गुणी शूर कवि और उपदेशादि के दाता उदार गुरु आदि कहाते हो, परन्तु हृदय में ज्ञान युक्त भक्ति की स्थिति के विना इस संशयादि मति अभिमिति को किसी ने नष्ट नहीं की। अतः भक्ति कर्तव्य है।

सुस्मृति वेद पुराण पढ़ै सब, अनुभव भाव न दरशै ।
लोह हिरण्य होत दहुं कैसे, जो नहिं पारस परसै ॥

भक्ति निरभिमानिता आदि को नहीं प्राप्त करके सुन्दर स्मृति (धर्मशास्त्र) वेद पुराण को सब पढ़ते हैं, परन्तु भक्ति रहित अभिमानी, विश्वास रहित संशयालुओं में सर्वात्मा राम के साक्षात् अनुभव का भाव (सत्त्व) नहीं दीखता है। क्योंकि यदि पारस से परस (सम्बन्ध) नहीं हो तो लोहा हिरण्य (सुवर्ण) कैसे हो (सर्वात्मा राम के ज्ञान अभिमानादि की निवृत्ति के विना जीव जीवन्मुक्त कैसे हो) निरभिमानता आदि से ज्ञान होने ही पर जीवन्मुक्ति होती है, फिर विदेह मुक्ति होती है।

जियत न तरेहु मुये का तरिहो, जियत ही जो न तरे।
गहि परतीति कियो जिन जासो, सोइ तहाँ अमरे ॥

मरने ही पर मुक्ति मानने वालों से कहते हैं कि यदि तुम जियते ही में अज्ञान भ्रम संशय अभिमान कामादि रूप संसार सागर से ज्ञान विरागादि द्वारा नहीं तरते (मुक्त होते) हो, तो मरने पर क्या तरोगे और गुरु उपदेशादि के बिना कैसे तरोगे। क्योंकि जियते ही नहीं तरने पर जिन लोगों ने जासो (जिससे) गहि परतीति (दृढ़ प्रीति विश्वास) की, सोइ (वे प्रतीति करने वाले) अमरे (मरने से प्रथम ही) वासना द्वारा तहाँ (वहाँ) स्थिर हुए। अतः वे मर कर भी वहाँ जायगें, मुक्त कैसे होगें। जियते में नित्यमुक्तात्म स्वरूप में स्थिति रूप जीवन्मुक्त होने ही पर विदेह मुक्त भी होता है, अन्यथा नहीं।

जो कछु कियो ज्ञान अज्ञाना, सोई समुझ सयाना।
कहहिं कबिर तासो का कहिये, देखत दृष्टि भुलाना ।११०।

जीवन्मुक्ति को नहीं पाने पर, हे सयान लोगों! जो कुछ तुम ज्ञान (उपासना वा ज्ञात कर्मादि) किये हो और जो कुछ अज्ञान (कर्म वा अज्ञात कर्मादि) किये हो, सोई समुझो (उनके ही फल मरने पर मिलेगें ऐसा समझो) ज्ञान जीवन्मुक्ति के विना मरने पर मुक्ति की मिथ्या आशा आदि नहीं करो। कबीर साहब कहते हैं कि कर्म उपासना के फलरूप बोध (ज्ञान) से मोक्ष, अज्ञान से बन्धनादि को लौकिक शास्त्रीय दृष्टि से देख (समझ) कर भी जो मोहादिवश भूले हैं (संसार में आसक्त हैं) उनसे क्या कहा जाय। मुमुक्षुओं से कहा जाता है कि संशयादि की तथा कामादि की निवृत्ति के लिये हृदय में ज्ञान भक्ति की प्राप्ति करो। भूलो नहीं, मरने ही पर मोक्ष की आशा आदि नहीं करो इत्यादि ॥११०॥

इति संशयजन्यजन्मादि प्रकरण ४१

अथ ज्ञान बिना सर्वनिष्फलता प्रकरण ४२

शब्द १११

देखि देखि जिव अचरज होई, यह पद बूझै बिरला कोई ।
धरती उलटी अकाशहि जाई, चिउँटी के मुख हस्ति समाई ॥
बिनु पवने जो पर्वत ऊड़ै, जीव जन्तु सब वृक्षहिं चूड़ै ॥

भूले जन को देखिके, ह्वै अचरज मन माँहि ।
जो प्रत्यक्ष निज बोध बिनु, भ्रमत अगम भव माँहि ॥२६१॥
माया मय संसार में, बन्धे अज्ञ सब लोग ।
योग न भावत ताहि शुभ, पुनि पुनि माँगै भोगं ॥२६२॥
तिनहि देखि आश्चर्य अति, सन्तन को नित होय ।
चढ़ि ऊँचे गिरता सकल, दुःख न मानत सोय ॥२६३॥

जान बूझ कर भ्रमते हुए जीवों को देख देख कर आश्चर्य होता है, कि ये लोग प्रायः परोक्ष मुक्ति लोकादि चाहते हैं। और यह (अपरोक्ष) निजात्मपद (सर्वाधार राम) को कोई बिरला बूझते (समझते हैं। अतएव सब धरती (पृथिवी) उलट कर आकाश ही में जाती है (सब भूमि निवासी स्वर्ग में जाना चाहते हैं)। तथा अज्ञ योगी नीचे के प्राण मन को उलट कर आकाश में जाते हैं। कोई शून्य शब्दादि रूप आकाश की उपासना करके आकाश में लीन होते हैं। ऐसे लोग मन रूप चींटी के वासनादि रूप मुख में हस्ती होकर समाते हैं। अर्थात् अपने महान् स्वरूप को जाने बिना तुच्छ मनोवासना आदि के वश में होते हैं। अतएव जहाँ बिना पवन (प्रबल विषय) के ही पर्वत तुल्य धारणावाले योगी जन तुच्छ विषय वायु मनोमाया के वेग से उड़ रहे हैं, या उड़ जाते हैं। उस संसार में सब साधारण जीव जन्तु संसार स्वर्गादि वृक्ष पर चढ़ना और संसार की चूड़ा स्वर्गादि में स्थिर होना चाहते हैं, जहाँ प्रबल विषय वायु को भी समझते हैं, सो आश्चर्य है। तथा योगी लोग प्राण के निरोध से बिना पवन के होकर दशम द्वार पर चढ़ते हैं, तो भी यदि आत्मानुभव नहीं करते हैं, तो यह आश्चर्य है।

सूखे सरवर उठे हिलोर, बिनु जल चकवा करै किलोर ॥
बैठा पण्डित पढ़ै पुरान, बिनु देखे का करै बखान ॥
कहहिं कबिर जो पद को जान, सोई सन्त सदा परमान ॥१११॥

सूखे हुए सरोवर के तुल्य सत्यानन्द रहित स्वर्गादि में अज्ञ कर्मी रसास्वाद में लगे योगी की दृष्टि से आनन्द की हिलोर (तरङ्ग) उठती है (विषयजन्य तुच्छ सुखादिक ही इनको पूर्णानन्द प्रतीत होता है) और सत्य सुखरूप जल के विनाही देवादिरूप चकवा कल्लोल (क्रीड़ा) करते हुए अज्ञों को प्रतीत होते हैं।

और सत्यात्मा आदि के ज्ञानादि से रहित गृह में बैठे (आसक्त) पण्डित पुराण पढ़ते हैं। सो भी सत्य मिथ्या को विवेक पूर्वक समझे बिना, बिनु देखे (समझे) का ही व्याख्यान करते हैं। जिसको सुन कर अन्य लोग प्रायः मिथ्या फलादि के इच्छुक हो जाते हैं।

कबीर साहब कहते हैं कि जो कोई विवेकी सत्सङ्ग, विचार, गुरुसेवा, हरिभक्ति आदि पुरुषार्थ करके इस अपरोक्ष सर्वाधार आत्मारामको जानते हैं, मिथ्या संसार की आसक्ति आदि से रहित हैं, सोई सदा प्रामाणिक सन्त हैं। ज्ञान के लिये उनका वचन प्रमाण रूप है ॥१११॥

शब्द ११२

तुम यहि विधि समुझहु लोई हो। गोरी मुख माँदर बाजै ॥
एक सगुण षटचक्रहिं बेध्यो। बिनु वृष कोल्हू माँचै ॥
ब्रह्महि पकरि अग्नि मँह हून्यो। मच्छ गगन चढ़ि गाजै ॥

हे मुमुक्षु जिज्ञासु लोगों! इस उक्त रीति से सन्त के समान अपरोक्ष आत्मा को समझो और समझो कि बिनु देखे व्याख्यान को करनेवाले पण्डितों के मुखरूप माँदर (बाजा विशेष) ही गोरी बजता है (शुद्ध ब्रह्म का उपनिषदादि शुद्ध वाणी का उच्चारण करता है) उनके हृदय में गोरी वस्तु नहीं रहती है। किन्तु एक कोई सगुण वस्तु ही उनके छवों चक्रों में बेधी रहती है। एक सगुण से ही योगी चक्रों को बेधते हैं और अहिंसा, सत्य, तप, दानरूप चार पाद युक्त भक्ति ज्ञानरूप धर्म वृष (बैल) के बिना उनके देहरूप कोल्हू सिद्धि आदिरूप तेल के लिये क्रिया में माँचता है (चलता है) ज्ञान के लिये नहीं।

भाव है कि मूल द्वार में आधार नामक चक्र चार दलवाला पद्मरूप एक है ॥१॥ लिङ्गमूल में स्वाधिष्ठान नामक षड्दल युक्त दूसरा है ॥२॥ नाभि में मणिपूरक नामक दश दलयुक्त तीसरा है ॥३॥ हृदय में बारह दलयुक्त अनाहत चक्र चौथा है ॥४॥ कण्ठ में विशुद्ध नामक षोडश दलयुक्त चक्र पञ्चम है ॥५॥

भ्रूमध्य में द्विदल युक्त आज्ञा नामक षष्ठचक्र है ॥६॥ इनको कमल भी कहते हैं और इनमें गणेश १, सावित्रीयुक्त ब्रह्मा २, लक्ष्मीयुक्त विष्णु ३, पार्वतीयुक्त शिव ४, अविद्या ५ और क्षेत्रज्ञ (जीव) के क्रम से वास (स्थिति) को योगी मानते हैं और गणेशादि के ध्यानादि से इनकी प्रत्यक्षता आदि से चक्रों का वेधन (भेदन) मानते हैं । इस प्रकार एक सगुण माया के कार्यों से ही चक्रों के वेधन से सर्वत्र आनन्द की वर्षा करनेवाले शुद्धात्मा के ज्ञानादि के विना देह को कर्मों में नचाते हैं और नाचते हैं ।

अतः मन मायारूप मछली इस जीवरूप रजोगुणी ब्रह्मा को पकड़कर तापादि रूप अग्नि में हवन करती है । आप गगन में चढ़कर देवदेवी अविद्या आदिरूप से गाजती (विराजती) है ! अतः मुमुक्षु को सब चक्रादि में एक सत्यात्मा निर्गुण राम का ही चिन्तन, भजन, ध्यान करना चाहिये, अन्य का नहीं । सब देव-देवी आदिरूप एक आत्मदेव ही माया आदि उपाधि से भासता है ।

नित्य अमावस नित्य ग्रहण ह्वै, राहु ग्रसन नित दीजै ॥
सुरही भक्षण करत वेद मुख, घन बरषै तन छीजै ॥

उक्त रहस्य ज्ञान में निष्ठा के विना योगियों के देह हृदयों में चित्त चन्द्रमा के लयरूप तथा चन्द्र नाड़ी के श्वास का विलयरूप अमावस्या प्रतिदिन होती है तथा चन्द्र नाड़ी से सुष्मणा में प्राप्तिरूप चन्द्रग्रहण और सूर्य नाड़ी से सुष्मना में प्राप्तिरूप सूर्यग्रहण भी प्रतिदिन होते हैं और कुम्भककाल में कुण्डिलनीरूप राहु के प्रति प्राणरूप सूर्य, चन्द्र का प्रतिदिन ग्रास (भोग) दिया जाता है तो भी ज्ञान के विना चित्तादि का नाश नहीं होता है । वेद मुख (वेद वक्ता) को भी सुर (देव) ही भक्षण (वश) करते हैं, ज्ञान के विना कोई स्वतन्त्र मुक्त नहीं होने पाता है । कर्मादि की बहुत वर्षा करने पर भी शरीर का नाश अवश्य होता है । यद्यपि वेद मुख (वेद वक्ता) योगी लोग सुरही (सुरभी) गौ नामक जिह्वा का भक्षण करते हैं (कपाल कुहर में घुसाते हैं) उस जिह्वा पर चन्द्र स्थान से रस विशेष गिरता है, सो मानो मेघ वर्षता है । उस रस का पान योगी अमरत्व की इच्छा से करते हैं, उसको अमर वारुणी कहते हैं । कबीर साहब कहते हैं कि घन वृष्टि होने पर भी तनु तो नष्ट होती है, आत्मा कभी नष्ट होनेवाली वस्तु स्वरूप नहीं है । अतः अमरता की दृष्टि से यह प्रयास व्यर्थ है, इत्यादि ।

त्रिकुटी मध्ये माँदर बाजै, अवघट अम्बर छीजै ॥
पुहुमिक पनिया अम्बर भरिया, ई अचरज को बूझै ॥

अनहदोपासक योगियों के त्रिकुटी के मध्य में माँदर (मृदंग अनहद बाजा) बजता है। तहाँ उस अवघट में अम्बर चिदाकाशरूप जीवात्मा) छीजता है। "अनहद अनुभव की करि आशा" इस रमैनी वर्णित रीति से विपरीत मार्ग में जाकर निज स्वरूप से च्युत होता है। क्योंकि पुहुमी (भूमि) के पानी को इस चिदम्बर (जीव) ने भरा (प्राप्त किया) अर्थात् भूमि पर के भोग, भोग्य विषयादि को प्राप्त किया हैं, आत्मानन्द को नहीं। फिर इस आश्चर्यरूप संसार को मिथ्या कौन समझता है? योगी भी इसको सत्य ही समझता है।

कहहिं कबीर सुनहु हो सन्तो!, योगिन सिद्धि पियारी।
सदा रहत सुख संयम अपने, वसुधा आदि कुमारी ॥११२॥

कबीर साहब कहते हैं कि हे सन्तो! (मुमुक्षुओं) तुम आत्मश्रवणादि करो, ऐसे योगियों को तो भोग के हेतुरूप सिद्धि ही प्यारी है, भक्ति, मुक्ति, शान्ति नहीं। अतः अपने लौकिक सुख का हेतुरूप जो संयम (धारणा ध्यान समाधि) उसी में सदा लगे रहते हैं या लौकिक सुख के लिये संयम (युक्ति उपाय संग्रह) में सदा रहते हैं। अतः बसुधा (भूमि) में आदि कुमारी बने रहते हैं। स्त्री तुल्य तटस्थ पति के खोज में लगे रहते हैं, परन्तु भोग की वासनाओं से उसे भी नहीं पाते हैं और भोग के लिये जिस बसुधा को प्राप्त वशी करना चाहते हैं, सो बसुधा भी आदि कुमारी है, अब तक किसी के वश में हुई नहीं है। अतः विवेक के बिना व्यर्थ चेष्टा करते हैं; सो विवेक ही कर्तव्य है कि जिससे पूर्ण वैराग्य शम-दमादिपूर्वक निजात्म लाभ हो सके ॥११२॥

शब्द ११३

झूठहि जनि पतियाहु हो, सुनु सन्त सुजाना।
घटही में ठग पूर है, मति खोहु अपाना ॥

करि विचार इमि जानिये, माया मय संसार।
बिनु विचार यामें भुला, मुख से सत्य उचार ॥२६४॥
जो कोइ सन्त सुजान सो, श्रवण करो इक सार।
झूठे में विश्वास तजि, सत्यहि गहो सँभार ॥२६५॥

शुद्ध वाणि से शुद्ध लखि, निर्गुण आतम राम।
झूठों का वन्दन तजि, वन्दिय सद्गुरु राम ॥२६६॥

सद्गुरु की करि वन्दना, लखा जो निर्गुण राम।
सोइ सन्त शुभ साधुजन, देत सबहि विश्राम ॥२६७॥

हे सुजान (विवेकी) सन्तो ! झूठ (मिथ्या) सिद्धि सुख संयम आदि को सत्य समझकर उनका विश्वास नहीं करो । किन्तु किसी ज्ञानी सन्त से आत्म-श्रवणादि करो । मिथ्या में सत्यादि के विश्वास करने पर काम लोभ आदि ठगों से ठगे जाओगे । क्योंकि विवेक रहित मिथ्या में सत्यता सुखहेतुता आदि के विश्वासियों के घट में ही ठगों का पुर (ग्राम) है, या पूर्ण स्वरूप है । तुम मिथ्या विश्वासी होकर अपने स्वरूप को ज्ञानादि रत्नों को कामादि वश नहीं खोवो । यही सन्तपन और सुजानता है ।

झूठे का मण्डान है, धरती असमाना ।
दशहुँ दिशि वाके फन्द है, ज़िव घेरे आना ॥
योग याग तप संयमा, तीरथ व्रत दाना ।
नौधा वेद कितेब है, झूठे का बाना ॥

झूठे (मिथ्या मन माया) का मण्डान (विस्तार मण्डन) भूमि और आकाश (स्वर्गादि) में सर्वत्र हैं और दशो दिशाओं में उस मन माया के ही काम लोभ मोहादिरूप कर्मादि रूप फन्द फैले हैं । उनके घेरे में अज्ञ जीव सब आ गये हैं । सकाम योग, यज्ञ, तप, संयम, तीर्थ, व्रत, दान, नवधा निधि, भक्ति, संसार, और शब्दात्मक वेद किताबादि सब झूठे का ही बाना (स्वाँग वेष स्वभाव) स्वरूप हैं, (मन माया से सब सिद्ध होते हैं) और निष्कामता विवेकादि के बिना मिथ्या ही फल देते हैं, सत्य फल नहीं ।

काहू के शब्दे फुरे, काहू करमाती ।
मान बड़ाई ले रहे, हिन्दु तुरुक दु जाती ॥
बात ब्योंत असमान की, मुद्दत नियरानी ।
बहुत खुदी दिल राखते, बूड़े बिनु पानी ॥

सकाम योगादि के बल से किसी के शब्द फुर (सत्य) होते हैं (वाक्य सिद्धि से शाप आशीर्वाद सफल होते हैं), तथा काव्य शक्ति होती है । किसी

में आकाश गमनादि अणिमादि करमात (कर्म शक्ति) होती है। जिससे सिद्ध योगी आदि हिन्दू तुरुक दोनों जातियों में मान (प्रतिष्ठा) बड़ाई लेते रहते हैं और निज स्वरूप सर्वात्मा राम को भूले रहते हैं।

कोई असमान (आकाश) स्वर्गादि की बात को ब्योंतते (वाचनिक व्यवस्था) करते हैं और इसी व्यवस्था करते में उनकी मुद्दत (अन्त समय आयु) नियरा जाती है (मृत्यु पास में आ जाती है)। इस प्रकार बहुत खुदी (खुदगर्जपन तुच्छ स्वार्थ विषयादि) को मन में राखते ही में ऐसे लोग बिनु पानी के संसार में बूड़ गये और बूड़ते हैं। सत्सुखादि रहित में सुखादि की आशा आदि से जन्मते मरते हैं।

कहहिं कबीर कासे कहौं, सकलो जग अन्धा।
साँचा से भागा फिरै, झूठे का बन्दा ॥११३॥

इति श्रीसद्गुरुकबीरकृते विविधबन्धवीजविध्वंसने
बीजकनाम्नि ग्रन्थेऽखिलसंशयशमनदमनं
द्वितीयं शब्दप्रकरणं समाप्तम् ॥२॥

कबीर साहब कहते हैं कि पूर्वोक्त आत्मतत्त्व की और जीवन्मुक्ति निष्कामता की कथा विशेषरूप से किससे कहें। इस कथा के अधिकारी विवेकी ही होते हैं और सब संसारी अन्धे (विवेक रहित) कलि में हुए हैं, कोई विरल विवेकी होते हैं और अविवेकी होने ही से सत्यवक्ता सत्यवस्तु से भागे फिरते हैं और झूठी (मिथ्या) वस्तु के लिये झूठों की वन्दना करते हैं, उनके दास (भक्त) होते हैं ॥ ११३ ॥

"माया आगे जीव सब, ठाढ़ भये कर जोर।
जिन सिरजा जल बुंद से, तासो बैठे तोर ॥१॥
माया दीप पतंग नर, भ्रमि भ्रमि माँहि परन्त।
कोई गुरुजन ज्ञान से, उबरे साधू सन्त ॥२॥" (अंग सा०)

इति श्रीमत्स्वामिहनुमद्दासषट्शास्त्रिविरचित बीजक-
सारबोधिनी टीका द्वितीय शब्द प्रकरण ॥२॥



❀ ओम् राम ❀

❀ श्रीसद्गुरु कबीर साहब कृत बीजक ❀

बीजकसारबोधिनी टीका सहित

अथ

तृतीय कहरा प्रकरण

अथ तनु धनादि जुगुप्सा प्रकरण १

कहरा १

ऐसन देह निरापन बौरे, मुये छुवै नहिं कोई हो।
डँडवक डोरवा तोरि लड़वलन, जो कोटिन धन होई हो॥

माया मद को त्यागिये, तनु धनादि लखि तुच्छ।
सर्वातम श्रीराम लखि, गहिय न गर्दभ पुच्छ॥ १॥
कामादिक हैं नरक के, हेतू दुःख निदान।
कामादिक के नाश से, दुख नहि रहत जहान॥ २॥
जव लगि काम न नशत मन, जब लगि तन अभिमान।
तब लगि सुख स्वप्नहुँ नहीं, नहि जन्मादिक हान॥ ३॥
अभिमानादिक नाश हित, तनु धन निन्दत ज्ञानि।
सुनि त्यागिय अभिमान छल, गाइय अमृत बानि॥ ४॥

देहादि के अभिमान, ममता मोहादि से ही मनुष्य साँचे से भागता है और झूठे का बन्दा होता है। अतः अभिमानादि की निवृत्तिपूर्वक विवेकादि के लिये श्रद्धालु अविवेकियों के प्रति उपदेश है, कि हे बौरे! (देहाभिमानी अविवेकी) लोगों! यह देह ऐसा निरापन (स्वत्व रहित अपावन) है कि मुये पीछे इसको कोई छूता भी नहीं है और चाहे करोड़ों धन हो, तो भी ममता रहित देह सम्वन्धी डाँड़ के डोरे को भी लोगों ने तोड़कर लड़वन (गिराया बीगा) और गिराते हैं। अतः एक डोरा (धागा) तक भी अन्त में देह के साथी नहीं रहता है, तो जीव के साथी कौन तन धन रह सकते हैं? इनका मिथ्या ही अभिमान होता है।

ऊर्ध्वे श्वासा उपजी त्रासा, हँकराइन परिवारा हो।
जो कोइ आवै वेगि चलावै, पल इक रहन न पारा हो॥
चन्दन चरचि चतुर सब लेपिन, गले गजमुक्ता हारा हो।
चहुँदिशि गीध मुये तन लूटै, जम्बुकन ऊदर फारा हो॥

मरणकाल में ऊर्ध्वश्वास होते ही पासवर्ती अन्य को त्रास (भय) उपजता (उत्पन्न होता है। अतः वह अकेला भयभीत होकर अपने परिवार को हँकारता (पुकारता बुलाता) है। फिर जो कोई आता है, सो वेगि (शीघ्र) उस ऊर्ध्वश्वासी को घर से चलाता (बाहर करता) है। बाहर करने के लिये यत्न करता है। अतः एक पल भी घर में पड़ा हुआ रहने नहीं पाता है। फिर लोक-व्यवहार के अनुसार गृह से बाहर करने पर प्राण त्यागने पर देह अमङ्गलरूप स्पर्शायोग्य हो जाती है। तो भी जिस शरीर की शोभा के लिये जीवनकाल में चतुर लोग चन्दन को चरचि (घीस) कर उसमें लेपते हैं और गले में गजमुक्ता आदि के हार को पेन्हते हैं। परन्तु मरने पर इस देह को वन में डार देने पर, उस तन को चारो तरफ से गीध लूटते (खाते) हैं और सियार पेट फाड़ता है। यह दशा पवनदाग से देह की होती है। भूमिदाग, जल दाग, अग्नि दाग से अन्य अवस्था होती है। आत्मा इन सब दागों से रहित है।

कहहिं कबीर सुनहु सो सन्तो, ज्ञान हीन मति हीना हो।
एक एक दीन यही गति सब की, क्या राव क्या दीना हो॥१॥

कबीर साहब कहते कि हैं, हे सन्तो! (विवेकियों!) हे ज्ञानहीन हे मतिहीनों सब इस उपदेश को सुनो। यह उपदेश सर्व मनुष्य मात्र के लिये है। सबको समझना चाहिये कि क्या राजा और क्या दीन (दरिद्र) सबके शरीर की एक एक दिन यही गति होती है। अतः इस शरीर के अभिमान नहीं करके इससे परोपकार स्वकल्याण के ही लिये यत्न करना चाहिये मन माया के फन्दों से बचना चाहिये, राम भजनादि करना चाहिये॥१॥

कहरा २

राम नाम भजु राम नाम भजु, चेति देखु मन माहीं हो।
लक्ष करोड़ जोरि धन गाड़ै, चलत डोलावत बाँही हो॥

साक्षि रूप सत राम नित, जन्म मरण तिहि नाहिं ।
माया तजि ताको भजै, सोऊ जन्मत नाहिं ॥५॥
चिच्छाया युत लिङ्ग यह, गहत तजत है देह ।
जन्म मरण ताको कहिय, आतम राम अदेह ॥६॥
ताहि भजिय निज समुझि मन, तजिय सकल की आश ।
राम भजन विनु छुटत नहिं, कठिन जगत् यम त्रास ॥७॥

उपदेश है कि तन धनादि के अभिमानादि को त्यागकर राम नाम वाले को भजो, राम नाम वाले ही को भजो । और अपने मन में चेतकर (सावधान होकर) मन में साक्षी स्वरूप अन्तर्यामी स्वरूप सच्चिदानन्द स्वरूप राम को देखो (समझो) और जन्मादि के हेतु अभिमान को त्यागो । क्योंकि उस राम के भजन ज्ञान के बिना मनुष्य देह को पाकर भी लाख करोड़ादि धन को जोड़ (संचय) करके जो भूमि में गाड़ता है और अभिमान से बाँह डोलाते हुए अकड़ कर चलता है, सो अभिमानादि को त्याग नहीं सकता है ।

बाबा दादा औ परपाजा, जिनके ई भुइँ भाँड़े हो ।
अँधरे भये हियहुं की फूटी, तिन काहे सब छाड़े हो ॥
ई संसार असार को धन्धा, अन्त काल कोइ नाहीं हो ।
उपजत विनशत बार न लागै, जस बादर की छाहीं हो ॥

क्योंकि अभिमानी लोग यह नहीं समझते हैं कि बाबा (पिता) दादा (पितामह) और परपाजा (परपितामह) हो गये हैं, जिनके ये भूमि और भाँड़े (वर्तन) अभी तक वर्तमान हैं । ये सब यदि उनके हैं, तो वे लोग सब भूमि भाँड़े को काहे छोड़ गये । ऐसा समझे भी कैसे, वे अभिमानादि से अन्धे हुए हैं और हृदय की भी विवेक विचारादि रूप दृष्टि फूटी हुई है । और विवेकादि के अभाव से ही इस संसार में असार विषयादि को प्राप्त करने ही के लिये लोग धन्धा (सब व्यापार) करते हैं । और यह संसार असार (मिथ्या माया) का ही धन्धा (कार्य) है । अतः अन्त काल में कोई किसी का नहीं होता है । महाप्रलय में कुछ नहीं रहता है । सृष्टि काल में भी तनु धनादि को उपजते विनशते में वार (दिन देर) नहीं लगता है । बादर की छाया के समान सब उत्पन्न नष्ट होते रहते हैं । संसार के कोई पदार्थ किसी के लिये स्थिर निश्चित नहीं हैं ।

नाता गोता कुल कुटुम्ब सब, इनकर कौन बड़ाई हो।
कहहिं कबिर एक राम भजे बिनु, बूड़ल सब चतुराई हो॥२॥

इस विनश्वर संसार में नाता (नातेदारी सम्बन्ध) गोता (गोत्र) कुल (घर खानदान) और कुटुम्ब (सम्बन्धी) इन सबकी भी क्या बड़ाई है, इन सबसे भी कोई सच्ची बड़ाई श्रेष्ठता नहीं होती है। किन्तु एक राम के ज्ञान भजनादि से ही सच्ची बड़ाई (मुक्ति) होती है। अतः कबीर साहब कहते हैं कि अनेक को त्याग कर एक सर्वात्मा राम को भजे बिना सब चतुराई भी बूड़ी (नष्ट हुई) क्योंकि जैसे संसार असार है, तैसे संसार की चतुराई भी असार है (स्वफल सहित विनश्वर है) अतः आगे कहा गया है कि (सकल सयानप ऊनी हो) ॥२॥

ज्ञान धर्म लगि मनुज तनु, सो भी आपन नाहि।
अति हि अपावन जानिये, मुये न छ्वत ताहि ॥८॥
ज्ञान हीन मति हीन जो, मोह करत या माहि।
सोउ त्यजत इक दिन अवश, व्यर्थ कष्ट बहु पाहि ॥९॥
याते तजि अभिमान तन, रामहि भजिय सदाहि।
लखिये हृदय विचारि तिहि, सब अभिमान नशाहि ॥१०॥
एक राम के भजन बिनु, सकल सयानि सुयुक्त।
बूड़त हैं भवसिन्धु में, होत न विमल विमुक्त ॥११॥२॥

इति तनु धनादि जुगुप्सा प्रकरण १

अथ कामी जुगुप्सा प्रकरण २

कहरा ३

ननदी गे तैं विषम सोहागिनि, तैं निगले संसारा गे।
आवत देखि एक संग सूती, तैं औ खसम हमारा गे॥
मोर बाप कहँ दुइ मेहररुआ, मैं अरु मोर जेठानी गे।
जब हम अइली रसिक के संग में, तबहि बात जग जानी गे॥

विषम विषय अभिनन्दना, करन करावन हार।
आप वहत भव सिन्धु में, और वहावन हार ॥१२॥

संग असंग सुस्वामि का, करत न सेवन सोय ।
जगत पिता प्रभु छाड़ि के, कामादिक वश होय ॥१३॥

विषम विषय कामादि वश, जन नहिं लखत विशुद्ध ।
ज्ञानी निज पद शुद्ध लखि, नाशत सकल अशुद्ध ॥१४॥

नाता गोत्र कुल कुटुम्बादि के अभिमानियों के हृदयों में वासना आदिरूप माया स्वामिनी रहती है और अन्तर्यामी ईश्वर उस माया का पति रहता है। और अभिमानी जीव (उसकी बुद्धि) मानो माया की ननद होती है और माया के वश में होकर विषम (कठिन क्रूर त्रिगुण विषयादि) की सोहागिन (प्रेमवाली) होती है। अतः परवश स्त्री तुल्य उस जीव के प्रति कबीर साहब कहते हैं कि गे ननदी (हे मायाभिनन्दिनी) तुम स्वयं विषम वस्तु की सोहागिनी (प्रेमवती) हो। और तुमने तो मानो डाकिनी होकर स्वसंगी संसारी को निगल जाती है, खा लेती है। तुम इस संसार में आते (जन्मते) समय विषम के प्रेम से रहित सूती (अज्ञान निन्द से सोई) हुई देखी गयी थी और हमारा एक खसम सर्वात्मा राम) ही उस समय संग में सहायक था। जन्म के बाद न मालूम क्यों उसे छोड़ कर अन्य से प्रेम करती हो। और सर्व खसम (रक्षक) उस मोर बाप (जगत्पिता) के दो मेहरारू (वशवर्ती) हैं। एक मैं (मेरा मन) और मोर जेठानी (श्रेष्ठ बुद्धि) ये दोनों ज्ञानी के आत्मनिष्ठ रहते हैं। क्योंकि जब हम (जिज्ञासु जन) रसिक (ब्रह्मानन्द के अनुभवी) सद्गुरु सन्त के संग में आये, तबही संसार को बात (बाणी) मात्र मिथ्या (वाचारम्भणं विकारो नामधेयम्) वाक् वाणी से आरम्भवाला विकार (कार्य) नाम मात्र है, ऐसा समझ लिया। अतः हमारे मन बुद्धि विषय कार्यों में प्रेम नहीं करते हैं। ऐसा सब मनुष्यों को समझना चाहिये।

माय मोर मुवलि पिता के संगे, साराराचि मुवल संघाता गे।
आपुहि मुई और लै मुवली, लोग कुटुम्ब संग साथा गे॥
जब लगि श्वांस रहे घट भीतर, तब लगि कुशल परी हैं गे।
कहहिं कबिर जब श्वांस निसरिगौ, मन्दर अनल जरीहैं गे॥३॥

आत्मज्ञानपूर्वक संसार को बातमात्र समझते ही मेरी ममता मायारूप जन्मदात्री माता, पिता के संग में मर गई। ईश्वर में लीन हो गई। और

भूतेन्द्रियादि के संघात (समूह) रूप सूक्ष्म स्थूल देहादि ज्ञानचिता को रच कर जर मर गये। और अविद्यारूप माया ज्ञानाग्नि से आप मरी और अन्य अपने प्रपञ्चों को लेकर मरी। अतः ज्ञानी के लोग कुटुम्ब संग (सम्बन्ध) साथ (सहवास) आदि सब नष्ट हो गये (इन सब के सहित माया मरगई) परन्तु प्रारब्ध कर्मवश जब तक ज्ञानी के शरीर में श्वांस रहता है, तब तक देह को कुशल प्राप्त रहता है (देह वर्तमान रहती है)। कबीर साहब कहते हैं कि जब ज्ञानी का श्वांस निसर (निर्गत=समाप्त) हो गया, तो देव रहित देहरूप मन्दर जरेगा और जलता है, ज्ञानी जरण मरणादि से रहित मुक्त हो जाता है (अनारब्ध कार्ये एव पूर्वे तदवधेः। ब्रह्म सूत्र अ० ४।१।१५) ज्ञान से पूर्व काल के ही कार्यारम्भ से रहित ही (प्रारब्ध से भिन्न ही) पुण्य पाप ज्ञान से नष्ट होते हैं। ज्ञानोत्तर के पुण्य पाप का सम्बन्ध नहीं होता है, परन्तु प्रारब्धनाश का तो वह भोग के अन्त में शरीर पात अवधि है। अतः भोग से ही प्रारब्ध का नाश होता है।

"प्रारब्धं बलवत्तरं खलु विदां भोगेन तस्य क्षयः" (विवेक चूड़ामणि) ॥३॥

कहरा ४

राम नाम बिनु राम नाम बिनु, मिथ्या जन्म गमायहु हो ॥
सीमर सेइ सुगा ज्यों जहड़े, ऊन परे पछताई हो ॥
जैसे मदुआ गाँठि अर्थ दे, घरहुक अकिल गमाई हो ॥

राम नाम समझे बिना, मरा मनुष तनु पाय।
ताका जन्म न सफल भौ, तृप्ति बिना मरि जाय ॥१५॥
तृप्ति हेतु अज अमल इक, रतन हृदय के माँहि।
ताहि न पावत भक्ति बिनु, तृप्ति विषय से नाँहि ॥१६॥

संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं है, कि जिसके बिना मानवजन्म निष्फल जाय। किन्तु एक राम नाम के भजन ज्ञान के बिना मिथ्या (झूठ संसार व्यवहार) में व्यर्थ जन्म कितने बार गमाये हो। और जैसे फलस्वाद के लोभ से सीमरको सेव कर शुग्गा जहड़ता (धोखा में पड़ता) है, फिर ऊन (रुआ) के देह पर पड़ने से पश्चात्ताप करता है और जैसे मद्यप गाँठ का अर्थ (धन) देकर मद्य पीता है और घर शरीरादि की अकिल (होश ज्ञान) को गमाता है। तैसे तुम धन पुत्रादि को सेवकर उनके नाश वियोगादि से दुःखी होते पछताते हो। और स्त्री

आदि के मादक भावों से विवेकादि रहित हो जाते हो, लोभादि से अपने कर्तव्य धर्मादि को नहीं समझते हो, सर्वाधार तृप्तिकारक राम को नहीं समझते हो।

स्वादे उदर भरे नहिं कबहूँ, ओसे प्यास न जाई हो ॥
द्रव्यहीन कैसन पुरुषारथ, मनहिं माँह पछताई हो ॥
गाँठी रतन मरम नहिं जानै, पारख दीन्हा छोरी हो ॥
कहहिं कबिर यह अवसर बीते, रतन न मिले बहोरी हो ॥४॥

और मद्य या किसी विषय के स्वाद से उदर (पेट) कबहूँ (कभी) नहीं भरता है (तृप्ति नहीं होती है) क्योंकि—

"न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते ॥" (मनुः अ० २।६४)

कामियों का काम जातु (कभी) उपभोग से शान्त नहीं होता है। किन्तु हवि घृतादि से कृष्णवर्त्मा (अग्नि) के समान, उपभोग से काम अधिक बढ़ता है। और जैसे ओस (जलकण) से प्यास नहीं जाती है, तैसे विषयों से तृष्णा नहीं मिटती है। परन्तु मद्यादि सेवन के व्यसन से द्रव्यहीन होने पर फिर उसका अन्य पुरुषार्थ कैसे और किस प्रकार हो सकता है? अतः वह पीछे मन में पश्चात्ताप करता है। इसी प्रकार जो विषय व्यसनादिवश सर्वात्मरूप द्रव्य की प्राप्ति से रहित हैं, उनको मोक्ष सुख शान्तिरूप सच्चा पुरुषार्थ कैसा किस प्रकार से प्राप्त हो सकता है? वे लोग मरने पर मन में पश्चात्ताप करते हैं और व्यसनी मद्यपादि गाँठी के रतन की भी रक्षा के मर्म को नहीं जानता है, तैसे कामी व्यसनी मनुष्य हृदयरूप गाँठी में सदा वर्तमान रामरत्न के मर्म को नहीं जानता है। क्योंकि यह उसके पारख (विवेक विचारादि) को छोड़ (त्याग) दिया है। विषयादि के विचारादि में लग गया है। कबीर साहब कहते हैं कि विषय विचारादि में यह मानवता के अवसर बीतने पर बहोरि (फिर) यह रत्न नहीं मिलता है। अतः विषयविचारादि को त्यागकर मुमुक्षु को राम के विवेक विचारादि करना चाहिये ॥ ४ ॥

कहरा ९

मति सुनु माणिक मति सुनु माणिक, हृदया बन्ध निवारहु हो ।
अटपट कुम्हरा करे कुम्हरैया, चमरा गाम न बाँचे हो ॥
निति उठि कोरिया बेठ भरतु हैं, छिपिया आँगन नाचे हो ।

विषयों से नहिं तृप्ति सुख, यों लखि करिय विचार।
करिय श्रवण नित राम का, पाइय रतन अपार ॥१७॥
रतन अपार स्वरूप निज, तजिय काम मद मोह।
मन इन्द्रिय रस त्यागिये, तब स्वरूप निज सोह ॥१८॥
निज सौभाग्य स्वरूप बिनु, मन रचता बहु देह।
नाचत सब संसार में, लहत न मुक्ति विदेह ॥१९॥
भव सागर से तरण हित, पाइ मनुष तन नाव।
पार न होवत मूढ़ नर, त्यागत सकल कुठाँव ॥२०॥
मन इन्द्रियवश मूढ़ नर, उर प्रियतम नहिं जान।
रज तम गुण के वश पड़ा, सद्गुरु सन्त न मान ॥२१॥
सद्गुरु सत्सङ्गति बिना, लखत पन्थ शुभ नाहिं।
चलत कुपन्थ कुघाट में, लोभ धरत मन माहिं ॥२२॥
लोभ कुकाम कुभोग से, चहत शान्ति सुख थान।
ताको गुरु कहते सदा, प्रेम भक्ति करु ध्यान ॥२३॥

उक्त राम रत्न की प्राप्ति के लिये उपदेश है कि हे माणिक! (मनपर्वत के साक्षी निर्मल रत्न जीव) तुम मति (भावी हित की कथा) को सुनो और अन्य कथा को मति (नहीं) सुनो और हृदय के काम लोभ मोहादिरूप बन्धनों का निवारण करो। क्योंकि ऐसा किसे विना तुम अटपट कुम्हरैया करते हो (कामादि वश निन्दित मलिन शरीररूप घट को बार-बार मन कर्मादि द्वारा रचते हो) उसको रचित रखना चाहते हो, परन्तु वह चमरा गाम (चर्मादिमय देह समूह) बाँचता (बचता) नहीं है। तुम व्यर्थ उसके लिये यत्न करते हो और श्रवणादि के अभाव से सदा उठकर (मनुष्यतापूर्वक उद्यम परायण होकर) कोरिया (कोली जुलाहे) के समान बेठ भरते हो (बेगार करते हो) अर्थात् वर्तमान काल में फल रहित सकाम कर्म करते हो और मति श्रवणादि के बिना जीवन्मुक्ति नहीं पाते हो। अतः छिपिया (छीपा) के समान अनेक रंग से रञ्जित नाना देहरूप पट को पहिर कर तुम संसाराङ्गण लोकादि में बार-बार नाचते हो, आते-जाते हो। अतः स्थिति के लिये श्रवणादि करो।

निति उठि नौवा नाव चढ़तु है, बेरहि बेरा बारे हो॥
राउर के कछु खबर न जानहु, कैसे झगर निवारे हो॥

एक गाम बसे पाँच तरुणियाँ, ता महँ जेठ जेठानी हो ।
आपन आपन झगर पसारिन, पिय सो प्रीति नशानी हो ॥

सदा मोह अज्ञानादि नीन्द युक्त अन्य योनियों से उठकर नौवा (नौमान्) केवट के समान होकर मानवतनुरूप नौका पर चढ़ते हो, मनुष्यता का अभिमान करते हो, परन्तु मति श्रवणादि के बिना सब बेरे (नौकाओं) को संसार से पार हुए बिना ही बारते (त्यागते) जाते हो । और—

"अयं हृदि स्थितः साक्षी सर्वेषामविशेषतः ।
तेनायं हृदयं प्रोक्तः शिवः संसारमोचकः ॥ (पञ्चब्रह्मोपनिषद्)

जिससे शिवस्वरूप संसार नाशक सर्वसाक्षी यह आत्माराम सब के हृदय में समान स्वरूप से स्थिर है । अतः यह (हृदि अयः) हृदय कहा गया है । उस राउर (उर के राजा) की खबर (ज्ञान) को यदि कुछ नहीं जानते हो (नहीं प्राप्त किये हो) तो हृदयादि के झगड़ों (कलहों) का निवारण कैसे कर सकते हो । एक शरीररूप ग्राम में पांच ज्ञानेन्द्रियरूप पाँच तरुणी (युवती) स्त्री बसती है । और उनका नेता एक जेठ (बड़ा) मन बसता है, तथा एक जेठानी (दुर्बुद्धि) बसती है । राउर की खबर को नहीं जानने से ये सब अपने अपने विषयों के लिये झगरा को पसारी (फैलाई) रहती है । कि जिससे प्रियतमात्मा से प्रीति नष्ट हो जाती है । विषयादि की इच्छा से आत्मभक्ति नहीं होती है ।

भैंसिन माँह रहे नित बकुला, तकुला ताकि न लीन्हा हो ॥
गायन माँह बसेहु नहिं कबहूँ, कैसे के पद चीन्हा हो ॥
पन्थिक पन्थ चीन्ह नहिं लीन्हा, मूढहिं मूढ गमारा हो ॥
घाट छोड़ि कस अवघट रेंगहु, कैसे लगवहु पारा हो ॥

आत्म प्रीति के बिना तुम बकुला (बक वृत्ति) होकर, भैंसियों के समान तामसी प्राणी के संग में सदा बसते हो, जैसे भैंसियों में बकुला बसता है।सात्त्विक सज्जनों में नहीं बसते हो । अतः तकुला (उस आत्म कुल) हृदय आत्मदेवादि के तरफ तुमने ताक देख नहीं लिया है । और गायन (गायक) उपदेशक सन्त गुरु विद्वानादि के शरण संग में कभी नहीं बसते हो, तो सत्योपदेशरूप सर्वाधार अचल स्थानरूप पद को कैसे चीन्होंगे । और यदि धर्म मोक्ष मार्ग के पथिकों से पूछकर पन्थों को चीन्ह नहीं लिये हो, तो तुम मूढों से मिलने वाले

मूढों से मूढ (मोह युक्त) और गमार (अज्ञ) हो । भला शमदमादि स्वधर्मादिरूप मोक्ष के घाटों (मार्गों) को छोड़कर, हिंसा असत्यभाषणादिरूप अवघट (कुमार्ग कुघाट) में कैसे रेंगते (चलते) हो, भला इस कुघाट द्वारा संसार के पार कैसे लगोगे (पार कैसे पहुँचोगे) अतः पार पहुँचने के लिये अब भी कुघाट को त्याग कर सुघाट से चलो ।

जत इत के घन हेरिया ललची, कोद इत के मन दौरा हो ।
दुइ चकरी लै दरन पसारिन, तब पैहों थिति ठौरा हो ॥
प्रेम बाण एक सतगुरु दीन्हा, गाढ़ो तीर कमाना हो ।
दास कबीर कियो यह कहरा, महरा माहिं समाना हो ॥५॥

क्योंकि कुघाट में चलनेवालों ने जत इत के (धन वाले धनियों के) धन सम्पत्ति को जहाँ तहाँ घन हेरिया (बहुत खोजा और देखा) फिर देखने पर ललची (लालच=लोभ युक्त) होकर उनका मन, कोदइत (कोदो तुल्य मादकतुच्छ विषयदाता देव धनी आदि) के प्रति (पास में) दौड़ गया । फिर उनकी सेवा आदि से कोदो तुल्य विषयों को प्राप्त करके और पुण्य पापरूप लोक परलोकरूप द्वोचकरी लेकर, उन विषयों को विचारना बढ़ाना भोगना आदि रूप दरन (क्रिया) पसारा (फैलाया) कि तब इस (दरन से) ही मैं स्थिति के स्थान को पाऊँगा, ऐसा निश्चय किया ।

इस अवस्था को देखकर, सच्ची स्थिति के स्थान की प्राप्ति के लिये सद्गुरुने प्रियतमात्मा विषयक सत्य प्रेम का उपदेशरूप एकही बाण शिष्यों को दिया है । और प्रणवादि मन्त्ररूप गाढ़ (दृढ़) कमान (धनुष) उस तीर (बाण) को चलाने के लिये दिया है। और कबीर साहब कहते हैं कि मैंने दासों (भक्तों) के लिये यह कहरा किया है (संसार में दुःख रूपता का उपदेश दिया है) जो महान् जिज्ञासुओं में समाया है, समानेवाला है, पामर विषयी में नहीं । या सद्गुरु ने तो प्रेम बाणादि सुख साधन दिया है । और धनी देवादि के दासों ने यह विषय भोगादि प्रसिद्ध कहरा (कष्ट का साधन) स्वयं किया है, कि जो महराओं में (नीचों में) प्रथम से ही सदा समाये रहते हैं इत्यादि ॥५॥

इति कामी जुगुप्सा प्रकरण २

अथ धारणोपदेश प्रकरण ३

कहरा ६

सहज ध्यान रहु सहज ध्यान रहु, गुरु के वचन समाई हो ॥
मेली शिस्त चरा चित राखहु, रहहु दृष्टि लौ लाई हो ॥
जस दुख देखि रहहु यह अवसर, अस सुख होइहिं पाई हो ॥

लोभ कुकाम कुभोग को, तजिय भक्ति उर लाय ।
सहज ध्यान में रमि रहौ, सद्गुरु वचन समाय ॥२४॥

यथा शक्ति गुरुभक्ति गुरु, महिमा में मन लाय ।
त्यागी अघ नास्तीकता, हरि सुमिरण सुख पाय ॥२५॥

करै धारणा ध्यान शुभ, सद्विवेक युत जोय ।
अथवा करै विचार नित, सत्सङ्गति रत होय ॥२६॥

सो लह सहज समाधि नर, मन वश ताके होय ।
काम क्रोध मद लोभ भय, दुख भव रहै न कोय ॥२७॥

सद्गुरु का उपदेश यह, सुनि गहिये दृढ़ मीत ।
राग द्वेष मद मेटि के, चलिय मोह दल जीत ॥२८॥

फिर उपदेश है कि सहजावस्थारूप सहजसमाधि की सिद्धि के लिये गुरु के प्रेमभक्तिरूप उपदेश और मन्त्ररूप वचन में समाकर (श्रद्धापूर्वक स्थिर होकर) ध्यान, स्मरण में लगे रहो और चरा (चञ्चल) चित्त (मन) को शिस्त (शस्त कल्याण स्वरूप) में, गुरु की शिष्टि (शिक्षा) में मेली कर (लगा कर) राखो और ज्ञान दृष्टि में लौ (ध्यान प्रेम) लगाये रहो (ज्ञान समाधि के लिये प्रेमयुक्त सावधान रहो) ।

यद्यपि इस योगाभ्यास में प्रथम दुःख दीख पड़ता है, तथापि प्रथम अभ्यासादि जन्य दुःखों को देख (जान) कर भी जैसे इस अभ्यासकाल में स्थिर होगे, तैसे तैसे उत्तम सुख प्राप्त होंगे । क्योंकि—"न सुखाल्लभ्यते सुखम्" सुख से सुख नहीं मिलता है, किन्तु साधनानुष्ठान जन्य दुःख से ही सुख मिलता है, यह प्रत्यक्ष है और शास्त्र भी कहता है। सात्त्विक सुख प्रथम विष तुल्य प्रतीत होता है, परिणाम (फल काल) में अमृत तुल्य होता है, यह गीतागत उपदेश है ।

जो खुटकार वेगि नहिं लागै, हृदय निवारहु कोहू हो ॥
मुक्ति कि डोरि गाढ़ि जनि खैंचहु, तब बाझिहिं बड़ रोहू हो ॥
मनुअहिं कहो रहो मन मारे, खिझुआ खीझि न बोले हो ॥
मानू मीत मितैयो न छोड़े, कमऊँ गाँठि न खोले हो ॥

योग युक्ति से गहिय तनु, मन गहिये धरि ध्यान ।
करि विवेक कामादि तजि, पाइय निर्गुण ज्ञान ॥ २९ ॥

बिनु साधन दुख के सहे, सुख नहि पावत कोय ।
भजन योग युत मन करै, तब सुख सद्गति होय ॥ ३० ॥

और जो (यदि) खुटकार (संदेहादिरूप खटका करने वाला चञ्चल) मन ध्यानादि अभ्यास में वेगि (शीघ्र) नहीं लगे, तो भी हृदय से क्रोध का निवारण किये रहो। किसी अन्य के खुटकार (उपद्रव) से मन नहीं लगे तो उस पर भी क्रोध नहीं करो और मुक्ति की डोरी (ध्यान रत चित्तवृत्ति) को गाढ़ (जोर) से नहीं खींचो (इसमें शीघ्रता उद्वेग) नहीं करो, तभी बड़ा रोहू (मछली) तुल्य मन बझेगा (स्ववश होगा) मुक्ति मिलेगी और कामादि के बेग होने पर अपने मनुअहिं (मन को) आप कहो (समझावो) और मन के बेग को मारे (दबाये) रहो और खिझुआ (क्रोधी) मनुष्य से भी तुम खीझ (क्रुद्ध हो) कर नहीं बोलो और सुखी सन्त सज्जनादि को मित्र मानो। उनसे ईर्ष्या द्वेषादि नहीं करो और कभी मित्रता की गाँठी को नहीं खोलो (मित्रता को नहीं त्यागो) तथा मित्र के आगे काम की गठरी को नहीं खोलो। अपनी इच्छा को प्रकट नहीं करो (सकाम भक्ति प्रेम नहीं करो)। अर्थात्—

"क्रुध्यन्तं प्रति न क्रुध्येदाक्रुष्टः कुशलं वदेत् ।
सप्तद्वाराअवकीर्णां च न वाचमनृतां वदेत् ॥१॥ (मनुः ६।४८)

शनैः शनैरुपरमेद् बुद्ध्या धृतिगृहीतया ।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥२॥ (भ० गी० ६।२५)

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक् शरीरविमोक्षणात् ।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखीनरः ॥३॥ (भ० गी० ५।२३)

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्य-
विषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम् ॥४॥" (योगदर्शन १।३३)

क्रोध करते हुए पर क्रोध नहीं करे, निन्दा करनेवाले को शुभ वचन कहे। और पांच ज्ञानेन्द्रिय मन बुद्धि इन सातों से गृहीत वस्तुओं में प्रवृत्त होनेवाली झूठी वाणी नहीं वोले ॥१॥

सात्त्विक धैर्य से निगृहीत बुद्धि द्वारा मन को आत्मा में स्थिर करके धीरे-धीरे संसार से उपरत होवे, फिर अन्य की चिन्ता नहीं करे ॥२॥

यहाँ मानव देह में शरीर छूटने से प्रथम मरण पर्यन्त जो मनुष्य काम क्रोध जन्य वेग को रोकने में समर्थ होता है, वही योग युक्त और सुखी होता है ॥३॥

और सुखी से मित्रता, दुःखी पर दया, पुण्य में अनुमोदन, पाप में उपेक्षा करके चित्त को राग द्वेषादि से रहित शुद्ध करे ॥४॥

भोगहु भोग भुक्ति जनि भूलहु, योग युक्ति तन साधहु हो ॥
जा मत से करहू मतवाली, ता मत के चित वाँधहु हो ॥
न हिं तो ठाकुर है अति दारुण, करि हैं चाल कुचाली हो ॥
मारि बाँधि डाँरि सब ली हैं, छूटिहिं सब मतवाली हो ॥

उचित भोग भोगिय सदा, अनुचित कीजै त्याग।
गर्व कुमति परमाद तजि, रहिय चिदव्यय लाग ॥३१॥

"युक्ताहार विहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥१॥ (भ० गी० ६।१७)

परिमित उचित आहार, विहार, कर्मविषयक चेष्टा, शयन और जागरन करने वालों का योग दुःखनाशक होता है। अतः शरीर की स्थिति स्वास्थ्य के लिये विहित भोग भोगो, परन्तु भुक्ति (भोग) में भूलो (आसक्त) नहीं होवो। और जा मत (ज्ञान बुद्धि) से मतवाली (अभिमान) करते हो, उस ज्ञान बुद्धि को अभिमान के विषय तनु धनादि से हटा कर चिदात्मा में बाँधो (ब्रह्मात्मा का चिन्तन ध्यान करो।

नहीं तो (पूर्वरीति से अभ्यास भजनादि नहीं करने पर) ठाकुर (ईश्वररूप यमराज) तेरा मन तेरे लिये अत्यन्त दारुण (क्रूर शत्रु) है। तेरी चाल को कुचाल करेगा (त्रिगुणाधिकारी के वशवर्ती तेरा मन भोगरत होकर पाप करेगा) और भक्ति योगादि के बिना अन्तर्यामी ईश्वर उस मनको पाप से नहीं रोकेगा। सोई मानों तेरी कुचाल करेगा और वही प्रारब्धान्त में तुझे मृत्यु द्वारा मार

मार कर बाँधकर डाँरि (डण्ड दे) कर, सब अपराधों के बदला दण्ड लेगा, तब तेरी सब मतवाली छूटेगी। भाव है कि योग भक्ति आदि से कुप्रवृत्ति कुभोगादि के हेतु भी साध्य कर्म नष्ट हो जाते हैं। जिससे ईश्वरीय अनुकूलता रहती है, अन्यथा हीन प्रारब्ध से कुप्रवृत्ति होती है। तहाँ ईश्वरादि सहायक होते हैं, रोकते नहीं। अतः योग भक्ति अवश्य कर्तव्य है।

जबही सावट आनि पहूँचा, पीठि साट भल टूटी हो ॥
ठाढ़े लोग कुटुम सब देखैं, कहे न काहु कि छूटी हो ॥
एक पै नष्ट पाँव परि बिनवै, बिनति किये नहिं मानै हो।
अनचिन्ह रहहु कियेहु न चिन्हारे, सो कैसे पहिचानै हो ॥

योगादि रहित को दण्ड देने के लिये जब सावट (साँट बेंत मारनेवाला) यम किंकर (दूत) आ पहुँचता है। तब अपराधी के पीठ पर भली भाँति से साट टूटती है। और खड़े-खड़े लोग कुटुम्बादि सब देखते हैं, परन्तु किसी के कहने से भोगे विना छुट्टी नहीं मिलती है। और वह एक पै (सिर्फ अकेला) नष्ट (मृत्यु ग्रस्त) जीव उस समय पाँव पर के विनय स्तुति करता है। परन्तु वह दण्डदाता विनती करने पर भी नहीं मानता है, ऐसा ही उचित भी है। क्योंकि जिससे तुम सदा अनचिन्ह (ज्ञान परिचय रहित) छिपे रहते हो, तो वह तुमको उस समय कैसे पहिचाने, कैसे खातिर करे, इत्यादि। और—

"दुख में सुमिरण सब करै, सुख में करै न कोय।
जो सुख में सुमिरण करै, दुख काहे को होय ॥१॥
सुख में सुमिरण ना किया, दुख में किया याद।
कहैं कबिर ता दास की, कौन सुने फरियाद ॥२॥
विषय वासना उरझि कर, जन्म गमाया बाद।
अब पछितावा क्या करै, निज करनी करि याद ॥३॥" (अंग साखी)

ले न बोलाय बात नहिं पूछै, केवट गर्वतन बोलै हो।
जाके गाँठि समर कछु नाहीं, सो निथाह भय डोलै हो ॥
जिन समयुक्ति अगुअन कै राखिन, धरिन मच्छ भरि डेहरि हो।
जेकरा हाथ पाँव कछु नाहीं, धरे लागु तेहि सो हरि हो ॥

वह ठाकुर पहचान योग युक्ति भक्ति आदि रहित जीवों को प्रेम से नहीं बुला लेता है, न कुछ बात ही पूछता है। किन्तु वह केवट (भक्त योगी आदि को भवाब्धि से पार करनेवाला नाविक) पापियों को बाँधकर मँगवाता है। और अद्भुत निज माया शक्ति से गर्वमय तनुधारण करके बोलता है। उस समय जिनके गाँठी (हृदय) में श्रद्धा भक्ति सत्कर्मादिरूप समर (शम्बल बाट खर्च) कुछ भी नहीं रहता है, सो निथाह (अथाह अगम अपार) भय के स्थानों में विह्वल होकर डोलते (कांपते भ्रमते) हैं।

और जिन लोगों ने अगुअन (प्रथम) पूर्व काल से ही समयुक्ति (सम्यक् युक्ति उपाय संग्रह) करके ज्ञान ध्यानादि शम्बल को हृदय में रखा, उन लोगोंने उस मरण काल में भी भरि डेहरि (मन भर=मनोवाञ्छित पूर्ण) मच्छ (आनन्द मोक्ष) को धारण किया (पाया) क्योंकि (अपाणि पादः) इत्यादि के अनुसार, जिस हरि के हाथ पाँव आदि कुछ नहीं हैं, न जिस हरि में कभी धड़ (शरीर) लगते हैं, वह अशरीरी हरि ही मोक्ष सुख स्वरूप है। ज्ञानादि शम्बल वाले को वह मुक्त निजात्म स्वरूप से प्राप्त हो जाता है, उसके लिये यमादि का अभाव हो जाता है। और अज्ञों को वही मानो धरने (पकड़ने) लगता है, ज्ञानी के आत्मा हो जाता है। अतः ज्ञानी मुक्त हो जाता है।

"रमै निरन्तर आतमा, सब घट आठो याम।
ताही ते सन्तन धरा, राम तासु का नाम ॥१॥

झूठा सब संसार है, कोउ न अपना मीत।
राम नाम को जानि ले, चलै सो भव जल जीत ॥२॥

सम्पति तो हरि मिलन है, विपति जो रामवियोग।
सम्पति विपती राम कहु, आन कहे सब लोग ॥३॥" (अंग साखी)

पेलना अछत पेलि चलु बौरे, तीर तीर क्या डोलहु हो ॥
उथले रहहु परहु जनि गहिरे, मति हाथहु के खोवहु हो ॥
तर के घाम उपर के भूंभुरि, छाँह कतहुँ नहिं पायहु हो ॥
ऐसे जानि पसीजहु सीजहु, कस न छतरिया छावहु हो ॥

पेलना (नाव चलाने के साधन मछली पकड़ने के साधन) तुल्य मोक्ष के साधन मन को वश करने के साधन, स्वस्थ मानव देहादिरूप नाव के अछते (रहते)

में ही हेरौरे ! इसे पेल (खेव चला) कर (इसके द्वारा योगादि करके) संसार सागर से पार चलो (अगाध साधन करो) तीर तीर में क्या डोलते हो। तीर में जैसे वचा केवट मछली के लिये घूमता है, तैसे विषयों के लिये क्या घूमते हो। यदि संसार से पार जाने का सामर्थ्य नहीं हो तो भी उथले उच्च स्थान तुल्य सत्कर्मादि में सत्सङ्ग में रहो। कुसंग कुकर्मादिरूप गम्भीर (अथाह) सागर में (जनि) नहीं पड़ो। हाथ में प्राप्त अमूल्य (बहु मूल्य) रत्न तुल्य इस मनुष्यता सुन्दर अवसरादि को व्यर्थ ही मति (नहीं) खोवो।

ऐसा नहीं करने से मानस दुःख शोकादिरूप, गर्भवासादिरूप तरे (भीतर) के घाम (ताप) और उनसे अन्य ऊपर के दैहिकादि दुःखरूप ऊपर के (भूंभुरि) तप्त वालू तुल्य ताप पाये हो और पावोगे। और उनसे पीड़ित होने पर अपने सत्कर्म योगादि के विना छाँह (शान्ति सुख का स्थान) न कहीं पाये हो, न पावोगे। ऐसे ही जानो। और प्रायः ऐसा जानकर भी पसीजते सीजते (धर्मार्त होते पकते भुनते) हो। तो भी छाया शान्तिप्रद ज्ञान ध्यानादिरूप छतरी (घर) क्यों नहीं छाते हो। अवश्य छतरी छावो।

शुद्ध सत्य हरि ज्ञान से, शुद्ध हरिहि जन होय।
कीट भृङ्ग सम लखिय यह, रीति न दूसर कोय ॥३२॥

लोह पड़ा ज्यों मिट्टि में, मिट्टिहि होवत सोय।
यों जो मन हरि सो मिला, सो हरि माँहि समोय ॥३३॥

जन्मादिक से रहित हरि, रूप भया मन जोय।
जन्मादिक संसार दुःख, कभी न ताको होय ॥३४॥

साक्षिरूप हरि राम शिव, जन्म मरण नहि ताहि।
माया तजि ताको भजै, सोऊ जन्मत नाहि ॥३५॥

आशा तजि जिन योग पथ, गहा चला पथ ऊँच।
भवसागर से सो तरा, गौ गुण पार पहूँच ॥३६॥

उन्नत पथ गहि राम का, करिये नित्य विचार।
तजि प्रमाद गर्वादि को, चलिये नित्य सँभार ॥३७॥

जैसे माया मन रमै, तैसे राम रमाव।
माया मण्डल छोड़ि के, चित् स्वरूप घर छाव ॥३८॥

जो कछु खेल कियो सो कीयो, बहुरि खेल कस होई हो ॥
सासु ननद घर देत उलाटन, रहहु लाज मुख गोई हो ॥
गुरु भौ ढील गोण भौ लचपच, कहा न मानहु मोरा हो ॥
ताजी तुरकी कबहुं न साधेहु, चढेहु काठ के घोड़ा हो ॥

ज्ञान ध्यानादि रूप छत्री के नहीं छाने पर, इस मानव तनु में जो कुछ खेल क्रीड़ा तुमने किया सो किया, बहुरि (फिर) अन्य देहादि में कैसा खेल होगा सो समझो। वहाँ तो मिथ्या पतियों को सिद्ध करने वाली मायारूप सासु और अविद्या तृष्णा आशा आदिरूप ननद, दुर्बुद्धि जीवरूप दुलहिन को उलाटन (उलाहना उपालम्भ धिक्कार) देती दिलाती है। जिससे लाज के मारे मुख छिपा कर मूक बने रहते हो। तथा असु (प्राण) सहित अन्य योनि के घर (देह) रूप सासु ही मानो ननद है, सो उलाटन देती है। अतः मूक होकर रहना होता है।

संसार से पार जाने में समर्थ मानव देह रूप नौका के गुरु (गुणरखा) रूप मेरुदण्ड ढील हो गया और गोण (नाड़ीरूप गुण) तथा देहादिरूप बोरा लचपच (ढीले कमजोर) हो गये। तो भी तुम मोरा (सद्गुरु का) कहा नहीं मानते हो (सहज ध्यानादि में नहीं लगते हो)। अतः शीघ्र इष्ट स्थान में पहुँचाने वाली ताजी (नवीन) तुर्क स्थान की घोड़ी तुल्य शीघ्र शान्ति मोक्षप्रद ज्ञान ध्यान भक्ति योगादि कभी सिद्ध प्राप्त नहीं करते हो, न किये हो किन्तु काठ के घोड़े के तुल्य सकाम कर्मादि में लगे रहते हो देह में आत्मता का अभिमान करते हो और विषयासक्त होते हो।

ताल झाँझ भल बाजत आवै, कहरा सब कोइ नाचै हो ॥
जेहि रंग दुलहा व्याहन आवै, तेहि रंग दुलहिनि राचै हो ॥
नौका अछत खेवहुं नहिं जानहु, कैसे लगहु तीरा हो ॥
कहहिं कबीर राम रस माते, जोलहा दास कबीरा हो ॥६॥

काठ के घोड़े पर चढ़े हुए देहाभिमानियों की बुद्धि का किसी देव के साथ विवाह (मन्त्रादि) के लिये ताल झाँझादि बाजे भले प्रकार से बजते आते हैं। और कहरा (कहार तुल्य) लोग सब नाचते आनन्द से कूदते हैं। और जिस सात्विक राजस तामस रंग वाला दुलहा (स्वामी) व्याहने आता है (कल्पित

होता है) उसी रंग में जीव की बुद्धिरूप दुलहिनी राची (साजी बनाई) जाती है। फिर मन्त्र सुनकर कृतार्थ मानने वाला जीव मानव तनुरूप नौका के रहते इसको खेवने को यदि नहीं जानता है, सहज ध्यान भक्ति आदि यदि नहीं करता है, तो संसाराब्धि के किनारे परपार में कैसे लग (पहुँच) सकता है।

कबीर साहब कहते हैं कि दास कबीरा (देवभक्त) रूप जोलहा (मनुष्य) जिस देव का मन्त्र सुनता है, उसको सर्वस्वामी राम मान कर, उसी राम के रस (प्रेम) में माँतता है। अतः सर्वात्मा राम के ध्यान भक्ति आदि को नहीं जानता है, न करता है, कि जिसके दर्शन से सबके दर्शनादि हो जाते हैं। क्योंकि—

"आत्मसत्तैव द्वैतस्य सत्ता नान्या यतस्ततः।
अत्मन्येव जगत् सर्वं दृष्टे दृष्टं श्रुते श्रुतम् ॥" (वेदान्त सि० मु०)

आत्मा की ही सत्ता द्वैत की सत्ता है। अतः आत्मदर्शन से ही द्वैत का दर्शन और आत्मश्रवणादि से द्वैत के श्रवणादि हो जाते हैं ॥६॥

कहरा ७

ओढ़न मेरो राम नाम मैं, रामहिं के बनिजारा हो ॥
राम राम के करौं बनिजिया, हरि मेरे हटवाई हो ॥
सहस नाम का करौं पसारा, दिन दिन होत सवाई हो ॥

उक्त राम रस से माते हुए भक्तजन कहते हैं कि राम नाम मेरा ओढ़ना है (शीतातपादि द्वन्द्वों के निवारण पूर्वक सब आपत्तियों से रक्षक है) अतः मैं राम नाम के ही बनिजारा (व्यापारी) हूँ। और राम नाम के वनीजी व्यापार को करता हूँ। इस व्यापार में हरि ही मेरे हटवाई (हटवा) है। मैं हरि के सहस्र नामों का पसारा (पाठादिरूप विस्तार व्यवहार) करता हूं। जिसमें प्रतिदिन सवाई वृद्धि ही होती है, कभी हानि नहीं होती है।

जाकुदेव मैं नव पंच सेरवा, ताको होत अढ़ाई हो ॥
कान तराजु सेर तिन पौवा, डहकिन ढोल बजाई हो ॥
सेर पसेरी पूरा करि लेहु, पासंग कतहुं न जाई हो ॥
कहहिं कबीर सुनहु हो सन्तो ! जोर चले जहड़ाई हो ॥७॥

मैं जिसको नव सेरवा (नवधा भक्ति का उपदेश) देता हूँ और पंच सेरवा (पञ्चाक्षर मन्त्र) देता हूँ, चाहे वह कैसा भी हो, उसको ढाई मात्रा वाले ओंकार

के अर्थ ईश्वर की प्राप्ति होती है। विवेकी समझते हैं कि जिसके चार अन्तःकरण पाँच प्राणरूप नव सेरवा और पाँच ज्ञान इन्द्रियरूप पंच सेरवा, सर्वात्म देव में बुद्धिपूर्वक स्थिर रहते हैं, उसको ओंकार की प्राप्ति होती है।

कबीर साहब कहते हैं कि समता रहित लोक-परलोक के उपदेशरूप कान तराजू और त्रिगुणरूप तिन पौवा सेर के उपदेश से आशावादी कामियों ने संसारी को ढोल बजाकर डहकिन (डहकाया ठगा) अतः कहते हैं कि हे सन्तो ! आशा आदि को त्यागकर सर्वात्मा राम के श्रवणादि करो और श्रवणादि करके सेर पसेरी (इन्द्रिय मन) को पूरा (पूर्ण) विवेकादि से ही सन्तुष्ट तृप्त उपरत कर लो। सहज समाधि को प्राप्त कर लो। क्योंकि ऐसा किये बिना पासंग (वासना कामादिरूप हीनता, अविद्या राग-द्वेषादिरूप पापों का संग) नहीं जाता (मिटता) है और पासंग को नहीं मिटानेवाला जोर (बलात्कार अन्याय) करके दूसरे को जहड़ाकर स्वयं जहड़ कर चलता है (मरता है) अतः विवेकादि से मन को अवश्य तृप्त कामादि रहित करना चाहिये।

आशा तजि लोकादि की, मिथ्या लखि संसार।
काम क्रोध मद त्यागि के, तब उतरे भव पार ॥३९॥
दूर अनातम वस्तु की, आशा अति दुख खानि।
तिहि त्यागे बिनु भक्ति नहिं, होत अभयपद दानि ॥४०॥

इति धारणोपदेश प्रकरण ३



अथ राम विचार भक्ति प्रकरण ४

कहरा ८

रहहु सम्हारे राम विचारे, कहता हौं पुकारे हो ॥
मूड़ मुड़ाय फूलि क्या बैठे, मुद्रा पहिरि मजूषा हो।
ता ऊपर कछु छार लपेटे, भितर भितर धर मूसा हो ॥

प्रथम कहा गया है कि जोर करनेवाला जहड़ता-जहड़ाता है। अतः उपदेश है कि जोर नहीं करो, किन्तु मन, इन्द्रिय को सम्हारे (कुमार्ग से रोके) रहो और उनको राम के विचार स्मरण, ध्यान, ज्ञान में लगाये रहो। इसके लिये मैं

पुकार के कहता हूँ। इसके बिना केवल मूड़-मुड़ाकर, साधुता, संन्यासिता के अभिमान से फूलकर क्या बैठे हो ? तथा कान में मुद्रा, गले में मजूषा (सेली) पहिरते हो तथा मजूषा (पञ्चमकार का सेवन) करते हो और ता ऊपर (उसके बाद) देह में कुछ छार (भस्म) लपेटते (लगाते) हो। परन्तु कामादि चोर भीतरे-भीतरे घर (हृदय) के विवेकादि सुख शान्ति को मुसते (चुराते) हैं, सो सम्हारने आदि के बिना तुझे पता नहीं लगता है। अतः सम्हार और राम भजन अवश्य कर्तव्य है।

गाम बसतु हैं गर्व भारती, काम क्रोध हंकारी हो।
मोहन जहाँ तहाँ लै जैहैं, नहिं पति रही तुम्हारी हो॥
माँझ मँझरिया बसै जो जानै, जन ह्वै हैं सो थीरा हो।
निर्भय भै तहँ गुरु की नगरिया, (सुख)सोवै दास कबीरा हो॥८॥

सम्हार रामभक्ति आदि से रहित भारती (वाग्विद्या के अभिमानी) भारती सरस्वती उपाधिवाले संन्यासी भी ग्राम में बसते हैं तथा काम, क्रोध, अहंकार युक्त रहते हैं। उनसे साहब कहते हैं कि मोहन (मोहित करनेवाले) कामादि तुझे जहाँ-तहाँ (नरक गर्भादि में) ले जायँगे, तब तुम्हारी पति (प्रतिष्ठा इज्जत बड़ाई) कुछ नहीं रह जायगी। तथा जहाँ मोहन (यमराज) रहते हैं, तहाँ कामादि ले जायँगे, तब इज्जत नहीं रह जायगी। अतः संन्यासावस्था में कामादि के सर्वथा त्यागरूप सम्हार अवश्य कर्तव्य है।

क्योंकि जो कोई जन इस (माँझ) मध्य मानव लोक में, हृदय के मध्य में व्यवहार विचारादिकाल में मँझरिया (मध्यलोक की रीति धर्म मर्यादा) से स्वधर्मादिपूर्वक अभिमान रहित बसने जानते हैं, सो जन स्थिर सुखी शान्त मुक्त होंगे। क्योंकि उसी निरभिमान मध्य दशा में गुरु की नगरी है। वहाँ दास (भक्त) जीव योगनिद्रा से सोता है, परमानन्द का अनुभव करके उसमें लीन हो जाता है।

जो व्यापक सब जगत में, सर्वाधार प्रकाश।
सत्यानन्द स्वरूप अज, ध्यान धरत तिहि दास॥४१॥
आशा तजि भजि राम को, तन धन तजि विश्वास।
कपट सयानी तुच्छ तजि, सुख सोवत गुरु पास॥४२॥८॥

कहरा ९

राम नाम का सेवा बीरा, दूरि नाहिं दुरि आशा हो ।
आन देव का सेवहु बौरे, ई सब झूठी आशा हो ॥
उपरक केश कहाँ भौ ऊजर, भीतर अजहूँ कारो हो ।
तन के वृद्ध कहाँ भौ बौरे, भीतर अजहूँ बारो हो ॥

हे बीरा ! (भाई) निर्भय गुरुनगरी में नहीं प्राप्त होकर यदि राम नाम को तुमने सेवा, तो उससे क्या फल हुआ । क्योंकि गुरुनगरी सत्सङ्ग विचारादि के विना यदि दूर देश लोकादि की आशा दूर (निवृत्त) नहीं हुई तो दुःख रही गया—

"आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम् ।" (भागवत० स्कं० ११।८।४२)

"आशाभङ्गकरीपुंसामजेयारातिसन्निभा ।" (नारदीय पु० ३५।२४)

आशा ही परम दुःखरूप है और निराशता परम सुख है । क्योंकि आशा अजेय शत्रु तुल्य पुरुषों को नष्ट करनेवाली है और हे बौरे ! यदि सर्वात्मा राम को त्यागकर (आन) अन्य देव को (सेवते) भजते हो तो उससे क्या ? ई सब (अन्य देवादि) की आशा सब तो सर्वथा झूठी (मिथ्या फल के हेतु) हैं—

"यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति ।" (छा० ६।२३)

जो विभु ब्रह्म सर्वात्मा राम है वही सुख स्वरूप है । अल्प परिछिन्न किसी देवादि में सुख नहीं है उस सुखस्वरूप के ज्ञानादि के नहीं होने से यदि अब ही भीतर (मन) में आशा कामादिरूप कालिमा है, तो ऊपर के बालों के उजले हो जाने से क्या हुआ और आशा आदि के रहने से भीतर मन यदि बारो (अज्ञ चञ्चल बालक) है या युवा है, तो तन के वृद्ध होने से क्या हुआ ? आशा आदि की निवृत्ति से भीतर की सच्ची उज्ज्वलता और पूजायोग्य वृद्धता होती है, अन्यथा नहीं।

मुख के दाँत कहाँ गौ बौरे, भीतर दाँत लोहे के हो ॥
फिरि फिरि चना विषय के चबै हो, काम क्रोध मद लोभक हो ॥
तन की सकल संज्ञा घटि गयऊ, मनहि दिलासा दूनी हो ॥
कहहिं कबिर एक राम भजे बिनु, सकल सयानप ऊनी हो ॥९॥

हे बौरे ! आशा आदि के रहते यदि मुख के दाँत चले गये तो इससे क्या गया, क्या हुआ, भीतर में अभी आशा आदि लोहे के दाँत की नाईं दाँत वर्तमान

हैं। उनसे फिर-फिर बार-बार जन्म लेकर विषय के चना चबाओगे। क्योंकि वृद्धता आदि के कारण शरीर की संज्ञा (शक्ति ज्ञान होश) घट गई है तो भी मन में दिलासा (इच्छा तृष्णा) दूनी (द्विगुण) बढ़ती जाती है। अतः कबीर साहब कहते हैं कि सब आशा तृष्णादि के त्यागपूर्वक एक सर्वात्मा राम को भजने के बिना सब सयानप (चतुराई) ऊनी (तुच्छ हीनतायुक्त) होती है।

राम भजन बिनु आश से, होवत गर्भ निवास।
जन्म मरण मिटता नहीं, नहि मिटता यम त्रास ॥ ४३ ॥
सकल चतुरता देव सब, सकहि न मोह मिटाय।
राम भजन अनुभव किये, क्षण में मोह नशाय ॥ ४४ ॥
याते गुरु उपदेश यह, भजिय राम मन लाय।
मोह तिमिर जाते नशै, चिदानन्द दरशाय ॥ ४५ ॥ ९ ॥

कहरा १०

हौं सबन में हौं ना हौं मोहि, बिलग बिलग बिलगाई हो।
ओढ़न मोरा एक पिछौरा, लोग बोलु एकताई हो ॥

गुरु स्वरूप सब जगत में, निर्गुण करत निवास।
एक निरन्तर रहत सो, जिहि पाये भ्रम नाश ॥ ४६ ॥

उक्त सर्वात्मा राम के ज्ञानी गुरु सर्वात्मा रामरूप ही रहते हैं। अतः साहब कहते हैं कि सर्वात्मा राम स्वरूप हौं (मैं) सबन में (सब वस्तु देहादि में) हौं (हूं) यद्यपि सब में माया भी है, तथापि वह नारी है और मैं ना हौं (नर पुरुष हूं) तथा विभु असङ्ग निराधार होने से सब में रहते भी ना हौं (नहीं हूँ), तो भी मोहि (मुझको) माया अन्तःकरणादिरूप उपाधियों (शरीरादिकों) ने बिलग बिलग बिलगाया है (जीव ईश्वरादिरूप से पृथक्-पृथक् किया है) तथा विवेकियों ने सर्वत्र मेरे स्वरूप को सब से पृथक् ही बिलगाया (समझा) है। क्योंकि आवरण शक्ति वाली माया ही एक पिछौरा (छादक चादर) रूप मेरा ओढ़ना (वस्त्र) है। मेरे स्वरूप में प्रविष्ट नहीं होकर वस्त्र तुल्य मुझमें उपाधिरूप से वर्तमान है। अतः मिथ्या माया अविद्या आदि के रहते भी विवेकी लोग सत्य स्वरूप की एकता ही को जिज्ञासुओं के प्रति बोलते (उपदेश देते) हैं।

"कार्योपाधिरयं जीवः कारणोपाधिरीश्वरः" इत्यादि श्रुतियाँ, औपाधिक भेद को दर्शाती हैं।

एक निरन्तर अन्तर नाहीं, ज्यों घट जल शशि झाईं हो।
एक समान कोइ समुझत नाहीं, (जाते) जरा मरण भ्रम जाई हो॥

मैं एक अखण्ड और निरन्तर(सदा सर्वत्र वर्तमान) हूँ। मुझमें कहीं अन्तर (भेद परदा) नहीं है। अतः मैं त्रिविध भेद रहित हूँ। जो कुछ व्यवहार में भेद प्रतीत होता है, सो घट के जलों में शशि सुर्यादि की झाईं (प्रतिबिम्ब) गत भेद के समान बुद्धि आदि गत प्रतिबिम्बों में है, स्वरूप में नहीं। इस एक और समान (सम एक रस) सर्वात्मा को कोई अविवेकी नहीं समझता है कि जिससे आत्मा में जरा मरणादि के भ्रम नष्ट हो जाय। और भ्रमादि की निवृत्ति से परमानन्द का लाभ हो, अज्ञान मूलक संसार मिट जायँ।

रैनि दिवस मैं तहवाँ नाहीं, नारि पुरुष समताई हो।
नहिं मैं बालक बूढ़ो नाहीं, नहिं मेरे चिलकाई हो॥
त्रिविध रहौं सबही महँ वरतौं, नाम मोर रमुराई हो।
पठय न जाउँ बोलय नहिं आऊँ, सहज रहौं दुनियाई हो॥

मैं तहवाँ (मैं जिस स्वरूप में स्थिर हूँ उसमें) रात दिन का भेद नहीं है। आत्मा सदा स्वयं प्रकाश ही रहता है। और नारी पुरुष में भी अत्मा की समता ही रहती है। क्योंकि—"न स्त्री न पुमानेषः" यह आत्मा स्त्री या पुरुष नहीं है। इसी प्रकार मैं बालक या वृद्ध नहीं हूँ, न होता हूँ। न मुझमें चिलकाई (दुग्ध पायी बचापन) होती है। या चिलकाई (तेज प्रताप युक्त युवापन) मुझमें नहीं होती है। तो भी उन तीनों प्रकार के शरीरों में मैं रहता हूँ। और सब संसार में सबकी आत्मा रूप से सदा वर्तमान रहता हूँ। अतः सबमें रमने वर्तने वाला रमुराई (राम राजा) मेरा ही नाम है और सदा सर्वत्र वर्तमान रहने ही से मैं किसी के पठये (भेजने) से कहीं जाता नहीं हूँ, न किसी के बुलाने से आता हूँ किन्तु सहज स्वभाव से संसार में रहता हूँ। तथा स्वभाव (शक्ति) रूप माया से अनायास दुनियाई (संसार के उत्पत्ति आदिरूप व्यवहार) में रहता हूँ। संसार के ताना बानादि सब करता हूँ।

जोलहा तान बान नहिं जानै, फाट विनै दश ठाईं हो ।
गुरु प्रसाद जिन्हें जस भाख्यो, जन विरले सिद्धि पाई हो ॥
अनन्त कोटि मणि हिरा बेध्यो, फिटिक मोल नहिं पाई हो ।
सुर नर मुनि जा खोज परे हैं, कछु कछु कविरन पाई हो ॥१०

जो अज्ञ जीवरूप जोलहा (मनुष्य) संसार के तान बान (आतान वितान= तानी भरनी) को नहीं जानता है (भूत भौतिक में आत्म सत्ता को नहीं समझता है) सो फिर भी दश ठाईं (दश जगह) फाटा हुआ (दश द्वार युक्त) देहरूप पट को विनता है) और इसके लिये बार बार गर्भवासादि कष्ट सहता है और जिन लोगों को गुरु ने जैसा सत्य स्वरूप है तैसा प्रसाद (प्रसन्नता कृपा) से भाखा (कहा) वैसे विरले जन सिद्धि पाये, फिर पट से विनने से रहित मुक्त हो गये । क्योंकि उनकी दृष्टि में अनन्त कोटि मणि हीरा आदि के वेधित (व्याप्तपूर्ण) भी माला आदि सम्पत्ति फिटिक (तुच्छ फिटकिरी तुप आदि) के मोल को नहीं पा सकती है, अतः वे ज्ञानी संसार की सब वस्तु की वासना आदि से रहित होने के कारण मुक्त होते हैं । परन्तु गुरु की कृपा होने पर भी जिनमें विवेकादि ज्ञान के साधन नहीं रहते हैं, वे लोग सत्य निज स्वरूप को नहीं समझ पाते हैं । अतएव सत् चित् आनन्द स्वरूप जिस सत्यात्मा को विवेकादि के विना तटस्थ आत्मभिन्न दूर आदि मानकर जिसके खोज में सुर नर मुनि सब परे (लगे) हैं, उनमें कछु कछु (कोई कोई) विवेकादि साधन वाले कविरन (कवियों जीवों) ने पाया है, सब नहीं । क्योंकि—

"न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः" (कठ १।१।२७)

वित्त से तृप्त करने योग्य मनुष्य नहीं हैं, इत्यादि नचिकेता के समान समझने ही वाले गुरु से भी आत्मा के अनुभव को प्राप्त करते हैं, अन्य नहीं ।

गुरु स्वरूप सब जगत् में, निर्गुण करत निवास ।
एक निरन्तर रहत सो, जिहि पाये भ्रम नाश ॥४७॥
एक निजातम में नहीं, रात दिवस का भेद ।
नित्याऽखण्ड प्रकाश सो, राम विगत संभेद ॥४८॥
चिच्छाया युत लिङ्ग तन, गहत तजत है देह ।
जन्म मरण ताको कहत, आतम अमल अदेह ॥४९॥

सद्गुरु के परताप से, ज्ञान मिले भव जाय।
देहादिक दुख भ्रम तिमिर, रवि गुरुवचन नशाय ॥५०॥१०॥

इति राम विचार भक्ति प्रकरण ४

अथ माया से जन्मादि प्रकरण ५

कहरा ११

क्षेम कुशल औ सही सलामत, कहहु कौन कहँ दीन्हा हो।
आवत जात दुनों विधि लूटै, सामर गहिरे लीन्हा हो॥
सुर नर मुनि जति पीर औलिया, मीरा पैदा कीन्हा हो।
कहँ लै गणौं अनन्त कोटि लै, सकल पयाना दीन्हा हो॥

प्रथम मणि हीरा आदि को तुच्छ कहा गया है, तहाँ उनसे क्षेम कुशलादि मानने वालों के प्रति कहते हैं, कि उक्त आत्मज्ञानादि के बिना मायिक वस्तु विषय किसको क्षेमकुशल (नित्य शुभ कल्याण) और सही सलामत (सच्चा स्वास्थ्यपूर्ण सुख) दिये हैं, सो समझकर कहो और समझो कि संसार में आते जाते (जन्मते मरते) समय जन्म मरणरूप दोनों प्रकार से तथा हर्ष शोकादिरूप द्वन्द्वात्मक दोनों प्रकार से विषय वासना आदि सब सच्चे क्षेम कुशलादि को लूटते (नष्ट करते) हैं और गहिर (गंभीर) सुख शान्ति विवेकादिरूप सामर (शम्बल) को भी लेते (नष्ट करते) हैं। देव मनुष्य मुनि यति पीर औलिया (फकीर) और मीरा (अमीर) इन सबको विषय वासनादिकों ने ही पैदा किया (जन्म दिया) है। गिनकर कहाँ तक कहा जाय, अनन्त कोटि ले (तक) प्राणियों को विषयों ने पैदा किया है और वे सब प्राणी लोकान्तरादि में पयाना (यात्रा) किये, तहाँ विषय वासना कामादिकों ने ही सबको पयाना दिया है। वासना कामादि रहित ज्ञानी तो गमनगमनादि रहित मुक्त हो जाता है।

पानी पवन आकाश जाहिंगे, चन्द जाहिंगे सूरा हो॥
येभि जाहिंगे वोभि जाहिंगे, परत न काहुक पूरा हो॥
कुशले कहत कहत जग विनशल, कुशल काल की फाँसी हो॥
कहहिं कबिर सारि दुनियाँ विनशल, रहल राम अविनाशी हो।११

पयान करनेवाले पानी, पवन, आकाश (स्वर्गादि) में जायगें, तथा चन्द्र, सूर्य लोक में जायगें। तथा महाप्रलय में पानी, पवन, आकाश, चन्द्र, सूर्य भी नष्ट होंगे। ये भी (इस लोक में भी) कोई जायँगे। वो भी (परोक्षलोक में भी) कोई जायगें, तथा लोक, परलोकवासी सब जायगें, परन्तु विषय वासनादि के रहते किसी को पूरा नहीं पड़ती है (पूर्ण तृप्ति नहीं होती है) आत्मज्ञानादि द्वारा वासनाओं के निवारण से ही पूर्ण तृप्ति होती है। अतः मायिक विषयों से कुशल कहते-कहते में तृप्ति के अभाव से लोभादि करके संसारी जीव अज्ञानादि से विनष्ट हुआ। क्योंकि वह मिथ्या कुशल ही काल की फाँसीरूप है। अतः कबीर साहब कहते हैं कि सब संसारी विषयादिरूप काल पास से विनष्ट हुआ, अविनाशी राम के भजनादि से राम रूपता को प्राप्त हुआ सोई रहा (विनष्ट नहीं हुआ)। अतः राम ही सत्य क्षेम कुशलादि का दाता क्षेम कुशल स्वरूप है, अन्य नहीं।

कहरा १२

यह माया रघुनाथ की बौरी, खेलन चली अहेरा हो ॥
चतुर चिकनियहिं चुनि चुनि मारे, काहु न राख्यो न्यारा हो ॥
मौनी वीर दिगम्बर मारे, ध्यान धरन्ते योगी हो ॥
जंगल में के जंगम मारे, माया किनहुँ न भोगी हो ॥

यह प्रत्यक्ष कनक कामिनी विषयादिरूप रघुनाथ (व्यवहारिक जीवों के स्वामी राम ईश्वर) की माया है (अद्भुत शक्ति है) सो बौरी (मदमाती) है अविवेक अविद्या अभिमान आदिरूप माया ही हुई है) और यह माया अहेर (शिकार) खेलने चली है (अहेर के लिये सृष्टि रची है) तहाँ चतुर (धूर्त दम्भी आदि) को और चिकनियाँ (राजसी देहाभिमानी) को चुन चुन कर मारती है (सर्वथा स्ववश करती है)। किसी भी चतुर चिकनियाँ (तामसी राजसी) को अपने मोह जाल से न्यारा नहीं राखा (रहने दिया) है। सबको ममता मोह जाल में फँसाया है। माया को भोगने की इच्छावाले मौनी, वीर (शूर) दिगम्बर, ध्यान धरनेवाले योगी को भी माया मारती है। तथा जंगल में के बनवासी जंगमों को मारती है और मार चुकी है और किसी ने माया को भोगने नहीं पाया (भोग ऋद्धि-सिद्धि सम्पत्ति से रामरूपता के विना कोई तृप्त नहीं हुआ) अतः रामरूपता के लिये ही यत्न कर्तव्य है।

वेद पढ़न्ते पाण्डे मारे, पूजा करते स्वामी हो।
अर्थ विचारत पण्डित मारे, बाँध्यो सकल लगामी हो॥
शृङ्गीऋषि बन भीतर मारे, ब्रह्मा के शिर फोरी हो।
नाथ मच्छन्दर चले पीठि दै, सिंहलहूँ में बोरी हो॥

क्योंकि रामरूपता के बिना वेद को पढ़न्ते (पढ़ते) हुए पाण्डेय (वेद पाठी) को और धनादि की रक्षा के लिये देव पूजा करते हुए धनादि के स्वामी को माया मारती है। शास्त्रार्थ, लौकिकार्थ को विचारते हुए पण्डित को माया मारती है। यद्यपि कठ श्रुति में इन्द्रियरूप अश्व (घोड़े) के लिये मन को लगाम कहा गया है, तथापि जो जीव इन्द्रियों के वशवर्ती हैं, उन सबको ही माया मनरूप लगाम से बाँधी है, उन्हें मन के अधीन कर दी है।

इस प्रकार माया ने बन के भीतर जाकर शृंगीऋषि को मन, इन्द्रिय के अधीन करके उनको मारा (तप से गिराया) और ब्रह्माजी का शिर फोड़ा (क्रुद्ध शिवजी से कटवाया) और मच्छन्दर (मत्स्येन्द्रनाथ गोरखजी के गुरु) माया से बचने के लिये, उसे पीठ देकर चले (भगे) तो भी सिंहलद्वीप में जाकर उन्हें भी बोरा (मोह नदी में डुबोया) अतः निरन्तर रामरूपता आदि के बिना कहीं भागने आदि से भी मनुष्य मायाजाल से नहीं बच सकता है।

साँकठ के घर कर्ता धर्ता, हरि भक्तन की चेरी हो।
कहहिं कबीर सुनहु हो सन्तो ! ज्यों आवै त्यों फेरी हो॥१२॥

इति श्रीसद्गुरुकबीरकृते विविधबन्धबीजविध्वंसने
बीजकनाम्नि ग्रन्थेऽखिलमोहनिवारकं
तृतीयं कहराप्रकरणं समाप्तम्॥३॥

क्योंकि यह माया साँकठ (हरिगुरु विमुख राजस, तामस, शाक्तादि) के घर में तो कर्ता धर्ता स्वतन्त्र होकर मारने के लिये रहती है और हरि भक्तों के घर में दासी बनकर ठगने के लिये रहती है। अतः कबीर साहब कहते हैं कि हे सन्तो ! यदि इस माया से बचना चाहो, तो सदा राम के श्रवणादि करो और कनक कामिनी आदिरूप माया जैसे ही आवे तैसे ही फेर दिया करो, इनके संग संग्रह चिन्तनादि नहीं करो। अर्थात्—

आसुप्तेरामृतेः कालं नयेद् वेदान्तचिन्तया। दद्यान्नावसरं क्वापि कामादिनां मनागपि॥

मरण और शयन पर्यन्त वेद के निर्णीत सिद्धान्त के चिन्तन द्वारा समय वितावे, कभी कामादि को कुछ भी अवसर नहीं दे, तो मायाजाल से बच सकता है।

बिनु गुरु वच निज ज्ञान विनु, अनन्तकोटि धन पाय।
लोभ तिमिर मिटता नहीं, बाढ़त मोह सदाय ॥५१॥
गुरु वच दृढ़ विश्वास करि, माया मद करि दूर।
अविनाशी लखि आतमा, पावत पद भरपूर ॥५२॥
सत्त्वापत्तिहुँ पाइ नर, उतरत हैं भवपार।
जो दृढ़ होय विराग उर, मोह रहित व्यवहार ॥५३॥
असंसक्ति आदिक मिले, ज्ञान अवस्था जाहि।
सहज समाधि सुयुक्त नर, जीवन्मुक्त सदाहि ॥५४॥
इनके बिनु गमनागमन, छुटत न दुख संसार।
हनूमान ताते सदा, करिये ध्यान सँभार ॥५५॥

इति श्रीमत्स्वामिहनुमद्दासषट्शास्त्रिविरचित बीजक-
सारबोधिनी टीका तृतीय कहरा प्रकरण ॥३॥



❀ ओम् राम ❀

❀ श्रीसद्गुरु कबीर साहब कृत बीजक ❀

बीजकसारबोधिनी टीका सहित

अथ

चतुर्थ विप्रमतीसी प्रकरण

सुनहु सबन मिलि विप्रमतीसी । हरि बिनु बूड़ी नाव भरीसी ॥
ब्राह्मण ह्वै के ब्रह्म न जानै । घर मँह जगत प्रतिग्रह आनै ॥

विप्र कुमति दुख हेतु जग, विप्र सुमति सुख हेतु ।
ताते सुनिय सम्हारि सब, सुमति गहिय भवसेतु ॥१॥
शमदमादि है विप्रता, सत्य अहिंसा नित्य ।
यथा लाभ सन्तोष शुभ, कर्म करण औचित्य ॥२॥
इन बिनु विप्र कहाव जो, दान लेत बिनु ज्ञान ।
नशत आप सो और को, नाशत कुपथ भुलान ॥३॥
कुविप्रत्व से बचन हित, जो गुरु देते ज्ञान ।
बन्दौं उनके पद कमल, देत अभय सत दान ॥४॥

सब मिलकर विप्रमतीसी की (विप्रमति तुल्य की) कथा को सुनो (त्यागने योग्य अनुचित विप्रमति को सुनो) और उसको त्यागो, क्योंकि उस मति से हरि की प्राप्ति के बिना मानो भरीसी नाव डूब गई है । अर्थात् विप्रों की कुमति से हरिभक्ति अहिंसा ज्ञानादि के अभाव द्वारा उन विप्रों के तथा उनके सङ्गियों के विद्या, यश आदि युक्त जीवन मानव तन व्यर्थ नष्ट हो गया है और नष्ट होता है । क्योंकि ब्राह्मण जाति के होकर भी ब्रह्मात्मा वेद को नहीं जानते हैं तो भी ब्रह्मविद् वेदज्ञ से लेने योग्य जो प्रतिग्रह (दान देयपदार्थ) सो संसारी से लेकर अपने घर में आनते (ले आते-धरते) हैं, सो कुमति से करते हैं ।

जो सिरजा तेहि नहिं पहिचानै । कर्म भरम लै बैठि बखानै ॥
ग्रहण अमावस सायर दूजा । स्वस्तिक पात प्रयोजन पूजा ॥

प्रेत कनक मुख अन्तर वासा। आहुति सत्य होम की आशा॥

जो सत्यकर्ता जगत् को सिरजा उसको नहीं पहचानते भजते हैं, किन्तु भ्रम से सिद्ध असत् कर्मों को लेकर (स्वीकार करके) बैठ कर उसी का व्याख्यान करते हैं। और ग्रहण अमावस्या आदि का तथा उस समय के दान फलादि का व्याख्यान करते हैं। सायर (समुद्र) के दर्शन स्पर्शनादि का दूजा (द्वितीयादि तिथियों का समुद्र से अन्य तीर्थों) का, स्वस्तिक (ग्रह निवारणादि द्वारा मङ्गल) के लिये पात (पात्र) दानादि का लौकिक प्रयोजन (कार्य=फल) का तथा ग्रह पूजनादि का स्वार्थ के लिये व्याख्यान करते हैं। और प्रेत (मृतक) के मुख में के सुवर्णादि भी इनके अन्तर (हृदय) में बसता है, उसकी भी इच्छा करते हैं। अतः प्रेत और कनक की कथा इनके मुख और हृदय में बसती है, राम की नहीं। और कनकादि के लिये ही पूर्णाहुति देवाऽऽह्वान (स्तुति) सहित अग्निहोत्रादि की आशा करते हैं।

उत्तम कुल कलि माँह कहावै। फिरि फिरि मध्यम कर्म करावै॥
सुत दारा मिली जूठो खाहीं। हरि भक्ता के छूति कराहीं॥
कर्म अशौच उचिष्टा खाहीं। मति भ्रष्ट यम लोकहिं जाहीं॥
न्हाय खोरि उत्तम ह्वै आवै। विष्णु भक्त देखे दुख पावै॥

कलियुग में उत्तम कुल कहाते हैं, परन्तु फिरि-फिरि (बार-बार या घूम घूम कर) मध्यम कर्म कराते या करते हैं, उत्तम नहीं। पुत्र स्त्री के साथ मिलकर जूठ खाते हैं और पवित्र हरिभक्त के सम्बन्ध आदि से छूति अशौच=(प्रायश्चित्त) करते-कराते हैं। अशौच कर्म (श्राद्ध) में प्रेत के प्रति अर्पित उच्छिष्ट को खाते हैं कि जिससे बुद्धि के भ्रष्ट (नष्ट) होने के कारण यम लोक में ही जाते हैं। न्हाय (स्नान कर) के और खोरि (तिलक कर) के और उत्तम (श्रेष्ठ पवित्र) होकर कहीं आते हैं, तो वहाँ अहिंसक विष्णुभक्त को देखकर दुःख पाते (दुःखी होते) हैं।

स्वार्थ लागि जे रहै वेकाजा। नाम लेत पावक ज्यों डाजा॥
राम कृष्ण की छोड़िन आशा। पढ़ि गुणि भये कृतम के दासा॥
कर्म पढ़ै कर्महिं कहँ धावै। जे पूछै तेहि कर्म दिढ़ावै॥

तुच्छ स्वार्थ (मांसादि) के लागि (लिये) जे (जो) ब्राह्मण वेकाज (निन्दित हिंसादि) में लगे रहते हैं, उन हिंसादि को त्यागने के लिये उनके

नाम लेते ही अग्नि के समान क्रुद्ध होकर मानो डाजना (दाहना) ही चाहते हैं और सच्चे सर्वात्मा राम की कथा तथा सत्यानन्द स्वरूप कृष्ण की सात्त्विक देव रूप रामकृष्ण ईश्वर की आशा को इन लोगों ने त्याग दिया है और पढ़ गुणकर भी अत्यन्त कृतम (कार्य) के दास हो गये हैं। अतः तुच्छ कर्म काण्ड को पढ़ते हैं। उस कर्म के तुच्छ फलों के लिये दौड़ते हैं। और जो कोई इनसे पूछता है, उसके प्रति काम्य कर्म को ही दिढ़ाते (निश्चय कराते) हैं। निष्काम सुकर्म सद्भक्ति आदि को नहीं समझाते हैं।

निःकर्मी की निन्दा कीजै। कर्म करै ताही चित दीजै॥
ऐसी भक्ति हृदय महँ लावै। हिरणाकश के पन्थ चलावै॥
देखहु सुमती केर प्रकाशा। अभ्यन्तर भये कृतम क दासा॥
जाके पूजे पाप न ऊड़े। नाम सुमरनी भव महँ बूड़े॥

और निःकर्मी (कर्म बन्धन से मुक्त ज्ञानियों) की निन्दा करने को दृढ़ाते (समझाते हैं), कि निष्काम निःकर्मी की निन्दा करो। और कहते हैं कि कर्म करता है उसी में चित्त (मनोयोग) दो। तहाँ यदि उचित कर्म में मनोयोग देना कहते तब तो ठीक ही होता, परन्तु उसी कर्म द्वारा ऐसी भक्ति सबके हृदयों में तथा अपने हृद्य में लाते हैं कि मानो हिरण्यकश्यप हिरण्याक्षादि असुरों राक्षसों के ही पन्थ (मार्ग) चलाते हैं।

इनकी सुमति के प्रकाश को तो देखो कि जिस करके अन्तःकरण से सर्वथा कार्यों के ही दास हुए हैं, सर्वकारण परमात्मा के नहीं। यहाँ कुमति व्यंग्य है। कार्यों में भी ऐसे कार्यों के भक्त हैं, कि जिसके पूजने से पाप नहीं ऊड़े (नहीं नष्ट हो) किन्तु जिसके नामों के सुमरनी (स्मरण) से स्मरण करनेवाला भव (संसार-नरक) में बूड़ जाय।

पाप पुन्य के हाथे पासा। मारि जगत को कीन्ह विनाशा॥
ई वहि कुल वहि कहारे। ई गृह जारै ऊ गृह मारे॥
बैठा ते घर साहु कहावै। भीतर भेद मुस मनुअँ लखावै॥

इनके हाथ में पाप पुण्य की व्यवस्था करने की शक्तिरूप फाँसी है। उससे मनमाना पाप पुण्य समझाने के द्वारा जगत को मारकर विनष्ट किया। रे अज्ञ

मनुष्य । इसीसे इनको ई (इस संसार) और उनके अपने कुल, इन दोनों के लिये वह्नि (अग्नि) कहा है और अग्नि होने से ई गृह (इस लोक) को जलाते हैं और उ गृह (परलोक) को मारते (नष्ट करते) हैं। वे लोग घर में बैठे हुए साहु कहाते हैं। परन्तु भीतर मनुआँ (मन) में मुसने (चोरी करने ठगने) के भेदों को लखते लखाते (विचारते) रहते हैं।

ऐसी विधि सुर विप्र भनीजै। नाम लेत पीठासन दीजै।
बूड़ि गये नहिं आपु सँभारा। ऊँच नीच कहु काहि जोहारा॥
ऊँच नीच है मध्यम बानी। एकै पवन एक है पानी॥
एकै मटिया एक कुम्हारा। एक सबन को सिरजनहारा॥

आश्चर्य है कि जिनकी ऐसी विधि (रीति क्रिया) है, सो भी भूसुर (भूदेव) और विप्र भने (कहे) जाते हैं और नाम लेते ही इनको पीठासन (श्रेष्ठ उच्च आसन) दिया जाता है। परन्तु वे लोग स्वयं भवार्णव में बूड़ गये, अपने को आप सम्हारा नहीं (अधःपतन से अपने को बचाया नहीं) अतः नाम मात्र से ऊँच होते भी जो उक्त विधि से नीच हो गये (कर्मादि से हिरण्यकश्यपादि तुल्य हो गये) फिर कहो कि किसके प्रति जोहार (प्रणाम) किया जाय। वस्तुतः देह दृष्टि से ऊँच नीच की बानी (कथा) मध्यम (लोक व्यवहार मात्र) है। क्योंकि सबके देह में पवन पानी आदि एक प्रकार के हैं, मिट्टी एक प्रकार की है, कुम्भकार तुल्य विधाता एक है, सबको सिरजने वाला ईश्वर एक है।

एक चाक सब चित्र बनाया। नाद बिन्द के मध्य समाया॥
व्यापी एक सकल की गौती। नाम धरे का कहिये भौती॥
राक्षस करनी देव कहावै। बाद करै गोपाल न भावै॥
हंस देह तजि न्यारा होई। ताकर जाति कहहु दहुं कोई॥

एक से गर्भाशयरूप चक्र पर सब देहरूप चित्र बनाये गये हैं। सो नाद (शब्द प्राण) और विन्दु (रजोवीर्य) से रचे गये हैं और उनमें ही समाये (स्थिर) हैं और सबकी गोऽतीत (इन्द्रियों का अविषय) एक ही आत्मा सबके इन्द्रिय गात्र गोत्र में व्यापक है। फिर भौतिक (भूतों के कार्य) देहों के अनेक नाम धरने से भी आत्मा में क्या भेदादि कहे जा सकते हैं।

लोक में कर्माधीन उत्तम मध्यम कनिष्ठ व्यवहार होना समुचित है। तहाँ भी राक्षस की करनी (हिंसा आदि) करनेवाले भूदेव कहाते हैं और हिंसा आदि को स्वधर्म सिद्ध करने के लिये विवाद करते हैं और उनको गोपाल (सब इन्द्रिय भूमि का स्वामी एक ईश्वर) नहीं भावता है। न इनके वादादि गोपाल को भावता है और ये लोग सर्वात्मा गोपाल में भी जाति आदि मानते हैं। परन्तु जब यह व्यावहारिक जीवात्मारूप हंस भी देह को त्यागकर न्यारा हो जाता है, तब उसकी जाति को तो कह दो, बताओ कि देह रहित जीवात्मा में कौन जाति रहती है। अर्थात् शरीर के त्यागने पर जीवात्मा में कोई जाति नहीं रहती है। अतः शरीर में रहते भी उसमें जाति नहीं रहती है। कालिमा गौर वर्णादि के समान जाति भी देह में ही कल्पित सिद्ध होती है।

श्वेत स्याह की राता पियरा। अवरण वरण कि ताता सियरा॥
हिन्दू तुरुक की बूढ़ा बारा। नारि पुरुष मिलि करहु विचारा॥
कहिये काहि कहा नहिं माना। दास कबीर सोइ पै जाना॥

उस आत्मा को समझने के लिये नारी पुरुष सब मिलकर विचार करो, कि वह श्वेत (उजला या सात्त्विक ब्राह्मण) है, कि स्याह (काला तामस शूद्र) है, कि राता (लाल या राजस क्षत्रिय) है, कि पियरा (पीला या गुण मिश्रित वैश्य) है, या अवरण (जातिवर्ण रहित) है, या सब जाति वर्ण वाला है। हिन्दू है कि तुरुक है; वृद्ध है कि बालक या युवा है। अर्थात् आत्मा में श्वेतता आदि कोई गुण जाति क्रिया अवस्था आदि नहीं हैं, ये सब देह में कल्पित हैं, सो विचार से समझो और मिथ्या अभिमानों को त्यागो।

कबीर साहब कहते हैं कि किससे यह विचारार्थक उपदेश कहा जाय, प्रायः बहुत लोगोंने इस उपदेश को अब तक नहीं माना है। किन्तु केवल कोई हरि गुरु भक्त जो है, सो भक्त ही इस उपदेश को माना है और मानेगा। देवादि के भक्त तो उस श्वेतादि को ही सत्य मानते हैं।

बहिया है बहि जात है, करे गहे चहुँ ओर।
जो कहा नहिं मानै तो, दे धक्का दुइ और॥१॥

इति श्रीसद्गुरुकबीरकृते विविधबन्धबीजविध्वंसने बीजकनाम्नि ग्रन्थे चतुर्थं विप्रमतीसीप्रकरणं समाप्तम्॥४॥

अभिमानी जीव संसार नदी में अनादि अनन्त काल से बह चुके हैं और अब भी बहे जाते हैं और मन बुद्धिरूप कर में विषय काम वासना आदि को चारो तरफ से सर्वथा पकड़े हुए हैं, जो डूबाने वाले विषयादि भयानक दुःखप्रद हैं। उनके त्याग से इन जीवों का कल्याण हो सकता हैं। उस त्याग के लिये एकवार कहने पर भी यदि कहा नहीं मानते हैं, तो दो धक्का और भी देना चाहिये। त्यागादि के लिये दो बार और भी समझाना चाहिये। बलात्कार से भी दुष्टकामादि का त्याग कराना चाहिये।

सत्य ईश के ज्ञान बिनु, धर्म ज्ञान विनु जोय।
चलत असत पथ ताहि को, समुझाइय मुनि लोय ॥ ५ ॥
प्रेत जूठ भक्षण करै, विष्णु भक्त के द्रोहि।
विष्णु भक्ति भावै नही, यम पुर गामी सोहि ॥ ६ ॥
चर्लाहि असुर पथ मोह वश, तदपि कहार्वाह देव।
जीवन्मुक्तहुं निन्दहीं, हरि भक्तन नाँहि सेव ॥ ७ ॥
जाके पूजे बढ़त अघ, नशत पाप नाँहि कोय।
पूजत तिहि प्रेतादि को, राम न पूजत लोय ॥ ८ ॥
व्यापक सब संसार में, सकल आतमा राम।
गुणकृत भेद विहीन नित, सकल शान्ति सुखधाम ॥ ९ ॥
ताहि लखिय निज हृदय में, सन्त सुमति हिय धारि।
भक्तन पार उतारिये, बनिये पर उपकारि ॥ १० ॥ १ ॥

इति श्रीमत्स्वामिहनुमद्दासषट्शास्त्रिविरचित बीजक-
सारबोधिनी टीका चतुर्थ विप्रमतीसी प्रकरण ॥४॥



❀ ओम् राम ❀

श्रीसद्गुरु कबीर साहब कृत बीजक

बीजकसारबोधिनी टीका सहित

अथ

पञ्चम हिंडोला प्रकरण

हिंडोला १

भरम हिंडोला ना (जामें), सब जग झूलै आय ॥
पाप पुण्य के खम्भ दोऊ, मेरु माया मानि ।
लोभ मरुआ विषय भँवरा, काम कीला ठानि ॥
शुभ अशुभ बनाय डाँडी, गह्यो दोनों पानि ।
यह कर्म पटरी बैठि के, (को) को न झूलै आनि ॥

सुदेवं सदा निर्मलं संस्मरन्तो जगज्जालमालाऽखिलं विस्मरन्तः ।
भजन्ते सदा निर्मलं यं महान्तो गुरुं देवदेवं सदा तं भजामः ॥१॥

मायामय संसार में, भरम सिद्ध सब देह ।
तामें सब जिव झूलहीं, जब लो मुक्ति विदेह ॥ १ ॥
जन्म मरण दुख द्वन्द्व से, जो रक्षक गुरु राज ।
वन्दौं तिनके चरण युग, जो साधत शुभ काज ॥ २ ॥
भरम सिद्ध संसार यह, हिंडोला सम आँहि ।
पाप पुण्य माया रचित, विषय लोभ ता माँहि ॥ ३ ॥
शुभ अरु अशुभ जु विषय हैं, तिनहि गहा जन जोय ।
कर्म विवश सो झुलत जग, ब्रह्मादिक सब कोय ॥ ४ ॥
विषय त्यागि निज अज विमल, सन्त जु गहहिं स्वरूप ।
सो न झुलहिं संसार में, पावहिं मुक्ति अनूप ॥ ५ ॥
सत्य पुण्य निज कर्म ते, मिलहिं सन्त विज्ञानि ।
तो झूला के भय रहित, होत सन्त पहिचानि ॥ ६ ॥

ना (पुरुष=नर=जीव) का देहादिरूप हिंडोला (झूला) भ्रमरूप मिथ्या है, भ्रमादिरूप अविद्या से सिद्ध हुआ है। उस देहादि में आकर सब संसारी झूलता है, द्वन्द्वयुक्त होता है। नीचे ऊपर गमनागमन करता है। इस हिंडोला में पाप पुण्य (धर्माधर्म) दो खम्भे तुल्य हैं। ममता आदिरूप माया मेरु (मध्य की लकड़ी तुल्य है) इस प्रकार मानी गई है और लोभ मरुआ तुल्य है। शब्दादि विषय भँवरा तुल्य हैं। काम कील के तुल्य ठाना (किया) गया है। शुभ अशुभ पदार्थ को डाँडी (दण्ड) बनाकर जीव दोनों हाथों में पकड़ता है, पकड़ा है और इस वर्तमान कर्मरूप पटरी पर बैठकर, इस संसार में आकर कौन नहीं झूलता है, सब देहधारी क्रमशः सुख दुःखादि युक्त अनेक अवस्था को प्राप्त करता है।

झूलै तो ब्रह्मा दत्त शिव, झूलै तो सुरपति इन्द्र।
झूलै तो नारद सारदा, झूलैं व्यास फणीन्द्र॥
झूलैं तो गण गन्धर्व मुनि, झूलैं सूरज चन्द।
आपु निर्गुण सगुन होय के, झूलिया गोविन्द॥

ब्रह्मा दत्त (दत्ता त्रेय) शिव, देवपति इन्द्र, नारद, सारदा (सरस्वती) व्यास, फणीन्द्र (शेष नाग) गणदेव (वसुआदि) गन्धर्वदेव, मुनि, सूर्य चन्द्र देव, ये सब झूलते हैं। और आप (स्वयं) निर्गुण ब्रह्म गोविन्द (इन्द्रियादि रूप उपाधिवाला) सगुण होकर झूलता है या स्वयं गोविन्द (पृथिवी आदि के रचक विष्णुदेव) निर्गुण (ब्रह्म स्वरूप=दुर्गुण रहित) और सगुण (सद्गुण सहित) होकर झूल चुके हैं और झूलते हैं।

छ चारि चौदह सात इकिस, तीनि लोक बनाय।
खानि बानि खोजि देखहु, स्थिर न कोइ रहाय॥
खण्ड ब्रह्मण्ड खोजि देखहु, छूटत कतहूँ नाहिं।
साधु सन्त विचारि देखहु, जिव निस्तरि कहँ जाहिं॥

छः (शास्त्र वेदाङ्ग दर्शनादि) चार (वेद अवस्थादि) चौदह (सर्ग भुवन विद्यादि) सात (द्वीप समुद्रादि) इक्किस (नरक स्वर्गादि) और तीन लोक को बनाय (रचकर) गोविन्द झूलते हैं तथा ये सब भी स्थिर नहीं हैं, इन सब में जीवात्मा झूलता है। अतः अण्डजादि चारो खानि और वेदादि वाणी में खोज

विचार कर देखो (समझो) कि स्थिर रहने वाला कोई एकदेशी पदार्थ देही नहीं है। और नव खण्ड सब ब्रह्माण्ड में खोज कर देखो कि देहधारि ज्ञानादि के बिना कहीं भी झूलने से नहीं छूटता है। ज्ञान जन्य विदेह भाव के बिना कहीं पूर्ण शान्ति नहीं मिलती है। अतः ज्ञान के लिये साधु (कुशल ज्ञानी) सन्तों के साथ विचार कर देखो कि जीव कहाँ जाकर निस्तार पाते हैं, या निस्तार (मोक्ष) पाकर कहाँ जाते हैं। अर्थात् ज्ञान के बिना कहीं जाने से मुक्ति नहीं होती है। न मुक्त ज्ञानी कहीं जाते हैं। सो—

"ते नर कहहु कहाँ गये, जिनहिं दीन्ह गुरु घोटि" इत्यादि उपदेशों से समझो।

(जहँ) रैनि दिवस न चन्द सूरज, तत्त्व पल्लव नाहिं।
काल अकाल प्रलय नहिं तहँ, सन्त बिरले जाहिं॥
तहँ के बिछुरे (बहु) कल्प बीते, भूमि परे भुलाय।
साधु सङ्गति खोजि देखहु, बहुरि (न) उलटि समाय॥

और जिसमें रात्रि दिवसादि कालकृत अन्धकार प्रकाश का भेद नहीं है। क्योंकि—"ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते" वह ज्योतियों का ज्योति और तम (अन्धकार) से पर कहा जाता है। अतएव जिस स्वरूप में चन्द्र सूर्यादि के प्रकाश की आवश्यकता नहीं होती है, न जिसमें पाँच तत्वों का पल्लव (विस्तार= सम्बन्ध) है, शीतोष्णादि विकार भूतनिमित्तक जिसमें नहीं होता है। अतएव सुकाल, दुष्काल, प्रलय (मरण, मोक्ष, नाशादि) का उस स्वरूप में सम्बन्ध नहीं होता है। उस स्वरूप में जीवितावस्था में ही समाधि काल में कोई विरले ज्ञानी सन्त जाते हैं, तथा ब्रह्मनिष्ठ द्वन्द्व रहित कोई विरल सन्त होते हैं।

यद्यपि महाप्रलय और सुषुप्ति में सब जीव उस स्वरूप में प्राप्त हो जाते हैं, परन्तु अज्ञान वासनादि वश फिर वियुक्त हो जाते हैं, इस प्रकार उस स्वरूप के बिछुड़ते बिछुड़ते में अनन्त कल्प अनादि काल से बीत चुके हैं और यह जीव भूमि भौतिक देहादि में प्राप्त होकर उसे सर्वथा भूला हुआ है। अतः बार-बार संसार में झूलता है। अतः मुमुक्षु के लिये उपदेश है कि ज्ञानी साधु की सङ्गति में खोजकर (विचार ध्यानादि करके) उस स्वरूप को अपरोक्ष करो, कि जिससे

प्रारब्धान्त में उस स्वरूप में प्राप्त होने पर फिर उस स्वरूप से उलटकर भूमि शरीर गर्भादि में नहीं समायगा। अज्ञान मूलक अनादि संसार जिस ज्ञान से निवृत्त हो, उस ज्ञान को साधु संगति आदि के द्वारा प्राप्त करो। अथवा संसार से सर्वथा उलट कर (उपरत विरक्त होकर) साधु संग में खोजकर उस स्वयंप्रकाश आनन्दघन को देखो। फिर उसमें समाय जावोगे (लीन हो जावोगे) कि जिससे आवागमनादि से रहित मुक्त होगे। क्योंकि—

"परिचय भया जो एक से, एकहि माँह समाया।" और "ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति" ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म ही हो जाता है। अतः भेद अज्ञानादि के अभाव से वह फिर नहीं झूलता है।

यहि झूलवे की भय नहीं, जो होहिं सन्त सुजान।
कहहिं कबिर सतसुकृत मिलै (तो), बहुरि न झूलै आन ॥१॥

अतएव जो सुजान (अपरोक्षात्म ज्ञानी) सन्त होते हैं, उनको जीवनावस्था में ही जीवन्मुक्त हो जाने के कारण इस झूलवे की (संसार की) पुनरावृत्ति का भय उनको नहीं रहता है। और कबीर साहब कहते हैं कि सच्चे सुकृत (निष्काम शुभ कर्मादि) के प्रभाव से यदि वैसे सत सुकृत वाले सन्त मुमुक्षु को मिल जायँ तो वह भी फिर झूलना पर आकर नहीं झूलता है। उनसे ज्ञान पाकर मुक्त होता है। अतएव साधु सङ्गति में खोजकर देखने का उपदेश दिया गया है—"संत सङ्ग अपवर्ग कर" "सत्संगति मुदमंगल मूला" इत्यादि संत वचन हैं। औ—

"उपासते पुरुषं ये ह्यकामास्ते शुक्रमेदतिवर्तन्ति धीराः। मुण्डक० ३।२।१।" जो निष्काम धीर ज्ञानी पुरुष की उपासना सेवा करते हैं, सो रजोवीर्यरूप शुक्र को फिर कभी नहीं प्राप्त करते हैं, शरीर धारी नहीं होते हैं। इत्यादि उपनिषद् वाक्य हैं ॥१॥

हिंडोला २

बहु विधि चित्र बनाय के हरि, रचि क्रीड़ा रास।
जेहि झूलवे कि इच्छा नहिं, अस बुद्धि (है) किहि पास ॥

झुलत झुलत बहु कल्प बीते, मन नहिं छोड़त आस।
मचो रहत हिंडोल अहनिशि, चारि युग चौमास॥

कीन्हीं का कहना है कि यह जन्मादिरूप संसार भ्रम अज्ञानादि से सिद्ध नहीं हुआ है, किन्तु हरि (परमात्मा) ने स्वयं क्रीड़ा रास (लीला समूह) को बहुत प्रकार के चित्र (लोक शरीरादि) को बनाकर रचा है। अर्थात् हरि ने बहुत प्रकार के लोकादि को बना कर जन्म मरणादिरूप रास क्रीड़ा रची है।

और जिसको इस लोकादिरूप झूले पर झूलने की इच्छा नहीं हो, किन्तु मोक्षकी इच्छा हो, ऐसी इच्छा का हेतुरूप विवेकादि युक्त बुद्धि भी किसके पास में है (ऐसी बुद्धि किसी को स्वयं प्राप्त होनेवाली नहीं है, किन्तु यह बुद्धि भी ईश्वराधीन है)। अत एव झूलते झूलते अनन्त कल्प बीत गये हैं, परन्तु हरि की इच्छा के विना झूलने की आशा को मन नहीं छोड़ता है। और हिंडोला भी रात दिन मचो (चलती) रहती है। और जिस झूलने में चारो युग एक चातुर्मास तुल्य होते हैं।

कबहुं (क) ऊँचे कबहुं (क) नीचे, स्वर्ग भूतले जाय।
अति भ्रमत फिरत हिंडोलवा (हो), नेकु नहिं ठहराय॥
डरपत हौं यह झूलवे कि, राखु (हो) यादवराय।
कहैं कबिर गोपाल बिनति, शरण हरि को पाय॥२॥

उक्त हिंडोला पर झूलने वाला जीव कभी ऊँचे स्वर्ग में कभी नीचे भूतल में जाता है, क्योंकि मन सूक्ष्म देहादिरूप हिंडोला ही अत्यन्त भ्रमती फिरती रहती है, सब लोक चञ्चल हैं। अतः नेकु (तनिक) भी हिंडोला ठहरती नहीं है। जो जीव इस झूलने से डरता है सो विनय करता है कि हे यादव राय (कृष्णदेव) मैं इस झूलने से डरता हूं। आप अपने शरण (लोकादि) में राखो। कबीर साहब कहते हैं कि हरि की क्रीड़ा संसार को मानने वाले भयभीत होने पर भी हरि के शरण को पाय (प्राप्ति योग्य मान) कर. हरि की विनती (स्तुती) आदि का

ही कथन करते हैं, शरण की प्राप्ति चाहते हैं। जीवन्मुक्ति के लिये ज्ञान नहीं चाहते हैं ॥२॥

हिंडोला ३

लोभ मोह के खम्भ दोऊ, मन से रची हिंडोल।
झुलहिं जीव जहान जहँ लों, कतहुँ नहीं थित ठौर ॥
चतुर झुलहिं चतुराइया, झूलहिं राजा शेष।
चान्द सूर्य दोउ झूलहीं, उनहुं न भौ उपदेश ॥

हरि इच्छा से मुक्ति भव, कहते यूं हरि भक्त।
हरि लीला मय जगत से, तरि नहि सकत अभक्त ॥७॥
लोभ मोहमय तदपि भव, रचता चित्त गमार।
लोभादिक के त्याग बिनु, तरत न भक्तिहुं धार ॥८॥
मोह निशा से जागिये, तब पाइय सुख कन्द।
भजिये निर्गुण राम को, रहिय सदा स्वच्छन्द ॥९॥

बाह्य संसार में पाप पुण्य खंभे कहे गये हैं। उनके भी मूलरूप लोभ मोह के दो खम्भे हैं। उनके द्वारा व्यष्टि संसार हिंडोला को मन से जीव रचता है। अर्थात् ईश्वर जगत का साधारण कारण है, विशेष कारण पुण्य पाप लोभ मोहादिक ही हैं। और संसार जहाँ लो (जहाँ तक) है तहाँ तक सब लोक में स्थूल सूक्ष्म देह द्वारा जीव झूलते हैं। निजात्म स्वरूप से भिन्न कहीं भी स्थिति का कोई ठौर (स्थान) नहीं है तहाँ चतुर चतुराई से चतुरतापूर्वक शुभ कर्मादि द्वारा अच्छे स्थानों में झूलते हैं। जैसे कि राजा राज्य कार्य में झूलते हैं। शेष भूमि के धारणादिरूप कार्य में पुराणादि के अनुसार झूलते हैं और चान्द, सूर्य भी लोकोपकाररूप अच्छे कार्यों में झूलते हैं। परन्तु राजा शेषादि को भी पूर्वजन्म में वह उपदेश नहीं प्राप्त हुआ कि जिससे सर्वथा झूलना ही नहीं हो। क्योंकि ज्ञान होने पर फिर संसार नहीं होता है। सकाम अधिकार हेतु तप आदि के

द्वारा अधिकार मिलने पर, अधिकार पर्यन्त ज्ञान रहते भी कल्प पर्यन्त गमनागमनादि नहीं छूटते हैं, इत्यादि ।

लख चौरासि जिव झूलहिं, रवि सुत धरिया ध्यान ।
कोटिन कल्प युग बीतिया, अजहुं न मानै हान ॥
धरति अकाश दुइ झूलहीं, झूलहिं पवना नीर ।
देह धरे हरि झूलहीं, देखहिं हंस कबीर ॥३॥

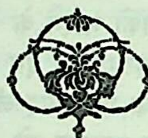
इति श्रीसद्गुरुकबीरकृते विविधबन्धबीज-
विध्वंसने बीजकनाम्नि ग्रन्थे पञ्चमं
हिंडोलाप्रकरणं समाप्तम् ॥५॥

इस असंग एकात्मा के उपदेशादि के बिना ही चौरासी लाख योनियों में जीव झूलता है और सर्वत्र इसको मारने के लिये चूहे पर बिलार के समान यमराजरूप सूर्यपुत्र ध्यान धरे रहता है। इस प्रकार कोटि कल्प और युग बीत गये, परन्तु सत्संग सदुपदेशादि के बिना यह जीव अब ही भी अपनी हानि को नहीं मानता (समझता) है। न यमराज को समझता है। भूमि और आकाश के अभिमानी दोनों देव झूल रहे हैं तथा भूमि आकाश (स्वर्ग) दोनों के निवासी जीव सब दोनों लोक में झूल रहे हैं। वायु जलादि के अभिमानी देव झूल रहे हैं और देह धरे हुए हरि (भगवान् विष्णु) अधिकार पर्यन्त झूलते हैं। कबीर साहब कहते हैं कि इस रहस्य को हंस (विवेकी) देखते हैं, सो किसी लोक देवादि की इच्छा आदि नहीं करके सत्संगादि द्वारा विभु आत्मतत्त्व को समझकर गमनागमन रहित निजात्मतत्त्व में लीन विमुक्त होते हैं।

निर्गुण निज आतम सदा, सोइ निरञ्जन देव ।
अञ्जन गुण का नाम है, सन्त लखत यह भेव ॥१०॥
सत चित आनन्द अज अमल, अलख अलेप असंग ।
अभय अछय अविनाशी अल, अखिल अछेद अभंग ॥११॥

ताहि लखिय गुरु वचन से, अनुभव पाय अभंग ।
मेटिय मोह मदादि को, रहिये सदा असंग ॥१२॥
हनूमान हरि गुरु भजन, से बल पाइ अनन्त ।
अचल अभय रह सर्वदा, कोइ विवेकी सन्त ॥१३॥

इति श्रीमत्स्वामिहनुमद्दासषट्शास्त्रिविरचित बीजक-
सारबोधिनी टीका पञ्चम हिंडोला प्रकरण ॥५॥



❀ ओम् राम ❀

* श्रीसद्गुरु कबीर साहब कृत बीजक *

बीजकसारबोधिनी टीका सहित

अथ

षष्ठ वसन्त प्रकरण

अथ जीवसंसृति प्रकार वर्णन प्रकरण १

वसन्त १

शिव काशी कस भई तोहारि । अजहूँ हो शिव देखु विचारि ॥
चोवा चन्दन अगर पान । घर घर स्मृति होत पुरान ॥
बहुविधि भवनन लागु भोग । (अस)नगर कोलाहल करत लोग ॥

अज अखण्ड शिव रूप निज, देखहु हृदय विचारि ।
तव संसृति किहि विधि भयो, जन्मादिक दुख भारि ॥१॥
समुझु विचारि प्रकार यह, जन्मादिक दुख केर ।
बहुविधि भोग विलास नित, स्मृतिहुँ भुक्त सुख केर ॥२॥
ममता मोह मदादि सब, मन विकार भव हेतु ।
त्यागिय तिनहि विचारि के, तब पाइय भव सेतु ॥३॥
यद्यपि तामस जीव जड़, सुनि करते अस क्रोध ।
कहते जीव न शिव कभी, जीव स्वभाव अबोध ॥४॥
तदपि ताहि उपदेशते, जो गुरु बोध स्वरूप ।
वन्दौ उनके पद कमल, जिहि वन्दत मुनि भूप ॥५॥

पुण्य, पाप, लोभ, मोहादि निमित्तक संसार का वर्णन प्रथम किया गया है, उसकी निवृत्ति के हेतु विचारादि के उपदेशार्थक वसन्त प्रकरण का आरम्भ हुआ है। अतः विचारादिपूर्वक ज्ञान की प्राप्ति के लिये उपदेश देते हैं कि हे शिव ! (कल्याण स्वरूप जीव !) तुम्हे काशी (सांसारिक गति संसृति) कैसे भई है ? सो हे शिव अजहूँ (अब भी) विचार कर देखो (समझो)।

और समझो कि संसार में चोवा, चन्दन अगर, पानादि उपभोग के साधन मिलते हैं और पुराने (प्रथम के भुक्तोपभुक्त) विषयों के संस्कारादि द्वारा उनकी स्मृति (स्मरण) घर-घर (सब योनियों के शरीरों) में होती है (विषयों का चिन्तन-विचार सब देह में होता है) और उस स्मरण के अनुसार सब देहों में बहुत प्रकार के भोग लगते हैं (मिलते हैं)। अतः गर्भवासादिजन्य महाकष्टों को भूलकर इस नगर में लोग (मनुष्य) भी कोलाहल (कलह=विवाद) करते हैं। सद्विचार ध्यान आत्मस्मरणादि नहीं करते हैं, यही संसृति का कारण है।

बहु विधि परजा लोग तोर। तिहि कारण चित ढीठ मोर॥
सुनि कै शङ्कर भयेउ कोह। अस काहू न कहल मोह॥
सुर नर मुनि सब धरहिं ध्यान। तूँ बालक कछु कहै न जान॥
हमरा बलकवक इहै ज्ञान। तोहरा को समुझावै आन॥

और बहुत प्रकार की प्रजा (पुत्र पौत्रादि) तुझे इस नगरी में मिलती है तथा बहुत प्रकार के लोग (कुटुम्बादि) मिलते हैं। तिस हेतु से (उन्हें रक्षक समझने से) तेरा चित्त ढीठ (निर्भय) रहता है और उनमें मोर (ममता) अहङ्कार करता है। यह संसार का कारण है। इस उपदेश को सुनकर शंकर (शिवभक्त) को क्रोध हुआ और वह कहने लगा कि इस प्रकार मुझे कोई अब तक नहीं कहा था कि तुम शिव स्वरूप हो और ममता आदि संसार का कारण है। क्योंकि सुर नर मुनि सब जिसके ध्यान धरते हैं, सो शिवजी हैं, मेरा कौन ध्यान धरता है। अतः मुझे (जीव को) शिव स्वरूप कहने वाले तुम बालक (अज्ञ) हो, कुछ भी कहना नहीं जानते हो। इस प्रकार क्रुद्ध शिवभक्त के कहने पर गुरु का कथन है कि हमारे बालकों (शिष्यों) को भी यही (पूर्वोक्त) ज्ञान हो चुका है और होता है और तुमको कोई आन (अन्य) समुझाता है। अतः तुम सद्गुरु के उपदेश को नहीं मानते हो, तो शिवस्वरूप को कैसे समझोगे। अर्थात् अनात्मा में ममतादि से ही क्रोधादि द्वारा ज्ञानानुत्पत्ति होती है।

जेहि जाहि मन से रहल आय। जिवको मरण कहु कहाँ समाँय॥
ताकर जो कछु होय अकाज। ताहि दोष नहिं साहब लाज॥
हर हर्षित अस कहल भेव। जहँ हम तहँ दूसर न केव॥
दिना चारि मन धरहु धीर। जस देखहिं तस कहहिं कबीर॥१॥

और ज्ञान के अभाव से जेहि (जो जीव) मन से (मनगत वासना आदि द्वारा) जाहि में (जिसमें) आकर रहता है (ममता अभिमान करता है) वह फिर भी वहाँ आता है, जन्मता-मरता है। उसका मरण कहो कि कहाँ कैसे समाय (निवृत्त हो) जन्म होने पर मरणादि कष्ट अवश्य होते हैं और जो कुछ उस जीव को अकाज (कष्ट) होता है, सो उसी के दोष से होता है। उसमें साहब (ईश्वर) को लाज नहीं होती है। क्योंकि जीव अपने राग द्वेषादि से बद्ध है। राग द्वेषादि रहित हो जायँ तो शिवस्वरूप हैं ही। उक्त उपदेश को सुनकर भी विषयों के हरण (प्राप्ति) करने वाले तथा पर प्राणी के प्राण नाशक हर (संहर्ता) आसुरी सम्पत्ति वाले विषयादि की प्राप्ति से हर्षित (मुदित) लोग ऐसा भेव (भेद) कहने लगे कि जहाँ (जिस आनन्द में) हम हैं, वहाँ दूसरे किसी सद्गुरु आदि की ज़रूरत नहीं है। न यम है न यमयातना आदि है।

यहाँ सद्गुरु का कथन है कि चार दिन धैर्य धरो, तो इस प्रारब्ध के भोग होने पर तुझे पता लग जायगा कि जहाँ तुम हो तहाँ कोई और है या नहीं। मैं तो जैसा देखता हूँ तैसा कहता हूँ कि मोहादि मूलक संसार है और अज्ञान की ज्ञान से निवृत्ति होने पर मुक्ति होती है, अन्यथा नहीं। प्रकरणादि के अनुसार अर्थ कहा गया है। गौणार्थ है कि मुक्ति भवन मानी गई काशी की दशा को देखकर कबीर साहब शिवजी से कहते हैं कि हे शिव! तेरी काशी कैसी हो गई, सो अब भी विचार कर देखो और इसके यश को रक्षित रखो। यद्यपि आपकी नगरी में चोवा चन्दनादि उपभोग पूजा आदि के साधन मिलते हैं। घर घर में स्मृति पुराणादि की कथा होती है, नगर के भवनों में बहुत प्रकार के भोग लगते हैं और नगर में लोग कोलाहल करते हैं (आपके सेवक आपका प्रसाद पाकर बम बम करते हैं) तथापि आपके नगर के प्रजा लोग बहुत प्रकार के हो गये हैं। यहाँ मरण मात्र से मोक्ष मानकर कोई अन्याय करते हैं, कोई नास्तिक आदि हो गये हैं। इसी कारण से मेरा मन भी ढीठ हो गया है कि जिससे मैं आपको कह रहा हूँ। यह सुनकर शिवजी को क्रोध हुआ और बोले कि इस प्रकार मुझे कोई नहीं कहा था। क्योंकि सुर नर मुनि सब मेरा ध्यान धरते हैं। तुम बालक होकर मुझे समझाने आये हो। अतः तुम बालक हो कुछ कहना नहीं जानते हो। कबीर साहब बोले कि हम बालकों का यही ज्ञान है, जो मैं आपसे कह चुका हूँ। आप स्वयं समझो आपको दूसरा कौन समझावेगा? जो जैसी मन की भावना से काशी में आकर बसा है, उसको उसकी भावना

कर्मादि के अनुसार फल होंगे। ज्ञानादि के बिना उस जीव के मरणादि कहो कैसे निवृत्त हो सकते हैं। उसका जो कुछ अकाज भी होगा, सो उसी के दोष से होगा। यदि आपके उपदेश को नहीं मानेगा तो आप प्रभु का दोष नहीं रहेगा। शिवजी खुश होकर बोले कि ज्ञानादि के लिये हमारे शरण में दूसरा कोई आता नहीं है आप भी चार दिन धैर्य धरो, कबीर साहब बोले कि मैं धैर्य युक्त ही हूँ, परन्तु नगरी की जैसी दशा देखता हूँ तैसी आपसे कहता हूँ ॥ १ ॥

वसन्त २

घरहि में बाबू बढ़लि रारि। उठि उठि लागै चपलि नारि ॥
एक बड़ि जाके पाँच हाथ। पाँचहुँ केर पचीस साथ ॥
पचीस बतावै और और। और बतावै कैउ ठौर ॥

निज दोषन से बँधे जिव, भ्रमत काम वश होय।
दोष सहित बस काशि में, तो भि मुक्त नहि होय ॥ ६ ॥
दोष सहित के हृदय में, स्व स्वभाव इन्द्रियादि।
करत युद्ध निज विषय हित, समुझि न पड़त चिदादि ॥ ७ ॥
दोष दमन करि नाशि सब, रिपु दल सहज स्वभाव।
ज्ञान अग्नि से कर्म बन, दाहि परम पद पाव ॥ ८ ॥

हे बाबू (प्यारे जिज्ञासु जीव !) उक्त शिवस्वरूप के ज्ञानादि के बिना सबके घर (हृदय देह) में ही रारि (कलह) बढ़ी है और उस रारि में चपली (चञ्चल) नारी (स्त्रियाँ) उठ उठकर लगती (प्रवृत्त होती) हैं। उनमें जगत् की प्रकृति (उपादान) रूप माया सबसे बड़ी है और अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेशरूप, तथा स्थूल सूक्ष्म भूतरूप जिसके हाथ तुल्य कार्य के हेतु हैं और उन पाँचों के साथ पचीस प्रकृतियाँ (शरीर सम्बन्धी भूतनिमित्तक स्वभाव) सहायक हैं। वे पचीसों और और (अन्य अन्य) सुख साधनादि को बताती हैं और अन्य कैक ठौर स्वर्गादि को, बुद्धि तृष्णा आशा अन्य स्त्रियाँ बताती हैं।

अन्तर मध्ये अन्त लेत। झकझोरि झेला जीवहिं देत ॥
आपन आपन चाहै भोग। कहु कस कुशल परी हैं योग ॥
विवेक विचार न करै कोय। (सब) खलक तमासा देखै लोय ॥

इन अन्तर (भीतर) में रहने वाली स्त्रियों के मध्ये (मध्य वश) में रहने वालों के वे स्त्रियाँ अन्त (भेद) लेती रहती हैं तथा इनका अन्त (नाश) करती हैं , सुख से बैठने नहीं देती हैं । क्योंकि झकझोर कर (खैंचतान से चञ्चल करके) जीव को झेला (संसार झुलना कष्ट) देती हैं । सब स्वार्थ परायणता से अपना-अपना पृथक्-पृथक् भोग चाहती हैं, तो कहो कि इस अवस्था में जीव को कुशल का योग (सम्बन्ध) कैसे प्राप्त हो सकता है, इनकी एक मति से कुशल का योग हो सकता है और सो एक मति विवेकादि से हो सकती है । परन्तु कोई विषयी आदि संसारी जीव विचार विवेकादि नहीं करते हैं । किन्तु सब लोग खलक (संसार) के तमासे को देखते हैं ।

मुख फारि हंसे राव रंक । (ताते) धरे न पावै एको अंक ॥
नियर न खोज बतावै दूरि । चहुं दिशि बागुर रहल पूरि ॥
लक्ष अहेरी एक जीव । ताते पुकारे पीव पीव ॥
अबकि बार जो करै चुकाव । कहहिं कबिर ताकि पूरि दाव ॥२॥

संसार के स्त्रियों के तमासे को देखकर राव (राजा) रंक (दरिद्र) सब मुख फाड़ कर हंसते हैं, खुश होते हैं और विचारादि नहीं करते हैं। अतः एक को भी अंक (गोद, वश) में धरने नहीं पाते हैं। अतः चञ्चल इन्द्रियादि की वशवर्तिता से नियरे (पास) में स्वहृदयगत सत्यात्मा को नहीं खोजते हैं, किन्तु पूछने वाले को भी दूर बताते हैं और उस दूर देशादि में चारो तरफ मोहकामादि विषयादिरूप बागुरा (मृगजाल) पूर्ण हो रहे हैं । और अन्य की आशा आदि वालों को बझाने के लिये अनेक कामादिरूप लाखों अहेरी (शिकारी) हैं । और उनके वशवर्ती एक जीव है। अतः उनसे पीड़ित होने पर पीव पीव पुकारते हैं । तहां कबीर साहब कहते हैं कि—

"दुख में सुमिरण सब करे, सुख में करे न कोय ।
जो सुख में सुमिरण करे, तो दुख काहे होय ॥"

इस रीति से सुख स्वस्थावस्था में जो स्मरण विचारादि द्वारा ज्ञानाग्नि को प्राप्त करके समूल कर्म वासनादि को अब की बार (इस मानव जन्म में) चुकाव (समाप्त नाश) करता है, उसी की पूर्ण तृप्ति मुक्ति शान्तिरूप पूर्ण दाव पड़ती (प्राप्त होती) है, अन्य की नहीं ॥ २ ॥

वसन्त ३

राम नाम भजु लागु तीर । ऐसो दुर्लभ जात शरीर ॥
गयउ बेणु बलि गयउ कंस । गौ दुर्योधन बूड़ेउ वंश ॥
पृथु गये पृथिवी के राव । गये त्रिविक्रम रहा न काव ॥
छौ चकवे मण्डलि के झारि । अजहूँ हो नल देखु विचारि ॥

ज्ञान अग्नि की प्राप्ति हित, रामनाम भजु बीर ।
अबहूँ देखु विचारि हिये, लागिय भजि भवतीर ॥ ९ ॥

ज्ञानाग्नि पूर्ण तृप्ति के लिये राम नाम वाले को भजो और इसी जन्म में संसाराब्धि के तीर (किनारे) में लगो ऐसा करने के बिना सुन्दर ऐसा दुर्लभ शरीर व्यर्थ जा रहा है। देखो सुखी धनी आदि भी कोई संसार में सदा रहने नहीं पाया। अतः वेणु, बलि, कंस गये । दुर्योधन का तो वंश ही गया (नष्ट हुआ) स्वयं तो गया ही । सम्पूर्ण पृथिवी के राजा पृथु गये, त्रिविक्रम गये, कोई यहाँ सदा रहने नहीं पाये । झार (सब) भूमण्डली के ये छौ चकवे (चक्रवर्ती) गये और अन्य भी मण्डलेश्वर चक्रवर्ती गये । हे नर ! सो अब भी विचार कर समझो और ममता जीवनादि की आशा आदि को त्यागो ।

हनुमत कश्यप जनक बालि । ई सब छेकल यम के द्वारि ॥
गोपीचन्द भल कीन्ह योग । (जस) रावण मारे करत भोग ॥
ऐसो जात सबन को जान । कहहिं कबीर भजु रामनाम ॥३॥

विचारादि से ही हनुमान, कश्यप, जनक और बालि ने यम के द्वार को छेका (बन्द किया) गोपीचन्द ने भी भलायोग किया कि जिससे यम द्वार को रोका और जैसे भोग करते में रावण मारा गया इस प्रकार से राम भजन रहित अन्य सब को जाते हुए जान कर तुम रावण के मरण सदृश मरण से बचने के लिये राम नाम को भजो, यह कबीर साहब का सर्व मनुष्य के लिये उपदेश है ।

मायाकृत परपञ्च में, क्षणभङ्गुर सुख लागि ।
भटकत हैं सब जीव जड़, सुख तहँ लहत विरागि ॥१०॥

याते नित्य विरक्त ह्वै, सद्गुरु वचन विचारि ।
भजिय राम तजि काम मद, तब पाइय सुख भारि ॥११॥

सुख स्वरूप इक राम है, हनूमान नहिं और।
लहत विरक्त सुसन्त तिहि, सहज सदा सब ठौर ॥१२॥३॥

इति जीवसंसृति प्रकार वर्णन प्रकरण १



अथ गर्वमोहमहत्त्व वर्णन प्रकरण २

वसन्त ४

सबहि मद्माँते कोई न जाग। संगहि चोर घर मूसन लाग॥
पण्डित माँते पढ़ी पुरान। योगी माँते योग ध्यान॥
तपसी माँते तप के भेव। संन्यासी माँते करि हमेव॥
मोलना माँते पढ़ि मोसाफ। काजी माँते देइ निसाफ॥

राम भजन बिनु माँतही, मद से सबही प्राणि।
पूर्ण भजन से त्यागि मद, मिलहिं राम निज जानि ॥१३॥

जब तक सर्वात्मा राम के ज्ञान भक्ति में पूर्ण निष्ठा वाले नहीं हुए, तब तक गुण विद्या जाति आश्रमादि के मद (गर्व) से सब माँते और मदमस्ती की अवस्था में कोई भी मोह नीन्द से जाग नहीं सके। अतः संग (साथ) ही में रहने वाले काम क्रोध लोभादिरूप चोर हृदयरूप घर के सुख शान्ति आदिरूप धन को मूसने (चुराने) लगते हैं। तहाँ पुराणज्ञ पण्डित पुराण को पढ़कर बुद्धिमत्ता के अभिमान से माँतते हैं। योगी योग ध्यान के ज्ञान से माँतते हैं। तपस्वी तप के भेदों को जान कर माँतते हैं संन्यासी उच्च आश्रम के हमेव (अहंकार) से माँतते हैं। मोलना मोसाफ (कुराणादि) पढ़ कर माँतते हैं और काजी निसाफ (फैसला, न्याय, व्यवस्था) देकर माँतते हैं।

संसारी माँते मायक धार। राजा माँते करि हंकार।
माँते शुक उद्धव अक्रूर। हनुमत माँते धरि लंगूर॥
शिव माँते हरिचरण सेव। कलि माँते नामा जयदेव॥

साधारण संसारी लोग माया के धार (प्रवाह) रूप पुत्र पौत्रादि में माँतते हैं। राजा लोग राज्य के अहंकार करके माँतते हैं। असंसारी शुकदेव, उद्धव,

अक्रूर ज्ञान भक्ति विरागादि से मस्त रहते थे। या पुराण की रीति से विष्णु भगवान् के विग्रह (देह विशेष) के चिन्तनादि में मस्त रहते थे (शुकादि में यहाँ अभ्युपगमवाद से मद का वर्णन है, सो भी मदके प्राबल्य के प्रदर्शनार्थक है) हनुमानजी लंगूर (पूंछ) को धर कर माँते और हरि के चरणों को सेवकर शिवजी मस्त हुए। कलियुग में नामदेव और जयदेव भक्त हरि के चरणों की सेवा में मस्त हुए (ये सब वर्णन अभ्युपगम मूलक हैं)।

सत्य सत्य कहे स्मृति वेद। (जस) रावण मारे घरके भेद।
चञ्चल मन के अधम काम। कहहिं कबिर भजु राम नाम ॥४॥

स्मृति और वेद यह सत्य ही सत्य कहते हैं कि जैसे रावण घर के भेद से मारा गया, तैसे ही घर के भेद से (निजात्मा से अन्य के अभिमान से=मन की चञ्चलता से) सब मारे जाते हैं (कष्ट भोगते हैं। क्योंकि चञ्चल मन के सब काम (व्यवहार) अधम (हीन दुःख जनक) होते हैं। अतः कबीर साहब कहते हैं कि सब अन्य काम अभिमानादि को त्याग कर मन की चञ्चलता की निवृत्ति के लिये राम नाम को भजो (विचार विवेकादि को प्राप्त करो)।

राम भजन बिनु चपल मन, करत अधम नित काम।
भेद भाव द्वेषादि करि, बँधता जीव सकाम ॥१४॥
ताते भजिये राम को, काम त्यागिये आज।
पाइय परमानन्द विभु, अजर अखण्ड स्वराज ॥१५॥४॥

वसन्त ५

हमरा कहल के नहिं पतियार, आपु बुड़े नल सलिलधार।
अन्ध कहे अन्धे पतियाय, जस वेश्या के लगन जाय॥
सो तो कहिय ऐसो अबूझ, खसम ठाढ़ ढिग नाहिं सूझ॥

सद्गुरु के उपदेश में, करत न जो विश्वास।
रावण सम अभिमानी सो, राम न चीन्हत पास ॥१६॥
सत्य स्वामि को लखत नहि, जो सब उर पुरवासि।
भ्रम वचन विश्वास करि, भटकत फिरै उदासि ॥१७॥
पाखण्डी पाखण्ड को, त्यागि सुनिय गुरु बात।
तजिय झूठ परपञ्च को, तब होवै कुशलात ॥१८॥

चञ्चल मन के वशवर्ती मनुष्य हमारा (सद्गुरु का) कहल (उपदेश) के पतियार (विश्वास) नहीं करते हैं । अतः आप अहंकारादि करके मोह मायामय विषयादि सलिल (जल) के धारा में डूबते हैं और मोहान्ध के कहे वचन में विश्वास करते हैं (झूठ असम्भव को सत्यादि समझते हैं)। अतः जैसे वेश्या के लगन (विवाह का मुहूर्त) शोचा जाय और पुत्रवाले के यहाँ लगन की खुशखबरी भेजी जाय, तैसे इनकी लगन धरी जाती है। अर्थात् अनेक पति में आसक्त वेश्या की तरह जो स्वयं अनेक असत में आसक्त हैं, फिर भी किसी असत के साथ ही सम्बन्ध के लिये लगन को लोग शोचते हैं और सो तो (वह मोहान्ध तो) ऐसो (वेश्या, अन्धा के तुल्य ही) अबूझ (अविवेकी अज्ञ) कहिये (कहाने योग्य) है कि जिससे सदा ही सर्वात्मा खसम (स्वामी) इसके ढिग (पास) में ही बाहर भीतर ठाढ़ (वर्तमान) है, सो इसको सूझ नहीं पड़ता है। अतः दूर दूसरे पति आदि की आशा आदि करता है।

आपन आपन चाहै मान। झूठ प्रपंच साँच कै जान॥
झूठा कबहुं न करिहैं काज। मैं बरजौं तैं सुनु निलाज॥
छाड़हु पाखण्ड मानहु बात। नहिं तो परिहो यम के हाथ॥
कहहिं कबिर नल कियो न खोज। भटकि मुये जस बनके रोझ॥५॥

और एक सत्यात्मा के अज्ञान से ही सब अपनी-अपनी मान बड़ाई चाहते हैं और मिथ्या प्रपञ्च (संसार) को सत्य करके समझते हैं। तहाँ गुरु कहते हैं कि हे निलाज ! (निर्लज्ज) वह झूठा संसार, झूठा पुरुष तेरा कोई सत्य कार्य नहीं करेगा। अतः मैं तुझे बरजता हूँ (उनके संगादि से रोकता हूँ) तुम मेरी बातों को अब भी सुनो, बार-बार झूठों से ठगाकर फिर उनके संगादि करते हो। अतः तुम निर्लज्ज बने हो, अब ऐसा नहीं करो। किन्तु अब पाखण्ड (छल कपट मिथ्या) को छोड़ो और सद्गुरु की बात को मानो, नहीं तो फिर यम के हाथ (वश) में पड़ोगे। कबीर साहब कहते हैं कि जिन लोगों ने सद्गुरु सत्यात्मा की खोज नहीं की, वे नल (मनुष्य) बन के रोझ (पशु विशेष) के समान भटककर मुये और मरते हैं। अतः भूल-भटक की निवृत्ति के लिये खोज कर्तव्य है॥ ५ ॥

वसन्त ६

बुढ़ि हँसि बोलै मैं नितहिं बारि। मोहि अस तरुणि कहु कौनि नारि॥
दाँत गयल मोर पान खात। केश गयल मोर गंग नहात॥
नयन गेल मोर कज्जल देत। वयस गेल पर पुरुष लेत॥

खोजादि रहित जीवों के प्रति बुढ़ि (वृद्धा अनादि माया) हँसकर बोलती (कहती) है, कि मैं नितहि (सदा) बारी (युवती) रहती हूँ। मोहि अस (मेरे समान) विद्या आदि कौन नारी है, सो कहो। अर्थात् माया वशवर्ती खोज रहित जीवों को जीर्ण शीर्ण तुच्छ विषयादिरूप मायिक वस्तु नित्य नवीन सुन्दर प्रतीत होती है और आत्मविद्या तृप्ति सन्तुष्टि आदि तुच्छ प्रतीत होती हैं। अतः सब मायिक वस्तु का ही सेवन करते हैं। आत्मान्वेषण नहीं करते हैं और माया कहती है कि क्षणभंगुर कालादिरूप मेरे दाँत चतुर चिकनियाँ (राजसी प्राणियों) के खाते में गये हैं, क्योंकि वे मेरे लिये पान तुल्य हैं और पान खाते में ही मेरे दाँत जाते हैं और केश गंगा स्नान करते में गये हैं (प्रलय कालिक तमोगुण, सृष्टिकाल के कार्य प्रवाह में छिप गये हैं) तथा गंगा स्नानादि सतकर्म से तमोगुण निवृत्त होता है और नैन (पुरुषाश्रित सात्त्विकांश ज्ञान शक्ति) कज्जल देते में गया है। तामस प्रवृत्ति आदि से विवेक विज्ञान से रहित मनुष्य रहते हैं सो मेरी माया का ही प्रभाव है। अतः पर (भिन्न) अनात्म पुरुष कामादि को लेते (स्वीकार करते) मेरा वयस गया है (अवस्था बीती है) कामादि से रहित में मैं नहीं रह सकती हूँ।

जान पुरुषवा मोर अहार। अन जाने का करौं सिंगार॥
कहहिं कबिर बुढ़ि आनन्द गाय। पूत भतारहिं बैठी खाय॥६॥

पुरुषवा (कुपुरुष) लोग तो मेरे आहार को जानते ही हैं। अतः सदा कनक कामिनी आदिरूप माया के पोषण में पुण्य पापादिरूप आहार देकर लगे रहते हैं। अनजाने लोगों को भी अपने आहार को समझाने के लिये मैं विचित्र रचना दिव्य शब्दादिरूप शृङ्गार करती हूँ। कबीर साहब कहते हैं कि यह बुढ़ी विचित्र विषय स्वर्गादि की रचना करके और शब्दों के द्वारा उनमें आनन्द को गा कर, उस मिथ्या में आसक्त अपने पूत (पवित्र) जीवात्मारूप भर्तार (पोषक) को बैठी हुई खाती है (कष्ट देती है) अतः जो इस कष्ट से बचना

चाहता हो, उसको लोक परलोक के मायिक मिथ्या सुखों की इच्छा आदि को त्यागकर, सत्य चिदानन्द स्वरूप सद्गुरु सत्यात्मा का अन्वेषण स्मरण ध्यानादि करना चाहिये ॥६॥

इति गर्वमोहमहत्त्व वर्णन प्रकरण ३

अथ अद्भुतनारी वर्णन प्रकरण ४

वसन्त ७

तुम बूझहु पण्डित कौनि नारि। काहु न व्याहल है कुमारि ॥
सब देवतन मिलि हरिहिं दीन्ह। चारिहुं युग हरि संग लीन्ह ॥
प्रथमे पद्मिनीरूप आय। ह्वै साँपिनी जग खेदि खाय ॥

माया मोहै जीव को, दुख में सुख दरशाय।
मारै जारै स्ववश करि, यह दुख कहा न जाय ॥१९॥
ता दुख से बाचन लिये, ताका करिय विचार।
ताहि जानि पुनि त्यागिये, तब सुख पाइय सार ॥२०॥

उक्त कष्टों से बचने के लिये उपदेश है कि हे पण्डित ! (जिज्ञासु विवेकी जन) तुम बूझो (विचारादि द्वारा समझो) कि कौन ऐसी नारी है कि जिसको किसी ने कभी व्याहा नहीं है। अतः वह सदा कुमारी है। अर्थात् यद्यपि शक्तिरूप माया निराश्रय नहीं रह सकती है, अतः वह सत्यात्मा के आश्रित ही रहती है, तथापि अज्ञान से स्वतन्त्र सत्य समझने पर कष्ट देती है। अतः कष्ट से रहित होने के लिये उसको समझो। उसको पूर्ण रीति से समझे बिना सब देवताओं ने मिल कर उसे हरि (विष्णु भगवान्) को दिया। (हरि के प्रति उसका दान किया) अर्थात् विष्णु देव को सब देवताओं ने माया पति (माधव) समझा। और हरि ने भी चारो युगों में लक्ष्मीरूप माया को अपने साथ में कर लिया (मायापति कहाने लगे) परन्तु वह माया तो प्रथम पद्मिनी सुखदा सुगन्धा आदिरूप से उनके पास में आकर फिर सर्पिणीरूप होकर संसारी को खदेड़ कर खाती है और हरि को भी कष्ट देती है। अर्थात् प्रथमारम्भ सतयुगादि में संसार में कुछ धर्म सुखादि रहते हैं फिर संसार दुःखरूप हो जाता है। विष्णुदेवादि

अधिकारियों को भी प्रथम विभूति सुखरूप प्रतीत होती है, फिर असुरों से युद्ध नाशादि काल में दुःखरूप हो जाती है। अतः मायारूप सर्पिणी अपने स्वामियों को भी अपने अधीन बच्चे तुल्य बनाकर मानों खाती है, प्रलय करती है।

यह वर युवती वै वर नाह। अति रे तेज तिय रैनि ताह॥
कहहिं कबिर यह जगत् पियारि। अपन बलकवहिं रहलि मारि॥७॥

यह पद्मिनी माया श्रेष्ठ युवती है और वे विष्णु वर (श्रेष्ठ) नाह (स्वामी) हैं। परन्तु उस तिय (युवती स्त्री) और ताह (उस) विष्णुदेव के रैनि (अज्ञान रात्रि) में ही अत्यन्त तेज रहते हैं। कबीर साहब कहते हैं कि अत्यन्त तेज के कारण यह माया जगत् को प्यारी लगती है, परन्तु सर्पिणी समान बालक तुल्य अपने वशवर्ती अज्ञ जीवों को मार रही है। अतः ज्ञान की प्राप्ति करके माया देवादि की वशवर्तिता से रहित होना चाहिये।

माया नाशै जीव को, सुखदा रूप दिखाय।
सर्पिनि सम नित खात है, अपनी सन्तति धाय॥२१॥७॥

बसन्त ८

कर पल्लव केवल खेलै नारि। पण्डित होय सो करै विचारि॥
कपरा न पहिरे रहै उघारि। निर्जिव सो धनि अति पियारि॥
उलटी पलटी बाजू तार। काहू मारै काहु उबार॥
कहैं कबिर दासन के दास। काहू सुख दे काहु उदास॥८॥

शब्द पाँच में कहा गया है कि–"एके पुरुष एक है नारी" "एके नारी जाल पसारी" एक ही सत्यात्मा पुरुष और एक मायारूप नारी इस संसार का मूल स्वरूप है, तहाँ सत्यात्मा पुरुष तो सब को सत्ताप्रद साक्षीमात्र प्रकाशक है। एक नारी ने नाम रूपात्मक जाल (विस्तार जीवों के बन्धन) पसारी है। उसी नारी का फिर यहाँ पूर्व प्रसङ्ग के अनुसार से वर्णन है कि उस नारी का जो नाह (स्वामी) वस्तुतः है, सो उदासीन रहता है। केवल (सिर्फ) नारी ही अपनी स्वामी की सत्ता प्रकाश को पाकर नामरूप का पल्लव (विस्तार) करके और मन बुद्धिरूप होकर खेलती है। तथा कर (मनुष्य के हाथ) के पल्लव = अंगुलियों के बल (सामर्थ्य) से वर्णों की रचना करके माया खेलती है। विवेकी पण्डित हो,

सो इस प्रकार विचार करे और नाम रूपात्मक माया कपड़ा नहीं पहिरती है, पाँच कोशों से आवृत्त नहीं होती है, यह स्वयं पाँच कोशरूप है। अतः इससे आत्मा आवृत्त होता है और यह नारी उघारी (प्रकट) रहती है और निर्जीव (कनकादि) रूप माया धनी लोभी लोगों की अति प्यारी होती है। अपने जीवात्मा को महाकष्ट देकर उसको प्राप्त करना चाहते हैं। तथा कामियों को निर्जीव (सुवर्णादि) से धनि (धन्या) सजीव सुन्दर स्त्री अति प्यारी होती है। उसके लिये तन धन धर्म को भी नष्ट कर देते हैं और परिमित (अकारादि और ककारादि) रूप यह माया ही उलट-पलटकर अनन्त पद वाक्यरूप होकर तार (जोर) से बाजती है। अर्थात् सब शब्द माया स्वरूप हैं और यह माया ही अज्ञान भ्रम संशयादिरूप से तथा मिथ्या क्रूर मोहादि जनक शब्दरूप से किसी अविवेकी कामी को मारती है और ज्ञान वैराग्य सदुपदेशादिरूप से किसी विवेकी को उबारती (मुक्त करती है) परन्तु कबीर साहब कहते हैं कि दासों के दास (देव देवी के भक्त) कहते हैं कि माया किसी को मारती नहीं है, मृत्यु स्वाभाविक है। अतः माया किसी सकाम भक्तों को संसार में ही सुख देती है, किसी निष्काम को उदासीन (मुक्त) कर देती है। परन्तु—

"अध्यवसायो बुद्धिर्धर्मो ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यम्।
सात्त्विकमेतद्रूपं तामसमस्माद् विपर्यस्तम् ॥ १ ॥
रूपैः सप्तभिरेव तु बध्नात्यात्मानमात्मना प्रकृतिः।
सैव तु पुरुषार्थं प्रति विमोचयत्येकरूपेण ॥ २ ॥"

अध्यवसाय (निश्चयात्मक बुद्धि) रूप प्रकृति के धर्म, ज्ञान, वैराग्य ऐश्वर्य ये चार सात्त्विक रूप होते हैं और अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य, अनैश्वर्य ये चार तामसरूप होते हैं। उनमें ज्ञान से अन्य सातो रूप से प्रकृति (माया) अपने आप को बाँधती है और भ्रम से पुरुष में बन्धन प्रतीत होता है। तहाँ अविवेक से ही पुरुष के मोक्ष के लिये प्रवृत्त होकर एक ज्ञानरूप से अपने को ही आप मुक्त करती है। यह सांख्य का सिद्धान्त है और अवतारादि रूप से माया असुरों को मारती है, भक्तों को उबारती है। अतः यह सब प्रपञ्च माया मात्र है ॥८॥

इति अद्भुतनारी वर्णन प्रकरण ३



अथ अद्भुतमानव चरित्र वर्णन प्रकरण ४

वसन्त ६

मायि मोर मनुषा अति सुजान । धान कूटि कुटि करै बिहान ॥
बड़े भोर उठि आँगन बाढ़ि । बड़े खाँच लै गोबर काढ़ि ॥
बासी भात मनुष ले खाय । बड़े घैल ले पनियक जाय ॥

सब विस्तार माया कृत, नाम रूप व्यवहार ।
ता में ज्ञानी उबरता, निज विवेक उरधार ॥ २२ ॥
जो गुरु जन सुविवेक युत, मन माया वश कीन ।
त्यागा मल वैराग्य से, भै सो मुक्त प्रवीन ॥ २३ ॥

लोभी कामी आदि को तो माया अवश्य कष्ट देती है । परन्तु सद्गुरु कहते हैं कि लोभ कामादि के त्याग द्वारा माया को वश में करने वाले मायी (माया विजयी) मोर मनुषा (गुरुभक्त) जीव अत्यन्त सुजान होते हैं । अतः माया के फन्द राग द्वेषादि में नहीं पड़ते हैं । अतः धान (अविविक्त सत्यानृत= आत्मानात्मा) को कूट-कूट कर (विचारादि करके) विहान (सुप्रकाश) करते हैं, जिस रात्रि में माया का तेज बढ़ता है, उस मोहान्ध रात्रि को नष्ट कर देते हैं । और बड़े भोर (प्रथम विवेक) काल में उठकर (उद्यत उपरत होकर) वैराग्यरूप झाड़ू से अपने हृदय के राग द्वेषादिरूप मल को बुहार कर हृदय को साफ कर देते हैं और श्रद्धा आदि से युक्त विवेकवती बुद्धिरूप बड़े खाँच को लेकर गोबर (आशा तृष्णादि) को हृदय से निकाल देते हैं और बासी भात तुल्य प्रारब्ध कर्म को सुखपूर्वक खाय (भोग) लेते हैं और ममता अज्ञानादिरूप मल को धोने के लिये श्रद्धा शमदमादि युक्त बड़े घड़े तुल्य भक्ति बुद्धि ही को लेकर शान्तिप्रद ज्ञान भक्तिरूप पानी के लिये गुरुशरण सत्सङ्गादि में जाते हैं ।

आपन सयाँ के बाँधो पाट । लै रे बेंचो हाटे हाट ।
कहहिं कबिर ई हरि के काज । जोइयक ढिग रहि नाहिं लाज॥९॥

और वहाँ जाकर जिज्ञासु गुरुदेव से विनय करते हैं कि मैं अपने सैयाँ (सर्वात्मा स्वामी) को, स्वामी के ही पाट (सिंहासन हृदय पट) पर प्रेम से बाँध कर धरूँगा । अतः मुझे बताया मिलाया जाय (स्वामी की प्राप्ति कराया जाय) फिर सद्गुरु उपदेशादि द्वारा प्राप्ति कराकर कहते हैं कि रे भक्त भाई ! इसे

लेकर हाटे हाट बेचो, बाट बाट नहीं। भक्ति सेवादि मूल्य लेकर इस उपदेश का अधिकारी के प्रति प्रदान करो, अनधिकारी के प्रति नहीं। कबीर साहब कहते हैं कि विवेक वैराग्य सद्भक्ति सदुपदेशादिक ही सर्वात्मा हरि के कार्य (सेवा भक्ति) है कि जिससे माया से मुक्ति मिलती है और इस हरि के कार्य के बिना मायारूप जोइया (स्त्री) के ढिग (पास) में किसी की लाज (बड़ाई, इज्जत) नहीं रही, न रह सकती है। अतः इज्जत चाहने वाले मुमुक्षु को हरि गुरु भक्ति आदि अवश्य करना चाहिये ॥ ९ ॥

वसन्त १०

रसना पढु हो श्रीवसन्त। पुनि जे परिहहु यम के फन्द ॥
मेरुदण्ड पर डंक कीन्ह। अष्ट कमल पर जारि दीन्ह ॥

जोइया के ढिग लाज नहीं रहती है। अतः उपदेश है कि हे सज्जनों! रसना से भी श्रीवसन्त (श्रीनिवास, माया अविद्यादि के अधिष्ठान) को गुरु से पढ़कर पढ़ो, ऐसा नहीं करने पर फिर भी यम के फन्दे में पड़ोगे कि जिसके फन्दे में पहले अनेक बार पड़ चुके हो और उस यम ने पूर्व जन्म के मरण काल में तेरे मेरुदण्ड पर विषैले बिच्छु के डंक तुल्य डेक (चोट) मारा था, कि जिससे आठो कमलों को अत्यन्त जला दिया था।

ब्रह्म अग्नि कीयो परकाश। अर्द्ध उर्ध्व तहँ बहै बतास ॥
नव नारी परिमाला गाव। सखी पाँच तहँ देखन धाव ॥

और तुम्हें जलाने के लिये यम ने ब्रह्माग्नि (बृहदग्नि) का प्रकाश किया था और उस अग्नि को ही प्रज्वलित करने के लिये तेरा प्राण, वायु भी ऊर्ध्व श्वाँस काल में वहाँ नीचे ऊपर बहता (चलता) था। अतः तेरा प्राण भी उस समय तेरा रक्षक नहीं था। किन्तु यम का ही सहायक था और कर्मेन्द्रिय चार अन्तःकरणरूप नव नारी या प्रधान नव नाड़ीरूप नव नारी परिमाला (यम के खजाना धन) को उस समय गाती थीं, ये सब उनके वशवर्ती थीं और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ रूप तेरी सखी भी वहाँ यम की लीला देखने के लिये दौड़ पड़ी थीं।

अनहद बाजा रहल पूरि। पुरुष बहत्तर खेलै घूरि ॥
माया देखि कस रहहु भूलि। जस बनासपति रहली फूलि ॥
कहैं कबीर हरी के दास। फगुआ माँगे बैकुण्ठ बास ॥१०॥

क्योंकि वहाँ अनहद बाजा भी पूर्ण हो रहा था, बजता था और बहत्तर कोठे के बहत्तर वायुरूप पुरुष धूलि प्रक्षेपरूप खेल खेल रहे थे। अतः इन्द्रियरूप सखी यम की लीला से आकर्षित हो गई थीं, तेरा सहायक कोई नहीं था। मायावश होकर तुमने अकेला कष्ट भोगा था। फिर भी तुम कैसे भूले रहते हो, उन दुःखों को याद नहीं करते हो कि जैसे वनस्पति फूल रही हो और उस फूल में तुम लुभाये हो। अर्थात् वनस्पति में मिथ्या फूल की कल्पना के समान मायामय संसार में मिथ्या सुख की कल्पना से तुम इसमें फँसे हो। इस बात को सुनकर मायारूप हरि के दास कहते हैं कि फगुआ (फाल्गुन के आनन्देच्छुक कामी भक्त) भूले नहीं है, किन्तु ईश्वर से वैकुण्ठ में बास माँगते हैं। सालोक्यादि मुक्ति पाने वाले हैं। अज्ञ योगी रसना को समझाकर मेरुदण्ड पर चित्तवृत्तिरूप डंक मारकर कमलों को जलाकर ज्योतिरूप ब्रह्माग्नि का प्रकाश करते हैं (दृश्य ज्योति को ब्रह्म समझते हैं) उस ज्योति को भी यहाँ मायामय दर्शाया गया है ॥ १० ॥

वसन्त ११

(जाके)बारहमास वसन्त होय। (ताके)परमारथ बूझै बिरला कोय।
बरषै अग्नि अखण्ड धार। हरियर बन अठारह भार ॥
पनिया आदर धरै न लोय। पवन गहै कस मलिन धोय ॥

मांया तजि हरि भजिय नित, जा बिनु यम के फन्द।
पड़त जीव सह यातना, सदा होत दुख द्वन्द्व ॥ २४ ॥
माया तजि हरि भजन से, पाइय परमानन्द।
जीवत ही सब मुक्ति लहि, रहिये नित्य स्वछन्द ॥ २५ ॥

प्रथम कहा गया है कि (फगुआ माँगे वैकुण्ठ बास) समय विशेष लोक विशेष में कामी मायिक सुख विशेष चाहता है, परन्तु निष्काम होकर जो बिरल कोई परमारथ (सत्यसर्वात्मा) को बूझता (समझता) है, उसको बारहो मास (सदा) वसन्त (ब्रह्मानन्द) प्रतीत प्राप्त होता है और सब ताप निवृत्त हो जाते हैं और जड़ता के नाशक तत्त्व के प्रकाशक ज्ञान साधन ज्ञानरूप अग्नि जिसके हृदय में अखण्ड धारारूप से वर्षती है, उसके अठारह भार वनस्पति तुल्य लोम समूह हरियर (हर्षित) हुए और होते हैं। परन्तु कामी लोग ज्ञानाग्नि से प्राप्त

करने योग्य सच्चिदानन्दरूप पानी का धारण (ध्यान चिन्तनादि) नहीं करते हैं, न शान्तिप्रद सद्गुरु के उपदेशादि का धारण करते हैं। किन्तु "प्राणाया-मैर्दहेद् दोषान् ।" (मनु० अ० ६।७२) प्राणायाम से वात पित्तादि के दोषों को नष्ट करे, इत्यादि सुनकर केवल प्राण को गहते (प्राणायाम करते) हैं तो उससे अज्ञानादिरूप मलिन (मल) कैसे धोया जा सकता है। क्योंकि अज्ञान का नाशक ज्ञान ही है, अन्य नहीं।

बिनु तरुवर फूले आकाश। शिव विरञ्चि तहाँ लेहिं वास ॥
सनकादिक भूले भँवर होय। लख चौरासी जीव जोय ॥
जो तोहि सतगुरु सत्य लखाव। ताते न छूटै चरण भाव ॥
अमरलोक फल लावै चाय। कहैं कबिर बूझै सो खाय ॥११॥

उक्त प्रकाशरूप ज्ञान के बिना अन्धकार में सर्प भ्रम के समान, बिना तरुवर (वृक्ष) के आकाश फूला हुआ प्रतीत होता है। अर्थात् आकाश में अनेक सत्य लोक दिव्य भोगादि अज्ञान से ही भासते हैं और योगियों को भी हृदयाकाश आदि में प्रथम मिथ्या वस्तु अति सुन्दर प्रतीत होती है और प्रतीत होता है कि शिव ब्रह्मा आदि अनन्त देव उस आकाश में बसते हैं तथा आकाश वृक्ष के पुष्प के वास (गन्ध) को लेते हैं (स्वर्गादि के सुखों को भोगते हैं) तथा सनकादिक भी भँवर तुल्य होकर उस आकाश पुष्प में भूले हैं, स्वर्गादि के भोगों को भोग रहे हैं और चौरासी लाख योनि के जो जीव खग मृगादि वृक्षादि वहाँ पहुँचे हैं, सो सब आनन्द भोग रहे हैं। वहाँ कोई प्राणी दुःखी नहीं हैं। परन्तु खग मृगादि वहाँ भी हैं। कबीर साहब कहते हैं कि सत्य कहीं दूर नहीं है, किन्तु वह सद्गुरु से यहाँ ही समझ पड़ता है। अतः जो सद्गुरु होंगे सो तुमको सत्य लखायँगे और जो सत्य लखावें उनके चरण से जीवन पर्यन्त भाव (भक्ति प्रेम) नहीं छूटना चाहिये। क्योंकि गुरुभक्तिपूर्वक अमर अविनाशी (लोक्यते इति लोकः) ज्ञान दृष्टि से दर्शन योग्य लोक (आत्मा) में जो चाव (चाह) लाता है, गुरु से पूछकर समझता है, सो उस नित्य मुक्त आत्म स्वरूप मोक्ष फल को यहाँ ही खाता है, जीवन्मुक्तिरूप सुख का अनुभव करता है। इस प्रकार सब ज्ञानी कवि आचार्य सद्गुरु कहते हैं।

वसन्त १२

(मैं) आयउँ मेहतर मिलन तोहि। ऋतु वसन्त पहिराउ मोहि ॥
लम्बी पुरिया पाई क्षीन। सूत पुराना खूँटा तीन ॥

अमर लोक को चाहने वाले भक्त अपने स्वामी से और ज्ञान चाहने वाले शिष्य सद्गुरु से विनय करते हैं कि हे मेहतर ! (अत्यन्त महान् दयालो !) हे लोक नायकदेव गुरो ! मैं तुमसे मिलने (तेरे शरण में) आया हूँ। ऋतु वसन्त (वसन्त ऋतु तुल्य आनन्दजनक दिव्यदेह, मोक्षप्रद ज्ञानरूप वसन्त का पट) मुझे पहिराइये (प्राप्त कराइये) इस प्राप्त मानव देह संसाररूप पट की पुरिया (थान ताना विस्तार) बहुत लम्बी (अनादि) है और इसमें पाई-(शुद्धि) क्षीण (अति अल्प) है। अनादि संसार में अच्छी देह शुद्ध बुद्धि आदि कम (थोड़े) मिलते हैं और वासना कर्म भूतादिरूप सूत भी पुराने हैं (प्रवाहरूप से अनादि हैं) और पट के बुनने में आधाररूप खूँटा (खूँटी) तीन गुण वात, पित्त, कफ हैं।

शर लागे तेहि तिनि सौ साठि। कसनि बहत्तर लागु गाँठि ॥
खुर खुर खुर खुर चलै नारि। बैठि जोलहदि आसन मारि ॥
ऊपर नचनी करै कलोल। करिगह में दुइ चलै गोर ॥

इस देह पट में तीन सौ साठ हड्डीरूप सर लगते हैं। बहत्तर कोठे की नाड़ी वायु की कसनी (कसकर बाँधने वाली) गाँठी लगती है और जैसे पट बुनने में ढरकी द्वारा खुर-खुर शब्द करती हुई नाड़ी चलती है, वैसे ही शरीर में खुर-खुर नाड़ी चल रही है और मन जीवरूप जोलहा इसको सदा बीन रहा है और जोलहदी (जीवरूप जोलहा की स्त्री) बुद्धि इसमें आसन लगाकर बैठी है और ऊपर की तरफ करघा की साजरूप नचनी की तरह इन्द्रिय, प्राण, वायु, कल्लोल (क्रीड़ा शब्द) करते हैं और करिगह (करघायुक्त घर) देहादि में बाह्याभ्यन्तर चन्द्र, सूर्यरूप दोनों गोड़ (पैर) समय-समय पर चलते हैं।

पाँच पचीसो दशहुँ द्वार। सखी पाँच तहँ रची धमार ॥
रंग विरंगी पहिरि चीर। हरिक चरण धरि गावै कबीर ॥१२॥

इति श्रीसद्गुरुकबीरकृते विविधबन्धबीजविध्वंसने बीजकनाम्नि ग्रन्थे परमानन्दसम्पादकं षष्ठं वसन्तप्रकरणं समाप्तम् ॥६॥

उक्त रीति से सिद्ध देह में, संसार में, पाँच तत्त्व, उनकी पचीस प्रकृति (स्वभाव) वर्तमान हैं। देह में दश द्वार हैं। तथा पाँच ज्ञानेन्द्रियरूप जीव की सखियाँ हैं। जो जीव के लिये शब्दादि विषय पहुँचाती हैं। सो सब मिलकर अज्ञ जीव के, देह गृह के, दशो द्वार पर सदा धमार खेल क्रीड़ा रचती रहती हैं और उनके वशवर्ती जीव रंग-विरंगी (अनेक प्रकार के) देहरूप चीर पहिरकर (देहधारी होकर) हरिगुरु के चरण को धरकर, दिव्य देह मोक्ष के लिये स्तुति आदि गाते हैं। सो कबीर गुरु कहते हैं कि यदि सद्गुरु सत्य लखावें और इन्द्रियों के धमारादि निवृत्त किये जायँ तो सहज ही नित्य वसन्त ब्रह्मानन्द की प्राप्ति हो जाय, दिव्य देहादि की इच्छा नहीं रहे, मलिन अविद्या आदिरूप देह का भी सर्वथा अभाव हो जाय। अतः सद्गुरु से मिलकर सत्य को ही अवश्य लखना चाहिये।

जिहि पद भजि नर पावई, नित्य वसन्त उदार।
हनूमान तिहि चरण रज, प्रणमत बारम्बार ॥२६॥१२॥

इति श्रीमत्स्वामिहनुमद्दासषट्शास्त्रिविरचित बीजक-
सारबोधिनी टीका षष्ठ वसन्त प्रकरण ॥६॥



❁ ओम् राम ❁

❁ श्रीसद्गुरु कबीर साहब कृत बीजक ❁

बीजकसारबोधिनी टीका सहित

अथ

सप्तम चाँचर प्रकरण

चाँचर १

जारहु जग का नेहरा मन बौरा हो।
जामँह शोक संताप समुझु मन बौरा हो॥
बिना नेव का देव घरा मन बौरा हो।
बिनु कहगिल को ईंट समुझु मन बौरा हो॥
काल बूत की हस्तिनि मन बौरा हो।
चित्र रच्यो जगदीश समुझु मन बौरा हो॥
काम अन्ध गज वशि परे मन बौरा हो।
अंकुश सहिहो शीश समुझु मन बौरा हो॥

जीवन मुक्तिक लाभ हित, तजिये जग का नेह।
गुरु पद दृढ़ विश्वास करि, भजिये राम अदेह॥१॥
क्षणभंगुर तापादि युत, बन्धन हेतु विलोकि।
तजि भव राग विवेक युत, होइय विमल विशोकि॥२॥
विषय स्वादवश बँधत नर, वानर शुक ज्यों हाथि।
लखत न निर्मल नित्य हरि, जो सबके नित साथि॥३॥
हरि विज्ञान विहीन का, पढ़न गुणन व्यवहार।
भव बन्धन कर होत सब, बद्ध बुड़त भवधार॥४॥

गहिये राम जहाज इक, करिये सद्गुरु सेव।
तरिये भ्रम अज्ञान भव, गुरु जहाज शुभ खेव ॥४॥

सांसारिक स्नेह (प्रेम रागादि) के रहते सत्यात्मा का ज्ञान सद्गुरु क उपदेशमात्र से दुर्लभ है। अतः उपदेश है कि हे मन बौरा! (रागादि से उन्मत्त मनवाले) तुम जग का (सांसारिक) नेहरा (स्नेह) को जारो (त्यागो) कि जिस संसार और उसके स्नेह में शोक और सम्यक् (अत्यन्त) ताप (दुःख) होते हैं, सो समझो और यह संसार बिना नेव के देवघर तुल्य है(देहादि सब क्षणभंगुर हैं) इस संसार देहाहि के कारण पदार्थ बिना कहगिल (गिलावा, गारा) के ईंट तुल्य हैं, उन्हें बिखरते देर नहीं लगती है और हाथी को बझाने के लिये कालबूत (कलबूत, नकली) हस्तिनी की प्रतिमा के समान कामियों के लिये स्त्री आदि के देहरूप चित्र को जगदीश (ईश्वर)ने रचा है, उसको वैसा ही बन्धनादि के हेतुरूप समझो।

तन धन से क्या गर्वसी मन बौरा हो।
भस्म कृमि जाकि साज समुझु मन बौरा हो॥
मरकट मूठी स्वाद की मन बौरा हो।
लीन्हों भुजा पसारि समुझु मन बौरा हो॥
छूटन की संशय परी मन बौरा हो।
घर घर नाचै द्वार समुझु मन बौरा हो॥
ऊँच नीच जानै नहीं मन बौरा हो।
घर घर खायहु डाँग समुझु मन बौरा हो॥

हे मन बौरा! तन धन से क्या गर्व करते हो, कि जिसकी साज (साधन समूह) अन्त में भस्म या कृमि होते हैं, सो समझो और मरकट (बानर) जैसे स्वाद के वश स्वादु वस्तु को मूठी में हाथ फैलाकर लेता है, वैसे ही तुम स्वादु वस्तु को भुजा पसार कर लिये हो सो समझो और उस बानर को स्वयं छुटने का संशय हो जाता है, अतः मूठी को नहीं खोलता है। फिर घर-घर के द्वारों पर परवश होकर नाचता है। तैसे तेरी बुद्धि संशय युक्त है, अतः सब योनियों में भटकते हो और वह बानर ऊँच नीच कुछ नहीं समझता है और घर-घर में

कलन्दर की डाँग (लाठी) का मार खाता है । तैसे तुम संशयादि से ऊँच नीचादि को विवेकपूर्वक नहीं समझते हो, अतः सब शरीरों में कष्ट यमदण्ड सहते हो सो समझो और स्वादु वस्तु के स्नेह को त्यागो । और—

ज्यों सुगना नलिनी गह्यो मन बौरा हो ।
ऐसो भरम विचार समुझु मन बौरा हो ॥
पढ़े गुने का कीजिये मन बौरा हो ।
अन्त बिलैया खाय समुझु मन बौरा हो ॥
शूने घर का पाहुना मन बौरा हो ।
ज्यों आवै त्यों जाय समुझु मन बौरा हो ॥

जैसे नलिनी (बाँस की फोंफी) को पकड़कर सुवा भ्रम से बन्धन में पड़ता है । स्वयं पकड़ कर समझता है कि मुझे अन्य कोई पकड़ लिया है । ऐसा ही भ्रम जन्य स्नेहादिरूप बन्धन को विचार से समझो और उसे त्यागो । यदि विचारादि से छूट नहीं सके तो सुग्गे के समान पढ़ने गुनने (विचारने) से क्या करना है (कौन फल पाना है) पढ़े हुए सुग्गे को बन्धन में रहने के कारण अन्त में कभी बिलाई खा जाती है, निर्बन्ध को नहीं । तैसे रागादि से बन्धनयुक्त विद्वान् को माया नष्ट करती है, स्नेहादि रहित ज्ञानी को नहीं, सो समझो । क्योंकि शून्य घर के पाहुन के समान विचारादि रहित अविवेकी रागी के हृदय में विद्या ज्यों आती है, त्यों ही सत्कारादि पाने के बिना, कुछ कार्य किये बिना ही चली जाती है, संशय शोकादि को नष्ट नहीं करती है, सो समझो ।

नहाने को तीर्थ घना मन बौरा हो ।
पूजन को बहु देव समुझु मन बौरा हो ॥
बिनु पानी नल बूड़िहो मन बौरा हो ।
(तुम) टेकहु राम जहाज समुझु मन बौरा हो ॥
कहहिं कबीर जग भर्मिया मन बौरा हो ।
(तुम) छाड़हु हरि को सेव समुझु मन बौरा हो ॥१॥

विद्या के बिना विवेकादि रहति के लिये यद्यपि नहाने के लिये घना (बहुत) तीर्थ हैं और पूजने के लिये बहुत देव हैं, सो समझो। परन्तु उन्हें समझकर नहाकर पूजकर भी स्नेहादि के त्यागपूर्वक एक सर्वात्मा राम को भजने समझने के बिना, हे मनुष्यों पानी के बिना संसार सागर में तुम बूड़ोगे। अर्थात् सुख शान्ति रहित संसार में कष्ट भोगोगे। अतः भजन ज्ञान द्वारा सर्वात्मारामरूप जहाज को टेको (अवलम्ब लो) कबीर साहब कहते हैं कि एक राम के भजन ज्ञानादि के बिना संसारी जीव अनेक के सत्यादि के भ्रम से युक्त हुए हैं। जो कोई विवेकी हो, सो भ्रम को छोड़ो और एक हरि को सेवो और सेवने के लिये सद्गुरु से समझो, कि जिससे अज्ञान स्नेहादि मूलक बन्ध से मुक्ति नित्यानन्द वसन्त की प्राप्ति हो ॥ १ ॥

चाँचर २

खेलति माया मोहिनी मन बौरा हो।
(जिन) जेर किया संसार समुझु मन बौरा हो॥
रच्यो रंग तिनि चूनरी मन बौरा हो।
सुन्दरि पहिरे आय समुझु मन बौरा हो॥
शोभा अदबुद रूप की मन बौरा हो।
महिमा बरणि न जाय समुझु मन बौरा हो॥

जिस माया के वश में होकर जीव भ्रम में पड़े हैं, उसकी लीला का चाँचर खेल रूप से वर्णन करते हैं कि मोहिनी माया अनेकरूप से खेल रही है आत्माराम तटस्थ द्रष्टा तुल्य मानो उसके खेल को देख रहा है। परन्तु संसारी भ्रमयुक्त जीव को माया ने जेर (तंग, हीन, हैरान, परास्त) किया है सो समझो। माया ने सत्त्व, रज, तम गुणमय (श्वेत, रक्त, स्याह रंग युक्त) शरीर विषयादिरूप चूनरी (चित्रपट) रची है और वही सुन्दरी (सुन्दर स्त्री) बनकर और संसार में आकर उस चूनरी को पहिरती है, सो समझो। अर्थात् बाह्य सब सुन्दरता को मायामय मिथ्या जानो। मिथ्या समझे बिना उसकी शोभा और अद्भुतरूप की महिमा वरणि (कही) नहीं जा सकती है। अतः उसमें भूलने का भय रहता है, सो समझो।

चन्द्रवदनि मृगलोचनी मन बौरा हो ।
बुन्दका दियो उघारि समुझु मन बौरा हो ॥
यती सती सब मोहिया मन बौरा हो ।
गज गति वाकी चाल समुझु मन बौरा हो ॥
नारद के मुख माँड़ि के मन बौरा हो ।
लीन्ही वसन छिनाय समुझु मन बौरा हो ॥
गर्व गहेली गर्वते मन बौरा हो ।
उलटि चली मुसुकाय समुझु मन बौरा हो ॥

पूर्ण चन्द्र के समान मुख वाली, मृग नेत्र के समान विशाल चञ्चल नेत्र वाली होकर मोहने के लिये ललाट के बुन्दका (गोल तिलक) को उघार दिया है, सो समझो, इसे भी मिथ्या जानो । क्योंकि सत्य सुन्दरादि समुझी गई माया ने यति सती आदि सबको मोहित किया है और करती है । गज की गति के समान उसकी मन्द चाल है, धीरे से पास में आकर मोहित करती है, सो समझो । समझने के बिना ही माया ने नारदजी के मुख को वानराकृति से माँड़ि (भूषित युक्त) करके (हरन करके) उनके वसन (बाह्य परदा, प्रतिष्ठा) को छिनाय लिया, (नग्न निर्लज्ज बनाय दिया), सो समझो और सौन्दर्य के गर्व को गहेली (गहने वाली) माया गर्व से मुसुकाती हुई नारदजी के तरफ से उलट चली; सो समझो कि उस समय नारदजी की कैसी दशा हुई होगी ।

शिव सन ब्रह्मा दौड़ि के मन बौरा हो ।
दोनों पकरिन जाय समुझु मन बौरा हो ॥
फगुआ लीन्ह छिनाय के मन बौरा हो ।
बहुरि दियो छिटिकाय समुझि मन बौरा हो ॥
अनहद ध्वनि बाजा बजै मन बौरा हो ।
श्रवण सुनत भौ चाव समुझु मन बौरा हो ॥

खेलनिहारा खेलिहैं मन बौरा हो।
बहुरि न ऐसो दाव समुझु मन बौरा हो॥

इस माया ने शिवजी ऐसे योगी और ब्रह्माजी ऐसे विद्वान् को पार्वती आदि रूपसे उनके पास में जाकर उन्हें पकड़ लिया और समाधि विद्या का आनन्दरूप फगुआ छिनाय लिया, तुच्छ सुख द्वारा सत्य सुख से विमुख किया, फिर उस तुच्छ से भी छिटकाय (पृथक् कर) दिया, सो समझो। इस माया के चाँचर खेल में ही अनहद की ध्वनिरूप बाजा बजते हैं कि जिसको श्रवण (कान) से सुनते ही साधारण नादाभ्यासी को अधिक अनहद को सुनने की चाव (इच्छा) हुई और होती है। [illegible]का वर्णन हो चुका है कि अनहद अनुभव की करि आशा) (रमैनी १६) इत्यादि, सो समझो। इस माया के खेल में कोई विरल विवेकी खिलाड़ी इस माया के साथ सावधानी से खेलेंगे, अनहदादि किसी भी शब्दात्मक नाम और रूप में सत्यादि बुद्धि से नहीं भूलेंगे कि जिन्होंने समझ लिया है कि आत्मज्ञानादि के लिये फिर ऐसा दाव शीघ्र नहीं मिलता है, सो तुम भी समझो।

ज्ञान ढाल आगे दियो मन बौरा हो।
टारे टरत न पाँव समुझु मन बौरा हो॥
खेलनिहारा खेलहीं मन बौरा हो।
जैसी वाकी दाव समुझु मन बौरा हो॥
सुर नर मुनि और देवता मन बौरा हो।
गोरख दत्ता व्यास समुझु मन बौरा हो॥
सनक सनन्दन हारिया मन बौरा हो।
औरकि केतिक बात समुझु मन बौरा हो॥

उक्त रीति से समझने वालों ने माया के घात से बचने के लिये विवेक ज्ञानरूप ढाल को आगे दिया (किया) है, सदा विवेक दृष्टि को सामने रखते हैं। अतः यदि माया उनके पाँव को टारती (हटाती) है, तो भी उसके टारने से इनका पाँव नहीं टरता है। अर्थात् ज्ञानभूमि से विवेकियों के इन्द्रिय मन बुद्धि

विचलित नहीं होते हैं, सो समझो। जबतक ऐसा समझे बिना जो खेलने वाले खेलते हैं, सो जैसी उस माया की ही दाव हो, वही विजय पावे, इस प्रकार से खेलते हैं, सो समझो और ऐसा खेल काल में सुर (देव) तुल्य मनुष्य, मुनि, देवगण, गोरख (योगी) दत्तात्रेय और व्यास तथा सनक सनन्दन भी माया से हार गये तो अन्य साधारण मनुष्यादि की बात ही कितनी (क्या) कहनी है।

छिलकत थोंथे प्रेम के मन बौरा हो।
धरि पिचकारी गात समुझु मन बौरा हो॥
कै लीयो वशि आपने मन बौरा हो।
फिरि फिरि चितवत जात समुझु मन बौरा हो॥
ज्ञान गाड़ लै रोपिया मन बौरा हो।
त्रिगुण दियो है साथ समुझु मन बौरा हो॥
शिव सन ब्रह्मा लेन कह्यो मन बौरा हो।
औरकि केतिक बात समुझु मन बौरा हो॥

समझे बिना वह माया थोंथे (मिथ्या नकली) प्रेम की पिचकारी को मानो हाथ में धरकर दर्शनादिरूप रागरूप रंग को देह मन बुद्धि पर छिलकती डारती है और इस प्रकार सबको अपने वश में कर लिया है और फिर-फिर कर देखती जाती है, बार-बार लौटकर वश में करती है और सबके विवेक ज्ञान को मोहरूप गाड़ (खाई) में रोपा (गाड़ा) है। तथा त्रिगुण विषयादि के ज्ञानरूप गाड़ में सबको रोपा (खड़ा किया) है और बन्धन के लिये विषयों के ज्ञान, काम, लोभादि त्रिगुण को सबके साथ में लगा दिया है, सो समझो और उस साथवर्ती त्रिगुण के द्वारा ही शिव ऐसे और ब्रह्मा ऐसे को भी वश में लेने के लिये उनसे वचन कहा है (प्रतिज्ञा की है) फिर अन्य की तो बात ही क्या है ?

एक ओर सुर नर मुनी मन बौरा हो।
एक अकेली आप समुझु मन बौरा॥

दृष्टि परे छाड़ै नहीं मन बौरा हो।
कै लियो एक धाप समुझु मन बौरा हो॥
जेते थे तेते लियो मन बौरा हो।
घूँघुट माँहिं समोय समुझु मन बौरा हो॥
कज्जल वाके रेखवा मन बौरा हो।
अदग गया नहिं कोय समुझु मन बौरा हो॥

इस मायाकृत चाँचर में एक ओर (तरफ) सुर नर मुनि आदि सब हैं और एक तरफ वह अपराजितरूप से आप है, सो समझो। क्योंकि उसे सबको जीतने के लिये दृष्टिबाण से अन्य अस्त्र शस्त्र की आवश्यकता नहीं होती है। अतः उसकी दृष्टि पड़ जाने मात्र से वह वश में किये बिना स्वतन्त्र किसी को नहीं छोड़ती है। सबको एक धाप (फलान) में वश कर लिया है, सो समझो और उसके संग दृष्टि आदि से बचो। क्योंकि उसके सन्मुख जितने थे (हुए) उन सबको वह घूँघुट (घूघ=आवरण) मोह में समोय (डाल) लिया सो समझो। उसके रेख (आकार) भी कज्जलरूप (काला) है (तामस है) अतः उसके सङ्गी कोई अदग (दाग, कलङ्क, अपयश रहित) नहीं गया सो समझो।

इन्द्र कृष्ण द्वारे खड़े मन बौरा हो।
लोचन ललचि नचाय समुझु मन बौरा हो॥
कहहिं कबिर ते ऊबरे मन बौरा हो।
जाहि न मोह समाय समुझु मन बौरा हो॥२॥

इति श्रीसद्गुरुकबीरकृते विविधबन्धबीजविध्वंसने
बीजकनाम्नि ग्रन्थे मोहविध्वंसनं चाँचराख्यं
सप्तमं प्रकरणं समाप्तम्॥७॥

मोह की अवस्था में इन्द्रादिक देव और कृष्णचन्द्र भी उस माया के द्वार पर खड़े रहते हैं। उसकी प्रसन्नता चाहते हैं और लोचन (नेत्र) से देखने के लिये लालच (लोभ) करते हैं। एकबार देखने पर बार-बार उसका दर्शन चाहते

हैं। उसकी वासना से अपने अधिकार तक बार-बार माया का दर्शन करते हैं, सो समझो और उसकी वासना मोहादि के निवारण के लिये यत्न करो। कबीर साहब कहते हैं कि वही प्राणी माया गुणकृत बन्धनादि से उबरते (मुक्त) होते हैं, कि जिनमें मोह नहीं समाता (प्रविष्ट होता) है।

सद्गुरु ज्ञान विचार बिनु, माया मोहत लोय।
जो त्यागत नित मोह मद, सो विमुक्त नर होय ॥ ६ ॥
हनूमान हरि भजन बिनु, जग का मोह न जाय।
मोह गये बिनु जीव जग, फिरि-फिरि भटका खाय ॥ ७ ॥
हरि गुरु भक्ति विचार करि, नेह मोह करि दूर।
जो निर्भय विचरहिं सदा, सो पावहिं पद पूर ॥ ८ ॥

इति श्रीमत्स्वामिहनुमद्दासषट्शास्त्रिविरचित बीजक-
सारबोधिनी टीका सप्तम चाँचर प्रकरण ॥७॥



❀ ओम् राम ❀

* श्रीसद्गुरु कबीर साहब कृत बीजक *

बीजकसारबोधिनी टीका सहित

अथ

अष्टम चौंतीसी प्रकरण

इस प्रकरण में ओंकारार्थ की अति दुर्ज्ञेयता के वर्णनपूर्वक संक्षिप्त आत्मज्ञान के साधन सहित आत्मज्ञान का वर्णन है। तहाँ श्रुति के अनुसार ओंकार के अ, उ, म् अक्षर के क्रम से विश्व-विराट, तैजस-हिरण्यगर्भ, प्राज्ञ-ईश्वर अर्थ होते हैं। जो कि स्थूल, सूक्ष्म, कारणरूप शरीर वाले जीव और परमात्मा के औपाधिक भेद वाले स्वरूप कहे जाते हैं और सब (तीनों) मात्रा (अक्षर) के समूहरूप ओम् पद से बोध्य निर्गुण ब्रह्म सब मात्रा (ओम् पद) का लक्ष्य है, सो अमात्र (मात्राओं का अवाच्य) है। व्याकरण योगादि ग्रन्थों में अ, उ, म् तीनों से अन्य चतुर्थ अर्ध मात्रा भी ओंकार में मानी गयी है और उसको—

"अर्धमात्रा स्थिता नित्या याऽनुचार्या विशेषतः"

इस स्मृति के अनुसार नित्य और विशेषरूप से उच्चारण के अयोग्य मानते हैं। वह तीनों वर्णों के उच्चारण से पदरूप से व्यक्त होता है, उसको पदस्फोट भी कहते हैं। क्योंकि उसीसे अर्थ स्फुट (ज्ञात) होता है और ओंकर के उच्चारण की आवाज (ध्वनि) को ओंकार का अङ्गरूप नाद कहते हैं। नाद की समाप्ति को बिन्दु (शून्य) कहते हैं और—

"अकारः कथितो ब्रह्मा उकारो विष्णुरुच्यते।

मकारश्च स्मृतो रुद्रस्त्रयश्चैते गुणाः स्मृताः॥" (स्क०पु०खं०१-२ अ०४)

अकारादि ब्रह्मा आदि के वाचक हैं, यह इस वचन से सिद्ध होता है और वाच्य वाचक में अभेद दृष्टि से ओंकार और उसके मात्रा विश्वादिस्वरूप, ब्रह्मा आदि स्वरूप और सगुण, निर्गुण ब्रह्म सर्वादिस्वरूप हैं, इत्यादि आशय से कबीर साहब कहते हैं कि—

अथ ओंकारार्थ प्रदर्शन प्रकरण १

चौंतीसी १

ओ अंकार आदि जो जानै । लिखि के मेटे ताहि सो मानै ॥
ओ अंकार कहै सब कोई । जिन यह लखा सो बिरले होई ॥१॥

सर्व आदि ओंकार अज, सगुण अगुण सब रूप ।
ताको लखत विवेकि जन, मंगल सत्य स्वरूप ॥ १ ॥
सर्व आदि ओंकार विभु, यों जानत बहु लोग ।
लखत निजातम रूप तिहि, सो विवेकि गत रोग ॥ २ ॥
मानस रोग विमोह युत, विगत विवेक विमूढ़ ।
लिखि मेटत तिहि मानते, तत ओंकार निगूढ़ ॥ ३ ॥

ओंकार को गुरुशास्त्र से सुनकर सब नामरूप के आदि (कारण) स्वरूप जो जानते हैं, सो भी मोह अविवेक के कारण जिस लिपि को लिखकर मेट देते हैं, उसी को ओंकार मानते हैं । अतः सर्वात्मा ईश्वर स्वरूप ओंकार को जानना तो दूर रहा, वाचक शब्द को भी नहीं समझ पाते हैं । अक्षर के अनुकरणरूप स्याही आदिजन्य लिपि में ओंकार बुद्धि करके उसके ध्यानादि करते हैं । अतः ओंकार को कहते (उच्चारते) सब कोई हैं, परन्तु जिन लोगों ने ओंकार को यह निजात्म स्वरूप चेतन सर्वात्मा समझा सो विरल विवेकी होते हैं (मोह रहित होते हैं) ॥ १ ॥

चौंतीसी २

कक्का कमल किरण महँ पावै । शशि विकसित सम्पुट महँ आवै ॥
तहाँ कुसुम्भ रंग जो पावै । अगह गही के गगन रहावै ॥२॥

स्वयं प्रकाश चिदात्म विभु, चिदाकाश ओंकार ।
सो प्रसन्न निज हृदय में, जानीय विगत विकार ॥ ४ ॥
मन बुधि वेग मिटाय के, राखु हृदय में ज्ञेय ।
तहाँ कुसुम रंग पाय के, पाव परम पद सोय ॥ ५ ॥

उक्त सर्वादि ओंकार का ज्ञान सब जिज्ञासु को एक ही समय से नहीं होता है । किसी उत्तम जिज्ञासु को श्रवण विचार सत्सङ्ग मात्र से ज्ञान होता

है। किसी को श्रवण के बाद ध्यानादि से ज्ञान होता है। तहाँ ध्यानादि करने वाले के लिये कहते हैं कि प्रथम बाह्य चिन्तादि को त्यागकर, हृदयकमल को प्रसन्न स्वच्छ करे, कि जिससे हृदय कमल पूर्ण चन्द्र के समान विकसित रहे। फिर कक्का (स्वयं प्रकाश सुखात्मा सूर्य) का ध्यान चिन्तन करे, तो कक्का का किरण (प्रकाश) जब शशि तुल्य विकसित कमल के सम्पुट (मध्य) में आवे (व्यक्त प्राप्त हो) तब कमल सम्पुट में ही उस किरण को प्राप्त करे (समझे) और यदि वहाँ कुसुम रंगादि पावे (उनकी प्रतीति हो) तो उन सबको त्यागकर रूपादि रहित इन्द्रियादि से अग्राह्य निर्गुण ब्रह्मात्मा को शुद्ध बुद्धि से ग्रहण करके गगन (हृदयाकाश) में स्थिर रहे। वह निर्गुण ब्रह्मात्मा ही ओंकारार्थरूप ओंकार है।

"ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानम्।" (मुण्डक० २।२।६)

ओम् (सर्वरक्षक प्रकाशाधार) इसरूप से आत्मा का ध्यान करो, इत्यादि श्रुति स्मृति में यह स्पष्ट है ॥ २ ॥

चौंतीसी ३

खक्खा चाहै खोरि मनावै। खसमहिं छोड़ि दशहुँ दिशि धावै॥
खसमहिं छोड़ि क्षमा ह्वै रहई। ह्वै न छीण अक्षय पद लहई॥३॥

चिदाकाश सुख जो चहै, मन प्रसन्न करि सोय।
क्षमा शील युत स्ववश ह्वै, लहै अछय पद कोय॥ ६॥

जो कोई खक्खा (चिदाकाशरूप सुख स्वर्ग) प्राप्त करना चाहे तो खोरियों (दोषों) को मनावे। भक्ति आदि द्वारा ईश्वर से क्षमा करावे (दुष्ट मन इन्द्रियों को शम दम द्वारा मनावे शान्त दान्त करे) और स्वाभिक के गर्व को, असत् कल्पित खसम (स्वामी) को छोड़कर (एकदेशी वस्तु की चिन्ता को त्यागकर) सत् पति की प्राप्ति के लिये दशो दिशा में धावा करे। "आसीनो दूरं व्रजति।" (कठ० १।२।२१) स्थिर रहते दूरगामी स्वरूप को समझे और विभु निजात्मा के ज्ञान से अनात्म स्वरूप खसमों को त्यागकर अपराधियों के प्रति भी जो क्षमाशील होकर रहता है, सो कभी क्षीण (नष्ट) नहीं होता है और अक्षयपद (मोक्ष) को प्राप्त करता है। क्योंकि—"कं ब्रह्म खं ब्रह्म।" (छा० ४।१०।५) क (सुख) स्वरूप, ख (आकाश) तुल्य विभु ब्रह्म है, सो सर्वात्मा है। उसका ज्ञान मोक्ष का साधन है। तथापि— "नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः।
नाशान्तमानसो वाऽपि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्॥" (कठ० १।२।२३)

दुश्चरित्र, अशान्त, असमाहित कामी उसका अनुभव न हीं कर सकता है, अतः शमादि युक्त शान्त समाहित रहना चाहिये ॥ ३ ॥

चौंतीसी ४

गग्गा गुरु के वचने माने। दूसर शब्द करे नहिं काने।
तहाँ विहङ्गम कबहुँ न जाई। औगह गहिके गगन रहाई ॥४॥

सद्गुरु वचन प्रतीति करि, तजै अन्य की आश।
ताके देव सहाय सब, चिदाकाश कर बास ॥ ७ ॥

शंका हो कि ब्रह्मात्मा से अन्य खसम (देवादि) को छोड़ने पर (उनकी पूजा आदि नहीं करने पर) देव सब ज्ञान ध्यान मोक्ष में विघ्न करेंगे, तो इसका समाधान कहा गया है कि गग्गा (गणेश विघ्नेश) गुरु के वचनों (सदुपदेशों मन्त्रों) को ही जो माने, उपदेश के अनुसार ध्यान विचाराचारादि करे और दूसर कामकथा आदिरूप शब्दों को कान नहीं करे(नहीं सुने उसके तरफ ध्यान नहीं दे) तो तहाँ (उस गुरुभक्त के पास में) विहङ्गम (पक्षी तुल्य आकाशगामी विघ्नकर्ता देवादि) कभी नहीं जाते हैं। अतः वह गुरुभक्त औगह (अगाध, इन्द्रियों से अग्राह्य) ब्रह्मात्मा को समझकर, हृदयाकाश में स्थिर रहता है। चिदाकाश में लीन होता है। अर्थात्—

"ऐषां तन्न प्रियं यदेतन्मनुष्या विदुः।" (बृ० १।४।१०)
"इन्द्रिय सुरन न ज्ञान सुहाई।" (तु० रा० उ०)

इन देवताओं को यह प्रिय नहीं है कि मनुष्य इस ब्रह्म को जानें। इत्यादि वर्णित देव अप्रियता आदि हरिगुरु भक्ति रहित अज्ञ के लिये है। क्योंकि— "य एवं वेदाहं ब्रह्मास्मीति स इदं सर्वं भवति तस्य न देवाश्च नाभूत्या ईशते।" (बृ० १।४।१०) सर्वात्मदर्शी की अभूति (विघ्नादि) के लिये देव असमर्थ होते हैं ॥४॥

इति ओंकारार्थ प्रदर्शन प्रकरण १

अथ देह विषयप्रदर्शन प्रकरण २

चौंतीसी ५

घघ्घा घट विनशे घट होई । घट ही में घट राखु समोई ॥
जो घट घटै घटे फिरि आवै । घटही में फिरि घटहिं समावै ॥५॥

गुरु ज्ञान विश्वास बिनु, घट घन वद बहु देह ।
उपजत विनशत देत दुख, मिलत न मुक्ति विदेह ॥ ८ ॥

गुरु भक्ति आदि के बिना ज्ञान की अप्राप्ति से घघ्घा (मेघ, मृद्घट) तुल्य मलिन यह देहरूप घट प्रारब्ध के अन्त में विनष्ट होता है । परन्तु फिर बार-बार मलिन देहरूप घट होता ही रहता है और वह देहरूप घट ही माता के गर्भरूप घट में समाय कर जीव को रखता है । ऐसे गर्भ वासा दि के हेतु घट (देह) में जो घटै (घटता आसक्त होता) है । देह मात्र के लिये चेष्टा करता है, सो अविवेकी फिर घट में ही आता है । फिर घटरूप घटाभिमानी होकर घट में समाता है । अतः गुरुभक्ति आदि द्वारा देहाभिमानादि को और सूक्ष्म स्थूल देह को कारण देह में समाना (लय करना) चाहिये । इन सबको अविद्या (अज्ञान) रूप समझना चाहिये, कि जिससे विदेह मुक्ति मिले । क्योंकि—

"शरीरपोषणार्थी सन्नात्मनं यो दिदृक्षति ।
ग्राहं दारुधिया धृत्वा नदीं तर्तुं स वाञ्छति ॥" (विवेक चू०)

शरीरासक्त तितिक्षा शमादि रहित होकर भी जो आत्मदर्शन चाहता है, सो मानो ग्राह को काष्ठ बुद्धि से पकड़कर नदी तरना चाहता है ॥५॥

चौंतीसी ६

ङङ्ङा निरखत निशिदिन जाई । निरखत नयन रहा रतनाई ॥
निमिष एक जो निरखै पावै । ताहि निमिष में नयन छिपावै ॥६॥

घटासक्ति से विषय बन, निरखत में दिन रात ।
जाते हैं ताते सकल, ज्ञान विवेक नशात ॥९॥

देहासक्ति से ङङ्ङा (भयानक विषयादि) के निरखते (देखते, विचारते) में ही रात दिन जाते हैं और उन्हें देखने में नेत्र रत्न तुल्य पल निमेष रहित तथा

लाल होकर विषयों में लगे रहते हैं और विषयों का स्वभाव है कि जो कोई मन्द विवेकी उन्हें एक पलमात्र भी निरखने (देखने) पाता है, तो उतने ही काल में वे विषय उसके विवेक नेत्र को छिपा देते (नष्ट करते) हैं। अतः मुमुक्षु जिज्ञासु विषय संग दर्शनादि को दूर से त्यागे। क्योंकि—

"विषं विषयवैषम्यं न विषं विषमुच्यते।
जन्मान्तरघ्ना विषया एकदेहहरं विषम् ॥१॥" (योग वा०)

विषयजन्य या विषयरूप वैषम्य (अनार्जव, क्रूरता) विषरूप है। लौकिक विष उसके समान विष नहीं कहा जाता है। क्योंकि वासनादि के द्वारा विषय जन्मान्तर में भी नष्ट करते हैं और विष एक देहमात्र को नष्ट करता है ॥ ६ ॥

चौंतीसी ७

चचा चित्र रच्यो बहु भारी। चित्रहिं छाड़ि चेतु चित्रकारी ॥
जिन यह चित्र विचित्र उखेला। चित्र छाड़ि तैं चेतु चितेला ॥७॥

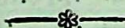
विषयी के धन चित्त को, हरण हेतु बड़ चोर।
रचा चित्र जगदीश तिहि, लखिय चोर करि भोर ॥ १० ॥

बहुत भारी चचा (चोर मोहजनक) चित्ररूप शरीरादि को चित्रकार ईश्वर ने माया से रचा है। तहाँ चित्र को मिथ्या माया दृष्टि से त्यागकर सत्य चित्रकार को चेतो (समझो) और जिस चित्रकार ने विचित्र (अद्भुत) मन से भी अचिन्त्य चित्र को अनायास ही उखेला (उल्लेख किया, खेल तुल्य रचा) है, सब चित्रों को छोड़कर उसी चितेला (चितेरा) चित्रकार को समझो तो तुम वही चितेरा हो। क्योंकि—

"अतत्त्वे तत्त्वभावेन जीवो देहावृतः स्थितः।
निर्देहो भवति श्रीमान् सुखी तत्त्वैकभावनात् ॥" (योग वा० ६।१।८२।२१)

मिथ्या देहादि में सत्यता आदि की भावना से जीव देह से आवृत्त होकर स्थिर है और एक सत्यात्मा की भावना से श्रीमान् (ज्ञानी) सुखी मुक्त होता है ॥७॥

इति देह विषय प्रदर्शन प्रकरण २



अथ निर्मलात्मज्ञानोपाय प्रदर्शन प्रकरण ३

चौंतीसी ८

छछ्छा आहिं छत्रपति पासा। छकि क्यों न रहसि मेटि सब आशा॥
मैं तोही छिन-छिन समुझाया। खसम छोड़ि कस आपु बँधाया॥८॥

निर्मल चित्रकार प्रभु, बसत सदा सब पास।
ताके ज्ञान विवेक बिनु, जीव बँधत यम फाँस॥ ११ ॥

वह चित्रकाररूप छछ्छा (निर्मल) छत्रपति (राजा क्षेत्रज्ञ) अत्यन्त पास में आहिं (है) उसके ज्ञान ध्यानादि से सब आशाओं को मेट (नष्ट) करके छकि (तृप्त हो) कर क्यों नहीं रहते हो। इस तृप्ति के ही लिये मैं (सद्गुरु) ने तुझे क्षण-क्षण में समझाया है। तो भी तुम सर्वात्मा खसम को छोड़कर आप कैसे बँधाये हो, सो समझो। अर्थात् अज्ञान जन्य आशा से बँधे हो, ज्ञान से आशा रहित मुक्त होवो।

"आशा नित्यं महद्दुःखं संसाराख्यं च कारणम्।
तत्त्यागेन विना सर्वं निष्फलं कर्म पौरुषम्॥ १ ॥ इत्यादि॥८॥

चौंतीसी ९

जज्झा ई तन जियतहिं जारो। यौवन जारि युक्ति तन पारो॥
जो कछु जानि जानि पर जरै। घटहिं ज्योति उजियारी करै॥९॥

करि विवेक तजि आश सब, निर्मल लहि निज रूप।
जीती मन कामादि खल, पाइय जोति अनूप॥ १२ ॥

जज्झा (शीघ्र मन कामादि के विजयी) होकर आशा के त्यागपूर्वक इस शरीर को उक्त निर्मलात्मा के ज्ञानाग्नि से जीवतावस्था में ही जलाओ (देहाभिमान को छोड़कर भी इसको मिथ्या माया मात्र समझो) और विराग असंसक्ति आदिरूप युक्ति से यौवन मद को जरा कर ही विवेक विचारादिरूप युक्ति से पाँच कोशात्मक तीन तन (देह) से पार होवो (शुद्ध साक्षी स्वरूप को समझो) इस प्रकार जो कछु (जानि-जानि) हुई इन्द्रियादि के विषय अनात्म वस्तु हैं, सो सब जब ज्ञानाग्नि से परजरते (मिथ्या निश्चित=नष्ट होते) हैं,

तब घट में ही परतत्त्वरूप ज्योति का उजियार (प्रकाश) करते हैं (अनात्मा के बाध से बाधावधि स्वयं ज्ञान स्वरूप आत्मा ही अवशिष्ट स्वरूप से भासता है)

"अनात्मनि हि देहादौ बाधिते ज्ञानतः स्वयम् ।
प्रकाशते जगज्ज्योतिः सच्चिदानन्दलक्षणम् ॥१॥" ॥९॥

चौंतीसी १०

झझ्झा अरुझ सरुझ कित जाना । हींढ़त ढूँढ़त जात पराना ॥
कोटि सुमेरु ढूढ़ि फिरि आवै । जो गढ़ गढ़ा गढ़हिं सो पावै॥१०॥

मन जीते बिनु विश्व में, जो जन रह अरुझाय ।
सो कहँ पावै ज्ञानधन, विलपत जन्म गमाय ॥ १३ ॥

मन आदि को नहीं जीतने से यदि यहाँ संसार गृहादिरूप झझ्झा (नेपथ्य विनश्वर शब्दादि) में अरुझे (फँसे, आसक्त) हो, इस मनुष्य तन में अरुझ का निवारणरूप सरुझ नहीं करते हो, तो तुमने सरुझ (संसार झंझट से छुटकारा) कित (कहाँ किस प्रकार) जाना (समझा) है । यहाँ ही सरुझ हो सकता है, सो समझो और सरुझो । यदि इस देह में सरुझ (विवेकादि) नहीं हुआ, तो किसी अनात्म वस्तु मिथ्या सुख साधनादि को हींढ़ते ढूँढ़ते (शोचते खोजते) में व्यर्थ ही प्राण जाता है । या विवेकादि के बिना खोजते खोजते में सत्य वस्तु से पराना (पराया=भागा) जाता है, उसको कहीं कुछ मिलता नहीं है। क्योंकि स्वर्ग सुखादि के खोज में करोड़ों सुमेरुओं पर जाकर और वहाँ सत्य सुखादि को ढूँढ़कर, फिर जब मानव तनु में जीव किसी शुभ कर्मादि वश आता है। तब जो इस संसार शरीररूप गढ़ को अपनी शक्ति से गढ़ा (रचा) है, उस सर्वात्मा को इस शरीररूप गढ़ में ही वह विचारादि द्वारा मन आदि को जीतने ही पर पाता है, अन्यत्र अन्यथा नहीं । अतः यहाँ ही मन आदि के विजय द्वारा आत्मा ज्ञातव्य है । क्योंकि—

"इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।" (केन० २।५)
"जीवतो यस्य कैवल्यं विदेहोऽपि स केवलः।"

इस देह में यदि सत्यात्मा को समझा तो सत्य है । नहीं तो महाविनाश है । जिसको जीते में मोहादि के अभावरूप कैवल्य है, विदेहावस्था में भी वह केवल (मुक्त) है ॥ १० ॥

चौतीसी ११

ञ्ञा निग्रह से करु नेहू, करु निरुआर छाडु संदेहू।
नहिं देखै नहिं भाजै केहू, जानहु परम सयानप येहू॥
नहिं देखै नहिं आपु भजाऊ, जहाँ नहीं तहँ तन मन लाऊ।
जहाँ नहीं तहँ सब कछु जानी, जहाँ नहीं तहँ लै पहिचानी।११।

मोह त्याग के यत्न करि, करि मन इन्द्रि निरोध।
करि विवेक तजि विश्व को, लहिय अचल निज बोध॥११॥

हे ञञा ! (मोह से सोनेवाले शब्दों को गाने वाले) शब्दादिरूप झझा (संसार विषय) से मन इन्द्रिय के निग्रह (निरोध) में नेह (प्रेम) करो। अथवा हे मुमुक्षुओं ! ञञा (मोह से शयन और शब्दादि विषय) के निग्रह से प्रेम करो। आत्मानात्मादि का निरुआर (विवेक विचारादि) करो। और विवेक करके संशय को त्यागो। फिर विविक्त आत्मनिष्ठ मन जब किसी अनात्मा को सत्य प्रिय आदिरूप नहीं देखै, न केहूँ (किसी तरफ किसी वस्तु) में भाजै (भगै) तब यह परम सयानप (ज्ञानित्व, चतुराई, पाण्डित्य) जानो। ऐसा ही ज्ञानी किसी अनात्मवस्तु को सत्य सुखादिरूप नहीं देखता है, उनमें स्नेह नहीं करता है। न अपने स्वरूप से भजता (भागता पृथक् होता) है। और जहाँ संसार संग द्वन्द्वादि नहीं है, तहाँ अपने तन मन को लगाता है, तन मन से उसीकी सेवा भक्ति अनुभूति करता है और जहाँ सत्य कोई संसार नहीं है उसीमें सब संसार को कल्पित जानकर तथा सत्य सुख शान्ति मुक्ति सबको जानकर, जहाँ नहीं है, उसी को गुरु शास्त्रादि द्वारा समझकर उसे प्रत्यक्ष पहचान लेता है, अतः मुक्त होता है। तुम्हें भी यह कर्तव्य है।

"दृश्यं नास्तीति बोधेन मनसो दृश्यमार्जनम्।
सम्पन्नं चेत्तदुत्पन्ना परा निर्वाणनिर्वृतिः॥
(योगवा० प्र० १।३।५)

दृश्य मिथ्या है इस ज्ञान से यदि मन से दृश्य का मार्जन सिद्ध हुआ, तो उत्तम मोक्ष सुख सिद्ध हो गया है॥११॥

इति निर्मलात्मज्ञानोपायप्रदर्शन प्रकरण ३



अथ मनः प्रपञ्च प्रदर्शन प्रकरण ४

चौंतीसी १२

टट्टा बिकट बाट मन माहीं, खोलि कपाट महल ते जाहीं।
रहि लटपटी जुटा तन माहीं, होहिं अटल ते कतहुं न जाहीं।१२।

अनिरुद्ध मन में विकट, पन्थ विषय गति हेतु।
कामादिक ताते नहीं, लहत मुक्ति पथ सेतु ॥१५॥

विषयों से अनिरुद्ध मन में टट्टा (ध्वनि आदि) को पहुँचने के लिये मन में ही काम स्नेहादिरूप विकट बाट है, कि जिससे मन के भीतर शरीर में रहते भी, ते (वे ध्वनि शब्दादि विषय, इन्द्रिय द्वार के कपाट को खोलकर मनके महलरूप हृदय में ही काम लोभादि द्वारा पहुँच जाते हैं और शरीर में ही वासना इच्छारूप से मन के साथ लटपट होकर (मिलकर) और जुटे (वर्तमान लगे) रहकर, पूर्ण विवेकादि के बिना अटल हो जाते हैं, कभी कहीं नहीं जाते हैं, मन को घेरे रहते हैं।

तथा मन में बाहर के टट्टा में जाने के लिये विकट मार्ग है। कपाट को खोलकर उस मार्ग द्वारा महल ते (शरीर से) बाहर वृत्ति द्वारा जाता है, तब बाहर के विषयादिमें फँसकर तन पोषणादि में जुटा (लगा हुआ) वहां ही अटल हो जाता है, सत्सङ्ग विचार ज्ञान ध्यान मार्ग में कहीं नहीं जाता है, अतः जीव कष्ट पाता है। इसलिये मनके विकट मार्गों के निरोध द्वारा मनका निरोध हो सकता है, सो मार्ग ज्ञातव्य और निरोधव्य है इत्यादि ॥१२॥

चौंतीसी १३

ठठा ठौर दूर ठग नियरे, नित के निठुर कीन्ह मन घियरे।
जे ठग ठगु सब लोग सयाना, सो ठग चीन्हि ठौर पहिचाना।१३।

अज्ञ मूढ जन संग से, सत्य ठाम अति दूर।
कामादिक ठग निकट अति, करते सो मन क्रूर ॥१६॥
जो ठग ठग सब चतुर को, ताहि चीन्ह जो कोय।
सो पावै सत ठौर को, कामादिक सब खोय ॥१७॥

मनःके विकट पन्थादि के ज्ञान और निरोध के बिना ठठ्ठा (जन संघ) से सत्य ठौर (ईश्वर, आत्मा, मोक्ष) दूर है और काम लोभादि ठग सदा नियरे

(पास में=हृदय में) रहते हैं। और सो कामादि नित के (सदा सङ्ग रहने के कारण सदा के लिये) मन को और धिय (बुद्धि) को धीरे धीरे निठुर (क्रूर= दया क्षमा रहित) कर दिये हैं। और क्रूर बना कर आर्जव, अहिंसा सत्यादिरूप धर्मों को, विवेकादि को ठगपन से हर लिये हैं। इस प्रकार जो ठग सब लौकिक सयाने (चतुरों) को भी ठगतें हैं। उन ठगों को ठग चीन्ह करके ही उनके त्यागपूर्वक विवेकियों ने सत्यात्मास्वरूप सर्वाधार निराधार राम ठौर को पहिचाना है। अतः कामादि को त्यागकर आत्मानुभव कर्तव्य है ॥१३॥

चौंतीसी १४

डड्डा डर उपजे डर होई, डरही में डर राखु समोई।
जो डर डरै डरै फिरि आवै, डरही में फिरि डरहि समावै ।१४।

सत्य ठौर के ज्ञान बिनु, ईशहु से भय होय।
भययुत को संसार में, ईशहु राखत भोय ॥१८॥
अभय होत जब संकल से, भय न देत पुनि काहु।
हर्ष शोक से रहित सो, अचल मुक्ति कर लाहु ॥१९॥

उक्त सत्य ठौर के ज्ञानादि के बिना डड्डा (प्रलय कर्त्ता शंकर, भयानक शब्दादि) से डर (भय) उत्पन्न होता है (राग द्वेष भेदभावादि भय के कारण उत्पन्न होते हैं) उनसे फिर डर होता है। अतः तुम अभय चाहो तो सब भय के हेतुओं को, भयों के भयरूप ईश्वर में समोय (लय कर) के रख दो (सब जगत को ईश्वराधीन ईश्वरमय जान कर भयको उत्पन्न नहीं होने दो) ऐसा नहीं करके जो डरके हेतु ईश्वर यमादि से डरता है, सो भेद बुद्धि वाला राग द्वेषादि युक्त होने के कारण फिर भी डर में (संसार में) आता है और फिर भी डर में ही डररूप होकर समाता है (बार बार संसारी होता है)। और अभय सत्त्वसंशुद्धि आदि दैवी सम्पत्ति से ज्ञानी मुक्त होता है। क्योंकि—

"न बिभेति परो यस्मान्न बिभेति पराश्च यः।
यश्च नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म सम्पद्यते स तु ॥"
(नारदीयपु० अ० ५९ ॥ ब्र० पु० अ० १०)

जिस समदर्शी से अन्य मनुष्य नहीं डरता है, न आप अन्य से डरता है, न राग द्वेष करता है, सो ब्रह्म रूपता को प्राप्त होता है ॥१४॥

इतिमनः प्रपञ्च प्रदर्शन प्रकरण ४

अथ अनात्मान्वेषणागम्यसंसार प्रकरण ५

चौंचीसी १५

ढद्दा ढूंढ़त है कत आना, हींढ़त ढूढ़त जात पराना।
कोटि सुमेरु ढूंढ़ि फिरि आवै, जो गढ़ गढ़ा गढ़हि सो पावै ॥१५

निर्गुण ब्रह्महि अन्य लखि, ढूंढ़त हौ कहँ नीत।
अभय होयं मन में लखो, आतम सब का मीत ॥२०॥

जो रचता सब चित्र गढ़, सो रह याके माँहि।
मोहादिकवश जीव को, मिलत सुनिर्गुण नाँहि ॥२१॥

उक्त भय से रहित होने के लिये ढढ्ढा (निर्गुण ब्रह्म) को तुम आना (अन्य, अन्यत्र) समझ कर कत (क्यों कहाँ) ढूँढ़ते हो। इस प्रकार हीढ़ते ढूंढ़ते में तो तेरे व्यर्थ प्राण जाते हैं। तथा उस निर्गुण ब्रह्म ठौर से दूर पराने (भागे) जाते हो। करोड़ो सुमेरु में निर्गुण ब्रह्म को ढूंढ़कर जो फिर इस मानव देह लोक में आता है और यहां अपने हृदय में विवेक विचारादि करता है तो जिस निर्गुण ब्रह्म ने अपनी माया से इस संसार शरीररूप गढ़ को गढ़ा है सो गढ़ ही में पाया जाता है (मिलता है) वही सबका पारमार्थिक स्वरूप है, सो ज्ञानादि से मिलता है बाहर खोजने से नहीं। और उसकी सत्ता प्रकाश से माया द्वारा संसार उत्पन्न होता है। अतः—"मनसैवानुद्रष्टव्यं नेह नानास्ति किञ्चन" (बृ० ४।४।१९) यह शुद्ध मन से ही जानने योग्य है और इसमें सत्य भेद कुछ नहीं है कि जो अन्यत्र खोजने से मिल सके ॥१५॥

चौंतीसी १६

णण्णा दुई बसाये गाऊँ। रे णण्णा टूटे तेरि नाऊँ॥
मूये एक जाय तजि घना। मुये इत्यादि कहौं कल गना ॥१६॥

अन्य को ढूँढ़ने में लगा हुआ णण्णा (निश्चित निर्णित ज्ञानरूप) जीव ने अपने नाम यश के लिये लोक परलोक दो ग्राम बसाये हैं। अर्थात् देहाभिमान अविवेक से देह के नामों को अपना नाम समझकर उस नाम की लोक में स्थिति के लिये संग संग्रहादि जीव करता है। तहाँ साहब कहतें हैं कि रे णण्णा! (जीव!) तेरा नाम टूट जाता है (नष्ट होता है) नाम के लिये तूं व्यर्थ ही

हैरान होता है। क्योंकि मरने पर तुम एकाकी यहाँ घना (बहुत) वस्तु को, यहाँ के नामरूप को त्याग कर जाते हो और आगे अन्य-अन्य नामरूप युक्त शरीरादि का ग्रहण करते हो, तो कौन तेरा नामरूप स्थिर रहता है और तेरे मुये इत्यादि (मरण जन्मादि) को कितना गिन कर मैं कहूँ, यह गिन कर कहा नहीं जा सकता है। अतः नामादि की इच्छा को त्यागकर नित्य निर्गुणात्मा को समझो ॥ १६ ॥

चौंतीसी १७

तत्ता अति त्रियो नहिं जाई । तन त्रिभुवन में राखु छिपाई ॥
जो तन त्रिभुवन माँह छिपावै । तत्त्वहिं मिलै तत्त्व सो पावै ॥१७॥

अगुण ब्रह्म निज बोध बिनु, जीव बसावत गाम ।
लोक द्वय निज नाम हित, नाम नशत सब ठाम ॥ २२ ॥
चाहत जो जग नाम निज, त्रिगुण तरत नहिं सोय ।
पाँच तत्त्व से मिलि रहै, त्रिभुवन के वश होय ॥ २३ ॥

दो ग्राम को नाम के लिये बसाने वाला तत्ता (जीव) अतित्रियो (त्रिगुण पर) स्वरूप में नहीं जाता है (त्रिगुणमय संसार का अतिक्रमण करके निर्गुण ब्रह्म में नहीं पहुँचता है) किन्तु त्रिगुणरूप देह के अभिमान से तन को ही त्रिभुवन में छिपाकर रखना चाहता है और जो कोई योगादि द्वारा तन को त्रिभुवन में छिपाकर रखना चाहता है, सो योगी भी पाँचतत्त्व में मिलता है, बार-बार तत्त्वरचित शरीर को पाता है। फिर अन्य की कथा क्या कहना है।

अथवा अति तत्ता (अत्यन्त चोर) त्रिगुण स्त्री आदि के वश में नहीं जाकर अपने तन मन आदि को तीन अवस्था में उन चोरों से छिपाकर रक्खो। इस प्रकार जो अपने तन मन को तीन अवस्था में छिपाता है सो चतुर्थ अवस्था में पहुँच कर तत्त्व को जीवनकाल में प्राप्त करता है। फिर शुद्ध जल में शुद्ध जल के समान तत्त्व स्वरूप में मिल जाता है (लीन होता है) यह श्रुति का सिद्धान्त है ॥ १७ ॥

चौंतीसी १८

थथ्था अथाह थाहि नहिं जाई । ई थिर ऊ थिर नाहिं रहाई ॥
थोरे-थोरे थिर हो भाई । बिनु थम्भे जस मंदिर थम्भाई॥१८॥

मन वश होत न कामि के, थिर न होत कहुँ सोय ।
करि विचार मन करिय थिर, सदभ्यास गहि कोय ॥ २४ ॥

त्रिगुणवशवर्ती अनन्त वासना युक्त थथ्था (पहाड़ जड़ मन) काम लोभादि से अथाह (अगम्य, असाध्य) हो जाता है । अतः थाहा नहीं जाता है, वश में नहीं होता है । अतः इस लोक या परलोक में कहीं स्थिर नहीं रहता है । अतः हे भाई ! लोकादि के इच्छा आदि को त्यागकर थोरे-थोरे (धीरे-धीरे) थिर होवो (मन को स्थिर करो) जैसे बीच में थम्भे (स्तम्भ) के विना खिलान पर देवमन्दिर को थम्भाया जाता है, तैसे विषयादि रहित निर्गुण ब्रह्म में मन को स्थिर करो । अथवा मनरूप थथ्था (सुमेरु पहाड़) से भवसागर थाहने योग्य नहीं है । जड़ मन से यह थाहा नहीं जा सकता है । न लोक परलोक थिर रहने वाली वस्तु है । अतः उनको मिथ्या जानकर धीरे-धीरे निराधार निर्गुण ब्रह्मनिष्ठ होवो ॥ १८ ॥

चौंतीसी १९

दद्दा देखहु विनशन हारा । जस देखहु तस करहु विचारा ।
दशहुँ द्वारे तारी लावै । तब दयाल को दर्शन पावै ॥१९॥

लोकादिक सब जगत को, नश्वर मेघ समान ।
लखि सब द्वार निरोध करि, दर्शन करु भगवान ॥ २५ ॥

मनो निरोध और कामादि की निवृत्ति के लिये इस प्रत्यक्ष संसार सम्पत्ति आदि को दद्दा (मेघ) तुल्य विनशनहार (विनश्वर) देखो (समझो) क्षणभंगुर जानो और जैसा प्रत्यक्ष वर्तमान को देखो, तैसा ही परोक्ष भूत भावी दूरस्थ संसार को विचारो (विचारादि से जानो) ऐसा जानकर जब जो कोई दशो द्वारों में निरोधरूप तारी (ताली) लावता (लगाता) है, मन, इन्द्रियों का निरोध द्वारों के निरोध द्वारा करता है, तभी वह दयालु सर्वात्माराम का दर्शन पाता है ।

"अङ्गुष्ठाभ्यामुभे श्रोत्रे तर्जनीभ्यां विलोचने ।
नासारन्ध्रे मध्यमास्यामन्याभिर्वदनं दृढम् ॥ १ ॥
बध्वाऽऽत्मप्राणमनसामेकत्वं समनुस्मरन् ।
धारयेन्मरुतं सम्यग् योगोऽयंयोगिदुर्लभः ॥ २ ॥"
(नारद पञ्चरात्र अ० ११।४।१५-१६)

अङ्गुष्ठों से कानों को, तर्जनी से नेत्रों को, मध्यमाङ्गुलियों से नाकों को अन्य अङ्गुलियों से मुख को बन्द करके आत्मा प्राण मन की एकता को स्मरण करता हुआ सिद्धासन पूर्वक प्राणायाम करे। यह साधारण योगियों को दुर्लभ योग है। यही दशो द्वार में तारी लगाना है ॥१९॥

इति अनात्मान्वेषणागम्य संसार प्रदर्शन प्रकरण ५

अथ जीव संसारादि प्रदर्शन प्रकरण ६

चौंतीसी २०

धध्धा अर्ध माँह अँधियारी, अर्द्धे ऊर्ध्वे लेहु विचारी ॥
अर्द्ध छाडि ऊर्ध्व मन लावै, आपा मेटि के प्रेम बढ़ावै।
चौथे वे नन्ना मँह जाई, राम के गदह होय खर खाई ॥२०॥

धन का गर्व जु अन्धतम, सकल लोक भुवि माँहि।
चौथ लोक धन प्रेम हूँ, परवश भोग दिलाँहि ॥२६॥

उक्त रीति से तारी आदि द्वारा ज्ञानादि के बिना अर्द्ध (अधोमध्य) इस लोक में धध्धा (धन, धनिकता का गर्व) तथा नेतृत्व बन्धु आदि का संग ये सब अंधियारी (अन्धकार=तम) स्वरूप हैं। इनके रहते सन्मार्ग सद्वस्तु नहीं दीखते हैं। और अधो मध्य लोक में जैसे विषयरूप धनादि अंधकाररूप हैं, तैसे ही ऊर्ध्व स्वर्ग लोक में भी अंधकाररूप हैं, सो विचार लो (समझलो) और उनकी कामना आदि को त्यागो। जो कोई ऐसा समझे बिना अर्द्ध के धनादि को छोड़कर ऊर्ध्व के धनादि में मन लगाता है (उसके लिये सकाम कर्मादि करता है) और यहाँ की आपा (ममता) को मेटकर, परलोकवासी सम्पत्ति देवादि में प्रेम बढ़ाता है, वहाँ के भोगों के लिये प्रेम विधिपूर्वक कर्मोपासनादि करता है सो चौथे (जन लोकादि) में जाता है। और वहाँ के नन्ना (नेता अधिकारी) के अधिकार में जाता है। और उस अधिकारीरूप राम के गदहा (भारवाही आज्ञाकारी) होकर खर (तृण) खाता है। अर्थात् कर्मोपासना के बल से कामी जीव यदि तीन लोक से परे जनादि नामक ब्रह्मलोक में भी जाता है, तो स्वोपार्जित कर्मादि फलों को ही परवश भोगता है। फिर निरन्तर गमनागमनादि के स्थानरूप स्वर्गादि की तो क्या ही क्या कहनी है। अतः

गमनागमनादि रहित होने के लिये दशों द्वारों में तारी लगा कर आत्मदर्शन ही कर्तव्य है। तारी लगाने से भूतों के ज्ञान पूर्वक आत्मज्ञान होता है।

"श्रुत्योरङ्गुष्ठकौ मध्याङ्गुल्यौ नासापुटद्वये।
सृक्किण्योः प्रान्तकोपान्त्याऽङ्गुलीशेषे दृगन्तयोः ॥१॥
न्यस्यान्तःस्थ पृथिव्यादि तत्त्वज्ञानं भवेत् क्रमात्।
पीतश्वेतारुणस्यामै र्विन्दुभिर्निरुपाधिखम् ॥२॥

कानों में अङ्गुष्ठों को, नासिका दोनों में मध्यमाङ्गुलियों को, सृक्किणी (मुख प्रान्तों) में कनिष्ठिका अनामिका को, शेष दो अङ्गुलियों को नेत्रान्त में लगाकर स्थित प्राणायामी को भीतर में रहनेवाले पृथिवी आदि तत्त्वों का ज्ञान पीतादि बिन्दुरूप से क्रमशः होता है और निरुपाधिरूप से आकाश चिदाकाश दीखता है। (स्कन्द पु०मा०कौ०ख० ११।६-७) ॥२०॥

चौंतीसी २१

नन्ना निरखत निशि दिन जाई, निरखत नैन रहा रतनाई।
निमिष एक जो निरखे पावै, ताहि निमिष में नयन छपावै ॥२१॥

धनवश बन्धुक प्रेमवश, निरखत तिहि दिन रात।
रहत विवेक विहीन अति, लहत सत्य नहिं बात ॥२७॥

धनादि के अभिलाषी को नन्ना (बन्धुओं) को देखते में दिन रात जाते हैं, इत्यादि डड्डा तुल्य अर्थ है। अथवा परम शुद्ध नन्ना (नेता) सर्वात्मा ईश्वर के निरखते (विचारते) आदि में जिसके दिन रात जाते (बीतते) हैं और निरखने (विचारने) में नयन (मन बुद्धि) मानो रत्न तुल्य हो रहे हैं। वह यदि एक निमिष भी प्रत्यक्षात्म स्वरूप से निरखने (देखने) पाता है, तो उसी निमेष मात्र में वह आत्म दृष्टि अनात्म दृष्टियों को छिपा देती है (मिथ्या भ्रम स्वरूप सिद्ध कर देती है) ॥२१॥

चौंतीसी २२

पप्पा पाप करे सब कोई, पाप करे कछु धर्म न होई ॥
पप्पा कहै सुनहु रे भाई, हमरे सेवे कछू न पाई ॥२२॥

विषय भोग रत लोभवश, करत पाप सब कोय।
पाप लोभ से धर्म नहिं, रह पापिहु कह सोय ॥२८॥

आत्मदृष्टि विवेकादि रहित बन्धु पोषणपरायण और स्वयं भी पप्पा (विषय रस को पीने वाले) कामान्ध सब कोई लोभवश अवश्य पाप करते हैं और लोभ स्वादादिवश पाप करने लगने पर उनसे कुछ भी धर्म नहीं होता है, मन में क्रूरता आदि के दृढ़ हो जाने से दया अहिंसा क्षमा सन्तोषादि करते उन्हें नहीं बनता है। दैवयोग से कोई धर्म (पुण्य) हो भी जाता है, तो (पापे खायां पुण्य) इस वक्ष्यमाण रीति से उस पुण्य को प्रबल पाप नष्ट कर देता है। नरक के द्वाररूप काम क्रोध और लोभ पुण्य को रहने नहीं देते हैं। अतः पूर्वजन्म के पप्पा (निषिद्ध भोगादिजन्य पाप फल भोक्ता) दीन जीव अपनी दशा दिखाकर मानो कहते हैं कि रे भाई ! मेरी सेवा से कुछ नहीं पावोगे। अर्थात् (लोभादि का सेवन दीनता दरिद्रता पापकर्ता पापभोक्ता का सेवनरूप होता है, उससे आगे सुख शान्ति भुक्ति मुक्ति कुछ नहीं मिलते हैं—

"अक्षरद्वयमभ्यस्तं नास्ति नास्तीति यत्पुरा।
तदिह देहि देहीति विपरीतमुपस्थितम् ॥१॥
बोधयन्ति च याचन्तो देहीति कृपणं जनाः।
अवस्थेयमदानस्य मा भूदेवं भवानपि ॥२॥ (स्कंदपु० ख० १।२।२)

पूर्वजन्म में दातव्य वस्तु के रहते, दान दया के पात्र के प्रति जो नहीं है इस प्रकार का अभ्यास किया गया था, सो देही (दो) इस विपरीतरूप से प्राप्त हुआ है। दो, ऐसा कहकर माँगने वाले कृपण को समझाते हैं, कि अदान की यह अवस्था (फल) है, आप ऐसा नहीं बनो ॥ २२ ॥

चौंतीसी २३

फफ्फा फल लागै बड़ि दूरी। चाखै सतगुरु देइ न तूरी ॥
फफ्फा कहै सुनहु रे भाई। फल विहीन कहुँ थिर न रहाई॥२३॥

निष्फल मिथ्या कथन से, सत फल लागै दूर।
सो फल चाखै मुक्त गुरु, देत न झूठन तूर ॥ २९ ॥

पाप करके फिर फफ्फा (निष्फल भाषण) से, व्यर्थ झूठ धर्मादि की कथा करने से और अधिक पाप बढ़ता है कि जिससे सच्चा फल बहुत दूर होता जाता है अर्थात् अर्थ, धर्म, कामरूप फल संसार में समीप हैं और मोक्ष फल अज्ञ को दूर अप्राप्य प्रतीत होता है। कहा गया है कि (एक दूरि चाहै सब कोई) इत्यादि,

सो निष्फल भाषणादि से और अत्यन्त दूर होता जाता है और उस फल को सद्गुरु सदा चाखते हैं (नित्यानन्द का अनुभव करते हैं) परन्तु निष्फलभाषी आदि को तोरकर वह फल नहीं देते हैं (उस आनन्द को उसके हृदय में प्रकट नहीं कर सकते हैं)। अतः फफ्फा (उस फलरूपता को प्राप्त ज्ञानी) कहते हैं कि रे भाई श्रवणादि करके इस फल को प्राप्त करो। क्योंकि इस फल से रहित कोई कहीं स्थिर नहीं रहता है, सदा संसार में भटकता रहता है ॥ २३ ॥

चौंतीसी २४

बब्बा बर-बर करे सब कोई। बर-बर किये काज नहिं होई।
बब्बा बात कहै अर्थाई। फल का मर्म न जानै भाई ॥२४॥

सत फल की स्तुति सब करैं, मर्म न जानैं कोय।
स्तुतिहि किये फल नहि मिले, थिर पद लहै न सोय ॥ ३० ॥

निष्फल भाषी आदि सब कोई बब्बा (फल) के बर-बर (बड़ाई कथामात्र) करते हैं। परन्तु बर-बर करने मात्र से कार्य (मोक्ष धर्म) की सिद्धि नहीं होती है, तो भी लोग प्रायः बब्बा (फल) की बातों को अर्थाय कर (व्याख्यान करके) कहते हैं। परन्तु हे भाई! फल के मर्म को बहुत लोग नहीं जानते हैं। अर्थात्—"सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।" (मुंडक० ३।१।५) यह नित्य मुक्त स्वरूप आत्मा सदा सत्य भाषण तप सम्यक् विवेक ज्ञान नित्य ब्रह्मचर्य से प्राप्त करने योग्य है, इस मर्म को नहीं जानते हैं।

कहत सुनत जग जात है, विषय न सूझे काल।
कबिर कहैं रे प्राणियाँ, बानी ब्रह्म सँभाल ॥१॥ (अंग की साखी) ॥२४॥

चौंतीसी २५

भभ्भा भरम रहा भरि पूरी। भभरे ते है नियरे दूरी ॥
भभ्भा कहै सुनहु रे भाई। भभरे आवै भभरे जाई ॥२५॥

मर्म ज्ञान बिनु भवन में, भरम रहा भरपूर।
भरमहि से जनमै मरै, निकट वस्तु ह्वे दूर ॥ ३१ ॥

उक्त मर्म के ज्ञान बिना भभ्भा (आकाश और भवन) में सर्वत्र भ्रम भरपूर (व्याप्त) हो रहा है। अर्थात् बाहर भीतर सर्वत्र विपरीत दृष्टि हो रही है और

भभरे (भ्रान्त होने) से नियरे (पास) के नित्य मुक्त स्वरूप आत्मा दूर हो गया है तथा भम्भा (गृह देहादि) के सत्यादि भ्रम ज्ञान संसार में भरपूर है। और इस भभरने से नियरे की वस्तु से जीव दूर में हो गया है अतः सबके भम्भा (भवन आश्रयस्वरूप ज्ञानी) कहते हैं कि रे भाई ! आत्मश्रवणादि करो, इसके विना ही भ्रम में पड़कर के ही जीव आता जाता (जन्मता मरता है) ॥ २५ ॥

चौंतीसी २६

मम्मा सेवे मर्म न पावै। हमरे सेवे मूल गमावै ॥
मम्मा कहै सुनहु रे भाई। मूल छोड़ि कस डारहिं जाई॥२६॥

निकट वस्तु से दूर नर, सेवै बन्धन दानि।
बन्धू धन भवनादि को, नहिं सेवै गुरु ज्ञानि ॥ ३२ ॥
ताते मर्म न पावई, सत्य निजातम केर।
अन्त चले सब छोड़ि के, मूल तत्त्व नहिं हेर ॥ ३३ ॥

मम्मा (बन्धन) रूप गृहादि के सेवन से सत्यात्मा मोक्ष के मर्म (ज्ञान) को कोई नहीं पाता है। किन्तु हमरे (सद्गुरु) के सेवने से जन्मादि के मूल कारणरूप अज्ञानादि को गमाता (नष्ट करता) है। अथवा गृहादि को ये हमरे (हमारे, मेरे) हैं, इस प्रकार ममतापूर्वक सेवने से जीव मूल तत्त्व को गमाता है (नहीं पाता है) अतः मम्मा (शिव स्वरूप गुरु) कहते हैं कि रे भाई ! सांसारिक ममता को त्यागकर आत्मश्रवणादि करो, मूल को छोड़कर डार (कार्य) रूप गृह देहादि में क्यों जाते हो (ममता आसक्ति करते हो) यह उचित नहीं है ॥ २६ ॥

चौंतीसी २७

यय्या जगत रहा भरि पूरी। जगतहुँ ते है यय्या दूरी।
यय्या कहै सुनहु रे भाई। हमरे सेवे जयजय पाई ॥२७॥

त्याग सकल जग पूर है, सत्य त्याग अति दूर।
सत्य त्यागि कह श्रवण करु, सत्य त्यागि हो शूर ॥ ३८ ॥

यय्या (त्याग) यद्यपि जगत में भरपूर है। परवश त्याग सब करते हैं। अन्त में सभी सब त्यागकर जाते हैं। तथापि सच्चा विवेक वैराग्यपूर्वक त्याग

जगत से दूर भी है। तथा न्यायार्जित अन्नादि का दान (सत्पात्र के प्रति अर्पण) रूप त्याग, विवेकादिपूर्वक अभय ज्ञान भिक्षा आदि का त्याग (दान)। तथा—

"त्याग तो ऐसा कीजिये, सब कछु एकहिं बार।
सब प्रभु का मेरा नहीं, निश्चय किया विचार॥" (तीसा यन्त्र)

इत्यादि त्याग संसारी जीवों से बहुत दूर है। परन्तु सच्चा यय्या (त्याग) त्याग युक्त महापुरुष कहते हैं कि रे भाई! श्रवणादि करो और सच्चा त्याग करो। क्योंकि हमरे (सच्चे त्याग और त्यागी के) सेवने से ही सर्वत्र जय जय पाया जाता है। सुगति कीर्ति मुक्ति अनायास मिलती है।

इति जीव संसारादि प्रदर्शन प्रकरण ६

अथ परमात्मविचार प्रदर्शन प्रकरण ७

चौंतीसी २८

रर्ररा रारि रहा अरुझाई। राम कहत दुख दारिद जाई।
रर्ररा कहै सुनहु रे भाई। सतगुरु पूछि के सेवहु जाई॥२८॥

सत्य त्याग विनु राम के, रारि रहा अरुझाय।
राम कहत तुम बूझलो, सतगुरु शरणे जाय॥ ३५॥
सतगुरु से सुनि सेविये, निर्गुण राम सुजान।
सतगुरु बिनु सब कहत नहिं, बात सुव्यक्त महान॥ ३६॥

सच्चे त्याग से रहित जीव रर्ररा (राम, भूमि, धन) के रारियों (झगड़ाओं द्वन्द्वों) में अरुझाय (फँस) रहा है। अतः न बन्धनरूप ममता को छोड़ता है, न सत्य राम के भजन विचारादि करता है। क्योंकि सच्चे त्याग के विवेकादि से रहित राम के संशय भ्रमयुक्त होकर भूमि धनादि के लिये परस्पर लड़ रहा है और विश्वास किया है। तथा कहता है कि राम नाम कहने मात्र से सब दुःख और दारिद्रय (दरिद्रता) चले जाते (नष्ट) होते हैं। अतः त्याग विवेक विज्ञानादि व्यर्थ क्यों किये जायँ? परन्तु रर्ररा (रामस्वरूप त्यागी ज्ञानी) तो कहते हैं कि हे भाई! राम के स्वरूप प्रभावादि के श्रवणादि करो और श्रवणादि के लिये सद्गुरु के शरण में जावो, उनकी सेवा करो, फिर प्रणामादिपूर्वक पूछो (प्रश्न करो इस प्रकार ज्ञान की प्राप्ति से द्वन्द्व मोह अज्ञान की निवृत्तिपूर्वक दुःख दरिद्रता की निवृत्ति होगी, बात नाम कहनेमात्र से नहीं।

क्योंकि— "तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।" (श्री भ० गी० ४।३४।)
उस ज्ञान स्वरूप को दण्डवत् ज्ञानी गुरु के प्रति प्रणिपतन (प्रणाम) सेवा और उचित प्रश्न द्वारा समझो, इत्यादि शास्त्र की आज्ञा है ॥ २८ ॥

चौंतीसी २९

लल्ला तुतरे बात जनाई। तुतरे तुतरे परिचय पाई।
अपने तुतर और को कहई। एके खेत दोऊ निर्वहई ॥२९॥

व्यक्त निजातम ज्ञान बिनु, भ्रमत क्षेत्र में जीव।
लखत न सत क्षेत्रज्ञ को, जो सर्वातम पीव ॥३७॥
बात मात्र से मिलत नहिं, सुखसागर अविनाशि।
ज्ञानि जन ताते कहैं, राम भजिय सुखराशि ॥३८॥

सतगुरु से पूछने के लिये इससे कहा जाता है, कि जिससे सतगुरु से अन्य लोगों ने लल्ला (आत्माराम, ईश्वर, स्वर्ग, सुख, ज्ञान और ज्ञान के साधनों) की बातों को तुतरे (अस्पष्ट) जनाई है। अर्थात् पूर्णात्मज्ञानी सद्गुरु से अन्य उपदेशकों ने अविवेकमय आत्मारामादि का उपदेश दिया है और देते हैं। अतः तुतरे (अस्पष्ट भाषियों) से उनके शिष्यों ने भी तुतरे (अस्पष्ट) परिचय (ज्ञान) पाया है। इस प्रकार से सद्गुरु के बिना जो आप स्वयं तुतर हैं (अस्पष्ट असत्यभाषी हैं) सो और (अन्य) को तुतर कहते हैं, सद्गुरु के बिना अपने दोषों को नहीं समझते हैं, अतः श्रद्धा आदिपूर्वक स्पष्टभाषी सद्गुरु से ज्ञान की प्राप्ति कर्तव्य है। क्योंकि ज्ञान रहित गुरु शिष्य दोनों एक माया मायिक वस्तु शरीरादिरूप क्षेत्र में ही अभिमान ममता करके निर्वाह (स्थिति गुजारा) करते हैं। क्षेत्रज्ञ में स्थिति के विना आनन्द नहीं पाते हैं। क्योंकि—

"श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रिय।
ज्ञानं लब्धा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥" (श्रीभ० गी० ४।३९)

श्रद्धालु गुरुसेवादि में तत्पर जितेन्द्रिय मनुष्य ही ज्ञान पाकर शीघ्र शान्ति पाता है, अन्य नहीं। परन्तु—

"गुरु सेवा जन बन्दगी, हरि सुमिर वैराग।
ये चारो तब ही मिलै, पूरण होवै भाग ॥१॥
ज्ञान समागम प्रेम सुख, दया भक्ति विश्वास।
गुरु सेवा से पाइय, सद्गुरु शब्द निवास ॥२॥ (अंगसाखी)

गुरुसेवा सज्जन की वन्दना (नम्रता) हरिस्मरण और वैराग्य ये चारो तभी मिलते हैं कि जब पूर्ण पुण्य रहता है ॥ १ ॥ तहाँ गुरुसेवा से सम्यक् ज्ञान की प्राप्ति, प्रेम, भक्ति जन्य सुख, दया, भक्ति में विश्वास और सद्‌गुरु के उपदेशों में स्थिरता धैर्य ये सब प्राप्त होते हैं ॥२॥२६॥

चौंतीसी ३०

वव्वा वर वर करे सब कोई । वर वर किये काज नहिं होई ॥
वव्वा कहै सुनहु रे भाई । स्वर्ग पताल कि खबरि न पाई॥३०॥

ब्रह्म बड़ा भक्तहुँ बड़ा, यों कहते सब कोय ।
वसत जु हृदय बसावई, ताहि न जानत सोय ॥३९॥
ब्रह्मरूप सद्‌भक्त कह, स्वर्ग पतालहुँ नाहि ।
खबरि ब्रह्म की है कहीं, बसत सकल भव माँहि ॥४०॥

देहादिरूप क्षेत्र में आसक्त भी सब कोई वव्वा (परमात्मा और परमात्म भक्त) को वर वर (बड़ा बड़ा) कहते हैं, परन्तु बड़ा श्रेष्ठ पूज्यादि कहने मात्र से कोई श्रेष्ठ कार्य (फल) नहीं सिद्ध होता है । अर्थात् अविद्या मोहादि की निवृत्ति वाचिक ज्ञान से नहीं होती है । अतः वव्वा (परमात्म स्वरूप भक्त ज्ञानी) कहते हैं कि रे भाई ! सद्‌गुरु से श्रवणादि करो, इसके बिना किसी ने स्वर्ग पाताल की खबरी (संदेश) नहीं पाई कि परमात्मा कहाँ रहता है । अतः खबर के बिना सर्वत्र भ्रमता है । अतः सद्‌गुरु से सर्वात्मा विभु परमात्मा को समझो कि जिससे प्राकृतिक स्वर्गादि में भ्रमण छूट जाय ॥ ३० ॥

चौंतीसी ३१

शश्शा सर देखै नहिं कोई । सर शीतलता एकै होई ।
शश्शा कहै सुनहु रे भाई । शून्य समान चला जग जाई ॥३१॥

सुखसागर सुखरूप है, राम हृदय के माँहि ।
तिहि जाने बिनु शून्य में, सुख खोजन जन जाँहि ॥४१॥

सद्‌गुरु से समझे बिना शश्शा (नित्य सुख श्रेयः) के सर (तालाब=समुद्र) को कोई नहीं देखता है, कि जहाँ सर और शीतलता एक होते (भासते) हैं अर्थात् जिस सुखसिन्धु के ज्ञान से सुख मोक्ष परमात्मा आत्मा की एकता का अनुभव

होता है। अतः सुख मोक्षादि की इच्छा निवृत्त हो जाती है, उस ज्ञानाग्नि से कर्मादि मल नष्ट हो जाते हैं। अतः कहा गया है कि—

"नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।" (श्री० भ० गी० ४।३८)

यहाँ ज्ञान के समान पवित्र अन्य नहीं है। अतः शश्शा (शान्त सुख स्वरूप ज्ञानी) कहते हैं कि रे भाई! सुख सागर के श्रवण विचारादि करो। सुखसागर के श्रवण ज्ञान विचारादि बिना सब संसारी शून्य (तुच्छ) के समान होकर चला जा रहा है। तथा शून्यरूप आकाश में (स्वर्गादि में) सुख स्वामी आदि को खोजने चला जा रहा है। अतः इस शून्य में गति आदि की निवृत्ति शान्ति मुक्ति के लिये श्रवणादि अवश्य करो॥ ३१॥

चौंतीसी ३२

षष्षा षर षर करे सब कोई। षर षर किये काज नहिं होई॥
षषा कहै सुनहु रे भाई। राम नाम ले जाहु पराई॥३२॥

अति परोक्ष जगदीश को, सत्य कहत सब कोय।
लखत न आतम राम को, जाते सद्गति होय॥४२॥

श्रवणादि के विना ही षष्षा (परोक्ष ईश्वरादि श्रेष्ठ वस्तु) को षर पर (खरा खरा, सत्य सत्य) सब कोई कहते हैं, अपरोक्ष सत्यात्मा को समझने के लिये यत्न नहीं करते हैं। परन्तु परोक्ष वस्तु को सत्य-सत्य कहने से, अपरोक्षात्मा के ज्ञान के विना मोक्ष सुख की प्राप्तिरूप कार्य सिद्ध नहीं होता है, अतः षष्षा (मुक्त श्रेष्ठ ज्ञानी) कहते हैं कि रे भाई! श्रवणादि करो और अपरोक्ष नित्य मुक्त. रामस्वरूप को हृदय में लेकर (समझकर) माया जाल संसार से पराय (भाग) जावो (असङ्गात्मनिष्ठ होवो)। क्योंकि—

"यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिम्॥" (कठ० २।६।१०)

जब मन सहित ज्ञानेन्द्रियाँ निर्विषय होकर आत्मनिष्ठ होती हैं। बुद्धि स्थिर हो जाती है तब उस अवस्था को परम गति कहते हैं॥३२॥

इति परमात्मविचार प्रदर्शन प्रकरण ७

अथ उपसंहार प्रकरण ८

चौंतीसी ३३

सस्सा सरा रचो बरियाई। शर बेधे सब लोग तबाई॥
सस्सा के घर सुन गुन होई। इतनी बात न जानै कोई॥३३॥

भजन ज्ञान से विमुख को, दाहन हित जगदीश।
रचा सरा कामादि तहँ, डारत जनु करि खीस॥४३॥
ईश्वर सब उरवासि नित, जानत सब का मर्म।
अज्ञ जीव समुझत नहीं, ताते करत अधर्म॥४४॥

जो कोई राम नाम लेकर भागने वाले नहीं हैं, उनके दाह के लिये सस्सा (ईश्वर) ने संसार क्रोधरूप बरियाई (प्रबल) सरा (चिता) रची है। उसमें डाल कर काम लोभादि शत्रु, शोकादि शरों से बेधकर जीवों को तपाते (जलाते) हैं। क्योंकि जितनी बात का सुन गुन (श्रवण विचार) सस्सा (ईश्वर) के घर (हृदय) में होता है, इतनी बात को कोई जीव जानता नहीं है। अर्थात् सर्वज्ञ ईश्वर अन्तर्यामीरूप से सबके हृदयों में सदा रहता है। अतः धर्माधर्म सबको पूर्ण रीति से जानकर सबके फल को अवश्य देता है और जीव अचेत रहने के कारण प्रायः अधर्म करता है। अतः चिता से नहीं बचता है, ईश्वराधीन होकर कष्ट भोगता है।

"ईश्वराधीनतो जन्तुः स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा।
निजकर्मानुसारेण पुनरायाति याति च॥"॥३३॥

चौंतीसी ३४

हहा करत जीव सब जाई। हर्ष शोक सब माहिं समाई॥
हँकरि-हँकरि सब बड़-बड़ गयऊ। हहा मर्म न काहू पयऊ॥३४॥

करि अधर्म क्रोधादि वश, दीप्त चिता में जाहि।
वारण भी मानत नहीं, पड़त द्वन्द्व दुख माहि॥४५॥
ईश सुवारण मर्म को, जब लग जानत नाहि।
तब लगि मरत कुकष्ट सहि, जन्म जन्म पछताहि॥४६॥

अन्तर्यामी कर्मसाक्षी आदि के मर्म (भेद) को नहीं जानने से हहा (क्रोधादि) करते हुए जीव सब उस चिता में ही जाते हैं। तथा गुरु आचार्यादि

हहूहा (बारण) कर रहें हैं, कुमार्ग अधर्म से रोक रहे हैं, तो भी कामी अविवेकी जीव सब कुमार्गादि में ही जाते हैं। अतः हर्ष शोकादि द्वन्द्व में सब समाता है, तथा द्वन्द्व सब में समाता (प्राप्त होता) है और द्वन्द्वों से पीड़ित होने पर हँकर-हँकर (रो-रो) कर सब बड़े-बड़े लोग भी गये कि जो कोई हहूहा (बारण, निषेध) के मर्म को नहीं पाये (दुश्चरित्र काम क्रोध लोभ को नहीं त्याग सके) अतः यह मर्म ज्ञातव्य है ॥ ३४ ॥

क्षक्षा क्षण में सब मिटि जाई । छेव परे कहु को समुझाई ॥
क्षेव परे काहु अन्त न पाया । कहहिंकबिरअगुमनगुहराया॥३४॥

इति श्रीसद्गुरुकबीरकृते विविधबन्धबीज-
विध्वंसने बीजकनाम्नि ग्रन्थे ज्ञानप्रदमष्टमं
चौंतीसीप्रकरणं समाप्तम् ॥८॥

क्षण में मिटती देह सब, फिर को क्या समुझाव ।
मानव तन के अन्त भै, सत्य मर्म नहि पाव ॥ ४७ ॥
ताते प्रथमहि करिय सब, निर्मल धर्म विवेक ।
लखि क्षेत्रज्ञहि नित्य सुख, धारिय मन में एक ॥ ४८ ॥

मर्म ज्ञानादि के बिना बार-बार शरीर होता है और सब क्षक्षा (क्षेत्ररूप शरीर) क्षण में मिट जाते हैं। अतः यह वर्तमान शरीर भी क्षणभंगुर है। तहाँ यदि मर्म ज्ञानादि को नहीं प्राप्त किया गया, तो कहो कि छेव (मृत्यु के तरवार की धार) के इसके ऊपर पड़ने पर (मृत्यु के बाद) किसको कौन क्या समझावेगा ? अतः छेव पड़ने पर (मानव तन के नष्ट होने पर) इस संसार के अन्त को किसी ने नहीं पाया (जीवन्मुक्ति के बिना किसी को विदेह मुक्ति नहीं मिली)। कबीर साहब कहते हैं कि इसी कारण से अगुमन (आगे के गुरु महात्मा सब) जीवन मुक्ति के लिये गुहरा गये हैं, पुकार कर कह गये हैं। कि—

"विमुक्तश्च विमुच्यते ।" (कठ० २।५।१) "अत्र ब्रह्म समश्नुते ।" (कठ० २।६।१४) जीवन्मुक्त फिर विदेह मुक्त होता है। ज्ञानी यहाँ ही ब्रह्म को प्राप्त करता है। अतः—

"जियत आपु लखु जियत ठौर करु" "जियत न तरहु मुये का तरिहौ" इत्यादि उपदेश है।

* चौंतीसी की पद्यात्मिका टीका *



वन्दे स्वं सच्चिदानन्दं रामं ब्रह्म सनातनम् ।
निर्गुणं निर्मलं शान्तं सगुणं सर्वकारणम् ॥१॥
देवानां देवमव्यक्तं व्यञ्जन्तं सर्वसाक्षिणम् ।
अनन्तं परमाद्वैतं मायया द्वैततायुतम् ॥२॥
योगिभिर्ज्ञानिभिर्ध्येयं ज्ञेयं द्वन्द्वविवर्जितम् ।
ज्ञातं स्वचित्तवृत्तिस्थं सर्वव्याधिविनाशकम् ॥३॥
लभ्यं सत्येन योगेन तपसा पावनेन च ।
सम्यग् ज्ञानेन भक्त्या च, ब्रह्मचर्येण नित्यशः ॥४॥
यल्लाभान्न परो लाभोः न सौख्यं विद्यते परम् ।
यस्मिञ्ज्ञाते न वै ज्ञेयं शिष्यते तं नमाम्यहम् ॥५॥

बन्दौं ब्रह्म अनन्त सुख, निर्गुण परम प्रकाश ।
जाके ज्ञान विचार से, मिटत अखिल भव फाँस ॥१॥
बन्दौं सद्गुरु के चरण, राम रमावन हार ।
जगत रमण को टारि जो, करत शोक दुख पार ॥२॥

स्वप्न तुल्य यह सब संसारा । मायामय अति अगम अपारा ॥
तीन अवस्था स्वप्न असाँची । यों श्रुति सन्त कहत सत बाची ॥
परं ब्रह्म नर श्रृङ्ग जु दोऊ । सत इक असत् कहत सब कोऊ ॥
स्वप्न न सत नहिं असतहि जानिय । तथा जगत यह सकलहि मानिय ॥
असत होय सो दीखै नाहीं । नहीं ज्ञान पथ में कभि आहीं ॥
सत नहिं विनशै रहै सदाही । बाध बुद्धि जहँ होवत नाहीं ॥
देखिय स्वप्न नशत पुनि सोई । मिथ्या ताहि कहत सब कोई ॥
तथा अवस्था युत संसारा । देखिये नशत सु बारम्बारा ॥
तुर्य एक सत अचल अनादी । ताहि सुलखत मिटत जन्मादी ॥
सो सत् ब्रह्म कहिय अविकारा । सकल विश्व का अमल अधारा ॥

राम ताहि को जानत योगी । निज सत आतम लखत अभोगी ॥
ओंकारहुँ सो अजर अनन्ता । व्यापक विश्वरूप भगवन्ता ॥
रच्छक निराकार सो देवा । बिनु विवेक नहिं जानिय भेवा ॥
रहत निरन्तर सब जग माँहीं । जानत संत विमल मति जाहीं ॥
चिदाकाश सो कहिय अनन्ता । गावहिं तिहि पुराण श्रुति सन्ता ॥
नाम रूप जाके कछु नाहीं । नाम रूप कल्पित ता माँहि ॥
ताते परम अदृश्य सदाही । दृश्य साच्छि विनशत सो नाहीं ॥

सद्‌गुरु वचन विचार से, ताहि जानि निज रूप ।
जन्म मरण भय रहित जन, होत सुशुद्ध स्वरूप ॥३॥

सोइ ओंकार अजर सर्वादी । चित्रकार अज अमर अनादी ॥
विश्व चित्र धरि विश्व कहावै । तैजस स्वप्न चित्र उपजावै ॥
विविध रूप राजत सुविराजा । हिरणगर्भ साजत सुख साजा ॥
प्राज्ञ परम सुखरूपहिं जोई । सर्वशक्ति युत ईश्वर सोई ॥
ओंकारहि के प्रथम अकारा । विश्व विराटक वाचक सारा ॥
द्वितीय पुनि उकार ता माँहीं । तैजस हिरणगर्भ बतलाहीं ॥
तामें व्यञ्जनमात्र मकारा । प्राज्ञ ईश वाचक अति सारा ॥
पुनि अकार ब्रह्मा का बोधक । सृष्टि करत जो वेद प्रबोधक ॥
विष्णुक वाचि उकार कहावै । पालक जाहि सन्त श्रुति गावै ॥
शंकर जग संहारक जोई । कहत मकार ताहु शुभ सोई ॥

शंकर शुद्ध स्वरूप शिव, तामें प्रविशत अन्त ।
सकल अकार उकार युत, ताते सो भगवन्त ॥४॥

विश्व विराट सहित आकारा । लहत उकार माँहि संहारा ॥
तैजस हिरणगर्भ युत सोऊ । लहि मकार निज रूप विगोऊ ॥
इमि मकार शिव रूप समाहीं । प्रविशत अ उकारहुँ ता माहीं ॥
ताते संहारक सो होई । परम देव भगवन्तहि जोई ॥

सुषुप्ति प्रलय के माँहि सो, रहत जगत का मूल ।
पुनि ताते सब प्रकट ह्वै, जात जीव तहँ भूल ॥५॥

माया मय होवत संसारा । रञ्चक सत्य न कोइ प्रकारा ॥
मायायुत निज सत्य स्वरूपा । रचत सूक्ष्म भव अजब अनूपा ॥

तातै स्थूल जगत पुनि होई। निज स्वरूप कर्ता रच सोई ॥
निज स्वरूप माया युत कर्ता। होवत पालक पुनि संहर्ता ॥
तातै ब्रह्मा विष्णु हुँ सोई। शिव स्वरूप निज रूप न दोई ॥
रजो धारी निज रूपक माँहीं। सृजत ईश ब्रह्मा कहलाहीं ॥
धारि सतोगुण पालक सोई। ईश्वर विष्णु और नहिं कोई ॥
धारि तमोगुण परम विशाला। संहारक शिव होवत काला ॥

गुणकृत कल्पित भेद सब, मिथ्या ईश्वर माँहि।
भेद रहित निज रूप सत, राम ब्रह्म कहु ताहिं ॥६॥

निर्गुण निराकार अति सत्यम्। सगुणहुँ निराकार सुख सत्यम् ॥
निर्गुण सत से भिन्न न सोई। निराकार सत सगुण जु कोई ॥
ईश्वर सो माया बल भारी। ज्ञान क्रिया बल अद्भुत सारी ॥
निर्गुन से अति अन्य न सोई। तासे निर्गुण अन्यहुँ होई ॥
माया गुण विहीन सो शुद्धम्। राम ब्रह्म शिव विगत विरुद्धम् ॥
सर्वातम सबका परकाशक। चन्द्र सूर्य तम काहु विभासक ॥
निर्भय अति निर्वैर सदाही। एक असङ्ग अखण्ड अदाही ॥
ओंकारादि शब्द का लच्यम्। वाच्य न होत न होत अलच्यम् ॥
सगुण क्रिया युत जाति सुयुक्ता। सङ्गिहि होत वाच्य पद उक्ता ॥
निर्गुण निराकार अज जोई। सो न वाच्य पद लक्ष्यहिं होई ॥
अस ओंकार लक्ष्य सर्वादी। ताहि लखत कोइ मुनि सतवादी ॥
गुरु सतशास्त्र वचन से जानै। ओंकारहिं सर्वादिहुं मानै ॥
तदपि विवेक बिना नर कोई। सत ओंकार लखत नहिं सोई ॥

लिखि के मेटत जाहि पुनि, ताहि कहत ओंकार।
सो अविवेकी मूढ़ जन, लखत न सत करतार ॥७॥

वेद मूल ओंकार महाना। शब्द ब्रह्म तिहि कहत सुजाना ॥
आदि नाम तिहि सन्तन गाया। सकल चराचर माँहि समाया ॥
सो क्या लिखि मेटन के जोगू। बिनु विवेक नहिं जानत लोगू ॥
सोऽहं ओम् अहम् इति गावैं। तत्त्वमसी कहि तिहि समुझावैं ॥
जाकी इच्छा से भव होई। वेद मूल ओंकार हुं सोई ॥

इमि जानत सो विज्ञ जन, सर्वातम ओंकार।
लखि निज सत्य स्वरूपही, उतरत भव जल पार ॥८॥

चौंतीसी २

कं प्रकाश निज ज्ञानस्वरूपा । सो ओंकार विमल सतरूपा ॥
हृदय माँहिं तिहि देखहिं योगी । त्यागि विषय रस जगत वियोगी ॥
हृदय स्वच्छ करि मन सुप्रसन्नम् । तहाँ लखहिं ओंकार प्रपन्नम् ॥
सुख स्वरूप जो हृदय प्रकाशै । सो ओंकार स्वरूप ही भासै ॥
अगह अपार रूप लखि सोई । ब्रह्मानन्द मगन जन होई ॥

ब्रह्मानन्द स्वरूप लखि, करि तहँ अचल निवास ।
पुनि भव भ्रमहिं न भक्त जन, लहहिं ब्रह्म पद खास ॥९॥

चौंतीसी ३

खं विभु ब्रह्म अमल ओंकारा । सदा एक रस शुद्ध अपारा ॥
सर्वाधार विकार विहीना । अति सूक्षम तिहि कहत प्रवीना ॥
सदाऽसङ्ग सब हृदय निवासी । चिदाकाश निर्गुण अविनाशी ॥
ताहि लखन चह जो मन माँही । सङ्ग दोष सो तजै सदाही ॥
रहि इकान्त तन मन को शोधै । करि सुभक्ति मल मदन निरोधै ॥
त्यागै मिथ्या खसम अनेका । गहै एक विभु ईश्वर टेका ॥
सर्वान्तर बाहर लख सोई । आवागमन रहित अल जोई ॥
क्षमाशील युत रहै सदाही । सन्तोषी शम दम गुण ग्राही ॥

शौच दया सुविचार युत, श्रद्धाभक्ति सुधार ।
सो विरागि अभ्यासि नर, अक्षयपद लह सार ॥१०॥

चौंतीसी ४

गं गनेश सब विघ्न विनाशक । सद्गुरु सब सत अर्थ प्रकाशक ॥
गुरु के वचन गणेश प्रवीना । हरत मोह ममता मद हीना ॥
ताहि हृदय नित धारत जोई । ताहि न विघ्न देवकृत होई ॥
सर्व विघ्न गुरुभक्ति विनाशै । रामभक्ति सुख अमल प्रकाशै ॥
सकलो विघ्न अभक्तन लागी । रचा ईश नहिं लखत अभागी ॥
जो इमि जानि भजै भगवन्ता । सेवै गुरु सज्जन शुभ सन्ता ॥
विषय कथा नहिं मन मँह लावै । गुरु वचनामृत हृदय बसावै ॥
साधु कथा नित सुनै सुनावै । अथवा गुरुपद ध्यान लगावै ॥

सो न परै भव फन्द में, गहै अगम गम्भीर।
राम जहाज अपार अति, पावै भव का तीर ॥११॥

चौंतीसी ९

घं घन घट वत नश्वर देहा। होत बार बहु नहिं सन्देहा ॥
गर्भवास दुख जन बहु पावै। जब लगि भक्ति न हृदय दृढ़ावै ॥
गुरु वचनामृत करै न काना। तब लग जन्म मरण दुख नाना ॥
जीव लहै तहँ दुःख अनेका। सब दुख रहित निजातम एका ॥
घटहुँ माँहि सो रहत असङ्गा। सकल प्रकाशक विमल अभङ्गा ॥
यदि ताका होवै कभि नाशा। नाशक कौन करै प्रकाशा ॥
सर्व साक्षि नाशहुँ को भासै। आप स्वयं जग ज्योति प्रकाशै ॥
याते अन्तर्ज्योति महाना। वहिर्ज्योति प्राणहुँ का प्राणा ॥

मन मति इन्द्रिय प्राण युत, मूल अविद्या देह।
सूक्ष्म देह तहँ आतमा, भासक नित्य विदेह ॥१२॥

घटाकाश सम विगत विकारा। सो कूटस्थ सब देह अधारा ॥
देहन में प्रतिबिम्ब समाना। चिदाभास होवत हैं नाना ॥
चिदभिव्यक्ति स्वरूपहि सोई। सात्त्विक बुद्धि माँहि बहु होई ॥
सूक्ष्म देह का बुद्धि सदङ्गा। तहाँ रहत प्रतिभास अभङ्गा ॥
सो व्यवहारिक जीव न आना। कर्म करत भोगत फल नाना ॥
कर्म विवश सुख दुख सो पावै। लहि निज रूपहि मुक्त कहावै ॥
सद्गुरु वचन ज्ञान फल दायक। दीनबन्धु गुरु परम सहायक ॥

सद्गुरु सेवन ज्ञान बिनु, देहन में मन लाय।
गर्भ देह संसार में, पुनि पुनि आवै जाय ॥१३॥

बिना विदेह मुक्ति फल पाये। सूक्ष्म देह युत जीव सदाये ॥
रहत अविद्या युत संसारी। चिदानन्द निज रूप विसारी ॥
गमनागमन करत नित सोई। जन्म मरण पावै पुनि दोई ॥
सूक्ष्म देह युत भ्रमत सदाहीं। सकल योनि में सुख दुख पाहीं ॥
सुख लेशहि दुख लहै अपारा। वहत मोह ममता के धारा ॥
स्थूल देह से सूक्षम योगा। जन्म कहिय तहँ मरण वियोगा ॥

स्थूल देह से स्थूलहि भोगा । भोगत सहित सदा सब रोगा ॥
सूक्ष्म देह से सूक्षम होई । भोगहुँ मानस रोगहुँ दोई ॥
कारण देह युतहि जब होवै । तब सुषुप्ति में रोग विगोवै ॥
रोग बीज तहऊँ रहताहीं । ताते जीव बहुरि भव पाहीं ॥
भोगहिं तहवाँ निज आनन्दा । पुनः परहिं मोहज भव फन्दा ॥

इमि अनादि संसार यह, देहादिकहि गँभीर ।
बहत तहाँ संसारि सब, बचत कोइ मतिधीर ॥१४॥

अधिष्ठान चिति सूक्षम काया । चिदाभास ये जीव कहाया ॥
संसारी कर्मादिक कर्ता । बिनु विवेक दुख पथ पग धरता ॥
करि अभिमान बँधत तनु माँहीं । लखत न कर्ता राम सदाहीं ॥
परमाता प्रमाण बल पाई । करण सहित कर्ता कहलाई ॥
भोगत भोग अविद्या युक्ता । लखत न निज स्वरूप नित मुक्ता ॥
ताते करत सकल अभिमाना । देह गेह में रहत भुलाना ॥
कर्ता निज व्यवहारि स्वरूपा । ईश अधीनहिं बद्ध कुरूपा ॥
ताको निज स्वरूप सत जानै । विप अमरित जनु एकहि सानै ॥
लखये न अमरित रूप विविक्तं । निज आतम कर्तृत्व वियुक्तं ॥
मायी जो कर्ता जगदीशा । अन्तर्यामिहुँ कहत मुनीशा ॥
सो निजातमा लखत न ताहीं । तनु धनादि जा कहँ प्रिय आहीं ॥

कार्य करण से रहित अज, जग कर्ता जगदीश ।
वेद वाक्य गुरु वचन से, जन विवेकि कहँ दीश ॥१५॥
विनु विवेक अनुमान से, तिहि जानत जन जोय ।
कार्य करण संयुक्तहि, मानहि ता कहँ सोय ॥१६॥

अनुमानहुँ करि मानहिं जाही । स्थूल देह युत मानहिं ताही ॥
कहहिं सुथूल युक्त भगवन्ता । आवागमन सहित निज कन्ता ॥
लखहिं न विनु विवेक विभु एकं । कहहिं देह युत ब्रह्म अनेकं ॥
कोइ कालहिं कर्महिं को मानहिं । कोइ स्वभाव कोइ प्रकृतिहि जानहिं ॥
ये जड़ स्वयं अचेत सदाहीं । किमि सचेत कर्ता पद पाहीं ॥

तातें जग कर्ता इक रामा। मायापति सब जग विश्रामा ॥
चेतन निर्गुण यद्यपि सोई। कर्तृतादि तहँ युक्त न होई ॥
तदपि तहाँ माया जग मूला। होत सकल कारज अनुकूला ॥
चित्प्रकाश लहि करत पसारा। ब्रह्म देव तहँ देत सहारा।
ब्रह्म माहिं जग होत विवर्ता। माया विपरिणाभिनी कर्ता ॥
माया माहिं स्वभास सुयुक्ता। ब्रह्म सुदेव ईश पद भुक्ता ॥
नित्यमुक्त सर्वज्ञ सदाहीं। सर्वशक्ति युत ईश कहाहीं ॥
श्रुति सिद्धान्त सन्त मत येहू। तहँ न स्थूल सूक्ष्म कोइ देहू ॥
भक्त भक्ति वश देह जु भासै। मायामय सो अधिक उजासै ॥
सृष्टिकाल में सोउ सुखेला। करत ईश लहि देव सुमेला ॥
प्रलयकाल में रहत अकेला। करत सृष्टि बिनु देवक मेला ॥
आदि सृष्टि कर्ता जगदीशा। केवल यों सब कहत मुनीशा ॥
सृष्टि हुए ब्रह्मादिक कर्ता। कोइ पालक होवत संहर्ता ॥

ब्रह्मा विष्णु महेश रवि, गणपति शशि इन्द्रादि।
शक्ति शारदा सृष्टि में, सहकारी वरुणादि ॥१७॥

सकल जीव निज कर्मन द्वारा। होत सृष्टि का हेतु अपारा ॥
ईशहुँ जीव कर्म अनुसारा। रचत सृष्टि शुभ अशुभ उदारा ॥
सो साधारण हेतु कहावै। राग द्वेष बिनु जग उपजावै ॥
स्व स्वभाव माया को प्रेरी। करत सृष्टि सो सहज घनेरी ॥
तातें ईश पानि सम हेतू। विश्व वृक्ष की माया खेतू ॥
जीव कर्म कामादि घनेरे। वासनादि बहु बीजक फेरे ॥
ताते होत विचित्र शरीरा। भोग विभेद अनुग्रह पीड़ा ॥
भूत सकल भौतिक जग जोई। जीव कर्म अनुकूलहि होई ॥
कहीं भूमि अति सुखद सुपन्था। तीर्थ स्वर्ग तिहि कह सद्ग्रन्था ॥
कहिं वन वाग सुगन्ध समीरा। कहुँ अति विमल विपुल वह नीरा ॥
कहूं देव सन्तन का स्थाना। गावत वेद पुराण महाना ॥
कहुँ श्रद्धायुत भक्त निवासा। मानहु यहाँ अमर पति वासा ॥
कुसुमित वन फल युत कोइ देशा। इत्यादिक सब पुण्य प्रदेशा ॥
कहुँ अति विकट भूमि भयकारी। विकट पन्थ भय युत नर नारी ॥

विषम भूमि अति शुष्क पहारी। निरस रेत युत शरकर धारी ॥
प्यासा पथिक नीर नहिं पावै। मृग तृष्णा लखि मृग जहँ धावै ॥
चोर जुआरि बसहिं जेहि ठाऊँ। हिंसक व्यभिचारिन का गाऊँ ॥
शठ वञ्चक जहँ बसहिं न सन्ता। जहँ न भजै नर गुरु भगवन्ता ॥
असत परायण वेद विनिन्दक। बसहिं जहाँ न धर्म निज चिन्तक ॥
पाप प्रदेश जानिये ताहीं। दुःखद सदा कुमतिप्रद आहीं ॥
जलहुँ तीर्थ मुनि सेवित होई। पाय कुयोग, पाप मय सोई ॥
तेज वायु नभ माँहिं विभेदा। लखहिं सन्त कर्मज सुख खेदा ॥
काल पाय कर्मज परिणामा। भूतन माँहि होत बहु ठामा ॥

ईश्वर की लीला सरिस, सो सब भेद महान।
कर्म काल सम्बन्ध कृत, जानत सन्त सुजान ॥१८॥

कोइ उत्तम जन धन थल पाई। पूर्व कर्मफल सकल सहाई ॥
तनु सुरूप कान्ता कमनीया। गनत न देव गुरुहुँ महनीया ॥
घन घट सम क्षणभंगुर देहा। विनशत तहाँ नहीं सन्देहा ॥
अहो महा माया का जोरा। ताहि पाय जन होत विभोरा ॥
तनु धनादि माया नहिं आना। ताहि पाय कोइ होत दिवाना ॥
ब्रह्मा शिव हरि बुध इन्द्रादी। देह नाम हूँ होवत सादी ॥
ओंकारहुँ गणपति हरि रामा। विदित सकल अनादि जे नामा ॥
देही के सो नाम भनीजै। देही ब्रह्म अलख लखि लीजै ॥
अन्तर्यामि ईश सोइ साँचा। व्यापक सो जा वश जग नाचा ॥
एक अनेक रूप सो भासै। गहि उपाधि बहुरूप प्रकाशै ॥
बिनु विवेक भजहीं नर देहा। जन विवेकि भज देहि अदेहा ॥
निर्गुण भक्ति कहिय सत ताही। जो अदेह गत प्रीति सदाही ॥

देहन माँहि अदेह को, जानि भजहि जो सन्त।
जपहि राम गुरु सेवहि, सो सुख लहहि अनन्त ॥१९॥

नाम रूप नहिं कोइ अनादी। है स्वरूप से कह सतवादी ॥
किन्तु परम्परा से कोई। नाम सुरूप अनादिहूँ होई ॥
नाम रहित के नाम अनन्ता। देह रहित के देहहिं सन्ता ॥

सात्त्विक राजस तामस देहा। गुण स्वरूप कल्पित तहँ गेहा॥
देह सेवी जन पावहिं देहा। उत्तम मध्यम अधमहुँ गेहा॥
जहाँ नेह करिये दिन राती। पाइय सो हित अहित अराती॥
सकल देह तजि भजि नित रामा। पाइय मोक्ष अचल विश्रामा॥
भजन करत व्यवहारिक जीवा। भजत जाहि सो निर्गुण पीवा॥
माया शक्ति ताकि अति गाढ़ी। रचत स्वप्न जग विविध प्रगाढ़ी॥
भजत भजत जब जागत जोई। विगत विमोह मुक्त सो होई॥
अतः कहत श्रुति सन्त सदाई। जागिय मुक्ति लहिय सुख भाई॥

जागिय पन्थ दुर्गम अति, समुझि चलिय मन माँहि।
सद्गुरु से बुझि लीजिये, संशय शोक नशाँहि॥२०॥

चौंतीसी ६

ङङ्ङा भयद विषय कामादी। बिनु जागे भय देहिं धनादी॥
भय स्वरूप तिहि सब संसारा। जो न जागि निज तत्त्व सँभारा॥
निरखत विषय काम मन लाई। सो सुधि बुधि सब देत गमाई॥
काम क्रोध मद लोभ सुयुक्ता। हिंसक होत न हरि गुरु भक्ता॥
मानवता को नाशत सोई। बिनु विवेक विषयी जो होई॥
अति कामी पामर कहलावै। जागे सोउ सुख सद्गति पावै॥

चौंतीसी ७

चं कुचोर जग चित्र स्वरूपा। ईश रचित गावहि मुनि भूपा॥
तहाँ देहिं मन जो [illegible]न कोई। चित्र चोर वश सो नित होई॥
हरत सुविमल विवे[illegible] विरागा। चित्र कुचोर बढ़ावत रागा॥
ताते सुनि सद्गुरु की [illegible]ानी। चित्र सकल तजिये दुख दानी॥
चित्रक[illegible] लखिये शिव एका। करिय विचार सुविमल विवेका॥

चौंतीसी ८

छं निर्मल असङ्ग सब स्वामी। सर्वातम सब अन्तर्यामी॥
सकल क्षेत्रपति राजा सोई। अति समीप लख पाव न कोई॥
जन्मादिक दुख रहित अनन्ता। ब्रह्म अनादि शुद्ध भगवन्ता॥
लखत ताहि जन शोक विहीना। होत सुतृप्त नहीं दुख दीना॥

सो निर्मल प्रभु दूर नहिं, सर्वातम सब पास।
गुरु गम से लखि ताहि नित, मेटिय सकल दुराश ॥२१॥

करि दुराश मरकट सम लोगा। बँधत आपु भोगत दुख भोगा॥
इन्द्रिय मन वश दुख सो होई। बिनु सद्गुरु लख पाव न कोई॥

चौंतीसी ९

जं जीतिय मन इन्द्रिय प्राणा। जेता होय लहिय निज ज्ञाना॥
भोगिय निज प्रारब्ध तथापी। तन अभिमान न करिये कदापी॥
तन मन मारि राम रस पीजै। यौवन मद तजि पार लहीजै॥
विषयवासना जारिय सारी। सोइ घट माँहिं करिहिं उजियारी॥
बिनु मद यौवन युत शुभ प्राणी। सद्गुरु वचन सत्य का ध्यानी॥
बिनु श्रम भवसागर के पारा। पावत हैं सुख सिन्धु अपारा॥

चौंतीसी १०

झं नेपथ्यरूप संसारा। बनत वेष तहँ विविध प्रकारा॥
झंझा वात बहत तहँ कामा। रहत न स्थिर तहँ वेष सुठामा॥
तहँ नर तनु लहि करिय सुठौरा। बनिय न काम विवश मति बौरा॥
करि विवेक सब अरुझ निवारी। पाइय परम सिद्धि सुख भारी॥
जो यहि तनु नहिं अरुझ निवारा। तो नर जन्म व्यर्थ संसारा॥
पुनि अनन्त कोटिहुँ तनु पाई। मानव तनु लहि होत भलाई॥
नर तनु पाय कुकाम विहाई। भक्ति ज्ञान से लह सुख भाई॥

चौंतीसी ११

ञं सुख शयन तजिय मद मूला। त्यागिय विफल गान प्रतिकूला॥
मन थिर करि निज आतम राखिय। असत अमंगल अहित न भाखिय।
बोलिय मधुर सुहित सत बानी। तजिय कपट सब काम कहानी॥
करि विवेक भजिये नित रामा। यह निज ज्ञान परम सुख धामा॥

चौंतीसी १२

टं कुभूमि शब्दादि विभेदा। जहाँ जाय मन लह अति खेदा॥
विकट बाट मन में इक ऐसा। विषय जाल जाते गृह पैसा॥
लिप्त होहिं सो मन में जाई। मनहुँ रहत तामें लिपटाई॥

बिनु विवेक सो नहिं नशै, विषय वासना एक।
ताते सद्गुरु वचन गहि, करिये सत्य विवेक ॥२२॥

चौंतीसी १३

ठं जन संघ विवेक विहीना। ठग कामादि करत तिहि दीना ॥
सो ठग नित्य रहत तिहि पासा। करत क्रूर मन बुद्धि विनाशा ॥
जो ठग चीन्हि विनाशै ताहीं। अचल स्थान सो लह मन माँहीं ॥

चौंतीसी १४

डं शंकर संहारक देवा। विविध त्रास डं ध्वनि अवरेवा ॥
बिनु विवेक ताते भय होई। मरण त्रास मानत सब कोई ॥
अभिनिवेश कहते तिहि ज्ञानी। ताहि अविद्या रूपहि जानी ॥
बिनु विवेक ताका नहिं नाशा। होत न निर्भयरूप प्रकाशा ॥
निज आतम ईशहुँ से डरहीं। अज्ञ न हृदय अभयपद धरहीं ॥
उद्वेगहिं औरहिं कहुँ आपहुँ। ह्वै उद्विग्न सहैं दुख पापहुँ ॥
निर्भयपद निजरूप महाना। तिहि लखि सन्त तजैं अभिमाना ॥

चौंतीसी १५

ढं निर्गुण सत ब्रह्म निज, रूप जानि भय दूर।
होइय अभय स्वरूप अज, पाइय पद भरपूर ॥२३॥

निज स्वरूप सत निर्गुण एका। मायामय भव होत अनेका ॥
तहाँ ढूँढ़ि नहिं पाइय साँचा। जौं लो तजिय न भेद असाँचा ॥
असत भेद भय दुख का हेतू। त्यागि भजिय इक राम सचेतू ॥
हृदय माँहिं चिद्रूप जु जानू। सत्यानन्द ताहि पहिचानू ॥

चौंतीसी १६

णं चिद् जीव ब्रह्म नहिं जानै। ताते जन्म मरण भय मानै ॥
करै कर्म निज नाम हि लागी। लखै न नाम अनित्य अभागी ॥
लोक और परलोक सुकामा। करन चहत तहँ नित निज नामा ॥
तजि इक देह अनेकन माँहीं। जात तहाँ सब नाम बिलाहीं ॥

चौंतीसी १७

तत्ता जीव अबोध यह, तदपि नहीं गुण सङ्ग।
तजत नाम महँ बँधत नित, लहत न शान्ति अभङ्ग ॥२४॥

त्रिभुवन माँहिं चहत निज देहा। रचित सुख युत सहितसनेहा ॥
जो नर सो पुनि त्रिभुवन माहीं। आवहिं देह तत्त्वमय पाहीं ॥
तत्त्व रचित तनु अति दुख दाई। ताहि चहत तिहि नाहिं भलाई ॥
तत्त्व रचित तनु अति दुख दाई। द्वन्द्व सकल यहँ आवत धाई ॥
तं अति तस्कर जो गुण जानी। तिय गुण संग तजहिं विज्ञानी ॥
सत्य स्वरूप ब्रह्म सुख पाई। लीन होहिं तहँ भय विसाई ॥

चौंतीसी १८

थं अति अगम पहाड़ अछेदा। चञ्चल मन देता अति खेदा ॥
करि विवेक निज मन्दिर माँहीं। धीरे ताहि किये सुख आहीं ॥
धारिय सात्त्विक धैर्य महाना। तब पाइय मन थाह सुजाना ॥

चौंतीसी १९

दं धन तुल्य सकल संसारा। उपजत विनशत लागु न बारा ॥
यथा भूमि धन धाम विलाई। करि विचार त्यों लखु सब भाई ॥
लखि असार जग मन को रोकी। करि समाधि लखु रूप विशोकी ॥

चौंतीसी २०

धं धन धनिता का अभिमाना। सर्वलोक महँ तमहि समाना ॥
ऊर्ध्वहुँ का धन चाहत जोई। परवश भोग लहत लघु सोई ॥
कामी नहीं स्वतन्त्र सुख पावै। स्वर्गहुँ जाय बहुरि भव आवै ॥

जन तप लोकहु जाय सो, स्ववश न पावै भोग।
भोगै भोग कुयोग वश, पुनि पुनि पावै रोग ॥२५॥

ब्रह्मा विष्णु शम्भु पद पाई। कामी अभय होत नहिं भाई ॥
कामहि सकल रोग भय हेतू। काम त्याग भवसागर सेतू ॥
जो सब काम सक्रिय नहिं त्यागी। तजिय कुकाम भक्ति हित लागी ॥
धर्म काम गहि अधरम नाशी। लहि गुरु शरण मिलिय अविनाशी ॥

धर्म समान न बन्धु कोउ, हित न भक्ति सम कोय।
काम समान न शत्रु कोउ, ताहि नशे सुख होय ॥२६॥

चौंतीसी २१

नं नेता बान्धव चन्द्रादी । इनहिं सुखद लखि गहत धनादी ॥
पोषिय बन्धु पाय धन धामा । इमि विचारि मन धारत कामा ॥
चन्द्रलोक पाइय करि कर्मा । सुखद सुठाम लहिय सब शर्मा ॥
सो परवश सुख भोगत कोई । निज स्वतन्त्र सुखरूप विगोई ॥
नं नेता निज रूप महाना । ताहि जु लखत धारि हिय ध्याना ॥
च्छण एकहुँ सो ताहि विलोकी । सकल अनात्म दृष्टि दे रोकी ॥
जो निजरूप दृष्टि नहिं पावै । ताकी विषय दृष्टि नहिं जावै ॥

चौंतीसी २२

पं नित विषय कुरस का पाना । पं पुनि पान निरत अघ खाना ॥
करत पाप पानादि स्वरूपा । ताके धर्म नशत शुभ रूपा ॥
विषय निषिद्ध भोग जो कोई । पापरूप सो दुखप्रद होई ॥
पापिहुँ पाय पाप फल नाना । कहत न करिय पाप कोइ स्याना ॥
हम भूले जो पापहिं किन्हा । ताकर फल प्रभु नरकहुँ दीन्हा ॥
करिय न पाप सुसम्पति पाई । मानवता युत धन सुखदाई ॥
मानवता रच्छिय सब भाँती । या विधि दीन कहत दिन राती ॥
भाषिय सत्य करिय नित दाना । यह दीनन का वचन प्रमाना ॥

चौंतीसी २३

फं निष्फल असत्य जो वानी । ताते सतफल दूरहि मानी ॥
सद्गुरु सतफल स्वाद सुलेही । मिथ्या भाषिहिं तनिक न देहीं ॥
निष्फल भाषण फल का भोगी । कहत सुनहु शुभ सन्त सुयोगी ॥
सतफल हीन जीव अज्ञानी । थिति न लहत कहुँ अब मैं जानी ॥

चौंतीसी २४

बं फल स्वर्ग मोक्ष स्तवनादी । करहिं सबहिं फल लहहिं न बादी ॥

स्तुति निन्दादिक त्यागि के, सुनहि सुगुरुवर बैन ।
करहि विचार समाधि वा, सो पावहि फल चैन ॥२७॥

चौंतीसी २५

भं गृह देह हृदय के माँहीं । बिनु विचार रहि भ्रमहिं सदाहीं ॥
भरमहि से नित गमनाऽऽगमना । करत जीव नहिं पावत रमना ॥

अति समीप जे सत फल लोका । भ्रम से दूरि जानि करि शोका ॥
भ्रान्तहुँ भ्रमत पाय दुख पूरा । कहत सुनहु सब सन्त सुशूरा ॥
संशय भ्रम प्रमाद ये तीनो । तेलिक बैल तुल्य सब कीनो ॥

चौंतीसी २६

मं बन्धनप्रद गृह बनितादि । देवहुँ शिव रवि विधि चन्द्रादि ॥
मायामय सेवै जो कोई । गुरु बिनु मर्म न पावै सोई ॥
सद्गुरु सेवि लहै जो ज्ञाना । नाशै सोइ मूल अज्ञाना ॥
ममता युत सेवै जग जोई । मूल तत्त्व लह राम न सोई ॥
ताते कहहिं शिवादि सुदेवा । मूल तत्त्व लहिये निज मेवा ॥
त्यागिय विषय विकार सदाहीं । एकल ब्रह्म लखिय मन माहीं ॥

मूल त्यागि नहि जाइये, डारपात के पास ।
मूल ब्रह्म को सेविके, पावइ सत फल दास ॥२८॥

त्यागिय विषय बन्धप्रद जोई । तजिय कुसङ्ग कुकर्म जु होई ॥
काम कुक्रोध लोभ तजु सारा । त्यागहि से पाइये भव पारा ॥

चौंतीसी २७

यं यश यान त्याग जग पूरी । सत्य सुयश गति त्याग सुदूरी ॥
परवश त्याग गमन सब करहीं । मरण पाय धन एक न धरहीं ॥
कहहिं त्यागि जन सुनु मम बाता । सेविय त्यागि त्याग सुखदाता ॥
करहिं नाम हित यशकर कर्मा । मन न धरहिं निज सात्त्विक धर्मा ॥
त्यागहिं त्याज्य वस्तु नहिं जोई । ताहि सुयश सुख सत्य न होई ॥
कहहिं सन्त त्यागी सुनु भाई । त्याग सेवि जन जंय जय पाई ॥

चौंतीसी २८

रं श्रीराम भूमि धन लागी । करत रारि बिनु धर्म अभागी ॥
त्याग रहित न राम मति पावै । वाक् कलह करि जन्म गमावै ॥
त्यागहि से पावै निज रक्षा । लहै विवेक ज्ञान शुभ अक्षा ॥
दान दया करि तनु मन शोधी । लहै ज्ञान हरि गुरु अनुरोधी ॥
हरि गुरु बिनु अनुरोध विमूढ़ा । कहत राम कहि सुख आरूढ़ा ॥
राम कहत दुख द्वन्द्व विलाहीं । रहत सुखहिं दारिद्रय पराहीं ॥

रामरूप जे सन्त सुज्ञानी । ते पुनि कहहिं विमल सत बानी ॥
सतगुरु शरण जाय गहि चरणा । सेत्रिय राम पूछि भय हरना ॥

चौंतीसी २९

लं द्युति स्वर साधन सुख खानी । सतगुरु बिनु कोइ सकत न जानी ॥
स्फुट वक्ता सतगुरु सत कहहीं । भ्रम संशय प्रमाद मद दहहीं ॥
सतगुरु सत्य ब्रह्म विज्ञाता । मोह मार मद रहित विधाता ॥
कहहिं सदा सबकी हित बानी । शिष्य हृदय गति मति पहिचानी ॥
त्रिविध दोष नाशक त्रिपुरारी । मोह अविद्या हारि मुरारि ॥

अस सतगुरु से पूछि जो, सेवै राम सुजान ।
जीवन्मुक्तिहि पाय सो, पावै पद निर्वान ॥२९॥

तोतर भाषि सुगुरु नहिं होई । तोतर मति ताते लह कोई ॥
तोवर वञ्चक लखत न साँचा । क्षेत्र कुगेह देह धरि नाचा ॥

चौंतीसी ३०

वं परब्रह्म भक्तहूँ ताके । सो अति श्रेष्ठ सुखद जनताके ॥
ताकी बात कहत सब कोई । बातहि से सुख सुगति न होई ॥
वं ब्रह्मज्ञ भक्त मुनि जोई । कहहिं सुनहिं सद्गुरु मत सोई ॥
स्वर्ग पताल सकल दुखरूपा । सुख स्वरूप इक राम अनूपा ॥

चौंतीसी ३१

शं सुखसिन्धु श्रेय विख्याता । सद्गुरु बिनु कोइ लखत न बाता ॥
सुखं सुखसिन्धु दोय नहिं होई । सुखस्वरूप विभु ब्रह्महि सोई ॥
सुखस्वरूप सद्गुरु यों कहहीं । सुनत सुजन सब पातक दहहीं ॥
सद्गुरु वचन शून्य जग जीवा । लहहिं शून्य सत लहहिं न पीवा ॥

चौंतीसी ३२

षं परोक्ष ईश्वर सब कर्ता । सत्यहि ताहि कहहिं सब भर्ता ॥
कथनहि से सत फल नहिं पाहीं । जब लगि लखत न निज मन माहीं ॥
ताते सद्गुरु सन्तन कहहीं । राम ईश सबके मन रहहीं ॥
श्रवण करिय तिहि लखिय विचारी । ध्यान धारणा नित तहँ धारी ॥
राम नाम लखि संग विहाई । लहु सुखसिन्धु अपार सुहाई ॥

निज आतम सत राम पिछानी । माया युत तिहिं ईश्वर जानी ॥
ताके अंश जीव जग जोई । अंशी से सो पृथक् न होई ॥
यदपि निरंश तदपि सब रूपा । सत्य सोइ अति अगम अनूपा ॥
इति लखि जीव न पुनि भव कूपा । पड़त लहत सुख शान्त स्वरूपा ॥

श्रवण मनन अभ्यास करि, राम स्वरूप निहारि ।
रहि असङ्ग सत भक्त जन, पुनि न बहहिं भवधारि ॥३०॥

चौंतीसी ३३

सं ईश्वर जग रचत विचारी । जनु अभक्त हित चिता समारी ॥
सो सर्वज्ञ जानि सब बाता । शुभ सब अशुभ कर्म फल दाता ॥
ताका मर्म जु जीव न जानै । करै कुकर्म सहित अभिमानै ॥

चौंतीसी ३४

हं वारण श्रुति सो नहीं सुनई । पड़ि कुपन्थ हिंसा मद करई ॥
हं कुक्रोध करि नाशइ आना । ताका फल भय लहइ महाना ॥
स्वादादिकवश हिंसक प्राणी । लहै न शान्ति कबहिं अभिमानी ॥
हं ईश्वर भयकारक ताके । भक्ति न ज्ञान हृदय में जाके ॥
ताप देत तिहि ईश सुजाना । शुद्धि हेतु नहिं कारण आना ॥
हर्ष शोक वश सो नित होई । जो जगदीश मर्म नहिं जोई ॥
क्षण सुख पाय करै अभिमाना । पड़ै जाय दुःख सिन्धु महाना ॥

चौंतीसी ३५

क्षं सब क्षेत्र देह गृह नाना । क्षण में नशत जाहि सत माना ॥
नशै भूत भौतिक समुदाई । अहंकार मन बुद्धि बिलाई ॥
नर तनु पाय न सतगुरु चीन्हा । सार शब्द में मन नहिं दीन्हा ॥
राम न भजा न ज्ञानहि पाई । मुये ताहि कहु को समुझाई ॥
नर तनु गये न पाइय अन्ता । कहेउ प्रथम यह गुरु भगवन्ता ॥
मानव तन लहि कीन्ह कुरागा । नहिं विराग नहिं त्याग अभागा ॥
ज्ञान हीन सो अति दुख पावै । बार-बार दुख लहि पछतावै ॥
ब्रह्मा विष्णु महेश दिनेशा । मानव तनु इह लहेउ सुरेशा ॥
करि जप तप योगहुँ विधि नाना । मरि भै देव सुरेश महाना ॥
ब्रह्मा विष्णु महेश सुजाना । लहे मनुष तनु माँहि सुज्ञाना ॥

सनकादिक मुनि कपिलहुँ नारद । गण देवहुँ विज्ञान विशारद ॥
नर तनु केर योग फल पाई । भोगहिं फल कोइ रमहिं सदाई ॥
कोइ लहि आतम ज्ञान सुचैना । पाय परमपद होहिं अचैना ॥

यह सब पुण्य प्रभाव अति, मानव तनु कर आंहि ।
करिय पुण्य सद्भक्ति मति, पाइय सुगति सदांहि ॥३१॥
दश विध पाप तत्त्व चौवीसो, इनते जो प्रभु पार ।
तिहि बोधन हित वचन पैंतिसो, सद्गुरु किया उचार ॥३२॥
चौंतिस वचन ज्ञान हित कहिया, चौंतीसी निरधार ।
प्रथम वचन मंगल औ विषयहुँ, दर्शन हित है सार ॥३३॥
अधिकारी जन अहैं विवेकी, जो तज सकैं विकार ।
सत्य धर्मरत भक्त सुगुरु के, करता विमल विचार ॥३४॥
अनवच्छिन्न सत आनन्दहि है, विषय चिदव्यय सार ।
परयोजन उपलब्धि ताहि की, जीवन्मुक्ति उदार ॥३५॥
सद्गुरु सत्य कबीर दया से, लहिया यह सुविचार ।
ता पद द्वन्द्व नमत हनुमत नित, जो अद्वन्द्व भवपार ॥३६॥
जिहि पद रज को सुमिर नर, चौंतिस अक्षर पार ।
हनूमान पावै सहज, सो अक्षर गुरु सार ॥३७॥

इति श्रीमत्स्वामिहनुमद्दासषट्शास्त्रिविरचित बीजक-
सारबोधिनी टीका अष्टम चौंतीसी प्रकरण ॥८॥



❀ ओम् राम ❀

❀ श्रीसद्गुरु कबीर साहब कृत बीजक ❀

बीजकसारबोधिनी टीका सहित

अथ

नवम बेलि प्रकरण

बेलि १

हंसा सरवर शरिर में हो रमैया राम।
जागत चोर घर मूसल हो रमैया राम॥
जो जागल सो भागल हो रमैया राम।
सुतल से गेल बिगोय हो रमैया राम॥
आजु बसेड़ा नियरे हो रमैया राम।
काल्हु बसेड़वा (बड़ि) दूरि हो रमैया राम॥
परेहु बिराने देश (वा) हो रमैया राम।
नयन मरेहुगे दूरि हो रमैया राम॥

पूर्व प्रकरण के अन्त में मानव तन के मिटने पर ज्ञान की कथा श्रवणादि की दुर्लभता कही गई है। इस शरीर में रहते भी मोहादि को त्यागने ही पर कुशल होता है। अतः उपदेश है कि हे रमैयाराम राम स्वरूप को समझने योग्य हंसा! (विवेकी जीव!) जागत (जागो) मोह नींद को त्यागो। जागने के बिना तेरे घर (हृदय) के धन सुख शान्ति विचारादि को कामादि चोर मूस (चोरा) लिये हैं। जो कोई जागा सो अभिमानादि रहित भागा (कामादि से रहित हुआ) देहाभिमानादि रहित होने से सुख शान्ति युक्त जीवन्मुक्त हुआ और जो सोया रह गया, मरण पर्यन्त विवेकादि द्वारा मोह कामादि को नहीं त्यागा, सो शमदमादिरूप सुख सम्पत्ति को गमाकर चोरों से लुटवाकर गया।

हे हंसा! आजु (इस मानवावस्था में) तेरा मोक्ष भवन के नियरे पास में बसेड़ा (स्थिति, निवास) है। काल्हु (पशु आदि योनियों में) मोक्ष भवन सुख शान्ति आदि से दूर पड़ चुके हो और जागने के बिना फिर वही अवस्था होगी क्योंकि जागने के बिना बिराने (अन्य) के देश में (यमलोकादि में

मन माया के वश में) पड़ चुके हो और फिर नयन (विवेक विज्ञानादि नेत्र) से दूर (रहित) होकर मरोगे, तो वही दशा होगी। अतः जागो और भागो (असङ्ग होवो)। "जागत के स्थान में जगत पाठान्तर है।

त्रास मथन दधि कीयो हो रमैया राम।
भवन मथेउ भरपूर हो रमैया राम॥
फिरि (के) हंसा पाहुन भयल हो रमैया राम।
बेधिन्ह पद निरबान हो रमैया राम॥
तुम हंसा मन मानिक हो रमैया राम।
हटलो न मानहु मोर हो रमैया राम॥
जस रे कियहु तस पायहु हो रमैया राम।
हमर दोष जनि देहु हो रमैया राम॥

नयन रहित तुमको त्रास (भय) ने दधि मथन के समान अनेकों बार मथन किया है और तेरे भवनों (शरीरों) को भी भरपूर (खूब) मथा है। फिर हे हंसा ! उस भय और कष्ट की अवस्था में ही इस मानव शरीर से पाहुन की तरह वियुक्त हुए हो और होते हो। अतः उस अन्तावस्था में भी निर्वाण पद के लिये कुछ नहीं कर सकने से तुम सबने निर्वाण पद का बेधन (नाश) किया। अभयादि दैवी सम्पत्तियों को तुम सब ने नहीं प्राप्त किया। हे हंसा ! जागने के बिना तुम मनमानिक (मन के कहने में हो) विवेक रहित मन के माफिक कर्मादि करने वाले हो। अतः मोर हटल (सद्गुरु के निवारण) को तुम नहीं मानते हो। निषिद्ध हिंसा असत्य भाषणादि से निवृत्त नहीं होते हो। अतः जैसा शुभाशुभ कर्मादि किये हो, तैसा ही फल पाये हो और पावोगे। तहाँ किसी कष्ट दशा में आने पर हमर (ईश्वर गुरु कालादि) का दोष नहीं देना, नहीं तो और भी अपराध बढ़ जायगा।

अगम काटि गम कियेहु हो रमैया राम।
सहज कियेहु व्यापार हो रमैया राम॥
राम नाम धन वणिज किय हो रमैया राम।
लादेहु वस्तु अमोल हो रमैया राम॥

पाँच लदनु (आँ) लादि चले हो रमैया राम।
नव बहियाँ दश गोण हो रमैया राम॥
पाँच लदनुआँ हारे हो रमैया राम।
खाँखर डारिन फोरि हो रमैया राम॥

अगम्य वन तुल्य यातनादि कष्टमय नरकादि पशु आदि अवस्थारूप संसार को काट (भोग) कर तुमने मानवावस्था में कुछ गम (प्रकाश गमन योग्य मार्ग) किया है। परन्तु यहाँ मोह से तुमने सहज (स्वभाव सिद्ध) आहार निद्रा मैथुनादि का ही व्यापार किये हो, अभय जागृति ब्रह्मचर्यादि का व्यवहार नहीं करते हो। जो कोई गुरु के हटा को नहीं मानकर रामनाम धन का बणिज (व्यापार) किया है और अमूल्य वस्तु को लादा है (केवल राम नामादि से स्वर्ग मोक्षादि प्राप्त ही समझा है) और उस अमूल्य धन को पाँच लदनु (पाँच भौतिक देह) पर लादकर चला है। नाम जपादि से शारीरिक सुख सम्पत्ति स्वास्थ्य सामर्थ्यादि को ही मोक्ष समझा है और इस व्यापार में चार अन्तःकरण पाँच प्राण इन नवों को बहियाँ (व्यापार वाहक साथी) बनाया है। तथा दश इन्द्रियों को गोण (बोरा) बनाया है। अर्थात् इनसे प्राप्त करने योग्य इनके विषय शारीरिक सुखादि को मोक्षादि समझा है। परन्तु जब पाँच लदनुहारे वृद्धादि अवस्था युक्त देह हुई) तब उनके खाँखर (तुच्छ सुख सम्पत्ति) असार देहादि वे पाँच भूत ही फोर दिये, सब भूत बिखर गये, जिससे सुखादि सहित शरीर नष्ट हो गया।

शिर धुनि हंसा उड़ि चले हो रमैया राम।
सरवर मीत जोहार हो रमैया राम॥
आगि जो लागि सरवर (में) हो रमैया राम।
सरवर जरि भेल धूरि हो रमैया राम॥
कहहिं कबिर सुनु सन्तो हो रमैया राम।
परखि लेहु खरा खोट हो रमैया राम॥१॥

जिसमें सुख शान्ति की आशा से जीव आसक्त था उसके नष्ट होने पर वह दुखी हंस शिर धुनकर उड़ चला और चलता है। परन्तु अन्त समय तक ममता आदि के नहीं छूटने से उस देह को मित्र भाव से जोहार (प्रणाम) करके चलता है। तथा अन्य सरवर मीत के जोहार (जोह खोज) में चलता है। तथा

प्रथम का जो सरवर मीत रहता है उसे व्यर्थ ही हारकर अविवेकी चलता है। फिर जो देहरूप सरवर में जो अग्नि लगी कि जिससे देह जरकर धूलि हो गई और होती है। अतः जागने के बिना मानव तन से भी सत्यफल नहीं मिला, न मिलता है। अतः कबीर साहब कहते हैं कि हे सन्तो ! सद्गुरु के शरण में जाकर मोह निवृत्ति जागृत्ति आदि के लिये श्रवणादि करो और खरा खोट (सत्य मिथ्या=आत्मानात्मा) को विवेकपूर्वक परख लो कि जिससे मानव देह सफल हो, मुक्ति मिले।

मोह त्याग बिनु चोर गन, कामादिक सब आय।
लूटत हैं सब जगत के, धन विवेक सुखदाय ॥१॥
सद्गुरु के उपदेश सुनि, जागि रहै जो नीत।
ताको या संसार में, होत सदा सब हीत ॥२॥
जागन के अवसर सुगम, मानव तन के माँहि।
मिलत सहज सुख हेतु सो, अनत सुअवसर नाँहि ॥३॥
सद्विवेक वैराग्य दृढ़, समता सबके माँहि।
मोह त्याग है जागना, मोह नींद तम आँहि ॥४॥
मोह हेतु यम त्रास का, जन्म मरण भव हेतु।
मोक्ष दूर ह्वै मोह से, मन वृश परै कुखेतु ॥५॥
मानु न गुरु उपदेश को, मोह विवश जो होय।
निर्गुण राम न लखत सो, लखत देह सुख सोय ॥६॥
दैहिक सुख के कारने, इन्द्रिय वश ह्वै प्राणि।
पाता नहिं सुख सिन्धु कहुँ, करु विवेक इमि जानि ॥७॥

"उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।" (कठ० १।३।१४) ॥१॥

बेलि २

भल सुमिरण जहड़ायहु हो रमैया राम।
धोख कियहु विश्वास हो रमैया राम ॥
ईतो है बन सीकत हो रमैया राम।
सीरा कियो विश्वास हो रमैया राम ॥
ई (तो) है वेद भागवत हो रमैया राम।
गुरु मोहि दीहल थापि हो रमैया राम ॥
गोबर कोट उठायहु हो रमैया राम।
परि हरि फेंकहु खेते हो रमैया राम ॥

हे रमैया राम उक्त खरा खोट (सत्य मिथ्या साधु असाधु) आदि के पारख (ज्ञान विवेक) के बिना तुमने भल सुमिरण को (भले स्मरण विचार वालों को तथा भले के स्मरण को भले स्मरणरूप धर्म शास्त्रों को) जहड़ाया (धोखे में डाला, तंग किया, त्यागा) और धोखे में (मिथ्या वचनादि में तुच्छ विषयों में तुमने सुखदत्वादि का विश्वास किया। परन्तु (ईतो) ये संसार के विषयादि तो बन के सीकता (बालू) तुल्य सर्वथा निरस (आनन्द रहित) हैं। "रसो वै सः" रस (आनन्द) स्वरूप तो वह आत्मा है कि जिसके स्मरण को तुमने त्यागा है और इस सिकता में तुमने सीरा (महान् भोग हलुआपन) का विश्वास किया है। कबीर साहब कहते हैं कि जो मैं यह कह रहा हूँ कि जागो, विवेक करो, आत्मा आनन्दरूप है, विषयादि आनन्द शून्य (नीरस) हैं। यही तो वेद भागवत का भी उपदेश है और गुरु ने मुझे यही थापि दिया है (निश्चय कराया है) इस उपदेश के ज्ञानादि के बिना तुमने गोबर का कोट उठाया है (मल मूत्रादिमय देह का अभिमान किया है) मिथ्या अपवित्र विषयादि को अपना स्वरूप मानकर उनका संग संग्रह किया है। परन्तु इनसे कामादि के विजय को नहीं पा सकते हो। अतः इनके अभिमान संग संग्रहादि को परिहरि (त्याग) कर, इन्हें प्रकृति (माया) रूप खेत में फेंक दो (इनको माया मात्र मिथ्या समझो) और इनके संगादि से रहित आनन्द स्वरूप आत्मा को समझो।

बुधि बल जहाँ न पहुँचे हो रमैया राम।
तहवाँ खोज कस होय हो रमैया राम॥
सो सुनि मन धीरज भयल हो रमैया राम।
मन बढ़ि रहल लजाये हो रमैया राम॥
फिरि पाछे ..नि हेरहु हो रमैया राम।
काल भूत सब आहीं हो रमैया राम॥
कहहिं कबीर सुनु सन्तो हो रमैया राम।
मति ढीगहु फेलाये हो रमैया राम॥२॥

इति श्रीसद्गुरुकबीरकृते विविधबन्धबीजविध्वंसने
बीजकनाम्नि ग्रन्थे मायानिवृत्तिसम्पादकं
नवमं बेलिप्रकरणं समाप्तम्॥९॥

उन विषयादि को मायामात्र मिथ्या समझने पर श्रीसद्गुरु आदि के बिना (जहाँ) जिस आनन्दस्वरूप में अपनी बुद्धि के बल नहीं पहुँच सकते हों, तहवाँ (उस निर्गुण आनन्दस्वरूप में) भी खोज (विचारादि स्मरण ध्यानादि) कैसे होते हैं (उसमें बुद्धिबल कैसे पहुँचते हैं) सो सद्गुरु के शरण में जाकर उनसे पूछो, वहाँ पहुँचने के खोज (मार्ग) को समझो। क्योंकि सो सुन करके ही पूर्वकाल के जिज्ञासुओं के मन में धैर्य हुआ है और मन बढ़ि (मन की वृद्धि) श्रवणादि से मानो लज्जित होकर रह गई है। अर्थात् आत्मा के श्रवणादि से मन का विस्तार नष्ट हुआ है और होता है। परन्तु तुम सद्गुरु से श्रवण करके ज्ञान के भूमिकाओं में आगे बढ़ो, फिरि (लौटकर या पुनः) संसार के तरफ नहीं हेरो (देखो) क्योंकि संसार की सब वस्तु कालभूत (कालस्वरूप दुःखद) हैं। तथा काल से ग्रसित विनश्वर हैं। अतः फिर भी कबीर साहब कहते हैं कि हे सन्तो! पारख (विवेक ज्ञानादि) के लिये श्रवणादि करो और श्रवण करके अपनी मति (बुद्धि) को ढीगहु (पासहु) में फैलाये रहो। अर्थात् सर्वत्र विवेकयुक्त बुद्धि का धारण करो। अथवा फैलाये हुए मायाजाल में मन इन्द्रियादि को मति ढीगहु (नहीं त्यागो) इत्यादि।

बिनु विवेक होवत सदा, कुगति कुबुद्धि अनेक।
ताते गुरु उपदेश सुनि, करि विवेक गहु एक ॥ ८ ॥
बिनु विवेक सतपुरुष सत, सुमिरण सत का त्याग।
करत झूठ विश्वास करि, ताते भया अभाग ॥ ९ ॥
चिदानन्दघन त्यागि के, रहत कुविषय लुभाय।
सद्गुरु के उपदेश को, समुझत नहि मन लाय ॥१०॥
गुरुजन का उपदेश सत, सुनिय तजिय विकार।
जहँ बुधि बल पहुँचै नहीं, तहँ गुरु करत सँभार ॥११॥
सुनिय निजातम तत्त्व को, जाते धीरज होय।
मन की बाढ़ निवृत्त ह्वे, सहज परम पद सोय ॥१२॥
सद्गुरु के उपदेश सुनि, पीछे देखिय नाँहि।
ऊर्ध्व भूमि में ज्ञान की, चलिये मति गहि माँहि ॥१३॥
माया बेलि कुकेलि से, मोह द्रोह से पार।
जो सद्गुरु तिहि चरण रज, हनूमान शिर धार ॥१४॥२॥

इति श्रीमत्स्वामिहनुमद्दासषट्शास्त्रिविरचित बीजक-
सारबोधिनी टीका नवम बेलि प्रकरण ॥९॥

❀ ओम् राम ❀

* श्रीसद्गुरु कबीर साहब कृत बीजक *

बीजकसारबोधिनी टीका सहित

अथ

दशम बिरहुली प्रकरण

भ्रम से निज जन्मादि लखि, विकल फिरत मोहान्ध।
डँसिया काम भुजंग जिहि, समुझत नहिं सुख सन्ध ॥ १ ॥
तिनको गुरु उपदेश ते, अभय निजातम ज्ञान।
मन्त्र परम हितकारि सो, करत विषय विष हान ॥ २ ॥
बिरह बुद्धि विषधर महा, ताते ग्रसित कुबुद्धि।
ताके शोधक गुरु वचन, देत परम सत शुद्धि ॥ ३ ॥
ऐसे सद्गुरु सत्य हरि, को प्रणमत हनुमान।
जरत विषय विष जीव को, जिन कीन्हा कल्याण ॥ ४ ॥

बिरहुली १

आदि अन्त नहिं होते बिरहुली।
नहिं जर पल्लव पेंड़ बिरहुली ॥
निशि बासर नहिं होते बिरहुली।
पवन पानि नहिं मूल बिरहुली ॥
ब्रह्मादिक सनकादिक बिरहुली।
कथि गये योग अपार बिरहुली ॥
मास अषाढ़े शीतल बिरहुली।
बोइन सातो बीज बिरहुली ॥

जन्म मरण गमनागमन, आदि अन्त कछु नाहिं।
निज आतम में हैं कभी, बिनु विवेक दरशाहिं ॥ ५ ॥

रातदिवस का भेद नहि, स्वप्रकाश चिति माँहि ।
भूत मूल कारण नही, रह असङ्ग सब ठाहि ॥ ६ ॥
कर्म भक्ति ज्ञानादिमय, योग जु अगम अपार ।
सात सात हैं बीज भी, तिन के बहुत प्रकार ॥ ७ ॥
ब्रह्मादिक सनकादि ने, आदिहि सतयुग माँहि ।
बोया सज्जन हृदय में, सन्त सम्हारहि ताहि ॥ ८ ॥

पूर्वोक्त उपदेशों को सुनकर भी अपनी उत्पत्ति आदि मानकर तथा परमात्मा से अपने विरह वियोगादि समझकर दुःखी जिज्ञासु के प्रति उपदेश देते हैं कि हे बिरहुली ! (बिरही) जीव ! तेरे आदि अन्त (जन्म मरण) नहीं होते हैं। तुम अज अविनाशी हो, तेरे जर (जड़, मूल, कारण) कोई नहीं हैं और पल्लव (पत्र, विस्तार) पेंड़ (शाखा) आदि भी नहीं हैं, पल्लवादि माया के हैं। "योऽयमात्मेदममृतम्" (बृ० २।४।१) "स वा एष महानात्माऽजरोऽमरोऽमृतोऽभयः" (बृ० ४।४) स्वयं प्रकाश होने से तुम में रात्रि दिन का भेद नहीं है और असङ्गता से पवन पानी आदि का सम्बन्ध तुम में नहीं है, न तेरा कोई मूल कारण है, पवन पानी का मूल कारण तुम में नहीं है। उस तेरी आत्मा के ज्ञान के लिये ब्रह्मादिक प्रवृत्ति मार्ग के महापुरुषों ने और सनकादिक निवृत्ति मार्ग के महापुरुषों ने, कर्मयोग (निष्काम सुकर्म) भक्ति योग (निष्काम सेवा उपासना) और ज्ञान योग (विवेकात्मानुभव) रूप अपार (अनेक भेद युक्त) योग वेदादि द्वारा कह गये हैं और उन लोगों ने (चार युग चौमास) इस कथन के अनुसार आदि सतयुगरूप शीतल (सात्त्विक) अषाढ़ में ऋग्वेद में वर्णित सात पाकयज्ञ, सात हविर्यज्ञ और सात सोमयज्ञ के बीजों को बोया और सात भूमिका युक्त ज्ञान के बीजों को बोया। तथा सविकल्प समाधि के यम नियमादि साधनरूप सात बीजों को बोया और सप्त धातुक शरीर के बीजों को बोया।

निति कोड़हिं निति सींचहिं बिरहुली ।
निति नव पल्लव पेंड़ बिरहुली ॥
छिछिल बिरहुली छिछिल बिरहुली ।
छिछिल रहल तिहुँ लोक बिरहुली ॥

फुलवा एक भल फुलल बिरहुली ।
फूलि रहल संसार बिरहुली ॥
सो (फुल) बन्दहिं भक्तजना बिरहुली ।
बन्दि के राउर बाँह बिरहुली ॥

उक्त बीज के क्षेत्र (हृदयादि) को विवेकी लोग आज भी सदा कोड़ते (खोदते) और सींचते हैं । शरीर मन आदि को कर्म शक्ति युक्त ज्ञानादि योग्य बनाते हैं कि जिससे सदा ज्ञानादि की नव (नवीन) पल्लव (विस्तार) पेंड़ (शाखा) होती है और सब योग और संसार वृक्ष नदी के वेग तुल्य छिछिलता (फैलता) है और वह तीन लोक में फैल रहा है । सकाम कर्म द्वारा खोदने सींचने से संसार वृक्ष में एक फूल (मनोमय विषय) भलीभाँति से फूला है, सो संसार (जन्मादि) का हेतु होने से संसाररूप ही फूल रहा है तथा संसार में सर्वत्र फूल रहा है । उक्त ज्ञानादि के विना इस सांसारिक फूल (विषय स्त्री धन पुत्रादि) के लिये भक्ति जन भी देवादि की बन्दना (स्तुति) करते हैं और राउर (सर्व श्रेष्ठ) ईश्वर के बाँह (सामर्थ्य की वन्दना करके उसी फल को चाहते हैं) ।

सो (फुल) लोढ़हिं सन्त जना बिरहुली ।
डँसि गेल बैतल साँप बिरहुली ॥
बिषहर मन्त्र न मानै बिरहुली ।
गारुड़ बोले अपार बिरहुली ॥
बिष कि क्यारि तुम बोयहु बिरहुली ।
लोढ़त का पछताहु बिरहुली ॥
जन्म जन्म यम अन्तर बिरहुली ।
फल एक कनयल डार बिरहुली ॥
कहहिं कबीर सचु पाव बिरहुली ।
जो फल चाखहु मोर बिरहुली ॥

इति श्रीसद्गुरुकबीरकृते विविधबन्धबीजविध्वंसने
बीजकनाम्नि ग्रन्थे निखिलविषविध्वंसनं
दशमं बिरहुलीप्रकरणं समाप्तम् ॥१०॥

वेषधारी सन्त लोग भी उसी फल को लोढ़ते हैं (प्राप्त करते हैं)। अतः तीव्र कामादिरूप बौरा साँप ने इन्हें डँस लिया है, इससे ये लोग भी विषहर मन्त्र को नहीं मानते हैं, न कामादिरूप विषधर मन्त्र को मानता है। गुरुरूप गारुड़ी तो अपार उपदेश देते हैं (बहुत कहते ही हैं)। उपदेश को नहीं मानकर कुफल के भोगकाल में पश्चात्ताप करने वालों से कहते हैं कि तुमने विष की क्यारी बोई है (संसार के हेतु वासना कामादि का हृदय में धारण किया हैं) तो अब उसके फल फूल के लोढ़ते (चुनते भोगते) समय पश्चात्ताप क्या करते हो "दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः" इत्यादि उपदेश के अनुसार उद्वेगरहित मन वाला होकर दुःख-को भोगना चाहिये और समझना चाहिये कि इस संसाररूप कनयल (विष वृक्ष) की जर (शाखा) सब लोक में जन्म-जन्म में यम (मृत्यु) के अन्तर (वश) में होना (जाना) ही रूप एक मुख्य फल लगता है और ऐसा समझकर इससे विरक्त विवेकी साधु भक्त होकर दया क्षमादिपूर्वक यदि तुम मेरे ज्ञान वृक्ष के फल को एकबार चाखो (अनुभव करो) तो जन्मादि के भय से रहित जीवन्मुक्ति विदेह मुक्ति के सचु (सत्यानन्द) को पावोगे।

सप्त धातु मय देह के, बीज जो बोया पूर्व।
ताकी सृष्टिहि फैलिया, तीनो लोक अधूर्व ॥ ९ ॥
ताके फल फुल सुखन में, लगे सन्तहूँ भक्त।
ताते काम विमुग्ध भै, होत न विमल विरक्त ॥१०॥
रागहि से दुख पाय के, शिर धूनहिं पछताहिं।
ताको सद्गुरु देव कह, कहु गुरु वचन सदाहिं ॥११॥

इति श्रीमत्स्वामिहनुमद्दासषट्शास्त्रिविरचित बीजक-
सारबोधिनी टीका दशम बिरहुली प्रकरण ॥१०॥



❀ ओम् राम ❀

❀ श्रीसद्गुरु कबीर साहब कृत बीजक ❀

बीजकसारबोधिनी टीका सहित

अथ

एकादश साखी प्रकरण

जीवरूप एक रामहि, शिव स्वरूप ओंकार।
आदि अन्त भय रहित सो, निर्विकार आधार ॥ १ ॥
उक्त निजातम तत्त्व को, पुनि वरणत गुरुराय।
साक्षि शुद्ध समुझावते, सकलो मोह मिटाय ॥ २ ॥
सकल ग्रन्थ के सार को, साक्षिरूप दर्शाय।
मोह मिटावत जीव के, तिहि गुरु लागिय पाँय ॥ ३ ॥
साक्षिरूप सब देव हैं, साक्षी ईश कहाय।
गुण कृत भेद मिटाय के, भजिये राम सदाय ॥ ४ ॥
राम सकल की आतमा, राम सकल का मूल।
राम सकल का मित्र हित, राम नाम नहि भूल ॥ ५ ॥
राम भुला सो बहि गया, चौरासी भव धार।
राम गहा सो ऊबरा, सतगुरु कहत पुकार ॥ ६ ॥
राम साक्षि सर्वज्ञ शिव, ब्रह्म अनन्त अपार।
मनोऽज्ञान प्रतिबिम्ब जिव, जन्मत करि हंकार ॥ ७ ॥
तजि हंकार निजात्म लहि, ममता मोह मिटाय।
मुक्त होव विज्ञान से, सो भाषत गुरुराय ॥ ८ ॥
सद्विवेक वैराग्य युत, शम दमादि समुदाय।
श्रवणादिक गुरु भाषिया, सुनिय करिय चितलाय ॥ ९ ॥
सहज धारणा ध्यान शुभ, सद्विचार को पाय।
करि सतसंग कुसंग तजि, द्वन्द्व तरिय गति पाय ॥१०॥

पूर्व प्रकरणों में बहुधा वर्णित तथा विरहुली प्रकरण में जन्मादि से रहितरूप से वर्णित और—"साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।" (श्वेता० अ० ६।११) इत्यादि श्रुतियों से वर्णित केवल (शुद्ध) स्वरूप चेता (चेतयिता = प्रकाशक) साक्षी (साक्षाद्द्रष्टा) का वर्णन करते हुए सर्व प्रकरणों के सारार्थ का इस अन्तिम प्रकरण में वर्णन करते है कि, जिसके द्वारा आत्मज्ञान से जीव नित्य सुखी मुक्त हो।

अथ साक्षिस्वरूप सारशब्दादि वर्णन प्रकरण १

जहिया जन्म मुक्ता हता, तहिया हता न कोय।
छठी तुम्हारी हौं जगा, तूँ कहँ चला बिगोय ॥१॥

प्रलयादिक में जन्म से, रहित रहा जब जीव।
तब कोइ संगी थे नहीं, मातु पिता सुत पीव ॥११॥
पाँच तत्त्व गुण तीन से, पर निज आतम देव।
रहा सोइ अब हो तुहीं, लखो नित्य निज भेव ॥१२॥

जहिया (जब इस जन्म से पूर्व या प्रलय में) तुम इस वर्तमान जन्म देहादि से मुक्ता (मुक्त रहित) हता (था) तहिया तब (उस समय) तेरी वर्तमान देह के माता पिता कुल कुटुम्बादि कोई नहीं थे। किन्तु पाँच कोश पाँच भूत की अपेक्षा छठी (छठवाँ) कोशादि से विलक्षण तेरी आत्मा उस समय भी थी और उसी स्वरूप में अज्ञान वासनादि युक्त समष्टि सूक्ष्म देह थी कि जिसमें "तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय।" (छा० ६।२।३) विचारात्मक ज्ञान हुआ कि मैं एक से बहुत होऊँ, बहुतरूप से उत्पन्न होऊँ। यही हौं (अहंकार) महाप्रलय के अन्त में जगा कि जिससे यह मायामय संसार देहादि हो गये। तथा पूर्वजन्म के कर्म वासना अहंकारादि के जागृत (व्यक्त) होने ही से ये देहादि हुए हैं। तहाँ तुम उस छठी आत्मा को बिगोय (भूल) कर कहाँ लोक व्यवहारादि में चले हो, उसके श्रवणादि करो और ज्ञान से अज्ञानादि को निवृत्त करो कि जिससे जन्मादि का अभाव हो। तथा जब कोई नहीं था तब भी हौं (मैं) छठी स्वरूप जगा (प्रकाश स्वरूप) था और अब भी मैं (सद्गुरु स्वरूप) जगा हुआ हूँ। फिर तुम सद्गुरु को भूलकर कहाँ चले हो, मोक्ष सुख चाहो तो सद्गुरु को चीन्हो, सेवो इत्यादि ॥१॥

जाय छठीली आपनी, बात न पूछो कोय।
जिन यह भार लदाइया, निर्वाहैगा सोय ॥२॥

नित्य निजातम जानि के, तजिय आन की आश।
प्रारब्ध परमेश्वर ही, योग क्षेम करु खास ॥१३॥

अपनी छठीली (छठी) आत्मा (सत्यस्वरूप) में जाकर (मन लगाकर) फिर किसी से कोई संसार की बात नहीं पूछो जीविका आदि की चिन्ता भी नहीं करो, यदि कहो कि संसार के व्यवहारादि के बिना शरीर की स्थिति कैसे रहेगी, तो समझो कि जिन (ईश्वर कर्मादिकों) ने तेरे ऊपर यह देहरूप भार लादा है, वे ही इस देह के लिये योग क्षेमादिरूप निर्वाह (व्यवहार) करे, करायेंगे। क्योंकि–

"येन शुक्ली कृता हंसाः शुकाश्च हरितीकृताः।
मयूराश्चित्रिता येन स ते वृत्तिं विधास्यति ॥ १ ॥
वृत्त्यर्थं नातिचेष्टेत सा हि धात्रैव निर्मिता।
गर्भादुत्पतिते जन्तौ मातुः प्रस्नवतः स्तनौ ॥ २ ॥"
"अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥ ३ ॥"

इत्यादि प्रसिद्ध उपदेश है ॥ २ ॥

शब्द शब्द बहु अन्तरे, सार शब्द मत लीजे।
कहहिं कबिर (जहँ) सार न दरशै, धृक जीवन सो जीजे ॥३॥

निज आतम के ज्ञान हित, सार शब्द हिय धारु।
करि सुविवेक असार से, सार शब्द निरुआरु ॥१४॥

शब्द शब्द (शब्दों) में बहुत अन्तर (भेद) है। अतः विवेकपूर्वक सार शब्द के मत (सिद्धान्त ज्ञान) को लो (धारण करो) क्योंकि जिसको सार शब्द के मत का दर्शन नहीं होता है, कबीर साहब कहते हैं कि वह धिकार योग्य नीच जीवन से जीता है ॥ ३ ॥

शब्द हमारा आदि का, पल पल करहू याद।
अंन्त फलैगी माहली, ऊपर के सब बाद ॥४॥

हमारा (सद्गुरु का) शब्द आदि का (आदितत्त्व, अन्तरात्मा का) बोधक है। उसका पल-पल में (सदा) याद (स्मरण) करो। क्योंकि ऊपर (बाहर) के सब शब्द वाद (व्यर्थ) हैं और अन्तकाल में उनमें माहली (माहुरी विष) फलेगी। माहली विष तुल्य फल लगेंगे। माहली में जैसे ऊपर सुन्दरता रहती है, परन्तु उसकी सुन्दरता व्यर्थ होती है, क्योंकि भीतर काली कटु विषरूप रहती है। तैसे ही काम कथा आदि को समझना चाहिये। तथा मेरी कथा को याद करो। क्योंकि यह अन्तरात्मा की कथा है और अन्त में यही माहली (अन्तरात्मा की कथा) सत्यफल को फलती है। ऊपर की कथा सब व्यर्थ होती हैं ॥४॥

शब्द हमारा आदिका, शब्दहिं पैठा जीव।
फूल रहन की टोकरी, घोरे खाया घीव ॥५॥

सार शब्द जिन नहिं लखा, करि सुविवेक विचार।
परि असार के जाल में, गै सो जीवन हार ॥१५॥

हमारा सार शब्द आदि वस्तु का बोधक है। परन्तु उसके विवेक ज्ञान से रहित जीव असार (मिथ्या वस्तु के बोधक) शब्दों में पैठा (आसक्त, फँसा) है। अतः वे शब्द भी जीवों के अन्तःकरण में पैठ गये हैं कि जिससे जीव सब फूलों के रहने की टोकरी (पात्र) के समान शब्दादि की वासनाओं से युक्त हुए हैं। अतः जैसे घोर (तक्र) घृत को खाता (नष्ट करता) है, तैसे ही वासना कामादि जीव को नष्ट दुःखी करते हैं। अतः सार शब्द के विवेकादि अवश्य कर्तव्य हैं ॥५॥

शब्द हमार तुँ शब्द का, सुनि मति जाहु सरक।
जो चाहहु निज तत्त्व को, शब्दहिं लेहु परक ॥६॥

सार शब्द हमारा (सद्गुरु का) है और तुम विवेकादि के योग्य मनुष्य इस शब्द का अधिकारी हो, अतः इसको सुनो, परन्तु इसको सुनकर फिर कहीं सरक (गिर) नहीं जाओ, मिथ्या शब्द में नहीं लगो और यदि निज तत्त्व (यथार्थ स्वरूप के अनुभव) को चाहते हो तो सार शब्द ही द्वारा उसको परख लो (समझ लो) वह किसी इन्द्रिय का विषय नहीं है। अतः निरन्तर श्रवणादि द्वारा उत्कृष्ट तत्त्व प्राप्ति की इच्छा मोक्षेच्छा के होने पर भी शब्द के विचार आदि से ही समझो ॥६॥

शब्द हमारा आदि का, अतिबल दिखा न कोय।
आगे पीछे जो करे, सो बलहीना होय ॥७॥

धैर्यं धर्मं वैराग्य बल, लहि करु सार विचार।
निःसंशय तब पाइहो, सुख निज तत्त्व उदार ॥१६॥

हमारा शब्द आदि का है, परन्तु उसको प्राप्त करने वाला योग्य अधिकारी अति बली कोई नहीं दीख पड़ता है। क्योंकि जो कोई आगे पीछे (संशय) करता है, सो बल हीन हो जाता है। तथा आत्मा से आगे (परे) की जो कल्पना करता है, तथा आत्मा से पीछे होने वाले कार्यात्मक शरीरादि में जो आसक्त होता है, आत्म बुद्धि करता है, सो बलहीन होता है और "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः ॥' (मुण्ड० २।२।४) यह सत्य आत्मा बलहीन से प्राप्त करने योग्य नहीं है। "यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चित्।" (श्वेता० ३।६) उससे पर अपर कुछ सत्य नहीं है। अतः पर अपर की कल्पना करने वाला बलहीन होने से निज तत्त्व को नहीं पाता है, इसलिये इन्हें त्यागना चाहिये ॥ ७ ॥

संशयादि के त्याग के बिना हानि का वर्णन करते हैं कि—

शब्द बिना श्रुति आँधरी, कहहु कहाँ को जाय।
द्वार न पावै शब्द का, फिर-फिरि भटका खाय ॥८॥

सार शब्द के श्रवण बिनु, अन्धी मति भरमाय।
शब्द द्वार पावै नहीं, फिरि-फिरि भटका खाय ॥ १७ ॥

संशयादि से सार शब्द की प्राप्ति के बिना श्रुति (सुरति, ध्यान, मनोवृत्ति, बुद्धि) अन्धी (विवेक रहित) रहती है, तो कहो कि वह कहाँ (किस सन्मार्ग, सद्वस्तु में) जा सकती है। वह तो जब तक असार शब्द अर्थ से छुटकारा के द्वाररूप सारशब्द को नहीं पाती है, तब तक असार शब्द और अर्थ के घेरे (मोहादि) में फिर-फिर कर भटका (धोखा) खाती है (कष्ट भोगती है) ॥८॥

इति साक्षिस्वरूप सारशब्दादि वर्णन प्रकरण १

अथ शब्दमहिमा विवेकादि प्रकरण २

शब्दे मारा गिर परा, शब्दे छोड़ा राज।
जिन यह शब्द विवेकिया, तिनको समरा काज ॥९॥

सार शब्द से जानि सत, मुक्त होत हैं प्राणि।
निज सा सबको जानि के, सबका हित मति आनि ॥ ९ ॥

विवेकपूर्वक सार शब्द के ज्ञान को और ज्ञान के फल को दर्शाते हैं कि मारण मोहनादिरूप शब्द के मार से कोई गिर पड़ा (मर गया मुग्ध हुआ) और कामादिमय शब्दों से धर्म भ्रष्ट क्रुद्ध बदहोश हो गया और विवेक वैराग्यादिमय शब्दों से कोई (किसी ने) राज्यादि को त्याग दिया। ऐसे महाबली शब्दों का जिन लोगों ने विवेक किया और विवेकपूर्वक सार शब्द के ज्ञान द्वारा सार वस्तु (निजात्मा) को निश्चितरूप से समझा, उनका कार्य सुधर गया, वे लोग मुक्त हो गये ॥ ९ ॥

जौं जिव जानहु आपना, करहु जीव को सार।
जियरा ऐसा पहुना, मिलै न दूजी बार ॥१०॥

हे जीव! जौं (यदि) तुम अपना भी सुधार जानते (समझते, चाहते) हो, तो अपने जीवात्मा को सार (सत्य) करो (देहादि के अभिमानादि को त्यागकर सत्य साक्षिस्वरूप आत्मा को समझो) और यह समझना ही उस आत्मस्वरूप पाहुन का सत्कार करो। हे जियरा! (जीव!) यह पाहुन भी ऐसा विलक्षण है कि दूजी बार (अन्य देह में) नहीं मिलता है। अतः यहाँ ही सत्कारपूर्वक उससे मिलो। यह देह भी ऐसा पाहुन है कि शीघ्र दूसरे बार नहीं मिलती है। अतः जो अपने लिये हित समझो, सो अन्य के लिये भी हित करो। यह मनुष्य का कर्तव्य है, इससे अपना कार्य सुधरता है, अन्यथा नहीं ॥१०॥

जौं जानहु जग जीवना, जौं जानहु तौं जीव।
पानप चाहहु आपना, पनियाँ माँगि न पीव ॥११॥

यदि तुम पूर्वरीति से सबका हित करते हुए जगत में जीवना जानते हो तो जीवो। ऐसा जीवन ही सफल होता है। परन्तु इतना और भीं समझो कि यदि तुम अपना पानप (इज्जत, मर्यादा) चहते हो, तो पानी भी किसी से माँगकर

नहीं पीवो (आत्मावलम्बी बनो) आशा तृष्णादि के त्यागी सन्तोषी होवो (पराधीन मुक्ति भी नहीं लो) क्योंकि पराधीन जगत में जीने की जो तुम आशा करते हो, इसीसे तुम जीव कहाते हो। "यावद्विषयभोगाशा जीवाख्या तावदात्मनः।" (योग वा० ६।१२१।१) जब तक विषयादि की आशा रहती है, तभी तक आत्मा का जीव नाम रहता है। ज्ञानादि से आशा रहित होने पर नित्यमुक्त ब्रह्मस्वरूप कहा जाता है, जीव नहीं ॥ ११ ॥

पानी प्यावत क्या फिरो, घर-घर सायर बारि।
तृषावन्त जन होहिंगे, पीवहिंगे झँख मारि ॥१२॥

परोपकारी होने पर भी अनधिकारियों के प्रति सदुपदेशादिरूप जल क्या पिलाते फिरते हो, सबके हृदय घरों में संसार समुद्र और आत्मसमुद्र (सायर) के बारि (विषयवासना और आत्मानन्द) वर्तमान हैं। जो जिसकी तृष्णा (इच्छा) वाले होंगे, सो आप झँख मारकर (लाचार होकर) अपने योग्य गुरुशरणादि में जाकर पीवेंगे (विषयानन्द या आत्मानन्द को प्राप्त करेंगे)। अतः अनधिकारी को उपदेश नहीं देना चाहिये। क्योंकि—

हंसा मोति बिकानियाँ, कञ्चन थार भराय।
जो जस मर्म न जानये, सो तस काह कराय ॥१३॥

हंस (क्षीर नीर विवेक्ता) तुल्य विवेकी जिज्ञासु के लिये सत्सङ्गादिरूप हाट में सतशास्त्रादिरूप कञ्चन के थार में भरकर ज्ञान योगादिरूप मोती बिकते हैं। तहाँ जो लोग जैसा उसका मर्म (प्राप्त करने का साधन) है, तैसा (साधन सहित) उसको नहीं समझ सकते हैं। सो उसके उपदेश को लेकर भी उसका वैसा उपयोग क्या करेंगे? हंस (विवेकी) तो उसके लिये बिकानियाँ (कानि मर्यादा अभिमान को त्यागा है)। अतः वह आत्मार्पण करके भी इसे प्राप्त करता है, अन्य नहीं ॥१३॥

हंसा तूँ सुवरण वरण, कहा वरण को तोहि।
तरुवर पाय पहेलि हो, तबहिं सराहों तोहि ॥१४॥

हे हंसा! (जीव!) तुम सुवर्ण तुल्य दीप्तवर्ण वाले नित्य प्रकाशस्वरूप हो। तेरे स्वरूप को ही तुझसे छठीली जाग्रत स्वरूप मैंने कहा है। परन्तु इस संसार समुद्र में तरुवर (श्रेष्ठ मानव देह वृक्ष) को पाकर और इसमें आसक्त नहीं होकर, यदि तुम इस संसारसागर से पहेलिहो (पार होगे) तभी मैं तुमको

सराहूँगा। भाव है कि नदी में बहते हुए वृक्ष में फँसकर नौका आदि द्वारा पार जाने वाले भी डूब जाते हैं, दूरदर्शी उससे बचकर पार होते हैं, तैसे ही देहाभिमानी संसार में डूबते हैं, विवेकी पार होते हैं सोई प्रशंसनीय हैं, अन्य नहीं ॥१४॥

इति शब्द महिमा विवेकादि प्रकरण २

अथ अविवेककृतसंसारलोभादि प्रकरण ३

हंसा तूँ तो सबल था, हलुकी अपनी चाल।
रङ्ग कुरङ्गे रङ्गिया, किया और लगवार ॥१५॥

हे हंसा! जन्म से प्रथम तथा बाल्यावस्थायुक्त मानवदेह में तूँ सबल था (उत्कट कामादि से रहित था) महाप्रलय में सर्वशक्तिमान् ईश्वर स्वरूप ही में लीन था, परन्तु अपनी अविद्या मोहादिवश हलुकी चाल (व्यवहार) से कुरंग रंग (देहाभिमान अधर्म अज्ञान राग द्वेषादि) में रंग गया और (और) अन्य अनात्मा को लगवार (यार, प्रेमी) किया, अतः दुर्बल हुआ है। बल के लिये आत्म परिचय करो ॥ १५ ॥

हंसा सरवर तजि चले, देही परिगौ शून।
कहहिं कबीर पुकारि के, तेई दर तेइ थून ॥१६॥

क्योंकि आत्म परिचय रहित देही (देहाभिमानी) हंसा (जीव) जब मानव देहरूप सरोवर को त्यागकर चला, तब शून्य पड़ गया (मोहादिकों ने उसे घेर लिया, अतः ज्ञान रहित हो गया) और देह भी चेतनता रहित हो गई। परन्तु कबीर साहब पुकार के कहते हैं कि अविवेकादि के कारण तेई दर (उस देह त्याग के स्थान) में ही फिर तेई थून (उस देह तुल्य ही अन्य देहरूप स्तम्भ) में वह बँध गया। वासनादि वश अन्य देह का अभिमानी हो गया। अतः अभ्यास वैराग्यपूर्वक आत्म परिचय द्वारा वासना आदि को इसी देह में नष्ट करके विदेह मुक्ति प्राप्त करना चाहिये ॥ १६ ॥

हंसा के घट भीतरे, बसे सरोवर खोट।
एको ठौर न लागिया, रहा स ओटे ओट ॥१७॥

क्योंकि अभ्यास वैराग्यादि के बिना हंसा (मानव देहधारी जीव) के भी घट भीतर (हृदय) में पाप काम कुवासना आदिरूप खोट (असत्य दुःख

रोगप्रद जल) के सरोवर (भारी तालाब) बसते (रहते) हैं। अतः ऐसे हृदय वाले एक जीव भी किसी एक भी ठौर में नहीं लग सके, किन्तु अज्ञानकृत ओटे ओट (आवरण पर आवरण) में पाँचो कोशों में आत्मत्वादि के अभिमानादि में रह गये। अतः आवरण की निवृत्ति के लिये सत्ससंगादि उपाय कर्तव्य है ॥१७॥

हंस बक देखि एक रंग, चरहिं हरियरे ताल।
हंस चीर ते जानिये, बकउ धरेंगे काल ॥१८॥

सत्संगादि के लिये सन्त आदि को कैसे पहचाना जाय, ऐसी जिज्ञासा होने पर कहते हैं कि हंस और बक के समान, विवेकी संत और अविवेकी ऊपर से तुल्य रंग आकारादिवाले दीख पड़ते हैं और जैसे हंस बक दोनों हरे तालाब में विचरते हैं, कमलादि युक्त तालाब में रहते हैं, तैसे संत असंत दोनों संसार में विचरते हैं। परंतु हंस जैसे दूध से पहचाना जाता है और बक कालरूप से मछली को धरता है, उससे पहचाना जाता है। तैसे ही ज्ञानी संत अमानित्वादि से और असंत मानित्व से पहचाना जाता है, इस पहचान से ही काल भी बकवृत्ति को पकड़ता है, विवेकी को मुक्त करता है ॥१८॥

काहे हरिणी दूबरी, इहे हरियरे ताल।
लक्ष अहेरी एक मृग, केतिक टारै भाल ॥१९॥

इस मानव लोक देहरूप हरे ताल तुल्य के रहते भी हरिणी तुल्य चञ्चल मनुष्यों की बुद्धि क्यों दूबरी (शक्तिहीन) रहती हैं कि जिससे मनुष्य बकवृत्ति असन्त हो जाते हैं। ऐसी जिज्ञासा होने पर कहते हैं कि कुगुरु काम लोभादि लाखों अहेरी (शिकारी) हैं और मन जीवरूप एक मृग है। सो कहाँ तक उनके भाला (बाण, बरछी) को टारे (कितने अस्त्र शस्त्रों से बचे) अतः उनके वाक् वृत्तिरूप बाणों से बेधित होने के कारण बुद्धि दुबली रहती है। बुद्धि में बल चाहे सो विवेक करके कुगुरु कुसंग कामादि को अवश्य त्यागे ॥ १९ ॥

लोभे जान गमाइया, पापे खाया पून।
आधी सो आधी कहै, ता पर मेरा खून ॥२०॥

आसक्तिहुँ दुर्मति तजी, अनधिकार व्यवहार।
निज सुरंग में रंगिया, उतरा भव जल पार ॥१९ ॥

बन्ध मूल कामादि तजि, तजा लोभ दुख मूल।
सर्व मूल ओंकार लखि, गया विश्व दुख भूल ॥२०॥

कुसंगादि के त्याग के विना, मिथ्योपदेश संगादिजन्य लोभों से मनुष्यों ने व्यर्थ ही जान (प्राण जीवन) गमाया (नष्ट किया) क्योंकि लोभ जन्य पाप उनके पुण्य को खाया (नष्ट किया) अतः लोभ पापादि से रहित होने के लिये, आधो साखी (आधा वाक्य, एक पद) रूप ओंकार से भी जो आधी उसकी एक मात्रा अ, उ, या म् कहे जाते हैं। उन सब के अर्थों से पर अमात्र साक्षी स्वरूप में मेरापन (ममता) का खून (लय) करके लोभादि को जीतना चाहिये॥२०॥

इति अविवेककृत संसार लोभादि प्रकरण ३

अथ ओंकार तत्त्वादि निर्णय प्रकरण ४

आधो साखो शिर कटो, जो निरुवारी जाय।
क्या पण्डित की पोथिया, राति दिवस मिलि गाय॥२१॥

लेख में शिर कटी (शिरोवन्ध रहित) ॐकाररूप आधी साखी (अर्द्ध वाक्य, एक पद) जो (यदि) निरुआरी जाय (विवेकपूर्वक अर्थ सहित समझा जाय) तथा शिर कटी (सत्त्व रहित) माया को यदि आधी साखी के अर्थ अमात्र से निरुआर (निवारण) कर लिया जाय, तो उन पण्डितों के पोथियों से क्या जरूरत है, कि जिसको रात दिन लोग मिलकर गाते (पढ़ते पढ़ाते) हैं। अर्थात् ओंकारार्थ के निर्णय से कर्तव्य की समाप्ति सर्व फल की प्राप्ति हो जाती है। क्योंकि—

"पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पण्डित भया न कोय।
एकै अक्षर प्रेम का, पढ़ै सो पण्डित होय॥१॥"

अनेक पोथियों को पढ़कर संसारी मरा, परन्तु पण्डित (ज्ञानी) नहीं हुआ, परन्तु पर प्रेम का विषय एक अक्षर (अविनाशी) आत्मा के बोधक एक अक्षर ओंकार को भी जो विवेकपूर्वक पढ़ता है, सो ज्ञानी मुक्त कर्तव्य शून्य होता है— "ओंकारो विदितो येन स मुनिर्नेतरो जनः।" ॥२१॥

पाँच तत्त्व का पूतला, युक्ति रची मैं कीव।
मैं तोहि पूछौ पण्डिता, शब्द बड़ा की जीव॥२२॥

जीवरूप ओंकार सत, मिथ्या भौतिक देह।
अज्ञ जीव करि कर्म बहु, बँधता करि संदेह॥२१॥

ओंकारादि के विवेकादि से रहित जो पुस्तक पाठी पण्डित युक्तियुक्त वाणी को रचकर भी पाँच तत्त्व के कार्यरूप देह में ही ममता आत्मबुद्धि किये हैं तथा स्वरचित शब्द को बड़ा प्रमाण मान लिये हैं, उनसे साहब पूछते हैं कि— "वेद बड़ा कि जिन उपजाया" इत्यादि रीति से शब्द बड़ा है कि जीव बड़ा है। अर्थात् शब्दजाल में नहीं फँसकर ओंकार के लक्ष्यार्थ साक्षी को समझना चाहिये। अथवा आत्मदृष्टि से कहते हैं कि पाँच तत्त्व के पूतला (देह) को मैं (जीवात्मा) ने युक्ति से रचकर सिद्ध किया है। हे पण्डितों! तहाँ मैं तुमसे पूछता हूँ कि शब्दादि युक्त देह बड़ा है कि ओंकार स्वरूप जीवात्मा बड़ा है। अर्थात् शब्दयुक्त देह नहीं बड़ा है, न शब्द स्वरूप ओंकार बड़ा है, किन्तु जीव का पारमार्थिक स्वरूप बड़ा है, वही अमात्र ओंकार का लक्ष्यार्थ है, सर्वत्यागपूर्व उसीको समझना चाहिये ॥२२॥

पाँच तत्त्व लै था तन कीन्हा, सो तन का लै कीन्ह ।
कर्महिं के वश जीव कहत हैं, कर्महिं कहँ जिव दीन्ह ॥२३॥

जीवात्मा के अविवेक अज्ञान से ही जीवात्मा ने पाँच तत्त्व को लेकर इस मानव तन को स्वकर्मों द्वारा किया है (जीवों के कर्माधीन देह की रचना हुई है) उस देह को लेकर विवेकादि रहित जीव ने क्या किया है कि जिन काम्यादि कर्मों के वश होने से इसको परवश जीव कहा जाता है, उन कर्मों के प्रति इस देह का अर्पण किया है (कर्मों को मानो देह दे दिया है) अतः शिवरूपता के लिये आत्मविचारादि नहीं करता है, परन्तु सोई कर्तव्य है। अथवा परमात्मा ने पाँच तत्त्व को लेकर इस शरीर को बनाया है, फिर क्या किया है कि कर्म के वश जिस जीव को कहते हैं, उसको कर्मों से छुटकारा के लिये भी सत्कर्म भक्ति आदि करने ही के लिये यह मानव देह दिया है, अकर्मण्यता के लिये नहीं ॥ २३ ॥

पाँच तत्त्व का पूतला, मानुष धरिया नाम ।
एक कला के बीछुरे, विकल होत सब ठाम ॥२४॥

प्रायः अज्ञ लोग मनुष्यता आदि के अभिमान करके काम्यकर्मादि में प्रवृत्त होते हैं, परन्तु पाँच तत्त्व का पूतलारूप देह का ही मनुष्य नाम धरा गया है, जीवात्मा का नहीं और सो देह भी प्राणादि सोलह* कलाओं में से एक कलारूप

---

* स प्राणमसृजत्प्राणाच्छ्रद्धां खं वायु ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियं मनोऽन्नमन्नाद्वीर्यं तपो मन्त्राः कर्मलोका लोकेषु नाम च। (प्रश्न० ६।४) ये कला कहे गये हैं।

प्राण के वियोगमात्र से सब ठाम (स्थान लोक) में विकल (नष्ट) हो जाती है तथा एक यन्त्र के वियोग से सर्वाङ्ग में पीड़ा होती है। अतः इसके लिये कर्मादि नहीं करना चाहिये किन्तु इसके द्वारा आत्मज्ञानादि के लिये ही यत्न करना चाहिये ॥ २४ ॥ क्योंकि—

पाँच तत्त्व के भीतरे, गुप्त वस्तु अस्थान।
बिरले मरम पाई हैं, गुरु के शब्द प्रमाण ॥२५॥

पाँच तत्त्व के कार्यरूप देह के भीतर हृदय में गुप्त वस्तु सर्वात्मदेव की प्राप्ति का स्थान है, उसके मर्म (भेद) को विरले मनुष्य गुरु के शब्दरूप प्रमाण से पाते हैं, कर्मादि से नहीं। अतः ओङ्कारादि शब्दों के गुरु द्वारा श्रवणादि ज्ञानार्थी के लिये कर्तव्य हैं, अन्य नहीं ॥ २५ ॥

अशून्य तखत अड़ि आसन, पिण्ड झरोखे नूर।
जाके दिल में हौं बसे, सेना लिये हजूर ॥२६॥

अशून्य (आकाश से भिन्न सत्यस्वरूप प्रकाशमान) हृदयरूप तखत (सिंहासन) पर आसन अड़ा (लगा) कर वह गुप्त आत्मदेव बैठा है और उसी की नूर (प्रकाश) देह के झरोखे (द्वारों) पर वर्तमान हैं और जिसके दिल में हौं (अहंकार) बसता है, उसको दण्ड देने के लिये वह सेना लिये प्रत्यक्ष हजूर (उपस्थित) रहता है। तथा जिसके दिल में हौं (हम) सद्गुरु बसते हैं, उसके लिये ज्ञानादि की सेना लेकर वह उपस्थित रहता है ॥ २६ ॥

रंगहि ते रंग ऊपजे, सब रंग देखी एक।
कौन रंग है जीव का, ताकर करहु विवेक ॥२७॥

मायारूप रंग से भूतों की उत्पत्ति द्वारा सब रंग (रूप) वाले शरीर उत्पन्न होते हैं। तथा सजातीय देहों से देह उत्पन्न होती है। तहाँ उपादान कारण और कार्य में अभिन्नता की दृष्टि से सब रंग (प्रकार) वाले शरीरों को एक मायारूप तथा पाँच भूतात्मक जड़ ही देख (जान) कर, जीवात्मा का कौन (रंग) स्वरूप है, उसका विवेक करो, शरीरों से भिन्न चिदात्मा को समझो, कि जिससे अज्ञान मूलक अभिमानादि के अभाव से दण्डादि नहीं सहना हो, मुक्ति मिले, इत्यादि ॥ २७ ॥

जाग्रतरूपी जीव है, शब्द सोहागा शेत ।
जलद बुन्द जल कूकदी, कहहिं कबिर कोइ देख ॥२८॥

और विवेक से समझना चाहिये कि यह जीवात्मा जाग्रत (नित्य चेतन) स्वरूप है और शब्दादि विषय सोहागा के समान देखने आदि में श्वेत उज्वल सुन्दर हैं, परन्तु सोहागा जैसे लोहा आदि को गलाता है, तैसे विषयरूप शब्दादि जीव को पीड़ित बन्ध युक्त करते हैं । तथा स्वर्ण तुल्य विवेकी जीव को सोहागा के समान गुरु के शब्द शुद्ध करने वाले हैं । तहाँ जलद (मेघ) के बुन्द से जल में होने वाले कूकुड़ी (बुलबुल्ला) के समान इस देह को कोई विरले क्षणभङ्गुर मिथ्या देखते (समझते) हैं और इससे भिन्न स्थिर जाग्रत स्वरूप जीव को समझते हैं, सो विरल विवेकी होते हैं ॥ २८ ॥

हृदया भीतर आरसी, मुख देखा नहिं जाय ।
मुख तो तबही देखिये, दिल की दुबिधा जाय ॥२९॥

लखि विवेकि निज चित्त में, परम ज्योति सुख रूप ।
गुरु के शब्द प्रमाण से, तजत अन्ध तम कूप ॥२२॥
दिल दर्पण को शुद्ध करि, दुविधा सकल मिटाय ।
तजि आशा स्वर्गादि की, विज्ञ अभय पद पाय ॥२३॥

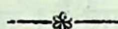
चिदानन्द स्वरूप मुख (मुख्यात्मा) को देखने (समझने) के लिये सबके हृदय कमल के भीतर में मनरूप आरसी (दर्पण) रहता है, तो भी सबसे मुख्यात्मा देखा नहीं जाता है । क्योंकि वह मुख्यात्मा तो तभी देखा (समझा) जाता है कि जब सत्कर्मादि से पापों के नाशपूर्वक विवेक विचारादि से मन की दुविधा (संशय, चञ्चलता) निवृत्त हो जाती है । अतः आत्मदर्शन के लिये विवेकादि अवश्य कर्तव्य हैं ॥ २९ ॥

कबीर का घर शिखर पर, जहाँ सलहली गैल ।
पाँव न टिके पपील का, खल को लादै बैल ॥३०॥

कबीर (ज्ञानी) का घर संसार तथा सुमेरु पर्वत के शिखर (स्वर्ग ब्रह्मलोक) से पर (भिन्न उत्तम) निजात्मरूप ही है । जहाँ के गैल (मार्ग) सलहली (संकीर्ण अत्यन्त चिकन) है, शमदमादिरूप मार्ग जहाँ कठिन हैं । अतएव जहाँ पपील (पिपीलिका, चींटी) के पाँव नहीं टिकते हैं, विवेकादि रहित सूक्ष्म बुद्धि

मन तर्कादि की गति जहाँ नहीं हो सकती है, तो भी सब खलक (संसारी) उसी में बैल लादता है, सब व्यवहार करता है, वासना कामादि को मन में धरता है। अर्थात् ज्ञानी जिसको कठिन साधनों से समझते हैं, जिसको शिखर से पर कहा गया है, सो सर्वात्मा है, अतएव दूर या अप्राप्य नहीं है, अज्ञानादि से ही दूर भासता है विवेकादि से हृदय में प्रत्यक्ष होता है ॥ ३० ॥

इति ओंकारतत्त्वादिनिर्णय प्रकरण ४



अथ अनधिकारचेष्टादि वर्णन प्रकरण ५

बिन देखे वा देश की, बात कहै सो कूर।
आपु हि खारी खात है, बेंचत फिरै कपूर ॥३१॥

विवेक विचारादि द्वारा देखे (जाने) के बिना वादेश (आत्मा, स्वर्ग, मोक्ष) की बात जो कहते हैं, सो कूर (क्रूर) हैं। क्योंकि कुमार्ग में प्रवृत्त कराकर श्रोता को पीड़ित करते हैं और आप स्वयं खारी (निरस विषय) को खाते (भोगते) हैं, अन्य के लिये सुगन्ध कपूर (स्वर्ग, मोक्ष) बेचते फिरते हैं, सो उचित नहीं है। प्रथम सदाचारादिपूर्वक समझकर उपदेश देना चाहिये और सदाचारी के उपदेश को सदाचारपूर्वक सुनना चाहिये, अन्यथा नहीं ॥ ३१ ॥

जिहि मारग सनकादि गै, ब्रह्मा विष्णु महेश।
सो मारग सब थाकिया, काहि कहों उपदेश ॥३२॥

जिस गुरु भक्ति विवेक विरागादि मार्ग से सनकादि गये और ब्रह्मा विष्णु महेश गये, सोई प्रवृत्ति निवृत्तिरूप दो मार्ग हैं कि जिन्हें विरहुली में कहा गया है कि (ब्रह्मादिक सनकादिक बिरहुली। कथि गै योग अपार बिरहुली) इत्यादि परन्तु अज्ञ जीव सब पूर्वोक्त क्रूर से कथित मन कल्पित मार्गों में ही थक गये हैं, योग ज्ञानादि के लिये कुछ नहीं कर सकते हैं, तो ऐसे किन मनुष्यों के प्रति उपदेश कहा जाय, बिरल विवेकी के लिये यह उपदेश है ॥ ३२ ॥

परवत ऊपर हर बहै, घोड़ा चढ़ि बस गाम।
बिनु फुल भँवरा रस चहै, कहु बिरवा के नाम ॥३३॥

मिथ्या मार्ग में थके हुए लोगों का हर सुमेरु आदि पर्वतों के ऊपर बहता है, वहाँ पहुँचने के लिये सब कर्मादि करते हैं और मन इन्द्रियरूप घोड़ों पर चढ़ कर ग्राम के ग्राम बसा है (मन इन्द्रिय द्वारा भोगासक्त होते भी सब स्वर्ग के लिये उत्कण्ठित हैं) और भँवरा (विषयी जीव) साधनरूप फूल के बिना ही ब्रह्मानन्दरूप रस को संसार वृक्ष से प्राप्त करना चाहता है, तहाँ संसार वृक्ष का ही तो नाम कहो कि यही कहाँ सत्य है कि जिससे तुम सत्य सुख चाहते हो, यह तो विकार होने से नाम मात्र है, इसके त्याग से ही सत्य सुख स्वयं प्रकट होता है, अतएव कहा गया है कि—

"झूठ झूठ के छाड़हू, मिथ्या यह संसार।
तिहि कारण मैं कहत हूँ, जाते होय उबार॥" ॥ २३ ॥

चन्दन वास निवारहू, तुझ कारण बन काटिया।
जियता जीव न मारहू, मुये सबे निपातिया ॥३४॥

त्यागिय सकल कुवासना, मिथ्या लखि संसार।
चञ्चल मन को थिर करो, तब उतरो भव पार ॥२४॥
जब लग मन वश में नहीं, भरम न भागा दूर।
निज आतम परिचय नहीं, लोभ रहा भरपूर ॥२५॥

हे चन्दन ! (सवासन जीव !) तुम वास (वासना) स्वर्गादि की भी इच्छा आदि का निवारण करो। वासनादि के निवारण द्वारा तेरे हित के ही लिये महात्माओं ने संसार बन को काटा है (मिथ्या दर्शाया है) और जियता जीव (सचेत प्राणी) को नहीं मारो, नहीं तो मरने पर वे सब भी तेरा जन्मान्तर में निपात (नाश करेंगे बदला लेंगे)। अथवा जियता जीवन में वासना आदि को नष्ट करो, नहीं तो मरने पर सब वासना आदि तेरा नाश करेंगे। "जियत न तरहु मुये का तरिहो" यह समझो ॥ ३४ ॥

चन्दन सर्प लपेटिया, चन्दन काह कराय।
रोम रोम विष भींजिया, अमरित कहाँ समाय ॥३५॥

वासना के रहने पर सवासन जीवरूप चन्दन को विषय; कामादि, मन, कुपुरुषादि सर्प लपेटे (घेरे) रहते हैं। अतः वह चन्दन (जीव) अपने लिये या उन कुपुरुषादिकों के लिये क्या हित कर सकता है ? क्योंकि संगादि से जिनके

रोम-रोम में विषय वासनादिरूप विष भींज गये (प्रवेश किये) हैं, उनको अमृत तत्त्व के उपदेशादि कहाँ समाय (प्रवेश कर) सकते हैं। अर्थात् अत्यन्त कामादि युक्त के प्रति परम सत्य उपदेश निष्फल होता है और उससे किसी का हित नहीं होता है। जैसे चन्दन सर्प युक्त हो, तो उससे अन्य प्राणी को कुछ लाभ नहीं होता है और सर्प भी निर्विष नहीं होता है ॥ ३५ ॥

इति अनधिकारचेष्टादि वर्णन प्रकरण ५

अथ विषयासक्तमनादि वर्णन प्रकरण ६

पानिहुँ ते अति पातला, धूमहुँ ते अति छीन।
पवनहुँ ते उताहुला, दोस्त कबीरा कीन ॥३६॥

काम वासनादि युक्त जो मन पानी से भी अत्यन्त पातला (तरल सूक्ष्म) है और धूम से भी क्षीण क्षणभंगुर है। तथा वायु से उताहुल (वेग वाला) है। सवासन कबीरा (जीव) ने उस मन को अपना दोस्त (मित्र) किया (बनाया) है, अतः अमृत नहीं प्रवेश करता है—

"यावद्देहाभिमानश्च ममता यावदेव हि।
यावत्प्रयत्नवेगोऽस्ति यावत्संकल्पकल्पना ॥१॥
यावन्नो मनसः स्थैर्यं न यावच्छास्त्रचिन्तनम्।
यावन्न गुरुकारुण्यं तावत्तत्त्व कथाकुतः ॥२॥" ॥३६॥

पुष्प वास से पातला, सूक्षम जाके अंग।
कबिरा तासो मिलि रहा, कबहुँ न छाड़ै संग ॥३७॥

और जिस मन के पुष्प के वास (गन्ध) से भी पातला (सूक्ष्म) स्वरूप है, अतएव जिसके संकल्प विकल्प कामादिरूप सब अङ्ग सूक्ष्म ही हैं। वासनादि युक्त अविवेकी जीव सदा उससे मिल रहा है, विवेक के बिना मनको ही आत्मा मानता है, अतः उसके संग को कभी नहीं त्यागता है, न असङ्ग अमृतस्वरूप आत्मा को समझता है, मोक्षार्थी को किसी प्रकार मन के संग को त्यागना चाहिये ॥३७॥

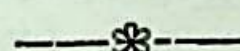
ज्यों मुदाद सम शील की, सब इक रूप समाहिं।
कहहिं कबिर सावज गति, तब की देखि भुकाहिं ॥३८॥

ज्यों (जैसे) मुदाद नामक हरा स्फटिक पत्थर होता है, उसी के सम (तुल्य) शील (स्वभाव) की मनोगति होती है। जैसे उस पत्थर में सब वस्तु एकरूप (मोराकृति) से समाती (प्रतिबिम्बित होती) हैं। तैसे ही मन में भी सब वस्तु ममता वासनारूप से समाती हैं। तो कुत्ता उस पत्थर में सावज (मोर) की गति को देखकर क्या भूकता है ? अर्थात् अज्ञान से भूकता है, तैसे मन की गति को देखकर जीव अज्ञान से बहुत विवाद करता है, संग त्यागादि नहीं करता है ॥३८॥

देखहु शील मुदाद की, प्रीति करै बलजोर।
तीनि लोक की सूरति, ता में दीसै मोर ॥३९॥

मुदाद पत्थर के शील (स्वभाव) को अपने मन में देखो (जानो) यह मन बलजोर (बलात्कार) से सबसे (प्रीति स्नेह) करता है और जैसे लोक की वस्तु सुरति (आकार) उस मुदाद में मोर पक्षी के समान दीखती है, तैसे मन में सब वस्तु ममता के विषयरूप से दीखती है। काल देशादि के भेद से मन सर्वत्रममता कर लेता है। प्रथम कहा गया है कि– "खाद्य अखाद्यहुँ खाई" (शब्द ३६) ॥३९॥

इति विषयासक्त मनआदि प्रकरण ६



अथ मनोदुर्जयत्व प्रकरण ७

गही टेक नहिं छोड़ई, चोंच जीभ जरि जाय।
ऐसा तप्त अँगार है, ताहि चकोर चबाय ॥४०॥
चकोर भरोसे चन्द्र के, निगले तप्त अँगार।
कहहिं कबिर डाहै नहीं, ऐसी वस्तु लगार ॥४१॥

चकोर पक्षी अपने गृहीत टेक (नियम) को जैसे नहीं छोड़ता है, अतः जिस अङ्गाररूप अग्नि से अन्य पक्षी के चोंच जीभ जर जाय ऐसा प्रसिद्ध तप्त अङ्गार है उसको चकोर चबाकर खा लेता है, तैसे ही अविवेकी वासना युक्त मन अपने टेक हठ को नहीं छोड़ता है, कष्टप्रद विषयों को सुखपूर्वक भोगता है, परन्तु परिणाम में जीव उससे दुःखी होता है ॥ ४० ॥

यदि कहा जाय कि अग्नि तुल्य विषय के भोग से मन स्वयं नष्ट हो जायगा, तो कहना ठीक नहीं, क्योंकि जैसे चकोर चन्द्र के भरोसे (चन्द्र के ध्यान के बल से) तप्त अंगार को निगलता है, अतः वह अंगार चकोर को दग्ध (नष्ट) नहीं करता

है। ऐसा ही कोई चकोर को चन्द के साथ लग्न (सम्बन्ध) है कि जिससे ऐसा होता है। इसी प्रकार मन भी चन्द्रमारूप अधिदेव के बल से विषयों को भोगता है और विपत्तियों से नहीं डरता है, न विवेक विज्ञानादि के बिना नष्ट होता है, किन्तु वस्तुओं के साथ सदा सम्बन्ध बना रहता है। अतः विवेकादि अवश्य कर्तव्य हैं ॥ ४१ ॥

गाम ऊँचो पहाड़ पर, औ मोटे की बाँह।
ऐसा ठाकुर सेविये, उबरिय जाकी छाँह ॥४२॥

विवेकादि करके ऊँचे पहाड़ (सुमेरु आदि) से पर (भिन्न उत्तम) स्थान (सर्वात्मा) में ग्राम बसाना चाहिये (मन बुद्धि को आत्मनिष्ठ करना चाहिये) और मोटे (समर्थ) सद्गुरु सर्वेश्वर के बाहुबल के आश्रित रहना चाहिये और ऐसे सर्वात्मा ठाकुर (स्वामी) को सेवना चाहिये कि जिसकी छत्रछाया में उबार हो (मानस प्रपञ्च तापादि से बचा जाय। क्योंकि ऊँचा पहाड़ पर समर्थ के आश्रित को जैसे जल वेगादि का और शत्रु आदि का भय नहीं रहता है, तैसे आत्मनिष्ठ विवेकी सर्वभयादि से रहित होता है। अतः आत्मनिष्ठ होना चाहिये ॥४२॥

झिलि मिलि झगरा झूलत, बाकी छूटि न काहु।
गोरख अँटके कालपुर, कौन कहावे साहु ॥४३॥

आत्मनिष्ठा विवेकादि के बिना चञ्चल दीप शिखा तुल्य झिलमिलाते (डोलते) हुए मन के झगड़े (प्रपञ्च) में झूलते हुए (चञ्चल आत्मस्थिति रहित) किसी मनुष्य की कोई बाकी (कर्मवासना) नहीं छूटी (नहीं निवृत्त हुई) न कोई दुर्दशा बाकी रही। अतः आत्मनिष्ठा रहित इन्द्रिय मन के रक्षक गोरख (हठ योगी) भी आत्मज्ञान के बिना कालपुर (संसार, शरीर) में अँटके (आसक्त हुए) तो अन्य कौन अविवेकी साहु (सच्चा साधु) कहा सकता है। सच्ची साधुता (ज्ञानिता) के लिये हठी योगी को भी विवेकादि कर्तव्य है।

जब लो भ्रम तब लगी सबे, दुख भोगै संसारि।
मिथ्या वेष बनाय के, सन्त न होत अनारि ॥२६॥
सन्त हुए बिनु प्राण मन, आदिक से पर देव।
शोक पिपासादिक रहित, समुझ पड़त नहिं भेव ॥२७॥
सेव्य देव के ज्ञान बिनु, चञ्चल मन कुविकल्प।
करत तहाँ बहु होत है, मिथ्या मन संकल्प ॥२८॥४३॥

गोरख रसिया योग के, मुये न जारै देह।
मांस गली माटी मिला, कोरो माँजरि देह ॥४४॥

विवेकादि रहित सिद्धि आदि के लिये योग के रसिक गोरख (हठी योगी) न मुये न देह जराये (न देहाभिमान को त्यागे न इसको मिथ्या समझे) किन्तु काल की वञ्चना करके चिरजीवी हुए। तो भी अन्त में मांस गलकर मिट्टी में मिल गई और देह में कोरो (पसलियों) के माँजरि (कँकाल) ही कुछ दिन के लिये रह गया।

"कोरो माँजी देह" इस पाठ पक्ष में अर्थ है कि ज्ञानयोग के रसिक गोरख (योगी) ने मरने पर देह को नहीं जलाया किन्तु जीते जी उसके मांसादि लय-चिन्तन से मिट्टी आदि में मिल गये और ज्ञानाग्नि से उसने सब देह को जलाया कि जिससे कोरा (नित्य नवीन) माँजी (धोई, शुद्ध) वस्तु उसको देह में ही प्राप्त हो गई। तथा शुद्ध स्वरूप में उसकी देह (मन) लीन हो गई ॥ ४४ ॥

बन ते भागा बिहड़े परा, करहा अपनी बान।
वेदन करहा कासो कहै, को करहा को जान ॥४५॥

करहा (करी=हाथी) सिंहादि के भय से बन से भागा, परन्तु अपनी कामादि रूप बान (स्वभाव) से वन के किनारे में व्याधे से रचित हस्तिनी के चित्र को देखकर व्याधा से रचित कठिन गड़हे में पड़ गया, तो उस समय की वेदना को वह किससे कहे और उसको कौन जानता है। इसी प्रकार अविवेकी पूर्ण वैराग्य रहित मनुष्य यदि दैहिक दुःखादि के भय से गृहादि से भागकर योगी आदि बनता है और फिर अपनी आदत वश प्रपञ्च में फँसता है, तो महाकष्ट भोगता है और किसी से वह कुछ कह नहीं सकता, मनमें पश्चात्ताप करता है और उसके उद्धार के लिये भी किसी को उपाय नहीं सूझता है। अतः अनधिकारी को वेषधारी योगी आदि नहीं होना चाहिये ॥ ४५ ॥

बहुत दिवस ते हींड़िया, शून्य समाधि लगाय।
करहा पड़िया गाड़ में, दूरि परा पछताय ॥४६॥

जैसे वह करहा गर्त से निकलने के लिये बहुत दिनों तक मार्ग को हींड़ता (खोजता) है, परन्तु मार्ग के नहीं मिलने से दूर गाड़ में पड़ा हुआ करहा पछताता है। तैसे ही अविवेकी क़ामी वेषधारी शून्य (एकान्त) में समाधि लगा

कर बहुत दिनों तक मोक्ष सुखादि के मार्गों को खोजता है और विवेकादि के विना पास की ही सद्वस्तु से दूर पड़ा हुआ पश्चात्ताप करता है। अतः सत्संगादि द्वारा विवेकादि की प्राप्ति करके ही ज्ञानयोग समाधि में प्रवृत्त होना चाहिये ॥४६॥

कबीर भरम न भाजिया, बहुविधि धरिया वेष।
साईं कै परिचावना, अन्तर रहिगौ रेख ॥४७॥

कबीर साहब कहते हैं कि विवेकादि के बिना ही बहुत लोगों ने बहुत प्रकार के वेषों का धारण किया है, परन्तु इससे भ्रम नहीं भागा (पास की वस्तु से दूरता का भ्रम नहीं निवृत्त हुआ) तथा भ्रम भागा नहीं और ज्ञानी, योगी आदि के बहुविध वेषों का धारण कर लिया और सर्वात्मा विभु ईश्वर का ही तटस्थ स्वामीरूप से परिचावन (बोध कराने) से अन्तर में (अन्तःकरण में) दूरता के भ्रम भेद की रेखा (आकार, लकीर) रह गई अतः आत्मरूप से परिचय करना-कराना चाहिये कि जिससे दूरता आदि के भ्रम भेदभावादि की निवृत्ति हो सके ॥४७॥

बिनु डाँड़े जग डाँड़िया, सोरठ परिया डाँड़।
बाट निहारे लोभिया, गुड़ते मीठी खाँड़ ॥४८॥

भेदभ्रम अज्ञान के नहीं निवृत्त होने से संसारी जीव स्वप्न समान किसी अन्य दण्डदाता से डाँड़े (दण्ड दिये) बिना ही लोभादि से पाप करके डाँडे गये (दण्डभागी हुए) हैं और उस दैहिकादि तापरूप दण्ड का संसार में सोरठ (हल्ला पुकार) पड़ा है तथा निरन्तर दण्ड प्राप्त होता है। तो भी लोभी जीव विषयादि के ही बाटों (मार्गों) को निहारता (देखता) है और गुड़ से खाँड़ को मीठी समझता है। अर्थात् सर्वाधार सर्वकारण आत्मा को नहीं समझकर कार्यरूप विषयादि को प्रिय मानता है और लोभ करता है। यह सब भ्रम अज्ञान का प्रभाव है, अतः भ्रमादि की निवृत्ति के लिये यत्न कर्तव्य है। अथवा वाग्दण्ड (दमन) मनोदण्ड और कायदण्ड के बिना संसारी दण्ड भोगते हैं कि जिसका सोरठ (हल्ला) पड़ा है इत्यादि।

"वाग्दण्डो हन्ति विज्ञानं मनोदण्डः परां गतिम्।
कर्मदण्डस्तु लोकाँस्त्रीन् हन्यादपरिरक्षितः ॥" ॥४८॥

इति विषयासक्त मन आदि वर्णन प्रकरण ७



अथ कुमति से साधुत्वाभाव प्रकरण ८

मलयागिरि के वास में, वृक्ष रहा सब गोय।
कहबे को चन्दन भया, मलयागिरि नहिं होय ॥४९॥

मलयाचल के वास (गन्ध) से पास के वृक्ष सब अपने-अपने स्वरूप को गोयं (छिपाये) रहते हैं। उसके गंध से सुगंध हो जाने के कारण वृक्षों के अपने नामरूप मिट जाते हैं, अतः कहने के लिये चन्दन भी हो गये और होते हैं परन्तु मलयागिर नहीं हुए, क्योंकि उनके गन्ध से अन्य वृक्ष सुगन्धित नहीं होते हैं। इसी प्रकार अविवेकी लोभी मनुष्य सच्चे साधु ज्ञानी के संग से साधु ज्ञानी कहाते हैं, अपने स्वरूप को छिपाये रहते हैं, परन्तु विवेकादि के अभाव तथा लोभादि के रहते सच्चे ज्ञानी साधु नहीं हो सकते हैं, न उनके संग से अन्य में साधुता हो सकती है। इसी प्रकार प्राणान्तःकरणादि सत्य चेतनात्मा के सम्बन्ध से सत्यादि भासते हैं। अपने स्वरूप जड़ता को छिपाये रहते हैं, विषयों में भी आत्मानन्द ही भासता है, इत्यादि ज्ञान के विना विवेक रहित प्राणी देहाभिमानी होकर विषयादि का लोभ करता है। अतः विवेकादि कर्तव्य हैं ॥ ४९ ॥

मलयागिरि के वास में, बेध्यो ढाक पलास।
बेना कबहुं न बेधिया, युग-युग रहते पास ॥५०॥

मलयागिरि के वास में (से) ढाक पलासादि अन्तःसार युक्त कुवृक्ष भी वेधित होते हैं, परन्तु अन्तःसार रहित बेना (बाँस) युग-युग में पास रहते भी गन्ध से युक्त चन्दन नहीं होता है। इसी प्रकार शुभ संस्कार वाले ही मनुष्य सत्संगादि से ज्ञानी मुक्त होते हैं, उनमें सदुपदेश प्रवेश करता है, बाँस तुल्य अविवेकी में नहीं। तथा चिदानन्दात्मा के विभु रहते भी अन्तःसार अन्तःकरणादि सहित सब देहों में चिदभिव्यक्ति होती है। घटादि में समानरूप से सत्ता के भासने पर भी चेतना नहीं अभिव्यक्त होती है, सो विवेक से ज्ञातव्य है ॥ ५० ॥

चलते चलते पगु थका, नगर रहा नौ कोश।
बीचहिं में डेरा परा, कहहु कौन का दोष ॥५१॥

कर्मादि मार्गों में चलते-चलते अविवेकियों के मन बुद्धिरूप पैर (गति साधन) थक गये तो भी स्थूल देह पाँच प्राण, चार अन्तःकरणरूप गन्तव्य दश कोशों में

से एक स्थूल देहरूप कोश से परे कर्मी लोग कथञ्चित् गये। स्थूल देह से भिन्न आत्मा को परोक्षरूप से शास्त्रादि द्वारा समझा और वर्णाश्रमादि के अभिमान काल में स्थूल देह में ही प्रत्यक्षात्म बुद्धिवाले रह गये और अन्य नव कोश से आत्मस्वरूप नगर सर्वथा पर रह गया, उनसे भिन्न आत्मा को परोक्षरूप से भी नहीं समझ सके। अतः उन नव कोशों के बीच में ही डेरा पड़ा, उनमें ही आत्मबुद्धि बनी रह गई। तहाँ कहो कि दोष किसका है? अपना ही अविवेकादिरूप अपराध है (ज्ञानेन्द्रियां का अन्तःकरण में कर्मेन्द्रियों का प्राण में अन्तर्भाव से अविद्या की विद्या से साक्षात् निवृत्ति से गन्तव्य मार्ग दश कोश यहाँ कहे गये हैं) अतः "अकायमव्रणम्।" (ईशा० ८) "अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात्परतः परः।" (मुण्ड० २।१।२) "क्षुधापिपासा प्राणस्य मनसः शोकमोहकौ। जन्ममृत्यू शरीरस्य षडूर्मिरहितः शिवः ॥१॥) शरीर, प्राण, मन से भिन्न स्वकार्य पर अक्षर प्रकृति से भी पर, भूख, प्यास, शोक, मोह, जन्म मरणरूप छः ऊर्मि (तरंग) से रहित शिवस्वरूप आत्मा ज्ञातव्य है ॥ ५१ ॥

झालि परे दिन आथये, अन्तर परिगौ साँझ।
बहुत रसिक के लागते, वेश्या रहिगौ बाँझ ॥५२॥

विवेकादि के अभाव से आत्मज्ञान की अप्राप्ति अवस्था में ही जिसको झाली (झोली) पर गई (वृद्धता रोगादि से नेत्रों में बुद्धि में अन्धकार छा गया) और दिनकर के समान प्राण शक्ति ज्ञान शक्ति अस्त (नष्ट) हो गई, अतः दिनकर मानो अस्त हो गये और अन्तर में सन्ध्या प्राप्त हो गई (अन्तःकरण में उक्त नव कोश में ही आत्मबुद्धि रहते मरण उपस्थित हो गया तमोगुण घेर लिया) परन्तु अन्त में रक्षा करने वाले ज्ञान विरागरूप पुत्र नहीं हुए। क्योंकि उसकी बुद्धि बहुत रसिक (रागी कामी) के लाग (सम्बन्ध) से वेश्या की तरह बन्ध्या रह गई, परमानन्द दायक पुत्र को उत्पन्न नहीं कर सकी, अतः कामी के सङ्ग को त्याग कर ज्ञान योग्य बुद्धि को करना चाहिये ॥ ५२ ॥

मन कहै चलये चलये, चित्त कहै कब जाव।
छौ मासे के हींड़ते, आध कोश पर गाम ॥५३॥

बुद्धि के बन्ध्या रह जाने से चञ्चल मन सदा कर्मादि मार्गों में जहाँ तहाँ चलने के लिये कहता है (संकल्प विकल्प करता है) और चित्त कहता है कि

कब स्वर्गादि में जा पहुँचेंगे और इस प्रकार चञ्चल मन आदि द्वारा अपने को छौ मासे के हींड़ने (ढूँढ़ने) पर भी अर्ध मात्रारूप आधे कोश से परे ही ग्राम (शुद्धात्मा) रह जाता है। अर्थात् ओंकार के अर्द्धमात्रा मकार के अर्थ ईश्वर को परोक्षरूप से समझने पर भी शुद्धात्मा को नहीं समझता है। क्योंकि—"षण्मासान्नित्ययुक्तस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते।" (म० शा० अ० २४० । ३२) उपेक्षक नियताहार एकाग्र मन वाले के छः मास नित्य योग युक्त होने ही पर, शब्दब्रह्म (ओंकार) अपने लक्ष्यार्थ को प्रकट करता है। अतः शुद्ध आत्मज्ञान के लिये विवेकादि पूर्वक समाहितादि होना उचित है ॥ ५३ ॥

गृह तजि भये उदासिया, बन खण्ड तप को जाय।
चोला थाके मारिया, बरइनि चुनि चुनि खाय ॥५४॥

जो कोई विवेकादि के विना गृहादि को त्यागकर उदासिया (कुविरक्त) वेषधारी मात्र हुए और वन खण्ड में तप के लिये गये और जाते हैं। उनके चोला (शरीर) के थाकने पर मायारूप बरइन (तमोलिन) उन्हें मार दिया और मारती है (सकाम अज्ञ तपस्वियों को अन्त में नष्ट ही करती है) सड़ते गलते पान के समान उन्हें चुन-चुनकर खाती है (अपने में लीन करती है) क्योंकि संसार बरेव (पान के खेत) के वह मालिक है और आध कोश से परतत्त्व को समझे विना वह किसी को छोड़ती नहीं है। प्रथम भी कहा गया है कि—"चतुर चिकनियहिं चुनि-चुनि मारै" इत्यादि ॥ ५४ ॥

इति कुमति से साधुत्वाभाव प्रकरण ७

अथ नामरूपाधीन गति वर्णन प्रकरण ८

राम नाम निज चीन्हिया, झीने पिञ्जर तासु।
नयन न आवै निन्दरी, अङ्ग न चढ़िया मांसु ॥५५॥

उक्त माया के वशवर्तिता से जिन तपस्वियों ने अर्द्धमात्रा के अर्थरूप स्वामीरूप से परोक्ष परिचित रामनाम (ईश्वर के नाम) मात्र को चीन्हा, आत्मपरिचय नहीं कर सके उन विरही तपस्वियों के पिञ्जर (देह) झीना (कृश) हो गये और चिन्ता के मारे नेत्रों में निद्रा नहीं आती है, न दुःख से अङ्गों पर

मांस चढ़ता है सो प्रथम शब्द प्रकरण में कहा गया है कि–"तपसी कहँ दुख दूना" इत्यादि । परन्तु विवेकादिपूर्वक जिन लोगों ने रामनाम वाली वस्तु और नाम को चीन्हा उहें देहासक्ति के अभाव से तप आदि के विना भी उनका पिञ्जर कृश हो जाता है । उनकी देह सूक्ष्म आत्मस्वरूप ही (तन्मय) हो जाती है, देहाभिमान छूट जाता है और बुद्धिरूप नेत्र में मोहरूप निद्रा नहीं आती है । भोग के त्याग से अङ्ग में मांस नहीं जमता है । उनका अङ्ग मानो मांसादि सम्बन्ध से रहित आत्मस्वरूप हो जाता है ॥ ५५ ॥

जो जन भींगे राम रस, विकसित कबहुँ न रूख ।
अनुभव भाव न दरशये, ते नल दुःख न सूख ॥५६॥

जो लोग तटस्थ राम के रस (प्रेम) से भींगे (आर्द्र) रहते हैं, सो विरही कभी विकसित वदन वाले नहीं रहते हैं, किन्तु रूखे सूखे रहते हैं । क्योंकि जिनमें सत्य निजात्मा के अनुभव का भाव (सत्त्व) नहीं दीखता है, उन मनुष्यों को तप आदि जन्य दुःख होता है, सुख नहीं । परन्तु विवेकादिपूर्वक जो लोग राम रस (ब्रह्मानन्द) में भींज (लीन हो) गये हैं, सो सदा विकसित वदन रहते हैं, कभी रूख (खिन्न अप्रसन्न) नहीं होते हैं क्योंकि आत्मानन्द के अनुभव के भाव (सत्त्व) से उन ज्ञानी मनुष्यों में कभी लौकिक सुख दुःखादि द्वन्द्व नहीं दीखते हैं कि जिससे अप्रसन्न हो सकें । तथा उनमें नित्य सुख स्वरूप व्यक्त रहता है, अतः दुख नहीं रहता है ।

राम नाम लखि मन गहा, तिनका मन भौ क्षीण ।
मिटिया तन धन वासना, बुद्धि मोह तजि दीन ॥२९॥
राम ज्ञान विनु मोह दल, नशत न मन वश होय ।
सत्य रामरस के मिले, द्वन्द्व रहै नहि कोय ॥३०॥
त्यागि जगत की वासना, पर विराग असि पाय ।
विश्व वृक्ष को काटि के, रह स्वरूप ठहराय ॥३१॥५६॥

जेहि राहे पण्डित गये, वोही गया बहीर ।
ऊँची घाटी राम की, तिहि चढ़ि रहा कबीर ॥५७॥

आत्मानुभव रहित पण्डित जिस सकाम कर्मादि मार्ग से गये और जाते हैं पुस्तक पाठी जिस कर्मादि मार्ग में प्रवृत्त हुए उसी मार्ग से बहीर (श्रवणादि की

शक्ति रहित ; गतानुगतिक लोग भी गये और जाते हैं और तटस्थ राम के ऊँची घाटी (स्थान) स्वर्गादि को मानकर फिर उसमें मन द्वारा चढ़कर, उसमें मन लगाकर सब रहे और रहते हैं सो कबीर साहब कहते हैं । अर्थात् विशु होने से जहाँ से कभी पतन नहीं हो, ऐसे स्थान को जाने बिना पतन के स्थान में जाते हैं॥५७॥

ये कबीर तैं उतरि रहु, सम्मल परो न साथ ।
सम्मल घटे औ पगु थके, जीव बिराने हाथ ॥५८॥

कबीर साहब कहते हैं कि ये जीवों (जिज्ञासुओं मुमुक्षुओं) तुम उतर रहो, स्वर्गादि की आशा को त्यागकर निष्काम कर्म आत्मविचारादि भक्ति करो, इसके बिना तेरे साथ में परशम्बल (उत्तम अक्षय वैराग्य ज्ञानरूप बाट खर्च) नहीं है। अतः विनश्वर सकाम कर्मादिरूप शम्बल के भोग से घटने पर और कर्मादि की शक्ति आदिरूप पगु के थकने पर अक्षय शम्बल ज्ञानादि के बिना हे जीव! फिर बिराने हाथ (परवश) होगे। अतः स्वर्गादि की आशा को त्यागकर राम भजो, ज्ञान की प्राप्ति करो ॥५८॥

काटे आम न मौलसी, फाटे जुटे न कान ।
गोरख पारस परस बिनु, काहे को नुकसान ॥५९॥

आत्म ज्ञान, पूर्ण वैराग्य के होने पर (तुम्ह कारण बन काटिया) "असङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्वा ।" (भ० गी० १५।३) इत्यादि उपदेश के अनुसार गुरु उपदेश से और असंगता वैराग्यरूप दृढ़ अस्त्र शस्त्र से काटे गये आम्रवन आमवस्तु (कच्चे मिथ्या पदार्थ) फिर सांसारिक दुःख सुखरूप फल के लिये मौर (मोजर फूल) युक्त भी नहीं होते हैं, फल लगना तो दूर रहता है । अर्थात् ज्ञानाग्नि से फल सहित कर्म का नाश हो जाता है और तीव्र विराग द्वारा संसार से फटे हुए कान फिर सांसारिक कथा में नहीं जुटते (लगते) हैं । इस प्रकार सब गो (इन्द्रियों) को संसार से हटाकर रखने वाले गोरख (जितेन्द्रिय ज्ञानी योगी) को आत्म स्वरूप पारस से परस (स्पर्श) के बिना नुकसान (हानि) काहे (क्यों) होगा, वह तो आत्मा राम से सम्बन्ध करके हानि लाभ से रहित नित्यमुक्त ही होगा । अतः यह कर्तव्य है । क्योंकि—

"निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुख दुःखसंज्ञै र्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ।" (भ०गी० १५।५)
"ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति । तन्निष्ठस्य मोक्षोपदेशात् ॥"

इत्यादि शास्त्र उक्तार्थ को कहते हैं ॥ ५९ ॥

पारस रूपी जीव है, लोह रूप संसार।
पारस ते पारस भया, परस भया टकसार ॥६०॥

जीव का पारमार्थिक निर्विकार स्वरूप पारसरूप स्वभाव वाला है और संसारी व्यवहारिक स्वरूप लोहे तुल्य हैं। तहाँ लोहा तो पारस के सम्बन्ध से सुवर्ण ही होता है पारस नहीं और यह संसारी जीवात्मा निजात्मा स्वरूप पारस के सम्बन्ध (ज्ञान) से अज्ञान मूलक जीवभाव की निवृत्ति से सच्चिदानान्द स्वरूप पारस ही हो गया क्योंकि उससे परस (अनुभवात्मक सम्बन्ध) सच्चा टकसार (टकसाल) हुआ (साँचा हुआ) सो उस सत्यात्मरूप से जीव को परिणत कर दिया।

निज स्वरूप पारस विमल, मिले विमल संसारि।
होंहि ब्रह्म पारस अचल, चल स्वरूप दें जारि ॥३२॥६०॥

प्रेम पाट का चोलना, पहिरि कबीरा नाच।
पानप दीन्हों ताहि को, तन मन बोलै साँच ॥६१॥

पारस से परस रहित कबीरा (जीव) (मन्दिर तो है नेह का) इस उक्त रीति से सांसारिक प्रेम (स्नेह) रूप पाट के कार्यरूप चोलना (देह) को पहिरकर संसार में नाचता है, अचल स्थिति नहीं पाता है। तहाँ अचल स्थिति के लिये सत्यात्मा सद्गुरु विषयक प्रेमपाट की चोलना पहनकर नाचना उचित है क्योंकि सांसारिक नाच में जीव, तन, मन से झूठ बोलता है और सद्गुरु सत्यात्मा राम ने उसी को पानप (इज्जत, बड़ाई, स्वतन्त्रता) दिये हैं और देते हैं कि जो तन, मन से सर्वथा साँच बोलता है, सत्यात्मनिष्ठ होता है। कहा गया है कि—

"मुख कछु और हृदय कछु आना।
स्वप्ने हुँ काहु मोहि नहिं जाना ॥"

अतः मोक्ष के लिये सद्गुरु सत्यात्मा में प्रेमपूर्वक तन, मन, वचन से सत्य परायण होना चाहिये ॥ ६१ ॥

इति नामरूपाधीन गति प्रकरण ८



अथ विषयिगतागत प्रकरण ६

दर्पण केरी गुफा में, स्वनहा पैठा धाय।
देखी प्रतिमा आपनी, भूकि भूकि मरि जाय ॥६२॥

जैसे दर्पण की गुफा में यदि कुत्ता दौड़कर पैठता है, तो अपने प्रतिबिम्बों को देखकर उनमें शत्रु आदि बुद्धि से भूक-भूक कर मरता है, वैसे ही आत्म प्रेमादि के बिना अनात्मप्रेमी होकर संसार शरीर हृदयरूप गुफा में जो जीव पैठता है, विवेकादि के बिना देहादि के अभिमानी होता है, सो अपने सत्यात्मा के प्रतिबिम्बों से युक्त देव मनुष्यादि के शरीरों को देख और उन्हें अपने शत्रु-मित्रादि समझकर स्तुति निन्दा आदि द्वारा राग द्वेषादि करके पुण्यपापादि द्वारा बार-बार जन्मादि के भागी होता है। अतः जन्मादि रहित होने के लिये सत्यात्मा के ज्ञानपूर्वक सत्य परायण होना चाहिये, प्रतिबिम्बों में भूलना नहीं चाहिये।

जगत स्नेह जन्मादि कर, राम प्रेम भव हारि।
दिल दर्पण में राम लखि, जगत स्नेह दे डारि ॥३३॥
दर्पण में प्रतिबिम्ब सम, मन गत रामहि जीव।
कहिये मन विलये भये, राम रहै सब शीव ॥३४॥
विषय रसिक ह्वै जीव यह, जन्मत मरत सदाय।
राम रसिक स्वविवेकि ह्वै, रहत स्वतन्त्र सदाय ॥३५॥६२॥

ज्यों दर्पण प्रतिबिम्ब देखिये, आप दुनों महँ सोय।
या तत्त्व ही से वा तत्त्व है, पुनि याही है सोय ॥६३॥

जैसे दर्पण में प्रतिबिम्ब देखा जाता है, तहाँ आप वह देही द्रष्टा दर्पण में और बाहर दोनों जगह प्रतीत होता है। अर्थात् एक में ही कल्पित बिम्बत्व और प्रतिबिम्बत्व दो धर्म या कल्पित प्रतिबिम्ब (आभास) से एक ही दो रूप से दीखता है और दर्पण के बिना एक ही दीखता है, तैसे ही या तत्त्व (इस एक सत्य साक्षी स्वरूप) से ही माया अविद्या अन्तःकरणादिरूप उपाधि (दर्पणों) से वा तत्त्व (टतस्थ ईश्वर देवादि) हुए हैं और होते हैं और उपाधियों के अभाव तथा अप्रतीति काल में सब इस साक्षीमात्र ही फिर रह जाते और भासते हैं ॥ ६३ ॥

जो बन सायर मूझते, रसिया लाल कराहिं।
अब कबीर पाँजी परी, पन्थी आवहिं जाहिं ॥६४॥

पूर्व कही रीति से काटने योग्य संसार स्त्री-पुत्र धन देहादिरूप वन देवेश्वरभाव कामादिरूप अपार समुद्र मुक्त (निजात्मस्वरूप) से माया अविद्या आदि द्वारा हुए हैं और निवृत्त भी हो जाते हैं। अतः जो मायामात्र मिथ्या हैं, रसिया (अनात्मप्रेमी रसिक) जीव उन्हीं को लाल रत्न करते (समझते) हैं (सत्य सुखदादि मानते हैं) और उनमें स्नेह करके आसक्त होते हैं। कबीर साहब कहते हैं कि सदा प्रेम करते-करते अब इनको मिथ्या ज्ञान चाल की ही पाँजी (आदत) पड़ गई है, कुमार्ग बन गया है, अतः ये जीव संसार पथ के पथिक होकर बार-बार आते जाते हैं। यदि संसार स्त्री पुत्रादि में किसी प्रकार सत्यादि बुद्धि निवृत्त हो, तभी गमनागमन रहित जीव हो सकते हैं, अन्यथा नहीं ॥ ६४ ॥

इति विषयिगतागत प्रकरण ९

अथ गुरुविमुख का संसार प्रकरण १०

दुहरा तो नूतन भया, पदहिं न चीन्है कोय।
जो यह पदहिं विवेकिया, छत्र धनी है सोय ६५॥

कारण शरीर सहित सूक्ष्म शरीर जीव के अनादि और मोक्ष पर्यन्त स्थायी हैं, परन्तु दुहरा (दूसरा) स्थूल पुराने-पुराने निवृत्त होते हैं और नूतन २ पाँजी आदि के द्वारा उत्पन्न होते हैं, तहाँ उन ही को तो नूतन दुहरा (दूसरा) स्थूल नूतन शरीर हुआ और होता है कि जो निजात्म पद (स्थान) को ही सत्य नहीं चीन्हते हैं, किन्तु संसार के रसिक होते हैं और जो कोई इस अपरोक्ष आत्मपद का ही विवेक किया, विवेकपूर्वक सत्य सर्वात्मा को ही समझा, जिससे राम रसिक होकर नयनादि द्वारा होने वाली विषय रसिकता को त्यागा, वही चत्रधनी (छत्रधारी स्वतन्त्र राजा ज्ञानी) है ॥ ६५ ॥

कबीर जात पुकारिया, चढ़ि चन्दन की डार।
बाट लगाये ना लगै, पुनि का लेत हमार ॥६६॥

(चन्दन वास निवारहु) इस कथित रीति से सवासन जीव चन्दन हैं, उनका साक्षी स्वरूप शुद्ध डार है। अतः कबीर साहब कहते हैं कि इस संसार से जाते हुए (असङ्ग होते हुए) भी मैं चन्दन की डार पर चढ़कर (तुरीयावस्था साक्षि-

स्वरूप में स्थिर होकर) मनुष्य के हित के लिये सन्मार्ग को पुकार कर कह दिया है कि विषय रसिकता को त्यागकर राम रसिक बनो। इस प्रकार यदि कोई सतमार्ग में लगाने से सतमार्ग में नहीं लगेगा तो फिर हमारा क्या लेगा, मार्ग में लगने पर ही सद्गुरु के सर्वस्व को प्राप्त करेगा। अतः ऐसे उपदेशों को सुनकर सन्मार्ग में अवश्य प्रवृत्त होना चाहिये। श्रवण मात्र से न पुण्य मानना चाहिये न तृप्त होना चाहिये।

स्वस्वरूप सत निष्ठ गुरु, कहत सुसत्य पुकारि।
मन वच से सत निष्ठ ह्वै, लहो सत्य सुख सारि ॥३६॥६६॥

सब ही ते साँचा भला, जों दिल साँचा होय।
साँच बिना सुख नाहिं है, कोटि करै जो कोय ॥६७॥

सबही साधन और साध्य से साँचा (सत्य वचन, व्यवहार, वस्तु) भला (पवित्र श्रेष्ठ) है, परन्तु यदि दिल भी साँचा (निष्कपट आत्मनिष्ठ) हो। इस प्रकार के साँच के बिना कहीं भी सुख नहीं है। साँच के बिना चाहे करोड़ों उपाय करे तो भी सत्य सुख नहीं मिलता है। अतः सुखार्थी को असत्य कपटादि के त्यागपूर्वक सत्यनिष्ठ होना चाहिये।

सब से सत्यहि है भला, दिल में सत्य बसाव।
वचनहुँ सत्य सम्हारि के, राम रतन लख पाव ॥३७॥६७॥

साँचा सौदा कीजिये, अपने दिल में जानि।
साँचे हीरा पाइये, झूठे मूलौ हानि ॥६८॥

साँचा सबसे श्रेष्ठ है अतः अपने दिल में जानकर (सोच समझकर) सत्यात्मा सत्य व्यवहारादिरूप सौदा (वस्तु) सच्चे सद्गुरु से सत्सङ्गादि में जाकर प्राप्त करो। क्योंकि साँच से ज्ञान, आत्मा, मोक्षरूप अभेद्य हीरा की प्राप्ति होती है और झूठ व्यवहारादि से सब सुखादि के साधन मनुष्यतारूप मूल धन की हानि होती है, आत्मानन्द की कभी प्राप्ति नहीं होती है।

सत्य हृदय में धारिये, लहिय ज्ञान सुख मुक्ति।
मिथ्या मन में धारि के, मूल गमावत युक्ति ॥३८॥६८॥

सुकृत वचन मानै नहीं, आपु न करै विचार।
कहहिं कबीर पुकारि के, सपन गया संसार ॥६९॥

असत्य परायणता से जो संसारी जीव सुकृत (पुण्यात्मा गुरु के पुण्य) वचन को नहीं मानता है, न आपही सद्विचार करता है, सो स्वप्न संसार में ही गया और जाता है। अतः संसार स्वप्न की निवृत्ति के लिये सुकृत वाणी का विचार कर्तव्य है।

मूल युक्ति सत रहित नर, गुरु सद्वचन न मान।
आपहुँ करत विचार नहिं, भ्रमत स्वप्न के भान ॥३९॥६९॥

इति गुरुविमुखसंसार प्रकरण १०



अथ ज्ञानाग्न्यादि प्रकरण ११

आगि जो लागि समुद्र में, धुआँ न परगट होय।
सो जानै जो जरि मुआ, जाकी लाई होय ॥७०॥

संसार के स्वप्न तुल्य होने से सुकृत वचन को मानने पर, संसार समुद्र में शिष्य के हृदय में जो ज्ञानाग्नि लगी है और लगती है उसका धूम (कार्यचिन्ह) अज्ञों के लिये प्रकट नहीं होता है। ज्ञानजन्य सुख शान्ति आदि को अज्ञ नहीं समझ सकता है। अतः उस अग्नि को भी वही जानता है कि जो उस अग्नि द्वारा अपने सब अभिमानादि को नष्ट करके मानो जल मरा और मरता है। या जिस सद्गुरु की वह अग्नि संसार शिष्य के हृदय में लाई हुई हैं, सो सद्गुरु उस अग्नि को जानते हैं।

सद्गुरु वचन विचार से, ज्ञान अग्नि उद्योत।
जहाँ भयो तहँ मद जला, लखत न जड़ खद्योत ॥४०॥७०॥

लाई लावनहार की, जाकी लाई पर जरै।
बलिहारि लावनहार कि, छप्पर बाँचै घर जरै ॥७१॥

उस लावनहार (ज्ञानाग्नि को लानेवाले) गुरु की बलिहारी (धन्यवाद) है कि जो गुरु अनादिकाल से गुरु शिष्य परम्परा द्वारा लाई हुई ज्ञानाग्नि को शिष्य के हृदय में लाने वाले हैं, अपने मन से मिथ्या कल्पना करनेवाले नहीं हैं। सनातनधर्म ज्ञानज है और जिनकी लाई हुई अग्नि से पर (अनात्म वस्तु और कामादि शत्रु) जर कर नष्ट हो जाते हैं और सबको छाया (आनन्द, शांति) देनेवाला छप्पर तुल्य व्यापक सर्वात्मा उस अग्नि से बच जाता है और तीन

लोक, तीन देहरूप घर जर जाते हैं, इनमें मिथ्यात्वादि का निश्चय हो जाता है और इनके अभिमान कामादि का सर्वथा अभाव हो जाता है। ऐसी ज्ञानाग्नि को लाने वाले गुरु की बलिहारी है ॥ ७१ ॥

आगि जो लागि समुद्र में, जरे सकादो झार।
पुरब पच्छिम के पण्डिता, मुये विचारि विचारि ॥७२॥

जो ज्ञानाग्नि संसार में लगती है उससे माया मोहादिरूप कादो (कीचड़, मूल) सहित यह सब समुद्र जलता (बाधित होता है)। इसीसे उस अग्नि के लिये पूर्व पश्चिम (भूत, वर्तमान आदि काल) के पण्डित (विवेकी विद्वान्) विचार विचार कर मरे और मरते हैं (मरण पर्यन्त विचारादि करते रहते हैं) और कामादि के वश में नहीं होते हैं ॥७२॥

आगि जो लागि समुद्र में, टुटि टुटि खँसये झोल।
रोवै कबिरा डम्फिया, हीरा जरै अमोल ॥७३॥

ज्ञानाग्नि जो संसार समुद्र में लगी उससे मोहाभिमानादिरूप झोल (मल) ज्ञानी के देहरूप घर से टूट-टूट कर खँसते (गिरते) हैं। परलोकादि की इच्छा के अभाव से उनके लिये कर्मादि निवृत्त होते हैं। सो देखकर उनके पिता-पुत्रादिरूप डम्फिया (दम्भी अभिमानी) कबिरा (जीव) सब रोते हैं कि कर्मादि के बिना इसके लोकादिरूप अमूल्य हीरा जरते हैं, ये हमारे लाल भी नष्ट हो रहे हैं, इत्यादि ॥ ७३ ॥

बुन्द जो परा समुद्र में, सो जानै सब कोय।
समुद्र समाना बुन्द में, बूझै बिरला कोय ॥७४॥

व्यावहारिक जीवरूप बुन्द संसार समुद्र में पड़ा है, सो सब कोई जानते हैं। परन्तु वासना आदिरूप से संसार बुन्दों (जीवों) में समाना (समाया) है, तथा जीवों के पारमार्थिकस्वरूप में कल्पित है उसके बिना कहीं संसार की स्थिति नहीं है, इस अर्थ तत्त्व को कोई बिरले ही समझते हैं। तथा वामदेवादि ज्ञानी जीवरूप बिन्दु ब्रह्म समुद्र में पड़े लीन हुए सो बहुत लोग समझते हैं परन्तु परब्रह्म को अपने स्वरूप में बिरले कोई समझते हैं कि जिनको सद्गुरु भाग्यवश मिलते हैं।

निज आतम सब जगत में, जगतहुँ आतम माँहि।
बुन्द समुन्दर में यथा, समुद्र बुन्द के माँहि ॥४१॥७४॥

जहर जिमी दै रोपिया, अमि सींचै सौ बार।
कबिर खलक नाहीं तजै, जामें जौन विचार ॥७५॥

सुन्दर भूमि में सुन्दर खाद देकर भी यदि जहर (विष) के बीज बोये जायँ और सैकड़ों बार अमि (अमृत = दूध) से सींचे (पटाये) जायँ, तो वे बीज अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते हैं, विष को ही उत्पन्न करते हैं। कबीर साहब कहते हैं उक्त ज्ञानादि के बिना खलक (संसार) में जिसका जो विचार है, सो उस विचार को नहीं त्यागता है चाहे सैकड़ों सदुपदेश दिया जाय। क्योंकि अज्ञ जीवों ने अपने हृदय में कामादि खाद देकर विषय वासनारूप विष बीजों को बोया है और उससे वह विचार उत्पन्न हुआ है। सत्संगादि द्वारा सद्वासना अभ्यास योगादि से उस विचार का त्याग हो सकता है, अतः सत्संगादि कर्तव्य हैं।

आतम ज्ञानादिक बिना, जीव न तजत स्वभाव।
विरही ह्वै दुखते जलत, रोवत जन्महुँ पाव ॥४२॥७५॥

दव की डाढी लाकड़ी, ऊभी करै पुकार।
अब जो परै लुहार घर, डाहै दूजी बार ॥७६॥

अपने-अपने कुविचारों को नहीं त्यागने से दावानल से दग्ध लकड़ी के समान विरह, कामादि ताप से तप्त कोयला के समान होकर, तथा ऊभी (खड़े) होकर मनुष्य पुकार कर कहते हैं, अब यदि यमराजरूप लोहार के घर में प्राप्त हुए, तो वह दूसरी बार भी जलायगा जैसे लुहार कोयले को जलाता है। अर्थात् सत्सङ्ग ज्ञान के बिना सदा भय होता है। अतः सत्सङ्ग सद्विचारादि द्वारा ज्ञान प्राप्त करके निर्भय मुक्त होना चाहिये ॥७६॥

इति ज्ञानाग्न्यादि प्रकरण ११

अथ विरह दशा प्रकरण १२

विरह की ओदी लाकड़ी, सपुचै औ धुँधुआय।
दुख ते तबही बाँचिहौं, जब सकलो जरि जाय ॥७७॥

जैसे सूर्य तेज आदि के विरह (अप्राप्ति) से ओदी लकड़ी जलने के समय जलती हुई सपुचती है, मानो संकोच करती-रोती है, अतः पानी चुलाती है और

धूआँ करती है, मानो जलने के लिये उत्साह करती है। वैसे ही सद्गुरु, आत्मज्ञान, ईश्वर के विरहयुक्त हृदय से ओदी रागी जीव कभी प्रेम भक्ति आदि की कथा को सुनकर तथा दुःखादि काल में रोते-गाते हैं और कर्मादि के लिये उत्साह करते हैं। तहाँ जैसे ओदी लकड़ी जब सब जल जाती है, तब धूमादि से रहित होती है अन्यथा नहीं वैसे ही सद्गुरु कहते हैं कि जब सब वासना, काम, ममता आदिक ज्ञानाग्नि से जल जायँ, तबही दुःखों से सर्वथा बच सकते हो, अन्यथा नहीं। अतः सत्सङ्गादि द्वारा ज्ञान की प्राप्ति अवश्य कर्तव्य है ॥७७॥

विरह बान जिहि लागिया, औषध लगै न ताहि।
सुसुकि सुसुकि मरि मरि जिवै, उठै कराहि कराहि ॥७८॥

जिसके हृदय में परमात्मा के विरह (वियोग) का उपदेश निश्चयरूप बाण लग गया है उसको सत्यात्मोपदेशादिरूप औषध नहीं लगता है (असर नहीं करता है) अतः वह पीड़ा के मारे सुसुक-सुसुक कर रोता है और मर-मरकर जीता-जन्मता है। फिर कराहि-कराहि करके उठता है, सकाम कर्मादि में प्रवृत्त होता है या कहरता है। कभी आत्मविचारादि नहीं करता है कि जिससे शान्ति मिले ॥ ७८ ॥

दुहरा कत कहहिं कबीर, प्रतिदिन समय जु देख।
मूये गये न ऊबरे, बहुरि न ऐहो पेख ॥७९॥

कबीर साहब कहते हैं कि आत्मज्ञानादि के विरह (अभाव) से जो प्रतिदिन सब समय में दुहरा (दूसरी देह) होते और देखे जाते हैं, उनको मैं कितना कहूँ कि कौन शरीर में कैसे दुःखादि होते हैं। इतना ही कहना है कि जो कोई मरकर कहीं गये, सो कहीं जानेमात्र से नहीं ऊबरे (मुक्त सुखी नहीं हुए) किन्तु आत्मज्ञान काम, ममता, वासनादि के त्यागादि से ही कोई भी मुक्त सुखी हुए। अतः जिस आत्मतत्त्व के ज्ञान से गर्भ संसार कष्ट दशा में फिर कभी नहीं आवोगे, उस आत्मतत्त्व को पेखो, देखो (उसके अपरोक्ष अनुभव की प्राप्ति करो)।

मुये न पावत कुशल नर, जब लगि गहत न सार।
सार तत्त्व लहि हृदय में, लह सुखसिन्धु अपार ॥४३॥७९॥

साँचा शब्द कबीर का, हृदया देखु विचार।
चित्त दै समुझै नहीं, कहत भेल युग चार ॥८०॥

उक्त आत्म अनुभव के लिये कबीर (सद्गुरु) का सत्य शब्द प्रमाणरूप है। उसके द्वारा अपने हृदय में सत्यात्मा को विचार कर देखो (समझो) दूर की आशा को त्यागो, तुम चित्त देकर सावधानी से विचार कर नहीं समझते हो। अतः सन्त सद्गुरु को कहते चार युग हो गये और तुम अज्ञ देहादि के अभिमानी ही रह गये हो, अब भी तो समझो ॥ ८० ॥

जो तैं साँचा बाणियाँ, साँची हाट लगाव।
अन्दर झारू देइ के, बाहर कुरा बहाव ॥८१॥

अब भी यदि तुम सत्य शब्द सत्यात्मा के बाणियाँ (व्यापारी) होना चाहो यदि सत्य का व्यापारी हो तो सत्य की हाट लगाओ (सत्सङ्ग, सद्विचार आदि करो) काम, कथा आदि को त्यागो और विवेक, वैराग्यरूप झाड़ू अन्दर में देकर (लगाकर) राग, द्वेषादिरूप कूड़े को दूर बहाओ (बीगो) हृदय को निर्विकार शुद्ध बनाओ।

जो जन चाहो सार को, सो विवेक वैराग।
निज हृदये में लायके, करो दोष गण त्याग ॥४४॥८१॥

इति विरही दशा प्रकरण १२

अथ कुसङ्गादि फल प्रकरण १३

कोठी तो यह काठ की, ढिग ढिग दिन्हों आगि।
पण्डित जरि झोली भये, साँकट उबरे भागि ॥८२॥

यह संसार और शरीर काठ की कोठी (महल मकान) है और उसमें विषयादि कामेन्द्रियादिरूप अग्नि ढिग ढिग (पास-पास) में मन, माया से लगा दी गयी है। उक्त कूड़ा के रहते उसमें इस अग्नि के प्रज्वलित होने से इस कोठी में आसक्त शास्त्रज्ञ पण्डित भी जरकर झोली (खाक) हो गये। इस अवस्था में यदि साँकट उबरे तो उसका भाग्य ही समझना चाहिये। अर्थात् अभिमानी पण्डित जल गये। अभिमानादि को दूर त्यागनेवाला अनपढ़ विवेकी बच गया, अतः कूड़ा दूर बीगो।

दोष घास के बास से, त्रिविध तापमय आग।
लगत तहाँ पण्डित जरे, मूरख को सक भाग ॥४५॥८२॥

श्रावण केरा सेहरा, बुन्द परा असमान ।
सब दुनियाँ वैष्णव भया, गुरु नहिं लागा कान ॥८३॥

जैसे श्रावण के सेहरा (मेघ माला) होने पर असमान (आकाश) से बुन्द पड़ता है, तैसे चिदाकाशरूप विष्णु से मायारूप मेघ द्वारा सब दुनियाँ हुई है, अतः सब प्राणी वैष्णव ही हुए हैं, परन्तु कूड़ा को दूर बहाये बिना गुरु का मन्त्र इनके कानों में नहीं लगा है, न लगता है अतः जलते हैं । अथवा असमान से वृष्टि की नाईं गुरुओं की आसमानी स्वर्ग वैकुण्ठादि की बातों को सुनकर सब वैष्णवादि हुए हैं, परन्तु विवेक, वैराग्यादिपूर्वक आत्मपरिचय कराने वाले सद्गुरु कान में नहीं लगे हैं ॥ ८३ ॥

ढिग बूड़ा उछला नहीं, इहे अँदेशा मोहि ।
सलिल मोह के धार में, कस निन्द आई तोहि ॥८४॥

मानव तनु पाकर वैष्णव कहा कर जो संसार में आसक्त हुए, सो संसार समुद्र के ढिग में (पास में किनारे पर) आकर डूब गये (संशय मोहादि से ग्रस्त हो गये) और फिर उछले (उतराये) नहीं । संसार से उपराम विरक्त ज्ञानी नहीं हुए । तहाँ मुझे इस बात का संदेशा (आश्चर्य, संशय) है कि मोह जल की धारारूप विषयादि में तुझे नींद कैसे आई है । इसमें विश्राम सुख कैसे तुझे प्रतीत होता है । यह मोह का प्रभाव है । मोह को त्यागो जागो और उठो ।

वैष्णव वक्ता बहुत भै, गहत न मति वैराग ।
बहत मोह के धार में, छुटत न मन का दाग ॥४६॥
मन का दाग मिटाइये, करि विवेक वैराग ।
असत कपट को त्यागिये, झूठन संग न लाग ॥४७॥
मन इन्द्रिय वश करि इमि, गुरुमुख शब्द विचारु ।
तब हृदय की वासना, नशिहैं सकल खँभारु ॥४८॥८४॥

साखी कहै गहै नहीं, चाल चली नहिं जाय ।
सलिल मोह नदिया बहै, पाँव कहाँ ठहराय ॥८५॥

जो लोग साखी (साक्षी स्वरूप आत्मा और वेदादिरूप प्रमाण) का कथन करते हैं परन्तु उसको मन से गहते (धरते जानते) नहीं हैं । न दुर्वृत्त का त्यागपूर्वक सुचाल चली जाती है, तो मोह नदी की जो राग द्वेषादिरूप धारा

वह रही है, उसमें उनके पाँव (मन) कहाँ ठहर सकता है और पाँव के नहीं ठहरने से विवेक वैराग्यादि के बिना महासमुद्र में प्राप्त होते हैं, अतः साखी को गहकर मन को ठहराना उचित है ।। ८५ ।।

कहता तो बहुते मिला, गहता मिला न कोय ।
सो कहता बहि जान दे, जो न गहन्ता होय ॥८६॥

साखी शब्दादि के कहने वाले वक्ता उपदेशकादि बहुत मिलते हैं, परन्तु उसको गहने वाले कोई विरले मिलते हैं । तहाँ केवल कहने वाले बहुत अनात्म पदार्थ में मिले (आसक्त) रहते हैं, अनात्म बहुत पदार्थ भी इनमें मिला रहता है असङ्ग साची स्वरूप को गहने वाले न आप किसी से मिलते हैं, न उनसे कोई मिलता है । तहाँ जो कोई गहन्ता (गहने वाले) नहीं होते हैं, सो (उन) केवल कहता (कहने वाले) को संसार में बह जाने दो उनके सङ्गादि नहीं करो और जो तुमसे भी गहते नहीं बने उसके मिथ्या कथन को त्याग दो, सर्वथा सत्य की रचा करो, झूठे के सङ्ग को छोड़ो तो कभी सद्गति होगी अन्यथा नहीं ।। ८६ ।।

एक एक निरुवारिये, जो निरुवारी जाय ।
दुइ दुइ मुँह का बोलना, घना तमाचा खाय ॥८७॥

सत्यनिष्ठ होकर यतमानादि वैराग्य द्वारा एक-एक इन्द्रियों का निरोध करो तथा एक-एक वस्तु का विवेक विचार करो और जो तुमसे निरुआरी जाय उसी के निरुआर के लिये चर्चा यत्न करो, क्योंकि संशयजनक दो-दो बातों को मुँह से बोलने वाला मनुष्य माँदर मृदङ्गादि के समान घना (बहुत) तमाचा (चपेटा) खाता है, कठिन दण्ड भोगता है ।। ८७ ।।

प्राणी ते जिह्वा डिगा, क्षण चण बोल कुबोल ।
मन घाले भरमत फिरे, कालहिं देत हिंडोल ॥८८॥

क्योंकि हे प्राणी ! ते (तेरी) जिह्वा से यदि तूँ डिगा (हारा) तो वह जिह्वा चण-चण में कुबोल बोलेगी और बोलती है और असत्य परायण मन भी तुमको घालता (कष्ट देता) है, स्वतन्त्र भरमते फिरता है । तथा मन के घाले (वश में) होकर तुम भरमते फिरता है और काल भी पुण्य-पापादि रचित हिंडोला तुमको संसार में झुलने के लिये देता है । काल के आधीन सदा जन्मते-मरते हो, तथा बार-बार आने-जाने के लिये तुम काल को हिंडोला देते हो,

स्थिर पद नहीं पाते हो। अतः स्थिर पद की प्राप्ति के लिये असत्य के त्यागपूर्वक सत्यनिष्ठ होओ ॥ ८८ ॥

जाके जिह्वा बन्ध नहीं, हृदया नाहीं साँच।
ताके सङ्ग न लागिये, घाले बटिया माँझ ॥८९॥

जिसके जिह्वा में बन्धन (सत्यहित मधुर बोलने का नियम) नहीं है और हृदय सद्भावना, सत्य विश्वास वाला नहीं है, उस झूठे अविवेकी के सङ्ग में नहीं लगो (उसका सङ्ग नहीं करो) क्योंकि उसके साथ में लगने से वह मध्य मार्ग में डाकू के समान घालेगा (नष्ट करेगा) अतः स्वयं असत्य को त्यागकर असत्यभाषी के सङ्ग को भी त्यागो, तब कुशल होगा अन्यथा नहीं ॥८९॥

इति कुसङ्गादिफल प्रकरण १३

अथ विचारोपदेश प्रकरण १४

जिह्वा तो बन्धन देइ, बहु बोलन निरुवार।
सारथी सो संग करी, गुरुमुख शब्द विचार ॥९०॥

सत्यवक्ता बनने के लिये प्रथम सत्य मित हित बोलने के नियमरूप बन्धन को जिह्वा में देकर के ही बहुत बोलना निरुवारो (त्यागो) और इन्द्रियरूप घोड़ों के मनरूप लगाम को पकड़ने वाले सद्गुरु सन्तरूप सारथी (शरीर रथ को सुमार्ग से चलानेवालों) से सङ्ग करके गुरुमुख से प्राप्त शब्दों का विचार करो ॥९०॥

हिलगी भाल शरीर में, तीर रहो है टूटि।
चुम्बक बिना न नीकलै, कोटि पाहन गौ छूटि ॥९१॥

कुसंगादि से विषय असदुपदेशादिरूप तीर (बाण) के भाला तेरे शरीर (हृदय) में हिलगी (हेल गये पैठ गये) हैं और तीररूप विषयादि तो मानो टूटकर बाहर ही रह गये हैं। परन्तु उनकी वासनारूप भाला (नोक) भीतर रह गये हैं। सो सद्गुरु के वचनरूप चुम्बक के बिना नहीं निकलते हैं। अन्य करोड़ों पाषाण तुल्य अन्य करोड़ों वचनादिरूप उपायों से वे वासना आदिरूप भाला भीतर ही छूट जाते हैं, अतः गुरुमुख शब्द का अवश्य विचार कर्तव्य है ॥९१॥

लोहहिं चुम्बक प्रीति है, लोहहिं लेत उठाय।
ऐसो शब्द कबीर के, पल महँ लेत छुड़ाय ॥९२॥

लोहे की चुम्बक में मानो प्रीति है, अतः वह चुम्बक शरीर के अन्दर से भी लोहे को उठा लेता है जीव को सुखी करता है। ऐसे सद्गुरु के शब्द हैं। अतः जिसको सद्गुरु के शब्द में प्रीति (प्रेम) होती है, जिससे शब्द को वह प्रेमपूर्वक पढ़ता सुनता विचारता है, उस भक्त अधिकारी के हृदय से वासना कामादि को वह शब्द मानो उठा लेता है, निकाल देता है और पलमात्र में जीव को संसार बन्धन यमयातना आदि से छुड़ा लेता है। अतः सब साधनों से गुरुमुख शब्द का विचार श्रेष्ठ है, इसलिये मुमुक्षुजन अवश्य गुरुमुख शब्द का विचार करो ॥९२॥

आगे सीढ़ी साँकरी, पीछे सकना चूर।
परदा तर की सुन्दरी, रही धका दै दूर ॥९३॥

पूर्वोक्त सत्य भाषण यज्ञ दानादि युक्त शुभेच्छा और गुरुमुख शब्द के विचाररूप सुविचारणारूप ज्ञान की भूमिका के विशाल क्षेत्र मार्ग हैं। ये दोनों साधन अकेले और अनेक के साथ मिलकर भी किये जा सकते हैं। परन्तु इन दोनों के आगे तनु मानसा, सत्त्वापत्ति असंसक्ति, पदार्थाभाविनी और तुर्या (समाधि) नाम वाली जो ज्ञान की भूमिकारूप मोक्ष मार्ग की सीढ़ियाँ (पंक्तियाँ) हैं सो साँकरी हैं, उनमें एकाकी ही जाया जा सकता है।

"अल्पान्नाऽभ्यवहारेण रहः स्थानासनेन च।
ह्रियमाणानि विषयैरिन्द्रियाणि निवर्तयेत् ॥" (मनु० ६।५७)

अल्पान्न भोजन, एकान्त में आसन के द्वारा विषयों से आकृष्ट मन इन्द्रियों को निवृत्त करे। इत्यादि शास्त्र के वचन के अनुसार एकान्त में ही तनुमानसा आदि साधन हो सकते हैं। परन्तु ये सीढ़ियाँ अत्यन्त दुर्गम तथा ऊँची हैं। जो कहीं इनसे माया वश पीछे गिरते हैं, तो सकना चूर हो जाते हैं। तथा आलस्यादि वश ज्ञान के मार्गों से पीछे रहने वाले सकना चूर होते हैं। तथा मनुष्यता से आगे देवभावादि की सीढ़ी (कर्मोपासनादि) साँकरी (संकीर्ण विघ्नादि युक्त) है और पीछे (तिर्यग्) योनि नरकादि में जीव सकना चूर होते हैं। मनुष्यता में कुछ सुविधा रहती है तहाँ भी आवरण शक्ति हृदयादिरूप परदा तर की सुन्दरी माया अविद्या धका देकर सुमार्ग से दूर लेकर स्थिर हो रही है।

तथा दैवयोग से प्राप्त सुमार्ग से गिराकर आप दूर रहती है। मायिक भोग से भी वञ्चित करती है। जो लोग किसी प्रकार निष्काम कर्म भक्ति द्वारा तनुमानसा पूर्वक सत्त्वापत्ति में स्थिर हो जाते हैं सो माया के विघ्नपातादि भय से रहित होते हैं क्योंकि माया अविद्या अन्धकार (तम) रूप हैं और वे लोग प्रकाशरूप विद्या में स्थिर होते हैं। अतः अविद्याजन्य परदा तर की सुन्दरी माया मानो संकीर्ण मार्ग के धक्का से दूर रहती है। क्योंकि ज्ञानरूप प्रकाश से अविद्यारूप अन्धकार नष्ट हो जाते हैं और परम प्रकाश से प्रथम माया देवादि विघ्न करते हैं फिर नहीं। अतः गुरुवचन विचारादि द्वारा प्रकाशरूप ज्ञान प्राप्त करना चाहिये ।। ९३ ।।

संसारी सबे विचारी, क्या विरही क्या योग।
अवसर मारे जात हैं, चेत बिराने लोग ॥९४॥

हे संसारी लोगों ! क्या (चाहे) विरही भक्त होवो या कर्म योगी, ध्यान योगी होवो, परन्तु तुम सब के सब परम प्रकाशरूप ज्ञान के लिये गुरुमुख शब्दों के सुविचारी बनो। हे विराने ! (परवशी) मन माया के अधीन रहने वाले लोगों ! ये मानव तन के अमूल्य अवसर कुविचारादि में मारे (नष्ट किये) जा रहे हैं। सो चेतो (समझो) और इन अवसरों को व्यर्थ नहीं नष्ट होने दो, सुविचार में लगावो (संसारी समय विचारी, क्या गिरही क्या योग) यह पाठान्तर है गृहस्थ या त्यागी सब संसारी को समय के विचारशील होना चाहिये क्योंकि विचार के बिना समय ही तुमको नष्ट करते जाते हैं। हे विराने लोगों सो अब भी समझो, काल से अपनी रक्षा आप करो ।। ९४ ।।

संशय सब जग खंधिया, संशय खँधे न कोय।
संशय खन्धै सो जना, शब्द विवेकी होय ॥९५॥

विचारादि के बिना संशय (दुविधा, भ्रम) सब संसारी को खंधिया (खाया नष्ट किया) और संशय को कोई विचारादि रहित मनुष्य नहीं खाता है, उसका खंडन नाश नहीं कर सकता है। उस संशय का खंडन सोई जन कर सकते हैं कि जो सार शब्द के विवेक, विचारादिपूर्वक आत्मविवेकी होते हैं, हो सकते हैं। क्योंकि—"नैषा तर्केण मतिरापनेया प्रोक्ताऽन्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ !" हे प्रियतम ! यह आत्ममति तर्क से प्राप्त या निषेध करने योग्य नहीं है। किन्तु नास्तिकतादि

से अन्य सद्गुरु से ही उपदिष्ट यह मति आत्मसाक्षात्कार के हेतु होती है। अन्यथा (संशयात्मा विनश्यति) संशययुक्त मनवाला बार-बार जन्मता-मरता है।

गुरुमुख वचन विचार विनु, ज्ञान भूमि के माहिं।
माया जाने देत नहिं, संशय बनि सब खाहिं ॥४९॥
संशय भ्रम के नाशहित, सार शब्द लखु शुद्ध।
ताते आत्मविचारि करि, लखि निजात्म हो बुद्ध ॥५०॥
बुद्ध हुए बिनु विषय बन, में जो रहता भूल।
मनवश ह्वै सो भटकता, सहता संशय शूल ॥५१॥९५॥

इति विचारोपदेश प्रकरण १४

अथ ज्ञान में विचार साध्यता प्रकरण १५

बोलना है बहुभाँति के, नयनन नहिं कछु सूझ।
कहहिं कबीर पुकारि के, घट घट वाणी बूझ ॥९६॥

सारशब्द का विवेक अवश्य करना चाहिये क्योंकि बोलना (शब्द वाणी) बहुत प्रकार के हैं और नेत्रों से कुछ भी सत्य वस्तु आत्मा, धर्म, स्वर्गादि दीख नहीं पड़ते हैं कि जिससे देखकर निश्चय कर लिया जाय और संशय, भ्रम को नष्ट किया जाय और नेत्रादि का विषय संसार मिथ्या ही है। अतः कबीर साहब पुकार कर कहते हैं कि तुम घट-घट की वाणी को बूझो (सब घट में वर्तमान सत्यात्मा के बोधक सत्य शब्द को विवेकपूर्वक समझो) अन्यथा शब्दजाल से संशय की निवृत्ति नहीं होगी—

"शब्दजालं महारण्यं चित्तभ्रमणकारणम्।
अतः प्रयत्नाज्ज्ञातव्यं तत्त्वज्ञात्तत्त्वमात्मनः ॥" (विवेकचू०) ॥९६॥

मूल गहन ते काम है, तैं मति भरम भुलासि।
मन सायर मनसा लहर, बही कतहुँ मति जासि ॥९७॥

हे सज्जनों ! मूल वस्तु (सार शब्द सत्यात्मा) के गहने (विवेक, निश्चय, निष्ठा) से ही काम (कार्य, मोक्ष) तुमको होना है। अतः विवेक के बिना तुम भरमरूप मिथ्या शब्दजाल अर्थ में मति (नहीं) भूलो, उनमें सत्यादि बुद्धि से

आसक्त नहीं होओ और मनरूप सायर (समुद्र) के मनसा (मनोरथ=इच्छा) रूप लहर (तरंग) के वश में होकर कहीं बह नहीं जाओ। विवेक से मन को वश में करके तनुमानसापूर्वक सत्यात्मनिष्ठ होओ। भगवान मनु ने कहा है कि–

"वेदाभ्यासस्तपोज्ञानमिन्द्रियाणां च संयमः।
अहिंसा गुरुसेवा च निःश्रेसकरं परम् ॥१॥
सर्वेषामपि चैतेषामात्मज्ञानं परं स्मृतम्।
तद्ध्यग्र्यं सर्वविद्यानां प्राप्यते ह्यमृतं ततः ॥२॥९७॥

भँवर बिलम्बा बाग में, बहु फूलन की बास।
जीव बिलम्बा विषय में, अन्तहुँ चला निराश ॥९८॥

जैसे भँवर बहुत फूलों की बास (गन्ध) से बाग में विलम्बता (ठहरता आसक्त होता) है। वैसे ही मन के वशवर्ती भ्रान्त सब जीव विषयों में विलमें हैं। इससे सुख तृप्ति चाहते हैं। परन्तु विषयों से तृप्ति नहीं होती है, अतः अन्त में भी निराश (हताश, अतृप्त) चले और चलते हैं। आत्मनिष्ठ होने से तृप्ति होती है, अतः आत्मनिष्ठ होना चाहिये ॥ ९८ ॥

भँवर जाल बक जाल है, बूड़े बहुत अचेत।
कहहिं कबिर ते बाँचि हैं, जाके हृदय विवेक ॥९९॥

तृप्ति सन्तोषादि के विना जीवों को फँसाने के लिये संसार के वर्तमान विषय, भँवर जाल है (भँवर तुल्य गन्धादि के लोभी जीवों को फँसाने वाले हैं) और भावी विषय बकजाल हैं (बकध्यानी, बकवृत्ति, दम्भी को फँसानेवाले हैं। तथा सब विषय संसार समुद्र के वक्र भँवर (आवर्त) के जाल (समूह) रूप है। अतः इसके द्वारा बहुत अचेत (अविवेकी) बूड़ते हैं और बूड़ चुके हैं। कबीर साहब कहते हैं कि वे ही बूड़ने से बाँचेंगे कि जिनके हृदय में सारासारादि का विवेक विज्ञान होगा। अतः बचने के लिये विवेक कर्तव्य है ॥ ९९ ॥

तीनि लोक टीड़ी भया, ऊड़ा मन के साथ।
जाने बिनु भटकत फिरै, परे काल के हाथ ॥१००॥

विवेकादि के विना तीनों लोक के प्राणी टीड़ी तुल्य हो रहे हैं और मन के मनोरथादि के अनुसार मन के साथ उड़ रहे हैं और जाने बिना (सत्यात्मारूप ठौर के ज्ञान विना) संसार में सदा भटकते फिरते हैं और बार-बार काल के हाथ

(वश) में पड़ते हैं । (हरिजन हरि जाने विना) पाठान्तर है। हरिजन को हरिरूप जाने विना, हरिजन होकर हरि को जाने विना तथा हरिजन और हरि को जाने विना काल के हाथ में पड़ते हैं, इत्यादि ॥१००॥

नाना रंग तरंग है, मन मकरन्द असूझ।
कहहिं कबीर पुकारि के, अकल कला लै बूझ ॥१०१॥

मन के काम भयादिरूप नाना रंग (आकार परिणाम) संसार समुद्र के विषम तरंग हैं और विषयानन्द विषयरस (प्रेम) रूप मकरन्द (पुष्प रस मधु) के पान से मनरूप भँवरा असूझ (अन्ध विवेक रहित) रहता है, अतः वह कुमार्ग में भटकता और भटकाता है। उससे बचने के लिये कबीर साहब पुकार के कहते हैं कि उस मन के साथ को छोड़कर अकल (बुद्धि) की कला (प्रभाव कुशलता) से सत्य वस्तु को बूझ समझ लो। तथा अकल (निरवयव) आत्मा और कलारूप प्राण मन आदि को सद्गुरु द्वारा विवेकपूर्वक समझ लो। क्योंकि मन के नानारूप तरङ्ग के मारे मन में वर्तमान भी मकरन्द (परमानन्द रस) विवेकादि के विना नहीं सूझता है ॥१०१॥

बाजीगर का बान्दरा, अस जिव मन के साथ।
नाना नाच नचाय के, राखै अपने हाथ ॥१०२॥

विवेकादि के विना बाजीगर (नट) के वानर के समान जीव मन के साथ में रहता है और वह स्वार्थी मन नट के समान इन जीवों को नाना नाच नचाकर अपने हाथ (वश) में रखता है। स्वतन्त्र सुखी नहीं होने देता है ॥१०२॥

मन रंगे सब रंगिया, रंगिया रंग कुरंग।
कहहिं कबिर कस बाँचिहो, बसेहु शब्द के संग ॥१०३॥

विवेकादि के विना सब जीव मन के रंग में रंग गये हैं (मन के धर्म काम, संकल्प, संशय, श्रद्धा, अश्रद्धा, धैर्य, अधैर्य, लज्जा, भयादि को आत्मा के धर्म मान लिये हैं) तहाँ भी धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, क्षमा, सन्तोषादि सात्त्विक मन के सुरंग रंग में नहीं रंगकर इनका उपार्जनादि नहीं करके अधर्म, अज्ञान, रागादिरूप मन के कुरंग रंग में रंग गये हैं और इसी से शब्दादि विषयों के संग में (विषयिओं के साथ) बसते हैं। अतः साहब कहते हैं कि इस

अवस्था में मन के फन्दे से कैसे बचोगे, मन के फन्दे से बचने के लिये विषयी, विषय के संग को त्यागो ।

मन कुरंग में जो रंगे, करि कुशब्द का संग ।
राम वियोगी सो रहे, शब्द न बेधै अंग ॥५२॥
सार शब्द बेधे बिना, अहंकार पापादि ।
काला सर्प शरीर में, रहत मोह भरमादि ॥५३॥
करि विचार जो राम को, भजै मोह दे त्याग ।
सो बाँचै सब सर्प से, काल फाँस नहि लाग ॥५४॥१०३॥

इ मन चञ्चल इ मन चोर, इ मन शुद्ध ठगहार ।
मन-मन कहत सुर नर मुनि, मन के लक्ष दुआर ॥१०४॥

असार शब्द विषयी, विषयादि के संग से यह मन ही चञ्चल चोर ठगहारादि होता है और विवेकादिपूर्वक सार शब्द सत्सङ्ग विचारादि से मन ही शुद्ध धर्मादि युक्त ज्ञान का हेतु होता है । अतः विवेकी देव नर मुनि आदि कामादि प्रपञ्च को मन ही मन कहते हैं और उस मन की गति के लाखों द्वार बताते हैं । तहाँ विचारादिपूर्वक आत्मज्ञान से मन के कामादिस्वरूप की निवृत्तिपूर्वक सब द्वारों का निरोध होता है । अतः आत्मा ज्ञातव्य है ॥१०४॥

इति ज्ञान में विचारसाध्यता प्रकरण १५



अथ विरहकदर्थना प्रकरण १६

विरह भुवंगम पैठिके, कीन्ह कलेजे घाव ।
साधु अंग नहिं मोरहीं, ज्यों भावै त्यों खाव ॥१०५॥

उक्त चञ्चल मन अज्ञानादि से सिद्ध परमात्मपति के विरह (वियोग) रूप सर्प ने विरही भक्त के हृदय में पैठकर (निश्चित होकर) कलेजे (मन) में घाव (पीड़ा) किया है । तो भी साधु (विरही भक्त) उस सर्प से अङ्ग (मन) को मोरते (हटाते) नहीं हैं । अतः उस सर्प को जैसे भावे (अनुकूल हो) तैसे वह खावे (खाता है) उचित है कि—"सर्वमात्मनि संपश्येत्सच्चासच्च समाहितः ।"

इत्यादि शास्त्र के अनुसार सत् असत् (कार्य कारण) रूप व्यक्ताव्यक्त सब संसार को परमात्मा और आत्मा में ही समझकर विरह बुद्धि को त्यागा जाय कि जिससे शान्ति मिले ॥ १०५ ॥

करक करेजे गड़ि रहा, वचन बर्छि के फाँस।
निकसाये निकसे नहीं, रहा सो काहु गाँस ॥१०६॥

विरह बुद्धि को त्यागे विना विरह के उपदेशादिरूप वचनरूप बर्छि के जो फाँस (नोक कणिका) कलेजे (मन) में गड़ि रहा है (वासना संस्कार स्मरणरूप से स्थिर हो रहा है) सो कलेजे में करकता (चूभता) है, कष्ट देता है और किसी सद्गुरु द्वारा निकालने पर भी नहीं निकलता है। किसी गाँस (सन्धि) में कुछ न कुछ वह रह जाता है। अतः स्वयं विचारादि द्वारा विरह बुद्धि को त्यागना चाहिये ॥१०६॥

विरह भुवंगम तन डँस्यो, मन्त्र न मानै कोय।
राम वियोगी ना जिवै, जिवै तो बौरा होय ॥१०७॥

क्योंकि परमात्मपति का विरह निश्चयरूप सर्प जिनके तन (मन) में डँसा (काटा) हैं, वे यदि सद्गुरु के किसी मन्त्र को नहीं मानते हैं और स्वयं भी विचारादि से वियोग बुद्धि को नहीं त्यागते हैं, तो वे राम के वियोगी (विरही) अजर-अमर स्वरूप से जीवित नहीं रह सकते हैं (मुक्त नहीं हो सकते हैं) और शरीररूप से जब तक जीते हैं तब तक भी बावरा होकर (अविवेकीरूप से) जीते हैं। अतः गुरु मन्त्र या स्वविचार सत्सङ्गादि द्वारा वियोग बुद्धि को त्यागना चाहिये ॥१०७॥

राम वियोगी विकल तन, इन दुखवै मति कोय।
छूवतहीं मरि जाहिंगे, ताला बेली होय ॥१०८॥

और ज्ञानी के लिये "न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम्" इत्यादि के अनुसार चेतावनी है कि राम वियोगी (विरही भक्त) तथा कर्मी, कामी का तन कर्म-भारादि से स्वयं विकल (व्याकुल दुःखी) रहता है। कोई ज्ञानी सज्जन उनकी बुद्धि में भेद डालकर उन्हें दुखावें नहीं, कर्म की निष्फलता आदि नहीं सुनावें क्योंकि ज्ञान के अनधिकारी होने से उन्हें ज्ञान तो होगा नहीं, अतः छूवते ही (आत्मज्ञान संसार कर्मादि के मिथ्यात्वादि को सुनाते ही) वे मर जायँगे (कर्म, ब्रह्म, उभय-भ्रष्ट हो जायँगे) क्योंकि वे लोग ताला बेली (लज्जावन्ती की तरह या ताप से

तपते की तरह) होते (रहते) हैं। राम वियोग से मुरझाये दुःखी रहते हैं। अतः विवेकी आत्मजिज्ञासु को ही आत्मज्ञानादि सुनाना चाहिये ॥१०८॥

इति विरह कदर्थना प्रकरण १६

अथ कालादि कदर्थना प्रकरण १७

काला सर्प शरीर में, खाइन सब जग झारि।
बिरला ते जन बाँचिहैं, रामहिं भजै विचारि ॥१०९॥

आत्मज्ञान के अनधिकारी सब मनुष्यों के शरीर (हृदय) में अज्ञान, अहंकार, पाप, कामादिरूप काले सर्प रहते हैं, तामस स्वभाव रहता है, सो सब जगत् के प्राणियों को झारकर खाये हैं और खाते हैं। उन सर्पों से वे ही बिरले जन बाचेंगे कि जो सार शब्दादि के द्वारा विचारकर राम को भजेंगे। क्योंकि राम के भजन से पापादि की निवृत्ति द्वारा अहंकारादि के अभाव से गुरु द्वारा ज्ञान पाकर मुक्त होंगे, अतः उनके प्रति प्रथम विचार भजनादि के लिये उपदेश कर्तव्य होता है, ज्ञान का नहीं। विचार भजनादि से स्वयं ज्ञानाधिकारी होंगे ॥१०९॥

काल खड़ा शिर ऊपरे, जागु बिराने मीत।
जाका घर है गैल में, सो क्यों सोव निचीत ॥११०॥

सर्वसाधारण के लिये उपदेश है कि हे बिराने मीत! (अनात्म प्रेमियों!) तेरे शिर के ऊपर काल (मृत्यु) खड़ा है। अतः भजनादि के लिये जागो (मोह नींद को त्यागकर अकाल मृत्यु भावी मृत्यु से रहित होवो) और समझो कि जिसका घर गैल (एकान्त मार्ग) में है, सो निश्चिन्त कैसे सो सकता है? तेरा घर भी हृदयरूप एकान्त में है, जहाँ कामादि चोर का भय रहता है, अतः जागो ॥११०॥

कलि काठी कालो घुना, यतन यतन घुन खाय।
कायामध्ये काल वश, मरम कोइ नहिं पाय ॥१११॥

"कलिःशयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरन् ॥"

इस शास्त्र से मोह निद्रा में सोया हुआ, अपने कर्तव्य कर्मादि से विमुख मनुष्य अपने लिये कलि है और ऐसा राजा अपने देश राज्य के लिये कलियुग

होता है। तथा कलह काम संशयादि के आश्रय उसके मन शरीरादि संघात कलि हैं, सो सब काठ तुल्य हैं और यम संशयादिरूप काल घून (काष्ठ कीट) हैं। काठ को धीरे-धीरे बहुत यत्न से खाते हैं (नष्ट करते हैं)। तथा मोहादि को त्यागे बिना अन्य बहुत यत्न करने पर भी खा रहे हैं और वे काल शरीर के मध्य देश हृदय में ही बसते हैं। परन्तु जागे बिना उसके मर्म (भेद) को कोई नहीं पाते हैं। अतः भक्ति आदि द्वारा जागना चाहिये कि जिससे कलि की निवृत्ति पूर्वक काल का भय नष्ट हो ॥ १११ ॥

मन माया की कोठरी, तन संशय का कोट।
विषहर मन्त्र न मानये, काल सर्प का चोट ॥११२॥

उक्त भेद (मर्म) के ज्ञान के बिना तथा मोह के त्याग के बिना यह मन कपट भ्रमादिरूप माया की कोठरी (आश्रय) बना रहता है और स्थूल देह संशयों का कोट (किला रक्षक) बना रहता है। अतः कालरूप सर्प (अहंकारादि) का चोट (आक्रमण) बार-बार होता है और वह विषहर मन्त्र को नहीं मानता है (सदुपदेशों से निवृत्त नहीं होता है) न उनके वशवर्ती जीव उपदेशरूप मन्त्र को मानते हैं। अतः जागकर तन, मन को कपट, भ्रम, संशयादि से रहित ही कर्तव्य है ॥ ११२ ॥

मन माया दुइ एक है, माया मन हि समाय।
तीन लोक संशय परी, काहि कहो समुझाय ॥११३॥

कार्य कारण में अभेद दृष्टि से मन माया दोनों एक है तथा दोनों का एक स्वभाव है और कपटादिरूप से माया मन में समाती है। अतः संशयादिरूप से माया ही मन द्वारा तीनों लोक में परी (प्राप्त, व्याप्त) है, तहाँ मैं किससे क्या समझाकर कहूँ अर्थात् मन की शुद्धि के बिना कोई भी ज्ञानार्थक उपदेश का अधिकारी नहीं होता है। अतः सद्भक्ति सत्संगादि द्वारा प्रथम मन की शुद्धि कर्तव्य होती है।

बिनु विचार ह्वै काल वश, मन माया वश होय।
देहासक्त विमूढ नर, सुनै न गुरु वच सोय ॥५५॥
सुगुरु वचन श्रवणादि बिनु, मरत मनुषता खोय।
पशु समान नर के हिये, रहत विवेक न कोय ॥५६॥११३॥

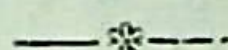
बेढ़ा दीन्हों खेत को, बेढ़ा खेतहिं खाय।
तीनि लोक संशय परी, काहि कहों समुझाय ॥११४॥

मन की शुद्धि के अभाव से मनुष्य क्षेत्रज्ञ आत्मा को तो समझते नहीं हैं कि जिसमें मनको लगावें। अतः शरीररूप खेत की रक्षा के लिये मन को खेत का बेढ़ा (बाड़ा) मनुष्यों ने दिया है और सो बेढ़ा ही शरीर को कष्टप्रद कुमार्ग में, अहित भोजनादि में प्रवृत्त कराकर खेत को खाता (नष्ट करता) है। भजन सद्विचारादि सुखद व्यवहार में प्रवृत्त नहीं होने देता है। अतः तीनों लोक तीनों अवस्था में माया मन द्वारा संशय भ्रमरूप से परी (प्राप्त, व्याप्त) है, तहाँ किससे क्या समझाकर कहा जाय। संशय देहासक्ति युक्त से तितिक्षा भजन विचारादि हो नहीं सकते हैं। अतः संशय देहासक्ति को त्यागने के लिये प्रथम यत्न कर्तव्य है ॥ ११४ ॥

मन सायर मनसा लहर, बूड़े बहुत अचेत।
कहहिं कबिर ते बाचिहैं, जिनके हृदय विवेक ॥११५॥

"विश्वरूपतयैवेदं तनोति मलिनं मनः" माया की कोठरीरूप यह मलिन मन ही संसार को विश्व (सर्व पूर्ण) रूप से बढ़ाता है, इत्यादि वचनों के अनुसार मन सायर (प्रवृद्ध संसार समुद्ररूप) है और मनसा (मनोरथ) लहर (तरंग) है। मन की शुद्धि विवेकादि रहित बहुत अचेत इसमें बूड़े और बूड़ते हैं। कबीर साहब कहते हैं कि वे ही बूड़ने से अब बचेंगे कि जिनके हृदय में आत्मानात्मादि के विवेक विज्ञानादि होंगे। ॥ ११५ ॥

इति कालादिकदर्थना प्रकरण १७



अथ कुटिलमनकृत कुगति प्रकरण १८

सायर बुद्धि बनाय के, बाम विचक्षण चोर।
सब दुनियाँ जहड़े गया, कोइ न लागा ठौर ॥११६॥

धर्मादि के विवेक रहित लौकिक विचक्षण (चतुर=धूर्त) चोररूप बाम (कुटिल, कुमार्गी, मन, मनोवशवर्ती बाम मार्गी) बुद्धि को भी सायर (भयावह संसार परायण) बनाकर सब दुनियाँ में स्वयं जहड़ने के लिये गया (दुःख

भोगने गया) और दुनियाँ को भी जहड़ाया। अतः इसके वशवर्ती कोई ज़ीव सत्य ठौर में नहीं लगा।

"अन्तः शाक्ता वहिः शैवाः सभामध्ये च वैष्णवाः।
नानारूप धरा कौला विचरन्ति महितले ॥१॥"

कौलाः (वाममार्गिणः) इस वचन से स्पष्ट चोरत्व की प्रतीति होती है ॥२१६॥

मानुष ह्वै कै नहिं मुवा, मूवा डाँगर ढोर।
एको जीवहिं ठौर नहिं, भै सो हाथी घोर ॥११७॥

उक्त चोर के वशवर्ती कोई मनुष्य वस्तुतः मनुष्य होकर नहीं मरा, किन्तु डाँगर ढोर (निन्दित पशु कृश बैल) होकर मरा। अतः ऐसा एको जीव एको ठिकाने नहीं लगा, मुक्त सुखी स्वर्गी नहीं हुआ किन्तु मरकर हाथी घोड़ा आदि हुआ और होता है। अतः चोर की वशवर्तिता से बचना चाहिये ॥११७॥

मनुष विचारा क्या करै, जाके शून्य शरीर।
जो जिय झाँकि न ऊपजे, काह पुकार कबीर ॥११८॥

क्योंकि चोर के वशवर्ती रहते मनुष्य क्या विचार कर सकता है। या विचारा (बेचारा=पराधीन दीन) मनुष्य क्या कर सकता है कि पराधीनता आदि से जिसके शरीर मन बुद्धि भी विवेकादि से शून्य (रहित) हैं और यदि परवशता शून्यता से जिय (मन) में झाँकि (आत्मदर्शनादि) नहीं उत्पन्न होता है तो कबीर (गुरु) भी कहाँ तक क्या पुकार कर कहें। अथवा हे मनुष्यों! अन्य-अन्य विचार क्या करते हो। जिस परब्रह्म का शून्य (आकाश) भी शरीर है। यदि उसका दर्शन नहीं हुआ तो अन्य के पुकारने से क्या हो सकता है। इस प्रकार कबीर गुरु कहते हैं ॥ ११८ ॥

मानुष ते बड़ पापिया, अक्षर गुरुहिं न मान।
बार-बार बक कूतिया, गर्भ धरे अवधान ॥११९॥

उक्त चोरों के वशवर्ती वे मनुष्य बड़े पापी हैं कि जो सद्गुरु के अक्षर (उदेश) को नहीं मानकर वाममार्गादि में मन लगाते हैं। तथा सद्गुरु को जो अक्षर (अविनाशी ब्रह्म) स्वरूप नहीं समझते हैं सो बार-बार मरकर बक (बकुला) कुतिया आदि नीच योनि के गर्भों में अवधान धरते हैं (मन लगाते

जाते) हैं । या गुरु के अक्षर को नहीं मानने वाले बार-बार कुतिया के समान बकते हैं, गर्भ में ही ध्यान धरते हैं ।

"कबीर ते नर अन्ध हैं, गुरु को कहते और ।
हरि रूठे गुरु ठौर हैं, गुरु रूठे नहिं ठौर ॥१॥" (अंग की सा०)

बिनु विवेक जो अधम नर, भोगत नित्य कुभोग ।
करत पाप ताते पड़त, कठिन कुयोनि कुयोग ॥५७॥११९॥

मनुष बिचारा क्या करे, कहे न खुले कपाट ।
श्वनहा चौक बिठाइये, फिरि-फिरि ऐपन चाट॥१२०॥
मनुष बिचारा क्या करै, जाके हृदया शून ।
श्वनहा चौक बिठाइये, फिरि-फिरि चाटे चून ॥१२१॥

वह बेचारा मनुष्य क्या करे कि जिसके हृदय का कपाट (आवरण मोह) कहने (उपदेश) से नहीं खुलता (नष्ट होता) है । उसकी तो ऐसी दशा है कि जैसे चावलादि के चूर्णरूप ऐपन से चौके को पूर्ण करके यदि उसमें श्वनहा (कुत्ते) को बैठाया जाय तो वह बार-बार ऐपन को ही चाटेगा । तैसे ही कुपुरुष सदुपदेश को भी भोग का साधन बनाता है तथा उपदेशक और उपदेश का अनादर करता है ॥१२०॥ अतः वह तुच्छ मनवशवर्ती विवेक शून्य हृदयवाला मनुष्य कुछ कर नहीं सकता है, किन्तु वह अविवेकी कुत्ते की तरह भटककर तुच्छ भोग को भोगता है, सत्योपदेशादि में स्थिर नहीं हो सकता । अतः सत्कर्म परलोक भयादि से वह सन्मार्ग में लाने योग्य होता है ।

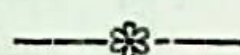
दुर्लभ मानुष जन्म में, जो गुरु वचन न मान ।
ज्ञान रतन बिनु जात सो, चौरासी दुख खान ॥५८॥
याते ज्ञान सुरतन हित, यतन करिय तजि मान ।
मोह नीन्द को त्यागि के, पाइय पद निर्वान ॥५९॥१२१॥

मानुष जन्म दुर्लभ है, बहुरि न बारम्बार ।
पका फल ज्यों गिरि परा, बहुरि न लागै डार ॥१२२॥

चेतावनी है कि योग्य मनुष्य जन्म अत्यन्त दुर्लभ है, श्रेष्ठ पुण्य का फलरूप है । सो फिर भी बार-बार नहीं होगा, न होता है । जैसे पका फल गिरता है तो फिर वह उसी डार में नहीं लगता है, तैसे त्यागे हुए शरीर में तो जीवात्मा फिर

आती ही नहीं है, कर्मादि के अनुसार आगे की गति होती है। तहाँ जैसे पके फल के बीज से दूसरे वृक्ष के होने पर उसमें फिर फल लगता है, तैसे ही इस मानुष तन के कर्मानुसार चौरासी भ्रमण के बाद किसी को कभी मनुष तन मिलता है, किसी पुण्यात्मा को शीघ्र भले ही मिल सकता है, सबको नहीं। अतः यहाँ अवश्य सद्गति के लिये यत्न करना चाहिये ॥ १२२ ॥

इति कुटिलमन कृत गति प्रकरण १८



अथ स्वापराधदण्डादि प्रकरण १९

मानुष जन्महि पाय के, चूके अबकी घात।
जाय परे भव चक्र में, सहे घनेरी लात ॥१२३॥
रतन का तो यतन करु, माटी का सिंगार।
आया कबिरा फिरि गया, फीका है संसार ॥१२४॥

क्योंकि जो जीव मनुष्य तन पाकर अबकी घात (दाव, मोका, वार) को चूके, सो भवचक्र में जाकर पड़े और पड़ते हैं और घनेरी लात (यमयातनादि) सहे और सहते हैं। या अबकी चूके उनका घात (नाश) हुआ और होता है, क्योंकि भवचक्र में पड़ते हैं। अतः अवश्य सद्गति के लिये यत्न कर्तव्य है। इसलिये तुम सतधर्म ज्ञानरत्न के लिये यत्न करो। यह ज्ञानरत्न ही इस माटी के मानुष तन का शृङ्गार (भूषण शोभा) है। जो कबीरा (जीव) मानव देह में आया और ज्ञानरत्न के विना यहाँ से फिर गया, उसके लिये मानव तनुरूप संसार फीका (निरस निष्फल) है। धर्म ज्ञान मोक्ष रत्न को प्राप्त करना ही इसकी सरसता आनन्दरूपता है ॥ १२३-१२४ ॥

बाँह मरोरे जात हो, सोवत लिया जगाय।
कहहिं कबीर पुकारि के, यहि पिण्ड है कि जाय ॥१२५॥

"देवी बड़ा न देवता, सूरज बड़ा न चन्द।
आदि अन्त दोऊ बड़े, कै गुरु कै गोविन्द ॥१॥
हरि कृपा तब जानिये, दे मानव अवतार।
गुरु कृपा तब जानिये, बन्ध छोड़ावन हार ॥२॥"

इन अङ्ग साखियों के अनुसार अन्धकारमय अन्य योनियों से मानव तनु में पहुँचाने में प्रथम ईश्वर की कृपा होती है, अतः आदि में ईश्वर बड़े हैं। अन्त में बन्ध छोड़ाने वाले गुरु बड़े हैं और दोनों ने सोये हुए जीव को कठिन मोह निद्रा से मानवावस्था में जगा लिया है, मानव तनु दिया है, सदुपदेश दिया है। अतः दोनों सत्कार योग्य पूज्य हैं। परन्तु तुम अज्ञ कृतघ्न मनुष्य मानो दोनों की पूजा तो क्या करोगे उनके बाँह को मरोरे जाते हो (आज्ञा आदि का उलंघन अनादर करके जाते हो) तो भी कबीर साहब कहते हैं कि मैं पुकारकर कहता हूँ कि इस मानव तनरूप पिण्ड से ही ज्ञानरत्न रामरत्न को यदि प्राप्त करोगे तो अजर अमर नित्य मुक्त होगे। या पुण्य पापादि करोगे तो स्वर्गनरकादि में जावोगे, जो तुम्हें अच्छा लगे सो करो ॥ १२५ ॥

बेरा बाँधिन सर्प का, भवसागर के माँहि।
जो छाड़ै तो बूबई, गहे तो डँशय बाँहि ॥१२६॥

जिन लोगों ने सद्भक्ति विवेक विज्ञानादिरूप जहाज का शरण नहीं लेकर काम्य-कर्मादिरूप सर्प का बेड़ा भवसागर में बाँधा है वे लोग विराग, ज्ञानादि की प्राप्ति के विना यदि उसको त्यागते हैं तो भी भवसागर में डूबते हैं और यदि पकड़े रहते हैं तो भी वे विषय काम्य-कर्मादि बाहु में डँसते हैं (मन को पीड़ित करते हैं) क्योंकि ये विषय काम्य-कर्मादि, स्वर्ग-नरकादि में भ्रमण के हेतु हैं। अतः उनकी सर्प, छुछुन्दर की दशा होती है। तो भी सत्संग मिले तो शुभ होता है—

"गहे छुछुन्दर अहि मरे, तजे दगन की हान।
जल पाये सुख होत है, नर सत्संग प्रमान ॥" (विचारमाला)

छुछुन्दर के खाने से सर्प मर जाता है, छोड़ने पर छुछुन्दर उसके नेत्र को फोड़ते-नोच लेते हैं। जल में डूबकर छोड़ने से वह सर्प सुखी होता है, ऐसे ही सत्संग में त्याग, वैराग्य से सुख होता है, कुसंग में नहीं ॥१२६॥

इति स्वापराधदण्डादि प्रकरण १९



अथ समात्मतत्त्व प्रकरण २०

हाथ कटोरा खवा भरा, मगु जोहत दिन जाय।
कबिरा उतरा चित्त सो, छाँछ दिया नहिं जाय ॥१२७॥

जैसे किसी के हाथ में खोवे (मलाई) से भरा कटोरा हो और सत्पात्र के प्रति देने के लिये रास्ता देखते में दिन जाता हो तो भी जो कोई दान का अपात्र उस दाता के चित्त से उतरा हो, उसके प्रति उससे छाँछ भी नहीं दिया जाता है। तैसे ही सर्प के बेड़ा बाँधने वाले, उपकार को नहीं मानने वालों के प्रति सदुपदेशादि नहीं दिया जाता है। दयालु हरिगुरु भी सत्संगादि रहित अभक्त को मुक्त नहीं कर सकते हैं। अतः वह जन्मता मरता है ॥ १२७ ॥

एक कहौं तो है नहीं, दोय कहौं तो गारि।
हहु जैसे रहहु तैसे, कहहिं कबीर पुकारि ॥१२८॥

जो सारतत्त्व खोवा तुल्य है, जिसके ज्ञान से जीव मुक्त होता है, उसको यदि एक कहौं तो एकत्व संख्यारूप गुणवाला वह नहीं है। तथा द्वैत संसार के मिथ्या होने से सत्य द्वित्व सापेक्ष एकत्व वाला नहीं है। अतः जहाँ एक कहें, तो एकत्व वहाँ नहीं है और यदि दो कहें तो वह कहना गाली तुल्य है। "द्वितीयाद्वै भयं भवति। (बृ० १।४।२) अन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद यथा पशुरेव स देवानाम्।" (बृ० १।४।१०) इत्यादि श्रुति के अनुसार भयजनक ईश्वर जीव में भेद बुद्धि निन्दित है क्योंकि ईश्वर को और अपने को जो भिन्न-भिन्न सत्य समझता है, सो देवताओं के पशु ही है। अतः एकत्व द्वित्वादि से रहित जैसे स्वयं प्रकाश शब्दावाच्य स्वरूप हो, तैसे ही रहो। क्योंकि—

"सम्यग् ज्ञानवतो ज्ञस्य यथाभूतार्थदर्शिनः।
बुद्धिर्भवति चिन्मात्ररूपा द्वैतैक्यवर्जिता ॥" (योग वा०)
"एकहुँ कहत बनै नहीं, दोय कहौं किमि भाय।
पूरण रूप विहायसी, घट बढ़ कहो न जाय" ॥१२८॥

अमरित केरी पोटरी, बहु विधि दीन्हों छोरि।
आप सरीखे जो मिले, ताहि पियावों घोरि ॥१२९॥

सद्गुरु कहते हैं कि मैंने अमृत की पोटरी (अविनाशी मोक्ष की वार्ता) को बहुत प्रकार से खोल दी है। अपरोक्षात्मानुभव के लिये निःसंशय अभ्रान्त

उपदेश दिया है, जो कोई आप सरीखे (मेरे अनुकूल योग्य शुद्ध) शिष्य मिलेगा तो मैं उसको यह अमृत घोरकर पिला दूँगा (अर्थात् योग्य शिष्य को अनायास ही गुरु उपदेश से अनुभूति तृप्ति होती है, अन्य को कठिनाई से भी नहीं)। अतः प्रथम योग्य शिष्य होना बनना चाहिये।

मोह सहित अभिमानि को, गुरुहूँ परम दयालु।
ज्ञान रतन नहिं देत हैं, देत शिष्य शरधालु ॥६०॥
मोह सहित अभिमानि नर, काम कर्म करि पार।
होन चहत भव सिन्धु से, बूड़त हैं मझधार ॥६१॥
ज्ञान रतन से पाइये, जो निज रूप अनूप।
सो सब संख्या गुण रहित, अचल अखण्ड अरूप ॥६२॥
निर्गुण निर्विकार अज, अमृत अभय स्वरूप।
गुरु देते सत शिष्य को, जानि ताहि निज रूप ॥६३॥१२९॥

अमरित केरी पोटरी, शिर सो धरी उतारि।
जाको मैं एके कहौं, सो कहै मोहि चारि ॥१३०॥

और भी कहते हैं कि मैंने संसार के हित के लिये मानो उपदेशरूप अमृत की पोटरी को शिर से उतार कर सब के आगे धर दी है (निर्वैरता सुख शान्ति मुक्ति के लिये एक सत्यात्मा का उपदेश दिया है) परन्तु आश्चर्य है कि जिसको मैं एक सत्यात्मा, एक मोक्ष की बात कहता हूं, वह मुझे चार व्यूह, चार मोक्षादि सत्य कहता है। अर्थात् एकात्म मोक्ष के अधिकारी अत्यन्त न्यून है ॥१३०॥

जाको मुनिवर तप करै, वेद थकै गुण गाय।
सोई देऊँ सिखापना, कहि न कोइ पतिआय ॥१३१॥

"एकोवशी सर्वभूतान्तरात्मा।" (कठ० २।५।१२) "सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।" (कठ० १।२।१५) एक स्वतन्त्र देव सब प्राणी का अन्तरात्मा स्वरूप है। जिस प्राप्य पद मोक्ष स्थान को सब वेद कहते हैं। तथा निष्कामकर्म इन्द्रियनिग्रहरूप तप करके तपस्वी श्रेष्ठ मुनि सब जिसका कथन करते हैं और प्राप्त करना चाहते हैं और "स एष नेति नेत्यात्मा।" (बृह० ४।२।४) इत्यादि वचनों के अनुसार जिसकी प्राप्ति ज्ञान के लिये श्रेष्ठ मुनि तप करते हैं और वेद जिस एक सर्वात्मा के गुणों को गाकर थककर जिसको वचनागोचर

कहा है। कबीर साहब कहते हैं कि उसी उपनिषद् गम्य आत्मा की सिखापना (शिक्षा उपदेश) मैं सुगम रीति से हिन्दी भाषा द्वारा देता हूँ। परन्तु कोई अविवेकी कही बात (शिक्षा) को पतिआता नहीं है, इसमें विश्वास नहीं करता है। बिरले विवेकी इसके अधिकारी हैं।

जिहि इक अमृत रत्न हित, तप करते मुनि राय।
वेद थका गुण गाय के, सो गुरु देत बताय ॥६४॥१३१॥

एकहि ते अनन्त अनन्त, अनन्त एक हो आया।
परिचय भया जु एक ते, एकहि माँह समाया ॥१३२॥

"य एको वर्णो बहुधा शक्तियोगात्।" (श्वे० ४।१)
"एकं रूपं बहुधा यः करोति।" (कठ० ५।५।१२)

एक ही सत्यात्मा अनन्तानन्त देव, मुनि मनुष्यादि सब स्वरूप मन, माया आदि उपाधियों से प्रतिबिम्बादि द्वारा होता है और वह सब स्वरूप प्रलयकाल में एक होकर भी फिर आया है, उत्पन्न प्रकट हुआ है। परन्तु जब जिस जीव को एक सत्य स्वरूप का परिचय (अपरोक्षानुभव) हुआ, तब उसकी दृष्टि से अत्यन्त कल्पित भिन्न स्वरूप एक सत्य स्वरूप में समा गये, वह एकानेक से रहित चित्स्वरूप में लीन मुक्त हो गया।

जो गुरु गम से पाइये, सो निज आतम एक।
एकहि दिसै अनन्त सम, ज्ञानि न लखे अनेक ॥६५॥
होत अनन्त उपाधि से, निज स्वरूप से एक।
एकोंकार विचारि तिहि, लखिये सहित विवेक ॥६६॥१३२॥

एक शब्द गुरुदेव का, तामें अनन्त विचार।
थाके ज्ञानी मुनिवरहुँ, वेद न पावै पार ॥१३३॥

उक्त परिचय के लिये गुरु (सबके पितामह) रूप देव (ईश्वर) ब्रह्माजी का तथा सद्गुरुदेव का एक ओंकाररूप शब्द सबसे श्रेष्ठ है कि जिसमें विश्व विराट, तैजस हिरण्यगर्भ, प्राज्ञ ईश्वर और सर्वसाक्षी शुद्धात्मारूप अनन्त वस्तु के अनन्त प्रकार के विचार भरे पड़े हैं। अतः उसी द्वारा देशकालादिकृत अन्तरहित सर्वात्मा के विचारादि करने योग्य हैं। क्योंकि उसीमें अनन्तात्मा को विचारते-विचारते मुनिवर (श्रेष्ठ मुनिजन) ज्ञानी जिज्ञासु थके हैं (अन्य विचार व्यहवार

से उपरत हुए हैं) और वेद भी उसके विचार के पार (अन्त) को नहीं पाते हैं, तब "को अद्धावेद नेति नेति" इत्यादि कहते हैं। अर्थात् गुरुदेव के एक ही शब्द में आत्मा-अनात्मा, एक-अनेकादि सबके विचार सूक्ष्मरूप से वर्तमान हैं। तहाँ अनेक अनात्मा के विचार से सब थकते हैं, पार नहीं पाते हैं, तब एकात्मा के विचार से ज्ञानी होकर निर्द्वन्द्व मुक्त होते हैं।

चार पाद ओंकार के, निज आतम के जानि।
निरभिमानि भय मुक्त ह्वे, काल कर्म गति भानि ॥६७॥१३३॥

राउर के पिछुआरे, गावहिं चारो सैन।
जीव परा बहु लूट में, नहिं कछु लेन न दैन ॥१३४॥

गुरुदेव का एक शब्द और "तत्त्वमसि, अहं ब्रह्मास्मि, अयमात्मा ब्रह्म" इत्यादि महावाक्यादि जिसको अपरोक्ष आत्मस्वरूप बताते हैं, उसी राउर (उरवासी राजा, सर्वश्रेष्ठ स्वामी) को कर्म-काण्डादिरूप चारो वेद भी पिछुआरे से (परोक्ष देवाग्नि आदिरूप से) सैन गाते हैं (इशारा करते हैं) संकेत से समझाते हैं "सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति" परन्तु उन सैनों को समझे बिना जीव बहुत लूट में पड़ा है, कामादि से लूटा जा रहा है। तथा स्वयं मिथ्या बहुत पदार्थों के लूटने (प्राप्त करने) में पड़ा (लगा) है। परन्तु संसार के स्वप्न तुल्य होने से सच्चा कुछ लेन देन नहीं है ॥ १३४ ॥

इति समात्मतत्त्व प्रकरण २०



अथ आत्मानुभव से भयनिवृत्ति प्रकरण २१

चौगोड़ा के देखते, व्याधा भागा जाय।
एक अचम्भा देखिया, मुवा काल को खाय ॥१३५॥

वेद के सैन को समझे बिना तो जीव काल कामादि से लूटे जाते हैं। परन्तु चौगोड़ा "विश्वादि चार पाद युक्त" आत्मा को चार अन्तःकरणोपहित रूपसे जानते ही, तथा "पादोऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।" (ऋग् मं० १०।७।९०) इन चार पादों सहित आत्मदेव को देखते ही काल कामादिरूप सब व्याधा (हिंसक लुटेरे) भाग जाते हैं और एक आश्चर्य देखा

जाता है कि जो महापुरुष अभिमानादि को त्यागने से मृतक तुल्य होते हैं सोई मुवा पुरुष काल को भी खाते (नष्ट करते) हैं । अतः काल भयादि से रहित होने के लिये चतुष्पाद आत्मानुभव करके अभिमानादि त्याज्य हैं ॥१३५॥

तीनि लोक चोरी भई, सर्वस सब का लीन्ह ।
बिना मूड़ का चोरवा, परा न काहू चीन्ह ॥१३६॥

सैन के ज्ञान बिना तीनों लोक में चोरी हुई, मन माया कामादिरूप चोरों ने सबके ज्ञान ध्यान सुख शान्ति आदि सर्वस्व को हर लिया और वे चोर शिर रहित धड़ के समान स्वतन्त्र सत्ता रहित हैं । अतः किसी को चीन्ह नहीं पड़े (असत्यादिरूप से किसी के समझ में नहीं आये) अतः उन्हें सत्य सुखदादि मानकर स्वयं सब उनसे ठगा गये ।

काल कर्म गति नाश बिनु, मन कामादिक चोर ।
पड़त नहीं पहचान नित, सर्वस हर सब ओर ॥३८॥
ज्ञानादिक सर्वस गये, पुण्य पाप वश जीव ।
द्वैतभाव के वश पड़ा, लखै न अद्वय शीव ॥६९॥१३६॥

चलती चक्की देखि के, नयनन आया रोय ।
दोय पट्ट के अन्तरे, सालिम गया न कोय ॥१३७॥

पुण्य, पाप, सुख, दुःख, जन्म, मरण, लोक, परलोकादिरूप द्वन्द्वात्मक कालचक्ररूप चलती हुई चक्की को देखकर नेत्रों में अश्रु रुलाई आती है । क्योंकि द्वन्द्वरूप दो पट्टों के अन्तर (मध्य) में आकर कोई भी सालिम (साबित, सकुशल) नहीं गये । अतः पूर्ण साबित पद की प्राप्ति के लिये अद्वैतात्म ज्ञान द्वारा द्वन्द्व रहित होना चाहिये । क्योंकि—

"पुण्य पाप दो चक्की कहिये, खूँटा द्वैत लगाया है ।
तेहि चक्की तर सबे पिसाने, सुर नर मुनि न बचाया है ॥१॥"
"चक्की चली जो राम की, पीसा सब जग झार ।
कहहिं कबिर ते ऊबरे, खूँटा दिया उखार ॥२॥१३७॥"

चार चोर चोरी चले, पगु पनही ऊतारि ।
चारो दर थूनी हरी, पण्डित करहु विचारि ॥१३८॥

द्वन्द्व द्वैत मोह काल में चार अन्तःकरणरूप चोर कामादि युक्त होकर जीव के ज्ञानादि की चोरी के लिये चले हैं। सो इन्द्रियरूप पैर के रक्षक विवेक सत्कर्मादिरूप पनही (जूते) को उतार कर चले हैं और चार वेदादि भी अविवेकी के लिये मानो पशु पनही उतार कर चोरी ही करने चले हैं, कि जहाँ अद्वैत अपरोक्षात्मा को गौणादि करके परोक्ष द्वैत स्वर्गादि को मुख्यरूप से वर्णन करते हैं। अतः हे पण्डितों! (विवेकियों) उन चारों दर (स्थानों) में से द्वैतरूप थूनी (खूँटा) को उखाड़कर और एक अद्वैत सर्वात्मारूप हरि को चारो खान, चारो वेद, चारो अन्तःकरण में थूनी (कील) सर्व द्वन्द्व का आधाररूप समझकर उसी अद्वैत हरि का विचार स्मरण ध्यानादि करो, कि जिससे द्वन्द्वों के अभावपूर्वक शान्ति मुक्ति प्राप्त हो।

निज स्वरूप के ज्ञान विनु, मन मति चित हंकार।
करत चोरि तहँ हरिहिं लखि, करिय नित्य विचार ॥७०॥१३८॥

बलिहारी वा दूध की, जामें निकरत घीव।
आधी साखी कबिर की, चार वेद का जीव ॥१३९॥

जैसे उस दूध की बलिहारी है कि जिसमें से घीव निकलता है, वैसे उस शुद्ध शान्त अन्तःकरण और वेद की बलिहारी है कि जिसमें से शुद्ध ओंकार, ओंकारार्थ निकलता (प्रकट होता) है। क्योंकि कबीर गुरु की आधी साखी (अर्ध वाक्य ओंकार) ही चार वेद का जीव (प्राण, सार, मूल) है। यद्यपि "निगम रसाल चार फल लागा" इस पूर्व वर्णन के अनुसार वेद में चारो पुरुषार्थ का प्रतिपादन किया गया है, तथापि ओंकारादि से शुद्धान्तःकरण में शुद्ध सर्वात्मा का अनुभव होता है सो आधी साखी (ओंकारादि) वेद का प्रधानांश है।

करि विचार जहँ पाइये, निर्गुण हरि ओंकार।
बलिहारी वाकी सदा, वेद तत्त्व जहँ सार ॥७१॥१३९॥

इति आत्मानुभव से निवृत्ति प्रकरण २१

अथ सद्गुरु बिना कुवासनादि विकार प्रकरण २२

बलिहारी तिहि पुरुष की, परचित परखन हार।
साई दीन्हों खाँड के, खारी बोझु गमार ॥१४०॥

और उस सद्गुरुरूप पुरुष की बलिहारी (धन्यवाद) है कि जो पर (उत्तम) शिष्य के चित्त को परखने वाले हैं। तथा कार्य कारणादि से पर (भिन्न) चित (चेतनात्मा) को जो जानने वाले हैं और अधिकारी को सत्योपदेश देनेवाले हैं और जिस पुरुष के प्रति शुद्ध शिष्य ने खाँड़ (मोक्ष) के लिये साई (बयाना) तुल्य पूजा भेंट दी और यदि वह गुरु उसके लिये खारी बोझता है (अनात्मोपदेश देता है) तो वह गुरु गमार है। (खारी की सिद्धि के लिये खार मिट्टी को कोष्ठ में रखकर पानी दिया जाता है, उसको खारी बोझना कहते हैं) ; इसी प्रकार सद्गुरु सत्यात्मा को समझने वाला शिष्य धन्य है और मोक्ष के साई देकर खारी विषयादि के बोझ को मन पर लादने वाला गमार है ॥ १४० ॥

विष के बिरवे घर किया, रहा सर्प लपटाय।
ताते जियरहि डर भया, जागत रैनि विहाय ॥१४१॥

उक्त गमार जीवों ने संसार और शरीररूप विषवृक्ष को ही घर किया है (अपना आधार आश्रय स्वरूप समझकर इनमें आसक्त हुआ है) सर्वाधार निज-स्वरूप को नहीं समझा है और उस घर में विषय विषयुक्त मन, इन्द्रिय और काल (मृत्यु) रूप सर्प लिपटे हैं (सदा वर्तमान रहते हैं) इस कारण से उन जीवों को भय हुआ है। अविद्यादि से सदा मरण से डरते हैं और भय के मारे चैन नहीं पाते हैं तहाँ गुरु का उपदेश है कि अज्ञानरूप रात्रि में मोह निन्द से सोये रहने के कारण मरणादि का भय होता है। अतः विवेक द्वारा जागते में अज्ञानरूप रात्रि को विहाय (त्याग) दो और मोह भय रहित ज्ञानी सुखी होकर योगनिन्द से प्रकाशमय स्वरूप में सोवो, मन को स्थिर करो।

करि विचार पर तत्त्व लखि, सर्वाधार स्वरूप।
शिष्यन को उपदेशिये, सोइ न विषय कुरूप ॥७२॥
विषय विषहि युत वृक्ष जग, काल सर्प का गेह।
तहाँ कुशल नहि जीव को, करु सत ज्ञान विदेह ॥७३॥

ज्ञान प्रकाशक गुरु विना, करि कुकर्म लघु प्राणि ।
बँधता मन प्रपञ्च में, काल विवश सह हानि ॥७४॥
निष्कामी करि कर्म बहु, पर उपकार उदार ।
गुरु ज्ञान बल बँधत नहि, लहत अभय निज सार ॥७५॥१४१॥

जो घर हैगा सर्प का, सो घर साधु न होय ।
सकल सम्पदा ले गया, विषहर लागा सोय ॥१४२॥

जो संसार शरीररूप घर दुष्ट मन अहंकार कालादिरूप सर्प का वास स्थान तथा भक्ष्य है, उस घर में साधु (विवेकी) स्थिर आसक्त नहीं होता है । अतः वह साधु शमदमादि ज्ञान के साधनरूप सब सम्पत्ति को लेकर सर्प युक्त घर से बाहर गया और आत्मनिष्ठ हुआ । क्योंकि सोय (उसको) विषहर (विषाकर्षक) वासना कामादि का नाशक गुरुमन्त्र लग गया और जो कोई काल के घर से भगे नहीं, उनको उस घर में साधु (कुशल) नहीं होता है । क्योंकि उनको वह विषधर (सर्प) ही लग गया, सो उनकी सब सम्पत्ति को ले गया । अतः इस काल घर में बसना उचित नहीं है ॥ १४१ ॥

घूँघुची भर के बोये, उपजु पसेरी आठ ।
डेरा परिया काल का, साँझ सकारे जात ॥१४३॥

जिसकी सम्पत्ति को कामादि सर्प नष्ट कर देते हैं, वह कामी यदि घूँघुची (गुञ्जा-करजनी) भर बीज बोता है (वासना कामादि युक्त स्वल्प भी कर्मादि करता है) तो आठ पसेरी उपजता है (सदा मन बढ़ता पुष्ट होता है) तथा पाँच तत्त्व त्रिगुणमय शरीर, पुर्यष्टक, प्रकृत्यष्टकमय संसार बार-बार प्राप्त होता है, जिससे काल का डेरा परा रहता है और वह जीव साँझ सबेरे सदा काल के वश में जाता है । अतः काल वशता से रहित होने के लिये कामादि सर्वथा त्याज्य हैं ॥१४३॥

मन भर के जो बोइये, घूँघुची भर न होय ।
कहा हमार मानै नहिं, अन्तहुँ चला विगोय ॥१४४॥

क्योंकि कामादि रहित होकर वासनादि रहित मन द्वारा (भूना हुआ बीज तुल्य) यदि सब विहित कर्मादिरूप बीज विधि गुरुवचन के अनुसार मन भर यथेष्ट बोये (किये) जायँ, तो उनसे बन्धप्रद अदृष्ट वासना घूँघुची भर (कुछ) भी नहीं होते हैं परन्तु अविवेकी गमार हमारा (गुरु का) कहा (उपदेश)

को नहीं मानते हैं (कर्मफलाशा हिंसादि को नहीं त्यागते हैं) अतः जीवन काल में कष्ट सहते हैं, अन्त में भी सब सम्पत्ति ज्ञानादि को गमाकर चलते हैं, स्थिति नहीं पाते हैं क्योंकि ज्ञान युक्त निष्कामता से ही स्थिति होती है, सो कर्तव्य है ॥ १४४ ॥

गुरु की भेली जिव डरै, काया सींचन हार ।
कुमति कमाई मन बसे, लागि जुआ की लार ॥१४५॥

गुड़ की भेली (लड्डू) तुल्य गुरु की भेली (मीठी मधुर बात) से तथा गुरु की शरणागति संग सेवा से भी जीव (मूढ मनुष्य) डरता है और काया (देह) क्षेत्र को विषय वारि से सींचनहार हुआ है और देह के लिये कुबुद्धि अन्याय से भी कमाई (चोरी मिथ्याभाषणादि से भी द्रव्योपार्जन) में इस अन्धे का मन बसता है । अतः महाव्यसन पापरूप जूआ की लार (आदत) लगी है । कहो वह गुरु कहा को कब मान सकता है ॥ १४५ ॥

इति गुरु बिना कुवासनादि विकार प्रकरण २२

अथ तामस मन माया त्याग प्रकरण २३

तामस केरे तीन गुन, भँवर लेहिं तहँ बास ।
एकहिं डारी तीन फल, भाँटा ऊँख कपास ॥१४६॥

तामस (तमः प्रधान) प्रकृति (माया) के कार्य तीन गुण (त्रिगुण) शब्दादि विषय और संसार हैं । तहाँ (उनमें) अज्ञ विषयासक्त जीवरूप भँवरा वास लेते (वसते) हैं और उसके स्वाद लेते भोगते हैं । अतः कामान्ध रहते हैं और प्रकृति वृक्ष के उस तामस एक ही डार में भाँटा ऊँख, कपास तुल्य तामस, राजस, सात्त्विक तीनों फल तथा अर्थ, धर्म और कामरूप तीनों फल लगते हैं (प्राप्त होते हैं) त्रिगुण से पर मोक्ष फल वासना कामादि रहित ज्ञानी को ही मिलता है अन्य को नहीं ॥ १४६ ॥

मन मसलन्द गयन्द है, मनसा भयो सचान ।
यन्त्र मन्त्र मानै नहीं, उड़ि उड़ि लागै खान ॥१४७॥

विषयासक्त मन मसलन्द (उन्मत्त) गयन्द (गजेन्द्र हाथी) है, सो मनसा (मनोरथ) से सचान (बाज पक्षी) हुआ है। अतः मतवाला उड़ाकू होने के कारण सदुपदेशादिरूप यन्त्र मन्त्र को नहीं मानता है, आत्मनिष्ठ नहीं होता है, किन्तु उड़-उड़कर उन तींन फलों को खाने में लगता है ॥ १४७ ॥

मन गयन्द मानै नहीं, चलै सुरति के साथ।
महावत बिचारा क्या करै, जो अंकुश नहिं हाथ ॥१४८॥

मनरूप गयन्द (हाथी) जब उपदेशादिरूप यन्त्र मन्त्र को नहीं मानता है तब मस्त होकर सुरति (कामादिरूप मनोवृत्ति विषय प्रीति) के साथ उक्त तीनों फलों को भोगने के लिये चलता है। आत्म प्रीति आदि को त्याग देता है। तो उस अवस्था में यदि विवेक विराग विज्ञानादिरूप अंकुश बुद्धि जीवरूप महावत के हाथ में नहीं हो तो वह क्या विचार कर सकता है ? या वह बेचारा (दीन) महावत क्या कर सकता है ? अतः मन इन्द्रिय को वश में रखने के लिये विवेकादि का सम्पादन कर्तव्य है ॥ १४८ ॥

ई माया है चूहड़ी, औ चुहड़े की जोय।
बाप पूत अरुझावई, संग न काहुक होय ॥१४९॥

यह तामसी माया चूहड़ी (डोमिन भंगिन तुल्य चाण्डाली) अपवित्र है और चुहड़े की जोय (जाया भोग्या स्त्री) है और पिता पुत्र को भी परस्पर लड़ाती है, ईश्वर जीव को भी अरुझाती है, ईश्वर को जीव के साथ संग कराती है अन्त में किसी के संग में नहीं होती है। तथा अन्तिम ज्ञान दशा में शिव के समान किसी जीव के साथ भी इसका सम्बन्ध नहीं रहता है। अतः—

"कहहिं कबिर तेइ छूत विवर्जित, जाके संग न माया"

माया के संग से रहित यह जीव छूत रहित पवित्र मुक्त हो जाता है ॥१४९॥

कनक कामिनी देखि के, तूँ मति भूल सुरंग।
मिलन विछुरन दुहेलरा, केंचुलि तजे भुवंग ॥१५०॥

उपदेश है कि हे सुरंग (विवेकियों !) कनक कामिनी आदि मायिक वस्तुओं को देख नहीं भूलो इनमें सत्य पवित्रादि बुद्धि से इनके काम (इच्छा) लोभादि नहीं करो, न निजात्म विवेकादि से विमुख होवो। समझो कि मायिक

अपवित्र वस्तु मिलन विछुरन दोनों काल में दुहेलरा (कठिन दुःख प्रद) होते हैं। जैसे केचुली के रहते और तजते समय भुवंग (सर्प) को कष्ट होता है, केचुली से आँख के ढँपे रहने से साफ सूझता नहीं है, त्यागने पर प्रथम कोमल शरीर में कष्ट होता है, तैसे कनकादि के संग से अज्ञ मनुष्य मदान्ध कामान्ध होता है और विरागादि के बिना प्राप्त कनकादि के नाशादि से महा दुःखी होता है। अतः जैसे साँप केचुली को त्यागकर उदासीन हो जाता है, तैसे हे सुरंग ! शरीर कनकादि के अभिमान संगादि त्यागकर मिलन विछुरन दु (दोनों) लरा (त्यागो) उदासीन आत्मनिष्ठ ज्ञानी होवो, तभी सुखी मुक्त पवित्र होगे।

गुरु ज्ञान बिनु कुमति वश, महा पाप रत होय।
तन पोषत सब भाव से, गुरु गम से डर सोय ॥७६॥
तामस विषय कुभोग वश, राग द्वेश वश होय।
मन फँसता संसार में, मन्त्र न मानत कोय ॥७७॥
माया मय संसार में, जहँ मन बसै कुबुद्धि।
सो अशुचिहि सब जानिये, तहाँ न पाइय शुद्धि ॥७८॥
मायामय कनकादि को, याते त्यागु सुबुद्धि।
तामें दुःख लखि सर्वदा, लहिय निजातम बुद्धि ॥७९॥१५०॥

माया के वशि सब परे, ब्रह्मा विष्णु महेश।
सनक सनन्दन नारदहुँ, गौरी पूत गणेश ॥१५१॥

यदि कहो कि मैं माया के वश में हूँ उदासीन कैसे हो सकता हूँ तो सुनो प्रथम माया के वश में सब ज्ञानी पड़े हैं, तभी तो पीछे मुक्त हुए हैं क्योंकि बन्धन बिना मुक्ति ही असिद्ध है। कैमुतिक न्याय से कहते हैं कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सनक, सनन्दन, नारद और गौरी (पार्वती) के पुत्र गणेश आदि भी माया के वश में प्रथम पड़कर (मोहादि युक्त होकर) पीछे तप आदि से ज्ञान पाये हैं, फिर तुम्हारी कथा ही क्या है। परन्तु वे सब भूल को त्यागकर सुखी हुए हैं, तैसे तुम भी होवो और ब्रह्मा आदि की विभूति सिद्धि आदि को मायामय जानो, उसके वश में वे सब भी प्रारब्ध कर्मवश पड़े हैं, तुम उनकी इच्छा आदि नहीं करो, त्रिगुण पर वस्तु को समझो ॥१५१॥

तन संशय मन श्वनहा, काल अलेरी नीत।
एकहि डाँग बसेड़वा, कुशल पुछहु का मीत ॥१५२॥

और यदि तुम ब्रह्मा आदि की कुशल पूछो और प्राप्त करना चाहो, तो सुनो "मन माया की कोठरी, तन संशय का कोट" इस उक्त रीति से अज्ञान काल में सबका तन संशय का खजाना है। तथा संशय ग्रस्त विनश्वर है और अशुद्ध मन सर्वत्र कुत्ता तुल्य अशुद्ध भोगादि परायण होता है और सर्वत्र सदा काल अहेरी रहता है और एक ही डाँग में (संसार वन में या पर्वत पर) सबका बसेड़ा (वास) है, तो हे मित्र! इस दशा में कहाँ का कौन कुशल पूछते हो। अज्ञान मोह देहाभिमानादि दशा में सर्वत्र दुःख ही है। ज्ञानादि के बिना कहीं कुशल नहीं है। अतः ज्ञानादि का सम्पादन करके असङ्ग होवो ॥ १५२ ॥

साहु चोर चीन्है नहीं, अन्धा मति के हीन।
पारख बिना विनाश है, करु विचार ह्वै भीन ॥१५३॥

अन्धा (अविवेकी) मति के हीन (भावी हित बुद्धि रहित) वर्तमान विषय में आसक्त मनुष्य सद्गुरु सत्यात्मारूप साहु और वंचक मन कामादिरूप चोरों को विवेकपूर्वक नहीं चीन्हता है। अतः सार, असार, सन्त, असन्त, धर्माधर्मादि की पारख (विवेक ज्ञान) के बिना विनाश होता है। तथा अपरोक्षात्मानुभव के बिना बार-बार जन्म-मरणादि होते हैं, तुम विचार करो और विचार द्वारा साहु चोर को विवेकपूर्वक पहचान कर चोरों से भिन्न असंग होकर आत्मनिष्ठ होवो, तब काल विनाश से बचोगे, मन माया के फन्दों में नहीं पड़ोगे ॥ १५३ ॥

इति तामस मन माया त्याग प्रकरण २३

अथ चित्त दर्पण कुशिष्य प्रकरण २४

गुरु सिकलीगर करि लेहु, मनहि मसकला देइ।
शब्द छोलना छोलि के, चित्त दर्पण करि लेइ ॥१५४॥

उक्त पारख के लिये सद्गुरु को सिकलीगर कर लो (चित्तदर्पण के शोधन कर्तारूप से गुरु का धारण करो) और अपने मन को गुरु की आज्ञा में लगावो, (गुरु के प्रति दो) कि जिससे गुरु उस मन पर मसकला (मल साफ करने के साधन) को दे सकें और अपने शब्दरूप छोलना (सान) से मल को छोलकर तेरे चित्त को दर्पण (शुद्ध) बना लें "गुरु सिकलीगर कीजिये, शब्द मसकला देइ। मन का मैल छोड़ाइ के, चित्त दर्पण करि लेइ ॥ १ ॥ सिख खाँड़ा गुरु

मसकला, चढ़ै शब्द खरसान। शब्द सहै सनमुख रहै, निपजै शिष्य सुजान" ॥२॥ (अंग की साखी)। खाँड़ा (खड्ग) खर (तीक्ष्ण) सुजान (ज्ञांनी) निपजै (सिद्ध होता है) ॥ १५४ ॥

चित्त दर्पण मन मसकला, कलमा कुलुफ लगाय।
ये अजीज माँजत रहू, मूर्चा लागिन जाय ॥१५५॥

ये अजीज! हे प्यारे! चित्त दर्पण में मननरूप मन का मसकला लगाकर और कलमा (गुरुमन्त्र) रूप कुलुफ (ताला पेटी) लगाकर भी सदा उसको सत्सङ्ग गोष्ठी द्वारा माँजते रहो कि जिससे मोहरूप मुर्चा (काई जंग) नहीं लग जाय। क्योंकि "नित की गुष्टी माया मोह टूटै" और माया मोह के टूटने से सदा चित्स्वरूप का भान हुआ करे, सो करो ॥ १५५ ॥

गुरु बेचारा क्या करे, शिष्य हि में है चूक।
शब्द बाण बेधे नहीं, बाँस बजाये फूँक ॥१५६॥

यदि शिष्यहि में अनवधानता आदिरूप चूक हो, तो बेचारे दयालु गुरु भी क्या कर सकते हैं। यदि शब्दरूप बाण क्रूर हृदय वाले शिष्य में नहीं बेधता है, तो जैसे बाँस की बाँसुरी फूँक से बजाई जाती है, परन्तु उसमें शब्द नहीं बेधता है। वैसा ही वह शिष्य है। यदि असमर्थ गुरु के अपराध से सत शिष्य में भी चूक है, तो वह बेचारा गुरु कर ही क्या सकता है। उसमें स्वयं सार शब्द नहीं बेधा है। केवल बाँसुरी की तरह कान में फूँक मारता है, अतः—

"कनफुका गुरु हद्द का, बेहद्द का गुरु और।
बेहद का गुरु जब मिलै, लहै ठिकाना ठौर ॥१॥" (अंग साखी)
निज आतम विभु ज्ञान हित, सद्गुरु शरणे जाय।
सार शब्द से चित्त को, दर्पण लेहु बनाय ॥८०॥
सद्विचार सत्संग से, राखिय मनहिं विशुद्ध।
निज पुरुषारथ के बिना, गुरु का करहिं प्रबुद्ध ॥८१॥
निज विराग सुविचार बिनु, सकल लोक फल खाय।
तृप्त न होवत चहत सोइ, जन्मत तहँ तहँ जाय ॥८२॥१५६॥

सब तरुवर तर जाय के, सब फल लीन्हा चीख।
कबीर फिरि फिरि माँगई, शब्दों ही का भीख ॥१५७॥

जिसमें सार शब्दरूप बाण नहीं वेधा है सो अज्ञ जीव सब लोक योनि देहरूप तरुवर (वृक्ष) तर जा जाकर अनेकों बार सब फलों (भोगों) को चीख (भोग) लिया है और उन भोगों से कभी तृप्ति शान्ति हुई नहीं है न होने का है, तो भी फिर-फिरकर देवादि से उन शब्दादि भोगों की ही भिक्षा मोहादिवश माँगता है। तृप्ति के उपाय नहीं करता है और विवेकी लोग उनसे अतृप्ति जान कर सत्सङ्ग गुरुशरणादि में सारशब्द की ही भिक्षा सद्गुरु से माँगते हैं ॥१५७॥

शब्द स्वरूपी ते भये, किया शब्द सो मेल।
शब्द न चीन्हे बावरा, फिरि फिरि खेलु अहेर ॥१५८॥

जो लोग जैसे शब्द से मेल (सम्बन्ध प्रेम) किये, सो उस शब्द स्वरूपी तन्मय हो गये, अतः सार शब्द से मेल वाले सार स्वरूप मुक्त हो गये, परन्तु जो अविवेकी सारशब्द को नहीं चीन्हता है वह बार-बार असार शब्दादि के लिये अहेर खेलता है (विहिताविहित व्यवहार करता है) और उसका काल अहेर खेलता है। अतः वह सुख शान्ति नहीं पाता है ॥ १५८ ॥

मूरख के समुझावते, ज्ञान गाँठि का जाय।
कोयला ह्वे न ऊजरो, सौ मन साबुन लाय ॥१५९॥

मूरख उस बावरे दुराग्रही ज्ञानाभिमानी के समझाते में गाँठि (हृदय) के तत्त्व ज्ञान का उपदेश व्यर्थ जाता है। क्योंकि वह अभिमानी बावरा सदुपदेश से शुद्ध ज्ञानी नहीं हो सकता है। जैसे सौ मन साबुन लगाने से भी कोयला उजला नहीं होता है, किन्तु जलकर राख होने पर उजला होता है। वैसे ही वह जीव ताप पाप को भोगकर के कभी उजला होता है ॥ १५९ ॥

मूढ़ कर्मि मानै नहीं, नख शिख पाखण्ड आहिं।
बाहनिहारा क्या करै, बाह न लागै ताहिं ॥१६०॥

जिस मूढ़ कर्मी के नख से शिखा तक पाखण्ड (दम्भ वेषाभिमानादि) भरा है, सो यदि ज्ञानोपदेश को नहीं मानता है, तो बाहने वाले (ज्ञान बाण चलाने वाले सत्य स्थान में पहुँचाने वाले) गुरु उसको कर ही क्या सकते हैं। कर्मों को भोगे बिना उसको किसी प्रकार भी बाह (पता) नहीं लगता है। उसके प्रति किसी की शक्ति कुछ काम नहीं कर सकती है ॥ १६० ॥

सीमर केरा सूगना, छिहुले बैठा जाय।
चोंच समारै शिर धुनै, ई उस ही का भाय ॥१६१॥

क्योंकि जैसे सीमर वृक्ष पर बसने वाला सूवा उस सीमर के छिहुला (छीमी, फल) के पास में जाकर बैठता है और उत्तम बड़ा फल समझकर खाने के लिये चोंच समारता है, आनन्द से शिर धुनता है (कपाता) है। वैसे ही मूढ़ कर्मी संसार सीमर पर बसते हैं। इसके फलस्वरूप कनक कामिनी आदि के पास जाकर बैठते हैं और आनन्द मानते हैं। क्योंकि ई (ये) भी उस अविवेकी सूवा के भाई हैं, सांसारिक फल को सीमर के फल तुल्य निरस (आनन्दरहित) नहीं समझते हैं। अतः संसार को सेवकर सीमर सेवी सूवा के समान अन्त में पछताते हैं। तथा जैसे सीमर पर रहने वाला सूवा सीमर के फल से तृप्ति नहीं मिलने पर छिहुला (पलास) पर जाकर बैठा तैसे मूढ़ लोग इस लोक में तृप्त नहीं होकर परलोक में जाकर बैठते हैं, परन्तु यह नहीं समझते हैं कि यह परलोक भी उस त्यक्त लोक का ही भाई है, उसके तुल्य ही विनश्वर है। एक आत्मा ही अविनाशी सुख स्वरूप सेवनीय है, इत्यादि ॥१६१ ॥

सुगना सीमर सेइया, दो ढेंढ़ी की आस।
ढेंढ़ी फुटी चनाक दे, सुगना चला निराश ॥१६२॥

जो अविवेकी सुगना तुल्य प्राणी लोक परलोक तथा कनक कामिनी (अर्थ काम) रूप दो ढेंढ़ी (फल) की आशा से संसार सीमर को सेवा, सो उन फलों के अन्त में नष्ट होने पर हताश होकर चला कि जैसे सीमर की ढेंढ़ी के पकने पर वह चन ऐसा शब्द करके फूटती है, तो सुगना निराश होकर चलता है। अतः प्रथम ही आशा आदि को त्यगना चाहिये। क्योंकि—

> "आशाया हि ये दासास्ते दासाः सर्वलोकस्य।
> आशा दासी कृता येन तस्य दासायते जगत् ॥१॥" (महाभारत)

आशा के जो दास (वश) हुए, सो सब लोक के दास हो गये और जिन्होंने आशा को वश में किया (त्यागा) उनके दास तुल्य सब संसार आचरण करता है ॥ १६२ ॥

इति चित्तदर्पण कुशिष्य प्रकरण २५

अथ सद्धारणोपदेश प्रकरण २५

सुगना सीमर बेगि तजु, घनी विगूचन पाँख।
ऐसा सीमर स सेवे, जाके हृदय न आँख ॥१६३॥

विवेकी के प्रति उपदेश है कि हे सुगना (विवेकी) मनुष्य ! तुम इस असार संसार सीमर को वेगि (शीघ्र) त्यागो । (इसके फलादि की आशा आसक्ति से रहित होवो) नहीं तो तेरे मन बुद्धि पर भारी विगुरचन (कष्ट) प्राप्त होगा । जैसे कि सूवा के पाँख में सीमर की रूई लिपट जाने से उसको घना विगुरचन होता है और ऐसे असार संसार सीमर को सोई सेवता है कि जिसके हृदय में विवेक विज्ञानरूप आँख नहीं रहती है । तुम विवेकी होकर इसको सेवने योग्य नहीं हो, आत्म सेवन करो ॥ १६३ ॥

जानि बूझि जड़ ह्वै रहै, बल तजि निर्बल होय।
कहहिं कबिर ता सन्त के, पला न पकड़ै कोय ॥१६४॥

जो विवेकी स्वयं जान बूझकर (पूछ समझकर) अनधिकारी के आगे जड़ (अज्ञ) तुल्य रहता है, आत्म चर्चा नहीं करता है और बल के रहते उसके अभिमान दुरुपयोग को त्यागकर निर्बल तुल्य निरभिमानी होता है, क्षमा युक्त रहता है । कबीर साहब कहते हैं कि उस सन्त के पला को कोई नहीं पकड़ सकता है (संसार में खूट पकड़कर कोई बाहर भीतर के शत्रु भी नहीं बिलमा सकता है) अतः वह आत्म सेवी मुक्त होता है । अतएव शास्त्र में उपदेश है कि-

"नापृष्टः कस्यचिद् ब्रूयान्न चान्यायेन पृच्छतः ।
जानन्नपि हि मेधावी जड़वल्लोकमाचरेत् ॥"

पूछने विना किसीसे कुछ नहीं कहे, अन्याय से पूछनेवाले को भी नहीं कहे, जानता हुआ बुद्धिमान् भी जड़ तुल्य लोक में विचरे । परन्तु जो अविवेकी कामी संसार को निरसादि जानकर, तथा कर्तव्य साधनों को जानकर भी जड़ तुल्य बने रहते हैं, बल रहते भी आलस्यादि से कर्तव्य को त्यागते हैं, उनके देवादि भी पक्ष नहीं पकड़ते हैं, कि जिनके भरोसे वे आलस्यादि करते हैं । पुरुपार्थी के ही सब सहायक होते हैं । अतः पुरुषार्थ कर्तव्य है ॥ १६४ ॥

लोग भरोसे कौन के, बैठ रहे अरगाय।
जियरहिं लूटत यम फिरै, मेढहिं लुटै कसाय ॥१६५॥

उक्त रीति से अपने पुरुपार्थ के बिना कोई फल नहीं मिलता है, तो भी न मालूम लोग किसके भरोसे अरगाय (चुप लगाय) बैठे हैं। किसी से कोई गन्तव्य मार्गादि पूछते भी नहीं हैं, न विचारादि पुरुपार्थ करते हैं और अपने पुरुपार्थ के बिना अज्ञ जीवों को यम इस प्रकार लूटते (नष्ट करते) फिरता है कि जैसे मेषों (भेड़ों) को कसाई लूटते हैं। अतः इस अवस्था में चुप होकर बैठना उचित नहीं है, किन्तु "उद्धरेदात्मनात्मानम्" इत्यादि उपदेशों के अनुसार अपना उद्धार आप कर्तव्य है।

हृदय शुद्ध होवत नहीं, बिनु विराग अभ्यास।
उपदेशहुँ वह व्यर्थ ह्वै, जहाँ विषय रस आश ॥८३॥
ताते विश्व कुवृक्ष की, आशा तजिय मीत।
उदासीन ह्वै जगत से, सेविय सद्गुरु नीत ॥८४॥१६५॥

हीरा सोइ सराहिये, सहै घनहुँ की चोट।
कपट कुरङ्गी मानवा, परखत निकला खोट ॥१६६॥

हे मानवा! घन से भी अभेद्य हीरा के समान सोई अखण्डात्म स्वरूप स्वयंप्रकाश हीरा और उसके ज्ञानी सन्त भक्त सराहिये (प्रशंसनीय जानिये) जो कि तर्कादिरूप घनों की चोट को सहता है। सर्वात्मा होने से जिसका बाध नाश किसी से नहीं होता है, किसी प्रकार कोई विकार जिसमें नहीं होता है और कपटरूप माया से सिद्ध कुरङ्गी त्रिगुणरूप नकली हीरा सन्त लोकादि तो पारख करने पर खोट (दम्भी नश्वर) निकलते सिद्ध होते हैं।

सद्गुरु से ही परखिये, हरि हीराहि असंग।
तजि कुसंगहि जानिये, निर्मल सदा अभंग ॥८५॥
जो कुसंग में जन पड़े, तिन ते हरि भौ दूर।
करि कुदेह अभिमान सो, भवदुख सह अति कूर ॥८६॥१६६॥

हरि हीरा जन जौहरी, सबन पसारी हाट।
जब आये जन पारखी, तब हीरों की साट ॥१६७॥

वस्तुतः सर्वात्मा हरि ही अच्छेद्यादि स्वरूप हीरा है और सज्जन, ज्ञानी, जौहरी (पारखी) हैं और अन्य सब लोग भी अपनी-अपनी समझ के अनुसार अनेक हीरा को हाट (संसार, सम्प्रदाय) में पसार रखे हैं। तहाँ जब पारखी,

ज्ञानीजन आये और आते हैं तभी हीरों की योग्य साट (मूल्य) हुआ और होता है। या नकली अनेक हीरों की साट (सट्टा, जूआ, मिथ्या व्यवहार) समझी गई।

"झूठ जवाहिर के बनिज, तब लगि परिहैं पूर।
जब लगि मिलै न पारखी, घन पर चढ़े न कूर ॥"

(अज्ञ की साखी) ॥१६७॥

हीरा तहाँ न खोलिये, जहँमा खोटी हाट।
सहजहिं गाँठि बाधिये, लागिये अपनी बाट ॥१६८॥

जहाँ अज्ञ लोग खोट (मिथ्या) हीरा की खोटी हाट लगाये हों, वहाँ सर्वात्मा हरि हीरा को उनके आगे नहीं खोलना (बोलना) चाहिये, किन्तु सहज स्वभाव से हृदय गाँठी में बाँधकर अपने मार्ग स्मरण ध्यानादि में लगना चाहिये पूर्वरीति से जानबूझ कर जड़ होना चाहिये ॥ १६८ ॥

हीरा परा बजार में, रहा छार लपटाय।
मूरख था सो चलि गया, पारखि लिया उठाय ॥१६९॥

सर्वात्मा हरिरूप हीरा संसार शरीररूप बाजार में प्रत्यक्ष ही अस्ति भाति प्रियरूप से पड़ा (प्राप्त व्याप्त) है। परन्तु उसमें मायिक नामरूप कोशात्मक छार (धूल, राख) लिपटे हैं। अतः जो मूर्ख (अभिमानी अज्ञ) थे, सो बाजार में आकर भी सद्गुरु आदि के विना बूझे तथा हीरा के पाये विना व्यर्थ ही चले गये (मनुष्य होकर व्यर्थ मर गये) किन्तु जो हरि गुरु कृपा से पारखी हुए सो उस हीरा को उठाय लिये (शुद्ध निजात्मरूप से धारण निश्चय किये) और करते हैं। अतः पारखी होना चाहिये ॥१६९॥

अपने अपने शीर की, सबहिन लीन्हों मानि।
हरि की बात दुरन्तरे, परी न काहू जानि ॥१७०॥

क्योंकि पारखी होने के बिना सब लोगों ने अपने-अपने शिरोधार्य पूज्य इष्ट को जुदा-जुदा मान लिया है। अतः सर्वात्मा एक हरि की बात (मर्म ज्ञान विचारादि) तो उनसे दूर के (अन्तराय, परदा) में पड़ गई है। अतः वह बात किसी को जान नहीं पड़ी, न हरि की प्राप्ति हुई। अतः पारखी होना चाहिये ॥ १७० ॥

हाड़ जरै जस लाकड़ी, केश जरै जस घास।
कबीरा जरै राम रस, कोठी जरै कपास ॥१७१॥

हरि की बात के दूरन्तर में होने से जिस देहाभिमानी के मरने पर हाड़ लकड़ी के समान और केश घास के समान जलते हैं। सो विरही कबीरा (जीव) तटस्थ राम के रस (प्रेमाग्नि) से कोठी के अन्दर कपास के समान कोशों के अन्दर जलता है। अथात् स्थूल सूक्ष्म देह में आत्माध्यास से प्रेम के रहते भी आत्मज्ञान के विना तापों से मुक्त नहीं होता है। अतः मुञ्जेपिका न्याय से आत्मविवेक करके तापादि रहित मुक्त होना चाहिये, हरि को दूर अनात्मा नहीं समझना चाहिये ॥ १७१ ॥

घाट भुलाना बाट बिनु, वेष भुलाना कानि।
जाकी माँड़ी जगत में, सो न परा पहिचानि ॥१७२॥

निष्काम, सत्कर्म, शम, दमादि अहिंसादिरूप बाट (सन्मार्ग) के बिना विमल विराग योग ज्ञानादिरूप संसार पार जाने के घाट को सब भूले हुए हैं। प्राप्त नहीं होते हैं और घाट के भूलने से वेषधारी सब अपने-अपने कानि (मर्यादा, इज्जत, बड़ाई) में भूले (फँसे) हैं। अतः जिस हरि की माया की जगत में माँड़ी (विस्तार पसार) है, सो सर्वत्र वर्तमान हरि इनको पहिचान नहीं पड़ा। अतः दूरवर्ती से प्रेमादि करते हैं, विरही बने रहते हैं। अतः शमादि द्वारा घाट को समझना चाहिये ॥ १७२ ॥

इति धारणोपदेश प्रकरण २५

अथ असाध्य शिष्य प्रकरण २६

मूरखन सो का कहिये, शठ सो क्या बौसाय।
पाहन में का मारना, चोखो तीर नशाय ॥१७३॥

मूरखों (ज्ञानाभिमानियों) से क्या कहा जाय और शठ (दुराग्रही दुरात्मा) से बौसाय (बल) क्या किया जाय, उसके प्रति वश क्या चलता है। पत्थर में मारने से चोखा तीर व्यर्थ नष्ट होता है, तैसे मूर्ख और शठ के लिये किया गया सुन्दर उपदेश सामर्थ्य व्यर्थ जाते हैं ॥ १७३ ॥

जैसे गोली गुमज की, नीच परे ढहराय।
तैसे हृदया मूर्ख का, शब्द नहीं ठहराय ॥१७४॥

जैसे मन्दिर आदि के गुमज (शिखर) की गोली ढहराय (लुढ़क) कर नीचे में पड़ती और ठहरती है, गुम्मज पर नहीं ठहरती है और उस गुम्मज के तुल्य ही अनम्र मूर्ख का हृदय होता है। अतः उसमें गोली तुल्य सार शब्द नहीं ठहरता है, किन्तु नम्र के हृदय में ठहरता है। अतः सदुपदेश की प्राप्ति के लिये प्रथम नम्रता की प्राप्ति कर्तव्य है। क्योंकि—

"मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलैं विरञ्चि सम।"

नहि कुसंग में बाट शुभ, घाट न मिलत अनादि।
जाकी सत्ता से जगत, तिहि न लखै मतवादि ॥८७॥
वादादिक से द्वन्द्व में, पड़ता मूर्ख अजान।
तापै गुरु का वश नहीं, जाको अति अभिमान ॥८८॥
जाके हृदय विवेक नहि, नहि सत्सङ्ग विचार।
ताको सद्गुरु क्या करें, जो नहि चलत सँभार ॥८९॥१७४॥

ऊपर की दोऊ गई, हिय की फूटी आँखि।
कबिर बिचारा क्या करे, जो जीवहिं नहिं झाँखि॥१७५॥

जिन शठों के ऊपर की दोनों आँखें मानो नष्ट हो गई कि जिससे शरीरादि में प्रत्यक्ष अशुद्धता जड़ता आदि को देखकर भी नहीं समझते हैं। तथा श्रुति स्मृतिरूप दोनों नेत्रों के अभाव से धर्माधर्मादि को भी नहीं समझते हैं और हृदय की भी विवेक विज्ञानादिरूप आँख फूटी है कि जिससे विचारादि नहीं करते हैं न सार शब्दादि को पहचानते हैं। अतः उन जीवों को यदि झाँकि (आत्म परमात्म दर्शन) नहीं उत्पन्न होते हैं। तो कबीर साहब कहते हैं कि उनके दर्शन के लिये अन्य कोई क्या विचार कर सकता है तथा वे बेचारे जीव भी क्या कर सकते हैं। कर्मज असाध्य रोग भोग से ही निवृत्त होता है अन्यथा नहीं।

सार शब्द जिहि नहि रुचै, तहाँ सकल उपदेश।
विफल होत सुविवेक युत, में फल युत सन्देश ॥९०॥१७५॥

केते दिन एहूँ गया, अनरूचे का नेह।
ऊषर बोय न ऊपजे, जो घन वर्षे मेह ॥१७६॥

क्योंकि जिनको सदुपदेश नहीं रूचता है (प्रिय नहीं लगता है) उन अनरूचों (रुचि रहितों) के साथ किया गया कितने दिनों का नेह (स्नेह प्रेम) एहूँ (व्यर्थ ही) गया और जाता है, क्योंकि यदि घना (अत्यन्त) मेघ वर्षे तो भी ऊषर में बोया हुआ बीज नहीं उपजता है। इसी प्रकार अनरूचे में उपदेश सफल नहीं होता है ॥ १७६ ॥

मैं रोवों यह जगत को, मोको रोव न कोय।
मो को रोवै सो जना, शब्द विवेकी होय ॥१७७॥

मैं इस जगत को रोता हूँ (सद्गुरु जगत के हित के लिये प्रेम करके हितोपदेश देते हैं) मैं (गुरु) इसके दुःख से दुःखी होता हूँ। परन्तु अनरूचे के कारण मुझको कोई नहीं रोता है (मेरे प्रेम परिश्रम को कोई नहीं समझता है) मुझको वही भक्त जन रोवेगा कि जो सार शब्द का विवेकी होगा अतः प्रथम शब्द विवेक कर्तव्य है ॥ १७७ ॥

साहब साहब सब कहै, मोहि अँदेशा और।
साहब सो परिचय नहीं, बैठहु गे किहि ठौर ॥१७८॥

शब्द के विवेकादि के बिना भी सब साहब साहब (प्रभो! प्रभो!) पुकारते हैं, तहाँ पुकारने में तो न कुछ कहना है न संशय है। किन्तु मुझे अन्य बात का अन्देशा (संशय) है या संदेशा कहना है कि आप सब साहब साहब कहते हो और सदा साहब के साथ रहते भी हो, परन्तु साहब से परिचय नहीं है, उसको पहचानते नहीं हो, तो अन्त में किस ठिकाने बैठोगे (स्थिर होगे) अर्थात् जीवित दशा में शब्दों के विवेकपूर्वक ब्रह्मानुभवपूर्वक ब्रह्मनिष्ठ होगे, तभी अन्त में भी ब्रह्म में स्थिति पावोगे। अतः ब्रह्मनिष्ठ होवो।

साहब साहब कहत सब, बिनु सन्देश न भान।
होत सत्य निज ठौर का, भटकत फिरत भुलान ॥९१॥
ताते करिय विचार शुभ, दया दान दम धारि।
करि विशुद्ध दिल को गहो, सार शब्द अघ हारि ॥९२॥
सार शब्द जिनके विमल, सो गुरु सदा असंग।
सदा एक रस रहत हैं, करत मोह मद भंग ॥९३॥१७८॥

इति असाध्य शिष्य प्रकरण २६

अथ पुरुषार्थावलम्बनादि प्रकरण २७

जीव बिना जिव जिवै नहिं, जिव का जीव अधार ।
जीव दया करि पालिये, पण्डित करहु विचार ॥१७९॥

हे पण्डितों ! जीवों का जीवन दूसरे जीवों के बिना नहीं हो सकता है। क्योंकि परस्पर की सहायता से सब प्राणियों का जीवन होता है। तहाँ अविवेक मोह स्वभाव से तो सब प्राणी अन्य के सहायक रक्षक होते हैं, विचार दया विवेक विज्ञान से अन्य की सहायता रक्षा करना पण्डितों, सन्तों, विवेकियों का काम है। अतः विचार करो और दया करके जीवों की रक्षा उपदेशादि द्वारा करो, यह पाण्डित्य है। क्योंकि--

"न जीवेन बिना तृप्ति जींवस्यापि हि सर्वदा ।
अतःससर्ज भगवान् जीवो जीवेन हिंस्यते ॥१॥
कारुण्यं प्राणिषु प्रायः कर्तव्यं पुण्यहेतवे ।
अहिंसा परमो धर्मस्तस्मादात्मवदाचरेत् ॥२॥"

एक जीव के बिना दूसरे जीव की तृप्ति सदा नहीं होती है। अतः ईश्वर ने ऐसी सृष्टि की है कि जहाँ एक जीव दूसरे से मारे जाते हैं ॥१॥ तथापि पुण्य के लिये तो प्राणियों के ऊपर प्रायः करुणा (दया) ही कर्तव्य है। क्योंकि अहिंसा परमधर्म है, अतः अपने तुल्य सबका हित करना चाहिये, अहित किसी का नहीं करना चाहिये, यह शास्त्र का सिद्धान्त है ॥ १७९ ॥

हौं तो सब ही की कही, मोको काहु न जान ।
तब भी अछा अब भी अछा, युग-युग होउँ न आन ॥१८०॥

उपकार अहिंसा कर्तव्य है अतः मैंने सब की हित की बात कही है। परन्तु मुझे कोई अविवेकी नहीं जानता (पहचानता) है। अर्थात् सत्यवक्ता सद्गुरु को सर्वात्मा ईश्वर ब्रह्मस्वरूप सब नहीं समझ पाते हैं, कोई बिरल विवेकी सद्गुरु ज्ञानी को ब्रह्मस्वरूप समझते हैं। परन्तु मैं (सद्गुरु) तो तब (भूत, अपहचानकाल में) और अब (वर्तमान काल में) अच्छा निर्मल (एकरस) रहता हूँ। मैं अनन्त युगों में भी अन्य (भिन्न विकृत) नहीं होता हूँ। अर्थात् आत्मा भेदादिरहित है, उसको मैं समझता हूँ, तद्रूप हूँ। परन्तु अविवेकी ऐसा नहीं समझते हैं ॥१८०॥

प्रगट कहौं तो मारिया, परदहिं लखै न कोय।
सहना छपा पुआर तर, को कहि बैरी होय ॥१८१॥

यदि मैं प्रगट (साक्षी) का उपदेश देता हूँ, लोगों के गुण दोषों को साफ शब्दों से कहता हूं, तो लोग मारते हैं। और परदे (संकेत सैन) से कहता हूं तो कोई समझते नहीं हैं, न कहे विना कोशादिरूप परदा में वर्तमान साक्षी सर्वात्मा को कोई समझते हैं और साक्षी स्वरूप को समझे विना सबका सहना (मनरूप कोतवाल) विषयरूप पोआल तर छिपा है, ईश्वर माया में छिपकर सब देख रहा है, इत्यादि जीवों के अरुचि की बातों को प्रगट कहकर कौन इनका बैरी बने, संकेत से कहने ही पर अधिकारी होगा सो समझेगा ॥१८१॥

कलि खोटा जग आँधरा, शब्द न चीन्है कोय।
जाहि कहों हित आपना, सो उठि बैरी होय ॥१८२॥

यह कलियुग खोटा (हीन) काल है, संसारी लोग अविवेकान्ध हैं। अतः कोई सत्य शब्द उपदेश को नहीं पहचानता (समझता) है। इस कारण से जिससे उसकी अपने हित की बात प्रगट कहता हूँ, अपना हित समझकर मानो सोये को जगाता हूँ, सो भी उठकर बैरी होता है। तथा बैरी होकर उठता है, अतः संकेत से कहना ही ठीक है ॥१८२॥

देश विदेशे हौं फिरा, मन ही भरा सुकाल।
जाको खोजत हौं फिरो, तका परा दुकाल ॥१८३॥

हौं (मैं) देश विदेश में फिरा (विचरा) तो सर्वत्र मन का ही सुकाल (सुन्दर समय) भरा (पूर्ण) देखा (विवेक रहित मनमाना कार्य करनेवाले सर्वत्र मिले) और जिन सज्जन विवेकियों को खोजता हुआ मैं फिरता (विचरता) हूँ, उनका सब देश में दुकाल (दुष्काल) पड़ा है। विवेकी ज्ञानी धर्मात्मा सर्वथा अहिंसक पवित्र सत्यवक्ता सर्वत्र दुर्लभ हैं। अतः किससे प्रगटात्म कथा कही जाय ॥ १८३ ॥

इति पुरुषार्थावलम्बनादि प्रकरण २७



अथ संक्षिप्त सारोपदेश प्रकरण २८

मसि कागज छूवों नहीं, कलम धरों नहिं हाथ।
चारिहुँ युग के महातम, मुखहि जनाई बात ॥१८४॥

जिससे विवेकी कम हैं, अविवेकी अधिक हैं और अविवेकियों को अर्थादि के लिये बहुत बात की आवश्यकता होती है, विवेकियों को नहीं। अतः अब मैं बहुत लिखने के लिये मसि कागज नहीं छूवूँगा न हाथ में कलम धरूँगा। अर्थात् इस ग्रंथ को लिखने के बाद कुछ नहीं लिखूँगा। क्योंकि जो चारो युग के लिये हित होने से चारो युग के महात्मरूप महत्त्व युक्त मुख्य (प्रधान) बात विवेकियों के लिये है, उस बात को मैंने इस ग्रन्थ में जना दी है (लिख दिया है) तथा चारो युग के महात्माओं ने भी मुख्य ही बात जनाई है, अतः मैंने भी ऐसा ही किया है (यह प्रतिज्ञा है) ॥१८४॥

फहमें आगे फहमें पीछे, फहमें बायें डेरी।
फहमें पर जो फहम निबेरै, सोइ फहम है मेरी ॥१८५॥

वह तत्त्व युक्त कौन बात है, ऐसी जिज्ञासा होने पर (ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्तात्) इत्यादि श्रुति आदि के अनुसार उक्तार्थ को संक्षेप से समझाने के लिये कहते हैं कि फहम (ज्ञान, स्फुरण, प्रकाश) स्वरूप सत्यामा ही सत्ता प्रकाशस्वरूप से आगे पीछे बायें दहिने सर्वत्र व्यापक है कि जिसका "यन्त्री यन्त्र अनूपम बाजै। बाके अष्ट गमन मुख गाजै" इत्यादि वचनों से वर्णन हो चुका है। बुद्धि की वृत्तिरूप सब फहमों (ज्ञानों) से परे जो उस व्यापक फहम का निबेरा (विवेक विज्ञान किया जाय, सोई मेरी सत्य फहम मुख्य अनुभव की बात है। तथा आगे पीछे (भूत भावी) बायें डेरी (वर्तमान शुभ अशुभ) सब का फहम (विचार अनुभव) करे और सब फहमों (तर्कों) से परे साक्षी स्वरूप फहम का निबेरा करे सो मेरा फहम उपदेश है।

बुद्धि वृत्ति भव साक्षि सत्, व्यापक चेतन एक।
ताको सत उपदेश से, जानिय करि सुविवेक ॥९४॥
यद्यपि या कलिकाल में, सद्विवेकि अधिकारि।
दुर्लभ बहु सब देश में, तदपि अहैं दो चारि ॥९४॥
तिन को सद्गुरु कहत हैं, सत्य सनातन बात।
विभु आतम लखु हृदय में, साधुन में विख्यात ॥९६॥१८५॥

हद्द चलै सों मानवा, बेहद चलु सो साधु।
हद वेहद दोनों तजै, ताकी मता अगाधु ॥१८६॥

वर्णाश्रमादि के हद (मर्यादा) में विवेक से चलने वाले उचित कर्म व्यवहार करने वाले विधि निषेध के ज्ञाता कामी मनुष्य हैं। तथा एक देशी पूज्य उपास्य को समझकर उचित पूजा भक्ति उपासना करने वाले मनुष्य हैं और वर्णाश्रमादि के अभिमान से रहित निष्काम विवेकी विभु परमात्मतत्त्व के चिन्तक साधु (वेहदगामी कुशल होते हैं) और हद बेहद दोनों को त्यागने वाले संग्रह त्याग से रहित विधि निषेध के अविषय समाधिस्थ महात्माओं की गति अगाध है। वे त्रिगुणातीत जीवन्मुक्त कहे जाते हैं, साधु असाधु आदि नहीं कहे जा सकते हैं ॥१८६॥

समुझे की मति एक है, जिन देखा सब ठौर।
कहहिं कबिर वे बीच के, बलकहिं औरक और ॥१८७॥

चाहे वेहद गामी साधु हों या हद वेहद दोनों के त्यागी हों, परन्तु निज सत्यात्म को सब ठौर (सब स्थान) में जिन महात्माओं ने देखा (समझा) है, उन सब समझनेवाले महात्माओं की मति (बुद्धि ज्ञान) एक रहती है। अभ्यासादि के भेद से ज्ञान की अवस्था धारणा में भेद होते भी ज्ञान में भेद नहीं रहता है और वे लोग बीच के (अल्पज्ञ संसारी) है कि जो और के और बलकते हैं (भ्रम से अन्य को अन्य कहते हैं) अर्थात् मध्य दशा के लोगों में ज्ञान बात व्यवहार सब भिन्न-भिन्न रहते हैं। ज्ञानी में प्रारब्ध वश व्यवहार में भेद होते भी ज्ञान और बात में भेद नहीं होता है।

"समुझे घट का एक मत, शब्द विचारै खेल।" (अंग की साखी)

मानव चलै सुपन्थ में, विभु सत समझैं साधु।
निज स्वरूप में स्थिर रहैं, तिन की गती अगाधु ॥९७॥

साधू सत्य अगाध मति, युक्तन की मति एक।
विभु इक तत्त्व पिछानहीं, अज्ञहि लखै अनेक ॥९८॥

सन्मारग में गमन बिनु, साधु न होत अगाध।
करत आश स्वर्गादि की, लखत न वचन अवाध ॥९९॥

निष्कामी सत्कर्म करि, होव मनुष्य विवेकि।
सोई पुनि लहि साधुता, सत्य तत्त्व लै टेकि ॥१००॥

असंसक्ति आदिक लही, ह्वै अगाध मति सोय।
धूर्वं पूर्वं सत्यात्मा, लखि विमुक्त सो होय ॥१०१॥१८७॥

राह बिचारी क्या करै, पन्थि न चलै सुधारि ।
अपने मारग छोड़ि के, चले उजारि उजारि ॥१८८॥

हद में चलना मनुष्य का काम है, सो हद महात्माओं के उपदेश वेद शास्त्रादि में वर्णित है । परन्तु यदि पथिक मनुष्य सम्हार कर अपने धर्म कर्मरूप मार्ग में नहीं चले तो वेचारी राह (मार्ग) या मार्ग को विचारने वाले क्या कर सकते हैं और देखा जाता है कि प्रायः मनुष्य अपने मार्ग (धर्म हद मर्यादा) को छोड़कर उजार-उजार (सुख छाया रहित उजाड़) में फिरते हैं । निष्काम सत्कर्म परोपकार भक्ति आदि नहीं करके कुकर्मादि करते हैं, तो मार्ग क्या करे ॥ १८८ ॥

ऊजर जाय बसाइया, छाड़ि बसन्ता गाम ।
न वह बसा न ऊजरा, भया बसे का नाम ॥१८९॥

उजाड़ में फिरने वालों ने बसन्ता गाम (सर्व निवासी सर्वाधार) सर्वात्मा को त्यागकर, तथा सब साधनों के धाम मानव लोकादि को त्यागकर, उजड़ (शून्य) में जाकर गाम बसाया । शून्याकाश में लोकादि की कल्पना किया उसमें मन लगाया, आनन्दादि रहित विषयादि में मन, इन्द्रियों को लगाया, परन्तु कल्पित वह लोकादि मिथ्या होने से न बसा न ऊजड़ा, किन्तु बसने का नाममात्र हुआ । क्योंकि सब विकार (कार्य) नाममात्र ही हैं और उन नाममात्र में भूलने से मनुष्य स्वधर्म सन्मार्ग में भी नहीं चल पाता है, ज्ञानादि तो दूर से दूर रह जाते हैं ॥ १८९ ॥

बोलि हमारी पूरबी, बूझै बिरला कोय ।
मेरी बोली सो बूझै, धूर्व पूर्व का होय ॥१९०॥

कबीर साहब कहते हैं कि ऊजाड़ में गाम बसाने वाले सब पीछे होने वाले कार्यों के प्रेमी हैं और हमारी बोली कार्यों से पूर्वकाल में रहने वाली वस्तु के बोधक होने से पूर्वी (सर्व कारण सत सम्बन्धी) है । अतः इस बोली को बिरल कोई कार्यकारण के विवेकी ही बूझता है । सो बिरल विवेकी भी वही मेरी बोली को समझते हैं कि जो धूर्व (अविनाशी निश्चल) पूर्व वस्तु के जिज्ञासु खोजी होते हैं । विकारी प्रकृति आदि के ज्ञानमात्र से जो सन्तुष्ट नहीं होते हैं ॥१९०॥

मूआ है मरि जाहुगे, बिनु शर थोंथे भाल।
परेहु कराहल वृच्छ तर, आज मरहु की काल ॥१९१॥

हे मनुष्यों ! उस धूर्व पूर्व वस्तु के ज्ञान भक्ति आदि के विना ऊजाड़ में गाम बसाकर प्रथम भी अनन्तो वार मुये हो और फिर भी मरकर उजाड़ में जावोगे और सो मरण भी कैसे हुआ है कि जैसे कोई तीक्ष्ण शर के विना, थोंथे भाला से अत्यन्त पीड़ित करके मारा जाय तैसे मुये हो और अभी कराहल (किये हुए प्रारब्ध कर्म) वृच्छ तर परे हो। भोग से उस कर्म के समाप्त होने पर आज या कल्ह कुछ दिन में अवश्य मरोगे। अतः शीघ्र विवेकादि की प्राप्ति करो कि जिससे ऐसी दशा नहीं हो ॥ १९१ ॥

जा चलते बन्दे पड़ा, धरती भई विहाल।
स सामन्त घामे जरै, पण्डित करहु विचार ॥१९२॥

जिस सामन्त (मण्डलेश्वर वीर) राजा के चलते (यात्रा) में वन्दे (दास, सिपाही) हुकुम में पड़ा (खड़ा) रहता है। तथा जिसकी आज्ञा से अपराधी बन्दे (वन्धनागार) में पड़े रहते हैं और भूमि निवासी जिसके प्रताप से व्याकुल हो गये और वेहाल (व्याकुल) होते हैं। सो सामन्त भी ज्ञानादि के विना गर्भ नरकादि के तापरूप घाम में जलते हैं। अतः हे पण्डितजन ! उस ताप से रहित होने के लिये सर्वादिस्वरूप के विचारादि करो ॥ १९२ ॥

पावन पुहुमी नापते, दरिया करते फाल।
हाथन पर्वत तौलते, तिहि धरि खायो काल ॥१९३॥

जो त्रिविक्रम बावनभगवान् अपने पैरों से भूमि आदि को नापते थे, जिस हनुमानजी ने समुद्र को एक फाल (डेग, धाप) किया, एक फलान (छलांग) में समुद्र के पार चले गये। तथा जो कृष्णजी हाथों से पर्वत तौलते थे, उन सबको भी काल ने धरकर खाया उनको भी एक रस नहीं रहने दिया। अतः सर्वादि सर्वाधार अविनाशी निर्विकार धूर्व पूर्व को विचारादि से जानो कि जिससे तद्रूपता को पावोगे, मुक्त होवोगे ॥१९३॥

नव मन दूध बटोरि के, टिपके किया विनाश।
दूध फाटि काँजी भया, भया घीव का नाश ॥१९४॥

जैसे सिद्धियाँ काल से नष्ट होती हैं, तैसे नवनिधि, नवधाभक्ति आदि भी काल अभिमानादि से नष्ट होते हैं, कुसंग कुभोगादि से भी तप भक्ति विरागादि नष्ट होते हैं। जैसे कि नव मन दूध बटोर कर यदि उसमें एक टिपका (तीक्ष्ण खटाई का एक बुन्द) दिया जाय तो वह दूध फाटकर काँजी हो जाता है और घृत का भी नाश हो जाता है। तैसे निधियों को मृत्युरूप टिपका नष्ट करता है। अभिमान, काम, कुसंगादि से भक्ति नष्ट होती है। तप विरागादि में अभिमान विघ्नरूप होता है, जिससे आनन्द मोक्षादिरूप घृत का अभाव होता है। अतः निधि, सिद्धि, भक्ति आदि के अभिमान कुसंगादि को त्यागकर धूर्व पूर्व स्वरूप का विचार करना चाहिये ॥ १९४ ॥

सब ही ते लघुता भला, लघुता ते सब होय।
ज्यों द्वितिया के चन्द्रमा, शिर नावै सब कोय ॥१९५॥

अभिमानादि विघ्नों के निवारण के लिये, सुख मोक्षादि सभी श्रेयः के लिये सब साधनों से और ऋद्धि सिद्धि आदि सबसे लघुता (नम्रता निरभिमानिता) ही भला (श्रेष्ठ) साधन है। क्योंकि लघुता से सब श्रेयः प्रेयः प्राप्त होते हैं, सब पुरुषार्थ सब साधन मिलते हैं और जो प्रथम नम्र होता है, सो फिर ज्ञान गुणादि द्वारा सब से पूज्य हो जाता है। जैसे कि वृद्धि के लिये उन्मुख द्वितीया के लघु चन्द्रमा को भी सब शिर झुकाते प्रणाम करते हैं, तैसे नम्र को सब प्रणाम करते हैं।

गुरु सदुक्ति विज्ञान बिनु, ऋद्धि सिद्धिहूँ पाय।
नशत सर्व अभिमानि जन, नम्र मुक्त हो जाय ॥१०२॥१९५॥

आपा तजै हरि भजै, नख शिख तजै बिकार।
जीवन ते निर्वैरता, सन्त मता है सार ॥१९६॥

जो मनुष्य वेहदगामी साधु होना चाहे सो आपा (पक्षपात, ममता) को त्यागे और सर्वात्मा हरि को भजे (सेवे-चिन्तन विचारादि करे) और नख से शिखा तक के विकार को त्यागे। अर्थात् देह को विकाररूप मलिन जानकर इसका अभिमान नहीं करे और इस देह से होनेवाले नख से शिखापर्यन्त के बुरे कर्मों को त्यागे और सब जीवों से निर्वैरता का धारण करे, यही सन्तों का सार (सत्य मुख्य) मत (सिद्धान्त) है। इसी से वेहदगामी साधु हुआ जाता है। अतः यह कर्तव्य है ॥ १९६ ॥

पक्षा पक्षिक कारणे, जगतो जात भुलान।
निर्पक्षी ह्वै हरि भजै, सोई सन्त सुजान ॥१९७॥

पक्ष और अपक्षी (अपनी और पराई बुद्धि मत) आदि के कारण जगत् के प्राणी सब निर्वैरता आदि स्वरूप सन्त मत को भूलकर राग द्वेपादिरूप कुमार्ग में जाते हैं। इस अवस्था में भी जो कोई निष्पक्षपात होकर सर्वात्मा हरि को भजते हैं, सोई सुजन ज्ञानी सन्त होते हैं और वर्तमान हैं।

पक्षपात ममता तजै, हरि भजि तजै विकार।
जीवन ते निर्वैंरता, नम्र सन्त मत सार ॥१०३॥
पक्षपात कर भूलिया, सन्मारग को प्राणि।
पक्ष त्यागि हरि को भजै, सोइ सन्त विज्ञानि ॥१०४॥१९७॥

बूड़े बड़े बड़ापने, रोम रोम हंकार।
सतगुरु के परिचय बिना, चारो वरण चमार ॥१९८॥

उक्त नम्रता साधुता के विना रोम-रोम में अहंकार का धारण करके बड़े-बड़े लोग बड़ापनरूप संसार समुद्र में डूब गये। क्योंकि अहंकारादि के कारण सद्गुरु के परिचय के बिना चार वर्ण कहाने वाले भी चमार के काम मांसभक्षणादि करते हैं और चर्मादिमय देहमात्र में आत्मता के अभिमानी होते भी मिथ्या बड़ापन का अभिमान करते हैं। अतः नम्रता आदिपूर्वक साधुता को प्राप्त करना चाहिये ॥ १९८ ॥

माया तेजे क्या भया, मान तजा नहिं जाय।
जिहि माने मुनिवर ढहे, मान सबन को खाय ॥१९९॥

साधुता के लिये यदि गुण शरीरादि का अभिमान नहीं त्यागा जा सके, तो स्त्री पुत्र धनादिरूप बाह्य माया को त्यागने से भी क्या फल हुआ या हो सकता है। क्योंकि जिस अभिमान के मारे मुनिवर (नारद) भी ढहे निज पद से गिरे, सो मान सबको खाता है (नष्ट करता है) अतः साधुता सद्गति के लिये अभिमान को अवश्य त्यागना चाहिये।

जो बूड़े अभिमान में, सो सद्गुरु नहीं जान।
माया तेजे क्या भया, जो न तजा अभिमान ॥१०५॥१९९॥

माया के झँक जग जरै, कनक कामिनी लागि।
कहहिं कबिर कस बाँचिहो, रुइ लपेटी आगि ॥२००॥

अभिमानादि को त्यागे विना सब संसारी कनक कामिनी के लागि (लिये) उसके सम्बन्ध से माया (ममता) रूप अग्नि के झँक (वेग ज्वाला) से जरते हैं। कबीर साहब कहते हैं कि अग्नि से लपेटी (घेरी) गई रूई की तरह, माया कामादि के घेरे में तुम कैसे बच सकते हो ? यदि बचना चाहो तो अभिमान के त्याग द्वारा मन माया के घेरे से पृथक् हरि भक्त आत्मनिष्ठ होओ।

अभिमानी पुनि पड़त हैं, माया के वश माँहि।
कनक कामिनी वश पड़े, ताप सकल पुनि पाहि ॥१०६॥
माया से मन मोरिये, अहंकार दो त्याग।
सद्गुरु को पहिचानिये, मिलै अमर फल भाग ॥१०७॥२००॥

माया जग साँपिनि भई, विष लै बैठी बाटि।
सब जग फन्दे फन्दिया, चले कबीरू काटि ॥२०१॥

अभिमानी अविवेकी के लिये संसार में माया साँपिनी हुई है, सो कर्मादि सभी शुभमार्गों में काम लोभादिरूप विष लेकर बैठी है और सब कबीरू (जीवों) को संसार के मिथ्या व्यवहार कनक कामिनी मोह अभिमानादिरूप फन्दों (जालों) में फन्दिया (फँसाई) है और काटकर (मोहमत्त करके) चल देती है। तथा माया जगत् को फँसाती है, परन्तु (ज्ञानवीर विवेकी) उसके फन्दों को काटकर चलते (मुक्त होते) हैं ॥ २०१ ॥

साँप बिछी का मन्त्र है, महुरो झारा जाय।
विकट नारि पाले परे, काढ़ि कलेजा खाय ॥२०२॥

सर्प और बिछु के विष के मन्त्र हैं कि जिनसे विष निवृत्त हो जाता है और माहुर भी झारे जाते हैं। माहुर का विष भी झारने (यत्न) से निवृत्त होता है। परन्तु साक्षात् मायारूप विकट (कठिन) कपटादि स्वरूप नारी के वश में पड़ने पर उसका विष किसी प्रकार भी नहीं निवृत्त होता है। अतः वह कलेजा काढ़कर खाती है। ज्ञान, ध्यान, बल, विचार सबको नष्ट करती है। सज्जन को सदा उसके संगादि से बचना चाहिये ॥ २०२ ॥

पीपरि एक जु महा गम्हानी, ताको मर्म कोइ नहिं जानी।
डारि लभाय कोइ नहिं खाये, खसम अछत बहु पीपरि जाये॥२०३॥

संसाररूप पीपर के वृक्ष में एक (अद्वितीय) महा गम्हानी (महा गम्भीर विभु) पीपरि (पीपर का फलरूप मोक्ष) वर्तमान है, नित्यमुक्तस्वरूप आत्मा संसार में ही सर्वत्र वर्तमान है। परन्तु उक्त विकट नारी आदिरूप माया की वशवर्तिता से उस फल के मर्म को कोई नहीं जानते हैं कि कौन साधन से किस प्रकार से उस फल को प्राप्त करना चाहिये ? अतः मन इन्द्रिय संसार वृक्ष की डाली (शाखा) को नमाकर उसमें भी वर्तमान उस फल को कोई नहीं खाते हैं। मन इन्द्रियों को विषयों से रोककर उसके साक्षीस्वरूप आत्मा को नहीं समझते हैं, किन्तु सत्य सर्वात्मा सद्गुरुरूप खसम (स्वामी) के पास में रहते भी तुच्छ बहुत पीपरि (फल) के लिये माया के वश में जाते हैं। अतः एक नित्यमुक्त आत्मा को समझकर माया के प्रपञ्च से मुक्त होना चाहिये ॥ २०३ ॥

साहू से भौ चोरवा, चोरन ते भौ सूझ।
तब जानेगा जियरा, मार परैगा तूझ ॥२०४॥

हे जियरा ! (जीव !) तुम अभी तुच्छ बहुत फलों के लिये सद्गुरु आत्मस्वरूप साहु से चोरों की तरह छिपते हो, उनके सन्मुख विचार परायण नहीं होते हो और विषय, वञ्चकादि चोरों से सूझ (प्रकट) होते हो, उनके सम्मुख जाते हो, परन्तु इस कुविचार के फल को तब समझोगे कि जब तुझे मार पड़ेगी (यम यातनादि सहना पड़ेगा) अतः अभी चेतो।

सतगुरु शम सत्संग बिनु, होत चोर का संग।
ताते दण्डादिक मिलै, तृप्ति न होत अभंग ॥१०८॥२०४॥

इति संक्षिप्तसारोपदेश प्रकरण २८

अथ गुरुगम बिना अनर्थ वर्णन प्रकरण २९

ताकी पूरी क्यों परै, गुरु न लखाई बाट।
ताके बेड़ा बूड़हीं, फिरि-फिरि औघट घाट॥२०५॥

सद्गुरु सत्यात्मा से छिपे रहने के कारण जिनको सद्गुरु ने सच्ची बाट (मार्ग) नहीं लखाई (बताई) है, उनकी पूरी (पूर्णता तृप्ति) कैसे परे (प्राप्त)

हो (उनको पूर्ण पद कैसे प्राप्त हो) उनके बेड़ा (मानवतायुक्त जीवन) बार-बार औघट घाट (अज्ञान मोह कुकर्मादि) में ही बूड़ता (नष्ट होता) है। अतः ऐसे लोग संसार से पार पूर्ण पद को नहीं पाते हैं। पूर्ण पद की प्राप्ति के लिये जीवन को कुवाट से बचाना चाहिये और उसके लिये सद्गुरु से सद्मार्ग समझना चाहिये ॥ २०५ ॥

जाका गुरु है आँधरा, चेला काह कराय।
अन्धे अन्धा ठेलिया, दोनों कूप पराय ॥२०६॥

मार्ग भी विवेकपूर्वक सद्गुरु से पूछना चाहिये (विवेक वैराग्यादि को प्राप्त कर के भी ज्ञानी गुरु से आत्मश्रवणादि करना चाहिये) क्योंकि जिसका गुरु ही आँधरा (अज्ञ अविवेकी) है, तो वह गुरु चेला (शिष्य) का क्या सच्चा उपकार करेगा। तथा अन्ध गुरुवाला अन्धा चेला कौन पुरुषार्थ करेगा ? जैसे एक अन्धा दूसरे अन्धे को ठेले (आगे चलने के लिये प्रेरणा करे) और दोनों कूप में पड़ जाय, सोई दशा अज्ञ गुरु शिष्य की होती है। अतः ज्ञानी गुरु से पूछना श्रवणादि करना चाहिये, अन्य से नहीं ॥ २०६ ॥

चारि मास घन वर्षिया, अति रे परबल नीर।
पैन्हे जड़ तन बखतरी, चुभी न एको तीर ॥२०७॥

ज्ञानी गुरु से श्रवणादि भी देहाभिमान आसक्ति के त्याग तितिक्षापूर्वक करना चाहिये। क्योंकि सद्गुरु स्वरूप घन (मेघ) ने चारिमास (चारो युग) में अति प्रबल (समर्थ) भक्ति ज्ञानादि नीर की वर्षा की है कि जो नीर (उपदेश) तीर (बान) की तरह हृदय में पैठने वाला है। परन्तु रे जड़ मनुष्य ! तुमने तो तनरूप बखतर (कवच) पहिरा है (देहाभिमान किया है) मन बुद्धि आदिरूप सूक्ष्म देह में जड़ता (अविवेक) का धारण किया है, जिससे एको तीर तेरे हृदय में नहीं चुभी (एक भी उपदेश नहीं लगा) अतः जिज्ञासु को देहादि के अभिमानादि को त्याग कर ही आत्म श्रवणादि करना चाहिये ॥१०७॥

मानुष का गुण ही बड़ा, मांस न आवै काज।
हाड़ न होते आभरन, त्वचा न बाजन बाज ॥२०८॥

शरीर का अभिमान इसलिये भी नहीं करना चाहिये कि जिससे पशु शरीर से मनुष्य शरीर बड़ा (श्रेष्ठ) नहीं है, किन्तु मनुष्य के अहिंसा सत्यादि शौच

सन्तोषादि भक्ति ज्ञान ध्यानादिरूप गुण (धर्म) ही बड़े हैं, श्रेष्ठ सुखप्रद हैं, अन्य कुछ भी श्रेष्ठ नहीं है। क्योंकि इसके मांस किसी कार्य के साधक नहीं होते हैं। हाड़ के आभरण (भूषण) नहीं बनते हैं, न त्वचा (चाम) के बाजन (ढोल) बाजते हैं। अतः शमदमादि सद्गुण के बिना देह का अभिमान सर्वथा अनुचित है।

सद्गुण रहित स्वदेह का, होत व्यर्थ अभिान।
सद्गुण रहित मनुष्य तन, से पशु तनहि महान ॥१०९॥
जो मनुष्य सत सुगुण लहि, करत ज्ञान सत ध्यान।
सो पावत नित अभय पद, अन्य विकल भय मान ॥११०॥२०८॥

सबन की उतपति धरती, सब जीवन प्रतिपाल।
धरति न जानै आप गुण, ऐसा गुरू विचार ॥२०९॥

मानव देह तथा देहीरूप धरती (भूमि) कर्मादि द्वारा सब की उत्पत्ति तथा प्रतिपाल (रक्षा स्थिति) का हेतु भूमि के समान है। परन्तु यह धरती (सब का धारणकर्ता मनुष्य) अपने गुण को आप नहीं जानती है। अतः सद्गुणों का धारण नहीं करके मिथ्या देह का अभिमान करती है। ऐसा सद्गुरु का विचार (उपदेश) है। तथा सबकी उत्पत्ति आदि करनेवाली धरती (मानव देह) को भी आप गुण (आत्म गुण) न जानै (नहीं समझो) किन्तु आत्मा को असंग निर्गुण समझो, ऐसा सद्गुरु का विचार (उपदेश) है। तथा पृथ्वी की तरह क्षमाशील सद्गुरु को विचार से समझो प्राप्त करो, स्वयं गुणाभिमान को त्यागो, यह उपदेश है॥ २०९॥

धरति जो जानति आप गुण, कबहिं न होती डोल।
तीले तील गरु ई होती, होति ठिकों की मोल ॥२१०॥

भूमि यदि अपने गुण सर्वाधारता आदि को जानती तो डोल (भूकम्प) युक्त कभी न होती और तिले तिल में सर्वत्र ई (यह) गरु (गुरुता युक्त) होती। फिर इसकी ठीक (सत्य सर्वाधार) आत्मा की मोल (ईज्जत=प्रतिष्ठा) होती। अर्थात् मनुष्य अपने गुणों को समझने पर क्षोभ चञ्चलता भयादि से रहित होकर मुक्त हो गया होता। गुणों को जाने बिना ही संसारी भयभीत गमनागमनादि युक्त तुच्छ बना रहता है ॥२१०॥

इति गुरुगम बिना अनर्थ वर्णन प्रकरण २९

अथ ज्ञानाज्ञान दशा प्रकरण ३०

तहिया किरतम न होता, धरति न होते नीर।
उत्पति परलय न होते, तबकी कहैं कबीर ॥२११॥

तहिया (अपने गुरु स्वरूप के ज्ञान प्राप्ति होने पर) किरतम (कार्य) शरीरादि फिर नहीं होते हैं, न उस मुक्त के भोगादि के लिये भूमि जलादि समर्थ होते हैं। अतः उस जीव के उत्पत्ति प्रलय (जन्म-मरण) नहीं होते हैं। कबीर साहब कहते हैं कि मैंने प्रायः उसी दशा की बात इस ग्रन्थ में कही है और कहते हैं। उस मोक्ष के ही लिये विचारादि का कथन किया गया है। तथा जिस प्रलयकाल में कुछ नहीं था न कोई व्यवहार था उस समय में वर्तमान सत्यात्मा का उपदेश दिया गया है और जिस अवस्था में जन्मादि कुछ नहीं होते हैं, उस अवस्था वालों के प्रति कबीर (गुरु आचार्य) भी क्या कहैं, फिर उपदेश गुरु आदि की जरूरत नहीं रहती है।

सुगुण सत्य विज्ञान ह्वे, जन्म मरण ह्वे नाँहि।
भूतन का सम्बन्ध नाँहि, कहन सुनन मिटि जाँहि ॥१११॥
कहन सुनन के विषय हैं, सदा जीव जग जाल।
क्षेत्रज्ञहि माया सहित, अक्षर जाहि न काल ॥११२॥
निर अक्षर निज आत्मा, ज्ञानी ह्वे तद्रूप।
मनहूँ का सो विषय नाँहि, स्वयं प्रकाश स्वरूप ॥११३॥२११॥

जहाँ बोल तहँ अक्षर आया, जहँ अक्षर तहँ मनहिं दिढ़ाया।
बोल अबोल एक है सोई, जिन यह लखा सो बिरला होई ॥२१२॥

मुक्त के विषय में कुछ कथन के अभाव में कारण का कथन करते हैं कि जहाँ (व्यवहार में) बोल (बोली शब्द) होता है, तहाँ अक्षर (वर्ण-विकार-नाममात्र-जीव) समझ में आया और आता है और जहाँ (जिसका वाचक) अक्षर (वर्णात्मक शब्द) होता है। तहाँ लोगों ने मन को दृढ़ (स्थिर) किया है और करते हैं। मन से लोग उस नाम वाले का निश्चय करते हैं और सोई (वह ज्ञानी सत्यात्मा) बोल अबोल सब दशा में चर अचर जीव ईश्वर सब स्वरूप में एक है। मन वचन का अविषय है। जिन्होंने इस स्वयं प्रकाश को लखा (निजात्मा समझा) सो समझने वाले बिरले होते हैं। भाव है कि जहाँ बोल है, तहाँ अक्षर (अविनाशी) जीव की सत्ता है और क्षर (विनश्वर) स्वकार्य

के साथ अभेद दृष्टि से प्रकृति (माया) भी क्षर (विनश्वर) स्वरूप है और निरक्षर (अवाच्य) आत्मा ही माया शक्ति से ईश्वर कहा जाता है। माया के विना वही भूमा सच्चिदानन्द अनन्त ब्रह्म कहा जाता है। अज्ञान काल में परोक्ष रूप से समझने पर जीव अपने को ईश्वर और ब्रह्म से भिन्न सत्य समझता है। ज्ञानकाल में बोल अक्षर (जीव) और अबोल (निरक्षर ईश्वर) इन दोनों में सब संसार में वह सच्चिदानन्द ब्रह्मात्मा एक ही भासता है, जीवता आदि बाधित हो जाते हैं "जानत तुमहि तुमहि होइ जाई" "जिहि जाने जग जाय हिराई" "राम कबीरा एक है, कहन सुनन को दोय" "क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः।" "क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते" इत्यादि श्रुति स्मृति में यह अर्थ द्रष्टव्य है ॥२११॥

तौं लगि तारा जग मगे, जौं लगि उगै न सूर।
तौं लगि जीव कर्म वशी, जौं लगि ज्ञान न पूर ॥२१३॥

सूर्योदय जब तक नहीं होता है, तभी तक जैसे तारे जगमगाते (प्रकाशते दीखते) हैं। वैसे ही तभी तक जीव कर्म के वश में संसारी रहते हैं कि जब तक पूर्णात्मा का पूर्ण अपरोक्ष अनुभवरूप ज्ञान नहीं होता है, ज्ञान से कर्मों को दग्ध करके जीव मुक्त होते हैं ॥२१३॥

नाम न जानै ग्राम का, भूला मारग जाय।
काल्ह गड़ेहिंगा काँटा, अगमन कस न खराय ॥२१४॥

जो मनुष्य गन्तव्य ग्राम तुल्य ज्ञातव्य वस्तु के नाम भी नहीं जानता है विवेकादि साधनों को नहीं समझता है) और समझे विना दिग्भ्रम के समान भूला हुआ असत मार्ग में जाता है, अकर्तव्य कर्मादि करता है, तो आज किसी प्रारब्धवश कष्ट नहीं होने पर भी काल्ह (जन्मान्तर लोकान्तर में) अवश्य काँटे गड़ेंगे ही (कष्ट होगा ही) अतः (हेयं दुःखमनागतम्) इत्यादि उपदेशों के अनुसार अगमन (प्रथम) से ही खरा (सत्य विचारादि) करके भावी दुःख क्यों नहीं निवृत्त करता है, यह कर्तव्य है।

स्वयं प्रकाश निज आतम को, समुझत बिरला कोय।
कर्म विवश सो होत नहि, मुक्त ब्रह्म सत होय ॥२१४॥
तब लगि जीव स्वकर्म वश, भटकत हैं भव माहि।
जब लगि पूरण ज्ञान नहि, नहि विराग शम आहि ॥११५॥२१४॥

इति ज्ञानाज्ञान दशा प्रकरण २०

अथ सत्सङ्गकुसङ्गहिंसाफल प्रकरण. ३१

संगति करिये साधु की, हरै और की व्याधि।
ओछी सङ्गति क्रूर की, आठो पहर उपाधि ॥२१५॥

उक्त समात्मा और नामादि साधनों को जानने के लिये ज्ञानी साधु की सङ्गति करना चाहिये। क्योंकि वह सङ्गति और की (अनादि) अविद्या कामादि व्याधि (रोग) को हरती है और कुसङ्ग को त्यागना चाहिये। क्योंकि क्रूर (क्रूर शठ) की ओछी (थोरी) संगति से भी आठो पहर उपाधि होती है, सदा मन में राग, द्वेषादि उत्पन्न होते हैं। क्रूरों के पूर्ण संगत होने पर तो कहना ही क्या है॥२१५॥

संगति ते सुख ऊपजै, कुसङ्गति ते दुःख होय।
कहहिं कबिर तहँ जाइये, अपनी संगति होय ॥२१६॥

सत्संग से अनादि रोग की निवृत्ति द्वारा भावी दुःख की निवृत्ति तो होती ही है, वर्तमान काल में भी सुख जीवन्मुक्ति का आनन्द ही होता है और इसी प्रकार कुसंग से वर्तमान काल में भी दुःख होता है। अतः कबीर साहब कहते हैं कि तहाँ जाना चाहिये कि जहाँ अपनी संगति (सद्गति आत्मप्राप्ति) हो। यह सबसे पहला खरा (सत्य) कर्तव्य कार्य है। सत्संग से सब शुभ की प्राप्ति होती है।

संगति करिय साधु की, चलिये नित्य सँभार।
ज्ञान सुदीपक बारि के, करिये तम संहार ॥११६॥
सहजहि मिटै अनादि भव, रोग शोक मिटि जाय।
भूलहुँ करिय कुसंग नहि, तो दुख निरय न पाय ॥११७॥
कुसंग त्यागि सत्संग करि, बेगि करिय सो योग।
जाते मिटै अनादि तम, बन्धन मिटै कुभोग ॥११८॥
सकल योग का मूल है, सत्य अहिसा शौच।
तीर्थ गये सो होत नहि, त्यागिय विषय अशौच ॥११ ॥२१२॥

आजु काल्हु दिन कैक में, अस्थिर नाहिं शरीर।
कहहिं कबिर कस राखिहो, काँचे बासन नीर ॥२१७॥

आत्म प्राप्ति के लिये कुसंग का त्याग और सत्संगादि अति शीघ्र करना चाहिये। क्योंकि आज या काल्ह वा कैक दिनों में यह शरीर स्थिर रहने वाला

नहीं है, भला काँचे बासन में (देह में) नीर (प्राण) को कब तक कैसे रखोगे, यह तो स्वयं अस्थिर (क्षणभंगुर) है। यह कबीर गुरु का उपदेश है ॥२१७॥

बहु बन्धन ते बाँधिया, एक बिचारा जीव ।
की बल छूटै आपनों, कीं छोड़ावै पीव ॥२१८॥

ऐसे देह प्राणादिकों की रक्षा के लिये मोह काम कर्म भ्रमादि बहुत बन्धनों से एक (निःसहाय) बेचारा (असमर्थ) जीव बँधा है, कर्मादि द्वारा ईश्वर से बाँधा गया है। तहाँ सत्संगादि द्वारा कुछ बल को प्राप्त करने पर क्या तो अपने विवेक विरागादि बल से छूट सकता है, अथवा भजन सेवा सत्कर्मादि से प्रसन्न अनुकूल सद्गुरु सन्त ईश्वररूप पीव (प्रिय स्वामी) सब बन्धनों से उपदेशादि द्वारा छोड़ा सकते हैं, अन्य उपाय नहीं है।

"यतः कुतश्चिदन्विष्य सविरागममत्सरम् ।
जनं सज्जनमात्मज्ञं यत्नेनाराधयेद् बुधः ॥१॥
अर्द्धं सज्जनसम्पर्कादविद्याया विनश्यति ।
चतुर्भागस्तु शास्त्रार्थैश्चतुर्भागः स्वयत्नतः ॥२॥" (योगवासिष्ठ)

विरागी विमत्सर आत्मज्ञ सज्जन को जिस किसी उपाय से खोजकर विवेकी उनकी सेवा करे ॥१॥ क्योंकि ऐसे ज्ञानी सज्जन के सम्बन्ध से अविद्या का अर्द्धांश निवृत्त होता है। चतुर्थांश भाग शास्त्रार्थों के द्वारा और शेष चतुर्थांश स्वयत्न से निवृत्त होता है "आत्मबुद्धिः सुखायैव गुरुबुद्धिर्विशिष्यते" इत्यादि ॥ २१८ ॥

जिव जनि मारहु बापुरा, सब का एकै प्राण ।
तीरथ गये न बाँचिहौ, कोटि हिरा दे दान ॥२१९॥
जिव जनि मारहु बापुरा, बहुरि लेत वै कान ।
हत्या कबहुँ न छूटिहैं, कोटिन सुनहु पुरान ॥२२०॥

अहिंसारूप स्वबल के लिये उपदेश है कि हे बापुरे! (बावरे!) जीवों को जनि (नहीं) मारो, सबका प्राण एक सा प्यारा है। अतः हिंसा को अब भी त्यागो, नहीं तो तीर्थों में जाकर करोड़ों हीरों का दान करके भी भोगे के बिना हिंसा जन्य पापों से मुक्त नहीं होगे ॥२१९॥

हे बावरे! जीवों को नहीं मारो, नहीं तो वे प्राणी बहुरि (फिर) जन्मान्तर में कान (बदला, इज्जत, मर्यादा) लेते हैं। चाहे करोड़ो पुराण सुनोगे तो भी

हत्या जन्य पाप नहीं छूटेगा। क्योंकि अज्ञानादि मूलक पाप ही प्रायश्चित्तादि से निवृत्त होता है, अन्य नहीं।

क्षणभंगुर निज देह हित, करिये नहिं जिव घात।
इमि गुरुबल निजबल लही, बन्धन काटिय तात ॥१२०॥
माया बन्धन के कटे, मिलता परमानन्द।
माया के वश में पड़ा, सुख चाहत मति मन्द ॥१२१॥
माया विवश कुबुद्धि जन, सत्य न मानत बात।
करत झूठ में प्रीति सो, सत मग नहिं ठहरात ॥१२२॥२२०॥

इति सत्सङ्गकुसङ्गहिंसाफल प्रकरण ३१

अथ दुष्ट की तीर्थयात्रा प्रकरण ३२

तीर्थ गये ते बहि मुये, जूड़े पानि नहाय।
कहहिं कबीर पुकारि के, राक्षस ह्वै पछताय ॥२२१॥

हिंसा आदि दुष्कर्मों को त्यागे विना तीर्थों के भरोसे पाप आत्मघात करने कराने वाले यदि तीर्थ गये, तो वे लोग जूड़े (ठंढे) पानी में नहाय कर भी वह मरे (पाप नदी में दह गये) और पापों की निवृत्ति नहीं होने से राक्षस होकर पश्चात्ताप किये और करते हैं ॥२३१॥

तीर्थ भई विष बेलरी, रही युगहुँ युग छाय।
कबिरन मूल निकन्दिया, क्यों न हलाहल खाय ॥२२२॥

तीर्थ में आत्मघातादि करनेवालों के लिये तीर्थ भी विष बेलरी (विषलता) हुई, सो युग-युग में छा रही है और तीर्थ में जाने मरनेमात्र से सब पापों की निवृत्ति मुक्ति को वर्णन करने वाले कवियों ने अहिंसादिरूप धर्म योग ज्ञान के मूल को निकन्दन (मूल सहित नष्ट) कर दिया, तो अज्ञ प्राणी तीर्थ में हलाहल विष क्यों न खायँ, आत्मघातादि क्यों न करें। वे लोग तो कवियों के वचन से व्यर्थ आत्मघात करके मुक्ति समझते हैं। परन्तु आत्मज्ञानादि के विना मुक्ति नहीं होती है ॥२२२॥

तीरथ गये तीन जना, चित्त खोटा मन चोर ।
एको पाप न काटिया, लादिन मन दश और ॥२२३॥

जिनका स्मरण ध्यानरूप चित्त और संकल्प विकल्प (संशय) रूप मन ये दोनों खोटे (अशुभ चञ्चल) हैं और जो स्वयं चोर है, ऐसे तीन जना यदि तीर्थ में गये तो पूर्व के एक पाप को भी नहीं काट सके और नवीन दश मन पाप और मन पर लाद लाये (दश इन्द्रियजन्य हिंसादिरूप दश प्रकार के पाप कर आये) तीन प्रकार के हिंसा चोरी व्यभिचाररूप शरीर जन्य पाप होते हैं। असत्य, परुष, निन्दा, चुगली, असङ्गतप्रलाप वचन से होते हैं, पर के अनिष्ट चिन्तनादि तीन मन से होते हैं । सो चञ्चल अशुद्ध चित्त वाले प्रायः तीर्थ में भी करते हैं, कि जिससे तीर्थ की महिमा नष्ट हो जाती है । तीर्थ मनुष्य के उत्तमाङ्ग तुल्य विराट के उत्तमाङ्गों को ऋषि मुनि आदि सत्पुरुषों से सेवित स्थानों को कहते हैं । तहाँ श्रद्धा सदाचारादि वाला ही तीर्थ फल का भागी होता है, पुण्य के श्रद्धा आदि भी हेतु होते हैं, पाप के नहीं । दुराचारी को उल्टा फल मिलता है। वस्तुतः "तीर्थं परं किं स्वमनो विशुद्धम्" इत्यादि ॥२२३॥

इति दुष्ट की तीर्थयात्रा प्रकरण ३२

अथ मायाबेलि आदि में अनासक्त सन्त प्रकरण ३३

ये गुणवन्ती बेलरी, तव गुण वरणि न जाय ।
जहँ काटे तहँ हरियरी, सींचे ते कुम्हिलाय ॥२२४॥

हे गुणवती माया बेलरी ! तेरा गुण स्वभाव कुछ कहा नहीं जा सकता। गुण सहित तूँ अद्भुत स्वरूप अनिर्वचनीय है । अतः ज्ञानी जहाँ तुझे काटते (मिथ्या समझते) हैं, तहाँ उनके हृदय में हरियरी (आनन्द की अभिव्यक्ति) होती है और जो कोई तुझे सींचते (सत्य समझते) हैं, सो तुझे सींचने से कुम्हिलाते (दुःखी होते) हैं । अर्थात् चञ्चल चोरादि मायिक प्रपञ्च को सत्य समझकर तीर्थों में जाकर भी अपने तन मन आदिजन्य दुष्कर्मों से कपटादि स्वरूप बन्धप्रद माया को ही सींचते हैं, अतः अन्त में दुःखी होते हैं । सुखेच्छु को ऐसा कभी नहीं करना चाहिये, किन्तु माया बेलि को काटकर सुखी होना चाहिये ॥२२४॥

वेलि कुढङ्गी फल बुरा, फुलवा कुवुधि गँधाय।
ओर विनष्टी तूमरी, सरो पात करुआय ॥२२५॥

यह माया अविद्यारूप कटु बेली कुढङ्गी (कुत्सिताकार वाली) है। इसके भ्रम काम राग द्वेष जन्म-मरणादि बुरे फल होते हैं और इसके कुवुद्धिरूप फूल अत्यन्त दुर्गन्ध होने से गँधाते (अपयश दुःखादि को उत्पन्न करते हैं) और यह तुमरी ओर (अनादि) से ही विनष्टि (विनश्वर) है और इसके सरो (सब) पात (पत्ते) कार्य करुआ (कटु दुःखप्रद) ही होते हैं। या इसके सरे गले पत्ते करुआ हो जाते हैं, नवीन कुछ मधुर प्रतीत होते हैं। अतः वैराग्यादि अस्त्र से कपट अविद्यादिरूप माया छेतव्य है ॥२२५॥

परदे पानी डाढिया, सन्तो करहु विचार।
शरमा शरमी पचि मुआ, काल घसीटनिहार ॥२२६॥

हे सन्तो ! अग्नि का नाशक भी पानी परदे में अग्नि से जलाया जाता है। इसी प्रकार अविद्या मोह ममता आदि के परदे में जीवात्मा काम विरहादि अग्नि से जलता है। अतः परदा आदि को दूर नष्ट करने के लिये विचारादि करो और ज्ञान से आवरण को नष्ट करो। क्योंकि जो लोग विचारादि नहीं करके लोक लाज दुविधा आदिरूप शरमा शरमी में पचकर मुये, उन्हें नरक योनि आदिरूप भवकानन में काल घसीटने वाला है। अतः विचारादि करके काल से बचो ॥२२६॥

आस्ति कहौं तो कोइ न पतिजै, बिना आस्ति का सिद्धा।
कहहिं कबीर सुनहु हो सन्तो !, हीरी हीरहि विद्धा ॥२२७॥

विचारादि रहित कोई मनुष्य आस्ति (सत्यात्मा) की बात कहने पर पतिजै (प्रतीति=विश्वास) नहीं करता है और विना आस्ति का (सत्ता रहित असत्य) वस्तु बात ही लोगों को सिद्धा (सिद्धिप्रद सत्य) प्रतीत होती है। अतः कबीर साहब कहते हैं कि हे सन्तो ! सत्यात्मा के श्रवणादि करो, इसके बिना तो मानो हीरी (काँच) ही हीरा को बेधन किया (काटा) है। मिथ्या माया अविद्या सच्चिदानन्द स्वरूप को जीव की दृष्टि से आवृत्त किया है, यह अविचार आदि का प्रभाव है। अतः श्रवण विचारादि से अविद्यादि को नष्ट करो ॥२२७॥

सोना सज्जन साधु जन, टूटि जुटहिं सौ बार।
दुर्जन भाँड़ कुम्हार का, एकहि चोट दरार ॥२२८॥

सज्जन साधुजन (सत्य के प्रेमी चतुर लोग) सोना के समान दुर्भेद्य आशु संधेय होते हैं। अतः श्रवण विचारादि से सैकड़ों बार छूटने टूटने पर भी (विचारादि में विघ्न होने पर भी) फिर उसी में जुट जाते हैं, कुमार्ग में नहीं जाते हैं और दुर्जन कुम्हार (कुम्भकार) के पका भाँड़ा (घट) तुल्य होता है। अतः दैव योग से कभी सुमार्ग में लगने पर भी एक ही विघ्नरूप चोट से दरार (छिन्न भिन्न) हो जाता है। यही दशा सज्जन दुर्जन की भक्ति प्रीति मित्रता आदि की भी होती है।

ठहरत सन्त सुमार्ग में, दुर्जन दूर परात।
सज्जन रहत असंग नित, दुर्जन तम में जात ॥१२३॥
कोटि विघ्न जो आवई, सन्त न त्यागै साँच।
सुवरण त्यागै रूप नहिं, तेज बढ़ै लहि आँच ॥१२४॥२१८॥

काजर की है कोठरी, बुड़ता ई संसार।
बलिहारी तिहि सन्त की, पैठि जु निकलनिहार ॥२२९॥

मनो माया अविद्यामय यह संसार शरीर गृहादि काजर से रचित कोठरी तुल्य है। राग द्वेष मोहादिरूप कालिमा से व्याप्त है और अपार समुद्र तुल्य है, इसमें विचारादि रहित सब संसारी डूब रहे हैं। उस विचारवान् सन्त की बलिहारी है जो इस संसार के व्यवहार में पैठकर भी राग द्वेष पापादि कालिमा से रहित होते ज्ञानादि रत्न को लेकर इस संसार से निकलने वाले मुक्त स्वरूप हैं ॥२२९॥

काजर की है कोठरी, काजरहि का कोट।
तोंदी कारी ना भई, रहा सु ओटहि ओट ॥२३०॥

शरीर लोकादि काजर की कोठरी हैं। ब्रह्माण्डादि काजर के कोट हैं। अविवेकी इनकी कामना वासना आदि से रंग जाते हैं परन्तु जो सन्त विवेकादि युक्त होकर सद्गुरु सद्विचारादि के सुन्दर ओट (छाया शरण) में ही रहे, वे लोग असङ्ग रहे। उनको तोंदी मात्र (तर्जनी के अग्रमात्र) भी कारी (कालिमा युक्त) नहीं हुई (किसी पापादि का कुछ भी सम्बन्ध नहीं हुआ) सर्वथा मुक्त हो गये। अतः विचारादि द्वारा ज्ञान की प्राप्तिपूर्वक असङ्गता को प्राप्त करना चाहिये ॥२३०॥

इति माया बेली आदि में अनासक्त सन्त प्रकरण ३३

——❀——

अथ भक्ति महात्म्यादि प्रकरण ३४

अर्व खर्व ले द्रव्य है, उदय अस्त ले राज।
भक्ति महातम ना तुले, ई सब कौने काज ॥२३१॥

सद्गुरु सत्यात्मा की भक्ति से ज्ञानादि द्वारा मुक्ति होती है, द्रव्य राज्यादि में आसक्ति मोह से पापादि द्वारा जन्मादिरूप संसार बन्धन होता है। अतः अर्व खर्व संख्या पर्यन्त द्रव्य हो और उदयाचल से अस्ताचल पर्यन्त राज्य हो तो भी द्रव्य और राज्य की महिमा भक्ति की महिमा के तुल्य नहीं हो सकती है, तो तुच्छ द्रव्य और राज्य कौन सत्कार्य के साधक हो सकते हैं ? विवेकी सन्त भक्त की दृष्टि में भक्ति के आगे ये द्रव्यादि किसी काम के नहीं हैं। अतः इनके कामादिरूप कालिमा से लिप्त नहीं होते हैं।

भक्ति महातम अमल लखि, भक्ति करत सब सन्त।
कुजन भक्ति विज्ञान बिनु, यमवश पावत अन्त ॥१२५॥
लिपत न सन्त अकाश सम, रहतहुँ सबके संग।
मन बुधि इन्द्रिय से परे, में थिति करत अभंग ॥१२६॥२३१॥

मच्छ बिकाने सब गये, धीमर के दरबार।
अँखिया तेरि रतनारी, क्योंकर पेन्ही जाल ॥२३२॥

द्रव्यादि जल से पूर्ण संसार सागर के मीन तुल्य भक्ति विचारादि रहित मनुष्य कर्मजाल माया फाँस में फँसकर, लोभ वासना आदि के वश में होकर, ब्रह्म स्वरूप महासमुद्र को स्वयं त्यागकर यमादिरूप धीमर (निषाद) के दरबार (सभा) में स्वयं मानो बिकाने गया है, जो कि विषयों में आसक्त है और सद्विचारादि नहीं करता है। तहाँ दयालु सद्गुरु कहते हैं कि तेरी आँख तो रत्नारी (रत्न तुल्य चमकदार) है (बुद्धि व्यवहार मनुष्य तुल्य है) फिर भी तुम माया मोहादिमय जाल क्यों पहिर लिये हो, विषयादि में क्यों फँसे हो ? इसे त्यागना ही विवेकी मनुष्य के लिये उचित है, तथा ब्रह्मात्मा के चिन्तनादि उचित हैं ॥ १३२ ॥

पानी भीतर घर किया, शय्या किया पताल।
पासा परा करीम का, मैं ते पेन्ही जाल ॥२३३॥

मछली तुल्य मनुष्य समझते और कहते हैं कि हमने सुखद विषयरूप पानी के भीतर घर किया (सुखद विषयादि का संग्रहादि किया) और अमर लोक स्वर्गादि को शय्या (सुख शयन का स्थान) पाताल तुल्य किया (समझा) स्वर्गादि के लिये कर्मादि किया । तो भी प्रारब्ध दैवरूप करीमा (ईश्वर) के हाथ में मेरे कर्म का ही पासा (जाल) पड़ा (प्राप्त हुआ) तब मैंने ब्रह्म समुद्र को त्यागकर सृष्टि के आदिकाल में ही देह में आकर तैं मैं (राग-द्वेष) तेरा मेरा आदि स्वरूप जाल पहिर लिया हूँ । अतः मैं ईश्वराधीन हूँ । मैं न कुछ कर सकता हूँ न किया हूँ इत्यादि ॥ २३३ ॥

मच्छा भये न बाँचिहो, धीमर तेरो काल ।
जिहि जिहि डावर तूँ फिरो, तहँ तहँ मेलिहिं जाल ॥२३४॥

गुरु कहते हैं कि मछली तुल्य विषय पानी को घर बनाने तथा स्वर्ग पाताल को शय्या बनाने से अविवेकी रहते काल धीमर से कभी नहीं बचोगे, मत्स्य तुल्य होकर जिस-जिस लोकादि डावर (तुच्छ जलाशय तुल्य तुच्छ विषय सुखाश्रय) में तुम फिरोगे, तहाँ-तहाँ वह कालरूप धीमर कर्मजाल मेलेगा । क्योंकि विषय पानी को सेवने वाले तेरे लिये काल धीमर है, सो सर्वत्र वर्तमान रहता है । केवल ज्ञानाग्नि से कर्मजाल को जलाने पर वह कुछ नहीं कर सकता है । अतः मत्स्यरूपता को त्यागकर भक्ति ज्ञान के लिये यत्न करो ॥ २३४ ॥

बिनु रसरी खलको बँधा, तासो बँधा अलेख ।
दीन्हा दर्पण हस्त मधे, चसम बिना क्यों देख ॥२३५॥

वस्तुतः इस खलक (संसारी) को यम कर्मरस्सी से नहीं बाँधा है । किन्तु यह संसारी रस्सी के बिना ही अज्ञान जन्य भ्रम मोह कामादि से बन्दरादि के समान बँधा है । कर्म भी अज्ञानादि मूलक होकर के बन्धन के हेतु होते हैं, अज्ञानादि के बिना नहीं और इस संसारी प्रमातारूप व्यावहारिक जीव के भ्रमादि से देह गेहादि में बँधने पर उसमें स्थिर अलेख (अदृश्य) साक्षीस्वरूप भी इसको भ्रम से बँधा प्रतीत होता है । उस भ्रम की निवृत्ति के लिये उपदेशादिरूप दर्पण इसको हाथ में देने पर भी विवेकादि नेत्र के बिना कोई कैसे देखेगा ? अतः विवेकादि कर्तव्य हैं ॥ २३५ ॥

समुझाये समुझे नहीं, परहथ हाथ विकाय।
मैं खैंचत हौं आपको, वह चल यमपुर जाय ॥२३६॥

विवेकादि के सर्वथा अभाव से जो समझाने से भी निज स्वरूप धर्मादि को नहीं समझते हैं सो परहथ (परवश) काम कर्मादि के अधीन होकर यमादि के हाथ विकते हैं। अतः मैं जिसको अपने मोक्ष मार्ग की तरफ खींचता हूँ, सो स्वयं कामादिवश होकर यमपुर में जाता है, देह गेहादि में आसक्त प्रवृत्त होता है, भक्ति ज्ञान की कथा भी नहीं सुनना चाहता है ॥ २३६ ॥

नित खरसान लोह घुन छूटै।
नित कि गुष्टि माया मोह टूटै ॥२३७॥

जैसे नित (सदा) खरसान करने (माँजने) से लोहे का घुन (जंग काई) छूटा हुआ रहता है। वैसे सदा ही गुष्टि (सत्सङ्ग विचारादि) से माया (ममता) मोहादिरूप वन्धन टूटते (नष्ट होते) हैं। अतः सत्सङ्गादिरूप गुष्टि सदा कर्तव्य है ॥ २२७ ॥

लोहा केरी नावरी, पाहन गरुआ भार।
शिर पर विष की मोटरी, उतरन चाहै पार ॥२३८॥

सत्सङ्ग, भक्ति, विषयत्यागादि के बिना मोक्षादि को चाहने वाले मानो सकाम निन्दित कर्मादिरूप अनगढ़ लोहे की नौका बनाये हैं। उसपर मनोरथादि रूप पत्थर का गरुआ (गरु) भार लादे हैं और मनरूप शिर पर वर्तमान विषयरूप विष की चिन्तारूप मोटरी (गठरी) लादे हुए हैं, तो भी संसार सागर दुःख महोदधि से पार होना चाहते हैं, सो आश्चर्य और असम्भव है। अतः संसार से पार होने के लिये सत्सङ्गादि अवश्य कर्तव्य है ॥ २३८ ॥

कृष्ण समीपी पाण्डवा, गले हिमालय जाय।
लोहा को पारस मिले, काहे काई खाय ॥२३९॥

समझाने पर भी नहीं समझने से तथा शिर पर विष की मोटरी आदि से ही श्रीकृष्णजी के समीपी भी पाण्डव (युधिष्ठिरादि) श्रीकृष्णजी के वियोग से शोकातुर हुए और महाप्रस्थान (यात्रा) करके हिमालय में जाकर गल गये। यदि लोहा को पारस मिल जाय, तो उसको काई कैसे खा सकती है ? अर्थात्

आत्मानुभव होने पर शोकादि नहीं हो सकते हैं। "तरति शोकमात्मवित्।" (छा० ७।१।३) आत्मज्ञानी शोकादि को तर जाता है और पाण्डवों को शोकादि हुआ, इससे सिद्ध होता है कि विषय सङ्गादि से उन्हें श्रीकृष्णजी के समीपी आदि होते भी दृढ़ ज्ञान नहीं हो सका। अतः मुमुक्षु के लिये विषय सङ्गादि त्याज्य हैं।

समुझाये समुझे नहीं, बिनु विवेक दुर्बुद्धि।
होत विषयवश कामवश, लहत न धर्म विशुद्धि ॥१२७॥
नशत मोह सत्सङ्ग से, सुजन करत नित सोय।
कुजन विषय विष भार गहि, कुकरम में तन खोय ॥१२८॥
कृष्ण समीपी पाण्डवन, विषय सङ्ग परभाव।
शोक विवश दुख बहु सहे, मन नहि तजा स्वभाव ॥१२९॥
विषय संग तजि तन गहै, मन का तजै कुभाव।
दोष निरखि मन थिर करै, तबै अमर पद पाव ॥१३०॥२३९॥

इति भक्तिमहात्म्यादि प्रकरण ३४



अथ गर्वप्रमादादि निषेध प्रकरण ३५

पूर्व उगै पश्चिम विशवै, भखे पवन का फूल।
ताहु को राहु गरसिया, मानुष काहे भूल ॥२४०॥

जो सूर्य पूर्व दिशा में उगते (प्रगट होते) हैं और सब संसार को प्रकाश देकर पश्चिम दिशा में प्रवेश करते (अस्त होते) हैं और वायु के फूल (सार) को खाते हैं, शुद्ध वायु से जो स्वरूप को धारण करते हैं, उनको भी राहु ग्रसता है, तो तुच्छ बल प्रताप विषयादि में मनुष्य क्यों भूलता है कि जिससे दृढ़ सच्चा अनुभव नहीं होने पाता है और शोकादि के वश में होना पड़ता है, इस भूल को त्यागना चाहिये ॥२४०॥

नयनक आगे मन बसे, पलक पलक कर दौर।
तीन लोक मन भूप है, मन पूजा सब ठौर ॥२४१॥

भूले हुए मनुष्यों का मन जाग्रत काल में सदा नेत्र के आगे बसता है और पल-पल में बाहर की वस्तुओं की तरफ स्वतन्त्र दौड़ (धावा) करता है।

क्षण-क्षण में विकल्प जाल का विस्तार करता है और आत्माराम सद्गुरु से मेलादि के बिना तीनों लोक में मन ही राजा बना है और उसी की पूजा सब स्थान में होती है। प्रायः कहीं भी विवेकवती बुद्धि से काम नहीं किया जाता है, न मन को अन्तर्मुख किया जाता है, किन्तु बहिर्मुख मन की पूजा की जाती है। उचित है कि—

"गुरु की पूजा कीजिये, सब पूजा जिहि माहिं।
ज्यों जल सींचे मूल तरु, शाखा पत्र अघाहिं ॥१॥२४१॥"

मन स्वारथी आप रस, विषय लहर फहराय।
मनक चलाये तन चले, ताते सर्वस जाय ॥२४२॥

भूल युक्त कुसंगी अज्ञ का मन स्वार्थी होकर अपने रस (आनन्द विषय) में लगा रहता और विषय विष की लहर (तरंग ज्वाला) से वायु प्रेरित पताका की तरह फहराया (चला) करता है और उस विषय परायण अविवेकी मन के चलाने से तन चलता है, इससे मनुष्य का सर्वस्व जाता है। क्योंकि स्वार्थी मन अपने रस के लिये तन को चलाता है, मनुष्य के सर्वस्व ज्ञान भक्ति मुक्ति की रक्षा के लिये नहीं। अतः ऐसेध्मन से सावधान रहना चाहिये ॥२४२॥

मन गया तो जाने दे, गहिके राखु शरीर।
उतरा रोद कमान का, क्यों कर लागै तीर ॥२४३॥

यदि सर्वस्व की रक्षा चाहो तो मन कहीं वासनादि वश कुमार्ग कुवस्तु में चला गया रुक नहीं सका, तो उस मन को जाने दो, परन्तु विवेकवती बुद्धि से शरीर को गहि (रोक) रखो। मन के साथ नहीं जाने दो, तो यदि कमान (धनुष) से रोदा उतर गया तो तीर कैसे लगेगा ? अर्थात् शरीर के रुकने पर सर्वस्व नहीं नष्ट होगा, पापादि अनर्थ नहीं होंगे। इस अभ्यास से मन भी स्वतंत्र दौड़ना छोड़ देगा। अतः यह अभ्यास कर्तव्य है ॥२४३॥

काशी गति संसार की, ज्यों गाडर की गाड़।
एक परा जिहि गाड़ में, सबे परे वहि गाड़ ॥२४४॥

तन मन के निरोधादि के बिना काशी करवटादि में सांसारियों की इस प्रकार की गति (प्राप्ति मुक्ति) होती है, कि जैसे गाडरों (भेड़ियों) की गाड़ (गड़हे) में गति होती है। क्योंकि आगे की एक गाडर जिस गाड़ में पड़ती

है पीछे वाली सब उसी में पड़ जाती है। तैसे काशी आदि तीर्थों में देखा देखी आत्मघातादि करके मनुष्य मोक्षादि चाहते है, विचारादि नहीं करते हैं ॥२४४॥

मारग तो अति कठिन है, तहाँ कोइ मति जाय।
गया सोइ बहुरा नहीं, कुशल कहै को आय ॥२४५॥

सद्गुरु का उपदेश है कि यह भेड़ीधसानमार्ग (मरण से मोक्ष मार्ग) तो अति कठिन है, कि जहाँ मोक्ष के लिये तीर्थादि में आत्मघात परघात किया जाता है। बलिपशु की सद्गति मानी जाती है। अतः तहाँ (उस) आत्महिंसा परहिंसामय कठिन मार्ग में कोई सच्चा मुमुक्षु नहीं जावो, मरण से मुक्ति की इच्छा नहीं करो, किन्तु जीवन्मुक्ति के लिये यत्न करो। क्योंकि जीवन्मुक्ति के बिना जो मोक्ष के लिये मरकर गया सोइ तो कोई बहुरा (लौटकर आया) नहीं, तो फिर उसके कुशल की बात को दूसरा कौन आकर कह सकता है और जीवन्मुक्त तो अपने मोक्ष की बात को आप कह सकता है। अतः मरण की मुक्ति कल्पनामात्र है। जीवन्मुक्ति के लिये यत्न कर्तव्य है। "जियत न तरहु मुये का तरिहो।"

मन कुभाव के त्याग बिनु, काशि मरै जो जाय।
सो नर मोक्ष न पावई, मन वश फिरत भुलाय ॥१३०॥२४५॥

मारे मरै कुसंग के, ज्यों केला संग बेर।
ये हालै वे चीरवै, विधिना संग निबेर ॥२४६॥

जैसे केला बेर से संग होने पर कुसंग के मारे (कुसंग से) मरता (कष्ट सहता) है। क्योंकि यह केला वायु से हाले (हिलता) है और वह बेर इसको काँटों से चीरता है। तैसे ही विवेकादि रहित मोक्षेच्छुक मनुष्य कुसङ्ग के मारे मरते हैं। उनकी कोमल बुद्धि कुसङ्ग से नष्ट हो जाती है, बुद्धि में क्रूरता आ जाती है। अतः कुपुरुष के साथ बात व्यवहार करते कराते में आत्मघात परघात कर बैठते हैं। इस अनर्थ से बचने के लिये विधिना (उपाय युक्ति से) कुसंग का शीघ्र निबेरा (निवृत्ति=त्याग) करना चाहिये ॥२४६॥

केला तबहि न चेतिया, जब ढिग लागा बेर।
अब के चेते क्या भया, काँटन लीन्हों घेर ॥२४७॥

केला तुल्य कोमल चित्त वाला सज्जन यदि उस समय नहीं चेता कि जब उसके साथ में बैर तुल्य कुपुरुष लगे, तो अब वृद्धावस्था मरणादिकाल में चेतने (समझने शोचने) से क्या हुआ या होगा कि जब कुवासना मोह कामादि काँटे घेर लिये हों। अब तो भोगे बिना छुटकारा नहीं हो सकता है "संगात्संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते। क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात् स्मृतिविभ्रमः। स्मृति भ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।" (भ० गी० २।६३) ॥२४७॥

जीव मरण जानै नहीं, अन्ध भया सब जाय।
बादी द्वारे दाद नहिं, जन्म जन्म पछताय ॥२४८॥

कुसंगी जीव मरण को नहीं जानते हैं। मरण को भूले रहते हैं। अतः "हेयं दुःखमनागतम्" इत्यादि शास्त्र बोधित अनागत (भावी) दुःखों की निवृत्ति के लिये कुसंगादि को नहीं त्यागते हैं और सब अविवेकान्ध होकर जाते हैं और कुसंग से परोक्ष मरण मोक्षवादियों के द्वारा दाद (सत्य न्याय पथ) को नहीं पाते हैं। अतः बार-बार जन्मते मरते हैं और सब जन्मों में पश्चात्ताप शोक आदि को प्राप्त होते हैं। अतः कुसंग को त्यागकर, मतवादादि में नहीं पड़कर भावी दुःख की निवृत्ति के लिये शीघ्र यत्न करना चाहिये, पुनर्मरण रहित मरणमार्ग को समझना चाहिये। क्योंकि मरण भी जीव को नहीं जानता है (इसके कर्तव्यों की प्रतीक्षा नहीं करता है) अचानक में आ पहुँचता है ॥२४८॥

इति गर्व प्रमादादि निषेध प्रकरण ३५



अथ सद्गुरु के बिना भ्रम संशयादि प्रकरण ३६

जाको सद्गुरु नहिं मिला, व्याकुल दहुँ दिशि धाव।
आँखि न सूझै बावरा, घर जरु घूर बुताव ॥२४९॥

कुसंगादिवश जिनको सन्मार्ग प्रदर्शक सद्गुरु नहीं मिले हैं, वे लोग दुःख से व्याकुल होकर दशो दिशाओं में (तीर्थादि में) दौड़ते हैं और विवेकादिरूप प्रकाश के बिना उन बावरे को आँख से कुछ कर्तव्य सद्वस्तु सूझता नहीं है। अतः काम शोकादि से जलते हुए घर (हृदय) को छोड़कर घूर (तापने की अग्नि स्थान तुल्य) शरीरादि को बुताते (शान्त सुखी करना चाहते) हैं। शरीर की

पुत्रादि को पोषते हैं। हृदयादि को ज्ञान ध्यान से शान्त नहीं करते हैं। अतः व्याकुल दुःखी होते हैं। सो हृदय शान्त कर्तव्य है ॥२४९॥

वस्तु अनत खोजै अनत, कैसे आवै हाथ।
ज्ञानी सोइ सराहिये, पारख राखै साथ ॥२५०॥

क्योंकि हृदय की शान्ति शुद्धि के विना सत्य वस्तु सत्य सुख तो कहीं अन्यत्र (हृदय में) प्रकट है, परन्तु मनुष्य उसको अन्यत्र तीर्थ लोक विषयादि में खोजते हैं (प्राप्त करना चाहते हैं) तो वस्तु वह कैसे हाथ में आवै (कैसे प्राप्त होवै) वही ज्ञानी सराहने योग्य है (प्रशंसनीय) है कि जो निज परमानन्द स्वरूप के पारख (शरीरादि से विवेक युक्त अनुभव) को सदा साथ (मन) में रखता है कि जिससे सुखादि के खोज में कहीं भटकता नहीं है ॥२५०॥

सुनिये सबकी बारता, निबेरिये अपना।
सिन्धोरे का सिन्धोरा, झपने का झपना ॥२५१॥

उपदेश है कि सब वादियों के बातों को सुन लो, परन्तु बाह्य अनेक अनात्म वस्तु के खोज में नहीं लगो, किन्तु अपनी आत्मा का अपनी बुद्धि से निबेरा (विवेक) करो, अपने भावी दुःखों का निवारण करो। यही विवेक ज्ञान विद्या भक्ति महारानी पूज्यपरमदेवी के सौभाग्य का सूचक (सर्व रंगाधार सेन्दुर का सिन्धोरा) वस्तु है और अविद्यादिरूप सब झपनाओं का भी झपना है और जैसे कोई दर्पण का झपना सिन्धोरा और झपना दोनों स्वरूप रहता है, वैसा ही मतवाद रहित विवेक ज्ञान दुःखादि का निवारक और परमानन्द का व्यञ्जक होता है। अतः विवेक कर्तव्य है ॥२५१॥

बाजन दे बाजन्तरी, कलि कुकुरी मत छेर।
तुझे बिरानी क्या परी, तुँ अपनि आप निबेर ॥२५२॥

बाजन्तरी (बाजा वाले देहयन्त्राभिमानी व्यर्थ वक्ता) को बाजने (बोलने) दो कलि के कुकुरी (बकवादी) को मत छेड़ो (विवाद में नहीं पड़ो) क्योंकि बिरानी (अनात्म सम्बन्धी अन्य की) बातों से तुझे क्या पड़ी है (कौन मतलब है) तुम अपनी आत्मा की निबेरा (मुक्ति) आप करो ॥ २५२ ॥

गावै पढ़ै विचारै नाहीं, अनजाने का दोहा।
कहहिं कबिर पारस परसे बिनु, पाहन भीतर लोहा ॥२५३॥

अपनी निवृत्ति के बिना जो कोई शास्त्रों को गाते पढ़ते हैं, परन्तु विवेकपूर्वक अपने स्वरूप हो विचारते नहीं हैं, उन अनजाने (अज्ञों) का दोहा=दोहरा (स्थूल सूक्ष्म का संघात) होता रहता है। तथा विचारे विना गाना, पढ़ना दोनों हा (हत, नष्ट, व्यर्थ) होते हैं। अतः कबीर साहब कहते हैं कि जैसे पत्थर के भीतर के लोहा पत्थर के साथ बाहर पारस के सम्बन्ध होने पर भी भीतर वह लोहा ही रह जाता है, सुवर्ण नहीं होता है। तैसे विचारने के बिना भीतर अनुभव नहीं होने से मनुष्य अज्ञ और बद्ध ही रहता है। अतः गाने पढ़ने पर भी एकान्त सुभूमि में विचार ध्यान स्मरणादि अवश्य कर्तव्य हैं ॥२५३॥

मरने मरने सब कहै, मरन न जानै कोय।
ऐसा होय के न मुआ, बहुरि न मरना होय ॥२५४॥

मरणे मरणे सब कहते हैं, कठिन दुःख के आने पर मरण चाहते हैं। परन्तु विचारादि से होने वाला पुनर्मरण रहित मरण के भेद को कोई विचारादि रहित मनुष्य नहीं जानते हैं। अतः कोई अविचारी अविवेकी ऐसा निर्मोह अज्ञानादि रहित जीवन्मुक्त निष्काम होकर नहीं मुआ न मरता है कि जिससे फिर बार-बार मरण नहीं हो। कोई विचारवान् ही ऐसा होकर मुआ और मरता है। अतः विचारादि अवश्य कर्तव्य हैं ॥२५४॥

मरते मरते जग मुआ, बहुरि न किया विचार।
एक सयानप आपनी, परवश मुआ संसार ॥२५५॥

मरते-मरते सब सासंरी विचारादि के बिना ही मुआ और मरता है। परन्तु पुनः मरण के मार्गरूप काम क्रोध लोभादिमय कुमार्गों से बहुरि (लौट) कर सत्य धर्म निज स्वरूप का विचार नहीं किया और कुमार्ग से संसार के विषयादि से बहुर कर विचारादि करना ही अपुनरावृत्ति के हेतुरूप आपनी एक (अद्वितीय) सयानी विद्वत्ता है, विमुक्ति स्वतन्त्रता का साधन है। इसके बिना संसारी कामादि देवादि पराये (शत्रु अनात्मा) के वश विषयाधीन होकर मुआ और मरता है। अतः पुनरावृत्ति रहित नहीं होता है ॥२५५॥

कबिरन भक्ति बिगारिया, कंकर पत्थर धोय।
अन्दर में विष डारिके, अमरित डारिन खोय ॥२५६॥

केवल गाने पढ़ने वाले कबिरन (कवियों और जीवों) ने विचार स्मरण ध्यानादिरूप भक्ति को कंकर पत्थर को धोय (नहवाय) कर विगाड़ दिया है। मूर्तियों के स्नानादि कराने मात्र में लगकर लोग आत्मविचार स्मरणादि को भूल गये हैं। अतः अपने अन्दर (अन्तःकरण) में विषय विष को डारकर विषयादिक वस्तु के चिन्तनादि करके निर्विषय स्वरूप अमृत मोक्ष को लोगों ने खोय डारा (भुला दिया) है, नष्ट किया है। अतः मोक्षार्थी को सद्गुरु से लाई हुई ज्ञान विराग का हेतुरूप सच्ची भक्ति विचारादि स्वरूप कर्तव्य हैं ॥२५६॥

रही एक की भई अनेक की, वेश्या बहुत भतारी।
कहहिं कबिर काके संग जरिहैं, बहुत पुरुष की नारी ॥२५७॥

जो जीवात्मा की बुद्धि एक सर्वात्मदेव की स्त्री (भक्ति योग्य) रही थी, सो भक्ति के बिगड़ने से अनेक की हो गई। अनेक विषय देवादि में लग गई। अतः मानो प्रथम एक की स्त्री होकर अनेक की स्त्री वेश्या के तुल्य बहुत भर्ता वाली हो गई तहाँ कबीर साहब कहते हैं कि बहुत पुरुष की नारी वेश्या तुल्य वह बुद्धि अन्त में किसके साथ जलेगी ? अर्थात् उस बुद्धिवाला जीव कहाँ लीन होगा ? किससे कहाँ परमानन्द पायगा और कैसे मुक्त होगा ? अनेक के भक्त अनेक में भटकेहीगें।

मन कुभाव के त्याग बिनु, करि कुसंग ह्वै नीच।
परवश ह्वै पछतावई, पड़ै नरक के बीच ॥१३१॥
नीचन सद्गुरु मिलत नहिं, आँखिन सूझत नाहिं।
पुत्रादिक सुख शान्ति चह, सुख न लखै हिय माहिं ॥१३२॥
सुख स्वरूप का ज्ञान इक, सकल शान्ति सुख हेतु।
करि विचार तिहि जानिये, नाशिय मोह सहेतु ॥१३३॥
मोह मृत्यु द्वौ एक है, मोह मिटै मिटि जाय।
जन्म मरण संसार दुख, परवश मरण न पाय ॥१३४॥
सत्य भक्ति गई मोह से, परवश मरण सदाय।
एक सत्य हरि छाड़ि के, रहत बहुत मन लाय ॥१३५॥

बहुत वस्तु के विवश मन, भरमत सब संसार।
सद्गुरु भी यह चरित लखि, मौनहि गहत अपार ॥१३६॥
सद्गुरु गहि जहँ मौन तहँ, माया परम विशाल।
व्यापि रही कटु तूमरी, फल नहिं फरत रसाल ॥१३७॥२५७॥

तन बोहित मन काग है, लख योजन उड़ि जाय।
कबहुँ अगम दरिया भ्रमे, कबहुँक गगन समाय ॥२५८॥

अनेक में चित्त लगाने से विभ्रान्त चञ्चल जीवों की तन संसार समुद्र की नौका है। अभिमानी मन उस पर काग है, सो कभी काम बासनादि के वश लाखों योजन उड़ जाता है और अगम संसार में कामादि वश भ्रमता है। कभी सुषुप्ति आदि काल में देह नौका पर बैठकर हृदयादिरूप गगन में समाता है। परन्तु विचार ज्ञानादि के विना स्थिर शान्त सुखी नहीं होता है ॥ २५८ ॥

ज्ञान रतन की कोठरी, चुपक दियो है ताल।
पारखि आगे खोलिये, कुञ्जी बचन रसाल ॥२५९॥

उक्त स्वभाव वाला मन वाले लोगों को देखकर सद्गुरु ने ज्ञान रतन की कोठरीरूप अपने तन में चुपक (मौन) रूप ताला दिया (लगाया) है और प्रतीक्षा कर रहे हैं कि पारखी (विवेकी) के आगे, उसके प्रश्नादिरूप जो रसाल (प्रेम भक्ति विश्वासादि युक्त) वचनरूप कुञ्जी उसे पाकर इस कोठरी को खोलें। ये चञ्चल तन मन वाले इस रत्न का दुरुपयोग करेंगे ॥२५९॥

स्वर्ग पताल के बीच में, दुई तुमरिया बिद्ध।
षट दर्शन संशय परी, लख चौरासी सिद्ध ॥२६०॥

उक्त ज्ञान रत्न की प्राप्ति के विना स्वर्ग और पाताल के बीच में सर्वत्र तन मनरूप माया अविद्यारूप दो तुमरी (तुम्बी) विद्ध (व्याप्त) है। सो तुमरी षट् दर्शन में भी संशयादिरूप से परी (प्राप्त) हुई है। जिससे चोरासी लाख योनियों में भ्रमना सिद्ध होता है। तिक्त तुमरी के सम्बन्ध से कोई स्थिर होकर मधुर आत्मानन्द को नहीं पाते हैं। विवेकादि से मन को स्थिर करके देहाभिमान की निवृत्तिपूर्वक ममतारूप माया और अविद्या को निवृत्त करके ही मधुरानन्द का अनुभव किया जा सकता है ॥ २६० ॥

कबीर दुर्मति दूरि करु, अच्छा जन्म बनाव।
काग गमन बुधि छोड़ि दे, हंस गमन चलि आव ॥२६१॥

कबीर गुरु कहते हैं कि यदि अविद्यादि से रहित ज्ञानरत्न की प्राप्ति चाहो तो तनुपोषणपरायणता क्रूरता हिंसा आदि के हेतुरूप दुर्मति को दूर करो और अहिंसा दान· दयालुता आदि से इस जन्म देह मन आदि को अच्छा स्वच्छ पवित्र बनाओ और मन की काक तुल्य विना विवेक के संसार में गति के हेतुरूप बुद्धि (संसार में सत्यता आदि के ज्ञान) को छोड़ दो और हंस गमन (विवेकमय शुभ मार्ग) में चले आओ ॥ २६१ ॥

इति सद्गुरु के बिना भ्रमसंशयादि प्रकरण ३६

अथ मनोवैभव सन्त महत्त्वादि प्रकरण ३७

मन का दौर अनेक है, तीन लोक पगु एक।
बलिहारी तिहि सन्त के, मन को राखै टेक ॥२६२॥

दुर्मति को त्यागे बिना मन का दौर (विस्तार=दौड़ान, निमित्त विषयादि) अनेक हैं और होते हैं। अतः यह मन तीनों लोकों को एक पग (एक धाप) करता है। हंस गतिवाले उन सन्तों की बलिहारी है कि जो ऐसे मन को भी टेक (पकड़) रखते हैं।

संशय गरसित जीव जग, ज्ञान रतन नहि पाय।
दुर्मति के वश काग सम, होत न हंस कहाय ॥१३८॥
ताते सद्गुरु कहत हैं, अबहि कुमति करु दूर।
काग गमन गति छोड़ि के, हंस गमन गहु पूर ॥१३९॥
तीन लोक पगु एक जो, करत ताहि गहु वीर।
राग द्वेष कपटादि तजि, आपु सम्भारिय धीर ॥१४०॥
निज सँभार गुरु ज्ञान बिनु, भरम भरा सब ठाम।
आत्म रत्न तजि देह में, बसत विषय के गाम ॥१४१॥२६२॥

जैसी कहैं करै जो तैसी, राग द्वेष निरुआरै।
ता महँ घटै बढ़ै रतियो नहिं, या विधि आपु समारै ॥२६३॥

जो मन को टेकना चाहे, जन्म को अच्छा बनाना चाहे, सो सत्य प्रतिज्ञा वाला होकर मुख से जैसी बात कहै, शरीर से क्रिया (आचरण) भी वैसी करे और राग द्वेष को निरुवारै (त्यागे निवृत्त करे) और तामँह (उस कथन और क्रिया में) रत्तिमात्र भी घटे बढ़े नहीं, न्यूनाधिक नहीं करे। सर्वथा कथनानुसार राग द्वेष के बिना स्वकर्तव्य कर्म लौकिक, पारलौकिक व्यवहार करे। इसी प्रकार अपने को आप सँभारे सुधारे, तो मन को पकड़ता है और पवित्र हो जाता है। अतः सुधार कर्तव्य है ॥ २६३ ॥

भरम भरा तिहुँ लोक में, भरम भरा सब ठाम।
कहहिं कबीर पुकारि के, बसहु भरम के गाम ॥२६४॥

क्योंकि अपने सुधार पवित्रता के बिना तीनों लोक में और सब ठाम (स्थान) में भ्रम (देहादि अनात्म अनित्य अशुचि दुःखद वस्तु में, आत्म नित्य शुचि सुख बुद्धि) भरा (व्याप्त) है। अतः तुम भ्रम के ही ग्राम (समूह) में बसते हो। शरीर संसार में आत्मता ममता आदि से आसक्त हो, इसकी निवृत्ति के लिये सुधारपूर्वक आत्मनिष्ठ होओ, यह उपदेश है ॥२६४॥

रतन लड़ाइन रेत में, कंकड़ चुनि चुनि खाय।
कहहिं कबीर पुकारि के, बहुरि चले पछताय ॥२६५॥

क्योंकि भ्रम में बसने से जिन अज्ञों ने ज्ञानरत्न को कुसंग कुकर्मादि रेत (धूल) में लड़ाया (गिराया) कुकर्मादि से ज्ञान, विवेक शक्ति को नष्ट किया और विषयादि कंकड़ों को काम्यकर्मादि द्वारा चुन-चुनकर (प्राप्त करके) खाते हैं। कबीर साहब पुकार कर कहते हैं कि ऐसे लोग अन्त में बार-बार पश्चात्ताप करके चले और चलते हैं, अवसर बीतने पर पछताते हैं। अतः प्रथम ही ज्ञानरत्न के लिये सम्भाल कर्तव्य है ॥ २६५ ॥

जेते पत्र वनासपति, औ गंगा के रैनु।
पण्डित विचारा क्या करै, कबिर कहे मुख बैनु ॥२६६॥

वनस्पतियों में जितने पत्र होते हैं, गंगा की जितनी रेनु (बालू) हैं, उतनी (अनन्त) वाणी प्रथम से रचित हैं। तहाँ पण्डित भी क्या विचार करेंगे ? अनन्त का विचार करना असम्भव है या प्रथम से अनन्त शब्द जाल पण्डितों से

रचित हैं, तहाँ पण्डित भी क्या विचार करेगें ? अनन्त का विचार करना असम्भव है या प्रथम से अनन्त शब्दजाल पण्डितों से रचित हैं, बेचारे पण्डित अब क्या करेंगे ? कबीर साहब कहते हैं कि मैंने शब्दजाल नहीं रचा है। किन्तु मुख (मुख्य) वाणी कही है कि जिससे भ्रम अविद्यादि की निवृत्ति हो सके ॥ २६६ ॥

सद्गुरु वचन सुनहु हो संतो, मति लेहु शिर भार ।
हौं हजूर ठाढ़ कहते हौं, तैं सम्भार सँभार ॥२६७॥

उपदेश है कि हे सन्तों ! सद्गुरुओं के मुख्य (सार) वचनों को सुनो और अन्य शब्द भार को शिर पर नहीं लो। हौं (मैं) सद्गुरु सन्तरूप से हजूर (प्रत्यक्ष) खड़े होकर कहता हूँ कि तुम अपने को सँभारो सँभारो, शब्दजालादि से बचकर भ्रम को निवृत्त करो निजात्मनिष्ठ होवो।

विषय वानि बन अगम है, तहाँ न लाइय चित्त।
सुनि सद्गुरु के शब्द शुभ, करिय सँभार सुहित्त ॥१४२॥२६७॥

इति मनोवैभव सन्त महत्त्वादि प्रकरण ३७

अथ ज्ञानाज्ञान की परिपाकावस्था प्रकरण ३८

आगे आगे दौ बरै, पीछे हरियर होय।
बलिहारी वहि वृक्ष की, जर काटे फल होय ॥२६८॥

सद्गुरु के वचनों के श्रवणादि से संसार बन में आगे-आगे ज्ञानाग्निरूप दौ (दावाग्नि) बरती (प्रज्वलित होती) है कि जिससे काम, अज्ञानादिरूप कुवृक्ष जल जाते हैं। संसार की सत्ता नष्ट हो जाती है, फिर उसके पीछे (बाद) यह संसार बन हरियर होता है। इसमें सर्वत्र आनन्दस्वरूप सत्यात्मा की प्रतीति होती है। अतः उस संसार शरीर वृक्ष की बलिहारी है कि जिसके अविद्या कामादिरूप जर के काटने ही पर आनन्दरूपता की प्रतीति मुक्तिरूप फल की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार प्रथम गुरु शास्त्रादि के अनुसार ज्ञानादि के लिये साधनकाल में कष्टरूप दावानल की प्रतीति होती है, पीछे आनन्द होता है। क्योंकि सात्त्विक ज्ञान प्रथम विष तुल्य और पीछे अमृत तुल्य होता है और उस ज्ञान विरागरूप तीक्ष्ण शस्त्र से संसार वृक्ष के काटने ही पर पुनरावृत्ति रहित पद की प्राप्ति होती है।

सार शब्द के श्रवण से, ज्ञान अग्नि ह्वै दीप्त।
नाशत बन्ध विवेकि के, करि सुखसिन्धु सुदीप्त ॥१४३॥२६८॥

गुनिया तो गुणहीं कहै, निर्गुण गुणहिं घिनाय ।
जायफर दीजै बैल ही, क्या बूझै क्या खाय ॥२६९॥

उक्त कुवृत्त को काटने के लिये शमादि ज्ञानानन्दादि गुण वाले (गुनिया) सद्गुरु सन्त भक्त तो गुण की ही कथा कहते हैं। परन्तु निर्गुण (अविवेकी) सद्गुण ज्ञानादि से घृणा करते हैं। क्योंकि बैल को जायफल दिया जाय तो वह क्या उसके गुण को समझेगा और क्या खायगा। वैसे ही अविवेकी सदुपदेश को न सुनेगा न आदर करेगा ॥२६९॥

मुख की मीठी जो कहै, हृदया है मति आन ।
कहहिं कबिर ता लोक से, तैसे राम सयान ॥२७०॥

सद्गुण की प्राप्ति के बिना जो वञ्चक लोग मुख की मीठी (मधुर) बात कहते हैं और हृदय में जिनकी और (अन्य) क्रूर मति (बुद्धि) है, कबीर साहब कहते है कि उन लोगों से राम (ईश्वर) भी वैसे ही सयान है (कुशल चतुर सावधान है) वे लोग क्रूरता से अन्य को ठगते हैं, परन्तु कर्म साक्षी को नहीं ठग सकते हैं। तथा जैसे वे लोग बाहर भीतर भिन्न भाव रखते हैं, तैसे उनको ईश्वर भी बाहर भीतर भिन्न भासता है, सर्वत्र एक रस नहीं प्रतीत होता है। अतः उसके ज्ञान के लिये कपटादि त्याज्य हैं ॥२७०॥

इतते तो सबही गये, भार लदाय लदाय ।
उतते कोइ न आइया, जासों पूछौं धाय ॥२७१॥

उक्त गुण ज्ञानादि के बिना स्वर्गादि की कामना पूर्वक कर्मादि के भार लाद लदाय कर सब गये और जाते हैं, परन्तु वहाँ से खबर देने न कोई आया न आता है कि जिससे दौड़कर पूछा जाय और निश्चय किया जाय। अतः यहाँ प्रत्यक्ष नि[illegible]न जीव[illegible]क्ति के लिये यत्न कर्तव्य है और सब साधन के धाम मानव तनादि के हा[illegible]ने से यहाँ के कर्मादि से देवादि होते हैं। अतः यहाँ से कमाकर तो सब गये, परन्तु वहाँ के कर्मादि से देवादि बनकर कोई नहीं आया कि जिससे पूछा जाय, यहाँ के देवों के देव सद्गुरु से ही पूछना चाहिये और ज्ञान गुण का धारण करना चाहिये।

सतगुरु सत्य बतावहीं, बञ्चक समझत नाँहि ।
मिथ्या प्रिय सुनि वचन अति, तुष्ट होत मन माँहि ॥१४४॥
असत भाषि सतज्ञान विनु, कर्म वासना भार ।
लादि जात परलोक में, गहत वस्तु नहि सार ॥१४५॥१७१॥

भक्ति पियारी राम की, जैसी प्यारी आगि ।
सारा पट्टन जरि गया, फिरि फिरि लावै माँगि ॥२७२॥

कष्ट साध्य होती हुई भी सर्वात्मा राम की सद्गुरु की भक्ति ही मुमुक्षु जिज्ञासु के लिये इस प्रकार प्रिय इष्ट साधक है कि जैसे अग्नि प्यारी होती है। अतएव जिस अग्नि से सारा पट्टन (पत्तन=नगर) जर गया हो, तो भी बुत जाने पर रसोई बनाने आदि के लिये मनुष्य फिर बार-बार माँग लाता है। क्योंकि अग्नि के विना कार्य नहीं सिद्ध होता है तैसे ही भक्ति के विना कोई कार्य नहीं सिद्ध होता है।

"भक्तिर्जनित्री ज्ञानस्य भक्तिर्मोक्षप्रदायिनी ।
भक्तिहीनेन यत् किञ्चित् कृतं सर्वमसत्फलम् ॥"
(अध्यात्म रा० युद्ध का० ७।६७)

भक्ति ज्ञानमाता और मोक्ष देने वाली है। भक्ति (प्रेम श्रद्धा) रहित से जो कुछ किया जाता है सो सब असत् फलवाला (निष्फल) होता है। और–

"अप्रियाण्यपि कुर्वाणो यः प्रियः प्रिय एव सः ।
दग्धमन्दिरसारेऽपि कस्य वह्नावनादरः" ॥२७२॥

प्रथम एक जो हौं किया, भै सो बारह बान ।
कसत कसौटी ना टिका, पीतर भया निदान ॥२७३॥

(सन्तो भक्ति सतगुरु आनी) इस शब्द के अनुसार, प्रथम जो एक भक्तिमार्ग हौं (सद्गुरु) ने किया, सो अनधिकारियों द्वारा काल पाकर बारह बान (आस्तिक नास्तिक छह-छह दर्शनादि के अनुसार से बारह स्वभाव वाला हो गया) अनन्त भेद युक्त हो गया और वह बीच के कल्पित अनन्त मार्ग कल्पित सुवर्ण की तरह विचारादि कसौटी से कसने (परखने) पर नहीं टिका (नहीं ठहरा) किन्तु निदान (निपट केवल) पीतल की तरह तुच्छ हो गया। यह पूर्व प्रसंग के अनुसार अर्थ है और प्रथम सृष्टि के आदि में एक सर्वात्मपुरुष ने हौं किया

"एकोऽहं बहुस्याम् ।" एक मैं बहुत हो जाऊँ ऐसा संकल्प किया, उससे चार खानि और बारह बान (बाट) मोह, दैन्य, भय, हास, हानि, ग्लानि, क्षुधा, तृषा, मृत्यु, क्षोभ, अपयश और व्यर्थ व्यवहार ये सब हो गये, परन्तु ये सब अज्ञान माया से मिथ्या ही हुए, विचारने पर सत्य नहीं ठहरे। अतः ज्ञान, भक्ति वैराग्य द्वारा ये निवारणीय हैं ॥२७३॥

सज्जन हता दुर्जन भया, सुनि काहू की बोल।
ताँमा काँसा ह्वे रहा, हता हिरण्य का मोल ॥२७४॥

बारह बान होने से जो प्रथम सज्जन अहिंसक राग द्वेष रहित भक्त था, सो भी किसी दुर्जन नास्तिक के संग से उसकी बोली को सुनकर दुर्जन नास्तिकादि हो गया, अतः जिसका प्रथम हिरण्य (सुवर्ण) भक्तादि का मोल (आदर यश) रहा, सो भी कुसङ्गादि से क्रूर तामाँ काँसा तुल्य तुच्छ संसारी होकर संसार में रहा और रहता है, अतः कुसङ्ग त्याज्य है।

असत वचन सुनि सज्जनहुं, होत असज्जन प्राणि।
ताते तजिय कुसंग नित, गहिये सद्गुरु वानि ॥१४६॥
सद्गुरु वचन विचार बिनु, भक्ति न अति प्रियकारि।
मिलति सदा ताते सुजन, बनिये नित्य विचारि ॥१४७॥२७४॥

अपनी कहै मेरी सुनै, सुनि मिलि एके होय।
हमरहिं देखत जग गया, ऐसा मिला न कोय ॥२७५॥

दुर्जनता आदि के फैलने से ऐसा कोई नहीं मिला कि जो अपनी बात कहै और मेरी बात सु ने और सुनकर अनन्य भक्ति प्रेम द्वारा मिलकर एक भेदभाव रहित हो जाय, किन्तु ज्ञानिता आदि के अभिमानादि से सब अपनी-अपनी बात सुनाने वाले अन्य की बात को नहीं सुनने वाले भेदभाव वाले ही मिले। अतः हमरे देखते में जग गया और जा रहा है। परन्तु ऐसा कोई नहीं मिला कि जो अपनी कहे और मेरी सुने। अर्थात् ऐसा बहुत कम मिला और मिलता है॥२७५॥

बैठा रहै सो बाणियाँ, खड़ा रहै सो ग्वाल।
जागत रहै सो पाहरु, तिहि धरि खायो काल ॥२७६॥

एकता की भावना सत्यात्मा में निष्ठा के बिना तुच्छ लाभ के लिये जप ध्यानादि में बैठे रहने वाले वाणियाँ के समान व्यापारी हैं। सकाम तप में खड़े

रहने वाले इन्द्रियादि गो के पालक ग्वाल (गोप) हैं। सिद्धि आदि की इच्छा से जागने वाले विषय रक्षक पाहरू (कोतवाल) हैं। आत्मनिष्ठा रहित इन सबको काल धरकर खाया और खाता है। अतः निष्काम जप ध्यानादि से आत्मनिष्ठा अभेद भावना ही कर्तव्य है।

काल विवश सो होत है, असत भेदरत प्राप्ति।
याते असत निवारि नित, सत्य गहिय हित जानि ॥१४८॥
सत्य एक सबमें बसै, सकल सत्य के माँहि।
रज्जु सर्प सम ब्रह्म में, मिथ्या सब जग आँहि ॥१४९॥
एक सत्य के ज्ञान से, द्वन्द्व सकल मिटि जाय।
ताते करि सत्सङ्ग नित, साधिय ज्ञान सुहाय ॥१५०॥२७६॥

बिरहिनि साजी आरती, दरशन दीजै राम।
मूये दरशन देहुगे, आवत कौने काम ॥२७७॥

सद्गुरु आदि से मिलने आदि के बिना आत्मपरिचय रहित विरहिनी (वियोगिनी) जीव नायिका ने तटस्थ राम से अपनी उत्पत्ति आदि को समझती हुई उस राम से मिलने आदि के लिये आरती साजी और साजती है और विनय करती है कि हे राम! अभी दर्शन दो मरने पर यदि दर्शन दोगे, तो अभी कौन काम आता है? तथा कालादिरूप से आपका दर्शन कभी किसी काम का नहीं होता है "कालः कलयतामहम्" कलन करने वालों में काल आपही हो। अतः अभी दर्शन दो, नहीं तो—

"बिरहिनि उठि उठि भुइ परे, दरशन कारन राम।
मूये पीछे देहुगे, सो दर्शन किहि काम ॥१॥
मूये पीछे मति मिलो, कहै कबीरा राम।
लोहा माँटी मिलि गया, तब पारस किहि काम ॥२॥
(अंग की साखी) ॥२७७॥

पल मँह परलय बीतिया, लोगन लागु दवारि।
आगिल शोच निवारिके, पीछे करहु गुहारि ॥२७८॥

निजस्वरूप के ज्ञान के बिना विनयादि करने पर भी पलमात्र में प्रलय (मरण) से मनुष्यता होशादि बीत गये (नष्ट हो गये) जिससे लोगों में संसार वन के

कामादि अरि (शत्रु) रूप दव (अग्नि) लगते ही हैं। शरीर के नाश से कामादि का नाश नहीं होता है। कामादिक सूक्ष्म शरीरान्तर्गत मन के धर्म हैं। अतः कबीर साहब कहते हैं कि आगिल (भूत वर्तमान आगे उपस्थित सुख दुःखादि) के शोच-विचार चिन्तादि को निवार (त्याग) कर पाछे के (भावी के) दुःख काम भोगादि को निवृत्ति के लिये किसी सत्गुरु का गोहार (पुकार) करो और काम वासनादि को निवृत्त करो।

"जरत जरत ते बाँचेहुँ, काहु करहु गोहार।
विषय विषया कहँ खायहु, रात दिवस मिलि झार॥" (रमैनी सा० १३)

क्योंकि भूत तो गया ही, वर्तमान प्रारब्धाधीन है "हेयं दुःखमनागतम्" भावी दुःख ही हेय है॥ २७८॥

एक समाना सकल में, सकल समाना ताहि।
कबिर समाना बूझ में, तहाँ दूसरो नाहिं॥२७९॥

एक ही सच्चिदानन्द ब्रह्मात्मा सब संसार शरीर में सम रस अधिष्ठान आधारादिरूप से समाया हुआ है और सब संसार उस एक आत्मा में समाया है, माया से सिद्ध है। कबीर साहब कहते हैं कि जो उस ब्रह्म के बूझ में (अनुभव में) समाये हैं, अनुभव को प्राप्त किये हैं, उनमें कोई दूसरा भाव द्वन्द्व नहीं रहता है। अतः भावी दुःखादि की निवृत्ति के लिये आत्मानुभव ही कर्तव्य है॥२७९॥

इक साधे सब साधिया, एक बिना सब जाय।
उलटि जु सींचै मूल को, फूलै फलै अघाय॥२८०॥

एक वृक्ष (ब्रह्मात्मज्ञान) के साधने (साधनों द्वारा प्राप्त करने) से सब पुरुषार्थ देवादि साधे जाते हैं (प्राप्त प्रसन्न सिद्ध किये जाते हैं) एक के साधे बिना जो अनेक अर्थ कामादि साधे जाते हैं, सो सब जाय (नष्ट होते हैं) उनसे तृप्ति नहीं होती है। अतः उनसे निवृत्त होकर यदि एक अनुभव को सिद्ध कर लिया जाय, तो अर्थादि स्वयं इस प्रकार से सिद्ध होते हैं कि जैसे शाखा-पत्रादि के सेचन से उलट कर (निवृत्त होकर) वृक्ष के मूल को ही सींचा जाय तो फूल फल भी लगते हैं और शाखापत्र फूल फलादि सब अघाते (पुष्ट होते) हैं—

"सर्वं कर्माखिलं पार्थ! ज्ञाने परिसमाप्यते।" (भ० गी० ४।३३)

हे अर्जुन! निरवशेष सब कर्म ज्ञान में अन्तर्गत हो जाते हैं॥ २८०॥

जेहि बन सिंह न संचरै, पक्षी नहिं उड़ि जाय।
सो बन कबिरन हींड़िया, शून्य समाधि लगाय ॥२८१॥

उक्त एक बूझ (ज्ञान) को साधे बिना जिस भयानक बन में सिंह भी संचार (गमन) नहीं कर सके, पक्षी भी जहाँ उड़कर नहीं जा सके, ऐसे शून्य बन में जाकर समाधि लगाकर कबिरन (योगियों ने, जीवों ने) हीड़िया (खोजा) और खोजते हैं, परन्तु ज्ञान को साधने बिना जिसको खोजते हैं सो नहीं मिलता है। ॥२८१॥ क्योंकि·—

बोली एक अमोल है, जो कोइ बोलै जान।
हिये तराजु तौलिके, तब मुख बाहर आन ॥२८२॥

विवेकादि साधन युक्त ज्ञानाधिकारी के ज्ञान के लिये एक सद्गुरु की बोली ही अमूल्य (सर्वोत्तम) साधन है कि जो बोली कोई सत्गुरु ही सत्यात्मा को जानकर बोलते हैं और हृदयरूप तराजू पर तौलकर तब मुख से बाहर बोली (शब्द) को आनते (लाते) हैं। ऐसे सत्य मित हितभाषी गुरु के उपदेश से अधिकारी को ज्ञान होता है। अतः अधिकार को प्राप्त करके ऐसे गुरु की सेवा आदि कर्तव्य हैं, बन में जाने की आवश्यकता नहीं है ॥२८२॥

करु बहियाँ बल आपनी, छाड़ु बिरानी आश।
जिहि अँगना नदिया बहै, सो कस मरै पियास ॥२८३॥

"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।" (मुण्ड० ३।२।४) यह आत्मा बलहीन से प्राप्त नहीं किया जा सकता है। गुरु के उपदेश से भी अनधिकारी उसको नहीं समझ सकता है। अतः अधिकार की प्राप्ति के लिये उपदेश है कि अपनी बुद्धिरूप बाहु में विवेकादि बल की प्राप्ति विचारादि से करो और बिरानी (अन्य की) आशा को त्याग दो। जिसके हृदयाँगन में ही आनन्द नदी की धारा बह रही है वह पियासे कैसे मरता है, सो समझो। अन्य विषयादि की आशा और अपने विवेकादि के बिना ज्ञान रहित जीव तृष्णादि से जन्मता-मरता है। अतः विवेक विज्ञान को प्राप्त करके समूल तृष्णादि को नष्ट करके तृप्त मुक्त होवो ॥ २८३ ॥

ऊ तो वैसे ही हुआ, तूँ मति होवहु आन।
तैं गुणवत वै निर्गुणी, मति एके कै सान ॥२८४॥

ऊतो (वह बन में खोजनेवाला तो) वैसे ही अन्य की आशावाला पियासे मरनेवाला हुआ। क्योंकि आँगन में बहनेवाली नदी को नहीं समझ सका आनन्दस्वरूप ब्रह्मात्मा से वह भिन्न हो गया, यदि तुम विवेकादि गुणवाला हो तो तुम ब्रह्मात्मा से आन (भिन्न) नहीं होवो। अपने सत्यस्वरूप को ब्रह्म से भिन्न नहीं समझो। तुम गुणवाले हो और वे बन विषयादि में ईश्वरदेव सुखादि को खोजनेवाले निर्गुणी (ज्ञान साधन रहित) हैं। अतः तुम अपने को उनके साथ एक करके नहीं मानो (तुल्य ही नहीं समझो)। यह असंगता के लिये विवेकादियुक्त ज्ञानाधिकारी के प्रति उपदेश है ॥ २८४ ॥

साधु भया जो चाहहु, पक्का होके खेल।
कच्चा सरसो पेरिके, खरी भया नहिं तेल ॥२८५॥

और यदि तुम अभी पूर्ण विवेकी विरक्त साधु (कुशल) नहीं हुए हो, अब होना चाहते हो तो पक्का (धैर्ययुक्त निष्काम सत्य निश्चयवाला सत्य वक्ता) होकर खेलो (सत्सङ्ग विचारादि करो) और संसार के सब व्यवहारों को आसक्ति रहित खेल तुल्य करो। क्योंकि जैसे कच्चा सरसो के पेरने से खली, तेल कुछ नहीं होता है, तैसे धैर्य दृढ़ निश्चयादि रहित मनुष्यों से ज्ञान-ध्यानादि कुछ नहीं होता है ॥ २८५ ॥

ज्ञानी सोइ सराहिये, कच्चा फल नहिं खाय।
किञ्चित् फल पक्का मिलै, युग युग छुधा बुताय ॥२८६॥

सोई ज्ञानी (विवेकी विद्वान्) सराहने योग्य प्रशंसनीय हैं कि जो कच्चा (विनश्वर) फल अर्थादि को नहीं खाते (चाहते हैं) न कच्चे फलों के भोग में लगते हैं। उनको किञ्चित् (कोई अवाच्य अपूर्व) पक्का अविनाशी मोक्ष फल मिलता है कि जिससे युग-युग के अनादि आशा आदिरूप क्षुधा अग्नि आगे युग-युग अनन्तकाल तक सदा के लिये बुझ जाती है। फिर कभी आशा तृष्णादिरूप अग्नि प्रकट नहीं होती है, न जलाती है।

सार शब्द अनमोल है, तिहि बिनु बन में जाय।
पर आशा युत तप करै, सो न सत्य फल पाय ॥१५१॥
तजि आशा सब आन की, करु सत शब्द विचार।
हृदय लखिय सुखसिन्धु को, तृष्णा तजिय विकार ॥१५२॥

तृष्णा युत नर भेद गहि, बहत मोह की धार।
तृष्णा तजि सद्गुर्णहि गहि, तरिय भवाब्धि अपार ॥१५३॥
गुणी साधु होना चहो, तृष्णा कामहु त्यागि।
धैर्य धुरीन विरक्त ह्वै, करु विचार अनुरागि ॥१५४॥
सोइ विवेकि सराहिये, जो अर्थादिक त्यागि।
निष्कामी ह्वै भक्ति करि, मोह निन्द से जागि ॥१५५॥
सत कर्मादि सुयोग से, ज्ञान विमल जल पाय।
तृष्णा रहित सुतृप्त नर, जीवन्मुक्त कहाय ॥१५६॥२८६॥

इति ज्ञानाज्ञान की परिपाकावस्था प्रकरण ३८

अथ मनुष्याकार पशु तत्संग निषेध प्रकरण ३९

सिंहो केरी खोलरी, मेढ़ा ओढ़े जाय।
बानी ते पहिचानिये, शब्दे देत लखाय ॥२८७॥

जैसे सिंह की खाल (चर्म) को मेढ़ा (भेड़ा) ओढ़े (पहने) जाता हो, तो बानी (बोली) से पहचाना जाता है, उसका शब्द ही उसको लखाय (ज्ञान करा) देता है। तैसे मनुष्यता रहित मनुष्य दीखता है, असाधु आदि वेष आदि से साधु आदि जान पड़ता है। परन्तु बोली से पहचाना जाता है।

"जो करनी अन्दर बसै, निकलै मुख की बाट।"

अतः शब्द उसके स्वरूप को लखा देता है। फिर शब्द से समझकर संग का त्याग कर्तव्य होता है ॥ २८७ ॥

जो मतवाले राम के, मगन रहे मन माहिं।
ज्यों दर्पण की सुन्दरी, गहे न आवै बाहिं ॥२८८॥

सद्गुरु आदि के बिना जो बन में खोजने वाले अपने मन में मगन रहते हैं और राम के मतवाले (प्रेमी) भी रहते हैं। सो उस मन में ही आनन्दादिरूप से प्रतिबिम्बित राम को नहीं पकड़ पाते हैं। जैसे दर्पण के प्रतिबिम्बरूप सुन्दरी बाँह पकड़ने से वश में नहीं आती है। किन्तु जिसका प्रतिबिम्ब हो उसे पकड़ने से प्रतिबिम्ब की सुन्दरी भी वश में आती है। तैसे आनन्द स्वरूप सत्यात्मा के समझने से सब आत्मानन्दरूप से प्राप्त हो जाते हैं ॥ २८८ ॥ क्योंकि—

जिहि खोजत कल्पो गया, घटहि हतीं सो मूरि।
बाढ़े गर्व गुमान के, अन्तर परि गौ दूरि ॥२८९॥

आत्म भिन्न दूर आदि मानकर जंगलादि में जाकर जिस सच्चिदानन्द राम को खोजते में कल्पों बीत गया और नहीं मिला, सो रामस्वरूप मूरि (सब ताप पाप के नाशक मूलौषधि) घट ही में हती (थी) और है। परन्तु शरीरादि के गर्व (अहंकार) और गुण विद्या जाति आदि के गुमान (अभिमान) के बढ़ जाने से वह मूरि दूर के अन्तर (परदा) में पड़ गई है। अर्थात् अमानित्व अदम्भित्वादि गीता आदि में वर्णित ज्ञान साधनों के बिना सत्यात्मा राम अत्यन्त दूर है और अमानित्वादि साधन वालों के लिये अति निकट निज स्वरूप है ॥ २८९ ॥

रामहिं सुमिरे रण मरै, फिरै और के गैल।
मानुष केरी खोलरी, ओढ़े फीरै बैल ॥२९०॥

गर्वादि से सत्यात्मा राम के दूर अन्तराय (व्यवधान) में पड़ने के कारण जो दूर के ही राम का स्मरण करते हैं, सर्वात्मा राम को नहीं समझते हैं, सो राग द्वेप करके रण (युद्ध) में मरते मारते हैं तथा और (अनात्मा राम से अन्य देवादि) के गैल (मार्ग, पीछे) में आशा तृष्णादि वश फिरते हैं। एकेश्वर के शरण में नहीं रहते हैं। ऐसे लोग देवादि के बैल (पशु) हैं। परन्तु मनुष्य के खाल को ओढ़े फिरते हैं। ऐसे लोगों का संग मुमुक्षुओं को नहीं करना चाहिये ॥ २९० ॥

लोगन केर अथाइया, मति कोइ बैठु जाय।
एकहि खेत चरत हैं, बाघ गदहरा गाय ॥२९१॥

कोई सज्जन मुमुक्षु उक्त रीति वाले लोगों की अथाइया (सभा, बैठक, स्थान) में जाकर नहीं बैठो। क्योंकि वहाँ किसी एक मायिक वस्तुरूप खेत (क्षेत्र) में बाघ, गदहा, गाय तुल्य राजस, तामस, सात्त्विक तीनों प्रकार के मनुष्य चरते (बिचरते, रमते) हैं। शरीरादिरूप क्षेत्र की कथा उपभोगादि करते हैं। समता के हेतु क्षेत्रज्ञ आत्मा राम की चर्चा आदि नहीं करते हैं, न उसको जानते हैं। अतः परस्पर विरुद्ध स्वभावादि के होने से वे लोग अवश्य झगड़ते हैं। और—

"झगड़ा नितहिं बराइये, झगड़ा बुरी बलाय।
दुख उपजै चिन्ता बढ़ै, झगड़ा में घर जाय" ॥१॥२९१॥

खेत भला औ बिज भला, बोइन मुठि का फेर।
काहे बिरवा रूखरा, ई गुण खेतहि केर ॥२९२॥

मानव तन अन्तःकरणादिरूप खेत भला (सात्त्विक) हैं और वासना कर्मादिरूप बीज भी भला ही है, तो भी लोगों की अथाइया में बैठनेवाले सात्त्विक पुरुष के हृदय में राजस तामस लोगों ने मानो मुठि के फेर से अन्य बीज बो दिया है (संग और बातों से कुकर्म कुवासना सिद्ध कर दिया है) इस अवस्था में यदि सात्त्विक कहाने वालों के भी ज्ञान ध्यानादि फलप्रद वृक्ष रूखड़ा (रूखा-सूखा) है, तो काहे रूखरा है सो समझना चाहिये। और समझना चाहिये कि प्रथम खेत भला था परन्तु कुसंग से खेत बिगड़ गया। अतः यह खेत ही का गुण है और ऐसा समझकर लोगों की अथाइया में कभी नहीं बैठना चाहिये, वे लोग मूठी के फेर से बीज बोते हैं, इससे भी बिरवा रूखरा होता है ॥२९२॥

गुरु सीढ़ी से ऊतरे, शब्द विमूखा होय।
ताको काल घसीटि हैं, राखि सकै नहिं कोय ॥२९३॥

इसलिये भी कुसङ्ग नहीं करना चाहिये कि जिससे मनुष्य कुसंग से यम नियमादिरूप तथा शुभेच्छा सुविचारादिरूप प्राप्त गुरु सीढ़ी से भी उतर जाते हैं। ऊपर की भूमिकाओं में भी नहीं जाने पाते हैं। क्योंकि शास्त्र सद्गुरु के सत शब्दों उपदेशों से भी विमुख हो जाते हैं, ऐसा ही कुसंग का प्रभाव है और जो कोई गुरु सीढ़ी से उतरते हैं सत शब्द से विमुख होते हैं, होंगे, उनको काल अवश्य सब योनि संसार नरकादि में घसीटेगा और घसीटता है। गुरु शब्दादि से विमुख की रक्षा कोई नहीं कर सकता है। ईश्वर भी गुरु आदिरूप से ही सची रचा करते हैं। ऐसे गुरु और गुरु शब्दादि से विमुख करने वाला कुसंग अवश्य त्यागने योग्य है ॥ २९३ ॥

इति मनुष्याकार पशु तत्संगति निषेध प्रकरण ३९



अथ सद्गुरु की भक्ति सत्य शम्बलादि प्रकरण ४०

दादा भाइ बाप के लेखो, चरणन होइहो बन्दा ।
अबकी पुरिये जो नर समुझे, सो नर सदा अनन्दा ॥२९४॥

जिससे सद्गुरु से विमुखता अनर्थ का हेतु है, अतः सद्गुरु को दादा (पितामह) बड़े भाई और बाप (पिता) रूप करके लेखो (देखो)। (दादा आदि के समान पूज्य सहायक हितचिन्तक सफल सुन्दर जन्मदाता सद्गुरु को समझो) और उनके चरणों के वन्दा (दास सेवक) होना। क्योंकि जो मनुष्य इस प्रकार अबकी पुरिये (इस मानव देहरूप पुर में) गुरु की कृपा आदि से आत्माराम को समझता है, सो सदा आनन्दस्वरूप हो जाता है। आनन्दस्वरूप में लीन मुक्त हो जाता है। अतः गुरुसेवा आदि कर्तव्य हैं ॥२९४॥

जहँ गाहक तहँ हौं नहीं, हौं तहँ गाहक नाहिं ।
बिनु विवेक भरमत फिरे, पकरि शब्द की छाँहिं ॥२९५॥

गुरुसेवा आदि से विमुख गाहक (विषयादि के ग्राहक) मनुष्य जहाँ जन संघ में हैं, वहाँ हौं (सद्गुरु) नहीं जाते हैं, न मिलते हैं और जहाँ एकान्त विचारादि में हौं (मैं) रहता हूँ, वहाँ गाहक (कामी) जीव नहीं जाते हैं। अतः सारासारशब्द के भी विवेक के अभाव से शब्द की छाया (शब्दाभास, असत्य शब्द) को पकड़कर भरमते-फिरते हैं। तथा जहाँ गाहकपन (जिज्ञासा) ही है वहाँ हौं (अहंकार) नहीं रहता है और जहाँ अहंकार रहता है, वहाँ सच्ची जिज्ञासा नहीं रहती है। अतः वह शब्द की छाया को पकड़ कर भ्रमता है। सद्गुरु के शरणादि में नहीं जाता है ॥ २९५ ॥

स्वप्ने सोवै मानवा, खोलि न देखै नैन ।
जीव परा बहु लूट में, ना कछु लेन न देन ॥२९६॥

सद्गुरु आदि के बिना अहंकारी, कामी मनुष्य मोहनिद्रा से संसार में सोता है और सोया हुआ मिथ्या प्रपञ्चरूप स्वप्न को देखता है और विवेक विज्ञानरूप नेत्र को खोलकर (प्रकट करके) सत्यात्मा को नहीं देखता है। अतः यह जीव स्वप्नदृष्ट मिथ्या बहुत वस्तु के लूट संग्रह में परा (लगा) है। परन्तु मिथ्या होने से सच्चा कुछ लेन-देन नहीं है ॥ २९६ ॥ क्योंकि—

नष्टा का यह राज्य है, नफरक बर्ते टेक (तेज)।
सार शब्द टकसार है, हृदया माँह विवेक ॥२६७॥

स्वप्न तुल्य यह संसार नष्टा (सदा परिणामशीला माया) का राज्य (देश) है और उसी का नफर (दास सेवक) मन का या देवादि का यहाँ टेक (नियम प्रभुत्व) या तेज (प्रताप) वर्तमान रहता है। केवल सारशब्द टकसार (सत्य ज्ञान का हेतु) है। सो भी उसी के लिये कि जिसके हृदय में विवेक रहता है। अतः सार शब्द और विवेक दोनों टकसार हैं (अनुभव के स्थान और साँचे हैं) ॥२६७॥

छप्पर छाये कौन गुण, सबे बाँध चुचुआय।
जिहि नित छप्पर छाइया, सो परदेशहिं जाय ॥२६८॥

उक्त सार शब्द और विवेक के बिना देहरूप छप्पर के छाने (पोषणे) में कौन गुण (फल) है, कि जिसको किसी प्रकार भी छाया जाय तो भी सब बाँध (सन्धि द्वार) चुचुआते हैं (चूते हैं) और जिस जीव ने सदा इसको छाया (पोषा) है, सो भी इसे त्यागकर इन्द्रियादि परिवार सहित परलोक में ही चला जाता है। अतः इसके केवल छाने में ही कोई गुण नहीं है। सार शब्द विवेकादि को प्राप्त करना ही उचित है ॥२६८॥

इहई सम्बल करि लेहु, आगे विषमी बाट।
स्वर्ग बिसाहन सब चले, जहँ बनियाँ नहिं हाट ॥२६९॥

उपदेश है कि देहादि पोषण परायणता को त्यागकर इहई (इस मानव देह और लोक में ही) मोक्ष मार्ग सुख शान्ति आदि के हेतुरूप शम्बल (साधन बाट खर्च) कर लो। क्योंकि आगे का मार्ग विषमता (कठिनता) युक्त है। मानव शरीर सम पुण्य पाप से होता है। अतः यहाँ साधन हो सकता है। देव शरीर में अधिक भोग से प्रमाद होता है। अधिक पाप रचित पशु आदि शरीर में तम अज्ञानादि की प्रधानता रहती है। यहाँ साधन की सुविधा रहती है। परन्तु इस विवेक ज्ञान के बिना सब वहाँ स्वर्ग (सुख मोक्ष) बेसाहने (खरीदने) चले हैं कि जहाँ सत्गुरु सन्त भक्तरूप बनियाँ नहीं हैं, न सत्संगरूप हाट है। है। अर्थात् परलोक में जाकर लोग मुक्त सुखी होना चाहते हैं, परन्तु जीवन्मुक्ति के बिना सच्ची मुक्ति नहीं मिलती है।

जीवन्मुक्ति न वेष से, मिलै न तन अभिमान।
राम भक्ति मन मगन नर, मुक्ति लहै तजि मान ॥१५७॥
राम सदा सब हृदय रह, नर सुमिरै कहुँ आन।
मानुषता ताते गई, होत न तत्त्व पिछान ॥१५८॥
मानुषता सद्गुण रहित, लोगन का जहँ वास।
तहाँ न बैठिय सन्त कोउ, होत सुबुद्धि विनाश ॥१५९॥
क्षेत्रचारि सो होत हैं, लख क्षेत्रज्ञ न कोय।
बोवत बीज कुवासना, क्षेत्र वास फल सोय ॥१६०॥
गुरु मारग से विचलहिं, क्षेत्रचारि मति मन्द।
सार शब्द से विमुख ह्वै, पड़हि सदा यम फन्द ॥१६१॥
ताते सद्गुरु शरण गहि, सार शब्द तहँ पाय।
लखि निज परमान्द को, तहाँ रहिय लौ लाय ॥१६२॥
स्वप्न तुल्य संसार सब, माया का है राज।
मन ताके वश में पड़ा, ताते होत अकाज ॥१६३॥
मानुष तनु में करु अवश, सुख विमुक्ति हित योग।
मिलत न मानुषता बिना, मुक्ति सुफल संयोग ॥१६४॥२९९॥

जिन जिन सम्बल नहिं किया, अस पुर पट्टन पाय।
झालि परे दिन अस्त भै, सम्बल किया न जाय ॥३००॥

जिन जिन लोगों ने मानव देहरूप ऐसा सुन्दर पुर को पाकर और इस लोकरूप पत्तन (नगर) को पाकर स्वस्थ युवा अवस्था में मोक्ष मार्ग के शम्बल (साधन बाट खर्च) का संग्रह सम्पादन नहीं किया, सुकर्म विवेक भक्ति आदि से तन मन को शुद्ध शान्त नहीं किया, उनसे झाली परने पर (जरा अवस्था आदिरूप झोली=अन्धकार के प्राप्त होने पर) तथा प्राण जीवनरूप दिन के अस्तरूप मरण के होने पर फिर शम्बल नहीं किया जा सकता है। अतः स्वस्थ युवा अवस्था में ही शम्बल कर्तव्य है।

मानव तनु में कीजिये, सुख विमुक्ति कर योग।
मिलत न मानुषता बिना, मुक्ति सुफल संयोग ॥१६४॥
परमानन्द मिलाप यदि, चाहत हो जन कोय।
तो तजि सब अभिमान हठ, रहु विवेक रत होय ॥१६५॥

बिनु विवेक भरमत फिरै, गहि असार शब्दादि ।
मोह नीन्द से शयन करि, लखै न सत्य अनादि ॥१६६॥
शुभ मानव तनु पाय के, जिन शुभ किया न योग ।
पाप पुण्य वश काल वश, भोगत सो फल भोग ॥१६७॥३००॥

सम्बल सम्बल सब कहै, सम्बल परो न हाथ ।
सम्बल घटये पगु थके, जीव बिराने हाथ ॥३०१॥

यद्यपि सब मनुष्य शम्बल शम्बल कहते हैं (सुख साधन की बात करते हैं) और कुछ काम्य कर्मादिरूप शम्बल बहुत लोग करते भी हैं, परन्तु सद्गुरु विवेकादि के बिना पर (उत्तम अक्षय) शम्बल किसी के हाथ में नहीं मिलता है (आत्मज्ञान हृदय में नहीं प्राप्त होता है) अतः उस तुच्छ शम्बल के घटने पर (भोग से नष्ट होने पर) अज्ञानी जीव काल कर्मादिरूप बिराने के हाथ (वश) में होता है । क्योंकि अन्य योनियों में कर्मादि के शक्ति आदिरूप पैर के थक जाने से स्वयं कहीं गमन नहीं करने पाता है । अतः यहाँ अक्षय शम्बल कर्तव्य है ॥ ३०१ ॥

तीनि लोक भौ पींजड़ा, पाप पुण्य भौ जाल ।
सकल जीव सावज भये, एक अहेरी काल ॥३०२॥

अक्षय शम्बल (ज्ञान) रहित जीव के लिये तीन लोक पींजड़ारूप बना है और उन जीवों के पाप पुण्य (धर्म अधर्म) जालरूप है और सब अज्ञ कामी जीव सावज (पक्षी) हुए हैं और एक काल सब का अहेरी (शिकारी) हुआ है । उससे बचने के लिये आत्मज्ञान ही साधन है, अन्य नहीं ॥३०२॥

ई जग तो जहड़े गया, भया योग नहिं भोग ।
तील झारि कबीर लिया, तिलठी झारै लोग ॥३०३॥

ई जग (यह संसारी कामी जीव) जहड़े (जहन्नम, नरक, धोखे) में गया (पड़ा) इससे योग भोग कुछ नहीं हुआ । क्योंकि कबीर (ज्ञानी) गुरु जन तो तील (सार सत्यात्मतत्त्व) को झार (विवेक) करके इस संसार में से लिया, नामरूप को मिथ्या समझकर सर्वत्र सच्चिदानन्द ब्रह्म को समझा और कामी लोग नामरूपात्मक तिलकाष्ठ विषय को झारते (भोगते) हैं और उससे सुख चाहते हैं । यह अज्ञान कामादि का प्रभाव है । इसे त्यागना चाहिये ॥३०३॥

शब्द सँभारे बोलिये, शब्दक हाथ न पाँव।
एक शब्द कर औषधी, एक शब्द करु घाव ॥३०४॥

उस काम अज्ञानादि के त्याग करने-कराने के लिये उपदेशात्मक शब्द ही मुख्य साधन है। अतः शब्द को सँभारकर बोलना (अध्ययन-अध्यापन) करना-कराना चाहिये। तथा विधि के अनुसार स्वहित साधन गुरु से पूछना चाहिये और शिष्य के प्रति उपदेश देना चाहिये। क्योंकि जिस शब्द के हाथ-पाँव आदि कोई साधन उपकार-अपकार के हेतु नहीं हैं, सो भी सँभारकर बोले गये एक प्रकार के शब्द औषधि के काम करते हैं, अज्ञान कामादि रोगों को नष्ट करते हैं और सँभार रहित एक प्रकार के शब्द शान्ति सुख को नष्ट करके घाव (पीड़ा) करते हैं। अतः अज्ञान काम मोहादि की निवृत्ति के लिये विवेकपूर्वक शब्दात्मक औषधि कर्तव्य है।

मन अनुकूल न भोग सुख, मिलत न योगहु जाहि।
पिंजड़ा में पक्षी सरिस, सो रहता जग माँहि ॥१६८॥
याते संत विवेक करि, गहत सार सब काहि।
तीन लोक से पृथक् ह्वै, निज स्वरूप ठहराहि ॥१६९॥
याते सारहि बोलिये, सारहि गहिये माहि।
सार शब्द ह्वै औषधी, अन्य रोग कर आहि ॥१७०॥३०४॥

इति सद्गुरु की भक्ति सत्य शम्बलादि प्रकरण ४०



अथ यन्त्र यन्त्रि विवेक प्रकरण ४१

यन्त्र बजावत हौं सुना, टूटि गये सब तार।
यन्त्र बेचारा क्या करै, चले बजावनिहार ॥३०५॥

"येन रूपं रसं गन्धं शब्दान् स्पर्शांश्च मैथुनान्।
एतेनैव विजानाति ॥" (कठ० २।१।३)

जिस इस प्रत्यक्षात्मा की सत्ता प्रकाश से ही जीव रूपादि को समझता है, इत्यादि शास्त्रों से मैंने सुना है कि एक सत्यात्मा ही सब शरीररूप यन्त्र को औपाधिक अनन्तस्वरूप होकर बजाता है। तथा बजाता हुआ सुन पड़ता है

(प्रत्यच्च समझा जाता है) परन्तु जब श्वास, नाड़ी आदिरूप सब तार टूट गये और बजानेवाला भी चल पड़ा तब यह बेचारा (असमर्थ) यन्त्र क्या कर सकता है ? अर्थात् मरने के बाद यह शरीर किसी काम का नहीं रह जाता है और जीवित इस शरीर से ही उत्तम भोग मोच्च सब का साधन होता है। अतः कुभोगादि को त्याग कर इस शरीर से मोच्च साधन कर्तव्य है और मोक्ष के लिये जिसको जानना चाहिये, सो इसी में ज्ञातव्य है, अन्यत्र नहीं, इत्यादि ॥ ३०५ ॥

जौं लगि ढोला तौं लगी, बोला धन व्यवहार।
ढोला फूटा धन गया, कोइ न झाँके द्वार ॥३०६॥

उक्त विवेकादि के बिना, जबतक देहरूप ढोल (बाजा) रहा, तबतक धनादि के व्यवहार ही को जिन लोगों ने बोला, कभी भक्ति धर्म ज्ञानादि की कथा नहीं की, उनका जब ढोला फूटा (शरीर छूटा) मरण हुआ कि सब धन उसी समय चला गया, अब उनका कोई धन नहीं रहा। क्योंकि उन धनों के जाने के द्वारों को कोई झाँक (बन्द) नहीं कर सकता है न उनके द्वार पर कोई झाँकने (देखने) आता है कि वे धनी कहाँ गये, न वे मरनेवाले अपने मोक्ष द्वार को मरने पर कोई भी झाँख (देख) सकते हैं। अतः जीवित अवस्था में विवेकादिपूर्वक मोक्ष द्वार द्रष्टव्य है ॥ ३०६ ॥

जैसी लागी ओर की, तैसि निबाहै छोर।
कौड़ी कौड़ी जोरि के, जूटै लक्ष करोर ॥३०७॥

यद्यपि शरीर छूटते ही धन चला जाता है, तथापि सदा धन के व्यवहार को बोलनेवालों की जैसी प्रीति वृत्ति ओर की (व्यवहार के आरम्भकाल की) लगी रहती है, तैसी ही प्रीति को यदि छोर (अन्त) तक निबाहते हैं, तो कौड़ी-कौड़ी जोरकर लाख करोड़ जूट जाता (प्राप्त होता) है और वे लोग जुटाते हैं। इसी प्रकार व्यवहार से उपरत विवेकी धीरे-धीरे अक्षय साधन को प्राप्त करते हैं, उसको असाध्य नहीं समझते हैं ॥ ३०७ ॥

पारस परसि तामाँ भौ कञ्चन, बहुरि न तामाँ होय।
परमिल वास परासहिं बेधे, काष्ठ कहै नहिं कोय ॥३०८॥

अच्चय मोक्ष साधन को पाकर अच्चय मुक्तस्वरूप इस प्रकार होते हैं कि जैसे पारस के परस (सम्बन्ध) से जो तामाँ काञ्चन हो गया हो, सो फिर कभी तामाँ नहीं होता है और जिस परास में परमिल का वास (गन्ध) बेध जाता है,

उसको कोई साधारण काष्ठ (लकड़ी) नहीं कहता है, किन्तु चन्दन कहता है। इसी प्रकार सद्गुरु सत्यात्मा के सम्बन्ध अनुभव से जीव मुक्त होता है, सो फिर कभी संसारी नहीं होता है। न बद्ध जीव कहा जाता है ॥ ३०८ ॥

सारा पट्टन जरि गया, अपनी अपनी आगि।
ऐसा कोई न देखिये, जासो रहिये लागि ॥३०९॥

उक्त सद्गुरु सत्यात्मा की प्राप्ति के बिना सारा पट्टन (नगर, संसार, जीव) अपनी अपनी कर्मादि अग्नियों से जर गया और जलता है। अतः (सद्गुरु सत्यात्मा तुल्य) निःस्वार्थी ताप रहित कोई पुरुष पदार्थ नहीं दीख पड़ते हैं कि जिनसे लाग (सम्बन्ध, प्रेम) करके रहा जाय और सुख शान्ति मिले। अर्थात् मुमुक्षुओं को सुख शान्ति के लिये संसारी के संग से रहित होकर गुरुशरण में रहकर भक्ति आत्मचिन्तन ही करना चाहिये धन व्यवहार परायण नहीं होना चाहिये ॥ ३०९ ॥

ताहि न कहिये पारखी, पाहन लखै जु कोय।
ई दिल नग जु कोइ लखै, रतन पारखी सोय ॥३१०॥

जो कोई व्यवहार परायण हीरा आदि पत्थर को परखे, जड़ पदार्थों के ज्ञानी अनुभवी हो, उसको सच्चा पारखी (ज्ञानी) गुरु नहीं कहना चाहिये, न समझना चाहिये किन्तु इस शिष्य के दिलरूप नग को तथा दिल के अन्दर वर्तमान साक्षी स्वरूप नग (अचल कूटस्थ आत्मा) को जो कोई लखे (पहचाने) वही सत्यरत्न का पारखी सद्गुरु है, उनका संग कर्तव्य है ॥ ३१० ॥

तीनि लोक में लागी आगि, कहहिं कबिर कहँ जैहहु भागि ॥३११॥

उक्त रत्न के पारखादि के बिना कोई सुखी नहीं होता है। क्योंकि उसके बिना तीनों लोक में कामादिरूप अग्नि लगी है। कबीर साहब कहते हैं कि भाग कर भी कहाँ सुख शान्ति के लिये जावोगे। विवेकादि के बिना कहीं सुख शान्ति नहीं मिलती है। अतः यहाँ ही विवेकादि की प्राप्ति करो ॥ ३११ ॥

नग पषाण जग सकल है, लखवैया सब कोय।
या नग उत्तम पारखी, जग में बिरला होय ॥३१२॥

नग (अचल) पाषाण (पाप नाशक हीरा) सब संसार में व्यापक सर्वात्मा ही है। अहमादि बुद्धि द्वारा अहंकारादि से सम्मिलितरूप से उसके ज्ञाता भी सब

कोई हैं। परन्तु या नग (इस आत्मा) के उत्तम पारखी (शरीरादि से भिन्न सच्चिदानन्दस्वरूप से अपरोक्ष समझने वाले ज्ञानी) संसार में विरले होते हैं, सो कामादि अग्नि से बचते हैं। उनके संगादि द्वारा पारख प्राप्त करने योग्य है।

यावत जीवन जिन किया, सदा असत व्यवहार।
सो कहुँ शरण न पावहीं, भटकत भव की धार ॥१७१॥
यावद जीवन में कभि, गहा सुमति निज सार।
सो सारहि सुखरूप भै, दुख समुद्र के पार ॥१७२॥
दुख से पार सुज्ञानि जन, पुनि न होत संसारि।
लोहा पारस पाय के, पुनि न होत मलधारि ॥१७३॥
सार ज्ञानि कोइ बिरल तहँ, पुनि न काम मद होंहि।
सार ज्ञान बिनु जीव सब, जर्लांह कामि मदि कोहि ॥१७४॥
काम अग्नि सब लोक में, व्यापि रही सब ठाम।
भागेहुँ होत उबार नहिं, गहिय सार निज नाम ॥१७५॥३१२॥

इति यन्त्र यन्त्रि विवेक प्रकरण ४१

अथ विवेकी की दुर्लभता प्रकरण ४२

एक न भूला दोय न भूला, भूला सब संसार।
जानि बूझि के जो नर भूला, ताको वार न पार ॥३१३॥

एक या दो ही नहीं भूले हैं (कामादि के वशवर्ती एक दो ही नहीं हैं) किन्तु उत्तम पारखी से भिन्न सब संसारी भूले हुए हैं (कामादि वश स्वधर्म, स्वरूपादि को नहीं पहचानते हैं)। उनमें भी जो जानबूझ कर भूले हैं (कामादि वशवर्ती हुए हैं) उन्हें तो कभी संसार सागर के वार-पार सूझता ही नहीं है। क्योंकि—

"जानि बूझि अजगुत करै, ताहि कहाँ कुशलात।"

"जानता तु कृतं पापं गुरु सर्वं भवत्युत।
अज्ञानात्स्वल्पको दोषः प्रायश्चित्तेन नश्यति॥"

जानने वाला से किया गया सब पाप गुरु (गम्भीर) होता है। अतः प्रायश्चित्त से नष्ट नहीं होता है। अज्ञान से कृत पाप स्वल्प दोषरूप होता है। अतः प्रायश्चित्त से नष्ट हो जाता है॥ ३१३॥

जरा युवा कुमार बालापन, चार अवस्था आय ।
जस मुसवा को तकै बिलैया, अस यमघात लगाय ॥३१४॥

जरा, युवा, कुमार, बाल्य ये चार अवस्था देही की होती है । तहाँ जैसे मूस को बिल्ली देखती है, तैसे यम (मृत्यु) घात (घाई ध्यान) लगाया रहता है । कर्म साक्षी बैठा रहता है, परन्तु बूझकर भूलने वाले अभिमानी कामी उस मृत्यु को भी भूले रहते हैं। अतः यम यातना सहते हैं, कुशल नहीं पाते हैं॥३१४॥

श्रोता तो घर में नहिं, वक्ता बकै सो वादि ।
श्रोता वक्ता एक ह्वै, कथा सुनावहु आदि ॥३१५॥

कामादि के वशवर्ती जो श्रोता अपने घर (हृदय) में स्थिर नहीं हो सकता है । उसके प्रति जो कोई वक्ता बकता (कहता) है, तो वह कहना वादि (व्यर्थ) होता है। अतः जब श्रोता-वक्ता के साथ एकचित्त हो, तभी सर्वादि तत्त्व की कथा सुनावो । अर्थात् जान बूझकर भूलनेवाला अपने घर में नहीं रहता है । अतः वह उपदेश का अधिकारी नहीं है । किन्तु अज्ञान से कुमार्गगामी उपदेश का अधिकारी होता है ।

"गुरुरात्मवतां शास्ता शास्ताराजा दुरात्मनाम् ।
अथ प्रच्छन्न पापानां शास्ता वैवस्वतो यमः ॥"

आत्मवान् संयत मन वालों के शिक्षक गुरु होते हैं, दुरात्माओं का शिक्षक राजा होता है और छिपकर पाप कर्ताओं का शिक्षक वैवस्वत यमराज होते हैं ॥ ३१५ ॥

औरन को उपदेशते, मुहड़े परिहैं रेत ।
राशि विरानि राखते, खाइन घरका खेत ॥३१६॥

उक्त अधिकारी से औरन (अन्य लोगों) के प्रति उपदेश से, उनको उपदेश देने से मुहड़े (मुख) में रेत (धूल) पड़ेगें (बोलते-बोलते मुख सुखेगा) परन्तु उसका कुछ फल नहीं होगा, तथा मोहर (सुवर्ण) स्वरूप आत्मा में विक्षेपादि प्राप्त होंगे । अतः अनधिकारियों के प्रति उपदेशकों ने तो मानो बिराने (अन्य) की अन्नराशि की रक्षा करते में घर का खेत खाया (अपनी सुख शान्ति गमाई) और की रक्षा भी नहीं कर सके, अतः ऐसा उपदेशक नहीं होना चाहिये॥३१६॥

कबिरा कुत्ता राम का, मोतिया वाका नाम।
गले प्रेम की जेंवरी, जित खींचे तित जाय ॥३१७॥

सद्गुरु सत्यवक्ता से एकचित्त होने वाला उक्त उपदेश का अधिारी कविरा (जीव) तो सद्गुरु सत्यात्मा राम का कुत्ता तुल्य निरभिमानी भक्त होता है और उसके गले (मन) में प्रेम की रस्सी लगी रहती है। अतः सद्गुरु जिस तरफ खींचते हैं, उसी तरफ वह प्रेम से जाता है। अपना हठ अभिमानादि नहीं करता है। सद्गुरु जैसे चलाते हैं तैसे चलता है। प्रारब्धानुसार ईश्वर से प्राप्त भोग से सन्तुष्ट रहता है। अतः उसका मोतिया (मुक्त) नाम होता है आवयुक्त मोती तुल्य वह प्रकाशता है, फिर मोहान्धकारयुक्त नहीं होता है ॥ ३१७॥

चाखा चाहै प्रेमरस, राखा चाहै मान।
दो खाँड़ एक म्यान में, अबतक सुना न कान ॥३१८॥

जो कोई सची प्रेमभक्ति के रस (आनन्द) को और परप्रेमास्पद आत्मानन्द को चाखना (प्राप्त ज्ञात करना) चाहे और मान (अभिमान) भी रखना चाहे, तो ये दोनों एक समय एक व्यक्ति में रह नहीं सकते हैं। क्योंकि जैसे एक म्यान (कोश) में दो खाँड (खड्ग) रहते हुए अब तक कान से नहीं सुने गये हैं, तैसे ही प्रेमरस और अभिमान एक समय एक हृदय में नहीं रह सकते हैं। अतः प्रेमरसेच्छुक भक्त कुत्ता तुल्य निरभिमान रहता है ॥ ३१८ ॥

अहिरहुँ तजि खसमहुँ तजी, बिना दाँत का ढोर।
मुक्ति बिना बिललात है, वृंदावन की खोर ॥३१९॥

जैसे दाँत रहित वृद्ध ढोर (बैल) को निकम्मा जानकर चराने वाले अहिर और उसके खसम (स्वामी) दोनों त्याग देते हैं। तो वह शरीर से मुक्ति के बिना बृन्दा (तुलसी) के बन में भी भक्ष्य घास के बिना व्याकुल हुआ फिरता है। तैसे ही सत्य प्रेम रहित अभिमानी को सद्गुरु ईश्वर दोनों त्याग देते हैं। जिससे वह पवित्र तीर्थादि के खोरियों (गलियों) में भी व्याकुल ही फिरता है। अतः शान्ति के लिये निरभिमान होकर भक्ति कर्तव्य है ॥ ३१९ ॥

धरती फाटे मेघ जल, कपड़ा फाटे डोर।
तन फाटे की औषधी, मन फाटे नहिं ठौर ॥३२०॥

फटी हुई भूमि मेघ के जल से जुटती है, फटा हुआ कपड़ा डोरा से सीने पर जुटता है, फटी हुई देह की औषधि जुटने के लिये की जाती है, परन्तु सद्गुरु सत्यात्मा से मन के फटने पर कहीं भी ठौर ठिकाना जीव को नहीं मिलता है। अतः प्रेम से मन को जुटाकर रखना चाहिये, फाटने नहीं देना चाहिये।

सार ज्ञानी कोइ बिरल हैं, कीजिय उनका संग।
मन बाँधिय तहँ प्रेम से, करिय काम मद भंग ॥१७६॥
शान्त चित्त श्रोता मिलै, श्रद्धा भक्ति समेत।
सार कथा तिहि कहिय पुनि, बसिये हृदय निकेत ॥१७७॥
प्रेम रहित अभिमानि को, हरि गुरु त्यागत दूर।
ज्ञान बिना सो भटकता, लहत न सुख भरपूर ॥१७८॥
जाका मन हरि से हटा, ताको मिलत न ठौर।
सद्गुरु ताको क्या करैं, सो यदि करत न गौर ॥१७९॥३२०॥

दिल का महरमि कोइ न मिलिया, जो मिलिया सों गरजी।
कहहिं कबिर असमानहिं फाटा, केतिक सीवैं दरजी ॥३२१॥

अन्य फटे हुए को मिलानेवाले महरमि (मर्मज्ञ संधाता) बहुत मिलते हैं, परन्तु दिल (मन) का महरमि (फटे हुए मन को जुटानेवाला) कोई नहीं मिला, न मिलता है। न अपने पुरुषार्थ के बिना कोई मिल ही सकता है और जो कोई मिला सो भी अपने स्वार्थ का ही गर्जी (इच्छुक) मिला और जो कोई स्वार्थ रहित परोपकारी महात्मा मिलते भी हैं, सो भी सबके मन का संधान कहाँ तक करें। कबीर साहब कहते हैं कि यदि असमान (आकाश) ही फाटा है, तो दरजी कहाँ तक सी सकता है। अर्थात् अनादि से सब मन का चञ्चलादि स्वभाव है, घुनाक्षर न्याय से कोई बिरल पुरुष का मन प्रेमभक्ति ज्ञान विरागादि युक्त है और होता है ॥ ३२१ ॥

एक बिराजु महल में बैठा, दोसर कहहु कौन दे पैठा।
जाके घर में लागै भूता, सो कस बकै हरामी पूता ॥३२२॥

एक सत्यात्मा सब के हृदयरूप महल में बैठा हुआ विराजता है (मन इन्द्रियादि सबको प्रकाशता है, आप स्वयं स्वरूप से प्रकाशता है) माया में उसका प्रकाश (अभिव्यक्त स्वरूप) ईश्वर होता है। अन्तःकरणादि में अभिव्यक्त

स्वरूप जीव होता है। तो कहो कि दूसरा सत्यात्मा उन महलों में किस मार्ग से पैठा। दूसरे को पैठने के लिये कोई द्वाररूप मार्ग भी उस आत्मा के प्रकाश से रहित नहीं है। सो प्रथम कहा गया है कि "पिण्ड झरोखे नूर" इत्यादि। अतः वही आत्मा सब इन्द्रियों का अधिदेवरूप भी होता है, परन्तु उससे दिल के फटने से जिस के घर (हृदय) में भौतिक देहादि का अभिमानरूप भूत लगा है, सो हरामी का पूत (कुत्ते) के समान मिथ्या बकता है। अतः एक सत्यात्मा के ज्ञान के लिये भौतिक देहादि के अभिमानों को विवेक द्वारा त्यागना चाहिये।

"देहाभिमाने गलिते विज्ञाते परमात्मनि।
यत्र तत्र मनो याति तत्र तत्र समाधयः ॥१॥" ॥३२२॥

कबहुँक मन खल खल हँसै, कबहुँक ऊठै रोय।
कबहुंक मनुआ पर जरै, कबहुँक चला विगोय ॥३२३॥

अभिमानरूप भूत के पैठने से ही अभिमानी का मन कभी खल-खल शब्द पूर्वक हँसता है, कभी रो उठता है (रोता है) और कभी पर (अन्य) की सम्पत्ति आदि को देखकर जलता है और कभी अपने प्राप्त धन धान्यादि को विगोय (त्याग) कर चलता है। इस प्रकार देहाभिमानी अज्ञानी सदा द्वन्द्वों से भूतावेशी के समान रहता है। अतः अभिमानों को त्यागकर एक सम सत्यात्मा को समझना चाहिये ॥ ३२३ ॥

जासु गोइ भीतर रहै, सो जानै सब बात।
जानि बूझि अजगुत करै, ताहि कहाँ कुशलात ॥३२४॥

एक सत्यात्मा के ज्ञान विना स्वार्थी लोग जिस दूसरे दण्ड दाता आदि से गोय (छिपा) कर ईर्ष्या, पाप, कर्मादि को अपने भीतर (मन में) रखते हैं, सो दूसरा दण्ड दाता अन्तर्यामी भी भीतर बैठा हुआ सब मन की बात को भी जानता है। अतः जान बूझकर अजगुत (अनर्थ) करने वाले को कहीं कुशल नहीं है। प्रथम कहा गया है कि "जाके दिल में हौं वसे, सेना लिये हजूर" ॥३२४॥

साँकठ कोइ न देखिये, सबे वैष्णवा झारि।
संशय ते साँकठ भया, कहहिं कबीर पुकारि ॥३२५॥

कबीर साहब पुकार के कहते हैं कि कोई साँकठ (शाक्त गुरुमन्त्र रहित) नहीं दीखता है। किन्तु सब के सब वैष्णव (विष्णुभक्त गुरुमन्त्र सेवी) दीखते हैं।

परन्तु पापादि जन्य संशय से सब संसारी साँकठ हो गया है (आत्म-परमात्मस्वरूप के यथार्थ निश्चय के बिना कोई सच्चा वैष्णव नहीं होता है) अतः सो निश्चय कर्तव्य है और उसके लिये ईर्ष्या, राग, द्वेषादि त्यागने योग्य हैं ॥ ३२५ ॥

छौ दर्शन का एक विचारा, तासु नाम बनवारी ।
कहहिं कबिर सब खलक सयाना, इसमें हमहिं अनारी ॥३२६॥

संशय ग्रस्त योगी आदि छवो दर्शन का प्रायः एक सा विचार है कि तासु (उस परोक्ष तटस्थ) ईश्वर का नाम ही बनवारी है। वह अपने भक्त के संसार वन (जंगल, समुद्र) को वारण (निवारण) करने वाला है। अतः आत्मज्ञान त्याग विवेक वैराग्यादि की जरूरत नहीं है। कबीर साहब कहते हैं कि इस प्रकार के यह सब खलक सयाना (चतुर) हैं, इसमें हम ही अनारी (अकुशल) हैं। अर्थात् ऐसे लोग अज्ञ होते ज्ञानिता के अभिमानी होते हैं। अतः वहाँ ज्ञानी कुछ कर नहीं सकता है ॥ ३२६ ॥

सुर नर मुनि औ देवता, सात द्वीप नव खण्ड ।
कहहिं कबिर सबको लगे, देह धरे का दण्ड ॥३२७॥

सत्यात्मा के ज्ञान बिना किसी परोक्ष देही को भी बनवारी मानने वाले लोग हैं। परन्तु कबीर साहब कहते हैं कि सात द्वीप नव खण्ड में जो सुर नर मुनि और देवता (देवी) आदि देही हैं, उन सब को स्वयं देह धरने का दण्ड लगता (प्राप्त) होता है। ज्ञान द्वारा देहों के अभाव बिना कोई भी दैहिक दुःख से रहित नहीं हो सकता है। श्रुति है कि

"आत्तो वै सशरीरः प्रियाऽप्रियाभ्याम् ।" (छा० ८।१२।१)

शरीरी सुख-दुःख से व्याप्त ही रहता है ॥ ३२७ ॥

पूछत बात करै हंकारा, ज्यों आरन बन बड़ हड़वारा ।
साँचो बात कही मैं अपनी, भया रोष तब लागी कपनी ॥३२८॥

जैसे आरण वन (महा जंगल) का बड़ा हड़वार (बहुत क्रूर पशु) हो तैसे ही अभिमानी लोग बात पूछने में भी अहंकार करते हैं और मैंने अपनी सच्ची बात कही है कि संशय से साँकठ हुआ है, कोई देही सुखी नहीं है तो इसे सुनकर भी जिनको जब क्रोध हुआ, तब उनको कपनी लाग गई। यह देहाभिमान का फल है। अतः यह त्याज्य है ॥ ३२८ ॥

बानी ते पहिचानिये, चोर साधु की घाट।
जो करनी अन्दर बसै, निकलै मुख की बाट ॥३२९॥

और चोर साधु (अभिमानी, निरभिमानी) की घाट (गुप्त भेद मार्ग) को उनकी वाणी से ही पहचानकर कोई से कुछ कहना चाहिये। क्योंकि जो करनी (गुण वृत्ति) अन्दर में वसती है, सो मुख द्वारा अवश्य निकलती है।

जब लगि मन में मान मद, तब लगि सार न सूझ।
कहिये भूताविष्ट को, सत्यहुँ परत न बूझ ॥१८०॥
बूझ रहित अज्ञानि नर, द्वन्द्व विवश नित होंहि।
संशय वश भरमत फिरैं, हिय हरि लखत न सोहि ॥१८१॥
सर्व साक्षि हरि सब लखैं, ताको लखत न जोय।
सो करि अनरथ जानि नर, परै नरक तब रोय ॥१८२॥
देह धारि देवादि सब, सकल लोक के माँहि।
अनरथ के फल भोगहीं, वेष धरे कोउ काँहि ॥१८३॥
अनरथकारी सत्य सुनि, करत क्रोध हंकार।
बोलत वचन विचारि नहिं, ताको तजिय सँभार ॥१८४॥३२८॥

इति विवेकी की दुर्लभता प्रकरण ४२



अथ अवश्य ज्ञयानुष्ठेय प्रकरण ४३

कहँ उत्पति का पेंड़ है, कहँ प्रलय का ठाम।
तन छूटे कहँ जाहुगे, कहाँ बसायहु गाम ॥३३०॥

जगत् की उत्पत्ति का पेंड़ कहाँ अन्यत्र है और प्रलय का ठाम (स्थान) कहाँ अन्यत्र है? सर्वाधार आत्मा ही उत्पत्ति के पेंड़ादि हैं। अभी कहाँ इन्द्रियादि के गाम (ग्राम समूह) को बसाये हो। मन, प्राण, इन्द्रिय का आधार जैसे आत्मा है, इसी प्रकार सर्व संसार का आधार है। यह जिज्ञासु के प्रति उपदेश है ॥ ३३० ॥

कहहिं कबिर मैं हारिया, कोटि यतन समुझाय।
बाँड़ी पूँछ उठाय के, चली बेढ़ को जाय ॥३३१॥

कबीर साहब कहते हैं कि आत्मा ही सतसुख आधारादि सब कुछ है। इस अर्थ को करोड़ो यत्न से समझाकर गुरुरूप मैं हार गया। परन्तु अभिमानी लोग नहीं समझते हैं। अतः जैसे शुकरी बाँड़ी पूँछ उठाकर स्वयं वेढ़ (घेरे) में जाती है, तैसे अभिमानियों की बुद्धि उत्कण्ठा प्रेमपूर्वक गर्भादि में जाती है॥ ३३१॥

शुअरहिं दूध पिलायके, राखे पलंग सुताय।
गुरु के शब्द चीन्है नहिं, फिर चहले को जाय॥३३२॥

शूकर तुल्य मनुष्य सुभक्ष्य सुन्दर स्थान मिलने पर भी गुरु के शब्द को नहीं समझते हैं। अतः ब्रह्मानन्दामृत को पीकर हृदय कमल पलंग पर नहीं सोते हैं, किन्तु बार-बार गर्भादि कीचड़ में जाते हैं॥ ३३२॥

चित चञ्चलता छोड़ि दे, माया ते मन फेर।
जाही ते सब कुछ भया, ताही काह न हेर॥३३३॥

जिज्ञासु के प्रति उपदेश है कि अभ्यास वैराग्य द्वारा चित्त की चञ्चलता को त्यागो और दोष-दर्शन विचारादि द्वारा मायिक वस्तु से मन को फेरो। फिर जिसकी सत्ताशक्ति और प्रकाश से सब कुछ हुआ है और जिसके अज्ञान से ही जन्मादि संसार होता है, उसी को क्यों नहीं हेरते (ढूँढ़ते, समझते) हो ? कि जिससे सब अनर्थ नष्ट हो जाय। उसको अवश्य समझो॥ ३३३॥

मन माया के चोट ते, मारे सकल जहान।
सुर नर मुनि घायल भये, ऐसो जोर कमान॥३३४॥

क्योंकि माया से मन को फेरे आदि के बिना, मन और माया के चोट (धक्का) से सब जहान (संसार) मारा गया है। माया की चोट (चाह, इच्छा) से मन सब संसारी को मारता है। जो देव, नर, मुनि मारे नहीं गये हैं, सो भी घायल हो गये हैं। क्योंकि मनोरथादिरूप ऐसा ही मन-माया का जोरदार कमान (धनुष) है कि जिससे घायल होने बिना वेदाग कोई नहीं रहता है॥ ३३४॥

एक बात को बात है, बहुविधि कहा बनाय।
भारी परदा बीच का, ताते लखा न जाय॥३३५॥

माया से मन को फेरकर सर्वादिस्वरूप को समझनारूप इसी एक बात (कार्य, उपदेश) के लिये अन्य सब बात (उपदेश) है और इसी एक कार्य के

लिये महात्माओं ने बहुत प्रकार के ग्रन्थ पुराण, इतिहास आदि बनाकर कहा है। परन्तु एक बीच का कार्यरूप कनक-कामिनी आदिस्वरूप माया ही भारी परदा है। तथा बीच का जीवेश्वर के अन्तर्गत का स्वरूपवाली माया भारी परदा है कि जिससे सत्यस्वरूप लखा नहीं जाता है। माया से मन को फेरने पर वह परदा फट जाती है। अतः माया से मन को अवश्य फेरना चाहिये ॥ ३३५ ॥

जो मोहि जानै तिहि मैं जानौ। लोक वेद के कहा न मानौ ॥३३६॥

जो जिज्ञासु भक्त मायारूप परदा को हटाकर मुझे (सर्वात्मस्वरूप गुरु को) जानता है, (पहचानता है) उसको मैं भी योग्य मोक्षाधिकारी समझता हूँ। उसके उद्धार में लोक त्रिगुण वेद के कहे वचनों को नहीं मानता हूँ। अर्थात्—

"यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणस्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥" (श्रीमद्भ.गी. ६।३०)

जो मुझ सर्वात्मा को सर्वत्र देखता है और सबको मेरे स्वरूप में देखता है, उससे अदृश्य परोक्ष मैं नहीं होता हूँ, न मुझसे वह अदृश्य परोक्ष होता है। अर्थात् सर्वत्र समात्मदर्शी की दृष्टि त्रिगुण लौकिक, वैदिक किसी व्यवहार से निरुद्ध नहीं होती है, सदा एक रस रहती है। अतः यह दृष्टि प्राप्त करने योग्य है ॥ ३३६ ॥

पैठा है घट भीतरे, बैठा है सहचेत।
जब जैसी गति चाहये, तब तैसी मति देत ॥३३७॥

वह सर्वसाक्षी सर्वात्मा सब घट के भीतर में पैठा (व्यापक) है। सहचेत (सावधान) तथा चित्तोपाधि सहित बैठा है। कर्म वासनादि के अनुसार जब जिसको जैसी गति देना चाहता है, तब उसको वैसी मति (बुद्धि) देता है, अर्थात्—

"एष ह्येवसाधु कर्मकारयति।" (कौषितकी० ३।९)
"स देवो विश्वकर्मा महात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः।" (श्वेता० ४।१७)

इत्यादि श्रुति के अनुसार अन्तर्यामीरूप सर्वात्मा की अध्यक्षता में जीव के सब व्यवहार होते हैं ॥ ३३७ ॥

पाँव पलक के गम नहीं, करै काल्हु का साज।
काल अचानक मारि हैं, ज्यों तीतर को बाज ॥३३८॥

जिसको एक पाँव चलने उठाने तक का और पल भर का भी गम (होश, ज्ञान) नहीं है, सो इस अन्तर्यामी कर्मादि की अधीनता से ही काल्हु (कालान्तर)

के भोगों के साज (साधन) को साजता करता है और काल तो ऐसे अचानक में ही मारेगा कि जैसे तित्तिर को बाज मारता है ॥ ३३८ ॥

भूला सो भूला, बहुरि के चेतना ।
ज्ञान की छूरि से, संशय को रेतना ॥३३९॥

माया के साथ सम्बन्ध से काल कर्मादि की अधीनता को कहकर उपदेश है कि अब तक जो तुम अज्ञानादि से माया मोह में भूला सो भूला (माया मायिक वस्तु को सत्यादि मानकर उनमें मन लगाया सो लगाया) अब भी माया से बहुरि कर (मन को रोक कर) साची स्वरूप को चेतना चाहिये (अपरोक्ष करना चाहिये) और सब से प्रथम विवेक विज्ञानरूप छूरी से संशयों को रेतना (नष्ट करना) चाहिये (भ्रम अज्ञान संशय से रहित होना चाहिये) ॥३३९॥

जो मिला सो गुरु मिला, शिष्य मिला नहिं कोय ।
छौ लाख छयानवे सहस, रमैनी जीव पर होय ॥३४०॥

उक्त आत्म ज्ञान के बिना भी जो मिला सो गुरुत्व का अभिमानी मिला, योग्य शिष्य कोई नहीं मिला। अतः छौ लाख और छयानवे सहस्र रमैनी एक एक जीव पर होते हैं। अर्थात् छौ दर्शनों में छौ लक्ष्य, ज्ञेय, ध्येय एक एक जीव के रमण के लिये बतलाये जाते हैं। जिनके लाखों लाख भेद कल्पित होते हैं और छयानवे पाखण्डों में छयानवे सहस्र नामादि के वर्णन किये जाते हैं। मिथ्या ज्ञानित्वादि के अभिमानादि से हो ये विस्तार हुए हैं। सचा ज्ञान मार्ग एक है ॥ ३४० ॥

कर वन्दगी विवेक की, वेष धरे सब कोय ।
सो वन्दगी बहि जान दे, शब्द विवेक न होय ॥३४१॥

उक्त मिथ्या में रमण संशयादि की निवृत्ति के लिये विवेकी के प्रति विवेक की प्राप्ति के लिये वन्दगी (वन्दना सेवा पूजा) करो। वेष तो सब कोई धर लेते हैं। अतः वेष देखकर नहीं भूलो और उस वन्दगी को त्याग दो, कि जिस वन्दगी में तुझे सार शब्दादि का विवेक नहीं प्राप्त होता हो ॥ ३४१ ॥

यह मन तो शीतल भया, जब उपजा ब्रह्मज्ञान ।
जिहि वैसन्दर जग जरै, सो पुनि उदक समान ॥३४२॥

सद्गुरु की भक्ति वन्दना आदि से जब जिसको ब्रह्मज्ञान उत्पन्न हुआ, तब उसका यह अत्यन्त तप्त भी मन परम शीतल हुआ और होता है। क्योंकि जिस वैसन्दर विदारणशील कामादि अग्नि) से संसारी अज्ञ जीव जलता है, सो फिर ब्रह्म ज्ञान की पूर्ण प्राप्ति होते ही उदक तुल्य शीतल (शान्त) हो जाती है (दुःखद कामादि ब्रह्मात्म ज्ञान से निवृत्त हो जाते हैं)। अतः यह प्राप्तव्य है ॥ ३४२ ॥

साँच ही शाप न लागये, साँचहिं काल न खाय।
साँचहि साँचे जो रहे, ताको काह नशाय ॥३४३॥

सत्य ब्रह्मनिष्ठ ज्ञान से सत्य स्वरूपता को प्राप्त साँच ज्ञानी को न किसी का शाप लगता है, न साँच (सत्य) को काल ही खा सकता है (नाशता है) क्योंकि देहादि के अभिमानों को त्यागकर सत्य प्रत्यगात्मस्वरूप होकर विभु सत्य ब्रह्म में अभिन्नस्वरूप से जो रहता है, उसके शाप कालादि से क्या नष्ट होंगे। देहादि के अभिमानियों का देहादि के नाश से नाश कहा जाता है। आत्मा तो सब की अविनाशी ही है, सो ज्ञातव्य है, क्योंकि उसके ज्ञान से शोकादि की निवृत्ति होती है—

"अशरीरं शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम्।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ॥" (कठ० १।२।२१) ॥३४३॥

केते योगी योग करु, केते भस्म शरीर।
एक शब्द के कारणे, अलम भया फकीर ॥३४४॥

विवेक युक्त एक सार शब्दार्थ के ज्ञान केलिये कितने योगी योग करते हैं। कितने शरीर पर भस्म लगाकर तप करते हैं। ज्ञानाग्नि से देह को भस्म करते हैं और आलम (जमात के जमात) उसी के लिये फकीर (विरक्त) साधु प्रथम हुए हैं और होते हैं। अतः वह सब प्रयत्न से जानने योग्य है। उसके ज्ञान के बिना योगी आदि किसी को शान्ति नहीं मिलती है, तभी तो उसके लिये योगादि करते हैं ॥ ३४४ ॥

एक फेर का फेर है, फेरहिं लखै न कोय।
कहहि कबिर फेरहिं लखै, छत्रधनी है सोय ॥३४५॥

एक सार शब्दार्थ ब्रह्मात्मा के फेर (विपरीत ज्ञान, भ्रम, अज्ञान) का ही कार्यरूप सब फेर (परिभ्रमण, संसार चक्र) है और इस कार्य कारणरूप फेर को कर्म योग ध्यान तप वैराग्य सद्गुरु आदि के बिना कोई नहीं समझते हैं और समझे बिना इसकी निवृत्ति नहीं कर सकते हैं। अतः मुमुक्षु लोग इस फेर को भी समझने के लिये योगादि करते हैं और फेरों को समझने पर उन्हें निवृत्त करके सत्यात्मा को अवश्य प्राप्त करते हैं। अतः कबीर साहब कहते हैं कि जो प्रथम फेर को ही समझते हैं, सो छत्रधारी धनी (स्वतन्त्र राजा) ज्ञानी हैं और होते हैं।

तजि कुकाम करि भस्म तन, ज्ञान अग्नि प्रकटाय।
ह्वै विरक्त तजि संग मद, योगि मुक्त हो जाय ॥१८५॥
उत्पत्ती प्रलयादि का, कर्ता सर्वाधार।
ताहि लखत सुलखावते, शिष्यन करत उधार ॥१८६॥
अविवेकिन को कोटि विधि, हारे गुरु समुझाय।
विमल वस्तु बूझै नहीं, विषय पंक में जाय ॥१८७॥
तुम मन चञ्चलता तजो, करि अभ्यास विचार।
ह्वै विरक्त विष विषय से, सर्वातम उर धार ॥१८८॥
माया से मन फेरिये, करिय निजातम ध्यान।
इतनाही कर्तव्य सत, या बिनु है बड़ हान ॥१८९॥
तजि कुकाम सद्गुरु भजै, तिहि गुरु देते ज्ञान।
अन्तर्यामी साक्षी को, तब शिख लखै सुजान ॥१९०॥
साक्षी सदा सचेत जग, वसत सकल घट माँहि।
गति अनुकूलहि देत मति, मूरख जानत नाँहि ॥१९१॥
ज्ञान बिना सब साजते, भावी भव की साज।
मरते हैं पल एक में, आवत काज न लाज ॥१९२॥
तुम जनि भूलो साज में, अब संशय करु दूर।
सद्गुरु शरणे जाय के, पाइय सुख दुख दूर ॥१९३॥३४५॥

इति अवश्य ज्ञेयानुष्ठेय प्रकरण ४३

अथ सत्यात्मविवेक प्रकरण ४४

साँचा शब्द कबीर का, प्रगट कहैं जग माहिं।
जैसा को तैसा कहैं, सो तो निन्दा नाहिं ॥३४६॥

"पर स्वभाव कर्माणि न प्रशंसेन्न निन्दयेत्।" (भा० स्क० ११।२८।१) इत्यादि वाक्यों से अन्य के स्वभाव और कर्म की निन्दा और स्तुति के निषेध होते भी ज्ञानी भक्तादि की स्तुति और अज्ञ हिंसकादि की निन्दा क्यों की गई है? ऐसी जिज्ञासा होने पर कहते हैं कि कबीर का शब्द साँचा है और कबीर जगत् में सत्य शब्द को प्रगट सबके सामने कहते हैं और जो जैसा है, उसे वैसा ही कहा जाय, तो वह निन्दा नहीं कही जाती है। निन्दक झूठी बातों द्वारा परोक्ष में शत्रु आदि की निन्दा करता है, मित्रादि की स्तुति करता हैं, ऐसी बात यहाँ नहीं हैं ॥३४६॥

दृश्यमान सो विनशये, अदृश्यहि लखै न कोय।
नाहीं कोइ गाहक है, जाहि मिले सुख होय ॥३४७॥

नेत्रादि के विषय दृश्यमान प्रत्यक्ष पदार्थ विनश्वर मिथ्या हैं अदृश्य सर्वद्रष्टा आत्मा ही अविनाशी सत्य है। उस अदृश्य को ही सत्य स्वरूप, कोई अविवेकी गुरु विचारादि से विमुख मनुष्य नहीं लखता (समझता) है। न उसका कोई गाहक (जिज्ञासु) है कि जिसको वह अदृश्यात्मा मिले (प्राप्त ज्ञात हो) और उसको सुख हो। तथा जिसके मिलने से सत्संग विचारादिजन्य सुख अन्य को भी मिले, ऐसा ग्राहक बहुत कम हैं। उनके प्रति उपदेश के लिये जो शब्द हैं सो स्तुति निन्दारूप नहीं हैं ॥ ३४७ ॥

जो तैं चाहै मुझको, छाड़ सकल की आश।
मूझहि ऐसा होय रहु, सब कछु तेरे पास ॥३४८॥

उपदेश है कि यदि तुम मुझ (अदृश्यात्मस्वरूप) गुरु को प्राप्त करना चाहते हो, तो सब दृश्य की आशा को छोड़ दो और मुझहि ऐसा (मुझसा) असंग सत्यात्मनिष्ठ हो रहो, तो जो कुछ मोक्ष सुख तुम चाहते हो, सो सब तेरे पास में तेरा स्वरूप ही है। आशा, अज्ञानादि से दूर हुआ है ॥ ३४८ ॥

साँच बरोबर तप नहीं, झूठ बरोबर पाप।
जाके हृदया साँच है, ताके हृदया आप ॥३४९॥

अदृश्यात्मा की प्राप्ति आदि के हेतु तपों में साँच के बरोबर (तुल्य) अन्य कोई तप नहीं है, न झूठ के तुल्य ज्ञानादि का प्रतिबन्धक कोई पाप है । अतः जिसके हृदय में सत्य ही बसता है, उसके हृदय में अदृश्यात्मा आप ही प्रकट होता है "सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् ।" (मुण्डक० ३।१।५) ॥ ३४६ ॥

बना बनाया मानवा, बिना बुद्धि बेतूल ।
कहाँ लाल लै कीजिये, बिना वास का फूल ॥३५०॥

कुल जाति वेष वस्त्रालंकारादि से बना बनाया (सुशोभित) मनुष्य भी सत्य के ज्ञानादिरूप बुद्धि के बिना बेतूल (अयोग्य, तुच्छ) हुआ है । वेषादि के तुल्य व्यवहारादि बुद्धि के बिना नहीं कर सकता है । अतः गन्ध रहित लाल पुष्प तुल्य उस मनुष्य को लेकर क्या किया जा सकता है । अर्थात् ज्ञान स्वधर्मादि के बिना सब सुन्दरता आदि व्यर्थ है । अतः सत्यादि द्वारा ज्ञान की प्राप्ति करना चाहिये ॥ ३५० ॥

जासो दिल नाहीं मिला, शब्द न बेधा अंग ।
कहहिं कबिर कैसे बनै, हंस बके का संग ॥३५१॥

जिस सद्बुद्धि रहित मनुष्य से सत्पुरुषों का दिल नहीं मिला, न जिसके अंग (अन्तःकरण) में सार शब्द ही बेधा, तो कबीर साहब कहते हैं कि सद्गुरु सन्तरूप हंस के साथ उस बकवृत्ति का संग कैसे बन सकता है ॥ ३५१ ॥

हौं बिगराने ओर के, बिगरों नाहिं बिगारों ।
सब घट मेरो प्राण है, चोट काहि पर डारों ॥३५२॥

संग नहीं बन सकने पर भी सद्गुरु सन्त किसी का बिगार (अपकार हानि) नहीं करते हैं, क्योंकि उनका निश्चय रहता है कि हौं (सर्वात्मस्वरूप मैं) ओर के (अनादि काल के) बिगराने (विविक्त, पृथक्, असंग) स्वरूप हूँ । अतः मैं न कभी बिगड़ता हूँ, न कभी किसी को बिगाड़ता हूँ और सब घट में मेरी ही आत्मारूप प्राण है । फिर मैं चोट किस पर कैसे डारूँ (कोई कष्ट दे भी तो मैं किसी को कष्ट कैसे दूँ) इत्यादि ।

"शुद्धसन्मात्रसंवित्तेः स्वरूपान्न चलन्ति ये ।
रागद्वेषोदयाऽभावात्तेषां नाज्ञत्व सम्भवः ॥"(योगवा० प्र०४।११८।६)

शुद्ध सत्यात्मा मात्र के सम्यक् ज्ञान से जो अपने स्वरूप से विचलित नहीं होते हैं, उनमें राग, द्वेषादि की उत्पत्ति के अभाव से उनमें फिर अज्ञता नहीं होती है। वे लोग अज्ञ के व्यवहार किसी की हानि आदि नहीं करते हैं ॥३५२॥

ये करुवन्ती बेलरी, करुआ ही फल होय।
सिद्धनाम तब पाइये, बेलि बिछोहा होय ॥३५३॥

ये (माया अविद्यारूप पर अपकारादि) करुवन्ती (करुई) बेलरी (लता) रूप हैं और जन्म-मरणादि दुःखरूप करुआ ही फल इसमें लगते हैं। जब इन बेलियों से बिछोहा (वियोग) होय या बिछोहा (क्षोभ रहित) विद्या बेली की प्राप्ति हो, तभी सच्चा सिद्धज्ञानी नाम पाया जाता है ॥ ३५३ ॥

सिद्ध भया तो क्या भया, चहुँदिशि फूटी बास।
अंकुर बीज अन्तर में, फिरि जामन की आश ॥३५४॥

यदि अविद्यारूप बेली की निवृत्ति के बिना अणिमादि सिद्धिवाला सिद्ध हुआ तो इससे क्या फल मिला? क्योंकि ज्ञान रहित सिद्धि से चारो तरफ वासना कामनारूप वास फूटी (फैली) और फैलती है और अन्तर (अन्तःकरण में) कर्म, वासनादिरूप अंकुर बीज की वर्तमानता से (ज्ञानाग्नि के विना उनके नाश के अभाव से) फिर जन्म की आशा भी होती है ॥ ३५४ ॥

सबे हमारे देश के, बञ्चक भूले आय।
देखि शरद की चाँदनी, परे भुलाय भुलाय ॥३५५॥

यद्यपि सिद्ध साधक सब मनुष्य हमारे (ज्ञानी गुरु के) देश (उपदेश, मार्ग, स्थान) के अधिकारी हैं। परन्तु बञ्चक (ठग) विषय मनुष्यादि के संग में आकर सदुपदेश सुमार्ग और स्थान को भूले हुए हैं और शरद की चाँदनी तुल्य सिद्धि सम्पत्ति आदि को देखकर भूल-भटक में पड़े हैं। अर्थात् शरद की चाँदनी से रात्रि को ही प्रभात मानकर मनुष्य कहीं चले और रास्ते में मार्ग को भूल जाय, तैसे सिद्धि, सम्पत्ति को मोक्ष सुख मानकर कामादि से भूल में पड़ते हैं ॥ ३५५ ॥

जासो नाता आदि का, बिसरि गया सो ठौर।
चौरासी के वशि परे, कहत और की और ॥३५६॥

वञ्चकों के संग से भूलने ही के कारण जिस सर्वातमा से आदि का (सबसे प्रथम का) नाता (सम्बन्ध) है, सो सर्वाधार ठौर इन जीवों को बिसर (भूल) गया है और चौरासी लाख योनियों के वश में भूल से ही पड़े हुए हैं और की और बात कहते हैं। अनित्यानात्मादि को नित्यात्मादि विवेकादि के विना कहते और समझते हैं।

जो जन सद्गुरु से मिले, सो पाये पद पूर।
और बहे भवधार में, हरि जहाज से दूर ॥१९४॥
याते सद्गुरु से मिलो, जो विवेक फल युक्त।
उनका नित वन्दन करो, करत सोइ भव मुक्त ॥१९५॥
त्यागि विषय जड़ वन्दना, ज्ञानी वन्दत जोय।
ब्रह्मज्ञान निज ज्ञान लहि, शान्त मुक्त सो होय ॥१९६॥
काम अगिन मद के गये, शाप न लागत कोय।
ब्रह्मनिष्ठ विज्ञानि को, काल न देखत कोय ॥१९७॥
दृश्य पदारथ नशत हैं, आतम नाश विहीन।
सोइ ब्रह्म सर्वातमा, गहत मुमुक्षु प्रवीन ॥१९८॥
जो चाहो गुरु मिलन को, निज आतम का ज्ञान।
सब आशा तजि गाइये, गुरु गुण निर्मल जान ॥१९९॥३५६॥

इति सत्यात्म विवेक प्रकरण ४४

अथ ब्रह्मादि के प्रति माता का उपदेश प्रकरण ४५

ब्रह्मा पूछल जननि से, कर जोरि शीश नमाय।
कौन रूप वह पुरुष है, कहु माता समुझाय ॥३५७॥

अन्य की कथा ही क्या कहनी है ! ब्रह्मा आदि भी उस सर्वादि ठौर को भूले हुए थे, फिर उस आदि ठौर को समझने के लिये भ्राताओं के सहित ब्रह्माजी ने कर जोरकर और शिर नमाकर (प्रणाम करके) अपनी मातां गायत्री से पूछा कि हे माताजी ! वह सर्वादि सर्वाधार पुरुष कौन रूप वाला है, सो हमें समझाकर कहो (उसका उपदेश हमें दो) ॥ ३५७ ॥

रेख रूप जिहि है नहीं, अधर धरो नहिं देह।
गगन मण्डल के मध्य में, देखहु पुरुष विदेह ॥३५८॥

माता बोली कि जिस पुरुष का कोई रेख (आकार चिह्न) नहीं है, न शुक्लादि कोई रूप है। अतः जो अधर (शरीर रहित) है, कभी देह नहीं धरो (धरा) है। उस विदेह पुरुष को हृदयान्तर्गत गगन मण्डल में ध्यान से देखो (समझो)। अर्थात् "हृद्यन्तर्ज्योतिः पुरुषः। अशब्दमस्पर्शमरूपम्" इत्यादि वचनों के अनुसार रूपादि गुण रहित ज्ञानस्वरूप आत्मा ज्ञातव्य है ॥ ३५८ ॥

धरिन ध्यान गगन को, लाइन वज्र किवार।
देखी प्रतिमा आपनी, तीनों भये निहाल ॥३५९॥

उपदेश को सुनकर ब्रह्माजी आदि तीनों भाइयों ने इन्द्रियों के द्वारों पर, वज्र तुल्य किवार लगाया (मन इन्द्रियों का अच्छी तरह से निरोध किया) और हृदयाकाश में गगन तुल्य अखण्ड असंग सच्चिदानन्द चिदाकाश को ध्यान में धारण किया, तो अपनी प्रतिमा की तरह स्पष्ट स्वात्मस्वरूप पुरुष को जानकर तीनों भाई निहाल (कृतकृत्य जीवन्मुक्त) हो गये। भाव है कि ये ब्रह्मा आदि पृथिवी लोक के निवासी देव विशेष थे और ऐसे ब्रह्मा, विष्णु आदि अनेक होते-जाते रहते हैं। यह देवीभागवत में वर्णित ब्रह्मा आदि की कथा है। श्रुति है कि-

"यथाऽऽदर्शे तथाऽऽत्मनि यथा स्वप्ने तथा पितृलोके।
यथाप्सु परीव ददृशे तथा गन्धर्वलोके छायातपयोरिव ब्रह्मलोके ॥"(कठ.२।६।५)

दर्पण में स्पष्ट ज्ञान के समान मनुष्यलोक में शुद्धान्तःकरण में आत्मानुभव होता है। स्वप्न के समान अस्पष्ट ज्ञान पितृलोक में होता है। जल में विपरीत स्वरूप के समान गन्धर्वलोक में ज्ञान होता है और ब्रह्मलोक में छाया और आतप के समान अत्यन्त विविक्तरूप से आत्मज्ञान होता है। इस श्रुति के अनुसार यहाँ ब्रह्मलोकवासी ब्रह्मा का वर्णन नहीं है। "रजगुण ब्रह्मा तमगुण शंकर, सत्त्वगुणी हरि सोई" इत्यादि स्थानों में गुणकृत भेदाभासयुक्त विभु ईश्वरस्वरूप ब्रह्मा आदि का वर्णन है। ईश्वरस्वरूप ब्रह्मा आदि स्वभाव से ही सर्वज्ञ होते हैं, सो वैदिक ब्रह्मादिक हैं। "हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्" इत्यादि श्रुतियों में उनका वर्णन है। वैदिक ब्रह्मादि ज्ञानी ही होते हैं और अधिकारान्त में सब मुक्त हो जाते हैं। पौराणिक ब्रह्मा आदि उनके प्रतिरूपक अंशादि होते हैं, उनका वर्णन कबीर साहब अधिक करते हैं ॥ ३५९ ॥

अंकुर ते बीज बीज ते अंकुर, अंकुर बिजहिं सुधारै।
काया ते कर्म कर्म ते काया, बिरला जन निरुआरै ॥३६०॥

जैसे अंकुर (वृक्षादि) से बीज होता है और बीज से अंकुर होता है और फिर वह अंकुर बीज को सुधारता (बनाता, धरता) है। वैसे ही काया (देह) से कर्म और कर्म से काया होती है। इस अनादि बीजांकुर तुल्य प्रवाह के विच्छेदरूप निरुआर को विरले जन सिद्ध करते हैं ॥ ३६० ॥

कहहिं कबिर कैसे बने, बिनु करते की दाव।
ई तीनों मिलै नहीं, सूरति बोल सुभाव ॥३६१॥

कबीर साहब कहते हैं कि अनादि प्रवाह की निवृत्ति के लिये बिनु करते (कुछ यत्न नहीं करने वालों) की दाव (मुक्ति, विजय) कैसे बने। क्योंकि साधनाभ्यास करने के बिना सुरति (मनोवृत्ति) बोल और स्वभाव (दैहिक चेष्टा) ये तीनों नहीं मिलते हैं (एक नहीं होते हैं) और इनके मिलने के बिना दाव नहीं बनता है। अतः प्रथम निष्काम शुभ कर्म अभ्यासादि कर्तव्य हैं ॥३६१॥

ज्यों गिरि सायर मुकुर में, भींज भार कछु नाहिं।
ऐसे सुख दुख रहित है, ज्ञानी के घट माहिं ॥३६२॥

अभ्यासादि से दाव बनने पर जैसे दर्पण में पहाड़ समुद्रादि के प्रतिविम्ब होने पर भी दर्पण में गीलापन और भार बोझ गुरुत्व कुछ नहीं होता है। वैसे ही मिथ्या संसार की आत्मा में मिथ्या प्रतीति होने पर भी ज्ञानी के घट में आत्मा असंग निर्विकार ही प्रतीत होता है। ज्ञानी को आत्मा सुख दुःखादि द्वन्द्व रहित भासता है, सोई आत्मा का यथार्थ स्वरूप है ॥ २६२ ॥

अनुभव कूप अखण्ड जल, निगम कलस है चारि।
कहहिं कबिर ता नीर के, पण्डित सब पनिहारि ॥३६३॥

ज्ञानी तथा सबका अनुभव कूप है, उसमें व्यक्त चित्स्वरूप अखण्ड ब्रह्मात्मरूप जल है, चार वेद कलस है, विवेकी पण्डित सब पनिहारी हैं, प्राप्त करने वाले हैं। "प्रति बोधं विदितं मतममृतत्वं हि विन्दते।" (केन० २।४) प्रति बोध (सब ज्ञानवृत्ति) में जिसको आत्मा विदित ज्ञात निश्चित होता है, वह अमृतत्व को प्राप्त करता है ॥ २६२ ॥

द्वारे तेरे राम जी, मिलहु कबीरा मोहि।
तैं तो सब में मिलि रहा, मैं न मिलूँगा तोहि ॥३६४॥

हे कबीरा! (जीव!) तेरे द्वारे पर (नेत्रादि जन्य सब वृत्तियों में) सर्वात्मा राम जी प्रगट वर्तमान हैं। यदि तुम उनसे मिलना चाहो, तो प्रथम मोहि (मुझसे) सद्गुरु से मिलो। परन्तु तुम यह निश्चय जानो कि जब तक तुम सब संसार से मिल रहे हो, तब तक मैं तुझे नहीं मिलूँगा। अतः सद्गुरु से मिलने के लिये प्रथम सब संग आसक्ति को त्यागो ॥ ३६४ ॥

इन्द्र लोक अचरज भया, ब्रह्मा बड़ा विचार।
कबीरा चला राम पै, कौतुक कहर अपार ॥३६५॥

जब संगादि को त्यागकर, सद्गुरु से मिलकर यह मनुष्य तन धारी जीव द्वारस्थ राम से मिलने चला (राम की प्राप्ति के लिये चलकर राम के पास पहुँच गया) तब इन्द्र लोक में आश्चर्य हुआ (भोगासक्त देव आश्चर्य में पड़े) और ब्रह्मा जी बहुत विचार में लग गये और सर्वत्र कहर (गम्भीर) अपार कौतुक हो गया और होता है। अर्थात् यह अद्भुत अपूर्वकार्य है, मुमुक्षु के लिये यही कर्तव्य है।

सार शब्द गुरुदेव का, गुण अवगुण विलगाय।
नाशत भ्रम अज्ञान तम, निज आतम दरशाय ॥२००॥
सार शब्द सत ज्ञान बिनु, योगादिक कर कोय।
काल विवशता नहिं मिटै, भ्रम तम नाश न होय ॥२०१॥
सद्गुरु सदा असङ्ग हैं, अहित करत नहिं काहु।
ऐसी करि निज धारणा, करिय मोक्ष फल लाहु ॥२०२॥
माया मय कटु बेलि जग, द्वन्द्वहि कटु फल होय।
फल संयुत बेली तजै, सिद्ध मुक्त सो होय ॥२०३॥
ब्रह्मादिक धरि धारणा, पाइ मातु उपदेश।
रूपादिक से रहित नित, पाया उत्तम देश ॥२०४॥
उत्तम देश निजातमा, पावै गुरुमुख ताहि।
करि विचार धरि ध्यान उर, आन यतन ते नाहिं ॥२०५॥
बीज वृक्ष की रीति से, कर्म जन्म संसार।
है अनादि तिहि नाशये, करि बुध सार विचार ॥२०६॥

विनु विचार नहिं मुक्ति ह्वै, बनै न एको काम ।
तन मन वच की एकता, किये मिलै सत ठाम ॥२०७॥
सकल द्वन्द्व से रहित सो, ठौर निजातम रूप ।
करि विचार निगमादि के, अनुभव लह मुनि भूप ॥२०८॥३६५॥

त्यागी त्यागी सब कहै, और त्याग सब थोर ।
त्यागी तब ही जानिये, त्यागै घट का चोर ॥३६६॥

बाहर की वस्तुओं के त्याग से ही सब कोई अपने को तथा अन्य को त्यागी कहते हैं। परन्तु और (बाहर के) सब त्याग थोर (तुच्छ) हैं। सद्गुरु से मिलने योग्य सच्चा त्याग तब ही समझना चाहिये कि जब आशा, तृष्णा, काम, क्रोध, लोभादिरूप घट के सब चोर त्यागे जायँ और सो सब चोर विषय इन्द्रियादि से पर निजस्वरूप के ज्ञान विना त्यागे नहीं जा सकते हैं। अतः त्याग के लिये आत्मा ज्ञातव्य है (आत्मविवेक कर्तव्य है) और विवेकादिपूर्वक गुरु शरणागति से आत्मानुभव कर्तव्य है।

सर्व संग को त्याग कर, सद्गुरु शरण जु होय ।
सो पावै सब द्वार पर, राम निजातम जोय ॥२०८॥
जो सब द्वारन पर लखा, हृदयहु में निज रूप ।
तिहि लखि विधि इन्द्रादि को, कौतुक होत अनूप ॥२०९॥
और त्याग सब तुच्छ है, वाते मिलै न राम ।
आशा कामादिक तजै, राम मिलै गुरु धाम ॥२१०॥३६६॥

इति ब्रह्मादि के प्रति माता के उपदेशादि प्रकरण ४५

अथ दुराशा निवृत्ति का उपदेश प्रकरण ४६

बाट चढ़न्ती बेलरी, अरुझी आशा फन्द ।
टूटे पर छूटै नहीं, भया जो वाचा बन्द ॥३६७॥

जैसे अपने मार्ग से वृक्षादि पर चढ़ती हुई बेली (लता) के प्रतान तन्तु डालियों में अरुझते जाते हैं, सो टूटते हैं, परन्तु छोड़ाने से छूटते नहीं हैं। तैसे ही सद्गुरु राम की प्राप्ति के विना कर्मादि मार्ग से चलती हुई बुद्धि बेली

के काम आशा तृष्णादिरूप फन्द (फाँस प्रतान) लोक विषयादि में फँसते जाते हैं, सो निष्फल होते हैं, परन्तु नष्ट नहीं होते हैं । ज्ञानादि के बिना कामादि का अभाव नहीं होता है । इसमें यह भी कारण है कि अज्ञ गुरु आदि के साथ जो वाचा बन्द हुआ है (कौल करार किया गया है) अर्थात् अज्ञ गुरु माता पिता आदि काम आशा आदि को रखने ही के लिये प्रतिज्ञा कराते हैं । कि जिससे कामादि को त्यागना कठिन हो जाता है ॥ ३६७ ॥

गुरु गुरुअन में भेद है, गुरु गुरुअन में भाव ।
गुरु सदा सोइ वन्दिये, शब्द चिन्हावै दाव ॥३६८॥

उपदेश है कि सद्गुरु और अन्य गुरुओं में बहुत भेद (अन्तर) है, अतः इनमें भाव (तात्पर्य) का स्वभाव का भी भेद रहता है । अतः विवेकपूर्वक उस गुरु की सदा वन्दना करना चाहिये कि जो गुरु इन्द्रियादि से पर पाँच कोश के अन्दर वर्तमान सर्वसाक्षी को सार शब्द द्वारा चिन्हावे और कामादि शत्रु को जीतने के लिये दाव (युक्ति) बतलावे (सार शब्दरूप दाव) (उपाय) को समझावे ॥ ३६८ ॥

सारो जो जन बेधिया, निर्गुण सो गुण नाहिं ।
लागेउ चोट शब्द का, करक करेजे माहिं ॥३६९॥

जो जन (जिन सद्गुरु के भक्त जनों) में सद्गुरु का सारो (सार शब्द) बेध गया, सो निर्गुण (ब्रह्म) नित्यमुक्त स्वरूप हो गये, त्रिगुण देहादि के अभिमानी नहीं रहे । क्योंकि जिनको सार शब्द की चोट लगी उनके करेजा (हृदय) में वह सार ही करकता (चुभता) रहता है, देहादि गुण के होश को वह रहने नहीं देता है ॥ ३६९ ॥

सारा बहुत पुकारिया, पीव पुकारै और ।
लागेउ चोट शब्द का, रहा कबीरा ठौर ॥३७०॥

सद्गुरु कहते हैं कि मैंने निर्गुण सार वस्तु का ही बहुत प्रकार से पुकार कर उपदेश दिया है कि जिस निर्गुण सर्वसार को और लोग पीव (स्वामी, ईश्वर) कह कर पुकारते हैं । उसीको मैंने साक्षी आत्मा कहा है और इस सार शब्द की चोट जिसको लगी, सो कबिरा (जीव) सत्य ठौर में स्थिर रहा और रहता है, फिर असार संसार में नहीं आता है ॥ ३७० ॥

शब्द कहै सो कीजिये, गुरुआ बड़े लबार।
अपने अपने लोभ के, ठाम ठाम बटवार ॥३७१॥

अतः सार शब्दरूप वेदादि जो कहैं, सो कर्तव्य कर्म विचारादि करो। सर्व साक्षिस्वरूप आत्मा को जानकर कुकामादि को त्यागो और काम आशा आदि में फँसाने वाले गुरुआ लोग बड़े लवार (झूठे) हैं। सो अपने-अपने लोभ के मारे ठाम-ठाम (सब स्थान) में बटवारी (वञ्चकता) करते हैं। सर्वत्र बटवार (मार्ग निरोधक लुटेरा) होते हैं ! अतः उनके माया जाल से बचो ॥३७१॥

बरिया बीते बल घटे, केश पलट भौ और।
बिगरा काज समारि ले, कर छूटे नहिं ठौर ॥३७२॥

बल के घटने पर बरिया (बलीपन) गया। तथा बरिया (समय) बीता और केश श्याम से पलटकर और (सफेद) हो गये हों तो इस अवस्था तक भी हो सके तो बिगरे कामों (कार्यों इच्छा आदि) को श्रवणादि द्वारा सम्भाल लो और वह कार्य करो कि जिससे निज ठौर नहीं छूटे (आत्म स्थिति हो) तथा इस अवसर के कर (हाथ) से छूटने पर, फिर कहीं ठौर नहीं मिलेगा। अतः अभी सुधार सम्भार स्थिति करो।

आशा तजि गुरु वन्दिये, त्यागिय सकल कुसंग।
सार शब्द गुरु से लही, पाइय राम असंग ॥२११॥
निर्गुण राम असङ्ग को, सार शब्द के पाय।
निर्गुण राम हि होव जन, जन्मादिक मिटि जाय ॥२१२॥
सार शब्द जो कहत सोइ, करिये नित्य उपाय।
लोभी का संग त्यागिये, हरि गुरु करैं सहाय ॥२१३॥
अति हि शीघ्र सोइ कीजिये, जातै सम्हरै काज।
वृद्धहुँ को शुभ भजन से, मिलता सुखद समाज ॥२१४॥३७२॥

इति दुराशा। निवृत्ति का उपदेश प्रकरण ४६

अथ कर्तव्य शीघ्रता विधानादि प्रकरण ४७

काल्ह करन सो आजु कर, आजु करन ते अब्ब ।
पल में परलय होयगा, बहुरि करेगा कब्ब ॥३७३॥

"श्वः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिकम् ।
न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य न वाऽकृतम् ॥"

इस महाभारत वचनानुसार उपदेश है कि जो सत्कर्म विवादि काल्ह करना है, सो आज हो सकता हो, तो आज ही करो और जो आज साम को करना हो, सो अभी करो (सवेरे करो) क्योंकि पल में परलय (मरण) होगा, तो फिर कब क्या करोगे । मृत्यु तो इस प्राणी के कृताकृत कार्य की प्रतीक्षा नहीं करती है, अचानक मारती है । अतः बिगरे कार्यों को शीघ्र सुधारो ॥ ३७३ ॥

टाला टोली दिन गया, ब्याज बढ़न्ता जाय ।
न हरि भजये न खत फटै, काल पहूँचा आय ॥३७४॥

टालमटोल (कल्ह परले दिन) करते में बहुत दिन बीत गये और ब्याज (सूद) की तरह आगामी कर्म वासनादि बढ़ते ही जाते हैं और सर्वात्मा हरि को भजे बिना कर्मपत्र अविद्यादि नहीं नष्ट हुए, इतने में मरण काल आ पहुँचा, फिर कुछ किया नहीं जा सका ॥ ३७४ ॥

कबिर वैद्य बोलाइया, पकरि दिखाई बाहिं ।
वेदन वैद्य न जानई, कफ्फ कलेजे माहिं ॥३७५॥

जो वैद्य (गुरु) शिष्य के कलेजे में (हृदय में) वर्तमान अविद्या कामादिरूप कफ और तज्जन्य वेदन (वेदना पीड़ा) को तथा सार शब्दादिरूप वेदों को नहीं जानता है, उस वैद्य को बुलाकर और अपने बाँह (हाथ) को पकड़वा कर मनुष्यों ने देखाया, सद्गुरु से नहीं देखाया ॥ ३७५ ॥

राम नाम जान्यो नहीं, लागी मोटी खोरि ।
काया हाँडी काठ की, न वह चढ़ै बहोरि ॥३७६॥

सद्गुरु के बिना सब रोग की औषधिरूप राम नाम को लोग नहीं जान सके । अतः विपरीत औषधि आदि से और मोटी (भारी बड़ी) राग द्वेषादिरूप खोरी (दोष रोग) लग गया । जिससे कोई कार्य करने नहीं पाया और यह काया (देह) काठ की हाँड़ी तुल्य है । अतः दूसरी बार अग्नि तुल्य ताप पर

नहीं चढ़ती है, एक ही किसी ताप से नष्ट होती है। अतः सद्गुरु से मिलकर राम नामरूप औषधि की प्राप्ति कर्तव्य है।

"राम नाम की औषधी, सद्गुरु दई बताय।
औषधि खाय रु पथ रहै, ताकी वेदन जाय॥" (अंग की साखी)॥३७६॥

जानै सो पूछै नहीं, पूछि करै नहिं गौन।
अन्धे को अन्धा मिला, पन्थ बतावै कौन॥३७७॥

कुमार्गों में तापों से तप्त होता हुआ भी यह जीव मोहादिवश ब्रह्मज्ञानी आत्मज्ञ से ज्ञानमार्ग आदि नहीं पूछता है। दैवयोग से पूछने पर भी उपदिष्ट मार्ग से गमन नहीं करता है। किन्तु एक अन्धा (अज्ञ) दूसरे अन्धे को मिलता है, गुरु समझकर प्राप्त करता है, तो स्वर्ग-अपवर्ग के मार्ग को कौन किस को बतावै॥ ३७७॥

एक शब्द में सब कहा, सबही अर्थ विचार।
भजिये निर्गुण राम को, तजिये विषय विकार॥३७८॥

अन्य लोगों ने बहुत शब्द का विस्तार किया है, परन्तु सद्गुरु ने तो एक आधी साखीरूप ओंकार शब्द में ही सब ज्ञातव्य सगुण-निर्गुण अर्थों को जड़ चेतनादिरूप अर्थों को कहा है और सब अर्थ के विचारों को कहा है। अतः कबीर साहब कहते हैं कि ओंकारादि द्वारा सद्गुरु से निर्गुणराम को समझकर निर्गुण राम को भजो और माया के विकार कार्यरूप विषयादि को त्यागो तथा मन के विकार कामादि को त्यागो॥ ३७८॥

कबीर माया मोहिनी, भई अँधेरी लोय।
जे सूता तिहि मूसिया, रहे वस्तु को रोय॥३७९॥

राम भजन और विकारों के त्याग बिना जीवों को माया मोहनेवाली है कि जिससे लोक में अँधेरी भई है (अविद्या छा रही है) और इस अविद्यारूप रात्रि में जो मोहनिन्द से सूते हुए हैं उनके निर्गुण सुखस्वरूप को वह माया ने ही मूस लिया (आवरण विक्षेपशक्ति से तिरोहित कर दिया) है, छिपा दिया है। अतः रहे (वर्तमान) सुख वस्तु के लिये जीव रो रहे हैं। तथा सत्यात्मा के छिपने से अन्य वस्तु के लिये रो रहे हैं। अतः भजनादि अवश्य कर्तव्य हैं॥ ३७९॥

पहिले दही जमाइया, पीछे दुहिया गाय।
बछवा वाके पेट में, गोरस हाट बिकाय॥३८०॥

मोहनेवाली माया ने सबके हृदयों में प्रथम भूत-भौतिक स्थूल कार्यरूप दधि को जमाया (इनमें आसक्ति सत्यादि बुद्धि कराई) फिर सुख दुःख मोहरूप या काम, क्रोध, लोभरूप दूध अविद्या बुद्धिरूप गाय से दूहा (प्रकट किया) तब सबके निमित्त कारणरूप बछवा तुल्य सर्वात्मा हरि उस माया अविद्या बुद्धि कोशरूप गाय के पेट में (अन्दर में) छिप गया (गर्भगत वत्स के समान अदृश्य अलक्ष्य) हो गया। अतः संसाररूप हाट में इन्द्रियरूप गौ के लिये विषयजन्य मिथ्या आनन्दरूप रस ही बिकता है (कर्मादि द्वारा मिलता है) ब्रह्मानन्द नहीं ॥३८०॥

देखी तो सब कहत हैं, अनदेखी नहिं कोय।
अनदेखी तो सो कहै, भीतर पैठा होय ॥३८१॥

उक्त गौ के अन्दर सर्वात्मा के छिप जाने से देखी (दृश्य) अनात्मा की बात को तो सब कहते हैं। अनदेखी (अदृश्य) की बात कोई नहीं कहते हैं। उस अदृश्य की बात सोई कहेगा, कि जो विवेक विज्ञान द्वारा उक्त गौओं के भीतर पैठा होगा। अतः वही सद्गुरु होगा, अन्य नहीं ॥ ३८१ ॥

चिड़िया तो तिलभर नहीं, डैना है नव हाथ।
भरि भरि मांस परोसई, खलरि अठारह हाथ ॥३८२॥

"बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च।
भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते ॥ (श्वेता० ५।९)

बालाग्र के शतभाग (सौ भाग) के कल्पित शतभाग के तुल्य भाग जीव सूक्ष्मस्वरूप सूक्ष्म शरीररूप उपाधि से है और स्वरूप से अनन्तता के लिये समर्थ है। अतः सूक्ष्म शरीरवाला उड़ाकू जीवरूप चिड़िया तो तिलभर भी नहीं है, तो भी उसकी गति के साधनरूप डैना (पाँख) चार अन्तःकरण और पाँच प्राणरूप नव हाथ का है और पाँच भूत, दश इन्द्रिय, तीन गुणरूप अठारह हाथ की खाल है। इनमें ही भर-भरकर माया जीवों के लिये विषयरूप मांस परोसती है, फिर उसके भोग में भूला हुआ जीव भीतर नहीं पैठने पाता है, न आतमाराम को देखता है ॥२८२॥

चींटी निकलि बजार में, नव मन कज्जल लाय।
हाथी लिहिस गोद में, ऊँट लिहिस लटकाय ॥३८३॥

जीव के भीतर नहीं पैठने से बुद्धिरूप चींटी बाहर संसाररूप बाजार में निकली है और नवधा पाप संसाररूप काजर लाई (प्राप्त की) है और मस्त

हाथीरूप मन को अपने गोद में लिया है और अहंकारादिरूप ऊँट को भी लटका लिया है। दुर्बुद्धि की अज्ञान से सर्वथा बाह्य प्रवृत्ति होती है। माया मनरूप से संसार में निकली है, ब्रह्माण्ड को गोद में लिया है, विराट देवादि को लटकाये फिरती है। मन-माया ही चित्सत्ता से अनायास सब कार्य करती है, ब्रह्मात्मा असङ्ग रहता है ॥ ३८३ ॥

तीन लोक लीटी भया, गीध लिये मड़राय।
मैं तोहि पूछौं पण्डिता, कौन वृक्ष चढ़ि खाय ॥३८४॥

उपदेश देकर अन्त में शिष्य की परीक्षा लेना चाहिये इस आशय से प्रश्न है कि तीनों लोक एक लीटी हुआ है और उसे लेकर अशुद्ध मनरूप गीध मड़राता (घूमता) है। अर्थात् लोक देहादि की वासना से मन भटक रहा है और मन के अधीन जीव चक्कर लगा रहा है। हे पण्डितों! (विवेकी शिष्यों!) मैं तुमसे पूछता हूँ कि वह कौन वृक्ष पर चढ़कर वासनाओं के अनुसार लीटी को खाता है (तीनों लोकों के भोगों को किसके आश्रित रहकर भोगता है। भोक्ता भोग्य और भोग का आधार कौन है? या ये निराधार हैं ॥ ३८४ ॥

आँगन बेलि आकाश फल, अनव्यानी के दूध।
शशा सींग के धनुष करि, खेले बाँझक - पूत ॥३८५॥

इति श्रीसद्गुरुकबीरकृते विविधबन्धबीजविध्वंसने बीजकनाम्नि ग्रन्थे साक्षिस्वरूपप्रदर्शकं नामैकादशमं साखीप्रकरणं समाप्तम् ॥११॥

*** समाप्तश्चायं ग्रन्थः ***

शिष्य कहता है कि हृदयरूप आँगन में मन-माया बुद्धिरूप बेली लगती है और चिदाकाश में अर्थादिरूप सुख-दुःखरूप फल लगते हैं (प्रतीत होते हैं) सो फल अनव्यानी (बाँझ) गौ के दूध समान मिथ्या कल्पित होते हैं। तो भी उसके लिये वन्ध्या माया के पुत्ररूप मन जीव सब शशशृङ्ग तुल्य शास्त्रादि कर्मादि के धनुष बनाकर शिकार खेल रहे हैं। अर्थात् चिदाकाश में ही माया से भोक्ता भोग्य भोगादि सब सिद्ध होते हैं। अतः मिथ्या सब त्रिपुटी का चिदात्मा ही आधार और अधिष्ठान है, अन्य नहीं। वही सर्वसाक्षी सत्यात्मा है।

भक्ति बिना दिन टालते, में दिन गये अनन्त।
कर्म बढ़ा नहि भय मिटा, पहुँचा काल तुरन्त ॥२१५॥

राम मिला नहि गुरु बिना, पड़ा दोष शिर भार ।
याते मिलि सतगुरुन सें, नाशिय दोष बिकार ॥२१६॥
भजिये निर्गुण राम को, तजिये विषय विकार ।
करि सत्संग विचार नित, रामहि गहिय सँभार ॥२१७॥
विनु सुविचार सँभार के, माया मोहै लोय ।
मोह नीन्द से सुप्त नर, चलता सब सुख खोय ॥२१८॥
सुख सुविवेक विहीन के, मन में कार्य जमाय ।
रागादिक कारणहुँ पुनि, माया प्रकट कराय ॥२१९॥
सब निमित्त कारण हरी, रागी जन से दूर ।
ह्वै माया कृत मोह में, भासत नहि भर पूर ॥२२०॥
ताते दृश्यहि कहत हैं, पावत सो सब कोय ।
करि विवेक सत को लखै, सो अदृश्य रत होय ॥२२१॥
दृश्य निरत लह विषय सुख, मन इन्द्रिय वश प्राणि ।
लह अदृश्य रत ब्रह्म सुख, चिदाकाश विज्ञानि ॥२२२॥
अविनाशी निज आतमा, ब्रह्म साक्षि सो देव ।
सद्गुरु से तिहि जानिये, सोइ ईश हरि सेव ॥२२३॥
निर्गुण निर्मल जो भये, नाविक जन हित लागि ।
सो पर ब्रह्म कबीर गुरु, ताहि भजिये अनुरागि ॥२२४॥
सद्गुरु सुखद कबीर सत, नाविक परम अनूप ।
ध्यान किये तिनके सदा, परै न जन भव कूप ॥२२५॥
श्री रमिता गुरु राम ही, श्री हरिहर गुरु एक ।
और शकल गुरु ब्रह्मवर, राखी जन की टेक ॥२२६
वन्दौं ईश दयालु को, गुरुजन को प्रणमामि ।
समता से ममतादि तजि, अचल अमल समरामि ॥२२७॥
बन्दौं सद्गुरु पद कमल, हरण सकल भव जाल ।
सनमुख भै जन को करैं, क्षण में परम निहाल ॥२२८॥
बीजक सारोद्धार यह, भव से करि उद्धार ।
श्रवण करैं उन सन्त को, पहुँचावै भव पार ॥२२९॥३८५॥

इति श्रीमत्स्वामिहनुमद्दासषट्शास्त्रिविरचित बीजकसारबोधिनी टीका
एकादश साखी प्रकरण ॥ ११ ॥

❀ ओम् राम ❀

❀ श्रीसद्गुरु कबीर साहब कृत बीजक ❀

बीजकसारबोधिनी टीका सहित

अथ

परिशिष्ट साखी प्रकरण १२

साखि पुरन्दर ढहि परे, बिबि अक्षर युग चार ।
रसना रम्भण होत है, करि न सकै निरुआर ॥१॥

साक्षीस्वरूप पुरन्दर (इन्द्र परमात्मा) से ढह (गिर) कर जीव संसार में पड़े हैं और इनकी रसनाओं से बिबि (द्वैतमय या राम, शिव, हरि आदि दो-दो) अक्षरों का ही आरम्भण (उच्चारण) चारो युगों में होता है । अतः विवेकादि के बिना संसार का निरुआर (अभाव) नहीं कर सकते हैं । संसार दुःख की निवृत्ति के लिये विवेकादि कर्तव्य हैं ॥ १ ॥

केते मनवौं पाँव परि, केते मनवौं रोय ।
हिन्दू पूजै देवता, तुरुक न काहुक होय ॥२॥

सद्विवेक परमात्म भजनादि के लिये, पाँव परकर रोकर कितना हूँ मनाने (समझाने) पर भी जन्मान्तरवादी हिन्दू देवताओं को पूजते हैं, नास्तिक तुरुक तो किसी के भक्त पूजक नहीं होते हैं, किसी के उपदेश को नहीं मानते हैं ॥२॥

धीमर जाल पसारि के, आपु गया अरुझाय ।
ताके पाछे मच्छ सब, जाले जाल समाय ॥३॥

वञ्चक गुरु देवादिरूप धीमर शब्दजाल मायाजाल पसार कर उसमें आप अरुझाय (फँस) गये । उनके पीछे मछली की तरह जीव सब जाल से जाल में समाने लगे । माता पिता आदि जिस मोह जाल में रहते हैं, पुत्र पौत्रादि स्वभाव से उसमें प्रवृत्त हुए और होते हैं । विवेकी भक्त कोई विरल होता है । नास्तिक कहते हैं कि आचार्य लोग योग ध्यानादिरूप पाखण्ड रचकर पर वञ्चनार्थ

उसमें आप फँस गये इत्यादि। परन्तु सो कहना यहाँ नहीं है। क्योंकि सर्वस्व त्यागादि से वञ्चना नहीं होती है और आचार्यों ने सर्वस्व त्यागादि किया है। विशेष (कुसुमाञ्जलि) में देखिये ॥ ३ ॥

साधू राम न मीलिया, पहुँचे जाय अनन्त।
कहहिं कबीर पुकारि के, गावहु जाय वसन्त ॥४॥

शब्दजाल मायाजाल में फँसने से जीव सब साधु (सच्चे) राम से नहीं मिल सके तथा साधु कहाने वाले भी राम से नहीं मिल सके किन्तु अनन्त लोकादि में जाय पहुँचे। अतः कबीर साहब पुकार के कहते हैं कि अब भी सत्संगादि में जाकर वसन्त (सर्वनिवासी सर्वाश्रय) राम को गावो, ध्यावो, भजो, जानो ॥४॥

नारि कहावै पीव की, रहै और संग सोय।
जार मीत हृदया बसै, खसम खुसी क्यों होय ॥५॥

सद्गुरु परमात्मा की नारी (भक्त) कहाते हैं, परन्तु प्रायः और (अनात्मा) देव विषयादि के संग में मनुष्य सोय (आसक्त) रहते हैं और जार (जूर्णता युक्त) विनश्वर असत पति ही सदा हृदय में बसता है, तो खसम (आकाश तुल्य) असंग विभु साक्षीस्वरूप खुसी (प्रसन्न) प्रत्यक्ष कैसे हो ॥ ५ ॥

साँच कहों तो मारिया, झूठहिं लागु पियारि।
मो शिर ढारे ढेकुरी, सींचै और कियारि ॥६॥

सत्य साक्षीरूप स्वामी के उपदेश कहने पर भी अविवेकी लोग मारते हैं। क्योंकि उनको झूठ (मिथ्या) ही प्रिय लगता है। वे लोग मो शिर (गुरु के शिर पर) ढेकुरी ढार (धर) कर अन्य की कियारी को सींचते हैं, (गुरु ईश्वर के नामों को लेकर अनात्म रत रहते हैं) ॥ ६ ॥

दृष्टि हि माहिं विचार है, बूझै बिरला कोय।
चरम दृष्टि छूटै नहीं, ताते शब्दी होय ॥७॥

सत्य शब्द को मानने वालों के लिये दृष्टि (ज्ञानरूप मनोवृत्ति) में ही आत्मविचार सुलभ है। परन्तु इस विचार की रीति को कोई बिरला ही बूझता है, जो देहाभिमानरूप चर्मदृष्टि को त्यागता है और सो चर्मदृष्टि लोगों की छूटती नहीं है। अतः केवल शब्दी (शब्द कहनेवाले) होते हैं, सत्यात्मा को

नहीं समझते हैं। तथा दृष्टिगत के विचार को जानने पर चरम (अन्तिम) ज्ञान दृष्टि नहीं छूटती है अतः वह ज्ञानी शब्द का अधिष्ठान होता है, नामधेय मात्र नहीं होता है ॥ ७ ॥

साधु भया तो क्या भया, बोलै नाहिं विचार।
हते पराई आतमा, जीभ लिये तरवार ॥८॥

साधु भया (साधु का वेष किया) तो क्या भया (कौन फल मिला) यदि विचार कर बोलना नहीं जानता है। तो वह जीभरूप तरवार लेकर पराई (अन्य की) आत्मा (देहमन) को हतता (पीड़ित करता) है। अतः साधु को विचार कर सत्य मधुर हित ही बोलना चाहिये ॥ ८ ॥

मधुर वचन है औषधी, कटुक वचन है तीर।
श्रवण द्वार ह्वै संचरै, शालै सकल शरीर ॥९॥

सत्यहित मधुर वचन औषधि का काम करता है। क्रुद्ध तप्त को शान्त करता है और कटुक, क्रूर, परुष वचन तीर का काम करता है। क्योंकि वह कटुक वचन श्रवण (कान) द्वारा होकर शरीर के अन्दर संचार (प्रवेश) करता है और सम्पूर्ण शरीर में शालता (शूल पीड़ा उत्पन्न करता है) है ॥ ९ ॥

हीरों की बोरी नहीं, मलयागिरि नहिं पाँति।
सिंहों के लेहँड़ा नहीं, साधु न चलैं जमात ॥१०॥

हीरों की बोरी (भारी बोरा) नहीं होती है। मलयागिरि की पाँति (पंक्ति) नहीं होती है। न सिंहों के लेहड़ा (जूथ झुण्ड) होता है। वैसे ही विचारवान् साधुओं की जमात नहीं चलती है ॥ १० ॥

ढाढस देखु मरजिव के, धसिकै पैठि पताल।
जीव अँटक मानै नहीं, ले गहि निकला लाल ॥११॥

(जो बन सायर मूझते, रसिया लाल कराहिं) इस साखी के अनुसार संसार समुद्र में अमूल्य लाल (रत्न) जानकर इसमें गोता लगाने वाला मरजीवा के ढाढस (साहस हिम्मत) को देखो (समझो) कि यह सुख सम्पत्ति आदि के लोभ से पापादि करके गर्भ नरकादि कठिन पाताल में धस (गिर) कर पैठ जाता है और वहाँ गोताखोर के समान जो अँटक लगता है (कठिनाई होती है)

उसको नहीं मानता (समझता) है। किन्तु पुनः देह विषय कामादिरूप लाल (रत्न) लेकर निकलता है (देहादि को ही आत्मरत्न सुखादि समझता है) ॥११॥

रे मरजीवा अमरित पीवा, का धसि मरै पताल।
गुरु की दया साधु की संगति, निकसि आव यहि द्वार ॥१२॥
दश द्वारे का पींजड़ा, ता में पक्षी पौन।
रहवे को आश्चर्य है, जात अचम्भा कौन ॥१३॥

गुरु कहते हैं कि रे मरजीवा ! (मर-मर कर जीने वाले) अमृत (ब्रह्मानन्द) को जीते ही पीवो। पाताल में धँसकर (डूबकर) क्या मरता है। गुरु की दया और साधु की संगतिरूप इस श्रेष्ठ द्वार से पाताल से निकल आवो ॥१२॥

दश द्वार वाला पींजड़ा के समान दश द्वार वाला शरीर है और उसमें पौन (प्राण) पक्षी के समान है। वह प्राण इस देह में रहता (विलसता) है, सोई आश्चर्य है, जाने में नहीं। अतः सत्सङ्गादि करके शीघ्र पाताल से निकलो ॥१३॥

जब लगि दिन पर दिल नहीं, तब लगि सब सुख नाहिं।
चारिउ युगन पुकारिया, सो संशय दिल माहिं ॥१४॥

जब लगि (जब तक) दिन (समय, धर्म या दीन जन) पर दिल (मन, ध्यान) नहीं देता है, तब तक सब सुख (मोक्ष) नहीं मिलता है। अतः महात्माओं ने चारों युगों में मोक्ष के साधनों को पुकार कर कहा है, परन्तु दिन पर दिल के देने के बिना मोक्ष का संशय ही दिल में रहता है। अर्थात् मानव तन सम्बन्धी समय को स्वधर्मानुष्ठान दीन पर दया युक्त बिताने से निष्काम को मोक्ष का संशय नहीं होता है, अन्य को संशय होता है ॥ १४ ॥

बूझो करता आपना, मानो वचन हमार।
पाँच तत्त्व के भीतरे, जिसका यह विस्तार ॥१५॥

दिल पर दिन लगा कर अपने स्वरूप कर्ता को बूझो (समझो) और समझने के लिये हमारे (सद्गुरुओं) के वचनों को मानो (विचारो) वह कर्ता पाँच तत्त्व के कार्यरूप देह के भीतर में भी वर्तमान है, कि जिसका कार्यरूप यह बाहर भूत भौतिक सब विस्तार है, अतः बाहर भी सर्वत्र वर्तमान है। उसको विचारादि से समझो ॥ १५ ॥

हम कर्ता तिहुँलोक का, हम पर दूसर नाहिं।
कहहिं कबिर हम नहिं चिन्हे, सकल समाना ताहि ॥१६॥

और समझो कि हम (हमारी आत्मा) ही माया अविद्या कर्मवासना आदि द्वारा तीनों लोक (सब संसार) का कर्ता हैं और हम (आत्मा) से पर (उत्तम भिन्न) सत्य दूसरी कोई वस्तु नहीं है। कबीर साहब कहते हैं कि जब तक हम (आत्मा) को प्रत्यक्ष नहीं चीन्हता (समझता) है तब तक राग द्वेषादि सब द्वन्द्व और जन्मादि, कामादि सब संसार विकार उस जीव में समाये रहते हैं। आत्मज्ञान के बिना द्वन्द्वादि नहीं निवृत्त होते हैं। अतः आत्मा ज्ञातव्य है ॥ १६ ॥

सिंह अकेला बन रमै, पलक पलक करु दौर।
जैसा बन है आपना, तैसा बन है और ॥१७॥

जैसे सिंह वन में अकेला निर्भय विचरता है और समझता है कि जैसा मेरा वन है, वैसा ही अन्य भी है। तैसे ही ज्ञानी भी संसार में असंग अकेला रमता है और पल-पल में दौर (गौर = विचार) करता है कि जैसा यह अपना संसार मिथ्या है, ऐसा ही सब लोकादि मायामय हैं। अतः किसी लोकादि की आशा आदि नहीं करता है ॥ १७ ॥

जो जियरा अकसर बसै, आश न राखै कोय।
कहहिं कबिर तिहि दुचित का, मिला मिलाया सोय ॥१८॥

जो जियरा (जीव) अकसर (एकात्मनिष्ठ होकर अकेला एकान्त में) बसे और कोय (कोई) आशा नहीं रखे। कबीर साहब कहते हैं कि उसको दुचित (दुविधा संशय) क्या है, वह तो परब्रह्म से मिला मिलाया है ॥ १८ ॥

घर मँह बैठा आप विराजे, बाहर दीसै सोय।
खोजि खोजि सब थकित भये हैं, पार न पावै कोय ॥१९॥

एकान्त वासी ज्ञानी की दृष्टि में जो आत्मा ब्रह्म घरों (देहों) में बैठा आप साक्षीस्वरूप से विराज (प्रकाश) रहा है। सोई बाहर अनन्तरूप से दीखता है। अज्ञ जीव उसको दूर दूसरा समझकर खोज-खोजकर थाक गये हैं, परन्तु कोई पार नहीं पाते हैं। दूर दूसरा समझकर खोजने से खोज की निवृत्ति नहीं होती है, जिज्ञासा बनी ही रहती है ॥ १९ ॥

भक्ति भक्ति सब कोइ कहै, भक्ति न आई काज ।
जहँ के किया भरोसवा, तहँ ते आई गाज ॥२०॥

भिन्न दूरादि मान कर खोजने वाले भी भक्ति भक्ति सब कोई कहते हैं और सकाम भक्ति करते भी हैं। परन्तु भेदभाव राग द्वेषादि की निवृत्ति के विना वह भक्ति वस्तुतः काज नहीं आई, किसी सत्य कार्य का हेतु नहीं हुई। क्योंकि लौकिक फलाशा युक्त भक्ति से सत्य फल नहीं मिलता है और जहाँ (जिस लोकादि) के भरोसा (आशा) किया, वहाँ से भी गाज (गर्जना, फटकार या उच्छिष्ट फेन) भुक्तोपभुक्त विषयांश ही आये (प्राप्त हुए) शुद्धानन्द नहीं मिला। अतः निष्काम सर्वात्मभक्ति कर्तव्य है ॥ २० ॥

समुझो भाई ज्ञानियों, काहु न कहा संदेश ।
जोइ गये बहुरे नहीं, है वह कैसा देश ॥२१॥

हे भाई ! ज्ञानियों से उसी सन्देश (उपदेश) को समझो कि जिस सन्देश को अब तक तुझे कोई नहीं कहा है और जोई उस देश में गये, सोई बहुरे नहीं। उस देश (स्वरूप) को समझो कि वह देश कैसा है ? अन्य की आशा नहीं करो ॥२१॥

धोखे सब जग बीतिया, धोखे गई सिराय ।
थिति नहिं पकरै आपनी, यह दुख कहा न जाय ॥२२॥

अन्य की आशा के त्यागपूर्वक जो अपनी आत्मा में स्थिति को नहीं पकड़ता है, वह सब संसारी धोखे-धोखे (भ्रमों) में बीता (मरा) और धोखे में उसके सब आयु कर्म, धर्म सिराय (समाप्त हो) गये, व्यर्थ जीवन गया। फिर जो यह दुःख होता है, सो कहा नहीं जा सकता है ॥ २२ ॥

राम कहत जग बीतिया, कोई भया न राम ।
कहहिं कबिर जिन राम ही, तिनके भै सब काम ॥२३॥

राम को भिन्न दूर मान कर राम कहते-कहते सब संसारी बीता (मरा) परन्तु कहनेमात्र से कोई सत्य रामस्वरूप नहीं हुआ। किन्तु सब आशा को त्याग कर अपनी आत्मा में स्थिति को पकड़ने से जो रामस्वरूप ही हो गये, कबीर साहब कहते हैं कि उनके सब काम (कार्य, इच्छा) भी पूर्ण (समाप्त) हो गये, वे लोग कृत कृत्य तृप्त मुक्त हो गये ॥ २३ ॥

माया ते मन ऊपजे, मन ते दश अवतार।
ब्रह्म विष्णु धोखे गया, भरम पड़ा संसार ॥२४॥

माया (ईश्वर) से समष्टि मन (समष्टि बुद्धि उपाधिवाला हिरण्यगर्भ) उत्पन्न होता है और उससे विराट की उत्पत्तिपूर्वक दश अवतार होते हैं। उन व्यक्त अवतारों में तथा मन में ब्रह्म और विष्णु (ईश्वर) पन के धोखे में सब संसारी गया और भ्रम में पड़ा तथा ममतारूप माया से संकल्प विकल्परूप मन उत्पन्न होता है। मन से दश इन्द्रियों का अवतार होता है। इन्द्रियों की वशवर्तिता से संसारी सत्य ब्रह्म विष्णु को नहीं समझकर धोखे में गया भ्रम में पड़ा है॥ २४ ॥

देवन देखा सेवकहि, सेवक देवन दीख।
कहहिं कबिर मरते दिखो, यह गुरु देई सीख ॥२५॥

आत्मस्थिति के बिना देव लोग सेवकों की आशा करते हैं और सेवक (देव भक्त) देव सबको अमर आनन्दमय जानकर उनकी आशा करते हैं। अर्थात् देव सब भक्तों से भेंट पूजा चाहते हैं और भक्त लोग देव से सुख सम्पत्ति चाहते हैं। तहाँ कबीर साहब कहते हैं कि सम्पत्ति आदि सहित इन देवादिकों को मरते (विनश्वर) देखो, समझो और किसी की आशा नहीं करो, यह सद्गुरु ने शिक्षा दी है। इसे याद रखो ॥२५॥

तेरी गति तैं जानै देवा, हममें समरथ नाहिं।
कहहिं कबिर यह भूल सबन की, सब परु संशय माहिं ॥२६॥

तुम अपनी गति (मुक्ति) का हेतु देवताओं को जानते हो और समझते हो, कि हम में मोक्ष के लिये सामर्थ्य नहीं है। कबीर साहब कहते हैं कि यह तुम सबमें भूल की बात है। अतः अपने सामर्थ्य को जाने बिना सब संशय में पड़े हो, विचारादि शक्ति तुम में है, विचारादि करके निःसंशय बनो ॥ २६ ॥

खालि देखिके भरमिया, ढुँढ़त फिरै चहुँ देश।
ढूँढ़त ढूँढ़त मर गये, मिला न निर्गुण वेष ॥२७॥

अपने को राम ब्रह्म विष्णु से खाली (रहित) देख (जान) कर लोग भ्रम में पड़ गये हैं (अन्यत्र राम को समझा है) अतः चारो तरफ देशों में रामादि को ढूँढ़ते फिरते हैं और इस प्रकार ढूँढ़ते-ढूँढ़ते कितने मर गये, परन्तु निर्गुण वेष (उत्तम स्वरूप) नहीं मिला, न मिल सकता है ॥ २७ ॥

बूझ आपनी थिर रहै, योगी अमर सु होय।
अब बूझै भरमहिं तजै, आपै और न कोय ॥२८॥

अपनी गतिरूप अपने सत्य स्वरूप को जानकर जो ज्ञानी योगी स्थिर रहता है। सो अमर (मुक्त) होता है। अतः अब ही अपने सत्य स्वरूप को गुरु आदि द्वारा बूझै (समझै) और देहादि में आत्मबुद्धि आदिरूप भ्रम को त्यागे, तो आत्मा ही आत्मा सत्य रहता (भासता) है, दूसरी कोई वस्तु सत्य नहीं प्रतीत होती है ॥ २८ ॥

देखा देखी सब जग भरमा, मिला न सद्गुरु कोय।
कहहिं कबीर करत नित संशय, जियरा डारा खोय ॥२९॥

दूसरे के देखा देखी से स्वयं विचारादि नहीं करने के कारण सब संसारी भ्रम में पड़ा है, देहादि के अभिमानी हुआ है और कोई सद्गुरु से भी नहीं मिला, न मिलता है। कबीर साहब कहते हैं कि इसी से सदा संशय करता है और जियरा (जीवन) को व्यर्थ खोय दिया है और खोता है ॥ २९ ॥

काकी आश लगाइया, झूठी हाँ की आश।
गृह तजि बनखण्ड मानिया, युग युग फिरै निराश ॥३०॥

उपदेश है कि प्रत्यक्ष साची स्वरूप सद्गुरु को छोड़कर विचारादि नहीं कर के किसकी आशा लगाये (किये) हो। हाँ (वहाँ) उस दूर देशादि की आशा झूठी (निष्फल) होती है। क्योंकि आशा को त्यागे बिना घर को त्यागकर तप के लिये बनखण्ड को मानने (स्वीकार करने) वाले भी युग-युग में निराश (हताश) होकर फिरते (भटकते) हैं तथा आशा के झूठ होने से विरक्त ज्ञानी गृह को त्याग कर बनखण्ड को माना है और सदा निराश होकर विचरते हैं ॥ ३० ॥

नेव के विचले सब घर विचला, अब कछु नाहिं बसाय।
कहहिं कबिर जो अबकी समुझै, ताको काल न खाय ॥३१॥

जैसे घर के नेव (नीव जड़) के विचलित होने पर सम्पूर्ण घर विचलित होता है (गिर जाता है) तैसे सब सुख साधन के मूल मानव तन के विचलने (आशादिवश व्यर्थ नष्ट होने) पर सब घर विचलता है (सब देह में स्थिरता

का अभाव और कष्ट होता है) अब फिर कुछ बसाय (बौसाय, जोर) नहीं चलता है वश की बात नहीं रहती है। अतः कबीर साहब कहते हैं कि जो कोई अबकी (इस देह में) सन्मार्ग सत्यात्मा को समझता है, उसको काल नहीं खाता है, वह स्थिर पद को पाता है। अतः समझना चाहिये ॥ २१ ॥

राम रहे बन भीतरे, गुरु की पूजि न आश।
कहहिं कबिर पाखण्ड सब, झूठे सदा निराश ॥२२॥

जैसे श्री रामचन्द्रजी बन के भीतर रहे और उनके गुरु (पिता) दशरथ जी ने उन्हें राजगद्दी पर आसीन (बैठे) देखने की आशा की थी, सो गुरु पिता की आशापूर्ण नहीं हुई। तैसे अज्ञानी के आत्मा राम संसार बन के भीतर रहता है, तहाँ गुरु की आशापूर्ण नहीं होती है और वे अज्ञानी पाखण्डी झूठे सब जीव सदा निराश (हताश) होते हैं। अतः कबीर साहब कहते हैं कि पाखण्ड झूठादि को त्यागकर गुरु की आशा को पूर्ण करना चाहिये ॥ २२ ॥

बिना रूप बिनु रेख को, जगत नचावै सोय।
मारे पाँचो जो नहीं, ताहि डरै सब कोय ॥२३॥

रूप और रेख (आकार) के बिना जो राम है, सो राम ही मन माया द्वारा सब जगत को नचाता है और जो जीव पाँच ज्ञानेन्द्रियों को नहीं मारते (वश करते) हैं। तथा अविद्या, अस्मिता (अविवेक), राग, द्वेष, अभिनिवेश (अभिमान) को नष्ट नहीं करते हैं, सो जीव सब उस निजात्मरूप राम से ही डरते हैं। "भयादस्याग्निस्तपति।" (कठ० २।६।३) ॥ २३ ॥

डर उपजा जिय है डरा, डरते परा न चैन।
देखा रामहि है नहीं, यही कहै दिन रैनि ॥२४॥

जितेन्द्रिय विवेकी होने के बिना जीवों के मन में डर (भय) उत्पन्न हुआ और अब भी जिय (मन) डरा (भयभीत) है। जिस डर से कभी चैन (आराम) नहीं परा (प्राप्त हुआ) है और राम ही को अबतक कभी देखा नहीं है, तो चैन पड़े भी कैसे ? राम का दर्शन ही सब चैन (आनन्द) का मूल है। यही सब शास्त्र दिन रात सदा कहता है। तथा अज्ञ रात दिन यही कहता है कि मैंने देखा (समझा) परन्तु राम ही कोई वस्तु नहीं है इत्यादि ॥ २४ ॥

सुख का सागर मैं किया, दुख दुख मेला पाँव।
थिति नहिं पकड़ै आपनी, चलै रंक औ राव ॥३५॥

कबीर साहब कहते हैं कि आत्मस्थिति पकड़ने वालों के लिये मैंने यह उपदेश सुख का समुद्र ही किया (रचा) है परन्तु रंक और राजा सब लोग अपनी स्थिति नहीं पकड़ते हैं। अतः दुःख से दुःखरूप मार्ग में पाँव मेलते (देते) और चलते हैं, सुख समुद्र को नहीं पाते हैं ॥ ३५ ॥

दुख न हता संसार में, हता न शोक वियोग।
सुख ही में दुख लादिया, बोलै बोली लोग ॥३६॥

संसार में प्रथम दुःख नहीं था, न शोक वियोगादिक ही थे। सृष्टि काल में प्रायः पुण्य, सुख, ज्ञानमय संसार था, परन्तु अनादि अविद्यादिवश जीवों ने सुख स्वरूप में ही धीरे-धीरे दुःख लाद लिया है। इस प्रकार ज्ञानी लोग बोलते हैं। अर्थात् दुःखादि अज्ञान मोहादिजन्य ही हैं, अतः कल्पित मिथ्या हैं। यदि सत्य हों तो इनकी ज्ञान से निवृत्ति नहीं हो सकती है और ज्ञान से निवृत्ति मुक्ति होती है। यह सन्त श्रुति का सिद्धान्त है ॥ ३६ ॥

लिखा पढ़ी में पड़े सब, यह गुण तजै न कोय।
सबे परे भ्रमजाल में, डारा यह जिय खोय ॥३७॥

लिखने पढ़ने में सब पड़े हैं, परन्तु यह त्रिगुणरूप शरीरादि के अभिमान मामता आदि कोई नहीं त्यागते हैं। सुख में दुःख को लादनारूप गुण को नहीं छोड़ते हैं। अतः विवेकादि के विना सब भ्रमजाल में पड़े हैं और यह (इस) मानव जिय (जीवन) को व्यर्थ खोय डरा है ॥ ३७ ॥

बूझो शब्द कहाँ से आया, कहाँ शब्द ठहराय।
कहहिं कबिर हम शब्द सनेही, दीन्हा अलख लखाय ॥३८॥

भ्रमजाल की निवृत्ति के लिये विवेकपूर्वक सत्यासत्य शब्द को बूझो और वह शब्द कहाँ से आया उस कारण को समझो। शब्द कहाँ ठहरता है (शब्द का आधार अधिकारी कौन है) सो समझ कर उपदेशरूप शब्द का अधिकारी बनो। क्योंकि अदृश्य आत्मा का ज्ञान शब्द से ही होता है। अतः कबीर साहब कहते हैं कि सार शब्द के सनेही (प्रेमी) श्रवणादि करने वालों को हमने शब्द से ही अलख (अदृश्य) को लखाय दिया है ॥ ३८ ॥

शब्द शब्द सब कोइ कहै, ओ तो शब्द विदेह।
जिह्वा पर आवै नहीं, निरख परख कर लेह ॥३९॥

शब्द-शब्द सब कोई कहते हैं, परन्तु जिह्वा पर आनेवाला बैखरी वाणी को ही सब कोई शब्द कहते हैं। परा, पश्यन्ती, मध्यमा वाक्स्वरूप शब्द को तथा अनहद शब्द को सब कोई न कहते हैं, न जानते हैं। वह परा शब्द तो विदेह (देह रहित) आत्मस्वरूप ही है और अनहद शब्द विदेह आत्मा का सूचक चीन्ह है। यह शब्द जिह्वा पर नहीं आता है। निरख-परखकर (बूझ, विचारकर) इस शब्द द्वारा आत्मा का धारण (निश्चय) कर लो "तस्येषा श्रुतिः।" (छा० ३।१३।७ ॥३९॥

सुत नहिं मानै बात पिता की, सेवै पुरुष विदेह।
कहहिं कबीर अबहुँ किन चेतो, छाड़ो झूठ सनेह ॥४०॥

सारासार शब्दादि के विवेक के बिना सुत (शिष्य जीव) सर्वात्मा पिता के बोधक सद्गुरु की बात को नहीं मानता है किन्तु विदेह (देव विशेष या प्रेतादि) रूप कल्पित पुरुष को सेवता है। तहाँ कबीर साहब कहते हैं कि अब भी क्यों नहीं चेतते हो? अब भी झूठ स्नेह को छोड़ो, सत्य को खोजो, सत्य में प्रेमादि करो ॥ ४० ॥

सबै आश करु शून्य नगर की, जहाँ न कर्ता कोय।
कहहिं कबीर बुझो जिय अपने, जाते भरम न होय ॥४१॥

झूठ सनेह से ही जहाँ कोई एक देशी सत्यकर्ता नहीं है, वहाँ नगर कर्ता आदि की कल्पनापूर्वक उस शून्य नगर (आकाश) की आशा कर्ता की प्राप्ति के लिये सब करते हैं। तहाँ कबीर साहब कहते हैं कि तुम अपने जिय (अन्तःकरण) में सर्वसाक्षी प्रत्यक्ष सत्यकर्ता को बूझो (समझो) कि जिससे फिर कभी भ्रम नहीं हो ॥ ४१ ॥

दाग जु लागा नील का, सौ मन साबुन धोय।
कोटि यतन परबोधिये, कागा हंस न होय ॥४२॥

जैसे पक्का नील का दाग यदि लगा हो, तो सौ मन साबुन से नहीं छूटता है और करोड़ों यतन से समझाने पर भी काक हंस वृत्ति का धारण नहीं करता है, तैसे ही शून्य नगर की आशा आदि के रहते किसी प्रकार भी पाप, कर्मादि नहीं निवृत्त होते हैं, न अत्यन्त काक वृत्तिवाला विवेकी भक्तादि ही होता है ॥ ४२ ॥

सोइ नूर दिल पाक है, सोइ नूर पहिचान।
जाके किये जग हुआ, सो वेचून क्यों जान ॥५१॥

सोई साईं का नूर (प्रकाश) सब प्राणी के दिल (मन) में पाक (पवित्र) आत्मा है। अतः सोई (उसी) नूर को पहचानो (आत्मा समझो) और जिसके करने (जिसकी माया के व्यापार) से संसार हुआ है, सो वेचून (अलभ्य) कैसे है, यह भी जानो। अर्थात् सर्वात्मा में कर्म कर्तृभाव विरुद्ध होने से और अज्ञान से अलभ्य है, दूरता भिन्नता आदि से नहीं ॥ ५१ ॥

आपु भुलावै आप में, आपु न चीन्है आपु।
और होय तो पाइये, यह तो आपुहि आपु ॥५२॥

अज्ञान दशा में यह नूर अपनी माया में अपने को भुलाता (छिपाता) है और अपने को आप नहीं चीन्हता है। ज्ञान दशा में कहता है कि अन्य कोई सत्य हो तो उसको प्राप्त किया जाय, यह नूर तो आपे आप एक सर्वात्मा है ॥ ५२॥

आपु शब्द सन्धिक लखो, कहे बिना नहिं ठौर।
ताते सार असार ही, गुरु पारख शिर मौर ॥५३॥

शब्दों के सन्धि (तात्पर्य) द्वारा तुम अपने को आप लखो (समझो) तथा आप शब्दों के सन्धि (भेद तात्पर्य) को लखो। क्योंकि सद्गुरु से कहे गये शब्द के विना कहीं ठौर नहीं मिलता है। अतः सार और असारहूँ वस्तु को विवेकपूर्वक जानने के लिये गुरु का पारख (परीक्षा) रूप उपदेशात्मक शब्द है, सोई ज्ञान के साधनों में शिरमौर (प्रधान) है उसीसे सत्य ठौर की प्राप्ति होती है, अन्यथा नहीं ॥ ५३ ॥

जागे से स्वपना नहीं, स्वपना सार असार।
सार शब्द निशिदिन रखे, जाते मिटे विकार ॥५४॥

सारशब्द द्वारा जागने से (विवेक विज्ञानपूर्वक मोह ममता आदि को त्यागने से) फिर संसार स्वप्न नहीं होता है और वर्तमान संसार का सार (सत्य पदार्थ) भी असार दीखने लगता है। इसलिये निशिदिन (सदा) सद्गुरु के सार शब्द को हृदय में रखना चाहिये कि जिससे ज्ञान द्वारा कामादि और जन्मादि विकार समूल नष्ट हो जायँ ॥ ५४ ॥

अलख लखो अलखे लखो, लखो निरञ्जन तोहि ।
हौं कबीर सबको लखों, मोको लखै न कोहि ॥५५॥

अलख (अदृश्य) आत्मा को स्वयं अलख होकर जानो कि अदृश्यात्मा मैं हूँ, दृश्य देहादि नहीं । इस प्रकार तोहि (तुम अपने) को निरञ्जन (निर्गुण निर्लेप) समझो मैं भी कबीर साक्षीरूप से सबको जानता हूँ, मुझे जानने वाला अन्य कोई नहीं है । मैं अपने निर्गुण स्वरूप को आप ही जानता हूँ । अर्थात् व्यावहारिक जीव का प्रमाता स्वरूप पारमार्थिक स्वरूप से भिन्न सत्ता वाला नहीं है, सो पारमार्थिक स्वरूप को जानता है ॥ ५५ ॥

हमहि लखा तिहुँ लोक में, तूँ क्यों कहे अलेख ।
सार शब्द जाना नहीं, धोखे पहिरा भेख ॥५६॥

साक्षी स्वरूप हम (आत्मा) अहम् इस बुद्धि के विषयरूप से तीनों लोक अवस्था में लखा (प्रत्यक्ष) होता हूँ । तुम सर्वथा अलेख (अलक्ष्य*) अप्राप्य क्यों कहते हो ? और समझते हो । सार शब्द को जाने बिना तुमने धोखे में वेष पहिरा है , इससे ऐसा कहते हो ॥ ५६ ॥

साखी आँखी ज्ञान की, समुझि देखु मन माहिं ।
बिनु साखी संसार की, झगड़ा छूटत नाहिं ॥५७॥

साक्षीस्वरूप आत्मा को शुद्ध बुद्धिजन्य ज्ञान-नेत्र से अपने मन में विचार कर देखो अपरोक्ष करो । क्योंकि लोक में जैसे साक्षी के बिना झगड़ा नहीं छूटता है, तैसे जन्म-मरणादि द्वन्द्वरूप झगड़ा साक्षीस्वरूप के ज्ञान के बिना नहीं छूटता है और साक्षीस्वरूप का ज्ञान प्रमाणरूप सार शब्द के बिना नहीं होता है । क्योंकि लक्षण और प्रमाण से वस्तु की सिद्धि (अनुभूति) होती है । लक्षण से सम्भावित वस्तु का प्रमाण से निश्चयरूप ज्ञान होता है । तहाँ— "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" (तैत्ति० २।१) इस श्रुति में सत्य ज्ञान अनन्त तीन ब्रह्म के विशेषण हैं सो ब्रह्म के लक्षण हैं क्योंकि विशेषण सजातीयमात्र से पदार्थ का भेदक होता है । जैसे "नीलो घटः" यहाँ नील विशेषण श्वेतादि-घट से घट का भेदक होता है और लक्षण अन्य सबसे लक्ष्य का भेदक

---

* "न तावदयमेकान्तेनाविषयः, अस्मत्प्रत्ययविषयत्वाद् अपरोक्षत्वाच्च ।" (शाङ्करभाष्य० १।१।१) "इदमंशं स्वतः पश्यन् रूप्यमित्यभिमन्यते । तथा स्वं च स्वतः पश्यन्नहमित्यभिमन्यते॥" (पञ्चदशी ६।२७)

मैं चितवत हौं तोहि को, तूँ चितवत किछु और ।
लानत ऐसे चित्त पर, एक चित्त दुइ ठौर ॥६४॥

मैं तेरा हित चितवता (देखता सोचता) हूँ । तथा तुझे चितवत (ज्ञानवान्) करना चाहता हूँ । परन्तु तूँ यदि और कुछ सोचते हो, अन्य को ज्ञानवान् समझते हो स्वयं ज्ञानवान् नहीं होना चाहते हो, एक ज्ञान मार्ग में मन को नहीं लगाते हो तो ऐसे तेरे चित्त पर लानत (धिक्कार) है, जो एक चित्त दो ठौर में रहता है । अतः चित्त को एक सत्यात्मनिष्ठ कर्तव्य है ॥ ६४ ॥

वेद कहै सो नहीं करै, समुझै और कि और ।
चौरासी की धार में, कबहूँ न पावै ठौर ॥६५॥

"सत्यं वद । धर्मं चर ।" (तैत्तरीय० १।११।१) "ओंकार एवेदं सर्वम् ।" (छ० ७।२३।३) "आत्मैवेदं सर्वम् ।" (छा० ।२५।२) सत्य बोलो, धर्म करो, ओंकार स्वरूप ही इस सब जगत् को समझो, आत्मस्वरूप ही इस सब को समझो । इत्यादि—वेद जिस सत्य अहिंसादि ब्रह्म आत्मा का वर्णन करते हैं, उसके अनुभव आचरण विचारादि जो नहीं करते हैं और अन्य (अनात्मा) देहादि को अन्य (आत्मा) पवित्र नित्यादि समझते हैं दुःखद विषय भोगादि को सुखद समझते हैं, सो पाप को भी पुण्य समझने वाले चौरासी के प्रवाह में कभी ठौर नहीं पाते हैं, निरन्तर बहते रहते हैं । अतः वेदादि के सत्योपदेशों के द्वारा भ्रम का निवारण धर्माचरण कर्तव्य है ॥ ६५ ॥

फेर परा नहिं अङ्ग में, नहिं इन्द्रिन के माहिं ।
फेर परा है बूझ में, सो निरुआरे नाहिं ॥६६॥

वेदादि सत शास्त्र की आज्ञा को नहीं मानने वाले भ्रान्त प्राणियों के अङ्ग या इन्द्रियों में फेर (विपर्यय) नहीं प्राप्त हुआ हूँ । अङ्ग और इन्द्रिय अपने अपने स्थान में ही है, परन्तु बूझ (ज्ञान) में फेर प्राप्त हुआ है । उसका निरुआर वेदादि के बिना नहीं किया जा सकता है । अतः वेदादि द्वारा उसका निरुआर (निवारण नाश) कर्तव्य है ॥ ६६ ॥

तिमिर जाय रवि देखते, कुबुद्धि जाय गुरु ज्ञान ।
सुमति जाय एक लोभते, जामें भुला जहान ॥६७॥

यद्यपि वेदादि ज्ञान के हेतु हैं परन्तु वेदादि का ज्ञान गुरु के बिना नहीं होता है। अतः जैसे सूर्य को देखते (सम्मुख सामने होते) ही अन्धकार स्वयं ही नष्ट हो जाता है, तैसे ही सद्गुरु द्वारा निःसंशय ज्ञान की प्राप्ति होते ही कुबुद्धि नष्ट होती है, दम्भ पाखण्ड, क्रूरता, हिंसा आदि के हेतुरूप बुद्धि निवृत्त हो जाती है और गुरु ज्ञान का हेतु सुमति (निःछलता सरलता) आदि एक लोभ से नष्ट होती है। लोभी को भावी हित की बुद्धि (विवेकादि) नहीं रहती है। जिससे लोभ में ही सब जहान (संसार) अपने मार्ग को भूला है। अतः लोभ के त्यागपूर्वक सुमति से गुरुज्ञान प्राप्त करने योग्य है ॥ ६७ ॥

यह मन तो लोभी भया, खेत बिरानी खाय।
वाका फल आगे मिले, काल घसीटे धाय ॥६८॥

सुमति के विना यह लोगों का मन लोभी हुआ है। जिससे विरानी (अन्य के) स्त्री धन भूमि आदिरूप खेतों को चोरी बलात्कार बञ्चकता आदि द्वारा खाता (भोगता) है। यद्यपि भोगकाल में पाप का फल नहीं प्रतीत होता है, तथापि उस अविहित भोगरूप पाप का फल आगे अवश्य मिलता है कि जब प्रारब्धान्त में धाय (दौड़) कर काल पकड़ता और नरकादि में घसीटता है। अतः लोभ को अवश्य त्यागना चाहिये ॥ ६८ ॥

बिगरी जन्म अनेक की, सुधरी अबही आय।
जब गुरु आप कृपा करी, शब्द दियो परखाय ॥६९॥

क्योंकि लोभ को त्यागने से जब सद्गुरु ने स्वयं कृपा करी और जिसको सार शब्द अर्थ परखा दिया, तो उसके अनेक जन्म की विगड़ी हुई बुद्धि स्थिति गति, अब ही (तुरन्त) सुधर गई। मोहादि नष्ट हो गये। जितनीं प्राप्तव्य वस्तु अप्राप्त रही सो सब स्वयं प्राप्त हो गई। अतः लोभ को त्यागकर गुरु कृपा का पात्र होना चाहिये ॥ ६९ ॥

गुरु माथे पर राखिये, चलिये आज्ञा माहिं।
कहहिं कबिर तिहि सन्त को, तीन लोक डर नाहिं ॥७०॥

इति श्रीसद्गुरुकबीरकृते विविधबन्धबीजविध्वंसने बीजकनाम्नि ग्रन्थे द्वादशमं परिशिष्टसाखीप्रकरणं समाप्तम् ॥ १२ ॥

और कृपापात्र बनकर गुरु को माथे पर रखना चाहिये, उनके उपदेशादि को शिरोधार्य समझना चाहिये। नम्रतापूर्वक प्रणाम सेवा करना चाहिये और गुरु की आज्ञा के अनुसार आज्ञा में चलना (साधना करना) चाहिये। कबीर साहब कहते हैं कि ऐसा करनेवाले उस सन्त (शिष्य भक्त) को तीनों लोक में कहीं भय नहीं होता है। अभयादि दैवी सम्पत्ति की प्राप्तिपूर्वक ज्ञान पाकर मुक्त हो जाता हैं। क्योंकि—

"गुरु की आज्ञा आवई, गुरु की आज्ञा जाय।
कहैं कबिर सो सन्त है, आवागमन नशाय ॥१॥
गुरु मिलिया तब जानिये, मिटै मोह तन ताप।
हर्ष शोक व्यापै नहीं, तब गुरु आपे आप ॥२॥" (अंग की साखी)

गुरु की आज्ञा के अनुसार ही गमनागमनादि करनेवाला सन्त कहा जाता है और अपने गमनागमन (जन्म-मरणादि) द्वन्द्वों को ज्ञान-विरागादि से नष्ट कर देता है ॥ १ ॥

अतः जब गुरु मिल गये तथा शिष्य जब गुरु को प्राप्त कर लिया तब, समझना चाहिये कि उसके मोह भावी तन और सब ताप मिट गये। अतः उसमें हर्ष-शोकादि द्वन्द्व नहीं व्याप सकते हैं और तब (हर्ष-शोकादि रहित होने पर) वह शिष्य आप गुरुरूपता को प्राप्त करके सर्वात्मस्वरूप होता है ॥ २ ॥

ईशाऽच्छादित जगत् सब, बसत ताहि के माँहि।
तद्रूपहि सब जीव हैं, गुरु बिनु जानत नाँहि ॥१॥
जानि भजै आपा तजै, समता लावै चित्त।
हर्ष शोक से मुक्त तब, होय सकल का हित्त ॥२॥
जा गुरु ते जन पावते, नित्यानन्द अखण्ड।
सो गुरु ब्रह्म अनन्त सुख, वन्दौं तिहि सम दण्ड ॥३॥७०॥

इति श्रीमत्स्वामिहनुमद्दासषट्शास्त्रिविरचित बीजकसारबोधिनी टीका
द्वाददश परिशिष्ट साखी प्रकरण ॥ १२ ॥

